SPS
891.431 M 20 CH
30077

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विंशम्पुष्पम्

स्कन्दमहापुराणम्

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

माहेश्वरखण्डात्मकः

प्रथमो भागः

"पुराणं सर्वशास्त्राणां-प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्"
(मत्स्यपुराणम्)

मनसुखराय मोर

५, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

विक्रम सम्वत् २०२२] [ईशवीय सन् १९६५

SPS
891.431 M 20 CH
30077

* श्रीगणेशायनमः *

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विंशंपुष्पम्

स्कन्द-पुराणम्

—*—

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

माहेश्वरखण्डात्मकः

प्रथमोभागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघंबटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्)
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,
कलकत्ता—१

स्कैन्ड/ Scanned

वैक्रमाब्दः
२०२२

द्वितीयं संस्करणम्
२०००

ख्रैस्ताब्दः
१९६५

Gurumandal Series No. XX

Skanda Puranam

First Volume

—::*::—

MAHESHWARKHAND

BY

Shrimanmaharsi Krishna Dwaipayan vedavyas

PART I

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram era
2022

Second Edition
2000

Christian era
1965

आरम्भतः ५१२ पृष्ठ पर्यन्तं
गोपाल प्रिण्टिङ्गवर्क्स
८७।ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६ में
और अवशिष्ट ग्रन्थ समाप्तितक तथा भूमिका विषय सूचि आदि
अजीत कुमार बनर्जी द्वारा
वाणीलेखा प्रेस
७ बी, राम मोहन साहा लेन
कलकत्ता ६
में मुद्रित

स्कन्द-पुराणम्

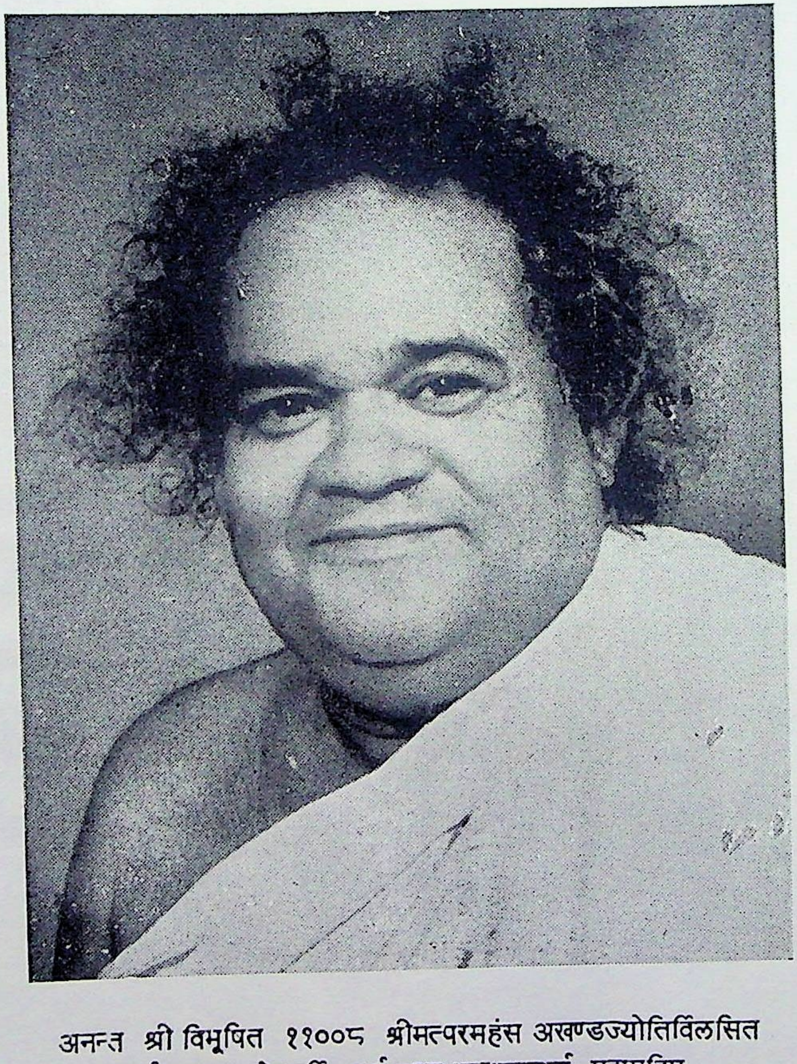

अनन्त श्री विभूषित ११००८ श्रीमत्परमहंस अखण्डज्योतिर्विलसित
सर्वभूतात्मा वेदमूर्त्ति सर्व-तन्त्र-धुरन्धराचार्य महामहिम
श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज

* श्रीगणेशाय नमः *

सश्रद्धं समर्पणम्

—:o:—

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तः पदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामबलाम्प्रपद्ये ॥ १ ॥

श्रीमतां तत्रभवतां पदवाक्यप्रमाणपारदृश्वनां सकलदर्शनरहस्यविदां वेदसच्छास्त्रादिविरलसाहित्यनिर्ग्रथनार्थं तत्पुनरुद्धरणार्थं तत्सारसमाहारवृद्धिचिन्तयैवाऽशेषं समयं निर्हरतां प्रगल्भशेमुषीजुषां समस्त विद्यास्वप्रतिहतगतीनां ब्रह्मविद्यापरायणानां सार्वभौमपदवीभृतां “वाणी नीलाहि वेणी सरसिजनिलया किङ्करीति प्रसिद्धा” इति “अहोबिल” पण्डितोक्ति शब्दशश्चरितार्थयतां समस्तसाधारणग्रहणपटूनां समस्तगुरूणां परमपूज्यानां अनन्तश्रीविलसितानां परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां

श्री ११०८ नारायणस्वामिचरणानां महनीयकरकञ्जेषु सुमनायतां

“स्कन्दमहापुराणम्”

इतिसादरं समर्पको

भक्तिविनतो

पौषशुक्ला
पुत्रदैकादशी
२०२२ विक्रमाब्दः

मनसुखराय मोरः
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता—१

स्कन्दपुराण-माहेश्वर खंड अनुशीलन

[जगद्गुरु रामानुजाचार्य आचार्यपीठाधिपति स्वामी श्री राघवाचार्य महाराज]

स्कन्द देवता

स्कन्द देव हैं। षण्मतस्थापक आचार्य शङ्कर ने जिन छः मतोंको मान्यता दी उनमें से एक के यह आराध्य एवं उपास्य देव हैं। वह शोषक हैं असत् के, असद्वृत्तियों के एवं असुरों के। स्कन्दयति, शोषयति, अर्थात् जो शोषण करता है वही देव स्कन्द है। परमतत्त्व में असद्वृत्तियों को नष्ट करने की सामर्थ्य सदा विद्यमान रहती है। अतः परमतत्त्व स्कन्द है। विष्णु के सहस्र नामों में एक 'स्कन्द' नाम है। शिवके सहस्रनामों में भी एक स्कन्द नाम है। देववृत्त के अनुसार भूतभावन शङ्कर के आत्मज हैं षडानन स्कन्द, जो देवों के सेनापति हैं। 'सेनानीनामहंस्कन्दः' अर्थात् सेनापतियों में मैं स्कन्द हूं के अनुसार भगवान् की विभूति हैं।

स्कन्दपुराण

पुराण वाङ्मय में स्कन्द के नामसे दो ग्रन्थ मिलते हैं एक खण्डोंमें विभक्त है। दूसरा संहिताओं में विभक्त है। नारदीयपुराण अपनी सूची में खण्डात्मक पुराण का ग्रहण किया है। नारदीयपुराण में स्कन्दपुराण के सात खण्ड गिनाये गये हैं—(१) माहेश्वर, (२) वैष्णव, (३) ब्राह्म, (४) काशी, (५) अवन्ती (६) नागर, (७) प्रभास। अन्य मतानुसार अवन्ती और नागर के स्थान पर रेवा और तापी खण्ड गिने जाते हैं। यह सप्तखण्डात्मक पुराण महापुराण माना जाता है। छः संहिताओंवाला स्कन्दपुराण पुराण है। दोनों ही पुराणवाङ्मय के जाज्वल्यमान रत्न हैं। दोनों के श्लोकों की संख्या ८१ हजार बतायी जाती है।

विषय

विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण पुराण में महेश्वर शिव और माहेश्वरधम की प्रधानता है। कहा भी है।

(१) यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः। (नारदीयपुराण)
(२) यत्र माहेश्वराधर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः। (नारदीयपुराण)
(३) यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः। (मत्स्यपुराण)

अर्थ यह है कि (१) स्कन्दपुराण के प्रत्येक पद में शिव प्रतिष्ठित हैं। (२) षडानन स्कन्द ने इस पुराण में माहेश्वर (शैव) धर्मका प्रतिपादन किया है। (३) शैव धर्म को ही लक्ष्य में रखकर स्कन्द ने इस पुराण का उपदेश दिया।

माहेश्वरखण्ड

महापुराण का प्रथम खण्ड माहेश्वर खण्ड है। इसमें तीन उपखण्ड हैं— (१) केदारखण्ड, (२) कुमारीखण्ड और (३ अरुचाचल माहात्म्य। जहां स्कन्द महापुराण के सात खण्ड सप्तद्वीपवती पृथ्वी का संकेत करते हैं, माहेश्व खण्ड के तीनों उपखण्ड भारतभूमि के प्रतीक हैं। केदार उत्तर में है। महीसागर संगम (कुमारी) पश्चिम में है। अरुणाचल दक्षिण में है। केदारखण्ड में ३५ अध्याय हैं। कुमारिकाखण्ड में ६६ अध्याय हैं। अरुणाचल माहात्म्य के पूर्वार्ध में तेरह और उत्तरार्ध में चौवीस कुल ३७ अध्याय हैं।

दक्ष यज्ञ विध्वंस से केदारखण्ड की कथा आरम्भ होती है विषभक्षण का वर्णन करती हुई कथा पार्वती के चरित्र तक पहुंचती है तव स्कन्द का चरित्र आता है। शिव पार्वती के राज्याभिषेक पर खण्डका उपसंहार होता है।

कुमारिकाखण्ड में महीसागरसंगम का माहात्म्य है। अर्जुन की यात्रा से प्रसंग आरम्भ होता है। क्रमशः यहां के एक एक तीर्थ एवं एक-एक आराध्यदेव का वर्णन किया गया है। अर्जुन ने यहां के पाँच तीर्थों के पाँच ग्राहों का उद्धार

किया। नारदने कलाप ग्रामके ब्राह्मणों को यहां लेजाकर बसाया। कुमार कार्तिकेय, भरतपुत्र शशश्रृङ्ग की कन्या कुमारी इन्द्रद्युम्न और उनके सहयोगी ऐतरेय आदि ने यहां साधना की। शिवलिङ्गों के अतिरिक्त विष्णु, सूर्य एवं देवी की भी यहां प्रतिष्ठा हुई।

अरुणाचल माहात्म्य का विषय स्पष्ट है। अरुणाचल के नाम से शिवके प्रकट होने से माहात्म्य का आरम्भ होता है। देवताओं ऋषियों की आराधना का तथा यहां के तीर्थों का वर्णन करते हुए वज्राङ्ग की साधना पर माहात्म्य का पूर्ति होती है।

माहेश्वरधर्म

जहां तक माहेश्वर धर्मका सम्बन्ध है प्रत्येक प्रसङ्ग में किसी न किसी रूप में शैव धर्म की चर्चा आगई है। भस्मधारण, रुद्राक्षधारण, शिवत्रयोदशी, शिवपूजा, आदि शैवधर्म के आचरणों का प्रतिपादन किया गया है। आचारवान व्यक्ति ही नहीं प्रत्युत अनाचारपरायण लोग भी शैवधर्म के अनुष्ठान से सुगति प्राप्त करने में समर्थ हुए इसके उदाहरणों से खण्ड परिपूर्ण है।

शिवतत्त्व

शैवधर्म के दर्शन का सर्वस्व है शिवतत्त्व। शिवतत्त्व के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीनों ही रूपों की विशद मीमांसा इस खण्ड में उपलब्ध होती है।

दक्ष यज्ञ विध्वंस से शुष्क कर्म का निषेध तथा ज्ञानपूर्वक कर्म का समर्थन किया गया है। दक्ष को पुनः जीवित कर शङ्कर ने बताया :—

केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्ततुमिच्छसि ॥

………………………………… … ….

न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढा कर्मवशा नराः ।
तस्माज्ज्ञानपरोऽभूत्वां कुरु कर्म समाहितः ॥ केदारखण्ड ५।४१,४२,४३

आशय यह है कि तुम केवल कर्म के द्वारा संसार सागर से पार जाना चाहते हो। कर्म के वशीभूत हुए मनुष्य मुझे प्राप्त नहीं कर पाते इसलिये तुम ज्ञानपरायण होकर कर्म करो।

ज्ञान के द्वारा प्राप्त होनेवाला आत्मसाक्षात्कार ही वास्तविक अमरत्व है। इनसे भिन्न केवल कर्मके द्वारा समुद्र मथन होनेपर कालकूट विष ही प्रकट होता है। शिवकी पराशक्ति प्रकृति से जन्मे हुए (साक्षात्प्रकृत्या सम्भूतः) गणेश ने यह विघ्न उपस्थित किया था (मया विघ्नं विनोदेन कृतं तेषां सुदुर्जयम्) यह गणेश माया पुत्रोऽपि निर्मायः है अर्थात् मायासे उत्पन्न होकर भी माया से रहित हैं। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिवने विषके भय को दूर किया और गणेशोपासना का विधान किया। यह भी बताया है कि शिवने गणेशके अज्ञान के मस्तक को काटकर और ज्ञान का मस्तक लगाकर गजानन गणेश बना दिया॥ (केदारखण्ड १०।२८-३६)।

दक्ष कन्या सती वस्तुतः शिवकी पराशक्ति थीं। हिमालय के यहां यही सती पार्वती के रूप मे अवतीर्ण हुईं। शङ्कर के द्वारा काम के भस्म किये जानेके पश्चात् पार्वती ने तपस्या की। तब शङ्कर और पार्वती का विवाह हुआ। शङ्कर विशुद्ध आत्मा और पार्वती महाविद्या के संयोग से जो तेज प्रकट हुआ उसने अग्नि और कृत्तिकाओं के माध्यम से गंगामें पहुंचकर स्कन्द (षडानन कुमार) रूप ग्रहण किया। इन्हीं कुमार के द्वारा तारकासुर का वध हुआ। केदारखण्ड में यह कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है। कुमारिका खण्ड में इनकी पुनरावृत्ति की गई है। यह कुमार शिवके अपर रूप हैं। (कुमारोह्यपरः शम्भुः केदार खण्ड ३१।२)। कुमार का दर्शन तत्काल सफलता प्रदान करनेवाला है। स्कन्द दर्शन का यही सिद्धान्त है।

केदारखण्ड के चौतीसवें अध्याय में शङ्कर पार्वती की जिस द्यूतक्रीडा का वर्णन है वह स्पष्टतः माया विरचित वितान है। "अहं शिवात्मिका मूढ शिवो

नित्यं मयिस्थितः" अर्थात् मैं पार्वती शिवात्मिका हूं और शिव निरन्तर मुझमें प्रतिष्ठित हैं यह पार्वती का परिचय है। इस द्यूतक्रीडाके अन्त में शङ्कर एकाकी निर्जन वनमें समाधिस्थ हो गये। प्रकृति से वियुक्त आत्मा की यही स्थिति है तब पार्वती ने शङ्कर का अन्वेषण किया और प्राप्त किया।

अरुणाचल माहात्म्य के पूर्वार्ध के तीसरे अध्याय में पार्वतीने शङ्कर के नेत्र बन्दकर दिये। यह देवी का विनोद था (देवी विनोदरूपेण पिधत्ते पुरजिद्दृशः) किन्तु ऐसा करने पर तुरन्त त्रिलोकी में अन्धकार हो गया। जब देवी ने नेत्र छोड दिया. 'सोमसूर्याग्निरूपाणां प्रकाशमभवज्जगत्' के अनुसार जगत में सोम, सूर्य एवं अग्निका प्रकाश हो गया। इसके बाद ही पार्वती ने तपस्या की और अरुणाचल पर शिव को प्राप्त किया। यहां शङ्कर ने स्पष्ट कर दिया कि प्रकृतिस्त्वं पुमानहम् कि तुम (पार्वती) प्रकृति हो और मैं पुरुष हूँ।

लिङ्गान्वेषण

शिवतत्त्व लिङ्गरूप है। केदारखण्ड का वचन है—

लिङ्गरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत्। अ० ७।५२

अर्थात् महादेव लिङ्गरूप हैं। कार्य जगत् में रजोगुण तथा सतोगुण इसका पार पानेमें समर्थ न हो सके। दारुवन में भी यही स्थिति हुई। आत्मस्वरूप तो गुणातीत है। इस तत्व तक पहुँचने के लिये सत्वगुण की पीठिका पर महेश्वर की उपासना करनी होगी। जैसा कि कहा है:—

पीठिका विष्णुरूपं स्याल्लिङ्गरूपीमहेश्वरः।

केदारखण्ड ८।२६

पीठिका विष्णुरूप (सत्वरूप) है और उसपर महेश्वर लिङ्गरूप में विराजमान हैं। रावण ने पीठिकारहित लिङ्ग की पूजा की जो उसके शापका कारण बनी (केदारखण्ड ८।८३ ८४) अतः लिङ्गोपासना में पीठिका समेत महेश्वर का

पूजन अपेक्षित है। इसी रूप में माहेश्वरखण्ड में स्थान स्थानपर विभिन्न लिङ्गोंका वर्णन किया गया है। शैवागमों का मन्तव्य यही है (अरुणाचल माहात्म्य उत्तरार्ध १६।४६, ५०) इस प्रकार प्रतिपादित शिवतत्त्व के साथ त्रिमूर्ति का कैसा सामञ्जस्य है, इसका भी उत्तर माहेश्वर खण्ड में दिया गया है। विष्णु शिवसे भिन्न हैं ब्रह्मा शिव से भिन्न हैं ऐसा मानकर बताया गया है कि पार्वती के अनुग्रह से यह सामञ्जस्य सम्पन्न हुआ। कहा है—

क्रमेण दौहृदवती भूत्वा प्रासूत पार्वती।
गजाननञ्च हेरम्बं सेनान्यञ्च षडाननम्।
तौ चागमविदः प्राहुर्नारायणचतुर्मुखौ।
पूर्वापराधशुध्यर्थं देवीगर्भसमुद्भवौ॥

(अरुणाचल मा० उ० १७।२३-२४)

आशय यह है कि आगम वेत्ताओं के अनुसार नारायण गजानन के रूप में और ब्रह्मा षडानन के रूप में प्रकट हुए। त्रिमूर्ति की अभिव्यक्ति माहेश्वरागम की विशेषता है।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

स्कन्द-पुराणके विषयमें

प्रथम संस्करण की भूमिका

——::०::——

श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द कन्द की असीम अनुकम्पा से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला २० वें पुष्पके रूप से महापुराणों में सर्वाधिक श्लोक संख्या (८१०००) वाले इस स्कन्द पुराण के प्रथम माहेश्वर खण्ड को प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। भविष्य में क्रमशः सभी खण्डों को यथावसर पर सम्पादन करवा निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इस महापुराण को समीक्षा सम्मान्य विद्वज्जन ही इसके अविकलपारायण द्वारा कर सकते हैं। मुझे तो इस विशाल महापुराण के सम्पादन कार्य को सुन्दर रूप से नाना हस्तलिखित प्रतियों तथा अद्यावधि प्रकाशित स्कन्द पुराण की प्रतियों के तुलनात्मक सम्पादन की विशेषता पर ही दो शब्द निवेदन करना अनिवार्य जंचता है।

स्कन्दपुराण के इस प्रस्तुत भाग को नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ), श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, (बम्बई) और वङ्गवासी प्रेस (कलकत्ता) पद्मपुराणों की प्रतियों को आदर्श रख कर छपाया है। इसके आगे वैष्णव खण्ड का प्रकाशन हाथ में लिया जाय। इसके पूर्व सभी सम्मान्य महानुभावों से इस महान् ग्रन्थ को पाठ, विषय एवं तुलनात्मक कार्य सभी प्रकार से परिपूर्ण करने के साथ-साथ उनमें ग्राह्य पाठ भेदों की समीक्षा आवश्यक है। अतः पुराणप्रेमी विद्वज्जन

सहयोग कर इस ओर मुझे पथ-प्रदर्शन करेंगे तो मैं अत्यन्त कृतकार्य होऊंगा।

इस विशाल ग्रन्थ राशि का अविकल पारायण, अध्ययन, मनन और प्रवचन सर्वत्र भूमण्डल में ज्ञान प्रसारार्थ हो यही आप महानुभावों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है।

इस उमा महेश्वर खण्ड की समीक्षा पूज्यपाद जगद्गुरु श्री १००८ वैष्णवाचार्य श्री राघवाचार्य जी महाराज, आचार्यपीठाधिपति बरेली ने कृपा कर की है इसके लिये मैं हृदय से कृतज्ञ एवं श्रद्धाविनत हूं। सदा की भाँति श्रीब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी शास्त्री व्याकरणाचार्य एम.ए.(लक्ष्मणगढ़-सीकर) एवं पण्डित रामनाथजी दाधीच-पुराण-सांख्य-काव्य स्मृति तीर्थ (नवलगढ़ ने पूर्ण परिश्रमसे इस खण्डका सम्पादनकार्य किया है दोनों को सम्पादन और ज्ञानयज्ञ में विशेष सफल होने की कला में सदा सफलतापूर्वकवाग्देवता की कृपा बनी रहे यही एकमेव हार्दिक अभिलाषा है।

अन्त में, मैं आप पुराण प्रेमी विद्वज्जन से मेरी अपूर्णताओं के लिये सादर क्षमा याचना करता हुआ बारम्बार इस महान् ज्ञान यज्ञ के सदनुष्ठान की सादर प्रार्थना करता हूं जिससे विश्व भरमें ज्ञान की अमर बूंटी के उपयोगसे मानव सृष्टि क्रम को आध्यात्मिक साधनों से सुख-शान्ति और आनन्द का केन्द्र बना एक अपूर्व युग का उदय करे जहाँ रागद्वेष, अशान्ति, कलह, घृणा सदा के लिये विलय होकर भ्रातृभाव, समता, प्रेम, सहिष्णुता और दिव्य विभूतियों का प्रसार हो—

''कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्''

कृपाभिलाषी

वैशाखी पूर्णिमा
२०१७ वि०

मनसुखरायमोर
५, क्लाइव रो
कलकत्ता-१

* श्रीगणेशायनमः *

अथ स्कन्दपुराणान्तर्गत-प्रथम-माहेश्वरखण्डस्य-

विषयानुक्रमणिका

आरभ्यते

* * *

अध्यायः	विषयः	पृष्ठाङ्काः
१	मङ्गलाचरणवर्णनम्	१
,,	दक्षशापवर्णनम्	३
२	दक्षयज्ञवर्णनम्	५
,,	सत्या शिवसभायांगमनवर्णनम्	७
३	सत्या दक्ष सदने प्रवेशः	९
,,	वीरभद्रप्रादुर्भाववर्णनम्	११
,,	दक्षयज्ञविध्वंसनप्रक्रमवर्णनम्	१३
४	देवैःसह शिवगणानां युद्धवर्णनम्	१५
,,	विष्णुवीरभद्रसम्वादवर्णनम्	१७
,,	विष्णुना वीरभद्रयुद्धवर्णनम्	१९
५	वीरभद्रेण दक्षशिरश्छेदनम्	२०
,,	वीरभद्रेण कवन्धानयनवर्णनम्	२१

५ शिवदर्शन महिमवर्णनम् २३
" त्रिकालशिवदर्शन महत्त्ववर्णनम् २५
" नन्दीकृत विस्मयवर्णनम् २७
" किरातस्य निश्छलाभक्तिवर्णनम् २९
" नन्दिकिरातयोर्द्वारपालत्ववर्णनम् ३१
६ लिङ्गप्रतिष्ठावर्णनम् ३३
" ब्रह्मणा सुरभिकेतकीभ्यां प्रत्यागमनम् ३५
७ देवैर्लिङ्गस्तुतिकरणम् ३७
" नानाज्योतिर्लिङ्गानांस्थानवर्णनम् ३९
" शिवालयसम्मार्जनमहत्त्ववर्णनम् ४१
८ तस्करवृत्तान्तवर्णनम् ४२
" नानादेवैर्विविधलिङ्गानाम्पूजनवर्णनम् ४३
" रावणाजेयत्ववर्णनम् ४५
" विष्णुप्रार्थनवर्णनम् ४७
" शिवार्चन महिमवर्णनम् ४९
९ गुरोरवज्ञयेन्द्रस्य राज्यभङ्गवर्णनम् ५१
" सुतले इन्द्रसमागमवर्णनम् ५३
" मन्दराचलानुरोधवर्णनम् ५५
" हलाहलविषोत्पत्तिवर्णनम् ५७
१० समुद्रमथने गणेशकृतविघ्नवर्णनम् ५९
" गणेशप्रशंसनवर्णम् ६१
" शिवप्रशंसावर्णनम् ६३
११ श्रीगणेशपूजाविधानवर्णनम् ६७
" लक्ष्म्याविर्भाववर्णनम् ६९

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

स्कन्दपुराणम्

—:०:—

तस्येदं चतुर्थं काशीखण्डम्प्रारभ्यते

तस्य

पूर्वार्द्धम्

प्रथमोऽध्यायः

विन्ध्यवर्धनवर्णनम्

तं मन्महेमहेशानं महेशानप्रियार्भकम् । गणेशानं करिगणेशाननमनामयम् ॥ १ ॥

भूमिष्ठाऽपि न याऽत्रभूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधःस्थाऽपि या,
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः ।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनीतीरे सुरैः सेव्यते,
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत् ॥ २ ॥

नमस्तस्मै महेशाय यस्य सन्ध्यात्त्रयच्छलात् ।
यातायातं प्रकुर्वन्ति त्रिजगत्पतयोऽनिशम् ॥ ३ ॥
अष्टादशपुराणानां कर्त्तासत्यवतीसुतः । सूताग्रे कथयामास कथांपापापनोदिनीम्

श्रीव्यास उवाच

कदाचिन्नारदः श्रीमान् स्नात्वा श्रीनर्मदाम्भसि ।
श्रीमदोङ्कारमभ्यर्च्य सर्वदं सर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥
व्रजन् विलोकयाञ्चक्रे पुरोविन्ध्यंधराधरम् । संसारतापसंहारिरिवावारिपरिष्कृतम्
द्वैरूप्येणापिकुर्वन्तंस्थावरेणचरेणच । साभिख्येनयथार्थाख्यामुच्चैर्वसुमतीमिमाम्
रसालयं रसालैस्तैरशोकैः शोकहारिणम् ।
तालैस्तमालैर्हिन्तालैः सालैः सर्वत्र शालितम् ॥ ८ ॥
खपुरैः खपुराकारं श्रीफलैर्श्रीफलैःकिल । गुरुश्रियंत्वगुरुभिः कपिपिङ्गं कपित्थकैः
वनश्रियःकुचाकारैर्लकुचैश्चमनोहरम् । सुधाफलसमारम्भिरम्भाभिः परिभासि[illegible]
सुरङ्गैश्चापिनारङ्गै रङ्गमण्डपवच्छ्रियः । वानीरैश्चापि जम्बीरैर्बीजपूरैः प्रपूरितम् ॥
अनिलालोलकङ्कोलवल्लीहल्लीसकायितम् । लवलीलवलीलाभिर्लास्यलीलालयंकिल
मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलसञ्ज्ञया । विश्रमायश्रमापन्ना नाह्वयन्तमिवाध्वगान्
पुन्नागमिवपुन्नागपल्लवैः करपल्लवैः । कलयन्तमिवाऽलोलैर्मल्लिकास्तवकस्तनम् ॥
विदीर्णदाडिमैःस्वान्तं दर्शयन्तन्तुरागवत् । माधवीं धवरूपेणश्लिष्यन्तमिवकानने
उदुम्बरैरम्बरगैरनन्तफलमालितैः । ब्रह्माण्डकोटीर्बिभ्रन्तमनन्तमिव सर्वतः ॥ १६
पनसैर्वननासाभैः शुकनासैः पलाशकैः । पलाशनाद्विरहिणांपत्रत्यक्तैरिवावृतम् ॥
कदम्बवादिनोनीपान् दृष्ट्वाकण्टकितैरिव । समन्ततोभ्राजमानं कदम्बककदम्बकैः ॥
नमेरुभिश्चमेरूच्चशिखरैरिवराजितम् । राजादनैश्च मदनैः सदनैरिव कामिनाम् ॥१६
तटेतटेपटुवटैरुच्चैः पटकुटीवृतम् । कुटजस्तवकैर्भान्तमधिष्ठितबकैरिव । [illegible]० ॥
करमर्दैः करीरैश्च करञ्जैश्चकरम्बकैः । सहस्रकरवद्भान्तमर्थिप्रत्युद्गतैः करैः ॥ २१ ॥
नीराजितमिवोद्दीपैः राजचम्पककोरकैः । सपुष्पशाल्मलीभिश्चजितपद्माकरश्रियः

क्वचिच्चलद्दलैरुच्चैः क्वचित्काञ्चनकेतकैः । कृतमालैर्नक्तमालैः शोभमानं क्वचित्क्वचित्
कर्कन्धुबन्धुजीवैश्च पुत्रजीवैर्विराजितम् । सतिन्दुकेङ्गुदीभिश्चकरुणैः करुणालयम्
गलन्मधूककुसुमैर्धरारूपधरंहरम् । स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिरर्चयन्तमिवानिशम् ॥ २५
सर्जार्जुनाञ्जनैर्बीजैर्व्यजनैर्वीज्यमानवत् । नारिकेलैः सखर्जूरैर्धृतच्छत्रमिवाम्बरे
अमन्दैःपिचुमन्दैश्चमन्दारैःकोविदारकैः । पाटलातिन्तिणीघोण्टाशाखोटैःकरहाटकैः
उद्दण्डैश्चापिशेहुण्डैरेरण्डैर्गुडपुष्पकैः । बकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकाङ्कितमस्तकम्
अक्षैः प्लक्षैःशल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लीविराजितम् ॥
एलालवङ्गमरिचकुलञ्जनवनावृतम् । जम्ब्वाम्रातकभल्लातशेलुश्रीपर्णिवर्णितम् ॥
शाकशङ्खवनैरम्यं चन्दनैरक्तचन्दनैः । हरीतकी-कर्णिकार-धात्रीवन-विभूषणम् ॥
द्राक्षावल्लीनागवल्लीकणावल्लीशतावृतम् । मल्लिकायूथिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धिनम्
भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलङ्कृतम् । अलिच्छलागतं कृष्णं गोपीरन्तुमनेकशः
नानामृगगणाकीर्णंनानापक्षिविनादितम् । नानासरित्सरःस्रोतःपल्वलैःपरितोवृतम्
तुच्छश्रियःस्वर्गभूमीःपरिहायागतैरिव । नानासुरनिकायैश्चविष्वग्भोगेच्छयोषितम्
उत्सृजन्तमिवार्घ्यंवै पत्रपुष्पैरितस्ततः । केकिकेकारवैर्दूरात्कुर्वन्तं स्वागतंकिल
अथसूर्यशताभासं नभसिद्योतिताम्बरम् । नारदं दृष्ट्वाऽशैलोदूरात्प्रत्युज्जगाम तम्
ब्रह्मसूनुवपुस्तेजोदूरीकृतदरीतमाः । तमागच्छन्तमालोक्य मानसं तमउज्जहौ ॥
ब्रह्मतेजःसमुद्भूतसाध्वसःसाधुसत्क्रियः । कठिनोपिपरित्यज्यधत्तेमृदुलतांकिल
दृष्ट्वामृदुलतांतस्य द्वैरूप्येऽपि स नारदः । मुमुदे सुतरां सन्तः प्रश्रयग्राह्यमानसाः ॥
गृहानायान्तमालोक्य गुरुंवाऽगुरुमेववा । योऽगुरुर्नम्रतां धत्ते स गुरुर्नगुरुर्गुरुः ॥४१

तं प्रत्युच्चैः शिराः सोऽपि विनम्रतरकन्धरः ।
शैलस्त्विलामिलन्मौलिः प्रणनाम महामुनिम् ॥ ४२ ॥

तमुत्थाप्यकराग्राभ्यामाशीर्भिरभिनन्द्य च । तदुद्दिष्टासनंभेजे मनसोपिसमुच्छ्रितम्
सदा नामधुनाज्येन नीरार्द्राक्षतदूर्वया । तिलैः कुशैः प्रसूनैस्तमष्टाङ्गार्घ्यैरपूजयत् ॥
गृहीतार्घ्यंकिलश्रान्तं पादसम्वाहनादिभिः । गतश्रममथालोक्यबभाषेऽवनतोगिरिः

अद्यसद्यःपरिहृतं त्वदङ्घ्रिरजसारजः । त्वदङ्गसङ्गिमहसा सहसाऽप्यान्तरं तमः ॥
सफलश्चिरहंचाद्य सुदिवाद्यघमेमुने !। प्राक्कृतैः सुकृतैरद्य फलितंमेचिरार्जितैः ॥४७
धराधरत्वं कुलिषु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ।
इति श्रुत्वा तदा किञ्चिदुच्छ्वस्य स्थितवान्मुनिः ॥ ४८ ॥
पुनरूचेकुलिवरः सम्भ्रमापन्नमानसः । उच्छ्वासकारणंब्रह्मन् ब्रूहि सर्वार्थकोविद !
अदृष्टं तवनोदृष्टं यदिष्टं विष्टपत्रये । अनुक्रोशोऽत्रमयिचेदुच्यतां प्रणतोऽस्म्यहम्
त्वदागमनजानन्दसन्दोहैर्मेदुरारवः । अलंनवक्तुमसकृत्तथाऽप्येकं वदाम्यहम् ॥
धराधरणसामर्थ्यं मेर्वादौपूर्वपूरुषैः । वर्ण्यते समुदायात्तदहमेको दधे धराम् ॥ ५२॥
गौरीगुरुत्वाद्धिमवानादिपत्याच्च भूभृताम् ।
सम्बन्धित्वात्पशुपतेः स एको मान्यभृत्सताम् ॥ ५३ ॥
नमेरुःस्वर्णपूर्णत्वाद्रत्नसानुतयाथवा । सुरसद्मतयावापि क्वापि मान्योमतो मम ॥
परंशतंनकिंशैला इलाकलनकेलयः । इहसन्तिसतां मान्या मान्यास्ते तु स्वभूमिषु
मन्देहदेहसन्देहादुदयैकदयाश्रितः । निषधोनौषधिधरोऽप्यस्तोप्यस्तमितप्रभः ॥
नीलश्चनीलीनिलयो मन्दरोमन्दलोचनः । सर्पालयःसमलयो रायं नावैतिरैवतः ॥
हेमकूटत्रिकूटाद्याः कूटोत्तरपदास्तु ते ।
किष्किन्धक्रौञ्चसह्याद्या भारसह्या न ते भुवः ॥ ५८ ॥
इतिविन्ध्यवचःश्रुत्वा नारदोऽचिन्तयद्धृदि । अखर्वगर्वसंसर्गो न महत्त्वाय कल्पते
श्रीशैलमुख्याःकिंशैलानेहसन्त्यमलश्रियः । येषां शिखरमात्रादि दर्शनं मुक्तयेसताम्
अद्यास्य बलमालोक्य मितिध्यात्वाऽब्रवीन्मुनिः ।
सत्यमुक्तं हि भवता गिरिसारं विवृण्वता ॥ ६१ ॥
परंशैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वामवमन्यते । मयानिःश्वसितंचैतत्त्वयिचापि निवेदितम्
अथवा मद्विधानां हि केयं चिन्ता महात्मनाम् ।
स्वस्त्यस्तु तुभ्यमित्युक्त्वा ययौ स व्योमवर्त्मनि ॥ ६३ ॥
गतेमुनौनिनिन्दस्वमतीवोद्विग्नमानसः । चिन्तामवापमहतींविन्ध्योबन्ध्यमनोरथः

विन्ध्य उवाच

धिग्जीवितं शास्त्रकलोज्झितस्य धिग्जीवितं चोद्यमवर्जितस्य ।
धिग्जीवितं ज्ञातिपराजितस्य धिग्जीवितं व्यर्थमनोरथस्य ॥ ६५ ॥
कथं भुनक्ति स दिवा कथं रात्रौस्वपित्यहो । रहःशर्मकथंतस्ययस्याभिभवनंरिपोः
अहोदवाग्निदवथुस्तथामांनसबाधते । बाधतेतुयथाचित्ते चिन्तासन्तापसन्ततिः
युक्तमुक्तंपुराविद्भिश्चिन्तामूर्त्तिः सुदारुणा । नभेषजैर्लङ्घनैर्वानचान्यैरुपशाम्यति ॥
चिन्ताज्वरोमनुष्याणां क्षुधांनिद्रांबलंहरेत् । रूपमुत्साहबुद्धिश्रीजीवितञ्चनसंशयः
ज्वरोव्यतीतेषडहे जीर्णज्वरइहोच्यते । असौचिन्ताज्वरस्तीव्रःप्रत्यहंनवतां व्रजेत्
धन्योधन्वन्तरिर्नात्र चरकश्चरतीहन । नासत्यावपिनाऽसत्यावत्रचिन्ताज्वरे किल
किंकरोमिक्वगच्छामिकथंमेरुं जयाम्यहम् । उत्प्लुत्यतस्यशिरसिपतामिनपताम्यतः
शक्रंकोपयतापूर्वमस्मद्गोत्रेण केनचित् । पक्षहीनः कृतोयत्र धिगपक्षस्य चेष्टितम्
अथवासकथंमेरुस्तथोच्चैःस्पर्द्धतेमया । भूमेर्भारभृतः प्रायो भवन्ति भ्रान्ति भूमयः
अलीकवाक्त्वमथवासम्भाव्यंनारदेकथम् । ब्रह्मचारिणिवेदज्ञे सत्यलोकनिवासिनि
युक्तायुक्तविचारोथ मादृशेनोपयुज्यते । पराक्रमेष्वशक्तानां विचारंगाहते मनः ॥
अथवाचिन्तनैरेतैः किंव्यर्थंविश्वकारकम् । विश्वेशंशरणंयायां समेबुद्धिं प्रदास्यति
अनाथनाथःसर्वेषां विश्वनाथोहिगीयते । क्षणंमनसि सञ्चिन्त्यभवेदित्थमसंशयम्
एतदेवकरिष्यामि नेष्टंकालविलम्बनम् । विचक्षणैरुपेक्ष्यौन वर्द्धमानौ परामयौ ॥
मेरुंप्रदक्षिणीकुर्यान्नित्यमेव दिवाकरः । सग्रहर्क्षगणोनूनं मन्यमानो बलाधिकम् ॥
इतिनिश्चित्यविन्ध्याद्रिर्ववृधेसमृधेक्षणः । अनन्तगगनस्यान्तं कुर्वद्भिः शिखरैरिव
कैश्चित्सार्धंविरोधोन कर्तव्यःकेनचित्क्वचित् । कर्तव्यश्चेत्प्रयत्नेनयथानोपहसेज्जनः
निरुद्ध्य ब्राध्नमध्वानं कृतकृत्य इवाद्रिराट् ।
स्वस्थोऽभवद्भवाधीना प्राणिनां हि भविष्यता ॥ ८३ ॥
यमद्ययमकर्तासौ दक्षिणंप्रक्रमिष्यति । सकुलीनः सच श्रीमान्समहान्महितःस च
यावत्स्वशक्ति शक्तोऽपि न दर्शयति कर्हिचित् ।

तावत्स लङ्घ्यः सर्वेषां ज्वलनो दारुगो यथा ॥ ८५ ॥
इति चिन्तामहाभारं त्यक्त्वा तस्थौ स्थिरोद्यमः ।
आकाङ्क्षमाणस्तरणेरुदयं ब्राह्मणो यथा ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे विन्ध्यवर्धनवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

सत्यलोकवर्णनम्

व्यास उवाच

सूर्यआत्मास्यजगतस्तस्थुषस्तमसोरिपुः । उदियायोदयगिरौ शुचिःप्रसृमरैः करैः
सम्वर्धयन् सतां धर्मान्न्यक्कुर्वंस्तामसीं स्थितिम् ।
पद्मिनीं बोधयंस्त्विष्टां रात्रौ मुकुलिताननाम् ॥ २ ॥
हव्यंकव्यंभूतवलिदेवादीनां प्रवर्तयन् । प्राह्णापराह्णमध्याह्नक्रियाकालं विजृम्भयन्
असतां हृदि वक्त्रेषु निर्दिशंस्तमसः स्थितिम् ।
यामिनीकालकलितं जगदुज्जीवयन् पुनः ॥ ४ ॥
यस्मिन्नभ्युदितेजातः सम्यक्पुण्यजनोदयः । अहोपरोपकरणं सद्यःफलतिनेतिचेत्
सायमस्तमितः प्रातः कथं जीवेद्रविः पुनः ।
सानुरागकरस्पर्शैः प्राचीमाश्वास्य खण्डिताम् ॥ ६ ॥
यामंभुक्त्वातथाग्नेयीं ज्वलन्तीं विरहादिव । लवङ्गैलामृगमदचन्द्रचन्दनचर्चिताम्
ताम्बूलीरागरक्तौष्ठीं द्राक्षास्तवकसुस्तनीम् ।
लवलीवल्लिदोर्वल्लीं कङ्कोलीपल्लवाङ्गुलिम् ॥ ८ ॥
मलयानिलनिःश्वासां क्षीरोदकवराम्बराम् ।

त्रिकूटस्वर्णरत्नाङ्गीं सुवेलाद्रिनितम्बिनीम् ॥ ९ ॥
कावेरीगौतमीजङ्घां चोलचोलांशुकावृताम् ।
सह्यदर्दुरवक्षोजां कान्तीकाञ्चीविभूषणाम् ॥ १० ॥
सुकोमलमहाराष्ट्रीवाग्विलासमनोहराम् ।
अद्यापि न महालक्ष्मीर्या विमुञ्चति सद्गुणाम् ॥ ११ ॥
सुदक्षदक्षिणामाशामाशानाथःप्रतस्थिवान् । क्रमन्तःसर्वमर्दन्तोहेलयाहेलिकस्यखम्
न शेकुरग्रतो गन्तुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् ॥ १३ ॥

अनूरुरुवाच

भानो ! मानोन्नतो विन्ध्यो निरुद्ध्य गगनंस्थितः ।
स्पर्द्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्वृत्तान्तु प्रदक्षिणाम् ॥ १४ ॥
अनूरुवाक्यमाकर्ण्यसविताह्यचिन्तयत् । अहोगगनमार्गोपिरुद्ध्यते चातिविस्मयः

व्यास उवाच

सूरःशूरोपिकिंकुर्यात्प्रान्तरेवर्त्मनिस्थितः । त्वरावानपिकोरुद्धंमार्गमेकोविलङ्घयेत्
राहुबाहुग्रहव्यग्रो यःक्षणंनावतिष्ठति । शून्यमार्गे निरुद्धः स किकरोतु विधिर्बली
योजनानांसहस्रेद्वे द्वे शतेद्वे चयोजने । योजनस्यनिमेषार्धाद्यातिसोपिचिरं स्थितः
गतेबहुतिथेकाले प्राच्यौदीच्याभृशार्दिताः । चण्डरश्मेःकरव्रातपातसन्तापतापिताः
पाश्चात्या दाक्षिणात्याश्च निद्रामुद्रितलोचनाः ।
शयिता एव वीक्षन्ते सताराग्रहमम्बरम् ॥ २० ॥
अहो नाऽहस्कराभावान्निशानैवाऽनिशाकरात् ।
अस्तंगतर्क्षान्नभसः कः कालस्त्वेष नेक्ष्यते ॥ २१ ॥
ब्रह्माण्डंकिमकाण्डे वै लयमेष्यतितत्कथम् । परापतन्तिनाद्यापिपारावाराइतस्ततः
स्वाहास्वधावषट्कारवर्जितेजगतीतले । पञ्चयज्ञक्रियालोपाच्चकम्पे भुवनत्रयम् ॥
सूर्योदयात्प्रवर्तन्ते यज्ञाद्याःसकलाःक्रियाः । ताभिर्यज्ञभुजांतृप्तिःसवितातत्रकारणम्
चित्रगुप्तादयःसर्वे कालंजानन्तिसूर्यतः । स्थितिसर्गविसर्गाणांकारणं केवलं रविः

तत्सूर्यस्य गतिस्तम्भात् स्तम्भितं भुवनत्रयम् ।
यद्यत्र तत्स्थितं तत्र चित्रन्यस्तमिवाखिलम् ॥ २६ ॥
एकतस्तिमिरान्नैशादेकतस्तुदिवातपात् । बहूनांप्रलयोजातः कान्दिशीकमभूज्जगत्
इतिव्याकुलितेलोके सुरासुरनरोरगे । आःकिमेतदकाण्डेभूद्दुरुदुर्दुद्रुवुः प्रजाः ॥ २८
ततःसर्वेसमालोक्य ब्रह्माणंशरणंययुः । स्तुवन्तोविविधैःस्तोत्रै रक्षरक्षेतिचाब्रुवन्
देवा ऊचुः
नमोहिरण्यगर्भाय ब्रह्मणेब्रह्मरूपिणे । अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृताय च ॥
यन्नदेवाविजानन्ति मनोयत्रापिकुण्ठितम् । न यत्रवाक्प्रसरति नमस्तस्मैचिदात्मने
योगिनोयंहृदाकाशे प्रणिधानेननिश्चलाः । ज्योतीरूपंप्रपश्यन्ति तस्मैश्रीब्रह्मणेनमः
कालात्परायकालाय स्वेच्छयापुरुषाय च । गुणत्रयस्वरूपाय! नमः प्रकृतिरूपिणे
विष्णवेसत्त्वरूपाय रजोरूपायवेधसे । तमसेरुद्ररूपाय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥
नमोबुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहंकृतयेनमः । पञ्चतन्मात्ररूपाय पञ्चकर्मेन्द्रियात्मने ॥
नमोमनःस्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने । क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने
नमोब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिनेनमः । अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः ॥ ३७
अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतयेनमः । समस्तभक्तकृपयास्वेच्छाविष्कृतविग्रह !॥
तवनिःश्वसितंवेदास्तवस्वेदोखिलंजगत् । विश्वाभूतानितेपादःशीर्ष्णोद्यौःसमवर्तत
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः ।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोःसूर्यस्तव प्रभो !॥ ४० ॥
त्वमेव सर्वं त्वयि देव ! सर्वं स्तोता स्तुतिः स्तव्य इह त्वमेव ।
ईशात्वयावास्यमिदं हि सर्वं नमोस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ४१ ॥
इतिस्तुत्वाविधिंदेवानिपेतुर्दण्डवत् क्षितौ । परितुष्टस्तदाब्रह्माप्रत्युवाचदिवौकसः
ब्रह्मोवाच
यथार्थयाऽनया स्तुत्या तुष्टोऽस्मि प्रणताःसुराः ।
उत्तिष्ठत प्रसन्नोऽस्मि वृणुध्वं वरमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

यःस्तोष्यत्यनया स्तुत्या श्रद्धावान् प्रत्यहं शुचिः ।
मां वा हरं वा विष्णुं वा तस्य तुष्टाः सदा वयम् ॥ ४४ ॥
दास्यामः सकलान् कामान् पुत्रान्पौत्रान्पशून्वसु ।
सौभाग्यमायुरारोग्यं निर्भरत्वं रणे जयम् ॥ ४५ ॥
ऐहिकामुष्मिकान्भोगानपवर्गंतथाऽक्षयम् । यद्यदिष्टतमंतस्य तत्तत्सर्वं भविष्यति
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपठितव्यः स्तवोत्तमः । अभीष्टदइतिख्यातःस्तवोऽयंसर्वसिद्धिदः
पुनःप्रोवाच तान्वेधाः प्रणिपत्योत्थितान्सुरान् ।
स्वस्थास्तिष्ठति भो यूयं किमत्रापि समाकुलाः ॥ ४८ ॥
एतेवेदामूर्त्तिधराइमाविद्यास्तथाखिलाः । सदक्षिणा अमीयज्ञाःसत्यंधर्मस्तपोदमः
ब्रह्मचर्यमिदंचैषाकरुणाभारती त्वियम् । श्रुतिस्मृतीतिहासार्थचरितार्थाअमीजनाः
नेह क्रोधो न मात्सर्यं लोभः कामोऽधृतिर्भयम् ।
हिंसा कुटिलता गर्वो निन्दासूयाऽशुचिःक्वचित् ॥ ५१ ॥
ये ब्राह्मणा ब्रह्मरतास्तपोनिष्ठास्तपोधनाः ।
मासोपवासषण्मासचातुर्मास्यादिसद्व्रताः ॥ ५२ ॥
पातिव्रत्यरतानार्यो ये चान्ये ब्रह्मचारिणः । ते चामीपश्यतसुरायेषण्ढाःपरयोषिति
मातापित्रोरमी भक्ता अमीगोग्रहणे हताः । व्रतेदानेजपेयज्ञे स्वाध्याये द्विजतर्पणे
तीर्थेतपस्युपकृतौ सदाचारादिकर्मणि । फलाभिलाषिणी बुद्धिर्न येषान्तेजनाअमी
गायत्रीजापनिरता अग्निहोत्रपरायणाः । द्विमुखीगोप्रदातारः कपिलादानतत्पराः
निःस्पृहा सोमपा ये वै द्विजपादोदपाश्चये । मृताःसारस्वतेतार्थेद्विजशुश्रूषकाश्च ये
प्रतिग्रहसमर्था हि ये प्रतिग्रहवर्जिताः । त एते मत्प्रिया विप्रास्त्यक्ततीर्थप्रतिग्रहाः
प्रयागे माघमासो यैरुषःस्नातोऽमलात्मभिः । मकरस्थे रवौशुद्धास्तइमे सूर्यवर्चसः
वाराणस्यां पाञ्चनदे त्र्यहं स्नातास्तु कार्त्तिके।
अमी ते तु शुद्धवपुषः पुण्यभाजोतिनिर्मलाः ॥ ६० ॥
स्नात्वा तु मणिकर्णिक्यां प्रीणिता ब्राह्मणा धनैः ।

त एते सर्वभोगाढ्याः कल्पं स्थास्यन्ति मत्पुरे ॥ ६१ ॥
ततःकाशीं समासाद्य तेनपुण्येननोदिताः । विश्वेश्वरप्रसादेन मोक्षमेष्यन्त्यसंशयम्
अविमुक्ते कृतं कर्म यदल्पमपि मानवैः । श्रेयोरूपं तद्विपाको मोक्षं जन्मान्तरेष्वपि
अहोवैश्वेश्वरे क्षेत्रे मरणादपि नो भयम् । यत्रसर्वेप्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम्
ब्राह्मणेभ्यःकुरुक्षेत्रे यैर्दत्तं वसुनिर्मलम् । निर्मलाङ्गास्तएतेवै तिष्ठन्ति मम सन्निधौ
पितामहं समासाद्य गयायां यैःपितामहाः । तर्पिता ब्राह्मणमुखे तेषामेते पितामहाः
न स्नानेन न दानेन न जपेन न पूजया । मल्लोकःप्राप्यते देवाः प्राप्यतेद्विजतर्पणात्
सोपस्कराणि वेश्मानि मुसलोलूखलादिभिः ।
यैर्दत्तानि सशय्यानि तेषां हर्म्याण्यमूनि वै ॥ ६८ ॥
ब्रह्मशालां कारयन्ति वेदमध्यापयन्ति च । विद्यादानञ्चयेकुर्युः पुराणंश्रावयन्तिच
पुराणानि च ये दद्युःपुस्तकानि ददत्यपि । धर्मशास्त्राणियेदद्युस्तेषांवासोऽत्रमेपुरे
यज्ञार्थञ्च विवाहार्थं व्रतार्थं ब्राह्मणाय वै । अखण्डं वसु ये दद्युस्तेऽत्रस्युर्वसुवर्चसः
आरोग्यशालां यःकुर्याद्वैद्यपोषणतत्परः । आकल्पमत्रवसति सर्वभोगसमन्वितः
मुक्तीकुर्वन्ति तीर्थानि ये चतुष्टावरोधतः । ममावरोधे ते मान्या औरसास्तनयाइव
विष्णोर्वा मम वा शम्भोर्ब्राह्मणा एव सुप्रियाः ।
तेषां मूर्त्या वयं साक्षाद्विचरामो महीतले ॥ ७४ ॥
ब्राह्मणाश्चैवगावश्च कुलमेकंद्विधाकृतम् । एकत्रमन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्रतिष्ठति
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्मितं सार्वभौमिकम् ।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ७६ ॥
गावःपवित्रमतुलं गावोमङ्गलमुत्तमम् । यासां खुरोत्थितोरेणुर्गङ्गावारिसमो भवेत्
शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि खुराग्रे सर्वपर्वताः । शृङ्गयोरन्तरे यस्याःसाक्षाद्गौरी महेश्वरी
दीयमानाञ्च गां दृष्ट्वा नृत्यन्तिप्रपितामहाः । प्रीयन्तेऋषयःसर्वे तुष्यामो दैवतैः सह
रोरूयन्ते च पापानि दारिद्र्यं व्याधिभिः सह ।
धात्र्यः सर्वस्य लोकस्य गावो मातेव सर्वथा ॥ ८० ॥

गवां स्तुत्वा नमस्कृत्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ८१ ॥
या लक्ष्मीःसर्वभूतानां यादेवेषु व्यवस्थिता । धेनुरूपेणसादेवी मम पापं व्यपोहतु
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा चैव विभावसोः ।
स्वधा या पितृमुख्यानां सा धेनुर्वरदा सदा ॥ ८३ ॥
गोमयंयमुनासाक्षाद्गोमूत्रं नर्मदा शुभा । गङ्गाक्षीरंतुयासां वै किं पवित्रमतः परम्
गवामङ्गेषुतिष्ठन्ति भुवनानिचतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च
इतिमन्त्रंसमुच्चार्य धेनूर्वा धेनुमेववा । योदद्याद् द्विजवर्याय ससर्वेभ्यो विशिष्यते
मयाच विष्णुनासार्द्धं शिवेनच महर्षिभिः । विचार्यगोगुणान्नित्यं प्रार्थनेतिविधीयते
गावो मे पुरतःसन्तु गावो मेसन्तुपृष्ठतः । गावोमेहृदयेसन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्
नीराजयति योऽङ्गानि गवां पुच्छेन भाग्यवान् ।
अलक्ष्मीः कलहो रागास्तस्याङ्गाद्यान्ति दूरतः ॥ ८६ ॥
गोभिर्विप्रैश्चवेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः । अलुब्धैर्दानशीलैश्चसप्तभिर्धार्यतेमही
ममलोकात्परोलोकोवैकुण्ठइतिगीयते । तस्योपरिष्टात्कौमार उमालोकस्ततःपरम्
शिवलोकस्तदुपरि गोलोकस्तत्समीपतः ।
गोमातरः सुशीलाद्यास्तत्र सन्ति शिवप्रियाः ॥ ९२ ॥
गवां शुश्रूषका ये च गोप्रदा ये च मानवाः । एषामन्यतमेलोकेते स्युःसर्वसमृद्धयः
यत्र क्षीरवहा नद्योयत्र पायसकर्दमाः । न जरा बाधते यत्र तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा ब्राह्मणाः परिकीर्तिताः । तदुक्ताचारचरणा इतरे नामधारकाः
श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणस्यादेकया विना ॥ ९६ ॥
पुराणहीनाद्धृच्छून्यात्काणान्धावपि तौवरौ ।
श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मपुराणे परिगीयते ॥ ९७ ॥
तद्ब्राह्मणायगौर्देयासर्वत्रसुखमिच्छता । न देयाद्विजमात्रायदातारं सोप्यधोनयेत्

यस्यधर्मेऽस्तिजिज्ञासायस्यपापाद्भयंमहत् । श्रोतव्यानि पुराणानिधर्ममूलानितेनवै
चतुर्दशसुविद्यासुपुराणंदीपउत्तमः । अन्धोऽपिनतदालोकात्संसाराब्धौक्वचित्पतेत्
श्रोतव्यानि पुराणानि वस्तव्यं जाह्नवीतटे ।
तर्पणीया द्विजा नित्यं ममलोकेप्सुभिःसदा ॥ १०१ ॥
इत्युद्देशान्मयाख्याता सत्यलोकव्यवस्थितिः ।
अभयं यद्भयार्तानां न भेतव्यञ्च हेसुराः !॥ १०२ ॥
स्पर्धते मेरुणाविन्ध्यो ब्रध्नाध्वपरिरोधकृत् । तदर्थमागतायूयं तदुपायं दिशामिवः

ब्रह्मोवाच

अस्त्यगस्त्यस्तप्यमानस्तपउग्रंमहातपाः । मैत्रावरुणिराधाय चित्तंविश्वेश्वरेविभौ
अविमुक्ते महाक्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिहेतुके । तारकस्योपदेशार्थंविश्वेशाऽधिष्ठितेस्वयम्
याचध्वं तत्र गत्वा तं स वः कार्यं विधास्यति ।
तेनैकदाऽविता लोका वातापील्वलभक्षणात् ॥ १०६ ॥
अतिमित्रं तत्र तेजो मित्रावरुणजे मुनौ । तदाप्रभृतिलोकेषु कोगस्त्यान्नैवबिभ्यति
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे:वेधास्तेऽपि प्रमुदिताननाः ।
देवाः परस्परं प्रोचुरहोधन्यतमा वयम् ॥ १०८ ॥
प्रसङ्गतोपिद्रष्टव्यौ काशीकाशीपतीशिवौ । अहोअहोभिर्बहुभिःफलितोनोमनोरथः
उत्फुल्लपद्मनयना निर्मिताः सुकृतार्थिनः । तावेवचरणौ धन्यौकाशीमभिप्रयायिनौ
येयं कथा श्रुताऽस्माभिर्वेधसा समुदीरिता ।
तस्याः श्रवणजात्पुण्यात्प्राप्नुमस्त्वद्य काशिकाम् ॥ १११ ॥
एका क्रियाद्व्यर्थकरी प्राप्यते पुण्यगौरवात् ।
एवं वदन्तो हृष्टास्याः सुराः काशीं समाययुः ११२ ॥

व्यास उवाच

इदंपुण्यतमाख्यानं ये श्रोष्यन्तीहमानवाः । विधूय सर्वपापानिपुत्रदारसमन्विताः
इह वंशं परिस्थाप्य भुक्त्वा सर्वसुखानि च ।

सत्यलोके चिरंस्थित्वा ततो यास्यन्ति शाश्वतम् ॥ ११४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे सत्यलोकवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

अगस्त्याश्रमवर्णनम्

सूत उवाच

भगवन् !भूतभव्येश!सर्वज्ञानमहानिधे !। अवाप्यकाशींगीर्वाणैःकिमकारिवदाच्युत
अधीत्येमां कथां दिव्यां न तृप्तिमधियाम्यहम् ।
शेवधिस्तपसां देवैरगस्तिः प्रार्थितः कथम् ॥ २ ॥
कथं विन्ध्योप्यवाप स्वां प्रकृतिं तादृगुन्नतः ।
तव वागमृताम्भोधौ मनो मे स्नातुमुत्सुकम् ॥ ३ ॥
इति कृत्स्नं समाकर्ण्य व्यासः पाराशरो मुनिः ।
श्रद्धावते स्वशिष्याय वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥

पाराशर उवाच

शृणुसूत! महाबुद्धे!भक्तिश्रद्धासमन्वितः । शुकवैशम्पायनाद्याःशृण्वन्त्वेतेचबालकाः
ततोवाराणसीं प्राप्यगीर्वाणाःसमहर्षयः । अविलम्बंप्रथमतोमणिकर्ण्यांम्विधानतः
सचैलमभिमज्ज्याथ कृतसन्ध्यादिसत्क्रियाः ।
सन्तर्प्य तर्प्यादिपितॄन् कुशगन्धतिलोदकैः ॥ ७ ॥
तीर्थवासार्थिनः सर्वान् सन्तर्प्य च पृथक् पृथक् ।
रत्नैर्हिरण्यवासोभिरश्वाभरणधेनुभिः ॥ ८ ॥
विचित्रैश्चतथापात्रैः स्वर्णरौप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्वादुपक्वान्नैःपायसैश्चसशर्करैः

सगोरसैरन्यदानैर्धान्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकर्पूरैस्ताम्बूलैश्चारुचामरैः ॥ १० ॥
सतूलैर्मृदुपर्यङ्कैर्दीपिकादर्पणासनैः । शिविकादासदासीभिर्विमानैः पशुभिर्गृहैः ॥
चित्रध्वजपताकाभिरुल्लोचैश्चन्द्रचारुभिः । वर्षाशनप्रदानैश्च गृहोपस्करसंयुतैः ॥
उपानत्पादुकाभिश्च यतिनश्च तपस्विनः । योग्यैःपटदुकूलैश्च विविधैश्चित्ररल्लकैः ॥
दण्डैःकमण्डलुयुतैरजिनैर्मृगसम्भवैः । कौपीनैरुच्चमञ्चैश्च परिचारककाञ्चनैः ॥१४
मठैर्विद्यार्थिनामन्नैरतिथ्यर्थंमहाधनैः । महापुस्तकसम्भारैर्लेखकानाञ्च जीवनैः ॥१५
बहुधौषधदानैश्च सत्रदानैरनेकशः । ग्रीष्मेप्रपाथद्रविणैर्हेमन्तेऽग्निष्टिकेन्धनैः ॥ १६
छत्राच्छादनिकाद्यर्थै वर्षाकालेचितैर्बहु । रात्रौपाठप्रदीपैश्च पादाभ्यञ्जनकादिभिः ॥
पुराणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालयं धनैः । देवालये नृत्यगीतकरणार्थैरनेकशः ॥१८॥
देवालयसुधाकार्यैर्जीर्णोद्धारैरनेकधा । चित्रलेखनमूल्यैश्च रङ्गमालादिमण्डनैः ॥
नीराजनैर्गुग्गुलुभिर्दशाङ्गादिसुधूपकैः । कर्पूरवर्तिकाद्यैश्च देवाचार्थैरनेकशः ॥२०
पञ्चामृतानां स्नपनैः सुगन्धस्नपनैरपि । देवार्थं मुखवासैश्च देवोद्यानैरनेकशः ॥
महापूजार्थमाल्यादिगुम्फनार्थैस्त्रिकालतः । शङ्खभेरीमृदङ्गादिवाद्यनादैः शिवालये
घण्टागडुककुम्भादिस्नानोपस्करभाजनैः । श्वेतैर्मार्जनवस्त्रैश्च सुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥
जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः । रासक्रीडादि संयुक्तैश्चलनैःस प्रदक्षिणैः
एवमादिभिरुद्दण्डैः क्रियाकाण्डैरनेकशः ।
पञ्चरात्रमुषित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥ २५ ॥
दीनानाथांश्च सन्तर्प्यनत्वाविश्वेश्वरंविभुम् । ब्रह्मचर्यादिनियमैस्तीर्थमेवंप्रसाध्यच
पुनः पुनर्विश्वनाथं दृष्ट्वा स्तुत्वा प्रणम्य च । जग्मुःपरोपकारार्थमगस्तिर्यत्र तिष्ठति
स्वनाम्ना लिङ्गमास्थाप्य कुण्डं कृत्वा तदग्रतः ।
शतरुद्रियसूक्तेन जपन्निश्चलमानसः ॥ २८ ॥
तं दृष्ट्वा दूरतोदेवाद्द्वितीयमिवभास्करम् । ज्वलज्ज्वलनसङ्काशैरङ्गैःसर्वत्रसोज्ज्वलम्
साक्षात्किम्वाडवाग्निर्वामूर्त्यावैतप्यतेतपः । स्थाणुवन्निश्चलतरंनिर्मलंसन्मनोयथा
अथवा सर्वतेजांसि श्रित्वेमां ब्राह्मणीं तनुम् ।

शीलयन्ति परं धाम शान्तं शान्तपदाप्तये ॥ ३१ ॥
तपनस्तप्यतेऽत्यर्थं दहनोपिहि दह्यते । यत्तीव्रतपसाद्यापि चपलाऽचपलाऽभवत् ॥
यस्याश्रमेऽत्र दृश्यन्ते हिंस्रा अपि समन्ततः ।
सत्त्वरूपा अमी सत्त्वास्त्यक्त्वा वैरं स्वभावजम् ॥ ३३ ॥
शुण्डादण्डेन करटिःसिंहं कण्डूयतेऽभयः । अष्टापदाङ्के स्वपितिकेसरीकेसरोद्भटः
सूकरः स्तब्धरोमापि विहायनिजयूथकम् । चरेद्वनशुनांमध्येमुस्तान्यस्तेक्षणोबली
भूदारोपिनभूदारंतथाकुर्याद्यथाऽन्यतः । सर्वालिङ्गमयीकाशी यतस्तद्भीतियन्त्रितः
क्रोडीकृत्य क्रोडपोतंतरक्षुः क्रीडयत्यहो । शार्दूलबालानुत्सार्य शार्दूलीमेणपोतकः
चलत्पुच्छोथ पिबति फेनिलेनाननेन वै । स्वपन्तं लोमशं भल्लं वानरश्चलदङ्गुलिः
यूकां सम्वीक्ष्य वीक्ष्यैव भक्षयेद्दन्तकोटिभिः ।
गोलाङ्गूला रक्तमुखा नीलाङ्गायूथनायकाः ॥ ३६ ॥
जातिस्वभावमात्सर्यंत्यक्त्वैकत्ररमन्ति च । शशाःक्रीडन्तिचवृकैस्तैःपृष्ठलुण्ठनैर्मुहुः
आखुश्चाखुभुजःकर्णं कण्डूयेतचलाननः । मयूरपुच्छपुटगो निद्रात्योतुःसुखाधिकम्
स्वकण्ठंघर्षयत्येव केकिकण्ठे भुजङ्गमः । भुजङ्गमफटापृष्ठे नकुलः स्वकुलोचितम्
वैरं परित्यज्य लुठेदुत्प्लुत्योत्प्लुत्य लीलया ।
आलोक्य मूषकं सर्पश्चरन्तं वदनाग्रतः ॥ ४३ ॥
क्षुधान्धोऽपि न गृह्णाति सोऽपि तस्माद्बिभेति नो ।
प्रसूयमानां हरिणीं दृष्ट्वा कारुण्यपूर्णदृक् ॥ ४४ ॥
तद्दृष्टिपातंमुञ्चन्वैव्याघ्रोदूरंव्रजत्यहो । व्याघ्रीव्याघ्रस्यचरितंमृगीमृगविचेष्टितम्
उभे कथयतोऽन्योन्यं सख्याविव मुदान्विते ॥ ४५ ॥
दृष्ट्वाप्युद्दण्डकोदण्डं शबरं शम्बरोमृगः । धृष्टो न वर्त्मत्यजतिसोपिकण्डूयतेऽपितम्
रोहितोऽरण्यमहिषमुद्घर्षतिनिराकुलः । चमरी शबरीकेशैः संमिमीते स्वबालधिम्
गवयः शल्यकश्चाऽयमुभावेकत्रतिष्ठतः । तीव्रमात्सर्यमुत्सृज्यमुनितेजोनियन्त्रितौ
हुण्डौघमुण्डयुद्धायनसज्जेतेजयैषिणौ । एणशावंशृगालोऽपि मृदुस्पृशतिपाणिना

तृण्वन्ति तृणगुल्मादीञ्छ्वापदास्त्वापदास्पदम् ।
लोकद्वये दुःखदं हि धिक्तन्मांसस्य भक्षणम् ॥ ५० ॥
यः स्वार्थं मांसपचनंकुरुतेपापमोहितः । यावन्त्यस्यतुरोमाणि तावत्सनरकेवसेत्
परप्राणैस्तु ये प्राणान् स्वान्पुष्णन्तिहिदुर्धियः ।
आकल्पं नरकान् भुक्त्वा ते भुज्यन्तेऽत्रतैः पुनः ॥ ५२ ॥
जातुमांसं न भोक्तव्यंप्राणैःकण्ठगतैरपि । भोक्तव्यं तर्हिभोक्तव्यं स्वमांसंनेतरस्यच
चरमेते श्वापदावै मैत्रावरुणिसेवया । येषान्नहिं सनै बुद्धिर्नतु हिंसापरा नराः ॥
बकोपि पल्वले मत्स्यान्नाश्नात्यग्रेचरानपि ।
न महान्तोऽप्यमहतो मत्स्यामत्स्यानदन्ति वै ॥ ५५ ॥
एकतः सर्वमांसानि मत्स्यमांसं तथैकतः ।
स्मृतिःस्मृतेति किन्त्वेभिरतो मत्स्याअहत्यमी ॥ ५६ ॥
श्येनोपि वर्तिकां दृष्ट्वा भवत्येष पराङ्मुखः । चित्रमत्रापिमधुपाभ्रमन्तिमलिनाशयाः
सुचिरंनरकान्भुक्त्वामदिरापानलम्पटा । मधुपा एव जायन्ते भ्रान्तिभाजःपुनःपुनः
अतएव पुराणेषु गाथेति परिगीयते । स्फुटार्थात्र पुराणज्ञैर्ज्ञात्वा तत्त्वं पिनाकिनः
क्व मांसं क्व शिवे भक्तिः क्व मद्यं क्व शिवार्चनम् । मद्यमांसरतानाञ्चदूरेतिष्ठतिशङ्करः
विनाशिवप्रसादंहि भ्रान्तिः कापिननश्यति । अतएवभ्रमन्त्येते भ्रमराःशिववर्जिताः
इत्याश्रमचरान्दृष्ट्वा तिर्यञ्चोपिमुनीनिव । अबोधि विबुधैरित्थंप्रभावक्षेत्रजस्त्वयम्
यतोविश्वेश्वरेणैतेतिर्यञ्चोप्यत्र वासिनः । निधनावसरे मोच्यास्तारकस्योपदेशतः
ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं यो वसेत् कृतनिश्चयः ।
तं तारयति विश्वेशो जीवन्तमथवा मृतम् ॥ ६४ ॥
अविमुक्तरहस्यज्ञामुच्यन्तेज्ञानिनोनराः । अज्ञानिनोपितिर्यञ्चोमुच्यन्त्यगतकिल्बिषाः
इत्याश्चर्यपरादेवा यावद्यान्त्याश्रमं मुनेः । तावत्पक्षिकुलं दृष्ट्वा भृशं मुमुदिरे पुनः ॥
सारसोलक्ष्मणाकण्ठेकण्ठमाधायनिश्चलः । मन्यामहेननिद्रातिध्यायेद्विश्वेश्वरंकिल
कण्डूयमाना वरटा स्वचञ्चुपुटकोटिभिः । हंसं कामयमानं तु वारयेत्पक्षधूननैः

निरुद्ध्यमानाश्चक्रेणचक्रीक्रेङ्कितभाषणैः । वदतीतिकिमत्रापिकामिताकामिनाश्वर
कलकण्ठः किलोत्कण्ठं मञ्जु गुञ्जति कुञ्जगः ।
ध्यानस्थः श्रोष्यति मुनिः पारावत्येति वार्यते ॥ ७० ॥
केकी केकां परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भयात् ।
चकोरश्चन्द्रिकाभोक्ता नक्तव्रतमिवास्थितः ॥ ७१ ॥
पठन्ती सारिकासारं शुकंसम्बोधयत्यहो । अपारावारसंसार सिन्धुपारप्रदः शिवः
कोकिलःकोमलालापैः कलयन् किल काकलीम् ।
कलिकालौ कलयतः काशिस्थाञ्नेति भाषते ॥ ७३ ॥
मृगाणांपक्षिणामित्थंदृष्ट्वाचेष्टांत्रिविष्टपम् । अकाण्डपातसंकष्टंनिनिन्दुस्त्रिदशाबहु
वरमेते पक्षिमृगाः पशवःकाशिवासिनः । येषां न पुनरावृत्तिर्नदेवा न पुनर्भवाः ॥
काशीस्थैः पतितैस्तुल्या न वयं स्वर्गिणःक्वचित् ।
काश्यां पाताद्भयं नास्ति स्वर्गे पाताद्भयं महत् ॥ ७६ ॥
वरं काशीपुरीवासो मासोपवसनादिभिः ।
विचित्रच्छत्रसञ्छायं राज्यं नान्यत्र नीरिपु ॥ ७७ ॥
शशकैर्मशकैःकाश्यांयत्पदंहेलयाप्यते । तत्पदं नाप्यतेऽन्यत्र योगयुक्तयापियोगिभिः
वरं वाराणसीरङ्को निःशङ्को यो यमादपि । नवयंत्रिदशायेषांगिरितोऽपीदृशीदशा
ब्रह्मणोदिवसाष्टांशे पदमैन्द्रं विनश्यति । सलोकपालं सार्कञ्च स चन्द्रग्रहतारकम्
परार्धद्वयनाशेऽपि काशीस्थो यो न नश्यति ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काश्यां श्रेयः समाचरेत् ॥ ८१ ॥
यत्सुखंकाशिवासेऽत्रनतद्ब्रह्माण्डमण्डपे ।अस्तिचेत्तत्कथंसर्वेकाशीवासाभिलाषुकाः
जन्मान्तरसहस्रेषुयत्पुण्यंसमुपार्जितम् । तत्पुण्यपरिवर्तेन काश्यांवासोऽत्रलभ्यते
लब्धोऽपि सिद्धिं नो यायाद्यदि क्रुद्ध्येत्त्रिलोचनः ।
तस्माद्विश्वेश्वरं नित्यं शरण्यं शरणं व्रजेत् ॥ ८४ ॥
र्मार्थकाममोक्षाख्यंपुरुषार्थचतुष्टयम् । अखण्डंहियथाकाश्यांनतथान्यत्रकुत्रचित्

आलस्येनाऽपि यो यायाद् गृहाद्विश्वेश्वरालयम् ।
अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्याच्च पदे पदे ॥ ८९ ॥
यःस्नात्वोत्तरवाहिन्यांयातिविश्वेशदर्शने ।श्रद्धयापरयातस्यश्रेयसोन्तो न विद्यते
स्वर्धुनीदर्शनात्स्पर्शात्स्नानादाचमनादपि। सन्ध्योपासनतोजप्यात्तर्पणादेवपूजनात्
पञ्चतीर्थावलोकाच्च ततोविश्वेश्वरेक्षणात् । श्रद्धास्पर्शनपूजाभ्यां,धूपदीपादिदानतः
प्रदक्षिणैस्तोत्रजपैर्नमस्कारैस्तुनर्तनैः । देवदेवमहादेव! शम्भो! शिवशिवेति च ॥
धूर्जटे! नीलकण्ठेश! पिनाकिञ्छशिशेखर!। त्रिशूलपाणे!विश्वेश!रक्षरक्षेतिभाषणैः
मुक्तिमण्डपिकायाञ्च निमेषार्धोपवेशनात् । तत्रधर्मकथालापात् पुराणश्रवणादपि
नित्यादिकर्मकरणात्तथातिथिसमर्चनैः । परोपकरणाद्यैश्च धर्मस्स्यादुत्तरोत्तरः ॥
शुक्लपक्षे यथा चन्द्रः कलया कलयैधते । एवं काश्यां निवसतां धर्मराशिः पदेपदे

श्रद्धाबीजो विप्रपादाम्बुसिक्तः शाखाविद्यास्ताश्चतस्रो दशापि ।
पुष्पाण्यर्था द्वे फले स्थूलसूक्ष्मे मोक्षःकामो धर्म्मवृक्षोऽयमीड्यः ॥ ९५ ॥
सर्वार्थानामत्र दात्री भवानी सर्वान् कामान्पूरयेदत्र ढुण्ढिः ।
सर्वाञ्जन्तून् मोचयेदन्तकाले विश्वेशोऽत्रश्रोत्रमन्त्रोपदेशात् ॥ ९६ ॥
काश्यां धर्मस्तच्चतुष्पाद्रूपः काश्यामर्थः सोप्यनेकप्रकारः ।
काश्यांकामः सर्वसौख्यैकभूमिः काश्यां श्रेयस्तत्तु किं नात्र यच्च ॥ ९७ ॥
विश्वेश्वरो यत्र न तत्र चित्रं धर्मार्थकामामृतरूपरूपः ।
स्वरूपरूपः स हि विश्वरूपस्तस्मान्न काशीसदृशी त्रिलोकी ॥ ९८ ॥
इतिब्रुवाणा गीर्वाणा ददृशुस्तूटजं मुनेः । होमधूपसुगन्धाढ्यं बटुभिर्बहुभिर्वृतम्

श्यामाकाञ्जलियाच्ञार्थमृषिकन्यानुयायिभिः ।
धृतोपग्रहदर्भास्यैर्मृगशावैरलङ्कृतम् ॥ १०० ॥
सार्द्रवल्कलकौपीनैर्वृक्षशाखावलम्बिभिः ।
बद्धुं विघ्नमृगान् दिक्षु वागुराभिरिवावृतम् ॥ १०१ ॥
पतिव्रताशिरोरत्नलोपामुद्राङ्घ्रिमुद्रया । मुद्रितं वीक्ष्य सन्नेमुःपर्णशालाऽङ्ग

विसर्जितसमाधिश्च धृतकर्णाक्षमालिकम् । अधिष्ठितबृसीपृष्ठं परमेष्ठिवदुत्कटम्
पुरोऽगस्त्यं समालोक्यसर्वे देवाः सवासवाः । प्रहृष्टवदनाः प्रोचुःप्रोच्चैर्जयजयेतिच
मुनिरुत्थाय तान्सर्वानुपावेश्य यथोचितम् ।
आशीर्भिरभिनन्द्याथ प्रपच्छाऽऽगमकारणम् ॥ १०५ ॥

व्यास उवाच

इदं पुण्यतमाख्यानं श्रुत्वाभक्तिसमन्वितः । पठित्वा पाठयित्वाचव्रतश्रद्धावताम्पुरः
विधूयसर्वपापानि ज्ञात्वाऽज्ञात्वा कृतान्यपि । हंसवर्णेन यानेनगच्छेच्छिवपुरंध्रुवम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
ऽगस्त्याश्रमवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

पतिव्रताख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

मुनिपृष्टास्तदा देवा भगवंस्ते किमब्रुवन् । सर्वलोकहितार्थायतदाख्याहि महामुने!

श्रीव्यास उवाच

अगस्तिवचनंश्रुत्वा बहुमानपुरस्सरम् । धिषणाधिपतेरास्यं विबुधाव्यालुलोकिरे

वाक्पतिरुवाच

शृणवगस्तेमहाभाग देवागमनकारणम् । धन्योसिकृतकृत्योसिमान्योसिमहतामपि
प्रत्याश्रमं प्रतिनगं प्रतयरण्यं तपोधनाः । किन्नसन्तिमुनिश्रेष्ठकाचिदन्यैवतेस्थितिः
तपोलक्ष्मीस्त्वयीहाऽस्ति ब्राह्मं तेजस्त्वयि स्थिरम् ।
पुण्यलक्ष्मीस्त्वयि परा त्वय्यौदार्यं मनस्त्वयि ॥ ५ ॥
पतिव्रतेयं कल्याणी लोपामुद्रासधर्मिणी ।

तवाङ्घ्रिच्छायया तुल्या यत्कथा पुण्यकारिणी ॥ ६ ॥
पतिव्रतास्वरुन्धत्या सावित्र्याऽप्यनसूयया ।
शाण्डिल्यया च सत्या च लक्ष्म्या च शतरूपया ॥ ७ ॥
मेनयाचसुनीत्याचसञ्ज्ञयास्वाहयातथा । यथैषा वर्ण्यतेश्रेष्ठानतथान्येति निश्चितम्
भुङ्क्तेभुक्तेत्वयिमुनेतिष्ठतित्वयितिष्ठति । विनिद्रितेच निद्राति प्रथमं प्रतिबुध्यते
अनलङ्कृतमात्मानं तवनो दर्शयेत्क्वचित् । कार्यार्थं प्रोषितेक्वापि सर्वमण्डनवर्जिता
न च ते नामगृह्णीयात्तवायुष्यविवृद्धये । पुरुषान्तरनामापि न गृह्णाति कदाचन ॥
आक्रुष्टाऽपिनचाक्रोशेत्ताडितापिप्रसीदति । इदंकुरुकृतंस्वामिन्मन्यतामितिवक्तिच
आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छति सत्वरम् ।
किमर्थं व्याहृता नाथ! स प्रसादो विधीयताम् ॥ १३ ॥
नचिरं तिष्ठतिद्वारि न द्वारमुपसेवते । अदापितन्त्वयाकिञ्चित्कस्मैचिन्नददात्यपि
पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् । नियमोदकवर्हींषि पत्रपुष्पाक्षतादिकम्
प्रतीक्षमाणावसरं यथाकालोचितं हि यत् । तदुपस्थापयेत्सर्वमनुद्विग्नातिहृष्टवत्
सेवतेभर्त्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् । महाप्रसादइत्युक्त्वा पतिदत्तं प्रतीच्छति
अविभज्य न चाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि । परिचारकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुलेषु च ॥
संयतोपस्करादक्षा हृष्टाव्ययपराङ्मुखी । कुर्यात्त्वयाननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम्
दूरतो वर्जयेदेषा समाजोत्सवदर्शनम् । न गच्छेत्तीर्थयात्रादिविवाहप्रेक्षणादिषु ॥
सुखंसुप्तं सुखासीनं रममाणंयदृच्छया । आन्तरेष्वपिकार्येषुपतिनोत्थापयेत्क्वचित्
स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ।
स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नाता न शुद्धितः ॥
सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षतेऽन्यस्य न क्वचित् ।
अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥ २३ ॥
हरिद्रां कुङ्कुमञ्चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकञ्चताम्बूलंमाङ्गल्याभरणं शुभम्
केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम् । भर्त्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूषयेन्न पतिव्रता

नरजक्यानहैतुक्या तथाश्रमणया न च । न च दुर्भगया क्वापि सखित्वं कुरुते सती
भर्तृ विद्वेषिणीं नारीं नैषा सम्भाषते क्वचित् ।
नैकाकिनी क्वचिद् भूयान्न नग्ना स्नाति च क्वचित् ॥ २७ ॥
नोलूखलेन मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि । न यन्त्रके न देहल्यांसतीचोपविशेत्क्वचित्
विना व्यवायसमयं प्रागल्भ्यं न क्वचिच्चरेत् । यत्र यत्र रुचिर्भर्त्तुस्तत्रप्रेमवती सदा
इदमेव व्रतं स्त्रीणामयमेव परो वृषः । इयमेका देवपूजाभर्त्तुर्वाक्यं न लङ्घयेत् ॥
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा ।
सुस्थितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥ ३१ ॥
हृष्टा हृष्टे विषण्णास्या विषण्णास्ये प्रिये सदा ।
एकरूपा भवेत्पुण्या सम्पत्सु च विपत्सु च ॥ ३२ ॥
सर्पिर्लवणतैलादिक्षयेऽपि च पतिव्रता । पतिं नास्तीतिनब्रूयादायासेषु न योजयेत्
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।
शङ्करादपि विष्णोर्वा पतिरेकोऽधिकः स्त्रियः ॥ ३४ ॥
व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् । आयुष्यं हरतेभर्त्तुर्मृता निरयमृच्छति
उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारीक्रोधतत्परा । सरमाजायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ॥
स्त्रीणां हि परमश्चैको नियमःसमुदाहृतः । अभ्यर्च्यचरणौभर्त्तुर्भोक्तव्यंकृतनिश्चयम्
उच्चासनं न सेवेत न व्रजेत्परवेश्मसु । न त्रपाकरवाक्यानि वक्तव्यानि कदाचन ॥
अपवादो न वक्तव्यः कलहं दूरतस्त्यजेत् ।
गुरूणां सन्निधौ क्वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वा हसेत् ॥ ३६ ॥
या भर्त्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः । उलूकी जायतेक्रूरा वृक्षकोटरशायिनी
ताडिता ताडितुं चेच्छेत्सा व्याघ्री वृषदंशिका ।
कटाक्षयति याऽन्यं वै केकराक्षी तु सा भवेत् ॥ ४१ ॥
याभर्त्तारंपरित्यज्यमिष्टमश्नातिकेवलम् । ग्रामेवासूकरीभूयाद्वल्गुर्वापिस्वविड्भुजा
यात्वंकृत्वाप्रियं ब्रूते मूका सा जायते खलु । या सपत्नीं सदेर्ष्येतदुर्भगासापुनःपुनः

दृष्टिं विलुप्यभर्तुर्याकश्चिदन्यंसमीक्षते । काणाच विमुखाचापिकुरूपाचापिजायते
बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरिताचजलाशनैः । ताम्बूलैर्व्यजनैश्चैवपादसंवाहनादिभिः
तथैवचाटुवचनैः खेदसन्नोदनैः परैः । या प्रियं प्रीणयेत्प्रीतात्रिलोकी प्रीणिता तया
मितं ददाति हिपितामितंभ्रातामितं सुतः । अमितस्यहिदातारं भर्तारंपूजयेत्सदा
भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च । तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकंसमर्चयेत्

जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत् ।
भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ॥ ४९ ॥
अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्यो विधवा त्यक्तमङ्गला ।
विधवा दर्शनात्सिद्धिः क्वापि जातु न जायते ॥ ५० ॥

विहायमातरञ्चैकांसर्वामङ्गलवर्जिताम् । तदाशिषमपि प्राज्ञस्त्यजेदाशाविषोपमाम्
कन्याविवाहसमयेवाचयेयुरितिद्विजाः । भर्तुः सहचरीभूयाज्जीवतोऽजीवतोऽपिवा

भर्त्ता सदाऽनुयातव्यो देहवच्छायया स्त्रिया ।
चन्द्रमाज्योत्स्नया यद्वद्विद्युत्वान् विद्युता यथा ॥ ५३ ॥

अनुव्रजति भर्त्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरतेबिलात् ।
एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पति स्वर्गं नयेत्सती ॥ ५५ ॥

यमदूताः पलायन्ते सतीमालोक्यदूरतः । अपिदुष्कृतकर्माणंसमुत्सृज्य च तत्पतिम्
न तथाविभीमोवह्नेर्नतथाविद्युतोयथा । आपतन्तींसमालोक्य वयं दूताःपतिव्रताम्
तपनस्तप्यतेत्यन्तं दहनोपि च दह्यते । कम्पन्तेसर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः

यावत्स्वलोमसङ्ख्याऽस्ति तावत्कोट्ययुतानि च ।
भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ॥ ५९ ॥
धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः ।
धन्यःस च पतिः श्रीमान्येषां गेहे पतिव्रता ॥ ६० ॥
पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ।

पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥ ६१ ॥
शीलभङ्गेनदुर्वृत्ताः पातयन्तिकुलत्रयम् । पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रचदुःखिताः
पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम् । तत्रेतिभूमिर्मन्येत नात्रभारोस्ति पावनी
बिभ्यत्पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि ।
सोमो गन्धवहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥ ६४ ॥
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ।
अद्य जाड्यविनाशो नो जातास्त्वद्याऽन्यपावनाः ॥ ६५ ॥
गृहेगृहे न किं नार्यो रूपलावण्यगर्विताः । परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यतेस्त्रीपतिव्रता
भार्यामूलंगृहस्थस्यभार्यामूलंसुखस्यच । भार्या धर्मफलावाप्त्यैभार्यासन्तानवृद्धये
परलोकस्त्वयंलोकोजीयतेभार्यया द्वयम् । देवपित्रतिथीज्यादिनाभार्यःकर्मचार्हति
गृहस्थः सहिविज्ञेयोयस्यगेहे पतिव्रता । ग्रसतेऽन्याप्रतिपदं राक्षस्या जरयाथवा
यथा गङ्गाऽवगाहेनशरीरंपावनं भवेत् । तथा पतिव्रता दृष्ट्याशुभया पावनं भवेत्
अनुयाति न भर्त्तारंयदिदैवात्कथञ्चन । तत्रापि शीलंसंरक्ष्यं शीलभङ्गात्पतत्यधः
तद्वैगुण्यादपिस्वर्गात्पतिःपतति नान्यथा । तस्याःपिताचमाताचभ्रातृवर्गस्तथैवच
पत्यौमृतेचयायोषिद्वैधव्यंपालयेत्क्वचित् । सापुनःप्राप्यभर्त्तारंस्वर्गभोगान्समश्नुते
विधवाकबरीबन्धो भर्तृबन्धाय जायते । शिरसोवपनं तस्मात्कार्यंविधवयासदा
एकाहारः सदाकार्यो नद्वितीयः कदाचन । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा पक्षव्रतमथापिवा
मासोपवासंवाकुर्याच्चान्द्रायणमथापिवा । कृच्छ्रंपराकं वा कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा
यवान्नैर्वाफलाहारैःशाकाहारैः पयोव्रतैः । प्राणयात्रांप्रकुर्वीतयावत्प्राणः स्वयंव्रजेत्
पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ।
तस्माद्भूशयनं कार्यं पतिसौख्यसमीहया ॥ ७८ ॥
न चाङ्गोद्वर्तनंकार्यंस्त्रियाविधवया क्वचित् । गन्धद्रव्यस्यसंयोगोनैवकार्यस्तयापुनः
तर्पणंप्रत्यहं कार्यंभर्तुः कुशतिलोदकैः । तत्पितुस्तत्पितुश्चापिनामगोत्रादिपूर्वकम्
विष्णोस्तु पूजनं कार्यं पतिबुद्ध्या न चान्यथा ।

पतिमेव सदा ध्यायेद्विष्णुरूपधरं हरिम् ॥ ८१ ॥
यद्यदिष्टतमंलोके यच्चपत्युःसमीहितम् । तत्तद्गुणवतेदेयं पतिप्रीणनकाम्यया
वैशाखे कार्त्तिकेमाघेविशेषनियमांश्चरेत् । स्नानंदानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहंमुहुः
वैशाखेजलकुम्भाश्चकार्त्तिकेघृतदीपकाः । माघेधान्यतिलोत्सर्गःस्वर्गलोकेविशिष्यते
प्रपाकार्या चवैशाखे देवेदेयागलन्तिका । उपानद्व्यजनंछत्रं सूक्ष्मवासांसिचन्दनम्
सकर्पूरश्चताम्बूलं पुष्पदानं तथैव च । जलपात्राण्यनेकानितथा पुष्पगृहाणि च ॥
पानानि च विचित्राणि द्राक्षारम्भाफलानिच ।
देयानि द्विजमुख्येभ्यः पतिर्मे प्रीयतामिति ॥ ८७ ॥
ऊर्जे यवान्नमश्नायादेकान्नमथवा पुनः । वृन्ताकं सूरणञ्चैव शुकशिम्बीं च वर्जयेत्
कार्त्तिके वर्जयेत्तैलं कार्त्तिके वर्जयेन् मधु ।
कार्त्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्त्तिके चापि सन्धितम् ॥ ८६ ॥
कार्त्तिकेमौननियमे घण्टाञ्चारुप्रदापयेत् । पत्रभोजीकांस्यपात्रं घृतपूर्णंप्रयच्छति
भूमिशय्याव्रतेदेया शय्याश्लक्ष्णा सतूलिका । फलत्यागेफलंदेयं रसत्यागेचतद्रसम्
धान्यत्यागे च तद्धान्यमथवा शालयः स्मृताः ।
धेनूर्दद्यात्प्रयत्नेन सालङ्काराः सकाञ्चनाः ॥ ६२ ॥
एकतः सर्वदानानिदीपदानं तथैकतः । कार्त्तिके दीपदानस्यकलां नार्हन्तिषोडशीम्
किञ्चिदभ्युदिते सूर्ये माघस्नानं समाचरेत् ।
यथाशक्त्या च नियमान् माघस्नायी समाचरेत् ॥ ६४ ॥
पक्वान्नैर्भोजयेद्विप्रान् यतिनोऽपि तपस्विनः ।
लड्डुकैः फेणिकाभिश्च वटकेण्डरिकादिभिः ॥ ६५ ॥
घृतपक्वैः समरिचैः शुचिकर्पूरवासितैः । गर्भेशर्करयापूर्णैर्नेत्रानन्दैः सुगन्धिभिः ॥
शुष्केन्धनानांभारांश्चदद्याच्छीतापनुत्तये । कञ्चुकन्तूलगर्भञ्चतूलिकांसूपवीतिकाम्
मञ्जिष्ठारक्तवासांसि तथातूलवतींपटीम् । जातीफललवङ्गैश्च ताम्बूलानिबहून्यपि
कम्बलानि विचित्राणि निर्वातानि गृहाणि च ।

मृदुलाः पादरक्षाश्च सुगन्ध्युद्वर्त्तनानि च ॥ ९६ ॥
घृतकम्बलपूजाभिर्महास्नानपुरः सरम् । कृष्णागुरुप्रभृतिभिर्गर्भागारे प्रधूपनैः ॥
स्थूलवर्तिप्रदीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा । भर्तृस्वरूपोभगवान् प्रीयतामितिचोच्चरेत्
एवंविधैश्चविधवा विविधैर्नियमैर्व्रतैः । वैशाखान्कार्त्तिकान्माघानेवमेवातिवाहयेत्
नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि । कञ्चुकन्नपरीदध्याद्वासोनविकृतन्न्यसेत्
अपृष्ट्वा तुसुतान्किञ्चिन्नकुर्याद्भर्तृ तत्परा । एवं चर्यापरानित्यं विधवापि शुभा मता
एवंधर्मसमायुक्ताविधवापिपतिव्रता । पतिलोकानवाप्नोतिन भवेत्कापिदुःखभाक्
न गङ्गयातया भेदो या नारी पतिदेवता । उमाशिवसमासाक्षात्तस्मात्तांपूजयेद्बुधः

वृहस्पतिरुवाच

गङ्गास्नानफलंत्वेतद्यज्जातं तव दर्शनम् । लोपामुद्रे ! महामातर्भर्तृपादाम्बुजेक्षणे !
इति स्तुत्वा महाभागां राजपुत्रीं पतिव्रताम् ।
प्रणम्य च गुरुः प्राह मुनिं सर्वार्थकोविदः १०८ ॥
प्रणवस्त्वंश्रुतिरियंक्षमैषात्वंस्वयंतपः । सत्क्रियेयंफलंत्वं हि धन्योसीतिमहामुने
इदं पातिव्रतं तेजो ब्रह्मतेजोभवान्परम् । तत्राप्येतत्तपस्तेजः किमसाध्यतमं तव ॥
तवनाविदितं किञ्चित्तथापि च वदाम्यहम् । यदर्थमागतादेवाऽस्तन्मुनेऽत्रनिशामय
अयं शतमखः श्रीमान् वृत्रहा कुलिशायुधः ।
सिद्ध्यष्टकं हि यद् द्वारि दृक्प्रसादं समीक्षते ॥ ११२ ॥
यस्य पुर्याः परिसरे कामधेनुव्रजश्चरेत् । यत्पौराःकल्पवृक्षाणांनित्यं छायासुशेरते
यद्रथ्यासुच तिष्ठन्ति ते चिन्तामणिकर्कराः । अयमग्निर्जगद्योनिर्धर्मराजस्त्वयं पुनः
निर्ऋतिर्वरुणोवायुःश्रीदरुद्रादयस्त्वमी । आराध्यन्तेचचारित्रैःसर्वकामार्थमीश्वराः
समभ्यर्थयितारोऽमी त्वं याच्यस्तु जगत्कृते ।
वाङ्मात्रोद्यमसाध्यन्तत् तव विश्वोपकारकम् ॥ ११६ ॥
कश्चिच्छैलो विन्ध्यनामा भानुमार्गावरोधकः ।
वर्धितःस्पर्धया मेरोस्तद्वृद्धिं त्वं निवारय ॥ ११७ ॥

ये च स्वभावकठिना ये च मार्गावरोधकाः ।
ये स्पर्धया वृद्धिमन्तस्तद्वृद्धिर्वर्धिताऽशुभा ॥ ११८ ॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यमविचार्यमहामुनिः । क्षणंमुनिःसमाधाय तथेतिप्रत्युवाच ह
साधयिष्यामि वः कार्यं विसर्जेति दिवौकसः ।
पुनश्चिन्तापरो भूत्वाऽगस्तिर्ध्यानपरोऽभवत् ॥ १२० ॥

वेदव्यास उवाच

इमंपतिव्रताऽध्यायंश्रुत्वास्त्रीपुरुषोपिवा । पापकञ्चुकमुत्सृज्यशक्रलोकंप्रयास्यति
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पतिव्रताख्यानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अगस्त्यप्रस्थानवर्णनम्

पाराशर उवाच

ततोध्यानेनविश्वेशमालोक्यसमुनीश्वरः । सूत प्रोवाचतां पुण्यांलोपामुद्रामिदंवचः
अयिपश्यवरारोहे किमेतत्समुपस्थितम् । क तत्कार्यं क चवयंमुनिमार्गानुसारिणः
येनगोत्रभिदागोत्रा विपक्षाहेलया कृताः । भवेत्कुण्ठितसामर्थ्यःसकथं गिरिमात्रके
कल्पवृक्षोऽङ्गणे यस्य कुलिशं यस्य चायुधम् ।
सिद्ध्यष्टकं हि यद्द्वारि स सिद्ध्यै प्रार्थयेद्द्विजम् ॥ ४ ॥
क्रियन्ते व्याकुलाःशैला अहो दावाग्निनाऽपि ये ।
तद्वृद्धिस्तम्भने शक्तिः क गता साऽऽशुशुक्षणेः ॥ ५ ॥
नियन्ता सर्वभूतानांयोसौदण्डधरःप्रभुः । स किं दण्डयितुं नालमेकंतंग्रावमात्रकम्
आदित्या वसवो रुद्रास्तुषिताः समरुद्गणाः ।

विश्वेदेवास्तथा दस्रौ ये चान्येपि दिवौकसः ॥ ७ ॥
येषां दृक्पात्रमात्रेण पतन्ति भुवनान्यपि । ते किं समर्थानोकान्ते!नगवृद्धिनिषेधने
आज्ञातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं सुभाषितम् ।
काशीमुद्दिश्य यद्गीतं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ९ ॥
अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः ।
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति काश्यांनिवसतां सताम् ॥ १० ॥
उपस्थितोऽयं कल्याणि! सोऽन्तरायो महानिह ।
न शक्यते ऽन्यथाकर्तुं विश्वेशो विमुखो यतः ॥ ११ ॥
काशीद्विजाशीर्भिरहो यदाप्ता कस्तां मुमुक्षुर्यदिवा मुमुक्षुः ।
ग्रासं करस्थं स विसृज्य हृद्यं स्वकूर्परं लेढि विमूढचेताः ॥ १२ ॥
अहोजना बालिशवत्किमेतां काशीं त्यजेयुः सुकृतैकराशिम् ।
शालूककन्दः प्रतिमज्जनं किं लभेत तद्वत्सुलभा किमेषा ॥ १३ ॥
भवान्तरावर्जितपुण्यराशिं कृच्छ्रैर्महद्भिर्ह्यवगम्य काशीम् ।
प्राप्यापि किं मूढधियोऽन्यतो वै यियासवो दुर्गतिमुद्धियासवः ॥ १४ ॥
क्व काशिका विश्वपदप्रकाशिका क्व कार्यमन्यत्परितोऽतिदुःखम् ।
तत्पण्डितोन्यत्र कुतः प्रयाति किं जातिकूष्माण्डफलंह्यजास्ये ॥ १५ ॥
काशीं प्रकाशीकृतपुण्यराशिं हा शीघ्रनाशी विसृजेन्नरः किम् ।
नूनं स्वनूनं सुकृतं तदीयं मदीयमेवं विवृणोति चेतः ॥ १६ ॥
नरो न रोगी यदिहाऽविहाय सहायभूतां सकलस्य जन्तोः ।
काशीमनाशीः सुकृतैकराशिमन्यत्र यातुं यततां न चान्यः ॥ १७ ॥
वित्रस्तपापांत्रिदशैर्दुरापां गङ्गा सदापां भवपाशशापाम् ।
शिवाविमुक्तामसृतैकशुक्तिं मुक्ता विमुक्तां न परित्यजति ॥ १८ ॥
हं होकिमंहोनिचिताः प्रलब्धा बंहीयसायासभरेण काशीम् ॥ ।
प्रभूतपुण्यद्रविणैकपण्यां प्राप्याऽपि हित्वा क्व च गन्तुमुद्यताः ॥ १९ ॥

अहो जनानां जडता विहाय काशीं यदन्यत्र नयन्ति चेतः ।
परिस्फुरद्गाङ्गजलाभिरामां कामारिशूलाग्रधृतां लयेपि ॥ २० ॥
रेरे भवे शोकजलैकपूर्णे पापेस्मलोकाः पतिताब्धिमध्ये ।
विद्राणनिद्राणविरोधिपापां काशीं परित्यज्य तरिं किमर्थम् ॥ २१ ॥
न सत्पथेनापि न योगयुक्त्या दानैर्न वा नैव तपोभिरुग्रैः ।
काशीद्विजाशीर्भिरहो सुलभ्या कि वा प्रसादेन च विश्वभर्त्तुः ॥ २२ ॥
धर्मस्तु सम्पत्तिभरैः किलोह्यतेप्यर्थो हि कामैर्बहुदानभोगकैः ।
अन्यत्र सर्वं स च मोक्ष एकः काश्यां न चान्यत्र तथा यथात्र ॥ २३ ॥
क्षेत्रं पवित्रं हि यथाऽविमुक्तं नान्यत्तथा यच्छ्रुतिभिः प्रयुक्तम् ।
न धर्मशास्त्रैर्न च तैः पुराणैस्तस्माच्छरण्यं हि सदाऽविमुक्तम् ॥ २४ ॥
स होवाचेति जाबालिरारुणेऽसिरिडा मता ।
वरणा पिङ्गला नाडी तदन्तस्त्वविमुक्तकम् ॥ २५ ॥
सासुषुम्णापरानाडी त्रयंवाराणसीत्वसौ । तदत्रोत्क्रमणेसर्वजन्तूनां हि श्रुतौहरः
तारकं ब्रह्म व्याचष्टे तेन ब्रह्मभवन्ति हि । एवं श्लोको भवत्येष आहुर्वैवेदवादिनः ॥
भगवानन्तकालेऽत्र तारकस्योपदेशतः । अविमुक्तेस्थिताञ्जतून्मोचयेन्नात्र संशयः ॥
नाविमुक्तसमं क्षेत्रं नाविमुक्तसमागतिः । नाविमुक्तसमंलिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः
अविमुक्तं परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते रतिम् ।
मुक्ति करतलान्मुक्त्वा सोऽन्यां सिद्धिं गवेषयेत् ॥ ३० ॥
इत्थं सुनिश्चित्य मुनिर्महात्मा क्षेत्रप्रभावं श्रुतितः पुराणात् ।
श्रीविश्वनाथेन समं न लिङ्गं पुरी न काशीसदृशी त्रिकोट्याम् ॥ ३१ ॥
श्रीकालराजञ्च ततः प्रणम्य विज्ञापयामास मुनीशवर्यः ।
आपृच्छनायाहमिहागतोस्मि श्रीकाशिपुर्यास्तु यतः प्रभुस्त्वम् ॥ ३२ ॥
हा कालराजप्रतिभूतमत्र प्रत्यष्टमिप्रत्यवनीसुतार्कम् ।
नाराधयेमूलफलप्रसूनैः किं मय्यनागस्यपराधदृक्स्याः ॥ ३३ ॥

हा कालभैरव! भवानभितोभयार्तान्माभैष्ट चेतिभणनैःस्वकरं प्रसार्य।
मूर्ति विधाय विकटां कटुपापभोक्त्रीं वाराणसीस्थितजनान्परिपातिकिं न
हे यक्षराज!रजनीकरचारुमूर्ते! श्रीपूर्णभद्रसुतनायकदण्डपाणे !।
त्वंवै तपोजनितदुःखमवैषि सर्वं किं मां बहिर्नयसिकाशिनिवासिरक्षिन् ॥
त्वमन्नदस्त्वं किल जीवदाता त्वं ज्ञानदस्त्वं किलमोक्षदोऽपि ।
त्वमन्त्यभूषांकुरुषे जनानां जटाकलापैरुरगेन्द्रहारैः ॥ ३६ ॥
गणौत्वदीयौकिल सम्भ्रमोद्भ्रमावत्रस्थवृत्तान्तविचारकोविदौ ।
सम्भ्रान्तिमुत्पाद्यपरामसाधून् क्षेत्रात्क्षणं दूरयतस्त्वमुष्मात् ॥ ३७ ॥
शृणु प्रभो!ढुण्ढिविनायकस्त्वं वाचं मदीयां तु रटाम्यनाथवत् ।
त्वत्स्थाः समस्ताः किलविघ्नपूगाः किमत्र दुर्वृत्तवदास्थितोऽहम् ॥ ३८ ॥
शृण्वन्त्वमी पञ्चविनायकाश्च चिन्तामणिश्चापि कपर्दिनामा ।
आशागजाख्यौ च विनायकौ तौ शृणोत्वसौसिद्धि विनायकश्च ॥ ३९ ॥
परापवादो न मया किलोक्तः परापकारोपि मयाकृतो न ।
परस्वबुद्धिः परदारबुद्धिः कृता मया नात्र क एष पाकः ॥ ४० ॥
गङ्गात्रिकालंपरिसेविता मया श्रीविश्वनाथोपि सदा विलोकितः ।
यात्राः कृतास्ताः प्रतिपर्व सर्वतः कोयं विपाको मम विघ्नहेतुः ॥ ४१ ॥
मातर्विशालाक्षि! भवानि! मङ्गले! ज्येष्ठे! शिसौभाग्यविधानसुन्दरि! ।
विश्वे!विधे! विश्वभुजे! नमोऽस्तुते श्रीचित्रघण्टे! विकटे! च दुर्गिके !॥ ४२
साक्षिण्य एताः किल काशिदेवताः शृण्वन्तु नस्वार्थमहं व्रजाम्यतः ।
अभ्यर्थितो देवगणैःकरोमि किं परोपकाराय न किं विधीयते ॥ ४३ ॥
दधीचिरस्थीनि न किं पुरा ददौ जगत्त्रयं किं न ददेऽर्थिने बलिः ।
दत्तःस्म किं नो मधुकैटभौ शिरो बभूव तार्क्ष्योऽपि च विष्णुवाहनम् ॥४४
आपृच्छ्य सर्वान् समुनीन् मुनीश्वरः सबालवृद्धानपि तत्र वासिनः ।
तृणानि वृक्षांश्च लताः समस्ताः पुरीं परिक्रम्य च निर्ययौ च ॥ ४५ ॥

प्रोषितस्य परितोऽपि लक्षणैर्नीचवर्त्मपरिवर्तिनोपि वा ।
चन्द्रमौलिमवलोक्य यास्यतः कस्यसिद्धिरिह नो परिस्फुरेत् ॥ ४६ ॥
वरं हि काश्यां तृणवृक्षगुल्मकाश्चरन्ति पापं न चरन्ति नान्यतः ।
वयंचराणां प्रथमा धिगस्तु नो वाराणसीं हाऽद्य विहाय गच्छतः ॥ ४७ ॥
असिं ह्युपस्पृश्य पुनः पुनर्मुनिः प्रासादमालाः परितोविलोकयन् ।
उवाच नेत्रे सरले प्रपश्यतं काशीं युवां क्व क्व पुरीत्वियं वत ॥ ४८ ॥
स्वैरं हसन्त्वद्य विधाय तालिकां मिथःकरेणापि करं प्रगृह्य ।
सीमा चराभूतगणाव्रजाम्यहं विहाय काशीं सुकृतैकराशिम् ॥ ४६ ॥
इत्थं विलप्य वहुशःस मुनिस्त्वगस्त्यस्तत्क्रौश्चयुग्मवदहो अवलासहायः ।
मूर्च्छामवापमहतीं विरहीव जल्पन् हाकाशि!काशि! पुनरेहिचदेहिदृष्टिम्
स्थित्वा क्षणं शिवशिवेति शिवेतिचोक्त्वा,
यावःप्रियेति कठिनाहि दिवौकसस्ते ।
किं न स्मरेस्त्रिजगतीसुखदानदक्षं त्र्यक्षं प्रहित्यमदनं यदकारि तैस्तु ॥
यावद्व्रजेत्त्रिचतुराणिपदानिखेदात्स्वेदोदविन्दुकणिकाञ्चितभालदेशः ।
प्रत्युद्गमाऽकरणतः किल मे विनाशस्तावद्धराभयभरादिवसं चुकोच ॥५२॥
तपोयानमिवारुह्य निमेषार्धेन वै मुनिः । अग्रे ददर्श तं विन्ध्यं रुद्धाम्बरमथोन्नतम्
चकम्पे चाचलस्तूर्णं दृष्ट्वैवाग्रस्थितं मुनिम् ।
तमगस्त्यं सपत्नीकं वातापील्वलवैरिणम् ॥ ५४ ॥
तपःक्रोधसमुत्थाभ्यांकाशीविरहजन्मना । प्रलयानलवत्तीव्रंज्वलन्तंत्रिभिरग्निभिः
गिरिःखर्वतरोभूत्वाचिविक्षुरवनीमिव । आज्ञाप्रसादःक्रियतांकिङ्करोस्मीतिचाब्रवीत्

अगस्त्य उवाच

विन्ध्य! साधुरसि प्राज्ञ! माञ्च जानासि तत्त्वतः ।
पुनरागमनं चेन्मे तावत् खर्वतरो भव ॥ ५७ ॥
इत्युक्त्वा दक्षिणामाशां सनाथामकरोन्मुनिः ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

नर्मदेश्वराख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

नर्मदेशस्य माहात्म्यं कथयामि मुने! तव । यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंक्षयः
अस्य वाराहकल्पस्य प्रवेशेमुनिपुङ्गवैः । आपृच्छिकासरिच्छ्रेष्ठा वदतांत्वंमृकण्डज

मार्कण्डेय उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे सन्ति नद्यःपरंशतम् । सर्वा अप्यघहारिण्यः सर्वा अपिवृषप्रदाः
सर्वाभ्योपि नदीभ्यश्च श्रेष्ठाः सर्वाः समुद्रगाः ।
ततोऽपि हि महाश्रेष्ठाः सरित्सुसरिदुत्तमाः ॥ ४ ॥
गङ्गा च यमुना चाथ नर्मदा च सरस्वती । चतुष्टयमिदं पुण्यंधुनीषु मुनिपुङ्गवाः ॥
ऋग्वेदमूर्तिर्गङ्गा स्याद्यमुना च यजुर्ध्रुवम् । नर्मदा साममूर्तिस्तुस्यादथर्वासरस्वती
गङ्गा सर्वसरिद्योनिः समुद्रस्यापिपूरणी । गङ्गया नलभेत्साम्यं काचिदत्र सरिद्वरा
किन्तु पूर्वंतपस्तप्त्वा रेवया बहुनेहसम् । वरदानोन्मुखो धाताप्रार्थितश्चेति सत्तम
गङ्गासाम्यं विधे देहि प्रसन्नोसि यदिप्रभो । ब्रह्मणाथततःप्रोक्तानर्मदास्मितपूर्वकम्
यदित्र्यक्षसमत्वं तुलभ्यतेऽन्येनकेनचित् । तदागङ्गासमत्वं चलभ्यतेसरिताऽन्यया
पुरुषोत्तमतुल्यः स्यात्पुरुषोऽन्यो यदि कचित् ।
स्रोतस्विनी तदा साम्यं लभते गङ्गयाऽपरा ॥ ११ ॥
यदि गौरीसमा नारी कचिदन्या भवेदिह ।
अन्या धुनीह स्वधुर्न्यास्तदा साम्यमुपैष्यति ॥ १२ ॥
यदिकशीपुरीतुल्याभवेदन्याकचित्पुरी । तदा स्वर्गतरङ्गिण्याःसाम्यमन्यानदीलभेत्
निशम्येति विधेर्वाक्यं नर्मदासरिदुत्तमा । धातुर्वरं परित्यज्य प्राप्तावाराणसींपुरीम्
सर्वेभ्योऽपि हि पुण्येभ्यः काश्यां लिङ्गप्रतिष्ठितेः ।

अपरा न समुद्दिष्टा कैश्चिच्छ्रेयस्करी क्रिया ॥ १५ ॥
अथ सा नर्मदा पुण्या विधिपूर्वां प्रतिष्ठितिम् ।
व्याधात्पिलिपिलातीर्थे त्रिविष्टपसमीपतः ॥ १६ ॥
ततः शम्भुः प्रसन्नोऽभूत्तस्यैनद्यै शुभात्मने। वरंवृणीष्व सुभगेयत्तुभ्यं रोचतेऽनघे
सरिद्वरानिशम्येतिरेवाप्राहमहेश्वरम् । किं वरेणेह देवेश! भृशं तुच्छेन धूर्जटे !॥१८
निर्द्वन्द्वात्वत्पदद्वन्द्वेभक्तिरस्तुमहेश्वर !। श्रुत्वेतिनितरांतुष्टोरेवागिरमनुत्तमाम् ॥
प्रोवाच च सरिच्छ्रेष्ठे! त्वयोक्तं यत्तथाऽस्तु तत् ।
गृहाण पुण्यनिलये वितरामि वरान्तरम् ॥ २०॥
यावन्त्योदृषदःसन्तितवरोधसिनर्मदे । तावन्त्योलिङ्गरूपिण्योभविष्यन्तिवरान्मम
अन्यं चतेवरंदद्यां तमप्याकर्णयोत्तमम् । दुष्प्रापंयच्च तपसां राशिभिःपरमार्थतः ॥
सद्यः पापहरा गङ्गा सप्ताहेनकलिन्दजा । त्र्यहात्सरस्वतीरेवे त्वं तुदर्शनमात्रतः ॥
अपरं च वरं दद्यां नर्मदे!दर्शनावहे !। भवत्या स्थापितं लिङ्गं नर्मदेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥
यत्तल्लिङ्गंमहापुण्यं मुक्तिं दास्यति शाश्वतीम् ।
अस्य लिङ्गस्य ये भक्तास्तान्दृष्ट्वा सूर्यनन्दनः ॥ २५ ॥
प्रणमिष्यति यत्नेन महश्रेयोऽभिवृद्धये । सन्तिलिङ्गान्यनेकानि काश्यांदेविपदेपदे
परंहिनर्मदेशस्य महिमाकोपि चाद्भुतः । इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ
नर्मदाऽपि प्रहृष्टाऽऽसीत्पावित्र्यं प्राप्य चाद्भुतम्।
स्वदेशं च परिप्राप्ता दृष्टमात्राऽघहारिणी ॥ २८ ।
वाक्यंमृकण्डजमुनेस्तेपिश्रुत्वामुनीश्वराः ।प्रहृष्टचेतसोजाताश्चक्रुःस्वंस्वंततोहितम्

स्कन्द उवाच

नर्मदेशस्यमाहात्म्यंश्रुत्वाभक्तियुतोनरः । पापकञ्चुकमुत्सृज्यप्राप्स्यतिज्ञानमुत्तमम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धे नर्मदेश्वराख्यानंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

निजैश्चरणविन्यासैस्तयासाध्व्या तपोनिधिः ॥ ५८ ॥
गते तस्मिन्मुनिवरेवेपमानस्तदागिरिः । पश्यत्युत्कण्ठमिवचगतश्चेत्साध्वभूत्ततः
अद्य जातःपुनरहं न शप्तो यदगस्तिना । न मया सदृशोधन्य इति मेने स्वं गिरिः ॥
अरुणोऽपि च तत्काले कालज्ञोऽश्वानकालयत् ।
जगत्स्वास्थ्यमवापोच्चैः पूर्ववद्भानुसञ्चरैः ॥ ६१ ॥
अद्य श्वो वा परश्वो वाप्यागमिष्यति वै मुनिः ।
इति चिन्तामहाभारैर्गिरिराक्रान्तवत्स्थितः ॥ ६२ ॥
नाद्यापि मुनिरायाति नाद्यापिगिरिरेधते । यथा खलजनानां हि मनोरथमहीरुहः ॥
विवर्धिषतियो नीचःपरासूयांसमुद्वहन् । दूरे तद्वृद्धिवार्तास्तास्प्राग्वृद्धेरपि संशयः
मनोरथा न सिद्ध्येयुः सिद्धा नश्यन्त्यपि ध्रुवम् ।
खलानां तेन कुशलिविश्वं विश्वेशरक्षितम् ॥ ६५ ॥
विधवानांस्तनायद्वद्धृद्येवविलयन्ति च । उन्नस्योन्नम्यतत्रोच्चैस्तद्वत्खलमनोरथाः
कूलङ्कषायद्वदल्पवर्षेण कन्नदी । खलर्धिरल्पवर्षेण तद्वत्स्यात्स्वकुलङ्कषा ॥
ज्ञायान्यसामर्थ्यं स्वसामर्थ्यं प्रदर्शयेत् । उपहासमवाप्नोति तथैवायमिहाचलः

व्यास उवाच

गोदावरीतटं रम्यं विचरन्नपि वै मुनिः । नतत्याज च तं तापं काशीविरहजं परम्
उदीचीदिक् स्पृशमपि स मुनिर्मातरिश्वनम् ।
प्रसार्य बाहुसंश्लिष्य; काश्याःपृच्छेदनामयम् ॥ ७० ॥
लोपामुद्रेन सामुद्राकापीह जगतीतले । वाराणस्याःप्रदृश्येत तत्कर्तानयतो विधिः
क्वचित्तिष्ठन् क्वचिज्जल्पन् क्वचिद्धावन् क्वचित्स्खलन् ।
क्वचिच्चोपविशंश्चेति बभ्रामेतस्ततो मुनिः ॥ ७२ ॥
ततो व्रजन् ददर्शाऽग्रे पुण्यराशिस्तपोधनः ।
चञ्चच्चन्द्रशताभासां भाग्यवानिव सुश्रियम् ॥ ७३ ॥
विजित्य भानुना भानुं दिवापि समुदित्वराम् ।

निर्वापयन्तीमिव तां स्वचेतस्तापसन्ततिम् ॥ ७४ ॥
तत्रागस्त्यो महालक्ष्मीं ददृशे सुचिरं स्थिताम् ।
रात्रावब्जेषुसङ्कोचोदर्शेष्वब्जःक्वचिद्व्रजेत् । क्षीरोदेमन्दरत्रासात्तदत्राध्युषितामिव
यदारभ्यदधारैनां माधवो मानतःकिल । तदारभ्य स्थितांनूनं सपत्नीर्ष्यावशादिव
त्रैलोक्यं कोलरूपेण त्रासयन्तं महासुरम् । विनिहत्यस्थितांतत्र रम्ये कोलापुरेपुरे
सम्प्राप्याथमहालक्ष्मीं मुनिवर्यःप्रणम्य च । तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिरिष्टदां हृष्टमानसः

अगस्तिरुवाच

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि! श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि! विश्वमातः !।
क्षीरोदजे! कमलकोमलगर्भगौरि! लक्ष्मि!प्रसीद सततं नमतां शरण्ये ॥ ८० ॥
त्वंश्रीरुपेन्द्रसदनेमदनैकमातर्ज्योत्स्नासि चन्द्रमसिचन्द्रमनोहरास्ये !।
सूर्येप्रभाऽसि च जगत्त्रितयेप्रभासि लक्ष्मि! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये !।
त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्तिर्वेधास्त्वयाजगदिदं विविधंविदध्यात् ।
विश्वम्भरोऽपि बिभृयादखिलं भवत्या लक्ष्मि! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये
त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोपि त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि ।
ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या लक्ष्मि! प्रसीद सततं नमतां शरण्ये !॥ ८३
शूरः सएव स गुणी स बुधः स धन्यो मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः ।
एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेपि लोके यत्रापतेत्तव शुभे! करुणाकटाक्षः ॥ ८४ ॥
यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने ।
रत्ने पतत्त्रिणि पशौ शयने धरायां सश्रीकमेव सकले तदिहास्तिनान्यत् ॥ ८५॥
त्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि !।
ाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र श्रीविष्णुपत्नि! कमले! कमलालयेऽपि ॥ ८६ ॥
लक्ष्मीं श्रियञ्च कमलां कमलालयाञ्च पद्मां रमां नलिनयुग्मकराञ्च माञ्च ।
क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिराञ्च विष्णुप्रियामितिसदा जपतां क्व दुःखम् ॥ ८७ ॥
इतिस्तुत्वा भगवतीं महालक्ष्मीं हरिप्रियाम् ।

प्रणनाम सपत्नीकः साष्टाङ्गं दण्डवन्मुनिः ॥ ८८ ॥

श्रीरुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते मित्रावरुणसम्भव !। पतिव्रते! त्वमुत्तिष्ठ लोपामुद्रे! शुभव्रते!
स्तुत्यानया प्रसन्नाहंव्रियतांयद्हृदीप्सितम् । राजपुत्रिमहाभागेत्वमिहोपविशामले

त्वदङ्गलक्षणैरेभिः सुपवित्रैश्च ते व्रतैः ।
निर्वापयितुमिच्छामि दैत्यास्त्रैस्तापितां तनुम् ॥ ९१ ॥
इत्युक्त्वा मुनिपत्नीं तां समालिङ्ग्य हरिप्रिया ।
अलञ्चकार च प्रात्या बहुसौभाग्यमण्डनैः ॥ ९२ ॥

पुनराह मुने जाने तवहृत्तापकारणम् । स चेतनं दुनोत्येव काशीविश्लेषजोऽनलः ॥
यदा सदेवो विश्वेशोमन्दरंगतवान् पुरा । तदाकाशीवियोगेन जातातस्येदृशीदशा
तत्प्रवृत्तिं पुनर्ज्ञातुं ब्रह्माणं केशवं गणान् । गणेश्वरश्च देवांश्च प्रेषयामास शूलधृक

ते च काशीगुणान् सर्वे विचार्य च पुनः पुनः ।
व्रजन्त्यद्यापि न क्वापि तादृगस्ति क्व वा पुरी ॥ ९६ ॥

इति श्रुत्वाथसमुनिः प्रत्युवाच श्रियं ततः । प्रणिपत्यमहाभागोभक्तिगर्भमिदं वचः
यदिदेयो वरो मह्यं वरयोग्योऽस्म्यहं यदि । तदावाराणसीप्राप्तिः पुनरस्त्वेषमे वरः

ये पठिष्यन्ति च स्तोत्रं त्वद्भक्त्या मत्कृतं सदा ।
तेषां कदाचित्सन्तापो माऽस्तु माऽस्तु दरिद्रता ॥ ९९ ॥
माऽस्तु चेष्टवियोगश्च माऽस्तु सम्पत्तिसंक्षयः ।
सर्वत्र विजयश्चाऽस्तु विच्छेदो माऽस्तु सन्ततेः ॥ १०० ॥

श्रीरुवाच

एवमस्तु मुने! सर्वं यत्त्वयापरिभाषितम् । एतत्स्तोत्रस्यपठनंममसान्निध्यकारणम् त्

अलक्ष्मीः कालकर्णी च तद्गेहे न विशेत्कचित् ।
गजाश्वपशुशान्त्यर्थमेतत्स्तोत्रं!सदाजपेत् ॥ १०२ ॥

बालग्रहाभिभूतानांबालानांशान्तिकृत्परम् । भूर्जपत्रेलिखित्वातुबध्नीयात्कण्ठदेशतः

इदं बीजरहस्यं मे रक्षणीयंप्रयत्नतः। श्रद्धाहीने न दातव्यं न देयश्चाशुचौ क्वचित्
अन्यच्च शृणुविप्रेन्द्रभविष्येद्वापरेभवान्। एकोनत्रिंशकेब्रह्मन् सत्यंव्यासोभविष्यति
तदा वाराणसीं प्राप्य सिद्धिं प्राप्स्यस्यभीप्सिताम्।
व्यस्य वेदान् पुराणनि धर्मान्समुपदिश्य च ॥ १०६ ॥
हितञ्च तेवदाम्येकंसाम्प्रतंतत्समाचर। पश्यकिञ्चिदितोगत्वास्कन्दमग्रेस्थितंप्रभुम्
वाराणस्यारहस्यञ्चयथावच्छिवभाषितम्। तवतुष्टिकरंब्रह्मन् कथयिष्यतिषण्मुखः
इति लब्ध्वा वरं सोऽथ महालक्ष्मीं प्रणम्य च।
ययावगस्तिर्यत्रास्ति कुमारः शिखिवाहनः ॥ १०९ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
ऽगस्त्यप्रस्थानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

तीर्थाध्यायवर्णनम्

पाराशर्य उवाच

शृणुसूत महाभाग कथांश्रुतिसहोदराम्। यां वै हृदिनिधायेह पुरुषः पुरुष
ततः श्रीदर्शनानन्दसुधाधाराधुनीं मुनिः। अवगाह्य सपत्नीकः परांमुदमव
वह्निकुण्डसमुद्भूत! सूतनिर्मलमानस। शृणुष्वैकं पुराविद्भिर्भाषितं यत्सुभा
रोपकरणं येषां जागर्तिहृदये सताम्। नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदःस्युः पदे
तीर्थस्नानैर्नसा शुद्धिर्बहुदानैर्न तत्फलम्। तपोभिरुग्रैस्तन्नाप्यमुपकृत्या यदा
परोपकृत्यायोधर्मोधर्मोदानादिसम्भवः। एकत्रतुलितौ धात्रा तत्रपूर्वोऽभवद्गुरुः
परिनिर्मथ्य वाग्जालं निर्णीतमिदमेव हि।
नोपकारात्परो धर्मो नापकारादघं परम् ॥ ७ ॥

देवींपरिजिहीर्षू तौविषमेषुप्रपीडितौ । दिवोऽवतेरतुःक्षिप्रंमायांस्वीकृत्यशाम्बरीम्
धृत्वापारषदीं मूर्त्तिमायातावम्बिकान्तिकम् । तावत्यन्तंसुदुर्वृत्तावतिचञ्चलमानसौ
सर्वज्ञेन परिज्ञातौचाञ्चल्याल्लोचनोद्भवात् । कटाक्षिताथदेवेन दुर्गा दुर्गारिघातिनी
विज्ञाय नेत्रसञ्ज्ञां तु सर्वज्ञार्धशरीरिणी । तेनैवकन्दुकेनाथ युगपन्निजघानतौ ॥
महाबलौमहादेव्या कन्दुकेन समाहतौ । परिभ्रम्य परिभ्रम्य तौ दुष्टौ विनिपेततुः
वृन्तादिव फले पक्के तालादनिललोलिते । दम्भोलिना परिहते शृङ्गेइव महागिरेः
तौनिपात्य महादैत्यावकार्यकरणोद्यतौ । ततः परिणतिं यातो लिङ्गरूपेणकन्दुकः
कन्दुकेश्वरसञ्ज्ञं च तं लिङ्गमभवत्तदा । ज्येष्ठेश्वरसमीपे तु सर्वदुष्टनिवारणम् ॥३७

कन्दुकेशसमुत्पत्तिं यः श्रोष्यति मुदान्वितः ।
पूजयिष्यति यो भक्तस्तस्य दुःखभयं कुतः ॥ ३८ ॥

कन्दुकेश्वरभक्तानां मानवानान्निरेनसाम् । योगक्षेमं सदा कुर्याद्भवानीभयनाशिनी ॥

मृडानी तस्य लिङ्गस्य पूजां कुर्यात्सदैवहि ।
तत्रैव देव्याः सान्निध्यं पार्वत्या भक्तसिद्धिदम् ॥ ४० ॥
कन्दुकेशम्महालिङ्गं काश्यां यैर्न समर्चितम् ।
कथं तेषां भवानीशौ स्यातां सर्वेप्सितप्रदौ ॥ ४१ ॥

द्रष्टव्यं च प्रयत्नेन तल्लिङ्गं कन्दुकेश्वरम् । सर्वोपसर्गसङ्घातविघातकरणं परम् ॥
कन्दुकेश्वरनामापि श्रुत्वावृजिनसन्ततिः । क्षिप्रंक्षयमवाप्नोतितमःप्राप्योष्णगुंयथा

स्कन्द उवाच

संश्टणुष्व महाभागज्येष्ठेश्वरसमीपतः । यद्वृत्तान्तमभूद्विप्रपरमाश्चर्यकृद् ध्रुवम् ॥
दण्डखाते महातीर्थे देवर्षिपितृतृप्तिदे । तप्यमानेषु विप्रेषु निष्कामं परमन्तपः ॥
दैत्यो दुन्दुभिनिर्ह्रादोदुष्टःप्रह्लादमातुलः । देवाःकथंसुजेयाःस्युरित्युपायमचिन्तयत्

किं बलाश्च किमाहाराः किमाधारा हि देवताः ।
विचार्य बहुशो दैत्यस्तत्त्वं विज्ञाय निश्चितम् ॥ ४७ ॥

अवश्यमग्रजन्मानो हेतवोऽत्रविचारतः । ब्राह्मणं हन्तुमसकृत्कृतवानुद्यमं ततः ॥

लिङ्गं वाजसवेयाख्यं तत्राऽस्त्यतिमनोहरम् ।
तस्यसन्दर्शनात्पुंसां वाजपेयफलम्भवेत् ॥ ११ ॥
कण्वेश्वरंशुभंलिङ्गं लिङ्गंकात्यायनेश्वरम् । वामदेवेश्वरं लिङ्गमौतथ्येश्वरमेव च ॥
हारीतेश्वरसञ्ज्ञं च लिङ्गं वै गालवेश्वरम् । कुम्भेलिङ्गंमहापुण्यंतथावैकौसुमेश्वरम्
अग्निवर्णेश्वरं चैव नैध्रुवेश्वरमेव च । वत्सेश्वरं महालिङ्गं पर्णादिश्वरमेव च ॥
सक्तुप्रस्थेश्वरंलिङ्गं कणादेशं तथैव च । अन्यत्तत्रमहालिङ्गं माण्डूकायनिरूपितम्
बाभ्रवेयेश्वरं लिङ्गं शिलावृत्तीश्वरं तथा । च्यवनेश्वरलिङ्गञ्च शालङ्कायनकेश्वरम् ॥
कलिन्दमेश्वरं लिङ्गं लिङ्गमक्रोधनेश्वरम् । लिङ्गं कपोतवृत्तीशंकङ्केशं कुन्तलेश्वरम्
कण्ठेश्वरं कहोलेशं लिङ्गं तुम्बुरुपूजितम् । मतङ्गेशम्मरुत्तेशम्मगधेयेश्वरं तथा ॥
जातूकर्णेश्वरं लिङ्गं जम्बुकेश्वरमेव च । जारुधीशं जलेशञ्च जाल्मेशं जालकेश्वरम्
एवमादीनि लिङ्गानि अयुतार्धानि कुम्भज !।
एतेषां शुभलिङ्गानां ज्येष्ठस्थानेऽतिपावने ॥ २० ॥
स्मरणाद्दर्शनात्स्पर्शादर्चनान्नमनात्स्तुतेः । न जातुजायते जन्तोः कलुषस्यसमुद्भवः

स्कन्द उवाच

एकदा तत्र यद्वृत्तं ज्येष्ठस्थानेमहामुने !। तदहं ते प्रवक्ष्यामिशृणुष्वाऽघविनाशनम्
स्वैरं विहरतस्तत्र ज्येष्ठस्थाने महेशितुः । कौतुकेनैवचिक्रीडशिवाकन्दुकलीलया
उदञ्चन्यञ्चदङ्गानां लाघवं परितन्वती । निःश्वासामोदमुदितभ्रमराकुलितेक्षणा
भ्रश्यद्धम्मिल्लसन्माल्यस्थपुटीकृतभूमिका ।
स्विद्यत्कपोलपत्रालीस्रवदम्बुकणोज्ज्वला ॥ २५ ॥
स्फुटच्चोलांशुकपथनिर्यदङ्गप्रभावृता । उल्लसत्कन्दुकास्फालातिशोणितकराम्बुजा
कन्दुकानुगसद्दृष्टिनर्तितभ्रूलताञ्चला । मृडानी किलखेलन्ती ददृशे जगदम्बिका ॥
अन्तरिक्षचराभ्याञ्चदितिजाभ्यांमनोहरा । कटाक्षिताभ्यामिववैसमुपस्थितमृत्युना
विदलोत्पलसञ्ज्ञाभ्यां दृप्ताभ्यां वरतो विधेः ।
तृणीकृतत्रिजगतीपुरुषाभ्यां स्वदोर्बलात् ॥ २६ ॥

श्रीमदोङ्कारनाथं वा कृत्तिवासेश्वरं किमु । कालेशं वृद्धकालेशं कलशेश्वरमेव च
केदारेशं तु कामेशं चन्द्रेशं वा त्रिलोचनम् । ज्येष्ठेशंजम्बुकेशं वा जैगीषव्येश्वरंतुवा
दशाश्वमेधमीशानं द्रुमिचण्डेशमेव च । दृक्केशं गरुडेशं च गोकर्णेशं गणेश्वरम् ॥
ढुण्ढ्याशागजसिद्धाख्यं धर्मेशं तारकेश्वरम् । नन्दिकेशंनिवासेशंपत्रीशंप्रीतिकेश्वरम्
पर्वतेशं पशुपतिं ब्रह्मेशं मध्यमेश्वरम् । बृहस्पतीश्वरं वाथ विभाण्डेश्वरमेव च ॥
भारभूतेश्वरं किं वा महालक्ष्मीश्वरं तु वा । मरुत्तेशं तु मोक्षेशं गङ्गेशं नर्मदेश्वरम्
मार्कण्डंमणिकर्णीशं रत्नेश्वरमथापिवा । अथवायोगिनीपीठंसाधकस्यैवसिद्धिदम्
यामुनेशं लाङ्गलीशं श्रीमद्विश्वेश्वरंविभुम् । अविमुक्तेश्वरंवाथ विशालाक्षीशमेवच
व्याघ्रेश्वरं वराहेशं व्यासेशं वृषभध्वजम् । वरुणेशं विधीशंवा वसिष्ठेशं शनीश्वरम्
सोमेश्वरं किमिन्द्रेशं स्वर्लीनं सङ्गमेश्वरम् ।
हरिश्चन्द्रेश्वरं किम्वा हरिकेशेश्वरं तु वा ॥ ९५ ॥
त्रिसन्ध्येशं महादेवमुपशान्तिं शिवं तथा । भवानीशंकपर्दीशंकन्दुकेशंमखेश्वरम् ॥
मित्रावरुणसञ्ज्ञं वाकिमेषामाशुपुत्रदम् । क्षणं विचार्य स मुनिरितिविश्वानरःसुधी
आज्ञातं विस्मितं तावत्फलितो मे मनोरथः ।
सिद्धैःसंसेवितं लिङ्गं सर्वसिद्धिकरम्परम् ॥ ९८ ॥
दर्शनात्पर्शनाद्यस्य मनोनिर्वृतिभाग्भवेत् । उद्घाटितं सदैवास्तेस्वर्गद्वारंहि यत्र वै
दिवानिशं पूजनार्थं विज्ञाप्य त्रिदशेश्वरम् । पञ्चमुद्रे महापीठे सिद्धिदे सर्वजन्तुषु
यत्र सा विकटा देवी प्रकटा सिद्धिरूपिणी ।
यत्र स्थितानां भक्तानां साक्षात्सिद्धिविनायकः ॥ १०१ ॥
निर्धूय विघ्नजालानि सर्वाः सिद्धीः प्रयच्छति ।
अविमुक्ते महाक्षेत्रे सिद्धिक्षेत्रं हि तत्परम् ॥ १०२ ॥
यत्र वीरेश्वरं लिङ्गं महागुह्यतमम्मतम् ।
तिलान्तरापि नो काश्यां भूमिर्लिङ्गं विना क्वचित् ॥ १०३ ॥
परंवीरेशसदृशं न लिङ्गं त्वाशु सिद्धिदम् । धर्मदं चार्थदं सम्यक्कामदं मोक्षदं तथा

यथा वीरेश्वरं लिङ्गं काश्यां नान्यत्तथा ध्रुवम् ।
पञ्चस्वरोऽत्रगन्धर्वः परां सिद्धिमगात्पुरा ॥ १०५ ॥
विद्याधरः स्वच्छविद्यो वसुपूर्णश्चयक्षराट् । नृत्यन्तीनिजभावेनपुराह्यत्राप्सरोवरा
सदेहाकोकिलालापा लिङ्गमध्येलयंगता । ऋषिर्वेदशिरा नाम जपन् वै शतरुद्रियम्
मन्त्रज्योतिर्मयेलिङ्गे सशरीरोऽविशत्पुरा । चन्द्रमौलिभरद्वाजावुभौपाशुपतोत्तमौ
वीरेश्वरं समभ्यर्च्य गायमानौ लयं गतौ ।
शङ्खचूडो हि नागेन्द्रः स्वफणामणिभिर्निशि ॥ १०६ ॥
षण्मासात्सिद्धिमगमद्बहुनीराजनैरिह । किन्नरी हंसपद्यत्र भर्त्रावेणुप्रियेण वै ॥
गायन्ती सुस्वरं याता परांनिर्वाणभूमिकाम् ।
असङ्ख्याताः सहस्राणि सिद्धाः सिद्धिमिहागताः ॥ १११ ॥
सिद्धलिङ्गमिहाख्यातं तस्माद्वीरेश्वरम्परम् ॥ ११२ ॥
वीरेश्वरं समाराध्य भ्रष्टराज्यो जयद्रथः । हत्वारिपूनस्खलितं राज्यंप्राप विदेहजः
विदूरथोऽथ नृपतिरपुत्रः पुत्रवानभूत् । वीरेश्वरप्रसादेन मगधाधिपतिर्वशा ॥११४
वसुदत्तोऽत्र च वणिक् सुतां वसुसुतोपमाम् ।
अब्दमभ्यर्च्य वीरेशं रत्नदत्तोप्यवाप्तवान् ॥ ११५ ॥
अहमप्यत्र वीरेशं समाराध्यत्रिकालतः । आशुपुत्रमवाप्स्यामियथाभिलषितंस्त्रिया
इति कृत्वा मतिर्धीरो विप्रोविश्वानरःकृती । चन्द्रकूपजलैःस्नात्वाजग्राह नियमंव्रती
एकाहारो भवन्मासं मासंनक्ताशनोऽभवत् । अयाचिताशनोमासंमासंत्यक्ताशनःपुनः
पयोव्रतोऽभवन्मासं मासंशाकफलाशनः । मासंमुष्टितिलाहारोमासं पानीयभोजनः
पञ्चगव्याशनोमासं मासं चान्द्रायणव्रती । मासं कुशाग्रजलभुङ्मासं श्वसनभक्षणः
अथत्रयोदशेमासि स्नात्वात्रिपथगाम्भसि । प्रत्यूषएववीरेशं यावदायाति संद्विज
तावद्विलोकयाञ्चक्रे मध्येलिङ्गं तपोधनः । विभूतिभूषितं बालमष्टवर्षाकृति शुभ
आकर्णपूर्णनेत्रञ्चसुरक्तदशनच्छदम् । चारुपिङ्गजटामौलिं नग्नं प्रहसिताननम्
शैशवोचितनेपथ्यधारिणं चित्तहारिणम् । पठन्तंश्रुतिसूक्तानिहसन्तञ्चस्वलील

तमालोक्यस्तुतिंचक्रेरोमकञ्चुकितोमुदा । प्रोच्चरद्गद्गदालापोनमोऽस्त्वितिपुनःपुनः

विश्वानर उवाच

एकं ब्रह्मैवाऽद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चित् ।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥ १२६ ॥
एकः कर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो! नानारूपेष्वेकरूपोऽस्यरूपः ।
यद्वत्प्रत्यप्स्वर्क एकोप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ॥ १२७ ॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकायाञ्च रूप्यं नैरःपूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ।
यद्वत्तद्वद्विष्वगेषप्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥ १२८ ॥
तोये शैत्यं दाहकत्वञ्च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥ १२९ ॥
शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्यङ्घ्रिरायासि दूरात् ।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥ १३०
नो वेदस्त्वामीश! साक्षाद्धि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताऽखिलस्य ।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥ १३१ ॥
नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या नो वा रूपंनैव शीलं नदेशः ।
इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान् कामान् पूरयेस्तद्भजे त्वाम् ॥
त्वत्तः सर्वंत्वंहिसर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वञ्च नग्नोऽतिशान्तः ।
त्वं वै वृद्धस्त्वंयुवा त्वञ्च बालस्तत्त्वं यत्किन्नाऽस्यतस्त्वां नतोऽस्मि ॥
स्तुत्वेति भूमौ निपपातविप्रः सदण्डवद्यावदतीवहृष्टः ।
तावत्सबालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेव! वरं वृणीहि ॥ १३४ ॥

तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती ।प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तवप्रभो!

सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वः सर्वप्रदो भवान् ।
याच्ञ्यां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥ १३६ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य ह ।

शुचेः शुचिव्रतस्याशु शुचिस्मित्वाऽब्रवीच्छिशुः ॥ १३७ ॥

बाल उवाच

त्वया शुचे! शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि ।
अचिरेणैव कालेन सभविष्यत्यसंशयः ॥ १३८ ॥
तव पुत्रत्वमेष्यामिशुचिष्मत्यांमहामते । ख्यातो गृहपतिर्नाम्नाशुचिःसर्वामरप्रियः
अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् । अब्दंत्रिकालपठनात्कामदंशिवसन्निधौ
एतत्स्तोत्रस्य पठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम् । सर्वशान्तिकरं चापि सर्वापत्परिनाशनम्
स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकं नाऽत्र संशयः ।
प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिङ्गमभ्यर्च्य शाम्भवम् ॥ १४२ ॥
वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान्भवेत् । वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमैर्युतः
यः पठेत्स्नानसमये सलभेत्सकलं फलम् । कार्तिकस्यतुमासस्यप्रसादादहमव्ययः
तव पुत्रत्वमेष्यामि यस्त्वन्यस्तत्पठिष्यति ।
अभिलाषाष्टकमिदं न देयं यस्य कस्यचित् ॥ १४५ ॥
गोपनीयंप्रयत्नेन महावन्ध्या प्रसूतिकृत् । स्त्रियावापुरुषेणापिनियमाल्लिङ्गसन्निधौ
अब्दं जप्तमिदंस्तोत्रं पुत्रदं नात्रसंशयः । इत्युक्त्वान्तर्दधेबालः सोऽपिविप्रोगृहंगतः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे इन्द्राग्निलोकवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

वह्निलोकवर्णनेविश्वानरपुत्राख्यानवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

शृणु सुश्रोणिसुभगे ! वैश्वानरसमुद्भवम् । पुण्यशीलसुशीलाभ्यां यथोक्तंशिवशर्मणे
अथ कालेन तद्योषिदन्तर्वत्नीबभूवह । विधिवद्विहिते तेन गर्भाधानाख्यकर्मणि
ततःपुंसवनंतेनस्पन्दनात्प्राग्विपश्चिता । गृह्योक्तविधिनासम्यक्कृतंपुंस्त्वविवृद्धये
सीमन्तोथाष्टमे मासिगर्भरूपसमृद्धिकृत् । सुखप्रसवसिद्ध्यैच तेनाकारिक्रियाविदा
अथातः स सुतारासु ताराधिपवराननः । केन्द्रे गुरौशुभेलग्ने सुग्रहेष्वयुगेषु च ॥
अरिष्टं दीपयन् दीप्त्यासर्वारिष्टविनाशकृत् । तनयोनामतस्यांतुशुचिष्मत्यांबभूवह

सद्यः समस्तसुखदो भूर्भुवः स्वर्निवासिनाम् ।
गन्धवाहा गन्धवाहा दिग्वधूमुखवासनाः ॥ ७ ॥

इष्टगन्धप्रसूनौघैर्ववर्षुस्ते घनाघनाः । देवदुन्दुभयोनेदुः प्रसेदुः सर्वतोदिशः ॥

परितः सरितः स्वच्छा भूतानां मानसैः सह ।
तमोऽताम्यत्तु नितरां रजोऽपि विरजोऽभवत् ॥ ९ ॥
सत्त्वाः सत्त्वसमा युक्ता वसुधाऽऽसीच्छुभा तदा ।
कल्याणी सर्वतो वाणी प्राणिनः प्रीणयन्त्यभूत् ॥ १०

तिलोत्तमोर्वशीरम्भाप्रभाविद्युत्प्रभाशुभा । सुमङ्गलाशुभालापासुशीलाढ्यावराङ्गनाः
क्वणत्कङ्कणपात्राणि कृत्वा करतले मुदा । मुक्तमुक्ताफलाढ्यानि यक्षकर्दमवन्ति च
वज्रवैदूर्यदीपानि हरिद्रालेपनानि च । गारुत्मतैकरूपाणिशङ्खशुक्तिदधीनि च ॥
पद्मरागप्रवालाख्यरत्नकुङ्कुमवन्ति च । गोमेदपुष्परागेन्द्रनीलसन्माल्यभाञ्जि च ॥
विद्याधर्यश्चकिन्नर्यस्तथाऽमर्यः सहस्रशः । चामरव्यग्रहस्ताग्रमङ्गल्यद्रव्यपाणयः
गन्धर्वोरगयक्षाणां सुवासिन्यःशुभस्वराः । गायन्त्योललितं गीतंतत्राजग्मुरनेकशः

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ।
वसिष्ठः कश्यपश्चाहं विभाण्डो माण्डवीसुतः ॥ १७ ॥
लोमशो लोमचरणो भरद्वाजोऽथ गौतमः । भृगुस्तुगालवोगर्गो जातूकर्ण्यःपराशरः
आपस्तम्बो याज्ञवल्क्यदक्षवाल्मीकिमुद्गलाः ।
शातातपश्च लिखितः शिलादः शङ्ख उञ्छभुक् ॥ १९ ॥
जमदग्निश्च संवर्तो मतङ्गो भरतोंऽशुमान् ।
व्यासः कात्यायनः कुत्सः शौनकः सुश्रुतः शुकः ॥ २० ॥
ऋष्यश्रृङ्गोथ दुर्वासा रुचिर्नारदतुम्बुरू । उत्तङ्को वामदेवश्च च्यवनोऽसितदेवलौ
शालङ्कायनहारीतौविश्वामित्रोथ भार्गवः । मृकण्डः सहपुत्रेणदाल्भ्यउद्दालकस्तथा
धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयो मुनिकन्यकाः ।
तच्छान्त्यर्थं समाजग्मुर्धन्यं विश्वानराश्रमम् ॥ २३ ॥
ब्रह्मा बृहस्पतियुतो देवो गरुडवाहनः । नन्दिभृङ्गिसमायुक्तो गौर्यासहवृषध्वजः
महेन्द्रमुख्यागीर्वाणा नागाः पातालवासिनः ।
रत्नान्यादाय बहुशः ससरित्का महाब्धयः ॥ २५ ॥
स्थावराजङ्गमंरूपंधृत्वायाताः सहस्रशः । महामहोत्सवेतस्मिन् बभूवाकालकौमुदी
जातकर्मस्वयं चक्रेतस्यदेवः पितामहः । श्रुतिंविचार्य तद्रूपां नाम्नागृहपतिस्त्वयम्
इतिनाम ददौतस्मै देयमेकादशेऽहनि । नामकर्मविधानेन तदर्थं श्रुतिमुच्चरन् ॥ २८
अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः ।
अग्ने गृहपते भिद्युम्नमभिसह आयच्छस्व ॥ २९ ॥
अग्ने गृहपतेस्तुत्या परामपिनिदर्शयन् । चतुर्निगममन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्य च ॥
कृत्वा बालोचितां रक्षां हरेणहरिणा सह । निर्ययौ हंसमारुह्य सर्वेषां प्रपितामहः
अहोरूपमहोतेजस्त्वहोसर्वाङ्गलक्षणम् । अहोशुचिष्मतीभाग्यमाविरासीत्स्वयंहरः
अथवा किमिदं चित्रं शर्वभक्तजनेष्वहो । आविर्भवेत्स्वयं रुद्रो यतोरुद्रास्तदर्चकाः
इति स्तुवन्तस्त्वन्योन्यं जग्मुः सर्वे यथागतम् ।

विश्वानरं समापृच्छ्य संप्रहृष्टतनूरुहाः ॥ ३४ ॥
अतः पुत्रंसमीहन्ते गृहस्थाश्रमवासिनः । पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी
अपुत्रस्य गृहं शून्यमपुत्रस्यार्जनंवृथा । अपुत्रस्यान्वयश्छिन्नो नापवित्रं ह्यपुत्रतः
न पुत्रात्परमो लाभो नपुत्रात्परमं सुखम् । न पुत्रात्परमं मित्रं परत्रेह च कुत्रचित्
औरसः क्षेत्रजः क्रीतो दत्तः प्राप्तः सुतासुतः ।
आपत्सुरक्षितश्चान्यः पुत्राः सप्ताऽत्रकीर्तिताः ॥ ३८ ॥
एषामन्यतमः कार्योगृहस्थेन विपश्चिता । पूर्वपूर्वःसुतः श्रेयान् हीनःस्यादुत्तरोत्तरः

गणावूचतुः

निष्क्रमोऽथ चतुर्थेऽस्य मासि पित्रा कृतो गृहात् ।
अन्नप्राशनमब्दार्धे चूडाब्दे चार्थवत्कृता ॥ ४० ॥
कर्णवेधं ततः कृत्वा श्रवणर्क्षे स कर्मवित् । ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थंपञ्चमेऽब्दे व्रतं ददौ
उपाकर्म ततः कृत्वा वेदानध्यापयत्सुधीः ।
त्र्यब्दं वेदान् सविधिनाऽध्यैष्ट साङ्गपदक्रमान् ॥ ४२ ॥
विद्याजातं समस्तञ्च साक्षिमात्राद् गुरोर्मुखात् ।
विनयादिगुणानाविष्कुर्वन् जग्राह शक्तिमान् ॥ ४३ ॥
ततोऽथ नवमे वर्षे पित्रोः शुश्रूषणे रतम् । वैश्वानरं गृहपतिं दृष्ट्वा कामचरो मुनिः ॥
विश्वानरोटजं प्राप्य देवर्षिर्नारदः सुधीः । पप्रच्छ कुशलं तत्र गृहीतार्घासनःक्रमात्

नारद उवाच

विश्वानर! महाभाग! शुचिष्मति! शुभव्रते !। कुरुते युवयोर्वाक्यमयंगृहपतिः शिशुः
नान्यत्तीर्थं न वादेवोनगुरुर्नचसत्क्रिया । विहायपित्रोर्वचनं नान्यो धर्मः सुतस्यहि
न पित्रोरधिकं किञ्चित्त्रिलोक्यां तनयस्य हि ।
गर्भधारणपोषाभ्यां पितुर्माता गरीयसी ॥ ४८ ॥
अम्भोभिरभिषिच्य स्वं जननीचरणच्युतैः ।
प्राप्नुयात्स्वधुनीशुद्धकबन्धाधिकशुद्धताम् ॥ ४६ ॥

संन्यस्ताखिलकर्मापि पितुर्वन्द्योहिमस्करी । सर्ववन्द्येन यतिनाप्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः
इदमेव तपोत्युग्रमिदमेव परं व्रतम् । अयमेव परोधर्मो यत्पित्रोः परितोषणम् ॥
मन्ये मान्यो नाऽधमस्य तथाऽन्यस्य यथा युवाम् ।
सुखाकारैर्विनीतस्य शिशोर्गृहपतेरहम् ॥ ५२ ॥
वैश्वानर!समभ्येहि ममोत्सङ्गेनिषीद भो !। लक्षणानिपरीक्षेऽहंपाणिंदर्शयदक्षिणम्
इत्युक्तो मुनिना बालः पित्रोराज्ञामवाप्य सः ।
प्रणम्य नारदं श्रीमान् भक्त्या प्रह्व उपाविशत् ॥ ५४ ॥
ततो दृष्ट्वाऽस्य सर्वाङ्गं तालुजिह्वाद्विजानपि । आनीयकुङ्कुमारक्तं सूत्रञ्चत्रिगुणीकृतम्
स्मृत्वा शिवौ गणाध्यक्षमूर्ध्वीभूतमुदङ्मुखम् ।
मुनिः परिममौ बालमापादतलमस्तकम् ॥ ५६ ॥
तिर्यगूर्ध्वंसमोमाने योऽष्टोत्तरशताङ्गुलः । सभवेत्पृथिवीपालो बालोऽयंतेयथाद्विज
पञ्चसूक्ष्मः पञ्चदीर्घः सप्तरक्तः षडुन्नतः । त्रिपृथुर्लघुगम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणस्त्वति
पञ्चदीर्घाणि शस्यानियथादीर्घायुषोस्यवै । भुजौनेत्रेहनुर्जानुनासाऽस्यतनयस्यते
ग्रीवाजङ्घामेहनैश्च त्रिभिर्ह्रस्वोऽयमीडितः ।
स्वरेण सत्त्वनाभिभ्यां त्रिगम्भीरःशिशुः शुभः ॥ ६० ॥
त्वक्केशाङ्गुलिदशनाः पर्वाण्यङ्गुलिजान्यपि ।
तथाऽस्य पञ्चसूक्ष्माणि दिक्पालपदभाग्यथा ॥ ६१ ॥
वक्षः कुक्ष्यलकंस्कन्धं करं वक्त्रं षडुन्नतम् । तथाऽत्रदृश्यतेबाले महदैश्वर्यभाग्यथा
पाण्योस्तले च नेत्रान्ते तालुजिह्वाधरौष्ठकम् ।
सप्तारुणञ्च सनखमस्मिन् राज्यसुखप्रदम् ॥ ६३ ॥
ललाटकटिवक्षोभिस्त्रिविस्तीर्णो यथा ह्यसौ ।
सर्वतेजोऽतिगैश्वर्यं तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥ ६४॥
कमठीपृष्ठकठिनावकर्मकरणौ करौ । राज्यहेतूशिशोरस्य पादौ चाध्वनिकोमलौ
रच्छिन्ना तर्जनींव्याप्यतथारेखास्यदृश्यते । कनिष्ठापृष्ठनिर्यातादीर्घायुष्यंयथापंयेत्

पादौ सुमांसलौ रक्तौ समौ सूक्ष्मौ सुशोभनौ ।
समगुल्फौ स्वेदहीनौ स्निग्धावैश्वर्यसूचकौ ॥ ६७ ॥
स्वल्पाभिः कररेखाभिरारक्ताभिःसदासुखी । लिङ्गेनकृशह्रस्वेन राजराजोभविष्यति
उत्कटासनगुल्फस्फिग्नाभिरस्यापि वर्तुला । दक्षिणावर्तमरुणं महदैश्वर्यसूचिका
धारैका मूत्रयत्यस्मिन्दक्षिणावर्तिनी यदि । गन्धश्च मीनमधुनोर्यदिवीर्येतदानृपः
विस्तीर्णौ मांसलौ स्निग्धौ स्फिचावस्य सुखोचितौ ।
वामावर्तौ सुप्रलम्बौ दोषौ दिग्रक्षणोचितौ ॥ ७१ ॥
श्रीवत्सवज्रचक्राब्जमत्स्यकोदण्डदण्डभृत् ।
तथाऽस्य करगा रेखा यथा स्यात्त्रिदिवस्पतिः ॥ ७२ ॥
द्वात्रिंशद्दशनश्चायं करकम्बुशिरोधरः । क्रौञ्चदुन्दुभिहंसाभ्रस्वरः सर्वैश्वराधिकः
मधुपिङ्गलनेत्रोऽसौनैनं श्रीस्त्यजतिक्कचित् । पञ्चरेखललाटस्तु तथासिंहोदरःशुभः
ऊर्ध्वरेखाङ्कितपदो निःश्वसन् पद्मगन्धवान् ।
अच्छिद्रपाणिः सुनखो महालक्षणवानयम् ॥ ७५ ॥
किन्तु सर्वगुणोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् । सम्पूर्णनिर्मलकलं पातयेद्विधुवद्विधिः
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयस्त्वसौ शिशुः ।
गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ॥ ७७ ॥
शङ्केऽस्य द्वादशे वर्षे प्रत्यूहो विद्युदग्नितः ।
इत्युक्त्वा नारदो धीमान् सजगाम यथागतम् ॥ ७८ ॥
विश्वानरः सपत्नीकस्तच्छ्रुत्वा नारदेरितम् । तदैव मन्यमानोभूद्वज्रपातं सुदारुणम्
हाहतोस्मीति वचसा हृदयं समताडयत् । मूर्च्छामवाप महतींपुत्रशोकसमाकुलः
शुचिष्मत्यपि दुःखार्ता रुरोदातीव दुःसहम् ।
आर्तस्वरेण हारावैरत्यन्तव्याकुलेन्द्रिया ॥ ८१ ॥
हाशिशो! हागुणनिधे!हापितुर्वाक्यकारक !। हाकुतो मन्दभाग्यायाजठरेमेसमागतः
त्वदेकपुत्रांहापुत्रकोऽत्रमांत्रायते पुरा । त्वद्गतेत्वद्गुणोर्म्याढयेपतितांशोकसागरे

हा बाल! हाविमल! हाकमलायताक्ष! हालोकलोचनचकोरकुरङ्गलक्ष्मन् ।
हा तात! तात! नयनाब्जमयूखमालिन् !हामातुरुत्सवसहस्रसुखैकहेतो !॥ ८४॥
हापूर्णचन्द्रमुख! हासुनखाङ्गुलीक! हाचाटुकारवचनामृतवीचिपूर ॥
दुःखैः कियद्भिरहहाङ्गमया त्वमाप्तः किंकिंकृतं गृहपते न मया त्वदाप्त्यै ॥८५॥
नोप्तोबलिर्नबतकासु च देवतासु तीर्थानि कानि न मयाऽध्युषितानि वत्स !।
के के मया न नियमौषधमन्त्रयन्त्राः संसाधितास्तवकृते सुकृतैकलभ्यः ॥ ८६॥
संसारसागरतरे हर दुःखभारं सारं मुखेन्दुमभिदर्शय सौख्यसिन्धो !।
पुन्नामतीव्रनरकार्णववाडवाग्ने सञ्जीवयस्व पितरं निजवाक्सुधोक्षैः ॥ ८७ ॥
किं देवता अहह! जन्ममहोत्सवेऽस्य ज्ञात्वेति भावि मिलितायुगपत्समस्ताः
एकस्थसर्वगुणशीलकलाकलापसौन्दर्यलक्षणपरीक्षणपूर्णहर्षाः ॥ ८८ ॥
शम्भो! महेश! करुणाकर ! शूलपाणे! मृत्युञ्जयस्त्वमिति वेदविदो वदन्ति ।
त्वद्वृत्तबालतनये यदिकालकालः स्यादेवमत्र वद कस्य भवेन्न पातः ॥ ८९ ॥
हा! हन्त! हन्त! भवता भवतापहारी कस्माद्विधेऽत्र विदधे बहुभिः प्रयत्नैः ।
बालो विशालगुणसिन्धुमगाधमध्यं सद्रत्नसारमखिलं सविधं विधाय ॥ ९०
हा! काल! बालकवती किमुतेन राज्ञी त्वत्कालतां न हृतवान्न सुताननेन्दुः ।
बालेति कोमलमृणाललताङ्गलीले दम्भोलिनिष्ठुरकठोरकुठारदंष्ट्रः ॥ ९१ ॥
इत्थं विलप्य बहुशो नयनाम्बुधारासम्पातजाततटिनीशतमुत्तरङ्गम् ।
सा तोकशोकजनितानलतापतप्ता प्रोच्छ्वस्य दीर्घविपुलोष्णमहो शुशोष ॥९२
आकर्ण्य तत्करुणवत्परिदेवितानि तानिद्रुमाव्रततयःकुसुमाश्रुपातैः ।
प्रायो रुदन्ति पततां विरुतार्तरावैरालोल्यमौलिमसकृत्पवनच्छलेन ॥ ९३ ॥
रुण्णन्तया किल तथा बहुमुक्तकण्ठमार्तस्वरैः प्रतिरवच्छलतो यथोच्चैः ।
तद्दुःखतोनुरुरुदुर्गिरिकन्दरास्याः सर्वादिशः स्थगितपत्त्रिमृगागमा ह ॥९४
श्रुत्वाऽऽर्तनादमिति विश्वनरोऽपि मोहं,
हित्वोत्थितःकिमिति किं रिवति किं किमेतत् ।

उच्चैर्वदन् गृहपतिःक्व स मे बहिस्थः प्राणोन्तरात्मनिलयः सकलेन्द्रियेशः॥

अगस्त्य उवाच

ततो दृष्ट्वा स पितरौ बहुशोकसमावृतौ ।
स्मित्वोवाच ततो मातस्त्रासस्त्वीदृक्कुतो हि वाम् ॥ ९६ ॥
नमांकृतवपुस्त्राणं भवच्चरणरेणुभिः । कालःकलयितुं शक्तो वराकीचञ्चलाल्पिका
प्रतिज्ञां शृणुतंतातौ यदिवांतनयोह्यहम् । करिष्येऽहंतथातेन विद्युन्मत्तस्त्रसिष्यति
मृत्युञ्जयं समाराध्य सर्वज्ञं सर्वदं सताम् । कालकालं महाकालंकालकूटविषादिनम्
इतिश्रुत्वा वचस्तस्य जरितौ द्विजदम्पती । अकालामृतवर्षौघशान्ततापौतदोचतुः
अपयोदपयोवृष्टिरदुग्धाब्धिः सुधोदयः ।
अनिन्दुः कौमुदीकान्तिः कुतो नौ सुखयत्यलम् ॥ १०१ ॥
पुनर्ब्रूहि पुनर्ब्रूहि कीदृक्कीदृक्पुनःपुनः । कालःकलयितुं नालं वराकी चञ्चलाल्पिका
आवयोस्तापनाशाय महोपायस्त्वयेरितः । मृत्युञ्जयस्य देवस्य समाराधनलक्षणः
तद्गच्छशरणं तात! नातः परतरं हितम् । मनोरथपथातीतकारिणः कालहारिणः॥
किं न श्रुतं त्वया तात! श्वेतकेतुं यथा पुरा । पाशितं कालपाशेन ररक्षत्रिपुरान्तकः
शिलादतनयं मृत्युग्रस्तमष्टाब्दमर्भकम् । शिवोनिजजनं चक्रे नन्दिनं विश्वनन्दिनम्
क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसन्निभम् । पीत्वा हालाहलं घोरमरक्षद्भुवनत्रयम् ॥
जालन्धरं महादर्पं हृतत्रैलोक्यसम्पदम् । चरणाङ्गुष्ठरेखोत्थचक्रेण निजघान यः ॥
य एकेषुनिपातोत्थज्वलनैस्त्रिपुरंपुरा । विधायपत्त्रिणंविष्णुंज्वालयामासधूर्जटिः
अन्धकं यस्त्रिशूलाग्रप्रोतंवर्षायुतं पुरा । त्रैलोक्यैश्वर्यसंमूढंशोषयामास भानुना ॥
कामं दृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यविजयोर्जितम् । निनायानङ्गपदवीं वीक्षमाणेष्वजादिषु
तं ब्रह्माद्येककर्तारं मेघवाहनमच्युतम् । प्रयाहि पुत्र! शरणं विश्वरक्षामणिं शिवम्
पित्रोरनुज्ञां प्राप्येति प्रणम्यचरणौ तयोः । प्रदक्षिणमुपावृत्यबह्वाश्वास्यविनिर्ययौ
स प्राप्य काशीं दुष्प्रापां ब्रह्मनारायणादिभिः ।
महासम्वर्तसम्वृत्ततापाद्विश्वेशपालिताम् ॥ ११४ ॥

न्याहारयष्ट्ये वराजितांकण्ठभूमिषु। विचित्रगुणशालिन्याहारनीहारगौरया
संसारसन्तापसन्तप्तजनतोद्भवम्। वारयन्तीं वरणया छिन्दन्तीमसिधारया ॥
यल्लभ्यते च कैवल्यं सुदृढाष्टाङ्गयोगतः।
विकाशयन्तीं तत्सम्यक् काशिकायां जगुर्बुधाः ॥ ११७ ॥
संसारतापतप्ताभ्यां लोचनाभ्यां स दृष्टवान्।
कर्णाकर्णप्रकीर्णाभ्यां प्राग्ययौ मणिकर्णिकाम् ॥ ११८ ॥
तत्र स्नात्वा विधानेन दृष्ट्वा विश्वेश्वरं विभुम्।
त्रैलोक्यप्राणिसन्त्राणकारिणं प्रणनाम ह ॥ ११९ ॥
ालोक्यालोक्य तल्लिङ्गं तुतोषहृदयेबहु। परमानन्दकन्दाख्यंस्फुटमेतन्न संशयः
होनमत्तोधन्योस्ति त्रैलोक्येसचराचरे। यदद्राक्षिषमद्याहं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम्
त्रिलोकीसारसर्वस्वं पिण्डीभूतमिदं किल।
किम्वा पीयूषपिण्डोऽयमुद्गतः क्षीरनीरधेः ॥ १२२ ॥
आत्मावबोधमहसः किमसौ प्रथमाङ्कुरः। ब्रह्मानन्दसुकन्दोवा किमुब्रह्मरसायनम्
योगिहृत्पद्मनिलयं यदनाकारमुच्यते। तदाकारत्वमापेदे किमिदं लिङ्गकैतवात्
ब्रह्माण्डभाण्डमथवा नानारत्नौघपूरितम्। अथवामोक्षवृक्षस्य फलमेतन्न संशयः
निर्वाणलक्ष्म्याः किमथ केशपाशःसुपुष्पयुक्।
कैवल्यमल्लीवल्ल्याः किं स्तवकः स्तावकार्थदः ॥ १२६ ॥
निःश्रेयसश्रियः किंवाऽऽनन्दक्रीडनकन्दुकः। अपवर्गोदयाद्रेः किमुदियायसुधाकरः
संसारमोहतिमिरभिदुरःकिमसौ रविः। किमुकल्याणरमणीरम्यशृङ्गारदर्पणः ॥
आज्ञातं न भवेदन्यत्सर्वेषांदेहधारिणाम्। अनेककर्मवीजानां वीजपूरोऽयमद्भुतः ॥
विश्वेषां विश्ववीजानां कर्माख्यानां लयो गतः।
अस्मिन्निर्वाणदे लिङ्गे विश्वलिङ्गमिदं ततः ॥ १३० ॥
मम भाग्योदयेनैव नारदेन महर्षिणा। तदागत्य तथोक्तं यत्कृतकृत्योस्म्यहं ततः ॥
त्यानन्दामृतरसैर्विधायसह्निपारणम्। ततःशुभेऽह्निसंस्थाप्य लिङ्गं सर्वहितप्रदम्

जग्राहनियमान् घोरान् दुष्करानकृतात्मनाम् । अष्टोत्तरशतैःकुम्भैः पूर्णैर्गङ्गामृतद्रवैः
संस्नाप्य वाससापूतैः पूतात्मा प्रत्यहं शिवम् ।
नीलोत्पलमयीं मालां समर्पयति सोऽन्वहम् ॥ १३४ ॥
अष्टाधिकसहस्रैस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम् । सपक्षार्धेन षण्मासं कन्दमूलफलाशनः
शीर्णपर्णाशनःपक्षे त्वाषण्मासं बभूव सः ।
षण्मासं वायुभक्षोऽभूत्षण्मासं जलबिन्दुभुक् ॥ १३६ ॥
एवंवर्षद्वयं तस्य व्यतिक्रान्तं तथासतः । जन्मतोद्वादशेवर्षेतद्वचो नारदेरितम् ॥
सत्यं करिष्यन्निव तमभ्यगात्कुलिशायुधः । उवाचचवरंब्रूहिदद्मितन्मनसिस्थितम्
अहंशतक्रतुर्विप्र! प्रसन्नोऽस्मि शुभव्रतैः । इत्याकर्ण्य महेन्द्रस्यवाक्यं मुनिकुमारकः
उवाच मधुरं धीरःकीरवन्मधुराक्षरम् । मघवन् वृत्रशत्रो! त्वांजानेकुलिशपाणिनम्
नाऽहं वृणे वरं त्वत्तः शङ्करो वरदोऽस्ति मे ॥ १४१ ॥

इन्द्र उवाच

न मत्तः शङ्करोऽस्त्यन्यो देवदेवोऽस्म्यहं शिशो !।
विहाय बालिशत्वं त्वं वरं याचस्व मां वरम् ॥ १४२ ॥

ब्राह्मण उवाच

गच्छाहल्यापतेऽसाधोगोत्रारेपाकशासन । नप्रार्थये पशुपतेरन्यं देवान्तरं स्फुटम्
इति तस्यवचःश्रुत्वाक्रोधसंरक्तलोचनः । उद्यम्यकुलिशंघोरंभीषयामास बालकम्
स दृष्ट्वा बालको वज्रंविद्युज्ज्वालाशताकुलम् । स्मरन्नारदवाक्यञ्चमुमूर्छभयविह्वलः
अथ गौरीपतिः शम्भुराविरासीत्तमोनुदः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रं ते स्पर्शैःसञ्जीवयन्निव
उन्मील्य नेत्रकमले सुप्ते इव दिवाक्षये । अपश्यदग्रे चोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम्
भालेलोचनमालोक्य कण्ठेकालंवृषध्वजम् । वामाङ्गसंनिविष्टाद्रितनयं चन्द्रशेखरम्
कपर्देन विराजन्तं त्रिशूलाजगवायुधम् । स्फुरत्कर्पूरगौराङ्गं परिणद्धगजाजिनम्
परिज्ञाय महादेवं गुरुवाक्यत आगमात् ।
हर्षवाष्पाकुलःसन्नकण्ठो रोमाञ्चकञ्चुकः ॥ १५० ॥

ां स्थगितवत्तस्थौचित्रकृत्रिमपुत्रकः । यथातथासुसम्पन्नोविस्मृत्यात्मानमेवच
स्तोतुं न नमस्कर्तुंकिञ्चिद्विज्ञप्तुमेव च । यदासनशशाकालंतदास्मित्वाऽऽहशङ्करः

ईश्वर उवाच

शोगृहपते! शक्राद्वज्रोद्यतकरादहो । ज्ञातो भीतोऽसि माभैषीर्जिज्ञासाते कृतामया
मभक्तस्य नोशक्रो न वज्र नान्तकोपि वा । प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैव त्वंहिभीषितः
रं ददामिते भद्र त्वमग्निपदभाग्भव । सर्वेषामेव देवानां वदनं त्वं भविष्यसि ॥
र्वेषामेव भूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरोभव । धर्मराजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशो राज्यमाप्नुहि
त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं तव नाम्ना भविष्यति ।
अग्नीश्वर इतिख्यातं सर्वतेजोभिबृंहणम् ॥ १५७ ॥
अग्नीश्वरस्य भक्तानां न भयं विद्युदग्निजम् । अग्निमान्द्यभयं नैवनाकालमरणंक्वचित्
अग्नीश्वरं समभ्यर्च्य काश्यांसर्वसमृद्धिदम् । अन्यत्रापिमृतो दैवादग्निलोकेमहीयते
ततः काशीं पुनः प्राप्य कल्पान्ते मोक्षमाप्नुयात् ।
वीरेश्वरस्य पूर्वेण गङ्गायाः पश्चिमे तटे ॥ १६० ॥
अग्नीश्वरं समाराध्यवह्निलोके वसेन्नरः । पितृभ्यां स्वजनैः सार्धंमित्रबन्धुसमायुतः
विमानमिदमारुह्यप्रयाह्येव दिशःपते । इत्युक्त्वानीयतद्बन्धून् पित्रोश्च परिपश्यतोः
दिक्पतित्वेऽभिषिच्याग्निं तत्र लिङ्गे शिवोऽविशत् ॥ १६३ ॥

गणावूचतुः

इत्थमग्निस्वरूपंते शिवशर्मन्प्रवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामोसि कथयावस्तदीरय

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे वह्निलोकवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

निर्ऋतिवरुणलोकवर्णने पिङ्गाक्षाख्यानवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

नैर्ऋतादीन् क्रमाल्लोकानाख्यातंपुरुषोत्तमौ । पुरुषोत्तमपादाब्जपरागोद्धूसरालकौ
गणावूचतुः

आकर्णय महाभाग! संयमिन्याः पुरीं पराम् ।
दिक्पतेर्निर्ऋतस्याऽसौ पुण्या पुण्यजनोषिता ॥ २ ॥

राक्षसानिवसन्त्यस्यामपरद्रोहिणः सदा । जातिमात्रेण रक्षांसि वृत्तैः पुण्यजनाइमे
स्मृत्युक्तश्रुतिवर्त्मानोजाताधर्णावरेष्वपि । नाद्रियन्तेऽन्नपानानामस्मृत्युक्तंकदाचन
परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखाः । जाताजातौनिकृष्टायामपि पुण्यानुसारिणः

द्विजातिभक्त्युत्पन्नार्थैरात्मानं पोषयन्ति ये ।
सदा सङ्कुचिताङ्गाश्च द्विजसम्भाषणादिषु ॥ ६ ॥
आहूता वस्त्रवदना वदन्ति द्विजसन्निधौ ।
जयजीव भगोनाथ स्वामिन्निति हि वादिनः ॥ ७ ॥

तार्थस्नानपरानित्यंनित्यं देवपरायणाः । द्विजेषु नित्यंप्रणताःस्वनामाख्यानपूर्वकम्
दमदानदयाक्षान्तिशौचेन्द्रियविनिग्रहाः । अस्तेयसत्याहिंसाश्च सर्वेषां धर्महेतवः
आवश्येषु सदोद्युक्ता ये जातायत्रकुत्रचित् । सर्वभोगसमृद्धास्ते वसन्त्यत्र पुरोत्तमे

म्लेच्छा अपि सुतीर्थेषु ये मृतानात्मघातकाः ।
विहाय काशीं निर्वाणविश्राणान्तेऽत्र भोगिनः ॥ ११ ॥

अन्धन्तमो विशेयुस्ते ये चैवात्महनोजनाः । भुक्त्वानिरयसाहस्रंतेचस्युर्ग्रामसूकराः

आत्मघातो न कर्तव्यस्तस्मात्क्वापि विपश्चिता ।
इहापि घ परत्रापि न शुभान्यात्मघातिनाम् ॥ १२ ॥

थेष्टमरणं केचिदाहुस्तत्त्वावबोधकाः । प्रयागे सर्वतीर्थानां राज्ञि सर्वाभिलाषदे ॥
न्त्यजा अपिये केचिद्दयाधर्मानुसारिणः । परोपकृतिनिष्ठास्तेवसन्त्यत्र तुसत्तमाः
अस्य स्वरूपं वक्ष्यावो दिक्पतेः क्षणतः शृणु ।
मध्ये विन्ध्याटवि पुरा पक्कणस्थजनाग्रणीः ॥ १६ ॥
पल्लीपतिरभूदुग्रः पिङ्गाक्ष इति विश्रुतः । निर्विन्ध्यायास्तटे शूरः क्रूरकर्मपराङ्मुखः
घातयेद्दूरसंस्थोऽपि यः पान्थपरिपन्थिनः ।
व्याघ्रादीन् दुष्टसत्त्वांश्च स हिनस्ति प्रयत्नतः ॥ १८ ॥
जीवेन्मृगयुधर्मेण तत्रापिकरुणापरः । न विश्वस्तान् पक्षिमृगान्न सुप्तान्नव्यवायिनः
न तोयगृध्नून्न शिशून्नान्तर्वत्नित्वलक्षणान् । स घातयति धर्मज्ञो जातिधर्मपराङ्मुखः
श्रमातुरेभ्यः पान्थेभ्यः सविश्राममंप्रयच्छति । हरेत्क्षुधां क्षुधार्तानामुपानद्भ्योऽनुपानहे
मृगत्वचोतिमृदुलाविवस्त्रेभ्योतिसर्जति । अनुव्रजतिकान्तारेप्रान्तरे पथिकान्पथि
नजिघृक्षतितेभ्योऽर्थमभयं चेतियच्छति । आविन्ध्याटवि मेनाम ग्राह्यंदुष्टभयापहम्
नित्यं कार्पटिकान् सर्वान् सपुत्रेण प्रपश्यति ।
तेऽपि च प्रतितीर्थं हि तमाशीर्वादयन्ति वै ॥ २४ ॥
इतितिष्ठतिपिङ्गाक्षेसाटवीनगरायिता । अध्वनीनेऽध्वगान्कोपिनरुणद्धिससाध्वसः
कदाचित्ततपितृव्येण समीपग्रामवासिना ।
श्रतः कार्पटिकानांहि सार्थः सार्थो महास्वनः ॥ २६ ॥
लुब्धकस्तद्वने लुब्धःक्षुद्रस्तन्निधनोद्यतः । सरुरोध तमध्वानमग्रेगत्वाऽतिगूढवत्
तदायुष्यस्य शेषेणपिङ्गाक्षोमृगयांगतः । तस्मिन्नरण्येतन्मार्गंनिकषाप्युषितोनिशि
परप्राणद्रुहां पुंसां न सिद्ध्येयुर्मनोरथाः ।
विश्वं कुशलि:तेनैतद्विश्वेशपरिरक्षितम् ॥ २६ ॥
न चिन्तयेदनिष्टानि तस्मात्कृष्टिः कदाचन ।
विधिदृष्टं यतोभावि कलुषं भावि केवलम् ॥ ३० ॥
तस्मादात्मसुखं प्रेप्सुरिष्टानिष्टं न चिन्तयेत् ।

चिन्तयेच्चेत्तदाऽचिन्त्यो मोक्षोपायो न चेतरः ॥ ३१ ॥
व्युष्टायामथ यामिन्यामभूत्कोलाहलो महान्। घातयध्वं पातयध्वंनश्यध्वंद्रुतंभटाः
मा मारयध्वं त्रायध्वं भटाःकार्पटिकावयम्। अनायासंलुण्ठयध्वंनयध्वं चयदस्तिनः
वयंपान्थाअनाथाःस्मोविश्वनाथपरायणाः। सनाथास्तेनदूरंसनाथतांपथिकोऽपरः
वयं पिङ्गाक्षविश्वासादस्मिन्मार्गेऽकुतोभयाः।
यातायातं सदा कुर्मः स च दूर इतो वनात् ॥ ३५ ॥
इतिश्रुत्वाऽथपिङ्गाक्षो भटःकार्पटिकेरितम्। दूरान्माभैष्टमाभैष्ट ब्रुवन्निति समागतः
तत्कर्मसूत्रैराकृष्टो भिल्लःकार्पटिकप्रियः। तूर्णंतदायुष्यमिवतत्रोपस्थितवान्क्षणात्
कोयं कोयं दुराचारःपिङ्गाक्षे मयिजीवति।
उल्लुलुण्ठयिषुः पान्थान् प्राणलिङ्गसमान्मम ॥ ३८ ॥
इतितद्वाक्यमाकर्ण्यताराक्षस्तत्पितृव्यकः। धनलोभेनपिङ्गाक्षेपापंपापोव्यचिन्तयत्
कुलधर्मं व्यपास्यैष वर्ततेकुलपांसनः। चिरं चिन्तितमद्यामुं घातयिष्याम्यसंशयम्
विचार्येति स दुष्टात्मा भृत्यानाज्ञापयत् क्रुधा।
आदावेनं घातयन्तु ततः कार्पटिकानिमान् ॥ ४१ ॥
ततोऽयुध्यन् दुराचारास्तेनैकेन च तेऽखिलाः।
यथाकथञ्चित्ताननयत्स च स्वावसथान्तिकम् ॥ ४२ ॥
आच्छिन्नं हि धनुर्बाणं छिन्नं सन्नहनंशरैः। असूदयिष्यमेतांस्तदभविष्यं यदीश्वरः
अभिलष्यन्निति प्राणानत्याक्षीत्स परार्थतः।
तेपि कार्पटिकाः प्राप्तास्तत्पल्लीं गतसाध्वसाः ॥ ४४ ॥
या मतिस्त्वन्तकाले स्याद्गतिस्तदनुरूपतः।
दिगीशत्वमतः प्राप्तो निर्ऋत्यां नैर्ऋतेश्वरः ॥ ४५ ॥
इत्थमस्यस्वरूपंते आवाभ्यांसमुदीरितम्। एतस्योत्तरतोलोकोवरुणस्यास्यमद्भुतः
कूपवापीतडागानां कर्तारो निर्मलैर्धनैः। इहलोके महीयन्तेवारुणे वरुणप्रभाः ॥४७
निर्जले जलदातारःपरसन्तापहारिणः। अर्थिभ्योयेप्रयच्छन्ति चित्रच्छत्रकमण्डलून्

पानीयशालिकाःकुर्युर्नानोपस्करसंयुताः । दद्युर्धर्मघटांश्चापि सुगन्धोदकपूरितान्
अश्वत्थसेकंयेकुर्युःपथिपादपरोपकाः । विश्रामशालाकर्तारःश्रान्तसन्तापनोदकाः
ग्रीष्मोष्महन्तिमायूरपिच्छादिरचितान्यपि ।
चित्राणि तालं वृन्तानि वितरन्ति तपागमे ॥ ५१ ॥
रसवन्ति सुगन्धीनि हिमवन्ति तपर्तुषु । विश्राणयन्ति वा तृप्तिपानकानिप्रयत्नतः
इक्षुक्षेत्राणि सङ्कल्प्य ब्राह्मणेभ्योददत्यपि । तथानानाप्रकारांश्चविकारानैक्षवान्बहून्
गोरसानां प्रदातारस्तथा गोमहिषीप्रदाः । धारामण्डपकर्तारश्छायामण्डपकारिणः
देवालयेषु ये दद्युर्बहुधारागलन्तिकाः । तीर्थे वा करहर्तारस्तीर्थमार्गावनेजकाः ॥
अभयं ये प्रयच्छन्ति भयार्तोद्यतपाणयः ।
निर्भया वारुणे लोके ते वसन्ति लसन्ति च ॥ ५६ ॥
विपाशयन्ति ये पुण्या दुर्वृत्तैःकण्ठपाशितान् ।
ते पाशपाणेर्लोकेस्मिन्निवसन्त्यकुतोभयाः ॥ ५७ ॥
नौकाद्युपायैर्नद्यादौ पान्थान् ये तारयन्त्यपि ।
तारयन्त्यपि दुःखाब्धेस्तत्रनागरिका द्विज ! ॥ ५८ ॥
घट्टान् पुण्यतटिन्यादेर्बन्धयन्ति शिलादिभिः ।
तोयार्थिसुखसिद्ध्यर्थं ये नरास्तेऽत्र भोगिनः ॥ ५६ ॥
वितर्पयन्ति ये पुण्यास्तृषिताञ्छीतलैर्जलैः । तेऽत्रवैवारुणेलोकेसुखसन्ततिभागिनः
जलाशयानां सर्वेषामयमेकतमःपतिः । प्रचेता यादसांनाथः साक्षीसर्वेषु कर्मसु
अस्योत्पत्तिश्शृणु पतेर्वरुणस्यमहात्मनः । आसीन्मुनिरमेयात्मा कर्दमस्य प्रजापतेः
शुचिष्मानिति विख्यातस्तनयो विनयोचितः ।
स्थैर्यमाधुर्यधैर्याद्यैर्गुणैरुपचितो हितः ॥ ६३ ॥
अच्छोदे सरसिस्नातुं सगतो बालकैःसह । जलक्रीडनसंसक्तं शिशुमारोऽहरच्च तम्
ततस्तस्मिन्मुनिसुते हृतेऽत्याहितशंसिभिः ।
तैः समागत्य शिशुभिः कथितं तत्पितुः पुरः ॥ ६५ ॥

हरार्चनोपविष्टस्य समाधौनिश्चलात्मनः । श्रुतबालविपत्तेश्च चचाल न मनो हरात्
अधिकंशीलयामास ससर्वज्ञं त्रिलोचनम् । पश्यञ्छम्भोःसमीपेसभुवनानि चतुर्दश
नानाभूतानिभूतानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च । चन्द्रसूर्यर्क्षताराश्चपर्वतान्सरितोद्रुमान्
समुद्रानन्तरीयाणि ह्यरण्यानि सरांसि च । नानादेवनिकायांश्चबह्वीर्दिविषदांपुरीः
वापीकूपतडागानि कुल्याःपुष्करिणीर्बहु ।
एकस्मिन्क्वापि सरसि जलक्रीडापरायणान् ॥ ७० ॥
बहून्मुनिकुमारांश्च मज्जनोन्मज्जनादिभिः । करयन्त्रविनिर्मुक्ततोयधाराभिषेचनैः
करताडितपानीयशब्ददिङ्मुखनादिभिः । जलखेलनकैरित्थं संसक्तान्बहुबालकान्
तेषां मध्ये ददर्शाथ समाधिस्थः सकर्दमः ।
स्वं शिशुं शिशुमारेण नीयमानं सुविह्वलम् ॥ ७३ ॥
कयाचिज्जलदेव्याथ तस्माच्चक्रूरयादसः । प्रसह्य नीत्वोदधये दृष्टवांस्तं समर्पितम्
निर्भर्त्स्यं सरितांनाथं केनचिद्रुद्ररूपिणा । त्रिशूलपाणिनेत्युक्तं क्रोधताम्राननेन च
कुतोजलानामधिप शिवभक्तस्य बालकः । प्रजापतेःकर्दमस्य महाभागस्य धीमतः
अज्ञात्वा शिवसामर्थ्यं भवता चिरमासितः ।
भयत्रस्तेन तद्वाक्यश्रवणात्तमुदन्वता ॥ ७७ ॥
बालं रत्नैरलङ्कृत्य बद्ध्वातंशिशुमारकम् । समर्पितंसमानीयशम्भुपादाब्जसन्निधौ
नत्वा विज्ञापयत्तञ्चनापराध्याम्यहं विभो! । अनाथनाथविश्वेश!भक्तापत्तिविनाशन!
भक्तकल्पतरोशम्भोऽनेनायं दुष्टयादसा । अनायि न मया नाथ! भवभक्तजनार्भकः ॥
गणेन तेन विज्ञाय शम्भोरथ मनोगतम् । पाशेनबद्ध्वातद्यादःशिशुहस्ते समर्पितम्
गृहाणेमं स्वतनयं पार्षदे शङ्कराज्ञया । याहि स्वभवनं वत्स ! ब्रुवतीति सकर्दमः ॥
समाधिसमये सर्वमितिशृण्वन्नुदारधीः । उन्मील्यनयनेयावत्प्रणिधानंविसृज्यच
संपश्यते शिशुं तावत्पुरतःसमवैक्षत । गृहीतशिशुमारञ्च पार्श्वेऽलङ्कृतकर्णिकम्
तोयार्द्रकाकपक्षाग्रं कषायनयनाञ्चलम् । किञ्चिद्विरूक्षंत्वक्क्षोभं सम्भ्रमापन्नमानसम्
कृतप्रणाममालिङ्गय जिघ्रंस्तन्मुखपङ्कजम् । पुनर्जातमिवामंस्त पश्यंश्चापिमुहुर्मुहुः

शतानिपञ्चवर्षाणि प्रणिधानस्थितस्य हि । कर्दमस्यव्यतीतानिशम्भुमर्चयतस्तदा
कर्दमोऽपि चतत्कालमज्ञासीत्क्षणसङ्गतम् । यतोनप्रभवेत्कालोमहाकालस्यसन्निधौ
ततस्तं तनयःपृष्ट्वा पितरं प्रणिपत्य च । जगामतूर्णं तपसे श्रीमद्वाराणसीं पुरीम्
तत्र तप्त्वा तपोघोरं लिङ्गंसंस्थाप्य शाम्भवम्
पञ्चवर्षसहस्राणि स्थितःपाषाणनिश्चलः ॥ ९० ॥
आविरासीन्महादेवस्तुष्टस्तत्तपसा ततः । उवाच कार्दमे!ब्रूहि कंददामि वरोत्तमम्

कार्दमिरुवाच

यदि नाथ! प्रसन्नोसि भक्तानामनुकम्पक !। सर्वासामाधिपत्यंमे देह्यपां यादसामपि
इतिश्रुत्वामहेशानः सर्वचिन्तितदः प्रभुः । अभ्यषिञ्चत तं तत्र वारुणे परमे पदे
रत्नानामब्धिजातानामब्धीनां सरितामपि ।
सरसां पल्वलानाञ्च वाप्यम्बुस्रोतसां पुनः ॥ ९४ ॥
जलाशयानांसर्वेषां प्रतीच्याश्चापिवैदिशः । अधीश्वरःपाशपाणिर्भव सर्वामरप्रियः
ददामि वरमन्यञ्च सर्वेषां हितकारकम् । त्वयैतत्स्थापितंलिङ्गं तवनाम्नाभविष्यति
वरुणेशमिति ख्यातं वाराणस्यां सुसिद्धिदम् ।
मणिकर्णेशलिङ्गस्य नैर्ऋत्यां दिशि संस्थितम् ॥ ९७ ॥
आराधितं सदापुंसां सर्वजाड्यविनाशकृत् । वरुणेशस्य येभक्तान तेषां मद्भयंक्वचित्
न सन्तापभयं तेषां नापायमरणं क्वचित् । जलोदरभयं नैव न भयं वैतृषः क्वचित्
नीरसान्यन्नपानानि वरुणेश्वरसंस्मृतेः । सरसानि भविष्यन्ति नात्रकार्याविचारणा
इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुर्वरुणोपिस्वबन्धुभिः । इमंलोकमलंकुर्वंस्तदारभ्यस्थितोद्विजः
इदं वरुणलोकस्य स्वरूपन्ते निरूपितम् ।
यच्छ्रुत्वा न नरः क्वापि दुरपायैः प्रबाध्यते ॥ १०२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे निर्ऋतिवरुणलोकवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

गन्धवत्यलकावर्णनम्

गणावूचतुः

इमां गन्धवतीं पुण्यां पुरींवायोर्विलोकय । वारुण्याउत्तरे भागे महाभाग्यनिधेद्विज!

अस्यां प्रभञ्जनो नाम जगत्प्राणो दिगीश्वरः ।
आराध्य श्रीमहादेवं दिक्पालत्वमवाप्तवान् ॥ २ ॥

पुरा कश्यपदायादः पूतात्मेति च विश्रुतः । धूर्जटे राजधान्यां सचचार विपुलंतपः
वाराणस्यां महाभागोवर्षाणामयुतं शतम् । स्थापयित्वामहालिङ्गं पावनंपवनेश्वरम्
यस्य दर्शनमात्रेण पूतात्मा जायतेनरः । पापकञ्चुकमुत्सृज्य स वसेत्पावने पुरे ॥

ततस्तस्योग्रतपसा तपसां फलदः शिवः ।
आविरासीत्ततो लिङ्गाज्योतीरूपो महेश्वरः ॥ ६ ॥

उवाच च प्रसन्नात्मा करुणामृतसागरः । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पूतात्मन् ! वरं वरय सुव्रत!
अनेन तपसोग्रेण लिङ्गस्याराधनेन च । तवादेयं न पूतात्मंस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ८

पूतात्मोवाच

देवदेव! महादेव! देवानामभयप्रद ! । ब्रह्मनारापणेन्द्रादिसर्वदेवपदप्रद !॥ ९ ॥
वेदास्त्वांनचविन्दन्तिकिमात्मकइतिप्रभो !। प्राप्ताःशतपथत्वञ्च नेतिनेतीतिवादिनः
ब्रह्मष्णिवोरपि गिरां गोचरो न चवाकपतेः । प्रमथेशंकथंस्तोतुं मादृशःप्रभवेत्प्रभो!

प्रसह्य प्रमिमीतेश (?) भक्तिर्मां स्तुतिकर्मणि ।
करोमि किं जगन्नाथ! न वश्यानीन्द्रियाणि मे ॥ १२ ॥
विश्वन्त्वं नास्ति वै भेदस्त्वमेकःसर्वगोयतः ।
स्तुत्यं स्तोता स्तुतिस्त्वञ्च सगुणो निर्गुणो भवान् ॥ १३ ॥

सर्गात्पुरा भवानेको रूपनामविवर्जितः । योगिनोपिन ते तत्त्वं विन्दन्ति परमार्थतः

यदैकलो नशक्नोषि रन्तुं स्वैरचर प्रभो !। तदिच्छा तवयोत्पन्ना सेव्या शक्तिरभूत्तव

त्वमेको द्वित्वमापन्नः शिवशक्तिप्रभेदतः ।
त्वं ज्ञानरूपो भगवान् स्वेच्छाशक्तिस्वरूपिणी ॥ १६ ॥
उभाभ्यां शिवशक्तिभ्यां युवाभ्यां निजलीलया ।
उत्पादिता क्रिया शक्तिस्ततः सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥

ज्ञानशक्तिर्भवानीश इच्छाशक्तिरुमास्मृता । क्रियाशक्तिरिदं विश्वमस्यत्वंकारणंततः

दक्षिणाङ्गं तव विधिर्वामाङ्गं तव चाच्युतः ।
चन्द्रसूर्याग्निनेत्रस्त्वं त्वन्निःश्वासः श्रुतित्रयम् ॥ १६ ॥

त्वत्स्वेदादम्बुनिधयस्तवश्रोत्रंसमीरणः । वाहवस्तेदशदिशोमुखन्तेब्राह्मणाः स्मृताः
राजन्यवर्यास्तेबाहू वैश्या ऊरुसमुद्भवाः । पद्भ्यांशूद्रस्तवेशान! केशास्तेजलदाःप्रभो!
त्वं पुं प्रकृतिरूपेण ब्रह्माण्डमसृजःपुरा । मध्ये ब्रह्माण्डमखिलं विश्वमेतच्चराचरम्

अतस्त्वत्तो न मन्येऽहं किञ्चिद्भिन्नं जगन्मय ।
त्वयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतमयो भवान् ॥ २३ ॥

नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यंनमोनमः । अयमेव वरोनाथत्वयिमेऽस्तुस्थिरामतिः
इत्युक्तवति देवेशस्तस्मिन्पूतात्मनिप्रभुः । स्वमूर्तित्वंसमारोप्य दिक्पालपदमादधे
सर्वगो ममरूपेण सर्वतत्त्वाववोधकः । सर्वेषामायुषो रूपं भवानेव भविष्यति ॥
तव लिङ्गमिदंदिव्यंयेद्रक्ष्यन्तीह मानवाः । सर्वभोगसमृद्धास्ते त्वल्लोकसुखभागिनः
पवमानेश्वरं लिङ्गं मध्येजन्म सकृन्नरः । यथोक्तविधिना पूज्यसुगन्धस्नपनादिभिः

सुगन्धचन्दनैः पुष्पैर्मम लोके महीयते ।
जेष्ठेशात्पश्चिमे भागे वायुकुण्डोत्तरेण तु ॥ २६ ॥

पावमानंसमाराध्यपूतोभवतितत्क्षणात् । इतिदत्त्वावरान्देवस्तांस्मलिङ्गेलयंययौ

गणावूचतुः

तिगन्धवतीपुर्याः स्वरूपं तेनिरूपितम् । तस्याःप्राच्यां कुबेरस्य श्रीमत्येपालकापुरी

शम्भोः सखित्वमापेदे नाथोऽस्या भक्तियोगतः ।

निधीनां पद्ममुख्यानां दाता भोक्ता हरार्चनात् ॥ ३२ ॥

शिवशर्मोवाच

कोऽसौ कस्यपुनःकीदृग्भक्तिरस्य सदाशिवे । ययासखित्वमापन्नोदेवदेवस्यधूर्जटेः
इति श्रोतुं मम मनः श्रुतिगोचरतांगतम् । युवयोर्वाक्सुधास्वादमेदुरोदरमन्थरम्

गणावूचतुः

शिवशर्मन्महाप्राज्ञ!परिशुद्धेन्द्रियेश्वर !। सुतीर्थक्षालिताशेषजन्मजातमहामल !॥ ३५
सुहृदि प्रेमसम्पन्ने त्वय्यनुद्यं न किञ्चन । साधुभिः सहसंवादः सर्वश्रेयोऽभिवृद्धये
आसीत्काम्पिल्यनगरेसोमयाजिकुलोद्भवः । दीक्षितोयज्ञदत्ताख्योयज्ञविद्याविशारदः
वेदवेदाङ्गवेदार्थान् वेदोक्ताचारचञ्चुरः । राजमान्योबहुधनो वदान्यःकीर्तिभाजनम्
अग्निशुश्रूषणरतो वेदाध्ययनतत्परः । तस्य पुत्रो गुणनिधिश्चन्द्रबिम्बसमाकृतिः ॥
कृतोपनयनः सोऽथ विद्यां जग्राह भूरिशः । अथ पित्रानभिज्ञातोद्यूतकर्मरतोऽभवत्
आदायादाय बहुशो धनं मातुः सकाशतः । ददाति द्यूतकारेभ्यो मैत्री तैश्चचकार सः

सन्त्यक्तब्राह्मणाचारः सन्ध्यास्नानपराङ्मुखः ।
निन्दको वेदशास्त्राणां देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ ४२ ॥

स्मृत्याचारविहीनस्तु गीतवाद्यविनोदभाक् । नटपाखण्डिभण्डैश्च बद्धप्रेमपरम्परः ॥

प्रेरितोऽपि जनन्या स न याति पितुरन्तिकम् ।
गृहकार्यान्तरव्यग्रो दीक्षितो दीक्षितायिनीम् ॥ ४४ ॥
यदा यदैव तां पृच्छेदये! गुणनिधिः सुतः ।
न दृश्यते मया गेहे क्व याति विदधाति किम् ॥ ४५ ॥

तदातदेति साब्रूयादिदानीं स बहिर्गतः । स्नात्वासमर्च्य वै देवानेतावन्तमनेहसम्
अधीत्याध्ययनार्थं स द्वित्रैर्मित्रैः समंययौ । एकपुत्रेति तन्माताप्रतारयतिदीक्षितम्
न तत्कर्मच तद्वृत्तंकिञ्चिद्वेत्तिसदीक्षितः । सचकेशान्तकर्मास्यकृत्वावर्षेऽथषोडशे
गृह्योक्तेन विधानेन पाणिग्राहमकारयत् । प्रत्यहं तस्य जननी सुतं गुणनिधिंमृदु
शास्ति स्नेहार्द्रहृदया क्रोधनस्ते पितेत्यलम् ।

यदि ज्ञास्यति ते वृत्तं त्वां च मां ताडयिष्यति ॥ ५० ॥
आच्छादयामि ते नित्यं पितुरग्रे कुचेष्टितम् ।
लोकमान्योऽस्ति ते तातः सदचारैर्न वै धनैः ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणानां धनं पुत्र! सद्विद्या साधुसङ्गमः ।
सच्छ्रोत्रियास्त्वनूचाना दीक्षिताः सोमयाजिनः ॥ ५२ ॥
इति रूढिमिह प्राप्तास्तव पूर्वपितामहाः । त्यक्त्वा दुर्वृत्तसंसर्गं साधुसङ्गरतोभव
सद्विद्यासु मनो धेहि ब्राह्मणाचारमाचर । तवानुरूपारूपेण वयसा कुलशीलतः ॥
ऊनविंशतिकोऽसित्वमेषा षोडशवार्षिकी । तवपत्नीगुणनिधे साध्वीमधुरभाषिणी
एतां संवृणु सद्वृत्तां पितृभक्तियुतो भव । श्वशुरोऽपिहितेमान्यःसर्वत्रगुणशीलतः
ततोऽपत्रपसे किं न त्यज दुर्वृत्ततां शिशो !।
मातुलास्तेऽतुलाः पुत्र! विद्याशीलकुलादिभिः ॥ ५७ ॥
तेभ्योऽपि न बिभेषि त्वं शुद्धोऽस्युभयवंशतः ।
पश्यैतान् प्रतिवेश्मस्थान् ब्राह्मणानां कुमारकान् ॥ ५८ ॥
गृहेऽपि शिष्यान्पश्यैतान् पितुस्ते विनयोचितान् ।
राजाऽपि श्रोष्यति यदा तव दुश्चेष्टितं सुत !॥ ५६ ॥
श्रद्धां विहाय ते ताते वृत्तिलोपंकरिष्यति । बालचेष्टितमेवैतद्वदन्त्यद्यापि ते जनाः
अनन्तरं हसिष्यन्ति युक्तं दीक्षितताऽस्त्विवति ।
सर्वेप्याक्षारयिष्यन्ति तव विप्रं च मां च वै ॥ ६१ ॥
मातुश्चरित्रंतनयोधत्तेदुर्भाषणैरिति । पिताऽपितेनपापीयान्श्रुतिस्मृतिपथीनकिम्
तदङ्घ्रिलीनमनसो मम साक्षी महेश्वरः । नचर्तुस्नातयाऽपीहमुखंदुष्टस्यचीक्षितम्
अहोबलीयान् सविधिर्येनजातोभवानिति । प्रतिक्षणंजनन्येतिशिक्ष्यमाणोतिदुर्मदः
न तत्याज च तद्धर्मं दुर्बोधो व्यसनीयतः । मृगयामद्यपैशुन्यवेश्याचौर्यदुरोदरैः ॥
स पारदारैर्व्यसनैरेभिःकोऽत्रनखण्डितः । यद्यन्मध्येगृहे पश्येत्तत्तन्नीत्वा सुदुर्मतिः
अर्पयेद्द्यूतकाराणां सकुप्यं वसनादिकम् । नवरत्नमयींमातुः करतः पितुरूर्मिकाम्

स्वपन्त्यास्त्वेकदाऽऽदाय दुरोदरिकरेऽर्पयत् ।
एकदा गच्छता राजभवनान्निजमुद्रिका ॥ ६८ ॥
दीक्षितेनपरिज्ञातादैवाद्द्यूतकृतः करे । उवाचदीक्षितस्तं च कुतोलब्धात्वयोर्मिका
पृष्टस्तेनाथ निर्बन्धादसकृत्प्रत्युवाच किम् ॥ ६९ ॥
ममाऽऽक्षिपसि विप्रोच्चैः किं मया चौर्यकर्मणा ।
लब्धा मुद्रा त्वदीयेन पुत्रेणैषा ममाऽर्पिता ॥ ७० ॥
मम मातुर्हि पूर्वेद्यु र्जित्वा नीतो हि शाटकः । न केवलं ममाप्येतदङ्गुलीयं समर्पितम्
अन्येषां द्यूतकर्तृणां भूरि तेनार्पितंवसु । रत्नकुप्यदुकूलानि भृङ्गारुप्रभृतीनि च ॥
भाजनानि विचित्राणि कांस्यताम्रमयानि च ।
नग्नीकृत्य प्रतिदिनं वध्यते द्यूतकारिभिः ॥ ७३ ॥
न तेनसदृशः कश्चिद्दाक्षिको भूमिमण्डले । अद्य.यावत्त्वंया विप्र!दुरोदरशिरोमणिः
कथं नाज्ञायितनयोऽविनयानयकोविदः । इति श्रुत्वा त्रपाभारविनम्रतरकन्धरः ॥
प्रावृत्य वाससा मौलिं प्राविशन्निजमन्दिरम् ।
महापतिव्रतामास्यपत्नीं प्रोवाच तामथ ॥ ७६ ॥
दीक्षितायिनि!कुत्रासि क्वतेगुणनिधिःसुतः । अथ तिष्ठतुकिं तेनक्वसाममशुभोर्मिका
अङ्गोद्वर्तनकाले या त्वया मेऽङ्गुलितो हृता । नवरत्नमयी शीघ्रं तामानीयप्रयच्छमे
इति श्रुत्वाथ तद्वाक्यं भीता सा दीक्षितायिनी ।
प्रोवाच सा तु माध्याह्नीं क्रियां निष्पादयत्वथ ॥ ७९ ॥
व्यग्राऽस्मि देवपूजार्थमुपहारादिकर्मणि । समयोयमतिक्रामेदतिथीनां प्रियातिथे
इदानीमेव पक्वान्नकरणव्यग्रयामया । स्थापिताभाजने क्वापिविस्मृतेति नवेद्म्यहम्

दीक्षित उवाच

हं होसत्पुत्रजननिनित्यं सत्यप्रभाषिणि!। यदायदात्वांसंपृच्छेतनयःक्वगतस्त्विति
तदा तदेति त्वं ब्रूया नाथेदानींसनिर्गतः । अधीत्याध्ययनार्थंचद्वित्रैर्मित्रैःसयुग्बहिः
कुतस्त्वच्छाटकः पत्नि! माञ्जिष्ठो यो मयाऽर्पितः ।

लम्बते वस्त्रधान्यां यस्तथ्यं ब्रूहि भयं त्यज ॥ ८४ ॥
साम्प्रतं नेक्ष्यते सोऽपि भृङ्गारुर्मणिमण्डितः । पट्टसूत्रमयीसापित्रिपटाकनृपार्पिता
क दाक्षिणात्यं तत्कांस्यं गौडी ताम्रघटी क सा ।
नागदन्तमयी सा क सुखकौतुकमञ्चिका ॥ ८६ ॥
कसापर्वतदेशीयाचन्द्रकान्तशिलोद्भवा । दीपिकाव्यग्रहस्ताग्रासालंकृच्छालभञ्जिका
किं बहूक्तेन कुलजे! तुभ्यं कुप्याम्यहं वृथा । तदाभ्यवहरिष्येहमुपयंस्याम्यहं यदा
अनपत्योऽस्मितेनाहंदुष्टेनकुलदूषिणा । उत्तिष्ठानयदर्भाम्बु तस्मैदद्यांतिलाञ्जलिम्
अपुत्रत्वं वरं नृणां कुपुत्रात्कुलपांसनात् ।
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरेषा सनातनी ॥ ९० ॥
स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्मिन्नेवाऽह्नि कस्यचित् ।
श्रोत्रियस्य सुतां प्राप्य पाणिं जग्राह दीक्षितः ॥ ९१ ॥
श्रुत्वा तथा सवृत्तान्तं प्राक्तनं स्वं विनिन्द्य च ।
काञ्चिद्दिशं समालोच्य निर्ययौ दीक्षिताङ्गजः ॥ ९२ ॥
चिन्तामवाप महतीं क यामि करवाणि किम् ।
नाहमभ्यस्तविद्योऽस्मि न चैवास्तिधनोऽस्म्यहम् ॥ ९३ ॥
देशान्तरे ह्यस्तिधनःसद्विद्यःसुखमेधते । भयमस्ति धने चौरात्सविद्यःसर्वतोऽभयः
यायजूककुले! जन्म क्व क्व मे व्यसनं तथा ।
अहो बलीयान् स विधिर्भाविकर्मानुसन्धयेत् ॥ ९५ ॥
भिक्षितुं नाधिगच्छामि न मे परिचितः क्वचित् ।
न च पार्श्वे धनं किञ्चित्किमत्र शरणं भवेत् ॥ ९६ ॥
सदानभ्युदिते भानौ प्रसूर्मेमृष्टभोजनम् । दद्याद्द्यात्र कं याचे याचेह जननी न मे ॥
इति चिन्तयतस्तस्य भानुरस्ताचलं गतः । एतस्मिन्नेव समयेकश्चिन्माहेश्वरो नरः
महोपहारानादाय नगराद्ब बहिरभ्यगात् । समभ्यर्चितुमीशानं शिवरात्रावुपोषितः
पक्वान्नगन्धमाघ्राय क्षुधितःसतमन्वगात् । इदमन्नं मया ग्राह्यंशिवायोपस्कृतंनिशि

इत्याशामवलम्ब्याथद्वारि शम्भोरुपाविशत् । ददर्श च महापूजांतेन भक्तेननिर्मिताम्
विधाय नृत्यगीतादि भक्ताः सुप्ताःक्षणं यदा । नैवेद्यं स तदादातुं गर्भागारंविवेशह
दीपं मन्दप्रभं दृष्ट्वा पक्वान्नावेक्षणाय सः । निजचैलाञ्चलाद्वर्त्तिं दत्त्वा समुददीपयत्
ततः पक्वान्नमादाय त्वरितंगच्छतोवहिः । तस्यपादतलाघातात्प्रसुप्तःकोप्यबुध्यत
कोयं कोयं त्वरापन्नश्चोरोऽयं गृह्यतामिति । यावद्ब्रूयात्समागत्यतावत्सपुररक्षकैः
पलायमानो निहतःक्षणात्पञ्चत्वमागतः । अभक्षयच्च नैवेद्यं भाविपुण्यवलान्न सः ॥
अथ बद्धःसमागत्य पाशुमुद्गरपाणिभिः । निनीषुभिःसंयमिनीं यामैःसविकटैर्भटैः ॥

तावत्पारिषदाःप्राप्ताः किङ्किणीजालमालितम् ।
दिव्यं विमानमादाय तं नेतुं शूलपाणयः ॥ १०८ ॥

शम्भोर्गणान्समालोक्यभीतैस्तैर्यमकिङ्करैः । अवादिप्रणतैरित्थंदुर्वृत्तोयंगणाद्विजः
कुलाचारप्रतीपोयंपित्रोर्वाक्यपराङ्मुखः । सत्यशौचपरिभ्रष्टःसन्ध्यास्नानविवर्जितः

आस्तां दूरेऽस्य कर्माणि शिवनिर्माल्यहारकः ।
प्रत्यक्षतोऽत्र वीक्षध्वमस्पृश्योयं भवादृशाम् ॥ १११ ॥
शिवनिर्माल्यभोक्तारः शिवनिर्माल्यलङ्घकाः ।
शिवनिर्माल्यदातारःस्पर्शस्तेषां ह्यपुण्यकृत् ॥ ११२ ॥

विषमालोड्य वा पेयं श्रेयोवाऽनशनं परम् । सेवितव्यंशिवस्वंनप्राणैःकण्ठगतैरपि
यूयं प्रमाणं धर्मेषु यथानचतथावयम् । अस्तिचेद्धर्मलेशोस्य गणास्तच्छृणुमोवयम्

इत्थं तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रोचुः पारिषदास्ततः ।
किङ्कराः शिवधर्मा ये सूक्ष्मास्ते वै भवादृशैः ॥ ११५ ॥

स्थूललक्ष्यैः कथंलक्ष्या लक्ष्यायेसूक्ष्मदृष्टिभिः । अनेनानेनसाकर्म यत्कृतंशृणुतेह तत्
पतन्तीलिङ्गशिरसिदीपच्छायानिवारिता । स्वचैलाञ्चलतोऽनेनदत्त्वादापेदशांनिशि
अपरोपि परोधर्मो जातस्तत्रास्य किङ्कराः । शृण्वताशिवनामानि प्रसङ्गादपिगृह्णता
भक्तेन विधिना पूजा क्रियमाणानिरीक्षता । उपोषितेनभूतायामनेन स्थिरचेतसा
कलिङ्गराजोभविताऽधुना विधुतकल्मषः । एष द्विजवरो दूता यूयं यातयथागताः

पार्षदैर्यमदूतेभ्यो मोचितस्त्विवति सद्विजः । अरिन्दमस्यतनयःकलिङ्गाधिपतेर्दमः
क्रमाद्राज्यमवाप्याथ पितुर्युपरते युवा । नान्यं धर्मं विजानाति दुर्दमो भूपतिर्दमः
शिवालयेषु सर्वेषु दीपदानादृते द्विज! ।
ग्रामाधीशान् समाहूय सर्वान् स्वविषयस्थितान् ॥ १२३ ॥
इत्थमाज्ञापयामास स मे दण्ड्यो भविष्यति ।
यस्य यस्याभितो ग्रामं यावन्तश्च शिवालयाः ॥ १२४ ॥
तत्र तत्र सदा दीपो द्योतनीयोऽविचारितम् ।
ममाज्ञाभङ्गदोषेण शिरश्छेत्स्याम्यसंशयम् ॥ १२५ ॥
इतितद्भयतोदीप्ता दीपाः प्रतिशिवालयम् । अनेनैवसधर्मेण यावज्जीवं दमो नृपः
धर्मर्द्धिं महतीं प्राप्यकालधर्मवशंगतः । सदीपवासनायोगाद्बहून् दीपान् प्रदीप्य वै
अलकायाः पतिरभूद्रत्नदीपशिखाश्रयः । एवं फलति कालेन शिवेऽल्पमपि यत्कृतम्
इतिज्ञात्वा शिवेकार्यंभजनंस्वसुखार्थिभिः । क्वसदीक्षितदायादःसर्वधर्मपराङ्मुखः
स्वार्थदीपदशोद्योतलिङ्गमौलितमो हरः । कलिङ्गविषये राज्यं प्राप्तोधर्मरतिः सदा
शिवालये समुद्दीप्य दीपान् प्राग्वासनोदयात् ।
क्वैषा दिक्पालपदवी शिवशर्मन्!विलोकय । मनुष्यधर्मणानेनसाम्प्रतं येहभुज्यते

गणावूचतुः

सर्वदैव शिवेनासौ सखित्वञ्च यथेयिवान् । तदप्येकमना विप्र संशृणुष्व ब्रवावहै
पाद्मेकल्पेपुराविप्र! ब्रह्मणोमानसात्सुतात् । पुलस्त्याद्विश्रवाजज्ञेतस्यवैश्रवणःसुतः
तेनेयमलका भुक्तापुरीविश्वकृताकृता । आराध्यत्र्यम्बकंदेवमत्युग्रतपसा पुरा ॥१३४
व्यतीतेतत्र कल्पे वै प्रवृत्ते मेघवाहने । याज्ञदत्तिरसौ श्रीदस्तपस्तेपे सुदुःसहम्
भक्तिप्रभावं विज्ञाय शम्भोस्तद्दीपमात्रतः ।
पुरीं पुरारेःसम्प्राप्य काशिकाञ्चित्प्रकाशिकाम् ॥ १३६ ॥
शिवैकदशमुद्बोध्यचित्तरत्नप्रदीपकम् । अनन्यभक्तिस्नेहाढ्यं तन्महोध्याननिश्चलम्
शिवैक्यसुमहापात्रं तपोग्निपरिबृंहितम् । कामक्रोधमहाविघ्नपतङ्गाघातवर्जितम्

प्राणसंरोधनिर्वातंनिर्मलंनिर्मलेक्षणात् । संस्थाप्यशाम्भवंलिङ्गंसद्भावकुसुमार्चितम्
तावत्ततापं स तपस्त्वगस्थिपरिशोषितम् । यावद् बभूव तद्वर्ष्म वर्षाणामयुतंशतम्
ततः सह विशालाक्ष्या देवो विश्वेश्वरःस्वयम् ।
अलकापतिमालोक्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ १४१ ॥
लिङ्गे मनःसमाधाय स्थितं स्थाणुस्वरूपिणम् ।
उवाच वरदोऽस्मीति तप्त्वाऽलमलकापते !॥ १४२ ॥
उन्मील्य नयने यावत्सपश्यति तपोधनः । तावदुद्यत्सहस्रांशुसहस्राधिकतेजसम्
पुरोददर्श श्रीकण्ठं चन्द्रचूडमुमाधवम् । तत्तेजः परिभूताक्षितेजाःसंमील्य लोचने !
उवाच देवदेवेशं मनोरथपथातिगम् । निजाङ्घ्रिदर्शनेनाथदृक्सामर्थ्यं प्रयच्छ मे
अयमेव वरो नाथ! यत्त्वं साक्षान्निरीक्ष्यसे ।
किमन्येन वरेणेश! नमस्ते शशिशेखर! ॥ १४६ ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा देवदेव उमापतिः । ददौदर्शनसामर्थ्यं स्पृष्ट्वापाणितलेन तम् ॥
प्रसार्य नयने पूर्वमुमामेव व्यलोकयत् । शम्भोः समीपेकायोषिदेषा सर्वाङ्गसुन्दरी
अनया किन्तपस्तप्तं ममापि तपसोधिकम् ।
अहो रूपमहो प्रेम सौभाग्यश्रीरहो भृशम् ॥ १४६ ॥
क्रूरदृग्वीक्षते यावत्पुनःपुनरिदं वदन् । तावत्पुस्फोट तन्नेत्रं वामं वामविलोकनात्
अथ देव्यब्रवीद्देवं किमसौ दुष्टतापसः ।
असकृद्वीक्ष्य मां वक्ति न्यक्कुर्वन्मे तपःप्रभाम् ॥ १५१ ॥
असकृद्दक्षिणेनाक्ष्णापुनर्मामेव पश्यति । असूयमानो मे रूपंप्रेमसौभाग्यसम्पदः ॥
इतिदेवागिरं श्रुत्वा प्रहस्य प्राह तां प्रभुः । उमेत्वदीयःपुत्रोऽयंनचक्रूरेण चक्षुषा
संपश्यते तपोलक्ष्मीं तव किन्त्वधिवर्णयेत् ।
इति देवीं समाभाष्य तमीशः पुनरब्रवीत् ॥ १५४ ॥
वरान्ददामिते वत्स! तपसाऽनेन तोषितः । निधीनामधिनाथस्त्वंगुह्यकानांभवेश्वरः
यक्षाणां किन्नराणां च राजा राज्ञाञ्च सुव्रत ! ।

पतिःपुण्यजनानाञ्च सर्वेषां धनदो भव ॥ १५६ ॥
मयासख्यञ्चतेनित्यं वत्स्यामिच तवान्तिके। अलकांनिकषामित्रतवप्रीतिविवृद्धये
आगच्छपादयोरस्याः पततेजननीत्वियम्। इतिदत्त्वावरान्देवः पुनराह शिवांशिवः
प्रसादं कुरु देवेशि! तपस्विन्यङ्गजेऽत्र वै ॥ १५८ ॥

देव्युवाच

वत्स! ते निश्चलाभक्तिर्भवे भवतु सर्वदा। भवैकपिङ्गोनेत्रेण वामेन स्फुटितेन ह
देवेन दत्ता ये तुभ्यं वराः सन्तु तथैव ते। कुवेरोभवनाम्नात्वं ममरूपेर्ष्यया सुत!
त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं तवनाम्नाभविष्यति। सिद्धिदंसाधकानाञ्चसर्वपापहरंपरम्
न धनेन वियुज्येत न सख्या न च बान्धवैः। कुबेरेश्वरलिङ्गस्य कुर्याद्यो दर्शनं नरः
विश्वेशाद्दक्षिणे भागे कुबेरेशं समर्चयेत्। नरोलिप्येतनो पापैर्नदारिद्र्येणनोऽसुखैः
इतिदत्त्वा वरान्देवो देव्यासह महेश्वरः। धनदायाविवेशाथ धामवैश्वेश्वरं पदम्

गणावूचतुः

इत्थं सखित्वं श्रीशम्भोः प्रापैष धनदःपरम्। अलकां निकषाचैषकैलासः शङ्करालयः
पुर्या यक्षेश्वराणान्ते स्वरूपमिति वर्णितम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो नरो मुच्येदसंशयम् ॥ १६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
पूर्वार्द्धे गन्धवत्यलकावर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सोमलोकवर्णनम्

गणावूचतुः

अलकायाः पुरोभागे पूरैशानीमहोदया । अस्यां वसन्ति सततं रुद्रभक्तास्तपोधनाः
शिवस्मरणसंसक्ताः शिवव्रतपरायणाः । शिवसात्कृतकर्माणः शिवपूजारताः सदा
साभिलाषास्तपस्यन्तिस्वर्गभोगोस्त्वितीह नः । तेऽत्र रुद्रपुरे रम्ये रुद्ररूपधरानराः
अजैकपादहिर्बुध्न्यमुख्या एकादशापि वै । रुद्राः परिवृढाश्चात्र त्रिशूलोद्यतपाणयः
पुर्यष्टकञ्च दुष्टेभ्यो देवध्रुग्भ्यो ह्यवन्ति ते ।
प्रयच्छन्ति वरान्नित्यं शिवभक्तजने वराः ॥ ५ ॥
एतैरपि तपस्तप्तं प्राप्यवाराणसीं पुरीम् । ईशानेशंमहालिङ्गं परिस्थाप्य शुभप्रदम्
ईशानेशप्रसादेन दिश्यैश्यां हिदिगीश्वराः । एकादशाप्येकचरा जटामुकुटमण्डिताः
भालनेत्रानीलगलाःशुद्धाङ्गावृषभध्वजाः । असङ्ख्याताःसहस्राणियेरुद्राअधिभूतलम्
तेऽस्यांपुरिवसन्त्यैश्यां सर्वभोगसमृद्धयः । ईशानेशंसमभ्यर्च्य काश्यांदेशान्तरेष्वपि
विपन्नास्तेन पुण्येन जायन्तेऽत्र पुरोहिताः ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामीशानेशं यजन्ति ये ॥ १० ॥
त एव रुद्रा विज्ञेया इहामुत्राप्यसंशयम् । कृत्वा जागरणं रात्रावीशानेश्वरसन्निधौ
उपोष्य भूतां यां काञ्चिन्न नरो गर्भभाक् पुनः ।
स्वर्गमार्गे कथामित्थं शृण्वन् विष्णुगणोदिताम् ॥ १२ ॥
शिवशर्मादिवाप्युच्चैरपश्यच्चन्द्रचन्द्रिकाम् । आह्लादयन्तींबहुशः समं सर्वेन्द्रियैर्मनः
चमत्कृत्यचमत्कृत्य कोयंलोकोहरेर्गणौ । पप्रच्छशिवशर्मातौप्रोचतुस्तञ्चतौद्विजम्

गणावूचतुः

शिवशर्मन्महाभाग लोक एष कलानिधेः । पीयूषवर्षिभिर्यस्यकरैराप्याय्यते जगत्

पितासोमस्यभोविप्रजज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः । ब्रह्मणोमानसात्पूर्वं प्रजासर्गंविधित्सतः
अनुत्तरं नामतपोयेन तप्तं हि तत्पुरा । त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीतीहनौ श्रुतम्
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेतः सोमत्वमीयिवत् ।
नेत्राभ्यां तच्च सुस्राव दशधा द्योतयद्दिशः ॥ १८ ॥
तं गर्भं विधिनादिष्टा दशदेव्यो दधुस्ततः । समेत्य धारयामासुर्नैवताः समशक्नुवन्
यदानधारणेशक्तास्तस्यगर्भस्यतादिशः । ततस्ताभिःसजूःसोमोनिपपातवसुन्धराम्
पतितंसोममालोक्य ब्रह्मालोकपितामहः । रथमारोपयामास लोकानांहितकाम्यया
स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम् ।
त्रिः सप्तकृत्वो द्रुहिणश्चकारामुं प्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥
तस्ययत्प्लावितंतेजःपृथिवीमन्वपद्यत । तथौषध्यःसमुद्भूतायाभिःसन्धार्यतेजगत्
स लब्धतेजा भगवान् ब्रह्मणा वर्धितः स्वयम् ।
तपस्तेपे महाभाग ! पद्मानां दशतीर्दश ॥ २४ ॥
अविमुक्तं समासाद्य क्षेत्रं परमपावनम् । संस्थाप्य लिङ्गममृतं चन्द्रेशाख्यंस्वनामतः
वीजौषधीनांतोयानां राजाभूदग्रजन्मनाम् । प्रसादाद्देवदेवस्यविश्वेशस्यपिनाकिनः
तत्र कूपं विधायैकममृतोदमिति स्मृतम् ।
यस्याम्बुपानस्नानाभ्यां नरोऽज्ञानात्प्रमुच्यते ॥ २७ ॥
तुष्टेनदेवदेवेनस्वमौलौ योधृतःस्वयम् । आदाय तांकलामेकां जगत्सञ्जीवनींपराम्
पश्चाद्दक्षेण शप्तोऽपि मासोने क्षयमाप्य च । आप्याय्यतेऽसौकलयापुनरेवतयाशशी
सतत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सोमवतां वरः । राजसूयं समाजह्रे सहस्रशतदक्षिणम्
दक्षिणामददत्सोमस्त्रीँल्लोकानिति नौ श्रुतम् ।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भोद्विज !॥ ३१ ॥
हिरण्यगर्भोब्रह्माऽत्रिर्भृगुर्यत्रर्त्विजोऽभवन् । सदस्योभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृतः
तंसिनीचकुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिःप्रभावसुः । कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नवदेव्यःसिषेविरे
मया सहितंरुद्रं सन्तर्प्याध्वरकर्मणा । प्राप सोमइतिख्यातिं दत्तां सोमेन शम्भुना

तत्रैव तप्तवान् सोमस्तपः परमदुष्करम् ।
तत्रैव राजसूयश्च चक्रे चन्द्रेश्वराग्रतः ॥ ३५ ॥
तत्रैव ब्राह्मणैः प्रीतैरित्युक्तोऽसौ कलानिधिः ।
सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा त्रैलोक्यदक्षिणः ॥ ३६ ॥
तत्रैव देवदेवस्य विलोचनपदंगतः । देवेन प्रीतमनसा त्रैलोक्याह्लादहेतवे ॥ ३७ ॥
त्वं ममास्यपरामूर्तिरित्युक्तस्तत्तपोबलात् । जगत्तवोदयंप्राप्यभविष्यतिसुखोदयम्
त्वत्पीयूषमयैर्हस्तैः स्पृष्टमेतच्चराचरम् । भानुतापपरीतञ्च परां ग्लानिं विहास्यति
एतदुक्त्वा महेशानो वरानन्यानदान्मुदा । द्विजराज!तपस्तप्तं यदत्युग्रं त्वयात्र वै ॥
यच्च क्रतुक्रियोत्सर्गस्त्वया मह्यं निवेदितः ।
स्थापितं यच्चिदं लिङ्गं मम चन्द्रेश्वराभिधम् ॥ ४१ ॥
ततोऽत्रलिङ्गेत्वन्नाम्निसोमसोमार्धरूपधृक् । प्रतिमासंपञ्चदश्यांशुक्लायांसर्वगोप्यहम्
अहोरात्रं वसिष्यामि त्रैलोक्यैश्वर्यसंयुतः ।
ततोऽत्र पूर्णिमायां तु कृता स्वल्पाऽपि सत्क्रिया ॥ ४३ ॥
जपहोमार्चनध्यानदानब्राह्मणभोजनम् । महापूजा च सा नूनं मम प्रीत्यै भविष्यति
जीर्णोद्धारादिकरणंनृत्यवाद्यादिकार्पणम् । ध्वजारोपणकर्मादितपस्विवयतितर्पणम्
चन्द्रेश्वरे कृतंसर्वं तदानन्त्याय जायते । अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि शृणुगुह्यं कलानिधे!
अभक्ताय च नाऽऽख्येयं नास्तिकाय श्रुतिद्रुहे ।
अमावास्या यदा सोम! जायते सोमवासरे ॥ ४७ ॥
तदोपवासःकर्तव्यो भूतायांसद्भिरादरात् । कृतनित्यक्रियः सोमत्रयोदश्यांनिशामय
शनिप्रदोषे संपूज्य लिङ्गं चन्द्रेश्वराह्वयम् । नक्तं कृत्वा त्रयोदश्यां नियमंपरिगृह्य च
उपोष्य च चतुर्दश्यां कृत्वा जागरणं निशि ।
प्रातः सोमकुहूयोगे स्नात्वा चन्द्रोदवारिभिः ॥ ५० ॥
उपास्यसन्ध्यांविधिवत्कृतसर्वोदकक्रियः । उपचन्द्रोदतीर्थेषु श्राद्धंविधिवदाचरेत्
आवाहनार्घ्यरहितं पिण्डान्दद्यात्प्रयत्नतः । वसुरुद्रादितिसुतस्वरूपपुरुषत्रयम् ॥

मातामहांस्तथोद्दिश्य तथाऽन्यानपि गोत्रजान् ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां नामान्युच्चार्य पिण्डदः ॥ ५३ ॥
कुर्वञ्छ्राद्धश्च तीर्थेऽस्मिन् श्रद्धयोद्धरतेऽखिलान् ।
गयायां पिण्डदानेन यथा तुष्यन्ति पूर्वजाः ॥ ५४ ॥
तथा चन्द्रोदकुण्डेऽत्र श्राद्धैस्तृप्यन्ति पूर्वजाः ।
गयायाञ्च यथा मुच्येत्सर्वर्णात्पितृजान्नरः ॥ ५५ ॥
तथाप्रमुच्यते चर्णाच्चन्द्रोदेपिण्डदानतः । यदाचन्द्रेश्वरंद्रष्टुं यायात्कोपिनरोत्तमः
तदा नृत्यन्ति मुदितास्तत्पूर्वप्रपितामहाः ।
अयं चन्द्रोदतीर्थेस्मिंस्तर्पणं नः करिष्यति । ॥ ५७ ॥
अस्माकं मन्दभाग्यत्वाद्यदिनैवकरिष्यति । तदातत्तीर्थसंस्पर्शादस्मत्तृप्तिर्भविष्यति
स्पृशेन्नापि यदा मन्दस्तदाद्रक्ष्यति तृप्तये । एवं श्राद्धं विधायाथस्पृष्ट्वाचन्द्रेश्वरंव्रती
सन्तर्प्य विप्रांश्च यतीन् कुर्याद्वै पारणं ततः ॥ ५९ ॥
एवं व्रतेकृते काश्यां सदर्शेसोमवासरे । भवेद्दृणत्रयान्मुक्तोमृगाङ्क! मदनुग्रहात् ॥
अत्र यात्रा महाचैत्त्यांकार्या क्षेत्रनिवासिभिः । तारकज्ञानलाभायक्षेत्रविघ्ननिवर्तिनी
चन्द्रेश्वरं समभ्यर्च्य यद्यन्यत्रापि संस्थितः ।
अघौघपटलीं भित्त्वा सोमलोकमवाप्स्यति ॥ ६२ ॥
कलौ चन्द्रेशमहिमा नाभाग्यैरवगम्यते । अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि परं गुह्यंनिशापते!
सिद्धयोगीश्वरं पीठमेतत्साधकसिद्धिदम् । सुरासुरेषु गन्धर्वनागविद्याधरेष्वपि
रक्षोगुह्यकयक्षेषु किन्नरेषु नरेषु च । सप्तकोट्यस्तु सिद्धानामत्र सिद्धाममाग्रतः ॥
षण्मासं नियताहारो ध्यायन् विश्वेश्वरीमिह ।
चन्द्रेश्वरार्चनायातान् सिद्धान् पश्यति सोऽग्रगान् ॥ ६६ ॥
सिद्धयोगीश्वरी साक्षाद्वरदा तस्य जायते ।
तवापि महती सिद्धिः सिद्धयोगीश्वरीक्षणात् ॥ ६७ ॥
सन्ति पीठान्यनेकानि क्षितौ साधकसिद्धये ।

परं योगीश्वरीपीठाद्भूपृष्ठेनाशु सिद्धिदम् ॥ ६८ ॥
यत्र चन्द्रेश्वरं लिङ्गं त्वयेदंस्थापितं शशिन् !। इदमेवहि तत्पीठमदृश्यमकृतात्मभिः
जितकामा जितक्रोधा जितलोभस्पृहास्मिताः ।
योगीश्वरीं प्रपश्यन्ति मम शक्तिं परां हि ताम् ॥ ७० ॥
ये तुप्रत्यष्टमिजनास्तथाप्रतिचतुर्दशि । सिद्धयोगीश्वरीपीठेपूजयिष्यन्तिभाविताः
अदृष्टरूपां सुभगां पिङ्गलां सर्वसिद्धिदाम् ।
धूपनैवेद्यदीपाद्यैस्तेषामाविर्भविष्यति ॥ ७२ ॥
इतिदत्त्वा वराञ्च्छम्भुस्तस्मै चन्द्रमसे द्विज !। अन्तर्हितो महेशानस्तत्रवैश्वेश्वरेपुरे
तदारभ्य चलोकेऽस्मिन् द्विजराजोधिपोभवत् ।
दिशो वितिमिराः कुर्वन्निजैः प्रसृमरैः करैः ॥ ७४ ॥
सोमवारव्रतकृतः सोमपानरता नराः । सोमप्रभेण यानेन सोमलोकं वसन्ति हि ॥
चन्द्रेश्वरसमुत्पत्तिं तथा चान्द्रमसं तपः ।
यः श्रोष्यति नरो भक्त्या चन्द्रलोके स इज्यते ॥ ७६ ॥

अगस्तिरुवाच

शिवशर्मणि शर्मकारिणीं पथि दिव्ये श्रमहारिणीं गणौ !।
कथयन्तौ तु कथामिमां शुभामुडुलोकं परिजग्मतुस्ततः ॥ ७७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे सोमलोकवर्णनंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

नक्षत्रबुधलोकयोर्वर्णनम्

अगस्तिरुवाच

श्रृणु पत्नि! महाभागे! लोपामुद्रे! सधर्मिणि !।
कथां विष्णुगणाभ्याञ्च कथितां शिवशर्मणे ॥ १ ॥

शिवशर्मोवाच

अहो! गणौ! विचित्रेयं श्रुता चान्द्रमसी कथा ।
उडुलोककथां ख्यातं विष्वगाख्यानकोविदौ !॥ २ ॥

गणावूचतुः

पुरासिसृक्षतः सृष्टिं स्रष्टुरङ्गुष्ठपृष्ठतः । दक्षः प्रजाविनिर्माणे दक्षो जातः प्रजापतिः
षष्टिर्दुहितरस्तस्यतपोलावण्यभूषणाः । सर्वलावण्यरोहिण्योरोहिणीप्रमुखाःशुभाः
ताभिस्तप्त्वा तपस्तीव्रं प्राप्य वैश्वेश्वरींपुरीम् ।
आराधितो महादेवः सोमः सोमविभूषणः ॥ ५ ॥
यदा तुष्टोऽयमीशानोदातुंवरमथाययौ । उवाच च प्रसन्नात्मायाचध्वं वरमुत्तमम्
शम्भोर्वाक्यमथाकर्ण्यऊचुस्ताश्च कुमारिकाः ।
यदि देयोवरोऽस्माकं वरयोग्याः स्म शङ्कर !॥ ६ ॥
भवतोपि महादेव भवतापहरो हि यः । रूपेण भवता तुल्यः स नो भर्ता भवत्विति
लिङ्गं संस्थाप्य सुमहन्नक्षत्रेश्वरसंज्ञितम् । वरणायास्तटे रम्ये सङ्गमेश्वरसन्निधौ
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु पुरुषायितसंज्ञितम् । तपस्तप्तं महत्ताभिः पुरुषैरपि दुष्करम्॥
ततस्तुष्टो हि विश्वेशो व्यतरद्वरमुत्तमम् । सर्वासामेकपत्नीनामेकत्रस्थिरचेतसाम्

श्रीविश्वेश्वर उवाच

नक्षान्तं हि तपोऽत्युग्रमेतदन्याभिरीदृशम् । पुराऽबलाभिस्तस्माद्वोनामनक्षत्रमत्रवै

पुरुषायितसंज्ञेन तप्तं यस्तपसाऽधुना । भवतीभिस्ततःपुंस्त्वमिच्छया वोभविष्यति
ज्योतिश्चक्रे समस्तेऽस्मिन्नग्रगण्या भविष्यथ ।
मेषादीनाञ्च राशीनां योनयो यूयमुत्तमाः ॥ १४ ॥
ओषधीनांसुधायाश्चब्राह्मणानांच यः पतिः । पतिमत्योभवत्योपितेनपत्याशुभाननाः
भवतीनामिदं लिङ्गं नक्षत्रेश्वरसंज्ञितम् । पूजयित्वा नरो गन्ता भवतीलोकमुत्तमम्
उपरिष्टान्मृगाङ्कस्य लोको वस्तु भविष्यति ।
सर्वासां तारकाणाञ्च मध्ये मान्या भविष्यथ ॥ १७ ॥
नक्षत्रपूजका ये च नक्षत्रव्रतचारिणः । ते वो लोके वसिष्यन्ति नक्षत्रसदृशप्रभाः ॥
नक्षत्रग्रहराशीनांबाधास्तेषां कदाचन । न भविष्यन्तिये काश्यां नक्षत्रेश्वरवीक्षकाः

अगस्त्य उवाच

अतिथित्वमवाप नेत्रयोर्बुधलोकः शिवशर्मणस्तथ ।
गणयोर्भगणस्य संकथां कथयित्रोरिति विष्णुचेतसोः ॥ २० ॥

शिवशर्मोवाच

कस्यलोकोयमतुलो ब्रूतं श्रीभगवद्गणौ । पीयूषभानोरिव मे मनः प्रीणयतेतराम् ॥

गणावूचतुः

शिवशर्मन्शृणुकथामेतांपापापहारिणीम् । स्वर्गमार्गविनोदायतापत्रयविनाशिनीम्
योऽसौपूर्वंमहाकान्तिरावाभ्यांपरिवर्णितः । साम्राज्यपदमापन्नोद्विजराजस्तवाग्रतः
दक्षिणाराजसूयस्य येनत्रिभुवनं कृता । तपस्तताप योऽत्युग्रं पद्मानां दशतीर्दश ॥
अत्रिनेत्रसमुद्भूतःपौत्रो वैद्रुहिणस्य यः । नाथः सर्वौषधीनांचज्योतिषांपतिरेवच
निर्मलानां कलानां च शेवधिर्यश्च गीयते । उद्यन्परोपतापं यः स्वकरैर्गलहस्तयेत्
मुदं कुमुदिनीनां यस्तनोति जगता सह । दिग्वधूचारुशृङ्गारदर्शनादर्शमण्डलः ॥
किमन्यैर्गुणसम्भारैरतोपि न समं विधोः ।
निजोत्तमाङ्गे सर्वज्ञः कलां यस्यावतंसयेत् ॥ २८ ॥
बृहस्पतेः स वै भार्यामैश्वर्यमदमोहितः । पुरोहितस्यापि गुरोर्भ्रातुराङ्गिरसस्य हि

जहार तरसातारां रूपवान् रूपशालिनीम् । वार्यमाणोपिगीर्वाणैर्बहुदेवर्षिभिः पुनः
नायंकलानिधेर्दोषो द्विजराजस्यतस्यवै । हित्वा त्रिनेत्रंकामेन कस्यनोखण्डितंमनः

ध्वान्तमेतदभितः प्रसारि यत्तच्छमाय विधिना विनिर्मितम् ।
दीपभास्करकरामहौषधं नाधिपत्यतमसस्तु किञ्चन ॥ ३२ ॥
आधिपत्यमदमोहितं हितं शंसितं स्पृशति नो हरेर्हितम् ।
दुर्जनं विहिततीर्थमज्जनैः शुद्धधीरिव विरुद्धमानसम् ॥ ३३ ॥
धिग्धिगेतदधिकर्द्धिचेष्टितं चङ्क्रमेक्षणविलक्षितं यतः ।
वीक्षते क्षणमचारुचक्षषा घातितेन विपदः पदेन च ॥ ३४ ॥
कः कामेन न निर्जितस्त्रिजगतां पुष्पायुधेनाप्यहो ।
कः क्रोधस्य वशङ्गतो न न च को लोभेन सम्मोहितः ॥
योषिल्लोचनभल्लभिन्नहृदयः को नाप्तवानापदम् ।
को राज्यश्रियमाप्य नान्धपदवीं यातोऽपि सल्लोचनः ॥ ३५ ॥
आधिपत्यकमलातिचञ्चला प्राप्यतांचयदिहार्जितंकिल ।
निश्चलं सदसदुच्चकैर्हितं कार्यमार्यचरितैः सदैव तत् ॥ ३६ ॥

न यदाङ्गिरसे तारां स व्यसर्जयदुल्बणः । रुद्रोथ पार्ष्णि जग्राहगृहीत्वाजगवन्धनुः
तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना । उत्सृष्टं देवदेवाय तेन तन्नाशितं ततः ॥
तयोस्तद्युद्धमभवद्घोरं वैतारकामयम् । ततस्त्वकाण्डब्रह्माण्डभङ्गाद्भीतोऽभवद्विधिः
निवार्य रुद्रं समरात्संवर्तानलवर्चसम् । ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥

अथान्तर्गर्भमालोक्य तारां प्राह बृहस्पतिः ।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥ ४१ ॥

इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भंसाचोत्ससर्जह । जातमात्रःसभगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः
ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः । सत्यंब्रूहिसुतःकस्यसोमस्याथबृहस्पतेः
पृच्छ्यमानायदादेवैर्नाहतााराऽतिसत्रपा । तदा साशप्तुमारब्धा कुमारेणाऽतितेजसा
तंनिवार्यतदाब्रह्मातारांपप्रच्छसंशयम् । प्रोवाच प्राञ्जलिःसातंसोमस्येतिपितामहम्

तदा स मूर्ध्न्युपाघ्राय राजागर्भंप्रजापतिः । बुध इत्यकरोन्नाम तस्यबालस्यधीमतः
ततश्च सर्वदेवेभ्यस्तेजोरूपबलाधिकः । बुधः सोमं समापृच्छ्य तपसेकृतनिश्चयः
जगाम काशीं निर्वाणराशिं विश्वेशपालिताम् ।
तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य स स्वनाम्ना बुधेश्वरम् ॥ ४८ ॥
तपश्चचार चात्युग्रमुग्रं संशीलयन्हृदि । वर्षाणामयुतं बालो बालेन्दुतिलकंशिवम् ॥
ततोविश्वपतिः श्रीमान् विश्वेशोविश्वभावनः ।
बुधेश्वरान्महालिङ्गादाविरासीन्महोदयः ॥ ५० ॥
उवाचचप्रसन्नात्माज्योतीरूपोमहेश्वरः । वरंब्रूहि महाबुद्धे ! बुधान्यविबुधोत्तमः ॥
तवानेनातितपसा लिङ्गसंशीलनेन च । प्रसन्नोस्मि महसौम्य!नादेयं त्वयिविद्यते
इति श्रुत्वावचः सोऽथ मेघगम्भीनिःस्वनम् । अवग्रहपरिम्लानसस्यसञ्जीवनोपमम्
उन्मील्य लोचने यावत्पुरःपश्यति बालकः ।
तावल्लिङ्गे ददर्शाथ त्र्यम्बकं शशिशेखरम् ॥ ५४ ॥

बुध उवाच

नमःपूतात्मने तुभ्यं ज्योतीरूप!नमोस्तुते । विश्वरूपनमस्तुभ्यं रूपातीताय ते नमः
नमः सर्वार्तिनाशाय प्रणतानांशिवात्मने । सर्वज्ञायनमस्तुभ्यं सर्वकर्त्रे नमोस्तुते ॥
कृपालवे नमस्तुभ्यं भक्तिगम्याय ते नमः । फलदात्रे च तपसां तपोरूपाय ते नमः
शम्भो!शिव!शिवाकान्त! शान्तश्रीकण्ठशूलभृत् । शशिशेखर!सर्वेशशङ्करेश्वरधूर्जटे!
पिनाकपाणे!गिरिश!शितिकण्ठ!सदाशिव !। महादेव! नमस्तुभ्यंदेवदेव! नमोऽस्तुते
स्तुतिं कर्तुं न जानामि स्तुतिप्रिय! महेश्वर !।
तव पादाम्बुजद्वन्द्वे निर्द्वन्द्वा भक्तिरस्तु मे ॥ ६० ॥
अयमेव वरोनाथ! प्रसन्नोऽसि यदीश्वर !। नान्यं वरं वृणे त्वत्तःकरुणामृतवारिधे!
ततःप्राहमहेशानस्तत्स्तुत्यापरितोषितः । रौहिणेयमहाभाग!सौम्यसौम्यवचोनिधे!
नक्षत्रलोकादुपरि तव लोकोभविष्यति । मध्ये सर्वग्रहाणांच सपर्यांलप्स्यसेपराम्
त्वयेदंस्थापितं लिङ्गंसर्वेषांबुद्धिदायकम् । दुर्बुद्धिहरणं सौम्यत्वल्लोकवसतिप्रदम्

इत्युक्त्वा भगवान् शम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत । बुधः स्वर्लोकमगमद्देवदेवप्रसादतः ॥

गणावूचतुः

काश्यां बुधेश्वरसमर्चनलब्धबुद्धिः संसारसिन्धुमधिगम्य नरो ह्यगाधम् ।
मज्जेन्न सज्जनविलोचनचन्द्रकान्तिः कान्ताननस्त्वधिवसेच्च बुधेऽत्र लोके ॥
चन्द्रेश्वरात्पूर्वभागे दृष्ट्वा लिङ्गं बुधेश्वरम् ।
न बुद्ध्या हीयते जन्तुरन्तकालेऽपि जातुचित् ॥ ६७ ॥
गणौयावत्कथामित्थं चक्रातेबुधलोकगाम् । तावद्विमानं सम्प्राप्तंशुक्रलोकमनुत्तमम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे नक्षत्रबुधलोकयोर्वर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

शुक्रलोकवर्णनम्

गणावूचतुः

शिवशर्मन्! महाबुद्धे! शुक्रलोकोऽयमद्भुतः । दानवानांच दैत्यानांगुरुरत्रवसेत्कविः
पीत्वावर्षसहस्रं वै कणधूमंसुदुः सहम् । यःप्राप्तवान्महाविद्यां मृत्युसञ्जीवनींहरात्
इमां विद्यां न जानाति देवाचार्योऽतिदुष्करम् ।
ऋते मृत्युञ्जयात्स्कन्दात्पार्वत्या गजवक्त्रतः ॥ ३ ॥

शिवशर्मोवाच

कोऽसौशुक्रइतिख्यातोयस्यायंलोकउत्तमः । कथंतेनचविद्याप्तामृत्युसञ्जीवनीहरात्
आचख्यातामिदं देवौ! यदि प्रीतिर्मयि प्रभू! ।
ततस्तौ समाहतुर्देवौ शुक्रस्य परमां कथाम् ॥ ५ ॥
यां श्रुत्वा चापमृत्युभ्योहीयन्तेश्रद्धयायुताः । भूतप्रेतपिशाचेभ्यानभयंचापिजायते

आजौप्रवर्तमानायामन्धकान्धकवैरिणोः । अनिभद्यगिरिव्यूहवज्रव्यूहाधिनाथयोः ॥
अपसृत्य ततोयुद्धादन्धकःशुक्रसन्निधिम् । अधिगम्य बभाषेदमवरुह्यरथात्ततः ॥ ८
भगवंस्त्वामुपाश्रित्य वयं देवांश्च सानुगान् ।
मन्यामहे तृणैस्तुल्यान् रुद्रोपेन्द्रादिकादपि ॥ ९ ॥
कुञ्जरा इव सिंहेभ्यो गरुडेभ्य इवोरगाः । अस्मत्तोबिभ्यतिसुरागुरोयुष्मदनुग्रहात्
वज्रव्यूहमनिर्भेद्यं विविशुर्दैत्यदानवाः । विधूयप्रमथानीकं ह्रदं तापार्दिता इव ॥११
वयं त्वच्छरणं भूत्वापर्वताइवनिश्चलाः । स्थितवाच रामनिःशङ्काब्राह्मणेन्द्र!महाहवे
आप्तभावेन च वयंपादौ तवसुखप्रदौ । सदाराःससुताश्चैव शुश्रूषामो दिवानिशम्
अभिरक्षाभितो विप्र! प्रसन्नःशरणागतान् । पश्यहुण्डंतुहुण्डं च कुजम्भंजम्भमेव च
पाकं कार्त्तस्वनं चैव विपाकं पाकहारिणम् । तं चन्द्रदमनंशूरं शूरामरविदारणम् ॥
प्रमथैर्भीमविक्रान्तै :क्रान्तं मृत्युप्रमाथिभिः ।
सूदितान् पतितांश्चैव द्राविडैरिव चन्दनान् ॥ १६ ॥
या पीत्वा कणधूमंवै सहस्रंशरदां पुरा । वराविद्या त्वया प्राप्तातस्याकालोयमागतः
अथ विद्याफलं तत्ते दैत्यान् सञ्जीवयिष्यतः ।
पश्यन्तु प्रमथाः सर्वे त्वया सञ्जीवितानिमान् ॥ १८ ॥
इत्यन्धकवचःश्रुत्वा स्थिरधीर्भार्गवो मुनिः ।
किञ्चित्स्मितं तदाकृत्वा दानवाधिपमब्रवीत् ॥ १९ ॥
दानवाधिपते! सर्वं तथ्यंयद्भाषितं त्वया । विद्योपार्जनमेतद्धि दानवार्थं मया कृतम्
पीत्वा वर्षसहस्रं वै कणधूमं सुदुःसहम् । एषाप्राप्तेश्वराद्विद्या बान्धवानांसुखावहा
एतयाविद्ययासोऽहंप्रमथैर्मथितान् रणे । उत्थापयिष्येग्लानानिधान्यान्यम्बुधरोयथा
निर्व्रणान्नीरुजःस्वस्थान् सुप्त्वेव पुनरुत्थितान् ।
अस्मिन्मुहूर्ते द्रष्टासि दानवानुत्थितान्नृप ॥ २३ ॥
इत्युक्त्वा दानवपति विद्यामावर्तयत्कविः । एकैकं दैत्यमुद्दिश्यतउत्तस्थुर्धृतायुधाः
वेदाइव सदभ्यस्ताःसमये वा यथाम्बुदाः । । ब्राह्मणेभ्योयथादत्ताश्रद्धयार्थामहापदि

उज्जीवितांस्तुतान् दृष्ट्वा तुहुण्डाद्यान्महासुरान् ।
विनेदुः पूर्वदेवास्ते जलपूर्णा इवाम्बुदाः ॥ २६ ॥
शुक्रेणोज्जीवितान् दृष्ट्वा दानवांस्तान् गणेश्वराः ।
विज्ञाप्यमेव देवेशे ह्येवं तेऽन्योन्यमब्रुवन् ॥ २७ ॥
आश्चर्यरूपे प्रमथेश्वराणां तस्मिंस्तथा वर्तति युद्धयज्ञे ।
अमर्षितो भार्गवकर्म दृष्ट्वा शिलादपुत्रोऽभ्यगमन्महेशम् ॥ २८ ॥
जयेति चोक्त्वा जय योनिमुग्रमुवाचनन्दी कनकावदातम् ।
गणेश्वराणां रणकर्म देवदेवैश्चसेन्द्रैरपिदुष्करं यत् ॥ २६ ॥
तद्भार्गवेणाद्य कृतं वृथा नः सञ्जीव्य तानाजिमृतान्विपक्षान् ।
आवर्त्य विद्यां मृतजीवदात्रीमेकैकमुद्दिश्य सहेलमीश !॥ ३० ॥
तुहुण्डहुण्डादिकुजम्भजम्भविपाकपाकादिमहासुरेन्द्राः ।
यमालयादद्य पुनर्निवृत्ता विद्रावयन्यःप्रमथांश्चरन्ति ॥ ३१ ॥
यदि ह्यसौ दैत्यवरान्निरस्तान्सञ्जीवयेदत्र पुनः पुनस्तान् ।
जयः कुतो नो भविता महेश!गणेश्वराणां कुत एव शान्तिः ॥ ३२ ॥
इत्येवमुक्तः प्रमथेश्वरेण स नन्दिना वै प्रमथेश्वरेशः ।
उवाच देवःप्रहसंस्तदानीं तं नन्दिनं सर्वगणेशराजम् ॥ ३३ ॥
नन्दिन् !प्रयाहि त्वरितोऽतिमात्रं द्विजेन्द्रवर्यं दितिनन्दनानाम् ।
मध्यात्समुद्धृत्य तथाऽऽनयाऽऽशु श्येनो यथा लावकमण्डजातम् ॥ ३४ ॥
स एव मुक्तो वृषभध्वजेन ननाद नन्दी वृषसिंहनादः ।
जगाम तूर्णञ्च विगाह्य सेनां यत्राभवद्भार्गववंशदीपः ॥ ३५ ॥
तं रक्ष्यमाणंदितिजैः समस्तैः पाशासिवृक्षोपलशैलहस्तैः ।
विक्षोभ्य दैत्यान् बलवान् जहार काव्यं स नन्दी शरभो यथेभम् ॥ ३६ ॥
स्रस्ताम्बरं विच्युतभूषणं च विमुक्तकेशं बलिना गृहीतम् ।
विमोचयिष्यन्त इवानुजग्मुः सुरारयःसिंहरवान् सृजन्तः ॥ ३७ ॥

दम्भोलिशूलासिपरश्वधानामुद्दण्डचक्रोपलकम्पनानाम् ।
नन्दीश्वरस्योपरि दानवेन्द्रा ववर्षुर्जलदा इवोग्रम् ॥ ३८ ॥
तं भार्गवं प्राप्य गणाधिराजो मुखाग्निना शस्त्रशतानि दग्ध्वा ।
आयात्प्रवृद्धेऽसुरदेवयुद्धे भवस्य पार्श्वे व्यथितारिसैन्यः ॥ ३९ ॥
अयं सशुक्रो भगवन्नितीदं निवेदयामास भवाय शीघ्रम् ।
जग्राह शुक्रं स च देवदेवो यथोपहारं शुचिना प्रदत्तम् ॥ ४० ॥
न किञ्चिदुक्त्वा स्वहिभूतगोप्ता चिक्षेप वक्त्रे फलवत्कवीन्द्रम् ।
हा हारवस्तैरसुरैः समस्तैरुच्चैर्विमुक्तोहहहेति भूरि ॥ ४१ ॥
काव्ये निगीर्णे गिरिजेश्वरेण दैत्या जयाशा रहिता बभूवुः ।
हस्तैर्विमुक्ता इव वारणेन्द्राः शृङ्गैर्विहीना इवगोवृषाश्च ॥ ४२ ॥
शरीरहीना इव जीवसङ्घाद्द्विजा यथा चाध्ययनेन हीनाः ।
निरुद्यमाः सत्त्वगुणा यथा वैयथोद्यमा भाग्यविवर्जिताश्च ॥ ४३ ॥
पत्याविहीनाश्च यथैव योषा यथा विपक्षा इव मार्गणाघाः ।
आयूंषि हीनानि यथैव पुण्यैर्वृत्तेनहीनानि यथाश्रुतानि ॥ ४४ ॥
विना यथा वैभवशक्तिमेकां भवन्ति हीनाः स्वफलैः क्रियौघाः ।
तथा विना तं द्विजवर्यमेकं दैत्या जयाशाविमुखा बभूवुः ॥ ४५ ॥
नन्दिनापहृतेशुक्रेगिलिते च विषादिना । विषादमगमन् दैत्या हीयमानरणोत्सवाः
तान् वीक्ष्य विगतोत्साहानन्धकः प्रत्यभाषत ।
कविं विक्रम्य नयता नन्दिना वञ्चिता वयम् ॥ ४७ ॥
तनूर्विना हृताः प्राणाःसर्वेषामद्य तेननः । धैर्यं वीर्यं गतिःकीर्त्तिःसत्त्वं तेजःपराक्रमः
युगपन्नोहृतं सर्वमेकस्मिन्भार्गवे हृते । धिगस्मान् कुलपूज्यो यैरेकोपिकुलसत्तमः
गुरुः सर्वसमर्थश्च त्राता त्रातो न चापदि ॥ ४९ ॥
तद्धैर्यमवलम्ब्येह युध्यध्वमरिभिःसह । सूदयिष्याम्यहं सर्वान् प्रमथान्सहनन्दिना
अद्यै तान् विवशान् हत्वा सह देवैः सवासवैः ।

भार्गवं मोचयिष्यामि जीवं योगीव कर्मतः ॥ ५१ ॥
स चापि योगीयोगेनयदिनामस्वयंप्रभुः । शरीरात्तस्यनिर्गच्छेदस्माकं शेषपालिता
इत्यन्धकवचः श्रुत्वा दानवा मेघनिःस्वनाः । प्रमथानर्दयामासुर्मर्तव्ये कृतनिश्चयाः
सत्यायुषि न नो जातु शक्ताः स्युः प्रमथाबलात् ।
असत्यायुषि किं गत्वात्यक्त्वास्वामिनमाहवे ॥ ५४ ॥
येस्वामिनंविहायाजौवहुमानधनाजनाः । यान्तितेयान्तिनियतमन्धतामिस्रमालयम्
अयशस्तमसाख्यातिमलिनीकृत्यभूरिशः । इहामुत्रापिसुखिनोनस्युर्भग्नारणाजिरात्
किं दानैः किंतपोभिश्च किंतीर्थपरिमज्जनैः । धरातीर्थे यदिस्नातुं पुनर्भवमलापहे
सम्प्रधार्येतितेऽन्योन्यं दैत्यास्तेदनुजास्तथा । ममन्थुःप्रमथानाजौरणभेरीर्निनाद्यच
तत्रवाणासिवज्रौघैः कटङ्कटशिलामयैः । भुशुण्डीभिन्दिपालैश्च शक्तिभल्लपरश्वधैः
खट्वाङ्गैः पट्टिशैः शूलैर्लकुटैर्मुसलैरलम् । परस्परमभिघ्नन्तः प्रचक्रुः कदनं महत्
कार्मुकाणां विकृष्टानां पततां च पतत्रिणाम् ।
भिन्दिपालभुशुण्डीनां क्ष्वेडितानां रवोऽभवत् ॥ ६१ ॥
रणतूर्यनिनादैश्च गजानां वहुवृंहितैः । हेषारवैर्हयानाञ्च महान् कोलाहलोऽभवत्
प्रतिस्वनैरवापूरिद्यावाभूम्योर्यदन्तरम् । अभीरूणाञ्चभीरूणां महारोभोद्गमोऽभवत्
गजवाजिमहारावस्फुटच्छब्दग्रहाणि च । भग्नध्वजपताकानि क्षीणप्रहरणानि च ॥
रुधिरोद्गारचित्राणि व्यश्वहस्तिरथानि च । पिपासितानिसैन्यानिमुमूर्छुरुभयत्रवै
दृष्ट्वा सैन्यञ्च प्रमथैर्भज्यमानमितस्ततः । दुद्रावरथमास्थाय स्वयमेवान्धकोगणान्
शरवज्रप्रहारैस्तैर्वज्राघातैर्नगा इव । प्रमथा नैशिरैवातैर्निस्तोया इव तोयदाः ॥ ६७॥
यान्तमायान्तमालोक्य दूरस्थं निकटस्थितम् ।
प्रत्येकं रोमसंख्याभिर्व्यधाद्वाणैस्तदान्धकः ॥ ६८ ॥
विनायकेनस्कन्देन नन्दिना सोमनन्दिना । नैगमेयेनशाखेनविशाखेन वलीयसा ॥
इत्याद्यैस्तुगणैरुग्रैरन्धकोप्यन्धकीकृतः । त्रिशूलशक्तिबाणौघधारासम्पातपातिभिः
ततः कोलाहलो जातः प्रमथासुरसैन्ययोः । तेन शब्देन महता शुक्रःशम्भूदरेस्थितः

छिद्रान्वेषी भ्रमन् सोऽथ विनिकेतो यथानिलः ।
सप्तलोकान् सपातालान् रुद्रदेहे व्यलोकयत् ॥ ७२ ॥
ब्रह्मनारायणेन्द्राणामादित्याप्सरसां तथा ।
भुवनानि विचित्राणि युद्धञ्च प्रमथासुरम् ॥ ७३ ॥
सवर्षाणां शतं कुक्षौ भवस्य परितो भ्रमन् । नतस्य ददृशे रन्ध्रंशुचेरन्ध्रंखलोयथा
शाम्भवेनाथ योगेन शुक्ररूपेण भार्गवः । चस्कन्दाथननामापिततो देवेन भाषितः
शुकवन्निःसृतोयस्मात्तस्मात्त्वंभृगुनन्दन !। कर्मणानेन शुक्रस्त्वंममपुत्रोसिगम्यताम्
जठराग्निर्गतेशुक्रे देवोऽपि मुमुदेनराम् । भ्रमन्श्रेयो भवद्यन्मे न मृतो जठरेद्विजः ॥
इत्येवमुक्तो देवेन शुक्रोर्कसदृशद्युतिः । विवेशदानवानीकं मेघमालां यथा शशी ॥
शुक्रोदयान्मुदं लेभे सदानवमहार्णवः । यथा चन्द्रोदये हर्षमूर्मिमाली महोदधिः ॥
अन्धकान्धकहन्त्रोर्वै वर्तमाने महाहवे । इत्थं नाम्नाभवच्छुक्रः सवै भार्गवनन्दनः ॥
यथा च विद्यां तां प्राप मृतसञ्जीवनीं पराम् ।
शम्भोरनुग्रहात्काव्यस्तन्निशामय सुव्रत !॥ ८१ ॥

गणावूचतुः

पुराऽसौःभृगुदायादो गत्वा वाराणसीं पुरीम् ।
अण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुजगतिप्रदाम् ॥ ८२ ॥
संस्थाप्य लिङ्गं श्रीशम्भोः कूपं कृत्वा तदग्रतः ।
वहुकालं तपस्तेपे ध्यायन् विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥ ८३ ॥
राजचम्पकधत्तूरकरवीरकुशेशयैः । मालतीकर्णिकारैश्चकदम्बैर्वकुलोत्पलैः ॥ ८४ ॥
मल्लिकाशतपत्रीभिः सिन्दुवारैःसकिंशुकैः । अशोकैः करुणैःपुष्पैः पुन्नागैर्नागकेसरैः
क्षुद्राभिर्माधवीभिश्च पाटलाबिल्वचम्पकैः ।
नवमल्लीविचिकिलैः कुन्दैः समुचुकुन्दकैः ॥ ८६ ॥
मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्च द्रोणैर्मरुबकैर्वकैः । ग्रन्थिपर्णैर्दमनकैः सुरभूचूतपल्लवैः ॥ ८७ ॥
तुलसीदेवगन्धारीबृहत्पत्रीकुशाङ्कुरैः । नन्द्यावर्तैरगस्त्यैश्च सशालैर्देवदारुभिः ॥

काञ्चनारैः कुरुबकैर्दूर्वाङ्कुरकुरण्टकैः। प्रत्येकमेभिः कुसुमैः पल्लवैरपरैरपि ॥ ८९ ॥
पत्रैः शतसहस्रैश्च स समानर्चशङ्करम् । पञ्चामृतैर्द्रोणमितैर्लक्षकृत्वः प्रयत्नतः ॥९०॥
स्नापयामास देवेशं सुगन्धस्नपनैर्बहु । सहस्रकृत्वो देवेशं चन्दनैर्यक्षकर्दमैः ॥ ९१॥
समालिलिम्पदेवेशं सुगन्धोद्वर्तनान्यनु । गीतनृत्योपहारैश्च श्रुत्युक्तस्तुतिभिर्बहु
नाम्नां सहस्रैरन्यैश्च स्तोत्रैस्तुष्टावशङ्करम्। सहस्रं पञ्चशरदामित्थं शुक्रःसमर्चयन्
यदादेवं नालुलोके मनागपि वरोन्मुखम् । तदान्यं नियमं घोरं जग्राहातीवदुःसहम्
प्रक्षाल्य चेतसोऽत्यन्तं चाञ्चल्याख्यं महामलम् ।
भावनावार्भिरसकृदिन्द्रियैः सहितस्य च ॥ ९५ ॥
निर्मलीकृत्य तच्चेतोरत्नं दत्त्वा पिनाकिने। प्रपपौ कणधूमौघं सहस्रं शरदांकविः
प्रससादतदादेवो भार्गवायमहात्मने । तस्माल्लिङ्गाद्विनिर्गत्य सहस्रार्काधिकद्युतिः
उवाच चविरूपाक्षः साक्षाद्दाक्षायणीपतिः। तपोनिधेप्रसन्नोस्मि वरं वरयभार्गव!
निशम्येतिवचः शम्भोरम्भोजनयनो द्विजः। उद्यदानन्दसन्दोहरोमाञ्चाञ्चितविग्रहः
तुष्टावाऽष्टतनुं तुष्टः प्रफुल्लनयनाञ्चलः। मौलावञ्जलिमाधाय वदञ्जयजयेति च

भार्गव उवाच

त्वं भाभिराभिरभिभूय तमःसमस्तमस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम् ।
देदीप्यसे दिनमणे गगने हिताय लोकत्रयस्य जगदीश्वर! तं नमस्ते ॥ १०१ ॥
लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभिर्निर्मासि कौमुदमुदञ्चसमुत्समुद्रम् ।
विद्राविताखिलतमाः सुतमोहिमांशोपीयूषपूरपरिपूरित तं नमस्ते ॥ १०२ ॥
त्वं पावने पथि सदागतिरस्युपास्यः कस्त्वां विनाभुवनजीवनजीवतीह ।
स्तब्धप्रभञ्जनविवर्धितसर्वजन्तो सन्तोषिता हि कुलसर्वगतंनमस्ते ॥ १०३ ॥
विश्वैकपावक! न तावकपावकैकशक्तेर्ऋतेऽमृतवतामृतदिव्यकार्यम् ।
प्राणित्यदोऽजगदहो जगदन्तरात्मंस्तत्पावकप्रतिपदं शमदं नमस्ते ॥ १०४ ॥
पानीयरूप! परमेश! जगत्पवित्र! चित्रंविचित्रसुचरित्रकरोषि नूनम् ।
विश्वं पवित्रममलं किलविश्वनाथ ! पानावगाहनत एतदतो नतोऽस्मि ॥ १०५

आकाशरूप! बहिरन्तरुतावकाशदानाद्विकश्वरमिहेश्वरविश्वमेतत् ।
त्वत्तःसदासदयसंश्वसितिस्वभावात्सङ्कोचमेतिभवतोस्मिनतस्ततस्त्वाम् ॥
विश्वम्भरात्मक! विभर्ति विभोऽत्रविश्वंकोविश्वनाथ! भवतोऽन्यतमस्तमोरे!
तत्त्वां विना न शमिनां हिमजाहिभूषस्तव्योऽपरः परपरप्रणतस्ततस्त्वाम् ॥
आत्मस्वरूप! तव रूपपरंपराभिराभिस्ततं हर! चराचररूपमेतत् ।
सर्वान्तरात्मनिलय! प्रतिरूपरूप! नित्यं नतोस्मि परमात्मतनोऽष्टमूर्ते! ॥ १०८
इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरुमाभिवन्द्य वन्द्यातिवन्द्य! भव! विश्वजनीनमूर्ते !।
एतत्ततं सुविततंप्रणतप्रणीत सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोस्मि ॥ १०६ ॥
अष्टमूर्त्यष्टकेनेष्टं परिष्टुत्वेतिभार्गवः । भर्गं भूमिमिलन्मौलिः प्रणनाम पुनः पुनः
इतिस्तुतोमहादेवोभार्गवेणातितेजसा । उत्थाप्य भूमेर्बाहुभ्यां धृत्वातंप्रणतंद्विजम्
उवाच दशनज्योत्स्ना प्रद्योतितदिगन्तरः । अनेनात्युग्रतपसा ह्यनन्या चरितेन च
लिङ्गस्थापनपुण्येन लिङ्गस्याराधनेन च । चित्तरत्नोपहारेण शुचिनानिश्चलेन च
अविमुक्तमहाक्षेत्रे पवित्राचरणेन च । त्वां सुताभ्यां प्रपश्यामि तवादेयं न किञ्चन
अनेनैव शरीरेण ममोदरदरीं गतः । मद्वरेन्द्रियमार्गेण पुत्रजन्मत्वमेष्यसि ॥ ११५॥

अन्यं वरं प्रयच्छामि दुष्प्रापं पार्षदैरपि ।
हरौ हिरण्यगर्भेऽपि प्रायशोऽहं जुगोप याम् ॥ ११६ ॥
मृतसञ्जीवनीनाम विद्या या ममनिर्मला । तपोबलेन महता मयैव परिनिर्मिता ॥
त्वां तां तु प्रापयाम्यद्य मन्त्ररूपां महाशुचे !।
योग्यता तेऽस्ति विद्यायास्तस्याः शुचितपोनिधे !॥ ११८ ॥
यं यमुद्दिश्य नियतमेतामावर्तयिष्यसि । विद्यांविद्येश्वरश्रेष्ठ ससप्राणिष्यतिध्रुवम्
अत्यर्कमत्यग्निचतेतेजोव्योम्न्यतितारकम् । देदीप्यमानं भविता ग्रहाणां प्रबरोभव
अभित्वां ये करिष्यन्ति यात्रां नार्यो नरोपि वा ।
तेषां त्वद्दृष्टिपातेन सर्वं कार्यं प्रणङ्क्ष्यति ॥ १२१ ॥
तवोदये भविष्यन्ति विवाहादीनिसुव्रत । सर्वाणिधर्मकार्याणिफलवन्तिनृणामिह

सर्वाश्च तिथयोमन्दास्तव संयोगतः शुभाः ।
तव भक्ता भविष्यन्ति वहुशुक्रा बहुप्रजाः ॥ १२३ ॥
त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं शुक्रे शमितिसंज्ञितम् ।
येऽर्चयिष्यन्ति मनुजास्तेषां सिद्धिर्भविष्यति ॥ १२४ ॥
आवर्षंप्रतिशुक्रं ये नक्तव्रतपरा नराः । त्वद्दिने शुक्रकूपे ये कृतसर्वोदकक्रियाः ॥ १२५
शुक्रेशमर्चयिष्यन्ति शृणु तेषां तु यत्फलम् ।
अवन्ध्यशुक्रास्ते मर्त्याः पुत्रवन्तोऽतिरेतसः ॥ १२६ ॥
पुंस्त्वसौभाग्यसम्पन्ना भविष्यन्ति न संशयः ।
व्यपेतविघ्नास्ते सर्वे जनाः स्युः सुखवासिनः ॥
इति दत्त्वा वरान् देवस्तत्र लिङ्गे लयं ययौ ॥ १२७ ॥

गणावूचतुः

शुक्रेश्वरस्य ये भक्ताःशुक्रलोके वसन्तिते । विश्वेश्वराद्दक्षिणतःशुक्रेशोस्ति परंतप
तस्य दर्शनमात्रेण शुक्रलोकेमहीयते । इत्येषा शुक्रलोकस्यस्थितिरुक्तामहामते !॥

अगस्त्यउवाच

इत्थंसधर्मिणि!कथांशुक्रलोकस्यसुव्रते! । शृण्वन्नाङ्गारकंलोकमालुलोकेऽथसद्विजः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशातिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे शुक्रलोकवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

भौमगुरुशनिलोकवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

शुक्रसम्बन्धिनीदेवौ! कथाऽश्राविमयाशुभा । यस्याः श्रवणमात्रेणप्रीणितेश्रवणेमम
कस्य पुण्यनिधेर्लोकःशोकहृत्त्वेष निर्मलः । एतद्वाख्यातुमुद्युक्तौ भवन्तौ भवतांमम
धयित्वा श्रोत्रपात्राभ्यां वाणीममृतरूपिणीम् ।
न तृप्तिमधिगच्छामि भवन्मुखसुखोद्गताम् ॥ ३ ॥

गणावूचतुः

लोहिताङ्गस्य लोकोऽयं शिवशर्मन्निबोध ह ।
उत्पत्तिं चास्य वक्ष्यावो भूसुतोऽयं यथाऽभवत् ॥ ४ ॥
पुरातपस्यतःशम्भोर्दाक्षायण्यावियोगतः । भालस्थलात्पपातैकःस्वेदविन्दुर्महीतले
ततः कुमारः सञ्जज्ञे लोहिताङ्गो महीतलात् ।
स्नेहसंवर्धितः सोऽथ धात्र्या धात्रीस्वरूपया ॥ ६ ॥
माहेयइत्यतः ख्यातिं परामेषगतःसदा । ततस्तेपे तपोऽत्युग्रमुग्रपुर्यां पुरानघ !॥ ७॥
असिश्च वरणाचापिसरितौयत्र शोभने। द्युनद्योत्तरवाहिन्या मिलितेऽत्र जगद्धिते
सर्वगोऽपि हि विश्वेशो यत्र नित्यं प्रकाशते ।
मुक्तये सर्वजन्तूनां कालोज्झितस्ववर्ष्मणाम् ॥ ६ ॥
अमृतं हि भवन्त्येवमृतायत्र शरीरिणः । अनुग्रहं समासाद्य परं विश्वेश्वरस्य ह
अपुनर्भवदेहास्ते ये विमुक्ते तनुत्यजः । विनासाङ्ख्येनयोगेनविना नानाव्रतादिभिः
संस्थाप्य लिङ्गं विधिना स्वनाम्नाङ्गारकेश्वरम् ।
पाञ्चमुद्रे महास्थाने कम्बलाश्वतरोत्तरे ॥ १२ ॥
ज्वलदङ्गारवत्तेजो यावत्तस्यशरीरतः । विनिर्ययौ तपस्तावत्तेनतप्तं महात्मना ॥

ततोऽङ्गारकनाम्ना स सर्वलोकेषु गीयते ।
तस्य तुष्टो महादेवो ददौ ग्रहपदं महत् ॥ १४ ॥
अङ्गारकचतुर्थ्यां येस्नात्वोत्तरवहाम्भसि । अभ्यचर्याङ्गारकेशानंनमस्यन्तिनरोत्तमाः
न तेषां ग्रहपीडा च कदाचित्कापिजायते । अङ्गारकेन संयुक्ता चतुर्थीं लभ्यते यदि
उपरागसमंपर्व तदुक्तं कालवेदिभिः । तस्यां दत्तंहुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम्
श्रद्धया श्राद्धदायैवं चतुर्थ्यङ्गारयोगतः । तेषांपितृणांभवितातृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥
अङ्कारकचतुर्थ्यां तु पुराजज्ञे गणेश्वरः । अतएवतु तत्पर्व प्रोक्तं पुण्यसमृद्धये ॥ १६
एकभक्तव्रती तत्र सम्पूज्य गणनायकम् । किञ्चिद्दत्त्वा तमुद्दिश्यन विघ्नैरभिभूयते
अङ्गारेश्वरभक्ता ये वाराणस्यां नरोत्तमाः । तेऽस्मिन्नङ्गारके लोकेवसन्ति परमर्द्धयः

अगस्त्य उवाच

इत्थं कथयतोरेव रम्यां पुण्यवतीं कथाम् । भगवद्गणयोः प्राप नेत्रातिथ्यंगुरोःपुरी
नेत्रानन्दकरीं दृष्ट्वा शिवशर्माऽथतां पुरीम् । प्रपच्छाचार्यवर्यस्य कस्येयं पूरनुत्तमा

गणावूचतुः

सखे! सुखं समाख्यावो नानाख्येयं तवाऽग्रतः ।
अध्वखेदापनोदाय पुनरस्याः पुरः कथाम् ॥ २४ ॥
विधेर्विधित्सतः पूर्वं त्रिलोकीरचनां मुदा ।
आविरासुः सुताः सप्त मानसाः स्वस्य सन्निभाः ॥ २५ ॥
मरीच्यत्र्यङ्गिरो मुख्याः सर्वेसृष्टिप्रवर्तकाः । प्रजापतेरङ्गिरसस्तेष्वभूद्देवसत्तमः ॥
सुतश्चाङ्गिरसो नाम बुद्ध्या विबुधसत्तमः ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधो मृदुवाङ् निर्मलाशयः ॥ २७ ॥
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञः कलासुकुशलोऽमलः । पारदृश्वा तुसर्वेषां शास्त्राणां नीतिवित्तमः
हितोपदेष्टा हितकृदहितात्यहितः सदा ।
रूपवान् शीलसम्पन्नो गुणवान् देशकालवित् ॥ २९ ॥
सर्वलक्षणसम्भारसम्भृतो गुरुवत्सलः । ततापं तापसींवृत्तिकाश्यां समहतीं दधत्

महल्लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य शाम्भवं भूरिभावनः । अयुतं शरदांदिव्यं दिव्यतेजा महातपाः
ततः प्रसन्नो भगवान्विश्वेशो विश्वभावनः ।
आविर्भूय ततो लिङ्गान्महसां राशिरब्रवीत् ॥ ३२ ॥
प्रसन्नोऽस्मि वरंब्रूहि यत्ते मनसिवर्तते । इति शम्भुं समालोक्यतुष्टावेति सहृष्टवान्

आङ्गिरस उवाच

जय शङ्कर! शान्त! शशाङ्करुचे! रुचिरार्थद! सर्वद! सर्वशुचे !।
शुचिदत्तगृहीतमहोपहृते! हृतभक्तजनोद्धततापतते !॥ ३४ ॥
ततसर्वहृदंवर! वरद! नते! नत! वृजिनमहावनदाहकृते !।
कृतविविधचरित्रतनो! सुतनो! तनुविशिखविशोषणधैर्यनिधे !॥ ३५ ॥
निधनादिविवर्जित! कृतनतिकृत् !कृतिविहितमनोरथपन्नगभृत् !।
नगभर्तृ सुतार्पितवामवपुः स्ववपुः परिपूरितसर्वजगत् ॥ ३६ ॥
त्रिजगन्मयरूप! विरूपसुदृक् दृगुदञ्चन कुञ्चनकृतहुतभुक् !।
भव! भूतपते! प्रमथैकपते! पतितेष्वपि दत्तकरप्रसृते !॥ ३७ ॥
प्रसृताखिलभूतलसंवरण! प्रणवध्वनिसौधसुधांशुधर !।
धरराजकुमारिकयापरयापरितः परितुष्ट नतोऽस्मि शिव !॥ ३८
शिव! देव! गिरीश! महेश! विभो! विभवप्रद! गिरिश! शिवेश! मृड !।
मृडयोडुपतिध्र! जगत्त्रितयं कृतयन्त्रणभक्तिविघातकृताम् ॥ ३९ ॥
न कृतान्तत एष बिभेमि हर! प्रहराशु महाघममोघमते !।
न मतान्तरमन्यदवैमि शिवं शिवपादनतेः प्रणतोऽस्मि ततः ॥ ४० ॥
विततेऽत्र जगत्यखिलेऽघहरं हरतोषणमेव परंगुणवत् ।
गुणहीनमहीनमहावलयं प्रलयान्तकमीश! नतोऽस्मि ततः ॥ ४१ ॥
इति स्तुत्वा महादेवंविररामाङ्गिरःसुतः । व्यतरच्च महेशानःस्तुत्या तुष्टोवरान्बहून्

श्रीमहादेव उवाच

वृहता तपसाऽनेन बृहतां पतिरेध्यहो । नाम्ना वृहस्पतिरिति ग्रहेष्वचर्योभव द्विज

अस्माल्लिङ्गार्चनान्नित्यं जीवभूतोऽसि मे यतः ।
अतो जीव इतिख्यातिं त्रिषु लोकेषु यास्यसि ॥ ४४ ॥
वाचां प्रपञ्चैश्चतुरैर्निष्प्रपञ्चो यतःस्तुतः । अतोवाचां प्रपञ्चस्य पतिर्वाचस्पतिर्भव
अस्य स्तोत्रस्य पठनादपि वागुदियाच्च यम् ।
तस्य स्यात्संस्कृता वाणी त्रिभिर्वर्षैस्त्रिकालतः ॥ ४६ ॥
समुत्पन्ने महाकार्येनसबुद्ध्याप्रहीयते । यः पठिष्यत्यदःस्तोत्रंवायव्याख्यंदिनेदिने
अस्यस्तोत्रस्यपठनान्नियतं ममसन्निधौ । नदुर्वृत्तौप्रवृत्तिःस्याद्विवेकवतांनृणाम्
अदः स्तोत्रं पठन् जन्तुर्जातु पीडां ग्रहोद्भवाम् ।
न प्राप्स्यति ततो जप्यमिदं स्तोत्रं ममाऽग्रतः ॥ ४६ ॥
नित्यं प्रातः समुत्थाय यः पठिष्यति मानवः ।
इमां स्तुतिं हरिष्येऽहं तस्य बाधाः सुदारुणाः ॥ ५० ॥
त्वत्प्रतिष्ठितलिङ्गस्य पूजां कृत्वा प्रयत्नतः ।
इमांस्तुति मधीयानो मनोवाञ्छामवाप्स्यति ॥ ५१ ॥
इति दत्त्वा वरान् शम्भुः पुनर्ब्रह्माणमाह्वयत् ।
सेन्द्रान्देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगकिन्नरान् ॥ ५२ ॥
तानागतान् समालोक्य शिवो ब्रह्माणमब्रवीत् ।
विधे! विधेहि मद्वाक्यादमुं वाचस्पतिं मुनिम् ॥ ५३ ॥
गुरुं सर्वसुरेन्द्राणां परितः स्वगुणैर्गुरुम् । अभिषिञ्च विधानेनदेवाचार्यपदेमुदे
अतीवधिषणाधीशो मम प्रीतो भविष्यति ।
महाप्रसाद इत्याज्ञां शिरस्याधाय तत्क्षणात् ॥ ५५ ॥
सुरज्येष्ठः सुराचार्यंचकाराङ्गिरसं तदा । देवदुन्दुभयोनेदुर्ननृतुश्चाप्सरो गणाः ॥
गुरुपूजां व्यधुः सर्वेगीर्वाणामुदिताननाः । अभिषिक्तो वशिष्ठाद्यैर्मन्त्रपूतेनवारिणा
पुनरन्यं वरं प्रादाद्गिरीशः पतये गिराम् । शृण्वाङ्गिरसधर्मात्मन् देवेज्यकुलनन्दन
भवतास्थापितं लिङ्गंसुबुद्धिपरिवर्धनम् । बृहस्पतीश्वरइति ख्यातंकाश्यांभविष्यति

गुरुपुष्यसमायोगे लिङ्गमेतत्समर्च्य च ।
यत्करिष्यन्ति मनुजास्तत्सिद्धिमधियास्यति ॥ ६० ॥

बृहस्पतीश्वरं लिङ्गं मयागोप्यं कलौयुगे । अस्य सन्दर्शनादेवप्रतिभा प्रतिलभ्यते
चन्द्रेश्वराद्दक्षिणतोवीरेशान्नैर्ऋते स्थितम् । आराध्यधिषणेशं वै गुरुलोके महीयते
गुर्वङ्गनागमनजं पापं षण्मासस्सेवनात् । अवश्यं विलयं यातितमःसूर्योदयाद्यथा ॥
अतएव हिगोप्तव्यंमहापातकनाशनम् । बृहस्पतीश्वरंलिङ्गं नाख्येयंयस्यकस्यचित्

इति दत्वा वरान्देवस्तत्रैवान्तर्हितो भवत् ।
द्रुहिणो गुरुणा सार्द्धं सेन्द्रोपेन्द्रो बृहस्पतिम् ॥ ६५ ॥
अस्मिन्पुरेभिषिच्याथ विसृज्येन्द्रादिकान् सुरान् ।
अलञ्चकार स्वं लोकं विष्णुनाऽनुमतो द्विज !॥ ६६ ॥

अगस्त्य उवाच

अतिक्रम्यगुरोर्लोकंलोपामुद्रे!ददर्श सः । शिवशर्मापुरीं सौरेःप्रभामण्डलमण्डिताम्
पृष्टौ तेन चतौतत्र तांपुरींप्रददर्शतुः । द्विजेनद्विजवर्याय गणवर्यौ शुचिस्मिते !

गणावूचतुः

मारीचेः कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोष्णगुः ।
तस्यभार्याऽभवत्संज्ञा पुत्री त्वष्टुः प्रजापतेः ॥ ६९ ॥

भर्तुरिष्टा ततस्तस्माद्रूपयौवनशालिनी । संज्ञाबभूव तपसा सुदीप्तेन समन्विता
आदित्यस्यहितद्रूपं मण्डलस्यतुतेजसा । गात्रेषुपरिदध्यौ वैनातिकान्तमिवाभवत
नखल्वयं मृतोऽण्डस्थ इतिस्नेहादभाषत । तदाप्रभृतिलोकेयंमार्तण्ड इतिचोच्यते

तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य साऽसहिष्णुर्विवस्वतः ।
येनाऽतितापयामास त्रैलोक्यं तिग्मरश्मिभृत् ॥ ७३ ॥
त्रीण्यपत्यानि भो ब्रह्मन् !सञ्ज्ञायां महसां निधिः ।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥ ७४ ॥

वैवस्वतं मनुं ज्येष्ठंयमं च यमुनांततः । नातितेजो भयं रूपंसोढुं साऽलंविवस्वतः

मायामयीं ततश्छायां सवर्णां निर्ममे स्वतः ।
प्राञ्जलिःप्रणता भूत्वा सञ्ज्ञां छाया तदाऽब्रवीत् ॥ ७६ ॥
तवाज्ञाकारिणीं देवि! शाधि मां करवाणि किम् ।
सञ्ज्ञोवाच ततश्छायां सवर्णे! शृणु सुन्दरि !॥ ७७ ॥
अहंयास्यामिसदनं त्वष्टुस्त्वं पुनरत्रमे । भवने वसकल्याणि! निर्विशङ्कं ममाज्ञया
मनुरेष यमावेतौ यमुनायमसंज्ञकौ । स्वापत्यदृष्ट्या द्रष्टव्य मेतद्बालत्रयं त्वया
अनाख्येयमिदं वृत्तं त्वया पत्यौ शुचिस्मिते !।
इत्याकर्ण्याऽथ सा त्वाष्ट्रीं देवीं छायां जगादह ॥ ८० ॥
आकचग्रहणान्नाहमाशापाच्च कदाचन । आख्यास्यामि चरित्रंतेयाहिदेवियथासुखम्
इत्यादिश्य सवर्णां सा तथेत्युक्ता सवर्णया ।
पितुरन्तिकमासाद्य नत्वा त्वष्टारमब्रवीत् ॥ ८२ ॥
पितः सोढुं नशक्नोमितेजस्तेजोनिधेरहम् । तीव्रंतस्यार्यपुत्रस्यकाश्यपस्यमहात्मनः
निशम्योदीरितं तस्याः पित्रा निर्भर्त्सिता बहु ।
भर्तुः समीपं याहीति नियुक्ता सा पुनः पुनः ॥ ८४ ॥
चिन्तामवाप महतीं स्त्रीणां धिक् चेष्टितं त्विति ।
निनिन्द बहुधाऽऽत्मानं स्त्रीत्वं चाऽतिनिनिन्द सा ॥ ८५ ॥
स्वातन्त्र्यं न क्वचित्स्त्रीणां धिगस्वातन्त्र्यजीवितम् ।
शैशवे यौवने प्रान्ते पितृभर्तृसुताद्भयम् ॥ ८६ ॥
त्यक्तं भर्तृगृहं मौग्ध्याद्धन्तदुर्वृत्तयामया । अविज्ञातापिचेद्यायामथ पत्युर्निकेतनम्
तत्रास्ति सा सवर्णावैपरिपूर्णमनोरथा । अथावतिष्ठे सात्रैवपित्रानिर्भर्त्सिताप्यहम्
ततोतिचण्डश्चण्डांशुःपित्रोरतिभयङ्करः । अहो यदुच्यते लोकैरुपाख्यानमिदंहितत्
स्फुटं दृष्टं मयाद्येतिस्वकराङ्गारकर्षणम् । नष्टंभर्तृगृहंमौग्ध्यात्क्वेयोवानपितुर्गृहम्
वयश्च प्रथमं चारु रूपंत्रैलोक्यकाङ्क्षितम् । सर्वाभिभवनंस्त्रीत्वं कुलंचातीवनिर्मलम्
तिश्च तादृक्सर्वज्ञो लोकचक्षुस्तमोपहः । सर्वेषां कर्मणांसाक्षी सर्वःसर्वत्रसञ्चरः

महांश्रेयः कथंवास्यादितिसापरिचिन्त्यच । अगच्छद्वडवाभूत्वातपसेपर्यनिन्दिता
उत्तरांश्च कुरून् प्राप चरन्तीनीरसं तृणम् । व्युत्तेपे च तपस्तीव्रंपतिमाधायचेतसि
तपोबलेन तत्पत्युः सहिष्ये तेज इत्यलम् ॥ ९४ ॥
मन्यमानोथ तां संज्ञां सवर्णायांतदा रविः । सावर्णि जनयामासमनुमष्टममुत्तमम्
शनैश्चरं द्वितीयञ्च सुतां भद्रां तृतीयिकाम् ।
सवर्णास्वेष्वपत्येषु सापत्न्यात्स्त्रीस्वभावतः ॥ ९६ ॥
चकाराभ्यधिकंस्नेहंनतथापूर्वजेष्वथ । मनुस्तत्क्षान्तवाञ्ज्येष्ठोभक्ष्यालङ्कारलालने
कनिष्ठेष्वधिकं दृष्ट्वा सावर्ण्यादिषु नो यमः ।
कदाचिद्रोषतो बाल्याद्वाविनोऽर्थस्य गौरवात् ॥ ९८ ॥
पदा सन्तर्जयामासयमःसंज्ञासरूपिणीम् । तं शशाप च साक्रोधात्सावर्णेर्जननीतदा
जिघांसतात्वयापाप! मांयदङ्घ्रिसमुद्यतः । अचिरात्तत्पतत्वेषतवेतिभृशदुःखिता
मातृशापपरित्रस्तो यमोऽपिपितुरग्रतः । शशंस सर्वं तद्वृत्तं रक्षरक्षेत्युवाच च ॥
मात्रा सुतेषु सर्वेषु वर्तनीयं समं यतः । तस्यां मयोद्यतः पादो न देहेपरिपातितः ॥
बाल्याद्वा यदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हसि । गोपतेशापतोमातुर्मापतत्वङ्घ्रिरेष मे

विवस्वानुवाच

अपराधसहस्रेपि जननी न शपेत्सुतम् ।
तस्मात्किमपि भो बाल! भविष्यत्यत्र कारणम् ॥ १०४ ॥
येन त्वां साऽशपत्क्रोधाद्धर्मज्ञंसत्यवादिनम् ।
मातृशापोऽन्यथाकर्तुं न शक्यः केनचित्क्वचित् ॥ १०५ ॥
क्रमयो मांसमादाय यास्यन्त्यस्मान्महीतलम् ।
इत्थन्तुचरितार्थः स्याच्छापस्त्रातो भवानपि ॥ १०६ ॥
इति पुत्रंसमाश्वास्य रविरन्तःपुरं ययौ । चिरमालोक्य तां भार्यामुवाचसविताबचः
अयि भामिनि! बालेषु समेष्वपि कुतस्त्वया ।
विधीयतेऽधिकःस्नेहः सावर्ण्यादिष्वनादिषु ॥ १०८ ॥

नाचचक्षे यदा साऽथभास्वतेपरिपृच्छते । तदात्मानंसमाधायसोऽज्ञासीत्सर्वमेवहि
ततो भगवते शप्तुमुद्यते साशशंसह । यथावृत्तं तथा तथ्यं तुतोष भगवानपि ॥
तथ्यभाषणतस्तां तुरविर्ज्ञात्वानिरागसम् । न शशापचसंक्रुद्धोययौचत्वष्टुरन्तिकम्
त्वष्टापि च यथान्यायंसान्वयंतिग्मतेजसम् । निर्दग्धुकामं कोपेन प्रागानर्चमुदातदा
विज्ञाय तदभिप्रायं त्वष्टोवाचाऽऽशु तं रविम् ॥ ११२ ॥

त्वष्टोवाच

तवातितेजसो भीता प्राप्योत्तरकुरून् रवे !। वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यामार्यचारिणीम् ।
अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसां नियमेन च ॥ ११४ ॥

त्वष्ट्रा यत्तक्षितःसूर्यस्तस्यैवानुमतेनच । भ्रमिमारोप्ययत्नेनसोतिकान्ततरोऽभवत्
लब्धाज्ञोऽथसवितागत्वोत्तरकुरूनरम् । साक्षात्तपोमयींलक्ष्मींचरन्तीञ्चतपोमहत्
ददर्शवडवारूपां वाडवानलतेजसम् । नीरसानि तृणान्येव वृण्वन्तीं योगमायया
अनेनसंसविज्ञाय तां त्वाष्ट्रीमश्वरूपिणीम् । स हरिर्हरिरूपेण मुखेन समभावयत्
त्वरमाणा च परितः परपूरुषशङ्कया । सातन्निरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः
देवौ तस्मादजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ । स्वरूपमनुरूपञ्च द्युमणिस्तामदर्शयद्
तुतोष सापि तं दृष्ट्वा मित्रंनेत्रमुदावहम् । पतिपतिव्रताकान्तंस्वान्तसन्तापहारिणम्
निर्वृत्तिं च परां प्राप दुष्प्रापं तपसाऽथ किम् । तप एव परं श्रेयस्तपएवपरंधनम्
तप एव हि देवत्वे कारणं परमम्मतम् । शिवशर्मन् !यदेतद्वै दृश्यते चातिदीप्तिमत्
ज्योतिश्चक्रस्वरूपञ्च व्योम्न्युपर्यध एव च । तत्सर्वमिहजानीहिसुमहत्तापसम्महः
एवं शनैश्चरोजज्ञे सवर्णायांविवस्वतः । सोऽथवाराणसींगत्वासर्वत्रिदशवन्दिताम्
तप्त्वातपोऽतिविपुलंलिङ्गंसंस्थाप्यशाङ्करम् । इमंलोकमवापोच्चैर्ग्रहत्वञ्चहरार्चनात्
शनैश्चरेश्वरं दृष्ट्वा वाराणस्यां सुशोभनम् । शनिबाधा नजायेत शनिवारे तदर्चनात्
विश्वेशाद्दक्षिणेभागे शुक्रेशादुत्तरेण हि । शनैश्चरेशमभ्यर्च्य लोकेऽत्र परिमोदते ॥
श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं ग्रहपीडा न जायते ।

नोपसर्गभयं तस्य काश्यां निवसतःसतः ॥ १२६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे भौमगुरुशनिलोकवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

सप्तर्षिलोकवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

इति श्रृण्वन् कथां रम्यां शिवशर्माऽथ माथुरः ।
मुक्तिपुर्यां सुसंस्नातो मायापुर्यां गतासुकः ॥ १ ॥
नेत्रयोःप्राघुर्णीचक्रेततः सप्तर्षिमण्डलम् । व्रजन्सवैष्णवंलोकमन्तेविष्णुपुरीक्षणात्
उवाचचप्रसन्नात्मास्तुतश्चारणमागधैः । प्रार्थितोदेवकन्याभिस्तिष्ठतिष्ठेतिचक्षणम्
स्थितासु तासु निःश्वस्य मन्दभाग्या वयं त्विति ।
गतः पुण्यतमाँल्लोकानसौ यत्पुण्यवत्तमः ॥ ४ ॥
इति श्रृण्वन्मुखात्तासां वचनानि विमानगः ।
देवौ! कस्यायमतुलो:लोकस्तेजोमयःशुभः ॥ ५ ॥
इतिद्विजवचःश्रुत्वा प्रोचतुर्गणसत्तमौ । शिवशर्मांञ्च्छिवमते सदा सप्तर्षयोमलाः
वसन्तीह प्रजाःस्रष्टुं विनियुक्ताःप्रजासृजा । मरीचिरत्रिपुलहःपुलस्त्यःक्रतुरङ्गिराः
वसिष्ठश्च महाभागोब्रह्मणोमानसाःसुताः । सप्तब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयङ्गताः ।
सम्भूतिरनसूया चक्षमाप्रीतिश्चसन्नतिः । स्मृतिरूर्जाक्रमादेषांपत्न्योलोकस्यमातरः
एतेषां तपसाचैतद्धार्यते भुवनत्रयम् । उत्पाद्य ब्रह्मणा पूर्वमेते प्रोक्ता महर्षयः ॥ १०
प्रजाःसृजतरे पुत्रा! नानारूपाःप्रयत्नतः । ततःप्रणम्यब्रह्माणं तपसे कृतनिश्चयाः ॥११
अविमुक्तं समासाद्य क्षेत्रंक्षेत्रज्ञधिष्ठितम् । मुक्तये सर्वजन्तूनामविमुक्तं शिवेनयत् ॥

प्रतिष्ठाप्य च लिङ्गानि ते स्वनाम्नाङ्कितानि च।
शिवेति परया भक्त्या तेपुरुग्रन्तपो भृशम् ॥ १३ ॥
तुष्टस्तत्तपसा शम्भुः प्राजापत्यपदंददौ। लिङ्गान्यत्रीश्वरादीनिदृष्ट्वाकाश्यांप्रयत्नतः
प्राजापत्येऽत्रतेलोकेवसन्त्युज्ज्वलतेजसः। गोकर्णेशस्यसरसःप्रत्यक्तीरेप्रतिष्ठितम्
लिङ्गमत्रीश्वरं दृष्ट्वा ब्रह्मतेजोभिवर्धते कर्कोटवाप्याईशाने मरीचेःकुण्डमुत्तमम् ॥ १६
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या भ्राजते भास्करो यथा।
मरीचीश्वरसञ्ज्ञन्तु तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥
तल्लिङ्गदर्शनाद्विप्र! मारीचंलोकमाप्नुयात्। कान्त्यामरीचिमालीव शोभते पुरुषर्षभः
पुलहेशपुलस्त्येशौ स्वर्गद्वारस्य पश्चिमे । तौ दृष्ट्वा मनुजोलोके प्राजापत्ये महीयते
हरिकेशवने रम्ये दृष्ट्वैवाङ्गिरसेश्वरम्। इहलोकेवसेद्विप्र! तेजसा परिबृंहितः ॥ २०
वरणायास्तटे रम्ये दृष्ट्वावासिष्ठमीश्वरम्। क्रत्वीश्वरञ्चतत्रैव लभते वसतिन्त्विह ॥
काश्यामेतानि लिङ्गानि सेवितानि शुभैषिभिः।
मनोऽभिवाञ्छितं दद्युरिहलोके परत्र च ॥ २२ ॥

गणावूचतुः

शिवशर्मन्महाभाग! तिष्ठते सात्रसुन्दरी। अरुन्धती महापुण्या पतिव्रतपरायणा
यस्याःस्मरणमात्रेण गङ्गास्नानफलंलभेत्। अन्तःपुरचरैर्द्वित्रैः पवित्रैः सहितोविभुः
सदानारायणोदेवो यस्याश्चक्रे कथां मुदा। कमलायाःपुरोभागेपातिव्रत्यसुतोषितः
पतिव्रतास्वरुन्धत्याः कमले विमलाशयः।
यथाऽस्ति न तथाऽन्यस्याः कस्याश्चित्क्वापि भामिनि !॥ २६ ॥
न तद्रूपं न तच्छीलं नतत्कौलीन्यमेव च ।। नतत्कलासुकौशल्यंपत्युःशुश्रूषणंनतत्
न माधुर्यं न गाम्भीर्यं नचार्यपरितोषणम्।
अरुन्धत्या यथा देवि ! तथाऽन्यासां क्वचित्प्रिये !॥ २८ ॥
न्यास्ता योषितोलोकेसभाग्याःशुद्धबुद्धयः। अरुन्धत्याःप्रसङ्गे यानामापिपरिगृह्णते
यदा पतिव्रतानांतु कथास्मद्भवनेभवेत्। तदाप्राथमिकींरेखामेषाऽलङ्कुरुते सती ३०

ब्रुवतोरिति संकथां तथा गणयोर्वैष्णवयोर्मुदावहाम् ।
ध्रुवलोक उपागतस्ततो नयनातिथ्यमतथ्यवर्जितः ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे सप्तर्षिलोकवर्णनंनामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ध्रुवलोकवर्णनेध्रुवोपदेशवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

तिष्ठन्नेकेन पादेन कोऽयंभ्रमतिसत्तमौ !। अनेकरशनाव्यग्रहस्ताग्रोव्यग्रलोचनः ॥ १
त्रिलोकीमण्डपस्तम्भसन्निभोभाभिरावृतः । अतुलंज्योतिषांराशितुलयातुलयन्निव
सूत्रधारइवव्योमव्यायामपरिमापकः । त्रैविक्रमोङ्घ्रिदण्डोवा प्रोद्दण्डो गगनाङ्गणे
अथवाम्बरकासारसारयूपस्वरूपधृक् । कोयं कथयतंदेवौकृपया परया मम ॥ ४ ॥
निशम्येति वचस्तस्यवयस्यस्यविमानगौ । प्रणयादाहतुस्तस्मैध्रुवांध्रुवकथांगणौ

गणावूचतुः

मनोःस्वायम्भुवस्यासीदुत्तानचरणःसुतः । तस्यक्षितिपतेर्विप्र! द्वौसुतौसम्बभूवतुः
सुरुच्यामुत्तमोज्येष्ठः सुनीत्यांतु ध्रुवोऽपरः । मध्येसभं नरपतेरुपविष्टस्य चैकदा
सुनीत्या राजसेवायैनियुक्तोऽलङ्कृतोऽर्भकः । ध्रुवोधात्रेयिकापुत्रैःसमंविनयतत्परः
सगत्वोत्तानचरणं क्षोणीशं प्रणनामह । दृष्ट्वोत्तमं तदुत्सङ्गे निविष्टं जनकस्य वै ॥
प्रोच्चसिंहासनस्थस्य नृपतेर्बाल्यचापलात् ।
आरोढुकामस्त्वभवत्सौनीतेयस्तदा ध्रुवः ॥ १० ॥
आरुरुक्षुमवेक्ष्यामुं सुरुचिर्ध्रुवमब्रवीत् । दौर्भगेय ! किमारोढुमिच्छेरङ्कं महीपतेः ॥
बालबालिशबुद्धित्वादभाग्याजठरोद्भव !। अस्मिन् सिंहासनेस्थातुंनत्वयासुकृतंकृतम्

यदि स्यात्सुकृतं तत्किं दुर्भगोदरगोऽभवः।
अनेनैवाऽनुमानेन बुध्यस्व स्वाऽल्पपुण्यताम् ॥ ४० ॥
भूत्वा राजकुमारोऽपि नालं कुर्या ममोदरम्।
सुकुक्षिजममुं पश्य त्वमुत्तममनुत्तमम ॥ १४ ॥
अधिजानुधरजानेर्मानेन परिवृंहितम्। प्रांशोः सिंहासनस्यास्य रुचिश्चेदधिरोहणे
कुक्षिंहित्वा किमवसः सुरुचेश्चसुरोचिषम्। मध्येभूपसभंबालस्तयेतिपरिभर्त्सितः
पतन्निपीतबाष्पाम्बुर्धैर्यात्किञ्चिन्न चोक्तवान्।
उचिताऽनुचितं किञ्चिन्नोचिवान् सोऽपि पार्थिवः ॥ १७ ॥
नियन्त्रितो महिष्याश्च तस्याः सौभाग्यगौरवात्।
विसृज्य च सभालोकं शोकं संमृज्य चेष्टितैः ॥ १८ ॥
शैशवैःस शिशुर्नत्वा नृपंस्वसदनं ययौ। सुनीतिनीतिनिलयमवलोक्याथ बालकम्
मुखलक्ष्म्यैव चाऽज्ञासीद्ध्रुवं समवमानितम्।
अभिसृत्य च तं बालं मूर्ध्न्युपाघ्राय साऽसकृत् ॥ २० ॥
किञ्चित्परिम्लानमिव ससान्त्वं परिषस्वजे।
अथ दृष्ट्वा सुनीतिं स रहोन्तःपुरवासिनीम् ॥ २१ ॥
दीर्घं निःश्वस्यबहुशो मातुरग्रे रुरोद ह। सान्त्वयित्वाश्रुनयना वदनं परिमार्ज्य च
दुकूलाञ्चलसंपर्कैर्मृदुलैर्मृदुपाणिना। पप्रच्छ तनयं माता वद रोदनकारणम् ॥
विद्यमाने नरपतौ शिशो! केनाऽपमानितः ॥ २३ ॥
अपोऽथसमुपस्पृश्य ताम्बूलं परिगृह्यच। मात्रापृष्टःसोपरोधं ध्रुवस्तां पर्यभाषत ॥
संपृच्छेजननित्वाहंसम्यक्शंसममाग्रतः। भार्यात्वेपिचसामान्येकथंसासुरुचिःप्रिया
कथं न भवती मातः! प्रिया क्षितिपतेरसि। कथमुत्तमतांप्राप्त उत्तमः सुरुचेः सुतः
कुमारत्वेऽपिसामान्येकथंत्वहमनुत्तमः। कथंत्वंमन्दभाग्यासिसुकुक्षिःसुरुचिःकथम्
कथं नृपासनं योग्यमुत्तमस्य कथंनमे। कथं मे सुकृतं तुच्छमुत्तमस्योत्तमं कथम् ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुनीतिर्नीतिमच्छिशोः।

किञ्चिदुच्छ्वस्य शनकैः शिशुकोपोपशान्तये ॥ २९ ॥
स्वभावमधुरां वाणीं वक्तुं समुपचक्रमे । सापत्नं प्रतिवैंत्यक्त्वाराजनीतिविदां वरा

सुनीतिरुवाच

अयि तात महाबुद्धे! विशुद्धेनान्तरात्मना । निवेदयामि ते सर्वम्माऽपमाने मतिंकृथाः
तया यदुक्तं तत्सर्वं तथ्यमेव न चान्यथा । सापत्युर्महिषी राज्ञो राज्ञीनामतिवल्लभा
तया जन्मान्तरे तात! यत्पुण्यं समुपार्जितम् ।
तत्पुण्योपचयाद्राजा सुरुच्यां सुरुचिर्भृशम् ॥ ३३ ॥
मादृश्यो मन्दभाग्यायाः प्रमदासुप्रतिष्ठिताः । केवलं राजपत्नीत्ववादस्तासुनतद्रुचिः
महासुकृतसम्भारैरुत्तमश्चोत्तमोदरे । उवास तस्याः पुण्याया नृपसिंहासनोचितः॥
आतपत्रं च चन्द्राभं शुभेचापि चचामरे । भद्रासनंतथोच्चं च सिन्धुराश्चमदोद्धुराः
तुरङ्गमाश्च तुरगास्त्वनाधिव्याधिजीवितम् । निःसपत्नं शुभंराज्यंप्राज्यंहरिहरार्चनम्
विपुलं चकलाज्ञानमधीतमपराजितम् । तथाजयोरिषड्वर्गैस्स्वभावात्साित्त्वकीमतिः
दृष्टिः कारुण्यसम्पूर्णा वाणी मधुरभाषिणी ।
अनालस्यं च कार्येषु तथा गुरुजने नतिः ॥ ३९ ॥
सर्वत्र शुचितातात! सा परोपकृतिःसदा । और्जस्वलामनोवृत्तिःसदैवाऽदीनवादिता
सदोजिरे च पाण्डित्यं प्रागल्भ्यंचरणाङ्गणे । आर्जवं बन्धुवर्गेषु काठिन्यंक्रयविक्रये
मार्दवं स्त्रीप्रयोगेषु वत्सलत्वं प्रजासु च । ब्राह्मणेभ्यो भयंनित्यं वृद्धवृत्त्युपजीवनम्
वासोभागीरथीतीरे तीर्थेवामरणंरणे । अपराङ्मुखताऽर्थिभ्यःप्रत्यर्थिभ्योविशेषतः
भोगः परिजनैः सार्द्धं दानावन्ध्यदिनागमः ।
विद्याव्यसनिता नित्यं पित्रोरुपस्थितिः ॥ ४४ ॥
यशसः सञ्चयो नित्यं नित्यं धर्मस्य सञ्चयः ।
स्वर्गापवर्गयोः सिद्धिः सदा शीलस्य मण्डनम् ॥ ४५ ॥
सद्भिश्च सङ्गतिर्नित्यं मैत्रं च पितृमित्रकैः । इतिहासपुराणानामुत्कण्ठा श्रवणेसदा
विपद्यपि परं धैर्यं स्थैर्यंसम्पत्समागमे । गाम्भीर्यं वाग्विलासेषुऔदार्यंपात्रपाणिषु

देहे परैकाकृशता तपोभिर्नियमैर्यमैः । एतैर्मनोरथफलैः फलन्त्येव तपोद्रुमाः ॥४८

तस्मादल्पतपस्त्वाद्वै त्वं चाहं च महामते !।
प्राप्याऽपि राजसान्निध्यं राजलक्ष्म्या न भाजनम् ॥ ४६ ॥

मानापमानयोस्तस्मात्स्वकृतं कारणंपरम् । स्रष्टापिनापमाष्टुं तत्परीष्टेस्वकृतांकृतिम्

माशोचस्त्वमतःपुत्र!दिष्टमिष्टं समर्पयेत् ।
इत्याकर्ण्य सुनीत्यास्तन्महावाक्यं सुनीतिमत् ।
सौनीतेयो ध्रुवोवाचमाददे वक्तुमुत्तरम् ॥ ५१ ॥

ध्रुव उवाच

जनयित्रि! सुनीते! मे शृणु वाक्यमनाकुलम् ।
मा बाल इति मत्वा मामवमंस्थास्तपस्विनि !॥ ५२ ॥

यद्यहं मानवे वंशे जातोऽस्म्यत्यन्तपावने । उत्तानपादतनयस्त्वदीयोदरसम्भवः ॥

तप एव हि चेन्मातः कारणं सर्वसम्पदाम् । तत्तदासादितंविद्धि पदमन्यैर्दुरासदम्

एकमेवहि साहाय्यं कुरु मातरतन्द्रिता ।अनुज्ञादानमात्रं च आशीर्भिरभिनन्दय ॥

सापि ज्ञात्वा महावीर्यं कुमारं कुक्षिसम्भवम् ।
महत्योत्साहसम्पत्त्या राजमानमुवाच तम् ॥ ५६ ॥

अनुज्ञातुं न शक्ताऽहंत्वामुत्तानशयाङ्गज !। साष्टैकवर्षदेशीयं तथापि कथयाम्यहम् ॥

सपत्नीवाक्यभल्लीभिर्भिन्नेमहति मे हृदि ।
तव बाष्पौघवारीणि न तिष्ठन्ति करोमि किम् ॥ ५८ ॥

तानिमन्येऽत्रमार्गेणस्रवन्त्यविरतंशिशो । स्रवन्तीश्चचिकीर्षन्तिप्रतिकूलजलाःकिल

त्वदेकतनया तात!त्वदाधारैकजीविता । त्वमङ्गयष्टिरसिमे त्वन्मुखासक्तलोचना ॥

लब्धोऽसिकतिभिःकष्टैरिष्टाःसंप्रार्थ्यदेवताः । त्वन्मुखेन्दूदयेतात!मन्मनःक्षीरनीरधिः

आनन्दपयसापूर्य कुचावुद्वेलितो भवेत् । त्वदङ्गसङ्गसम्भूतसुखसन्दोहशीतला ॥

सुखं शये सुशयने प्रावृत्य पुलकाम्बरम् । अपोऽथ समुपस्पृश्य ताम्बूलं परिगृह्य च

त्वदास्यस्यौष्ठपुटकदुग्धवार्धिविवर्धिताम् । सुधांसुधांशुवदन!धयन्त्यपिधिनोमिन

त्वदीयःशीतलालापःप्राप श्रुतिपथंयदा । सपत्नीवाक्यदवथुस्तदैव स्यत्सवेपथुः ॥
यदङ्ग! निद्रासि चिरं ध्यायन्त्यस्मि तदेत्यहम् ।
कदा निद्रादरिद्रोऽसौ भविताऽर्कोदयेऽब्जवत् ॥ ६६ ॥
यदोपेया गृहान्वत्स!खेलित्वा बालखेलनैः ।
तदाऽनर्घ्यार्घ्यमुत्स्रष्टुं स्तनौ स्यातामिवोन्मुखौ ॥ ६७ ॥
यदासौधाद्विनिर्यायाःपद्मरेखाङ्कितंपदम् । प्राणानां ते यियासूनांतदा तदवलम्बनम्
यदा यदा वहिर्यासिपुत्र!त्रिचतुरं पदम् । तदा तदाममप्राणःकण्ठप्राघुणिकीभवेत्
चित्रं पुत्र!त्वरयति यातुंमेमानसाण्डजः । सुधाधाराधर इवबहिश्चिरयति त्वयि
अथ तिष्ठन्तु कठिनाः प्राणाः कण्ठाटवीतटे ।
तपस्यन्तोतिसन्तप्तास्तपसेत्वयि यास्यति ॥ ७१ ॥
इत्यनुज्ञामनुप्राप्य जननीचरणाम्बुजौ । क्षणं मौलिजजम्बालजडौकृत्वाध्रुवो ययौ
तयापिधैर्यसूत्रेण सुनीत्या परिगुम्फ्य च । नेत्रेन्दावरजा मालाध्रुवस्योपायनीकृता
मात्रा तन्मार्गरक्षार्थं तदातदनुगीकृताः । परैरवार्यप्रसराः स्वाशीर्वादाः परःशताः
स्वसौधात्सविनिर्गत्यबालोऽबालपराक्रमः । अनुकूलेनमरुतादर्शिताध्वाऽविशद्वनम्
सुमरुत्तरुशाखाग्रप्रसारणमिषेणसः । कृताहूतिरिव प्रेम्णा वनेन वनमाविशत् ॥
समातृदैवतोऽभिज्ञः केवलं राजवर्त्मनि । नवेदकाननाध्वानं क्षणंदध्यौनृपात्मजः
यावदुन्मीलयनयने पुरःपश्यतिसध्रुवः । तावद्ददर्श सप्तर्षीनतर्कितगतीन्वने ॥ ७८ ॥
बालिशेष्वसहायेषु भवेद्भाग्यंसहायकृत् । अरण्यान्यांरणेगेहेततोभाग्यं हि कारणम्
क्व राजतनयोबालो गहनं क्व च तद्वनम् । बलात्स्वसात्प्रकुर्वत्यै नमस्तेभवितव्यते
यत्रयस्यहियद्भाव्यं शुभंवाऽशुभमेवच । आकृष्यभाविनी रज्जुस्तत्रतस्यहिदापयेत्
अन्यथा विदधात्येष मानवो बुद्धिवैभवात् ।
भगवत्या भवित्र्याऽसौ विदध्याद्विधिरन्यथा ॥ ८२ ॥
न वयो न च वैचित्र्यं न चित्रं विदधे हितम् ।
न बलं नोद्यमः पुंसां कारणं प्राकृतं कृतम् ॥ ८३ ॥

अथ दृष्ट्वा ससप्तर्षीन् सप्तसप्त्यतितेजसः । भाग्यसूत्रैरिवाकृष्योपनीतान् प्रमुमोदह
तिलकाङ्कितसद्भालान् कुशोपग्रहिताङ्गुलीन् । कृष्णाजिनोपविष्टांश्चयज्ञसूत्रैरलंकृतान्
साक्षसूत्रकरान् किंचिद्विनिमीलितलोचनान् ।
सुधौतसूक्ष्मकाषायवासःप्रावरणान्वितान् ॥ ८६ ॥
अकाण्डेऽपि महाभागान् मिलितान् सप्तनीरधीन् ।
चित्रंविपद्विनिर्मग्नानुद्दिधीर्षू निव प्रजाः ॥ ८७ ॥
उपगम्य विनम्रांसः प्रबद्धकरसम्पुटः । ध्रुवोविज्ञापयाञ्चक्रे प्रणम्यललितं वचः ॥

ध्रुव उवाच

अवैत मां मुनिवराः! सुनीत्युदरसम्भवम् । उत्तानपादतनयं ध्रुवंनिर्विण्णमानसम्
इदं वनमनुप्राप्तं सनाथं युष्मदङ्घ्रिभिः । प्रायोनभिज्ञंसर्वत्र महद्भ्युषितमानसम्
ते दृष्ट्वोर्जस्वलंबालं स्वभावमधुराकृतिम् । अनर्घ्यनयनेपथ्यं मृदुगम्भीरभाषिणम्
उपोपवेश्य शिशुकं प्रोचुर्वै विस्मिता भृशम् ।
अहो बाल! विशालाक्ष ! महाराजकुमारक ! ॥ ९२ ॥
विचार्यापि न जानीमो वदनिर्वेदकारणम् । अद्यतेह्यर्थचिन्तानो व्यापमानः प्रसूर्गृहे
नीरुक्शरीरसम्पत्तिर्निर्वेदे किन्नु कारणम् ।
अनवाप्ताभिलाषाणां वैराग्यं जायते नृणाम् ॥ ९४ ॥
सप्तद्वीपपतेराज्ञःकुमारस्त्वंतथा कथम् । स्वभावभिन्नप्रकृतौलोकेऽस्मिन्नमनोगतम्
अवगन्तुं हि शक्येत यूनोवृद्धस्यवाशिशोः । इतिश्रुत्वावचस्तेषां सहजप्रेमनिर्भरम्
वाचं जग्राह स तदा शिशुः प्रांशुमनोरथः ।

ध्रुव उवाच

प्रेषितो राजसेवार्थं जनन्याऽहं मुनीश्वराः ॥ ९७ ॥
राजाङ्कमारुरुक्षुर्हि सुरुच्या परिभर्त्सितः । उत्तमं चोत्तमीकृत्यमाञ्च मन्मातरं तथा
धिक्कृत्यप्रशशंसस्त्वंनिर्वेदेकारणं त्विदम् । निशम्येतिशिशोर्वाक्यंपरस्परमवेक्ष्यते
क्षात्रमेव शशंसुस्तदहोबालेऽपि न क्षमा ॥ १०० ॥

ऋषय ऊचुः

किमस्माभिरहो कार्यं कस्तवास्तिमनोरथः । ज्ञातोभवतुतावत्सनःश्रवोगोचरीकुरु

ध्रुव उवाच

मुनयोमम योबन्धुरुत्तमश्चोत्तमोत्तमः । पित्रादत्तश्च सोऽध्यास्तांतद्वद्रासनमुत्तमम्
भवत्कृतंहिसाहाय्यमेतदिच्छामिसुव्रताः । प्रायोजानेनबालत्वादुपदेशस्तदुच्यताम्
अनन्यनृपभुक्तं यद्यदन्येभ्यः समुच्छ्रितम् । इन्द्रादिदुरवापं यत्कथं लभ्यं दुरासदम्
पित्रोत्सृष्टं न काङ्क्षामिकाङ्क्षामिस्वभुजार्जितम् । मनोरथपथातीतंभवेद्यदिपितुरप्यहो
पितृसम्पत्तिभोक्तारः प्रायशो नयशोधनाः । नरोत्तमास्तुतेज्ञेयायेपित्राधिक्यदर्शिनः
उपार्जितं हि पित्रा ये नाशयन्ति यशःश्रुतम् ।
धनं निधनमेवास्तु तेषां दुर्वृत्तचेतसाम् ॥ १०७ ॥
इतिश्रुत्वावचस्तस्य मुनयःसुनयोर्जितम् । यथार्थमेवंप्रत्यूचुर्मरीच्याद्यास्तथाध्रुवम्

मरीचिरुवाच

अन र्चिताच्युतपदः पदमापद्यते कथम् । यथातथात्वमात्थाङ्ग! नातथ्यंकथयाम्यहम्

अत्रिरुवाच

अनास्वादितगोविन्दपादाम्बुजरजोरसः । मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत्पदम्

अङ्गिरा उवाच

अदवीयःपदं तस्यसर्वासांसम्पदामिह । कमलाकान्तकान्ताङ्घ्रिकमलेयःसुशीलयेत्

पुलस्त्य उवाच

यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसन्ततिः । परमान्तमवाप्नोतिसविष्णुःसर्वदो ध्रुवः

पुलह उवाच

यदाहुःपरमंब्रह्म प्रधानपुरुषात्परम् । यन्मायया ततं सर्वं सर्वं दास्यति सोऽच्युतः

क्रतुरुवाच

यो यज्ञपुरुषो विष्णुर्वेदवेद्यो जनार्दनः । अन्तरात्माऽस्यजगतः सतुष्टःकिन्नयच्छति

वसिष्ठ उवाच

यद्भ्रूनर्तनवर्तिन्यः सिद्धयोऽष्टौ नृपात्मज! । तमाराध्यहृषीकेशमपवर्गोऽप्यदूरतः

ध्रुव उवाच

सत्यमुक्तं मुनीशाना! विष्णोराराधनं प्रति ।
कथं वा भगवानिज्यः स विधिश्चोपदिश्यताम् ॥ ११६ ॥

मुनय ऊचुः

तिष्ठतागच्छतावापि स्वपता जाग्रता तथा । शयानेनोपविष्टेनजप्योनारायणः सदा
द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च । ध्यायंश्चतुर्भुजंविष्णुंजप्त्वासिद्धिंनकोगतः
अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।
क्षणं सर्वात्मकं पश्यन् को न सिद्ध्यति भूतले ॥ ११९ ॥
पुत्रान् कलत्रमित्राणि राज्यं स्वर्गापवर्गकम् ।
वासुदेवं जपन्मर्त्यः सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १२० ॥
वासुदेवजपासक्तानपिपापकृतोजनान् । नोपस्पृशन्ति वैविघ्ना यमदूताश्च दारुणाः
पितामहेन तेप्येष महामन्त्रउपासितः । मनुनाराज्यकामेन वैष्णवेन महर्द्धिना ॥१२२
त्वमप्येतेन मन्त्रेण वासुदेवपरोभव । यथाभिलषितामृद्धिंक्षिप्रमाप्नुहि सत्तम ! ॥
इत्युक्त्वान्तर्हिताःसर्वे महात्मानोमुनीश्वराः । वासुदेवमनाभूत्वाध्रुवोऽपितपसंगतः

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
पूर्वार्द्धे ध्रुवलोकवर्णने ध्रुवोपदेशोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

ध्रुवाख्यानेभगवद्दर्शनवर्णनम्

गणावूचतुः

औत्तानपादिर्निर्गत्य ततःकाननतोद्विज! । रम्यं मधुवनंप्राप यमुनायस्तटे महत् ॥
आद्यं भगवतः स्थानं तत्पुण्यं हरिमेधसः ।
पापोऽपि जन्तुस्तत्प्राप्य निष्पापो जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥
जपन्स वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म निरामयम् ।
अपश्यत्तन्मयं विश्वं ध्यानस्तिमितलोचनः ॥ ३ ॥
हरिर्हरित्सु सर्वासु हरिर्हरिमरीचिषु । शिवामृगमृगेन्द्रादिरूपः काननगो हरिः ॥
जले शालूरकूर्मादिरूपेण भगवान् हरिः । हरिरश्वादिरूपेण मन्दुरास्वपि भूभुजाम्
अनन्तरूपः पाताले गगनेऽनन्तसञ्ज्ञकः ।
एकोप्यनन्ततां यातो रूपभेदैरनन्तकैः ॥ ६ ॥
देवेषु यो वसेन्नित्यंदेवानां वसतिर्हियः । स वासुदेवःसर्वत्र दीव्येद्यद्वासनावशात्
विष्लृव्याप्तावयं धातुर्यत्रसार्थकताङ्गतः । विष्णुनामस्वरूपेहि सर्वव्यापनशीलिनि
सर्वेषाञ्च हृषीकाणामीशनात्परमेश्वरः ।
हृषीकेश इति ख्यातो यः स सर्वत्र संस्थितः ॥ ६ ॥
नच्यवन्तेऽपि यद्भक्तामहतिप्रलयेसति । अतोऽच्युतोऽखिलेलोकेसएकःसर्वगोऽव्ययः
इदं चराचरं विश्वं यो बभार स्वलीलया ।
भृत्या स्वरूपसम्पत्त्या सोऽत्र विश्वम्भरोऽखिलम् ॥ ११ ॥
तस्येक्षणेसमीक्षेतेनान्यद्विष्णुपदादृते । निरीक्ष्यः पुण्डरीकाक्षोनान्योनियमतोह्यतः
नान्यशब्दग्रहौ तस्य जातौ शब्दग्रहावपि । विना मुकुन्दगोविन्द!दामोदरचतुर्भुज!
गोविन्दचरणर्थार्चा तत्प्रियंकर्म वै विना । शङ्खचक्राङ्कितौतस्य नान्यकर्मकरौ करौ

निर्द्वन्द्वचरणद्वन्द्वं तन्मनो मनुते हरेः। हित्वाऽन्यन्मननं सर्वं निश्चलत्वमवाप ह॥
चरणौ विष्णुशरणौहित्वानारायणाङ्गणम्। तस्य नोचरतोऽन्यत्रचरतोविपुलन्तपः
वाणी प्रमाणीक्रियते गोविन्दगुणवर्णने।
जोषं समासता तेन महासारं तपस्यता॥ १७॥
नितान्तकमलाकान्तनामधेयसुधारसम्। रसयन्ती न रसनातस्यान्यरससस्पृहा॥
श्रीमुकुन्दपदद्वन्द्वपद्मामोदप्रमोदितम्। गन्धान्तरं न तद्घ्राणं परिजिघ्रत्यशीघ्रगम्
त्वगिन्द्रियं मधुरिपोः परिपृश्य पदद्वयम्।
सर्वस्पर्शसुखं प्राप तस्य भूजानिजन्मनः॥ २०॥
शब्दादिविषयाधारं सारंदामोदरं परम्। ध्रुवेन्द्रियाणि संप्राप्यकृतार्थान्यभवंस्तदा
लुप्तानि सर्वतेजांसि तत्तपस्तपनोदये। चन्द्रसूर्यानलर्क्षाणां प्रदीपितजगत्त्रये॥
इन्द्रचन्द्राग्निवरुणसमीरणधनाधिपाः। यमनैर्ऋतमुख्याश्च जाताः स्वपदशङ्किताः
वैमानिकास्तथाऽन्येपि वसुमुख्या दिवौकसः।
ततो ध्रुवात्समुत्त्रेसुः स्वाधिकारैधिताधयः॥ २४॥
यत्र यत्र ध्रुवः पादं मिनोति पृथिवीतले। धरा तस्यभराक्रान्ता विनमेत्तत्र तत्र वै
अहो तदङ्गसङ्गीनि त्यक्त्वा जाड्यं जलान्यपि।
रसवन्ति पदस्थानि स्फुरन्त्यन्यत्र तद्भयात्॥ २६॥
यावन्ति विष्वक्तेजांसि सिद्धरूपगुणानि च।
नेत्रातिथीनि तावन्ति तत्तपस्तेजसाऽभवन्॥ २७॥
अहो निजगुणस्पर्शः सततं मातरिश्वना। दूरदेशान्तरस्थोपितत्त्वचोविषयीकृतः॥
व्योम्नापि शब्दगुणिनाध्रुवाराधनवुद्धिना। शब्दजातस्त्वशेषोपि तत्कर्णशरणीकृतः
आराधितोऽनुदिवसं सभूतैरपि पञ्चभिः।
तप एव परं मेने गोविन्दार्पितमानसः॥ ३०॥
कौस्तुभोद्भासितहृदः पीतकौशेयवाससः। ध्यानात्तेजोमयं विश्वंतेनैक्षि नृपसूनुना
मरुत्वतातिमहती चिन्ताप्ता तत्तपोभयात्। मत्पदं चेदाकाङ्क्षिष्यद्हरिष्यद्ध्रुवंध्रुवः

समर्थस्त्वप्सरोवर्गो नियन्तुं यमिनां यमान्।
स तु यूनि प्रभवति नाऽत्र बाले करोमि किम् ॥ ३३ ॥
तपस्विनान्तपोहन्तुं द्वौ मत्साहाय्यकारिणौ।
कामक्रोधौ न तावस्मिन् प्रभवेतां शिशौ ध्रुवे ॥ ३४ ॥
एकएव किलोपायो बाले मे प्रभविष्यति। भूतालीं भीषणाकारांप्रहिणोमीहतद्धिये
बालत्वाद्भीषितो भूतैस्तपस्त्यक्ष्यत्यसौ ध्रुवम्।
इति निश्चित्य भूतालीं प्रेषयामास वासवः ॥ ३६ ॥
भल्लूकाकारसर्वाङ्ग उग्रलम्बशिरोधरः। कश्चिद्दुर्दर्शदशनस्त्वभ्यधावत्तमर्भकम् ॥
तंव्याघ्रवदनःकश्चिद्व्यादायविकटाननम्। द्विपोच्चदेहसंस्थानोमुहुर्गर्जन्समभ्यगात्
रयात्तुमांसकं भुञ्जन् कश्चिद्विकटदंष्ट्रकः। रोषात्तमभिदुद्राव दृष्ट्वा सन्तर्जयन्निव ॥
अतितीक्ष्णैर्विषाणाग्रैस्तटानुच्चान्विदारयन्।
खुराग्रैर्दलयन् भूमिं महोक्षोऽभिजगर्ज तम् ॥ ४० ॥
कश्चिद्धि पन्नगीभूयफटाटोपभयानकः। अतिलोलद्विरसनःपुस्फूर्ज निकषा च तम्
कश्चिच्च महिषाकारः क्षिपञ्च्छृङ्गाग्रतो गिरीन्।
लाङ्गूलताडितधरः श्वसन् वेगात्तमाप्तवान्॥ ४२ ॥
कश्चिद्दावानलालीढखर्जूरद्रुमसन्निभम्। बिभ्रदूरुद्वयं भूतोव्यात्तास्यस्तमभीषयत्
मौलिजैरभ्रसङ्घर्षं कुर्वन् दीर्घकृशोदरः। निमग्नपिङ्गनयनःकश्चिद्भीषयति स्म तम् ॥
कृपाणपाणिर्भग्नास्यो वामहस्तकपालधृत्।
प्रचण्डं क्ष्वेडयन्कश्चिदभ्यधावत्तमर्भकम् ॥ ४५ ॥
विशालशालमादाय कुर्वन्किलकिलारवम्। कश्चित्तमभितोयातिकालोदण्डधरोयथा
तमः सङ्केतसदनं व्याघ्रं वै वदनंमहत्। कृतान्तकन्दराकारं बिभ्रत्कश्चित्तमभ्यगात्
उलूकाकारतां कृत्वा फूत्कारैरतिदारुणैः।
हृदयाकम्पनैःकश्चिद्भीषयामास तं ध्रुवम्॥ ४८ ॥
यक्षिणी काचिदानीय रुदन्तं कस्यचिच्छिशुम्।

अपिबद्रुधिरं कोष्ठाच्चखादास्थिमृणालवत् ॥ ४६ ॥
पिपासिताऽद्य रुधिरं तेऽपि पास्याम्यहं ध्रुव !।
यथास्य बालस्य तथा चर्वित्वाऽस्थीनि वादिनी ॥ ५० ॥
आनीय तृणदारूणि परिस्तीर्य समन्ततः ।
दावाग्नि ज्वालयायास काचिद्वात्याविवर्धितम् ॥ ५१ ॥
वेतालीरूपमास्थाय भङ्क्त्वा काचित्तरून् गिरीन् ।
रुरोध गगनाध्वानं कम्पयन्ती च तं भृशम् ॥ ५२ ॥
अन्यासुनीतिरूपेणतमभिप्रेक्ष्य दूरतः । रुरोदातीवदुःखार्ता वक्षोघातं मुहुर्मुहुः ॥
उवाच च वचश्चाटुबहुमायाविनिर्मितम् । कारुण्यपूर्णवात्सल्यमतीवातन्वतीसती
त्वदेकशरणां वत्स! बतमृत्युर्जिघांसति । रक्ष रक्षगतासुं मां शरणागतवत्सल !॥
प्रतिग्रामं प्रतिपुरं प्रत्यध्वंप्रतिकाननम् । प्रत्याश्रमं प्रतिगिरिं श्रान्तात्वद्वीक्षणातुरा
यदाप्रभृति रेवाल! निरगात्तपसे भवान् ।
तदेव दिनमारभ्य निर्गताऽहं त्वदीक्षणे ॥ ५७ ॥
तैस्तैःसपत्नीदुर्वाक्यैर्दुनोषित्वंयथार्भक!। तथाऽहमपिदूनास्मिनितरांतद्वचोऽग्निना
न निद्रामि न जागर्मि न श्नामि न पिबाम्यहम् ।
ध्यायामि केवलं त्वाऽहं योगिनीव वियोगिनी ॥ ५६ ॥
निद्रादरिद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनन्दिसर्वथा यन्मेमन्दभाग्याविलोकये
त्वदाननप्रतिनिधिर्विधुर्विधुरया मया । उदित्वरोपि नालोकि तापंवैत्यक्तुकामया
त्वादालापसमालापं कलयन् किल काकलीम् ।
कोकिलोऽपि मयाऽऽकर्णि नालकाकीर्णकर्णया ॥ ६२ ॥
त्वदङ्गसङ्गमधुरो ध्रुव धूपितया मया । नानिलोपिमयालिङ्गि क्वचिद्विश्रान्तयाभृशम्
केदेशाः काश्चसरितःकेशैलास्त्वत्कृतेध्रुव !। मयाचरणचारिण्याराजपत्न्यानलङ्घिताः
अध्रुवं सर्वमेवैतत्पश्यन्त्यन्धीकृताऽस्म्यहम् ।
धात्रीं त्रायस्व मां पुत्र! प्राप्य त्वं मेऽन्धयष्टिताम् ॥ ६५ ॥

मृदुलानितवाङ्गानिक्वेमानि क्व तपस्त्विदम् । परुषं पुरुषैः साध्यंपरुषाङ्गैर्नरर्षभ ॥
अनेन तपसा वत्स! त्वयाऽऽप्यं किमनेनसा । धराधीशतनूजत्वादधिकं तद्वदाधुना
अनेन वयसा बाल!खेलनीयंत्वयाऽनिशम् । बालक्रीडनकैरन्यैःसवयःशिशुभिःसमम्
ततः कौमारमासाद्यवयोऽभिध्यानशीलिना । भवतासर्वविद्यानांभाव्यंवैपारदृश्वना
वयोऽथ चतुरं प्राप्य योषास्रक्चन्दनादिकान् ।
निर्वेक्ष्यसि बहून् भोगानिन्द्रियार्थान्कृतार्थयन् ॥ ७० ॥
उत्पाद्याथ बहून्पुत्रान्गुणिनोधर्मवत्सलान् । परिसंक्रामितश्रीकस्तेष्वथोत्वंतपश्चर
इदानीमेव तपसिबाल्येवयसिकः श्रमः । पादाङ्गुष्ठकरीषाग्निः कदामौलिमवाप्स्यति
विपक्षपरिभूतेन हतमानेन केनचित् । परिभ्रष्टश्रिया वापितप्तव्यं तेषुकोभवान् ॥
हतमानेन तप्तव्यं निशम्येतिवचोध्रुवः । दीर्घमुष्णं हिनिःश्वस्यपुनर्दध्यौहरिंहृदि
जनयित्रीमनाभाष्य भूतभीतिंविहाय च । ध्रुवोऽच्युतध्यानपरः पुनरेव बभूव ह ॥
सापिभूतावलीभीतिं बहुभीषणभूषणा । दर्शयन्ती तमभितोऽद्राक्षीच्चक्रंसुदर्शनम्
परितः परिवेषाभं सूर्यस्योच्चैः स्फुरत्प्रभम् ।
रक्षणाय च रक्षोभ्यस्तस्याधोक्षजनिर्मितम् ॥ ७७ ॥
भूतावली तमालोक्य स्फुरच्चक्रंसुदर्शनम् । ज्वालामालाकुलं तीव्रंरक्षन्तंपरितोध्रुवम्
अतीवनिष्कम्पहृदं गोविन्दार्पितचेतसम् । तपोङ्कुरमिवोद्भिद्य मेदिनीं समुदित्वरम्
सापिप्रत्युतभीता तं ध्रुवं ध्रुवविनिश्चयम् । नमस्कृत्य यथायातं याताव्यर्थमनोरथा
गर्जत्कादम्बिनीजालं व्योम्निवै व्याकुलं यथा ।
वृथा भवति संप्राप्य मनागनिललोलताम् ॥ ८१ ॥
अथ जम्भारिणासार्धंभीताःसर्वेदिवौकसः । संमन्त्र्यत्वरिताजग्मुर्ब्रह्माणंशरणंद्विज
नत्वा विज्ञापयामासुः परिष्टुत्यपितामहम् । वचोऽवसरमालोक्यपृष्टागमनकारणाः

देवा ऊचुः

धातरुत्तानपादस्य तनयेन सुवर्चसा । तपता तापिताः सर्वे त्रिलोकीतलवासिनः
सम्यक् संविद्महे तात! ध्रुवस्य न मनीषितम् ।

पदं परिजिहीर्षुः स कस्याऽस्मासु महातपाः ॥ ८५ ॥
इति विज्ञापितोदेवैर्विहस्य चतुराननः । प्रत्युवाचाथतान्सर्वान्ध्रुवतो भीतमानसान्

ब्रह्मोवाच

नभेतव्यंसुरास्तस्माद्ध्रुवाद्ध्रुवपदैषिणः । व्रजन्तु विज्वराःसर्वेनसवः पदमिच्छति
नतस्माद्भगवद्भक्ताद्भेतव्यंकेनचित्कचित् । निश्चितंविष्णुभक्तायेनतेस्युःपरतापिनः
आराध्य विष्णुं देवेशं लब्ध्वा तस्मात्स्वकाङ्क्षितम् ।
भवतामपि सर्वेषां पदानि स्थिरयिष्यति ॥ ८६ ॥
निशम्येति च गीर्वाणाः प्रणीतं ब्रह्मणा वचः ।
प्रणिपत्य स्वधिष्ण्यानि प्रहृष्टाः परिवव्रजुः ॥ ९० ॥
अथ नारायणोदेवस्तं दृष्ट्वा दृढमानसम् । अनन्यशरणं बालं गत्वातार्क्ष्यरथोऽब्रवीत्

श्रीविष्णुरुवाच

प्रसन्नोऽस्मिमहाभाग!वरंवरयसुव्रत !। तपसोऽस्मान्निवर्तस्वचिरंखिन्नोऽसिबालक
वचोऽमृतं समाकर्ण्य पर्युन्मील्यविलोचने ।
इन्द्रनीलमणिज्योतिः पटलींपर्यलोकयत् ॥ ९३ ॥
प्रत्यग्रविकसन्नीलोत्पलानांनिकुरम्बकैः । प्रोत्फुल्लितांसमन्ताच्च रोदसीसरसीमिव
लक्ष्मीदेवीकटाक्षौघैः कटाक्षितमिवाखिलम् ।
ध्रुवस्तदा निरैक्षिष्ट द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ९५ ॥
प्रोद्यत्कादम्बिनीमध्यविद्युद्दामसमानरुक् ।
पुरः पीताम्बरःकृष्णस्तेन नेत्रातिथीकृतः ॥ ९६ ॥
नभोनिकषपाषाणोमेरुकाञ्चनरेखितः । यथातथाध्रुवेणैक्षि तदा गरुडवाहनः ॥ ९७
सुनीलगगनं यद्वद्भूषितन्तु कलावता । पीतेन वाससायुक्तं स ददर्श हरिंतदा ॥
दण्डवत्प्रणिपत्याथ परितः परिलुठ्य च । रुरोद दृष्ट्वैवचिरंपितरं दुःखितःशिशुः
नारदेन सनन्देन सनकेन सुसंस्तुतः । अन्यैः सनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनां वरः ॥
कारुण्यबाष्पनीरार्द्रपुण्डरीकविलोचनः । ध्रुवमुत्थापयाञ्चक्रे चक्रीधृत्वा करेण तम्

हरिस्तु परिपस्पर्श तदङ्गंधूलिधूसरम् । कराभ्यांसुकठोराभ्यां नित्यंशस्त्रपरिग्रहात्
स्पर्शनाद्देवदेवस्य सुसंस्कृतमयी शुभा ।
वाणी प्रवृत्ता तस्याऽऽस्यात्तुष्टावाऽथ ध्रुवो हरिम् ॥ १०३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे ध्रुवाख्याने भगवद्दर्शनन्नामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

ध्रुवकृताभगवत्स्तुतिवर्णनम्

ध्रुव उवाच

नमो हिरण्यगर्भाय सर्वसृष्टिविधायिने । हिरण्यरेतसे तुभ्यं सुहिरण्यप्रदायिने ॥
नमो हरस्वरूपाय भूतसंहारकारिणे । महाभूतात्मभूताय भूतानां पतये नमः ॥
नमः स्थितिकृतेतुभ्यं विष्णवे प्रभविष्णवे । तृष्णाहरायकृष्णायमहाभारसहिष्णवे
नमो दैत्यमहारण्यदाववह्निस्वरूपिणे । दैत्यद्रुमकुठारायनमस्ते शार्ङ्गपाणये ॥ ४ ॥
नमः कौमोदकीव्यग्रकराग्राय गदाधर !। महादनुजनाशाय नमो नन्दकधारिणे
नमः श्रीपतयेतुभ्यं नमश्चक्रधराय च । धराधराय वाराहरूपिणे परमात्मने ॥
नमः कमलहस्ताय कमलावल्लभाय ते । नमो मत्स्यादिरूपाय नमः कौस्तुभवक्षसे
नमो वेदान्तवेद्याय नमः श्रीवत्सधारिणे । नमोगुणस्वरूपाय गुणिने गुणवर्जिते
नमस्ते पद्मनाभाय पाञ्चजन्यधराय च । वासुदेव! नमस्तुभ्यं देवकीनन्दनाय च ॥
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः । नमः कंसविनाशाय नमश्चाणूरमर्दिने ॥
दामोदरहृषीकेश! गोविन्दाच्युतमाधव !। उपेन्द्रकैटभाराते!मधुहन्तरधोक्षज !॥ ११
नारायणाय नरकहारिणे पापहारिणे । वामनाय नमस्तुभ्यं हरये शौरये नमः ॥ १२॥
अनन्ताय नमस्तुभ्यमनन्तशयनाय च । रुक्मिणीपतये तुभ्यं रुक्मिप्रमथनाय च

चैद्यहन्त्रे नमस्तुभ्यं दानवारे सुरारये । मुकुन्दपरमानन्दनन्दगोपप्रियाय च ॥ १४
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष!दनुजेन्द्रनिषूदन !। नमोगोपालरूपाय वेणुवादनकारिणे ॥ १५
गोपीप्रियाय केशिघ्ने गोवर्धनधराय च । रामाय रघुनाथाय राघवाय नमो नमः ॥

रावणारे! नमस्तुभ्यं विभीषणशरण्यद !।
अजाय जयरूपाय रणाङ्गणविचक्षण !॥ १७ ॥

क्षणादिकालरूपाय नानारूपाय शार्ङ्गिणे । गदिने चक्रिणे तुभ्यं दैत्यचक्रविमर्दिने
बलाय बलभद्राय बलारातिप्रियाय च । बलियज्ञप्रमथन! नमोभक्तवरप्रद! ॥ १६ ॥
हिरण्यकशिपोर्वक्षोविदारणरणप्रिय ! । नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥
नमस्तेधर्मरूपाय नमःसत्त्वगुणाय च । नमः सहस्रशिरसे पुरुषाय पराय च ॥ २१
सहस्राक्ष! सहस्राङ्घ्रे! सहस्रकिरणाय च । सहस्रमूर्त्ते! श्रीकान्त ! नमस्तेयज्ञपूरुष!
वेदवेद्यस्वरूपाय नमो वेदप्रियाय च । वेदाय वेदगदिने सदाचाराध्वगामिने ॥
वैकुण्ठाय नमस्तुभ्यं नमो वैकुण्ठवासिने । विष्टरश्रवसे तुभ्यं नमो गरुडगामिने
विष्वक्सेन! नमस्तुभ्यंजगन्मयजनार्दन !। त्रिविक्रमायसत्याय नमःसत्यप्रियाय च
केशवाय नमस्तुभ्यं मायिने ब्रह्मगायिने । तपोरूपाय तपसां नमस्ते फलदायिने
स्तुत्याय स्तुतिरूपायभक्तस्तुतिरताय च । नमस्ते श्रुतिरूपाय श्रुत्याचारप्रियायच
अण्डजाय नमस्तुभ्यं स्वेदजाय नमोऽस्तु ते । जरायुजस्वरूपाय नमउद्भिज्जरूपिणे

देवानामिन्द्ररूपोऽसि ग्रहाणामसि भानुमान् ।
लोकानां सत्यलोकोऽसि सिन्धूनां क्षीरसागरः ॥ २६ ॥
सुरापगाऽसि सरितां सरसां मानसं सरः ।
हिमवानसि शैलानां धेनूनां कामधुग्भवान् ॥ ३० ॥

धातूनां हाटकमसि स्फटिकश्चोपलेष्वसि । नीलोत्पलं प्रसूनेषु वृक्षेषु तुलसीभवान्

सर्वपूज्यशिलानां वै शालग्रामशिला भवान् ।
मुक्तिक्षेत्रेषु काशी त्वं प्रयागस्तीर्थपङ्क्तिषु ॥ ३२ ॥
वर्णेषु श्वेतवर्णोऽसि द्विपदां ब्राह्मणो भवान् ।

गरुडोऽस्यण्डजेष्वीश! व्यवहारेषु वाग्भवान् ॥ ३३ ॥
वेदेषूपनिषद्रूपो मन्त्राणां प्रणवोह्यसि । अक्षराणामकारोसि यज्वनां सोमरूपधृक्
प्रतापिनामग्निरसि क्षमाऽसि त्वं क्षमावताम् ।
दातृणामसि पर्जन्यः पवित्राणां परो ह्यसि ॥ ३५ ॥
चापोसिसर्वशस्त्राणांवातोवेगवतामसि । मनोऽसीन्द्रियवर्गेषु निर्भयाणांकरोह्यसि
व्योम व्याप्तिमतां त्वं वै परमात्माऽसि चात्मनाम् ।
सन्ध्योपास्तिर्भवान् देव सर्वनित्येषु कर्मसु ॥ ३७ ॥
क्रतूनामश्वमेधोसि दानानामभयंभवान् । लाभानांपुत्रलाभोसिवसन्तस्त्वमृतुष्वहो
युगानां प्रथमोऽसि त्वं तिथीनान्त्वं कुहू ह्यसि ।
पुष्योऽसि नक्षत्रगणे संक्रमः सर्वपर्वसु ॥ ३९ ॥
योगेषुव्यतिपातस्त्वं तृणेषुहिकुशोभवान् । उद्यमानांहिसर्वेषांनिर्वाणंत्वमसिप्रभो!
सर्वासामिह बुद्धीनां धर्मबुद्धिर्भवानज । अश्वत्थः सर्ववृक्षेषु सोमवल्लीलतासु च
प्राणायामोऽसिसर्वेषुसाधनेषुशुचिष्वहो । सर्वदःसर्वलिङ्गेषुश्रीमान्विश्वेश्वरोभवान्
मित्राणां हि कलत्रन्त्वं धर्मस्त्वं सर्वबन्धुषु ।
त्वत्तो नान्यज्जगत्यस्मिन्नारायणचराचरे ॥ ४३ ॥
त्वमेवमातात्वंतातस्त्वंसुहृत्त्वंमहाधनम् । त्वमेवसौख्यसम्पत्तिस्त्वमायुर्जीवनेश्वरः
सा कथायत्रतेनामतन्मनो यत्त्वदर्पितम् । तत्कर्म यत्त्वदर्थं वै तत्तपो यद्भवत्स्मृतिः
तद्धनंधनिनांशुद्धं यत्त्वदर्थेव्ययीकृतम् । सएवसकलःकालोयस्मिञ्जिष्णोत्वमर्च्यसे
तावच्चजीवितं श्रेयो यावत्त्वं हृदिवर्तसे । रोगाःप्रशममायान्ति त्वत्पादोदकसेवनात्
महापापानिगोविन्द!बहुजन्मार्जितान्यपि । सद्योविलयमायान्तिवासुदेवेतिकीर्तनात्
अहो पुंसां महामोहस्त्वहो पुंसां प्रमादता । वासुदेवमनादृत्य यदन्यत्र कृतश्रमाः
इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम् । जीवितस्य फलं चैतद्यद्दामोदरकीर्तनम् ॥
अधोक्षजात्परो धर्मानार्थो नारायणात्परः । न कामःकेशवादन्यो नापवर्गोहरिंविना
इयमेव पराहानिरुपसर्गायमेव हि । अभाग्यं परमं चैतद्वासुदेवं न यत्स्मरेत् ॥

हरेराराधनं पुंसां किंकिं न कुरुते बत । पुत्रमित्रकलत्रार्थराज्यस्वर्गापवर्गदम् ॥
हरत्यघं ध्वंसयति व्याधीनाधीन्नियच्छति । धर्मंविवर्धयेत्क्षिप्रं प्रयच्छतिमनोरथम्
भगवच्चरणद्वन्द्वनिर्द्वन्द्वध्यानमुत्तमम् । पापिनापि प्रसङ्गेन विहितं स्वहितं परम् ॥
पापिनां यानि पापानि महोपपदभाञ्ज्यपि ।
सुलीनध्यानसम्पन्नो नामोच्चारो हरेर्हरेत् ॥ ५६ ॥
प्रमादादपि संस्पृष्टो यथाऽनलकणो दहेत् । तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनामहरेदघम् ॥
नितान्तं कमलाकान्तेशान्तंचित्तं विधाय यः । संशीलयेत्क्षणंनूनंकमलातत्रनिश्चला
अयमेव परो धर्मस्त्विदमेव परन्तपः ।
इदमेव परं तीर्थं विष्णुपादाम्बु यत्पिबेत् ॥ ५९ ॥
तवोपहारं भक्त्या यःसेवते यज्ञपूरुष !। सेवितस्तेन नियतं पुरोडाशो महाधिया ॥
स चैवावभृथस्नानः स च गङ्गाजलाप्लुतः ।
विष्णुपादोदकं कृत्वा शङ्खे यःस्नाति मानवः ॥ ६१ ॥
शालग्रामशिला येन पूजिता तुलसीदलैः । स पारिजातमालाभिः पूज्यते सुरसद्मनि
ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रोवायदिवेतरः । विष्णुभक्तिसलायुक्तोज्ञेयःसर्वोत्तमश्चसः
शङ्खचक्राङ्किततनुः शिरसा मञ्जरीधरः । गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः ॥
प्रत्यहंद्वादशशिलाःशालग्रामस्ययोऽर्चयेत् । द्वारवत्याःशिलायुक्ताः सवैकुण्ठेमहीयते
तुलसी यस्य भवने प्रत्यहं परिपूज्यते । तद्गृहं नोपसर्पन्ति, कदाचिद्यमकिङ्कराः
हरिनामाक्षरमुखं भाले गोपीमृदाङ्कितम् । तुलसीमालितोरस्कं स्पृशेयुर्नयमानुगाः
गोपीमृत्तुलसीशङ्खः शालग्रामःसचक्रकः । गृहेऽपि यस्यपञ्चैते तस्यपापभयं कुतः
ये मुहूर्ताः क्षणा ये च याः काष्ठा ये निमेषकाः ।
ऋते विष्णुस्मृतेर्यातास्तेषु मुष्टो यमेन सः ॥ ६९ ॥
क्व द्व्यक्षरंहरेर्नाम स्फुलिङ्गसदृशं ज्वलत् । महतीपातकानाञ्च राशिस्तूलोपमा क्व च
गोविन्दं परमानन्दं मुकुन्दं मधुसूदनम् ।
त्यक्त्वाऽन्यं नैव जानामि न भजामि स्मरामि न ॥ ७१ ॥

ननमामिनचस्तौमि नपश्यामीहचक्षुषा । नस्पृशामिनवायामि गायामिनहरिंविना
जलेस्थले च पातालेप्यनिले चानलेऽचले । विद्याधरासुरसुरे किन्नरे वानरे नरे ॥
तृणेस्त्रैणेचपाषाणे तरुगुल्मलतासुच । सर्वत्रश्यामलतनुं वीक्षे श्रीवत्सवक्षसम् ।
सर्वेषांहृदयावासःसाक्षात्साक्षीत्वमेवहि । बहिरन्तर्विनात्वान्तु नह्यन्यंवेद्मिसर्वगम्
इत्युक्त्वा विररामाऽसौ शिवशर्मन्ध्रुवस्तदा ।
देवोऽपि भगवान्विष्णुस्तमुवाच प्रसन्नदृक् ॥ ७६ ॥

श्रीभगवानुवाच

अयि बालविशालाक्ष! ध्रुव! ध्रुवमतेऽनघ । परिज्ञातो मयासम्यक्तवहृत्स्थोमनोरथः
अन्नाद्भवन्ति भूतानि वृष्टेरन्नसमुद्भवः । तद्वृष्टेःकारणं सूर्यः सूर्याधारो ध्रुवैधि भोः॥
ज्योतिश्चक्रस्यसर्वस्यग्रहर्क्षादेःसमन्ततः । गगनेभ्रमतो नित्यंत्वमाधारोभविष्यसि
मेढीभूतस्तु वै सर्वान्वायुपाशैर्नियन्त्रितान् ।
आकल्पं तत्पदं तिष्ठ भ्रामयञ्ज्योतिषाङ्गणान् ॥ ८० ॥
आराध्य श्रीमहादेवपुरापदमिदं मया । आसादियत्तदेतत्ते तपसा प्रतिपादितम् ॥
केचिच्चतुर्युगं यावत्केचिन्मन्वन्तरं ध्रुव! । तिष्ठन्तित्वन्तुवैकल्पंपदमेतत्प्रशास्यति
मनुनाऽपिनयत्प्रापि किमन्यैर्मानवैर्ध्रुव!। तत्पदं विहितंत्वत्साच्छक्राद्यैरपिदुर्लभम्
अन्यान्ववरान्प्रयच्छामिस्तवेनानेनतोषितः।सुनीतिरपितेमातात्वत्समीपेचरिष्यति
इदं स्तोत्रवरं यस्तु पठिष्यति समाहितः ।
त्रिसन्ध्यं मनुजस्तस्य पापं यास्यति संक्षयम् ॥ ८५ ॥
नतस्य सदनं लक्ष्मीः परित्यक्ष्यत्यसंशयम् । नजनन्यावियोगश्च नबन्धुकलहोदयः
ध्रुवस्तुतिरियं पुण्यामहापातकनाशिनी । ब्रह्महापिविशुद्ध्येत का कथेतरपापिनाम्
महापुण्यस्य जननी महासम्पत्तिदायिनी । महोपसर्गशमनी महाव्याधिविनाशिनी
यस्याऽस्ति परमाभक्तिर्मयि निर्मलचेतसः ।
ध्रुवस्तुतिरियं तेन जप्या मत्प्रीतिकारिणी ॥ ८६ ॥
समस्ततीर्थस्नानेन यत्फलं लभते नरः । तत्फलं सम्यगाप्नोति जपन्स्तुत्यानयामुदा

सन्ति स्तोत्राण्यनेकानि मम प्रीतिकराणि च ।
ध्रुवस्तुतेर्नचैतस्याः कलामर्हन्ति षोडशीम् ॥ ६१ ॥
श्रुत्वापीमांस्तुतिं मर्त्यःश्रद्धयापरयामुदा । पातकैर्मुच्यतेसद्योमहत्पुण्यमवाप्नुयात्
अपुत्रःपुत्रमाप्नोति निर्धनो धनमाप्नुयात् ।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति कीर्त्तनाच्च ध्रुवस्तुतेः ॥ ६३ ॥
दत्वादानान्यनेकानिकृत्वानानाव्रतानिच । यथालाभानवाप्नोतितथास्तुत्याऽनयानरः
त्यक्त्वा सर्वाणि कार्याणि त्यक्त्वा जप्यान्यनेकशः ।
ध्रुवस्तुतिरियं जप्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ ६५ ॥

श्रीभगवानुवाच

ध्रुवावधेहिवक्ष्यामि हितं तवमहामते !। येन ते निश्चलं सम्यक्पदमेतद्भविष्यति ॥
अहंजिगमिषुस्त्वासंपुरींवाराणसींशुभाम् । साक्षाद्विश्वेश्वरोयत्रतिष्ठतेमोक्षकारणम्
विपन्नानाञ्च जन्तूनां यत्रविश्वेश्वरः स्वयम् । कर्णेजापं प्रकुरुते कर्मनिर्मूलनक्षमम्
अस्यसंसारदुःखस्य सर्वोपद्रवदायिनः । उपायएकएवास्ति काशिकानन्दभूमिका ॥
इदं रम्यमिदं नेति बीजंदुःखमहातरोः । तस्मिन्काश्यग्निनादग्धे दुखःस्यावसरःकुतः
प्राप्यं संप्राप्यते येन नभूयोयेन शोच्यते । परायां निर्वृतेःस्थानं यत्तदानन्दकाननम्
अमृतायनमुत्सृज्यपुरुषोन्यत्र यो वसेत् । आनन्दकाननं शम्भोः कुतस्तस्यसुखोदयः
वरंशरावहस्तस्य चाण्डालागारवीथिषु । भिक्षार्थमटनंकाश्यां राज्यंनान्यत्रनीरिपु
वैकुण्ठनगरात्काशींनित्यंविश्वेशमर्चितुम् । अहमायामिनियमाज्जगदर्च्यन्तदर्चिताम्
मयि या परमा शक्तिस्त्रिलोक्यारक्षणक्षमा । तत्रहेतुर्महेशानः ससुदर्शनचक्रदः ॥
पुरा जालन्धरं दैत्यं ममापिपरिकम्पनम् । पादाङ्गुष्ठाग्ररेखोत्थं चक्रं सृष्ट्वाहरोऽहरत्
तच्च चक्रं मया लब्धं नेत्रपद्मार्चनाद्विभोः । एतत्सुदर्नाख्यंवै दैत्यचक्रप्रमर्दनम् ॥
तन्मया तव रक्षार्थं भूतविद्रावणं परम् । तावत्प्रणुन्नं पुरतस्ततश्चाहमिहागतः ॥
काशीमिदानीं यास्यामि विश्वेश्वरविलोकने ।
अद्य यात्राऽस्ति महती कार्त्तिक्यां बहुपुण्यदा ॥ १०६ ॥

कार्त्तिकस्य चतुर्दश्यां विश्वेशं यो विलोकयेत् ।
स्नात्वा चोत्तरवाहिन्यां न तस्य पुनरागतिः ॥ ११० ॥
इत्युक्त्वाताक्ष्यर्मारोप्यध्रुवमानन्दमेदुरम् । क्षणाद्वाराणसींप्रापहरिःस्मरहरोषिताम्
पञ्चक्रोश्याश्च सीमानं प्राप्य देवो जनार्दनः । वैनतेयादवारुह्य करेधृत्वाध्रुवं ततः ॥
मणिकर्ण्यांपरिस्नाय विश्वेशमभिपूज्य च । ध्रुवंबभाषे भगवान् हितंतस्यकीर्षयन्
लिङ्गंस्थापययत्नेन क्षेत्रेऽत्रैवाविमुक्तके । त्रैलोक्यस्थापनंपुण्यं यथाभवतितेऽक्षयम्
नियुतंयत्परिस्थाप्यलिङ्गानिफलमाप्यते । अन्यत्र तदिहैकेन लिङ्गेन परिलभ्यते ॥
कालेन भङ्गमापन्नंजीर्णोद्धारं करोतियः । इह तस्यफलस्यान्तःप्रलयेऽपि न जायते
वित्तशाठ्यं परित्यज्य प्रासादं योऽत्रकारयेत् । तेनदत्तो भवेत्सर्वैमेरुर्नियुतयोजनः
कूपवापीतडागानि शक्त्या योऽत्र तु कारयेत् ।
अन्यत्र करणात्तस्य पुण्यं कोटिगुणाधिकम् ॥ ११८ ॥
इज्यार्थमत्रयः कुर्यात्सुरम्यांपुष्पवाटिकाम् । पुष्पेपुष्पेफलंतस्यसुवर्णकुसुमाधिकम्
अत्र ब्रह्मपुरीं कृत्वायोविप्रेभ्यःप्रयच्छति । वर्षाशनेन संयुक्तांतस्य पुण्यफलंशृणु
क्षीयन्ते सलिलान्यब्धेर्भौमाश्चत्रसरेणवः । क्षयोनतस्यपुण्यस्यशिवलोकेसमासतः
मठानपि तपस्विभ्यःकारयित्वाऽत्र योऽर्पयेत् ।
जीवनोपायसंयुक्तान्सोऽपि पूर्वफलाश्रयः ॥ २२ ॥
कृत्वामहान्ति पुण्यानियोऽत्र विश्वेश्वरेऽर्पयेत् । नतस्यपुनरावृतिर्घोरेसंसारसागरे
अनन्तइति वादोऽयंमयिलोकेऽत्रगीयते । परंकाशीगुणानांहिमयाप्यन्तोनलभ्यते ॥
तस्मात्प्रयत्नतःकाश्यांध्रुव!श्रेयःसमाश्रयेत् । काशीश्रेयःफलंपुंसामक्षयायोपजायते

गणावूचतुः

ध्रुवमित्युपदिश्याथजगाम गरुडध्वजः । ध्रुवोपिलिङ्गंसंस्थाप्य वैद्यनाथसमीपतः
प्रसादंसुमहत्कृत्वाकृत्वाकुण्डं तदग्रतः । विश्वेश्वरं समभ्यर्च्य कृतकृत्यो गृहं ययौ
ध्रुवेश्वरंसमभ्यर्च्यध्रुवकुण्डेकृतोदकः । ध्रुवलोकमवाप्नोतिनरो भोगसमन्वितः ॥
ध्रुवस्य परमाख्यानं यः [illegible]ठयेदपि । स विष्णुलोकमासाद्यजायतेविष्णुवल्लभः

नरोध्रुवस्य चरितं प्रसङ्गेन स्मरन्नपि। न पापैरभिभूयेत महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
पूर्वार्द्धेध्रुवस्तुतिवर्णनंनामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मकृतकाशीप्रशंसावर्णनम्

शिवशर्मोवाच

भवाख्यानमिदंरम्यंमहापातकनाशनम् । महाश्चर्यकरंपुण्यंश्रुत्वातृप्तोऽस्मिभो गणौ!

अगस्त्य उवाच

इत्थंयावद्द्विजोब्रूतेविमानंवायुवेगगम् । तावत्प्रापमहर्लोकंस्वर्लोकात्परमाद्भुतम् ॥
द्विजोऽथलोकंसंवीक्ष्यसर्वतोमहसावृतम् । तौगणौप्रत्युवाचेदंकोऽयंलोकोमनोहरः
तावूचतुस्ततोविप्रंनिशामयमहामते !। अयं सहि महर्लोकःस्वर्लोकात्परमाद्भुतः ॥
कल्पायुषोवसन्त्यत्रतपसाधूतकल्मषाः । विष्णुस्मरणसंक्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयाः
निर्व्याजप्रणिधानेनदृष्ट्वा तेजोमयं जगत् । महायोगसमायुक्तावसन्त्यत्र सुरोत्तमाः
इत्थं कथांकथयतोर्भगवद्गणयोःप्रिये !। क्षणार्धेनविमानंतज्जनलोकं निनाय तान् ॥
निवसन्त्यमलायत्रमानसा ब्रह्मणःसुताः। सनन्दनाद्या योगीन्द्राःसर्वेतेह्यूर्ध्वरेतसः
अन्ये तु योगिनो ये वै ह्यस्खलद्ब्रह्मचारिणः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तास्ते वसन्त्यतिनिर्मलाः ॥ ६ ॥
जनलोकात्तपोलोकस्तेषां लोचनगोचरः । कृतस्तेन विमानेन मनोवेगेन गच्छता
वैराजा यत्र ते देवा वसेयुर्दाहवर्जिताः । वासुदेवे मनो येषांवासुदेवार्पितक्रियाः ॥
तपसा तोष्य गोविन्दमभिलाषविवर्जिताः।
तपोलोकमिमं प्राप्य वसन्ति विजितेन्द्रियाः ॥ १२ ॥

शिलोञ्छवृत्तयोयेवै दन्तोलूखलिकाश्च ये । अश्मकुट्टाश्च मुनयः शीर्णपर्णाशिनश्चये
ग्रीष्मेपञ्चाग्नितपसोवर्षासुस्थण्डिलेशयाः । हेमन्तशिशिरार्धेयेक्षपन्तिसलिलेक्षपाः

कुशाग्रनीरविप्रूषस्तृषिता यतयोऽपिबन् ।
वाताशिनोऽतिक्षुधिताः पादाग्राङ्गुष्ठभूस्पृशः ॥ १५ ॥
ऊर्द्ध्वदोषो रविदृशस्त्वेकाङ्घ्रिस्थाणुनिश्चलाः ।
ये वै दिवा निरुच्छ्वासा मासोच्छ्वासाश्च ये पुनः ॥ १६ ॥

मासोपवासव्रतिनश्चातुर्मास्यव्रताश्च ये । ऋत्वन्ततोयपानाये येषण्मासोपवासकाः
ये च वर्षनिमेषा वै वर्षधाराम्बुतर्षकाः । येचस्थाणूपमां प्राप्ता मृगकण्डूतिसौख्यदाः
जटाटवीकोटरान्तः कृतनीडाण्डजाश्च ये । प्ररूढवामलूराङ्गाःस्नायुनद्धास्थिसञ्चयाः
लताप्रतानैः परितो वेष्टितावयवाश्च ये । सस्यानिच प्ररूढानि यदङ्गेषु चिरस्थिति

इत्यादिसुतपःक्लिष्टवर्ष्माणो ये तपोधनाः ।
ब्रह्मायुषस्तपोलोके ते वसन्त्यकुतोभयाः ॥ २१ ॥
यावदित्थं स पुण्यात्मा शृणोति गणयोर्मुखात् ।
तावन्नेत्रातिथीभूतः सत्यलोको महोज्ज्वलः ॥ २२ ॥

त्वरावन्तौ गणौ तत्र विमानादवरुह्य तौ । स्रष्टारं सर्वलोकानां तेनसार्द्धंप्रणेमतुः

ब्रह्मोवाच

गणावसौ द्विजो धीमान्वेदवेदाङ्गपारगः ।
स्मृत्युक्ताचारचञ्चुश्च प्रतीपः पापकर्मसु ॥ २४ ॥

अयिद्विज!महाप्राज्ञ!जानेत्वांशिवशर्मक !। साधूक्तं त्वयावत्ससुतीर्थप्राणमोक्षणात्
स[illegible]रंगत्वरंसर्वं यच्चैतद्भवतेक्षितम् । दैनंदिनंप्रलयतः सृजामि च पुनः पुनः ॥
आवैराजं प्रतिपदमुपसंहरते हरः । का कथा मशकाभानां नृणां मरणधर्मिणाम् ॥
चतुर्षु भू[illegible]ामेषु ह्येक एवगुणोनृणाम् । तस्मिन्वै भारतेवर्षे कर्मभूमौ महीयसि
चपलानिविनिर्जित्येन्द्रियाणिमनसा सह । विहायवैरिणंलोभंविष्वग्गुणगणस्यच
धर्मवंशहरं काममर्थसञ्चयहारिणम् । जरापलितकर्तारं विनिष्कृत्य विचारतः ॥

जित्वा क्रोधरिपुं धैर्यात्तपसो यशसः श्रियः ।
शरीरस्यापि हर्तारं नेतारं तामसीं गतिम् ॥ ३१ ॥
सदा मदं परित्यज्य प्रमादैकपदप्रदम् । प्रमादैकशरण्यं च सम्पदां विनिवर्तकम्
सर्वत्र लघुताहेतुमहंकारं विहाय च । दूषणारोपणे यत्नं कुर्वाणं सज्जनेष्वपि ॥
हित्वा मोहं महाद्रोहरोपणं मतिघातिनम् । अत्यन्तमन्धीकरणमन्धतामिस्रदर्शकम्
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तंपरिक्षुण्णं महाजनैः । धर्मसोपानमारुह्य यदिहायान्ति हेलया
कर्मभूमिं समीहन्ते सर्वेस्वर्गौकसोद्विज !। यत्तत्रार्जितभोक्तारः पदेषूच्चावचेष्वमी
नार्यावर्तसमो देशो न काशीसदृशीपुरी । नविश्वेशसमं लिङ्गंकापि ब्रह्माण्डमण्डले
सन्ति स्वर्गा वहुविधाः सुखेतरविवर्जिताः ।
सुकृतैकफलाः सर्वे युक्ताः सर्वसमृद्धिभिः ॥ ३८ ॥
स्वर्लोकादधिकं रम्यं न हिब्रह्माण्डगोलके । सर्वेयतन्तेस्वर्गाय तपोदानव्रतादिभिः
स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः ।
प्राह स्वर्गसदां मध्येपातालेभ्यः समागतः ४० ॥
आह्लादकारिणः शुभ्रामणयो यत्रसुप्रभाः । नागाङ्गाभरणप्रोताः पातालं केनतत्समम्
दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते । पातालेकस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापिजायते
दिवार्करश्मयस्तत्र प्रभां तन्वन्ति नाऽऽतपम् ।
शशिनश्च न शीताय निशिद्योताय केवलम् ॥ ४३ ॥
यत्र न ज्ञायते कालो गतोपि दनुजादिभिः ।
वनानि नद्यो रम्याणि सदम्भांसि सरांसि च ॥ ४४ ॥
कलाः पुंस्कोकिलालापाः सुचैलानि शुचीनि च ।
भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाद्यमनुलेपनम् ॥ ४५
वीणावेणुमृदङ्गादिनिस्वनाः श्रुतिहारिणः । हाटकेशंमहालिङ्गं यत्र वै सर्वकामदम्
एतान्यन्यानि रम्याणि भोगयोग्यानि दानवैः ।
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः

पातालेभ्योपि वै रम्यं द्विजवर्षमिलावृतम् ।
रत्नसानुं समाश्रित्य परितः परिसंस्थितम् ॥ ४८ ॥
सदा सुकृतिनो यत्र सर्वभोगभुजो द्विज !। नवयौवनसम्पन्ना नित्यं यत्र मृगीदृशः
भोगभूमिरियं प्रोक्ता श्रेयोविनिमयार्जिता ।
भुज्यते त्वद्विधैर्लोकैस्तीर्थाभित्यक्तदेहकैः ॥ ५० ॥
अक्लीबभाषिभिश्चापि पुत्रक्षेत्राद्यहीनकैः । परोपकारसंक्षीणसुखायुर्धनसञ्चयैः ॥
सन्ति द्वीपा ह्यनेका वै पारावारान्तरस्थिताः ।
जम्बूद्वीपसमोद्वीपो न क्वापि जगतीतले ॥ ५२ ॥
तत्रापि नववर्षाणि भारतं तत्र चोत्तमम् । कर्मभूमिरियं प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा
अष्टौ किं पुरुषाद्यानि देवभोग्यानि तानि तु ।
तेषु स्वर्गात्समागत्य रमन्ते त्रिदिवौकसः ॥ ५४ ॥
योजनानां सहस्राणिनवविस्तारतस्त्विदम् । भारतंप्रथमं वर्षंमेरोर्दक्षिणतःस्थितम्
तत्रापिहिमविन्ध्याद्रेरन्तरं पुण्यदंपरम् । गङ्गायमुनयोर्मध्येह्यन्तर्वेदी भुवः परा ॥
कुरुक्षेत्रं हि सर्वेषां क्षेत्राणामधिकंततः । ततोऽपिनैमिषारण्यं स्वर्गसाधनमुत्तमम्
नैमिषारण्यतोऽपीह सर्वस्मिन् क्षितिमण्डले ।
सर्वेभ्योऽपि हि तीर्थेभ्यस्तीर्थराजो विशिष्यते ॥ ५८ ॥
स्वर्गदो मोक्षदश्चैव सर्वकामफलप्रदः । प्रयागस्तन्महत्क्षेत्रं तीर्थराज इति स्मृतः ॥
यागाः सर्वे मया पूर्वं तुलया विधृताद्विज !। तच्च तीर्थवरंरम्यंकामिकं कामपूरणात्
दृष्ट्वा प्रकृष्टं यागेभ्यः पुष्टेभ्योदक्षिणादिभिः । प्रयागमिति तन्नामकृतंहरिहरादिभिः
नाममात्रस्मृतेर्यस्य प्रयागस्यत्रिकालतः । स्मर्तुः शरीरे नोजातुपापंवसतिकुत्रचित्
सन्ति तीर्थान्यनेकानि पापत्राणकराणि च ।
न शक्तान्यधिकं दातुं कृतैनः परिशुद्धितः ॥ ६३ ॥
जन्मान्तरेष्वसङ्ख्येषुयःकृतःपापसञ्चयः । दुष्प्रणोद्योहिनितरांव्रतैर्दानैस्तपोजपैः
सतीर्थराजगमनोद्यतस्य शुभजन्मनः । अङ्गेषु वेपतेऽत्यन्तं द्रुमो वातहतोयथा ॥

ततः कान्तार्धमार्गस्य प्रयागदृढचेतसः । पुंसः।शरीरान्निर्यातुमपेक्षेत पदान्तरम् ॥
भाग्यान्नेत्रातिथीभूते तीर्थराजे महात्मनः । पलायते द्रुततरंतमः सूर्योदये यथा ॥

सप्तधातुमयीभूततनौ पापानि यानि वै ।
केशेषु तानि तिष्ठन्ति वपनाद्यान्ति तान्यपि ॥ ६८ ॥
एवं निष्कलुषीभूय ततः स्नायात्सितासिते ।
यं यं काममभिध्याय तं तमाप्नोति नान्यथा ॥ ६६ ॥
पुण्यराशिं च विपुलं पुण्यान्भोगान्यथेप्सितान् ।
स्वर्गं प्राप्नोति तत्पुण्यान्निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ७० ॥
स्नायाद्योऽभिलषन्मोक्षं कामानन्यान्विहाय च ।
सोऽपि मोक्षमवाप्नोति कामदात्तीर्थराजतः ॥ ७१ ॥
तीर्थराजं परित्यज्य योऽन्यस्मात्काममिच्छति ।
भारताख्ये महावर्षे स कामं नाप्नुयात्स्फुटम् ॥ ७२ ॥

सत्यलोके प्रयागे च नान्तरं वेद्म्यहंद्विज !। तत्रयेशुभकर्माणस्ते मल्लोकनिवासिनः
तीर्थाभिलाषिभिर्मर्त्यैस्सेव्यं तीर्थान्तरंनहि । अन्यत्रभूमिवलयेतीर्थराजात्प्रयागतः
यथान्तरं द्विजश्रेष्ठ! भूपेत्वितरसेवके । दृष्टान्तमात्रंकथितं प्रयागेतरतीर्थयोः ॥ ७५॥

यथाकथञ्चित्तीर्थेऽस्मिन्प्राणत्यागं करोति यः ।
तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥ ७६ ॥
यस्य भाग्यवतश्चात्र तिष्ठन्त्यस्थीन्यपि द्विज !।
न तस्य दुःखलेशोऽपि क्वाऽपि जन्मनि जायते ॥ ७७ ॥

ब्रह्महत्यादिपापानांप्रायश्चित्तंचिकीर्षुणा । प्रयागंविधिवत्सेव्यंद्विजवाक्यान्नसंशयः
किं बहूक्तेनविप्रेन्द्र! महोदयमभीप्सुना । सेव्यं सितासितंतीर्थंप्रकृष्टं जगतीतले ॥
प्रयागतोपि तीर्थेशात्सर्वेषु भुवनेष्वपि । अनायासेन वै मुक्तिः काश्यांदेहावसानतः
प्रयागादपि वै रम्यमविमुक्तं न संशयः । यत्रविश्वेश्वरः साक्षात्स्वयं समधितिष्ठति
अविमुक्तान्महाक्षेत्राद्विश्वेशसमधिष्ठितात् । नचकिञ्चित्क्वचिद्रम्यमिहब्रह्माण्डगोलके

अविमुक्तमिदं क्षेत्रमपि ब्रह्माण्डमध्यगम् । ब्रह्माण्डमध्ये न भवेत्पञ्चक्रोशप्रमाणतः ॥
यथायथाहि वर्धेत जलमेकार्णवस्य च । तथा तथोन्नयेदीशस्तत्क्षेत्रं प्रलयादपि ॥
क्षेत्रमेतत्त्रिशूलाग्रेशूलिनस्तिष्ठतिद्विज !। अन्तरिक्षे न भूमिष्ठं नेक्षन्ते मूढबुद्धयः ॥
सदाकृतयुगंचात्र महापर्वसदाऽत्र वै । न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वराश्रमे ॥
सदा सौम्यायनं तत्र सदा तत्र महोदयः । सदैव मङ्गलं तत्र यत्र विश्वेश्वरस्थितिः
यथाभूमितलेविप्रपुर्यःसन्तिसहस्रशः । तथाकाशीन मन्तव्याकापिलोकोत्तरात्वियम्
मयासृष्टानिविप्रेन्द्रभुवनानिचतुर्दश !। अस्याःपुर्या विनिर्मातास्वयं विश्वेश्वरःप्रभुः

पुरा यमस्तपस्तप्त्वा बहुकालं सुदुष्करम् ।
त्रैलोक्याधिकृतिं प्राप्तस्त्यक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ॥ ९० ॥

चराचरस्य सर्वस्ययानि कर्माणि तानि वै । गोचरे चित्रगुप्तस्यकाशीवासिकृताद्वृते
प्रवेशो यमदूतानांनकदाचिद्द्विजोत्तम । मध्येकाशीपुरींकापिरक्षिणस्तत्र तद्गणाः ॥

स्वयं नियन्ता विश्वेशस्तत्र काश्यां तनुत्यजाम् ।
तत्राऽपि कृतपापानां नियन्ता कालभैरवः ॥ ९३ ॥

तत्र पापं न कर्त्तव्यं दारुणा रुद्रयातना । अहो रुद्रपिशाचत्वं नरकेभ्योपि दुःसहम् ॥
पापमेव हिकर्तव्यं मतिरस्ति यदीदृशी । सुखेनान्यात्रकर्तव्यं महीह्यस्तिमहीयसी
अपिकामातुरोजन्तुरेकांरक्षति मातरम् ।अपि पापकृता काशीरक्ष्यामोक्षार्थिनैकिका
परापवादशीलेन परदाराभिलाषिणा । तेन काशी न संसेव्याक्व काशीनिरयः क्वसः
अभिलष्यन्ति ये नित्यं धनंचात्रप्रतिग्रहैः । परस्वं कपटैर्वापि काशीसेव्या नतैर्नरैः

परपीडाकरं कर्म काश्यां नित्यं विवर्जयेत् ।
तदेव चेत्किमत्र स्यात्काशीवासो दुरात्मनाम् ९९ ॥
त्यक्त्वा वैश्वेश्वरीं भक्तिं येऽन्यदेवपरायणाः ।
सर्वथा तैर्नवस्तव्या राजधानी पिनाकिनः ॥ १०० ॥

अर्थार्थिनस्तु ये विप्र! ये च कामार्थिनोनराः । अविमुक्तं नतैःसेव्यं मोक्षक्षेत्रमिदंयतः
शिवनिन्दापरा ये चवेदनिन्दापराश्च ये । वेदाचारप्रतीपा ये सेव्या वाराणसी नतैः

परद्रोहधियो ये च परेर्ष्याकारिणश्च ये। परोपतापिनो ये वै तेषांकाशी न सिद्धये
मनसाऽपिनये काशीमभिनन्दन्तिदुर्धियः। तेषांनिर्वाणवार्त्तापि दूरेदुर्वृत्तचेतसाम्
ज्ञानेन नचिनामोक्षःक्वचिदस्तीह भूतले। तज्ज्ञानं न व्रतैर्लभ्यमपिचान्द्रायणादिभिः
तुलापुरुषमुख्यैश्च दानैश्चश्रद्धयान्वितैः। देशे काले च विधिनापात्रेभ्यः प्रतिपादितैः
न यमैर्ब्रह्मचर्याद्यैर्नियमैर्नार्चनादिभिः। शरीरशोषणैरुग्रैर्नतपोभिर्द्विजोत्तम ॥ १०७

न महामन्त्रजप्यैश्च गुरुभिः प्रतिपादितैः।
न स्वाध्यायैर्यथोक्तैश्च नाग्निशुश्रूषणैः परैः ॥ १०८ ॥

न सेवया गुरूणां च न श्राद्धैर्देवतार्चनैः। न नानातीर्थयात्राभिर्ज्ञानं समधिगम्यते
न योगेन विना ज्ञानं योगस्तत्त्वार्थशीलनम्। गुरूपदिष्टमार्गेण सदाभ्यासवशेन च
तस्यान्तराया बहवःसुदूरश्रवणादयः। अतो न प्राप्यते ज्ञानं योगादेकेन जन्मना॥
चिना तपोजपाद्यैश्चविनायोगेन सुव्रत !। निःश्रेयो लभ्यते काश्यामिहैकेनैवजन्मना

त्वया शुद्धधिया काश्यां यच्छ्रेयःसमुपार्जितम्।
तच्छ्रेयसोप्युदर्कस्ते महानस्ति द्विजोत्तम !॥ ११३ ॥
उक्त्वेति चिररामाऽजः शृण्वतोर्गणयोस्तयोः।
सोऽपि प्रमुदितश्चाभूच्छिवशर्मा महामनाः ॥ ११४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे ब्रह्मकृतकाशीप्रशंसावर्णनंनाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

लोकपरिस्थितिवर्णनम्

शिवशर्मोवाच

सत्यलोकेश्वरविधे! सर्वेषांप्रपितामह !। किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोऽस्मिनभयाद्वक्तुमुत्सहे

ब्रह्मोवाच

यत्त्वंप्रष्टुमना विप्र!ज्ञातंते तन्मनोगतम् । पिपृच्छिषुस्त्वंनिर्वाणंगणौतत्कथयिष्यतः
नैतयोर्विष्णुगणयोरगोचरमिहास्तिहि । सर्वमेतौविजानीतो यत्किञ्चिद्ब्रह्मगोलके
इत्युक्त्वासत्कृतास्तेवैब्रह्मणाभगवद्गणाः । प्रणम्यलोककर्तारंतेऽपिहृष्टाः प्रतस्थिरे
पुनःस्वयानमारुह्यवैकुण्ठमभितोययुः । गच्छतापिपुनस्तत्र द्विजेनाऽऽपृच्छितौगणौ

शिवशर्मोवाच

कियद्दूरंवयंप्राप्तागन्तव्यं च कियत्पुनः । पृच्छाम्यन्यच्चवांभद्रौब्रूतंप्रीत्यातदप्यहो
काञ्च्यवन्तीद्वारवतीकाश्ययोध्याचपञ्चमी । मायापुरीचमथुरापुर्यः सप्तविमुक्तिदाः
विहायषट्पुरीश्चान्याःकाश्यामेवप्रतिष्ठिता । मुक्तिर्विश्वसृजातत्किममुक्तिर्नसम्प्रति
इति सर्वं मम पुरः प्रसादाद्वक्तु मर्हतम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्यगणावूचतुरादरात् ॥

गणावूचतुः

यथार्थं कथयावस्ते यत्पृष्टं भवताऽनघ !। विष्णुप्रसादाज्जानीवो भूतं भाविभवत्तथा
विप्रावभासते यावत्किरणैः पुष्पवन्तयोः । तावती भूःसमुद्दिष्टा ससमुद्राद्रिकानना
वियच्च तावदुपरि विस्तारपरिमण्डलम् । योजनानाञ्च नियुते भूमेर्भानुर्व्यवस्थितः
भानोःसकाशादुपरि लक्षे लक्ष्यःक्षपाकरः । नक्षत्रमण्डलं सोमाल्लक्षयोजनमुच्छ्रितम्
उडुमण्डलतःसौम्य! उपरिष्टाद्द्विलक्षतः । द्विलक्षे तु बुधाच्छुक्रःशुक्राद्भौमोद्विलक्षके
माहेयादुपरिष्टाच्च सुरेज्यो नियुतद्वये । द्विलक्षयोजनोत्सेधः सौरिर्देवपुरोहितात् ॥
दशायुतसमुच्छ्रायंसौरेःसप्तर्षिमण्डलम् । सप्तर्षिभ्यःसहस्राणांशतादूर्ध्वंध्रुवःस्थितः

पादगम्यं हि यत्किञ्चिद्वस्त्वस्ति धरणीतले ।
तद्भूर्लोक इति ख्यातः साब्धिद्वीपाद्रिकाननम् ॥ १७ ॥
भूर्लोकाच्च भुवर्लोकोब्रध्नावधिरुदाहृतः । आदित्यादाध्रुवं विप्र!स्वर्लोक इतिगीयते
महर्लोकःक्षितेरूर्ध्वमेककोटिप्रमाणतः । कोटिद्वये तु सङ्ख्यातोजनो भूर्लोकतोजनैः
चतुष्कोटिप्रमाणस्तु तपोलोकोऽस्ति भूतलात् ।
उपरिष्टात्क्षितेरष्टौ कोटयःसत्यमीरितम् ॥ २० ॥
सत्यादुपरिवैकुण्ठोयोजनानांप्रमाणतः। भूर्लोकात्परिसङ्ख्यातःकोटिषोडशसम्मितः
यत्रास्तेश्रीपतिःसक्षात्सर्वेषामभयप्रदः । ततस्तुषोडशगुणःकैलासोऽस्तिशिवालयः
पार्वत्या सहितः शम्भुर्गजास्यस्कन्दनन्दिभिः ।
यत्र तिष्ठति विश्वेशः सकलः सपरः स्मृतः ॥ २३ ॥
तस्य देवस्य खेलोऽयं स्वलीलामूर्तिधारिणः ।
स विश्वेश इति ख्यातस्तस्याज्ञाकृदिदं जगत् ॥ २४ ॥
सर्वेषां शासकश्चासौ तस्य शास्ता न चापरः ।
स्वयं सृजति भूतानि स्वयं पाति तथाऽत्ति च ॥ २५ ॥
सर्वज्ञएकःसप्रोक्तः स्वेच्छाधीनविचेष्टितः । तस्यप्रवर्तकः कोपि नहि नैव निवर्तकः
अमूर्तं यत्परं ब्रह्म समूर्तं श्रुतिचोदितम् । सर्वव्यापिसदानित्यंसत्यंद्वैतविवर्जितम्
सर्वेभ्यः कारणेभ्यश्च परात्परतरं परम् । आनन्दं ब्रह्मणोरूपं श्रुतयो यत्प्रचक्षते ॥
संविदन्ते न यं वेदा विष्णुर्वेदनवैविधिः । यतोवाचोनिवर्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह
स्वयं वेद्यः परंज्योतिः सर्वस्य हृदि संस्थितः ।
योगिगम्यस्त्वनाख्येयो यः प्रमाणैकगोचरः ॥ ३० ॥
नारूपोऽप्यरूपो यःसर्वगोऽपि नगोचरः । अनन्तोप्यन्तकवपुःसर्ववित्कर्मवर्जितः
स्यैदमैश्वरं रूपं खण्डचन्द्रावतंसकम् । तमालश्यामलगलं स्फुरद्भालविलोचनम्
लसद्वामार्धनारीकं कृतशेषशुभाङ्गदम् ।
गङ्गातरङ्गसत्सङ्गसदाधौतजटातटम् ॥ ३३ ॥

स्मराङ्गजरजःपुञ्जपूजितावयवोज्ज्वलम् । विचित्रगात्रविधृतमहाव्यालविभूषणम्
महोक्षस्यन्दनगमं विरुताजगवायुधम् । गजाजिनोत्तरासङ्गं दशार्धवदनं शुभम्
उत्त्रासितमहामृत्युमहाबलगणावृतम् । शरणार्थिकृतत्राणं नतनिर्वाणकारणम् ॥
मनोरथपथातीतं वरदानपरायणम् ॥ ३६ ॥
तस्य तत्त्वस्वरूपस्य रूपातीतस्य भोद्विज !। परावरेरुद्ररूपे सर्वं व्याप्यावतिष्ठतः
निराकारोपिसाकारःशिव एव हिकारणम् । मुक्तयेभुक्तयेवापि नशिवान्मोक्षदोपरः
यथा तेनाखिलं ह्येतत्पार्वतीपतिसात्कृतम् । इदं चराचरंसर्वं दृश्यादृश्यमरूपिणा
तथा मृडानीकान्तेन विष्णुसादखिलं जगत् ।
विधाय क्रीड्यते विप्र! नित्यं स्वच्छन्दलीलया ॥ ४० ॥
यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथाशिवः ।
अन्तरं शिवविष्णवोश्च मनागपि न विद्यते ॥ ४१ ॥
आहूय पूर्वंब्रह्मादीन्समस्तान्देवतागणान् । विद्याधोरगादींश्च सिद्धगन्धर्वचारणान्
निजसिंहासनसमं कृत्वा सिंहासनं शुभम् । उपवेश्यहरिं तत्र च्छत्रं कृत्वामनोहरम्
श्लक्ष्णं कोटिशलाकं च विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
पाण्डुरं रत्नदण्डं च स्थूलमुक्तावलम्बितम् ॥ ४४ ॥
कलशेन विचित्रेण ह्युपरिष्टाद्विराजितम् । सहस्रयोजनायामं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥
पट्टसूत्रमयै रम्यैश्चामरैश्च परिष्कृतम् । राजाभिषेकयोग्यैश्चद्रव्यैः सर्वौषधादिभिः
प्रत्यक्षतीर्थपाथोभिःपञ्चकुम्भैर्मनोहरैः । सिद्धार्थाक्षतदूर्वाभिर्मन्त्रैः स्वयमुपस्थितैः
देवानां च तथर्षीणां सिद्धानां फणिनामपि ।
आनीय मङ्गलकराः कन्याः षोडश षोडश ॥ ४८ ॥
वीणामृदङ्गाब्जभेरीमरुडिण्डिमझर्झरैः । आनकैः कांस्यतालाद्यैर्वाद्यैर्ललितगायनैः
ब्रह्मघोषमहारावैरापूरितनभोङ्गणे । शुभे तिथौ शुभे लग्ने ताराचन्द्रबलान्विते ॥
आबद्धमुकुटं रम्यं कृतकौतुकमङ्गलम् । मृडानीकृतश्रृङ्गारं सुश्रियासुश्रियायुतम् ॥
अभिषिच्य महेशेन स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपे । दत्तं समस्तमैश्वर्यं यन्निजं नान्यगामि च

ततस्तुष्टाव देवेशः प्रमथैः सहशार्ङ्गिणम् । ब्रह्माणंलोककर्तारमुवाच च वचस्त्विदम्
मम वन्द्यस्त्वयंविष्णुःप्रणमत्वममुं हरिम् । इत्युक्त्वाथस्वयंरुद्रोननामगरुडध्वजम्
ततोगणेश्वरैः सर्वैर्ब्रह्मणा च मरुद्गणैः । योगिभिः सनकाद्यैश्च सिद्धैर्देवर्षिभिस्तथा
विद्याधरैः सगन्धर्वैर्यक्षरक्षोप्सरोगणैः । गुह्यकैश्चारणैर्भूतैः शेषवासुकितक्षकैः
पतत्रिभिः किन्नरैश्च सर्वैः स्थावरजङ्गमैः ।
ततो जयजयेत्युक्त्वा नमोऽस्त्विति नमोऽस्त्विति ॥ ५७ ॥
ततो हरिर्महेशेन संसदि द्युसदां तदा । एतैर्महारवै रम्यैश्चानर्चि परमार्चिषा ॥
त्वं कर्ता सर्वभूतानांपाता हर्ता त्वमेव च । त्वमेव जगतां पूज्यस्त्वमेव जगदीश्वरः
दाता धर्मार्थकामानां शास्ता दुर्नयकारिणाम् ।
अजेयस्त्वञ्च संग्रामे ममापि हि भविष्यसि ॥ ६० ॥
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्तथोत्तमा ।
शक्तित्रयमिदं विष्णो! गृहाण प्रापितं मया ॥ ६१ ॥
त्वद्द्वेष्टारोहरेनूनं मयाशास्याःप्रयत्नतः । त्वद्भक्तानांमयाविष्णो देयंनिर्वाणमुत्तमम्
मायां चापि गृहाणेमां दुष्प्रणोद्यां सुरासुरैः ।
यया सम्मोहितं विश्वमकिञ्चिज्ज्ञं भविष्यति ॥ ६३ ॥
वामबाहुर्मदीयस्त्वं दक्षिणोऽसौ पितामहः ।
अस्यापि हि विधेः पाता जनिताऽपि भविष्यसि ॥ ६४ ॥
वैकुण्ठैश्वर्यमासाद्यहरेरित्थंहरः स्वयम् । कैलासे प्रमथैः सार्धंस्वैरंक्रीडत्युमापतिः
तदाप्रभृतिदेवोसौशार्ङ्गधन्वागदाधरः । त्रैलोक्यमखिलं शास्ति दानवान्तकरोहरिः
इति ते कथिता विप्र! लोकानाञ्च परिस्थितिः ।
इदानीं कथयिष्यावस्तवनिर्वाणकारणम् ॥ ६७ ॥
इदन्तु परमाख्यानं शृणुयाद्यः समाहितः ।
स्वर्लोकमभिगम्याथ काश्यां निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥
ज्ञोत्सवे विवाहे च मङ्गलेष्वखिलेष्वपि । राज्याभिषेकसमये देवस्थापनकर्मणि

सर्वाधिकारदानेषु नववेश्मप्रवेशने । पठितव्यं प्रयत्नेन तत्कार्यपरिसिद्धये ॥ ७० ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान्भवेत् ।
व्याधितो मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ७१
जप्यमेतत्प्रयत्नेन सततं मङ्गलार्थिना । अमङ्गलानां शमनं हरनारायणप्रियम् ॥ ७२

इति श्रीस्कन्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां सहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्द्धे लोकपरिस्थितिवर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

शिवशर्मनिर्वाणप्रापणवर्णनम्

गणावूचतुः

शिवशर्मन्नुदर्कन्तेकथयावोनिशामय । त्वमत्रवैष्णवेलोकेभुक्त्वाभोगान्सुपुष्कलान्
ब्रह्मणो वत्सरं पूर्णं रममाणोऽप्सरोगणैः । सुतीर्थमरणोपात्तपुण्यशेषेण वै पुनः ॥
भविष्यसि महीपालो नगरे नन्दिवर्धने । राज्यं प्राप्यासपत्नञ्च समृद्धबलवाहनम्
कृष्टिभिर्हृष्टपुष्टैश्च रम्यहाटकभूषणैः । संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तृभिः
सदासम्पन्नसस्यञ्च सूर्वरक्षेत्रसंकुलम् । सुदेशं सुप्रजं सुस्थं सुतृणं बहुगोधनम् ॥
देवतायतनानाञ्चराजिभिः परिराजितम् । सुयूपायत्रवैग्रामाः सुवित्तर्द्धिविराजिताः
सुपुष्पकृत्रिमोद्यानाः ससदाफलपादपाः । सपद्मिनीककासारा यत्र राजन्तिभूमयः
सदम्भानिम्नगाराजिर्नयत्रजनता क्वचित् । कुलान्येवकुलीनानि न चान्यायधनानिच
विभ्रमोयत्रनारीषुनविद्वत्सु च कर्हिचित् । नद्यःकुटिलगामिन्यो न यत्रविषयेप्रजाः
तमोयुक्ताः क्षपा यत्र बहुलेषु न मानवाः । रजोयुजः स्त्रियोयत्र न धर्मबहुलानराः ॥
धनैरनन्धो यत्रा स्तिमनो नैव च भोजनम् । अनयः स्यन्दनंयत्र न च वैराजपूरुषः

दण्डः परशुकुद्दालबालव्यजनराजिषु । आतपत्रेषु नान्यत्र क्वचित्क्रोधापराधजः ॥
अन्यत्राक्षिकवृन्देभ्यः क्वचिन्नपरिदेवनम् । आक्षिका एव दृश्यन्ते यत्रपाशकपाणयः
जाड्यवार्ता जलेष्वेव स्त्रीमध्या एव दुर्बलाः ।
कठोरहृदया यत्र सीमन्तिन्यो न मानवाः ॥ १४ ॥
औषधेष्वेवयत्रास्तिकुष्ठयोगोनमानवे । वेधोप्यन्तःसुरत्नेषु शूलंमूर्तिकरेषु वै ॥१५॥
कम्पः सात्त्विकभावोत्थो न भयात्क्वापि कस्यचित् ।
संज्वरः कामजो यत्र दारिद्र्यं कलुषस्यच ॥ १६ ॥
दुर्लभत्वं सदा कस्य सुकृतेन च वस्तुनः । इभा एव प्रमत्ता वै युद्धंवीच्योर्जलाशये
दानहानिर्गजेष्वेवद्रुमेष्वेवहिकण्टकाः । जनेष्वेवविहाराहिनकस्यचिदुरः स्थली ॥
वाणेषुगुणविश्लेषोबन्धोक्तिः पुस्ततेदृढा । स्नेहत्यागः सदैवास्तियत्रपाशुपतेजने
दण्डवार्त्तासदायत्र कृतसंन्यासकर्मणाम् । मार्गणाश्चापकेष्वेवभिक्षुका ब्रह्मचारिणः
यत्र क्षपणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः । प्रायो मधुव्रता एव यत्र चञ्चलवृत्तयः
इत्यादिगुणवद्देशे त्वयिराज्यं प्रशासति । धर्मेण राजधर्मज्ञशौण्डीर्यगुणशालिनि
सौभाग्यभाजि रूपाढ्ये शौर्यौदार्यगुणान्विते ।
सीमन्तिनीनां रम्याणां लावण्यार्जितसुश्रियाम् ॥ २३ ॥
राज्ञीनामयुतं भाविकुमाराणां शतत्रयम् । वृद्धकालइति ख्यात उग्रः परपुरञ्जयः
विजितानेकसमरः श्रीसन्तर्पितमार्गणः । अनेकगुणसम्पूर्णः पूर्णचन्द्रनिभद्युतिः ॥
सन्ततावभृथक्लिन्नमूर्धजः क्षितिपर्षभः । प्रजापालनसम्पन्नः कोशप्रीणितभूसरः
पदारविन्दं गोविन्दं हृदिध्यायन्नतन्द्रितः । वासुदेवकथालापपरिक्षिप्तदिनक्षपः ॥
कदाचिदुपविष्टःसन्मध्येराजसभंद्विज !। दूरात्कार्पटिकैर्दृष्टोवाराणस्याः समागतैः
त्वत्कर्मभाविसदृशैस्तदा त्वमभिनन्दितः । तैः सर्वैराजशार्दूल स्वाशीर्वादैरनेकशः
श्रीमद्विश्वेश्वरो देवोविश्वेषांजगतांगुरुः । काशीनाथस्तु ते कुर्यात्कुमतेरपवर्जनम्
नैःश्रेयसीं व सम्पत्ति यो देयात्स्मरणादपि ।
काशीनाथः स ते दिश्याज्ज्ञानं मलविवर्जितम् ॥ ३१ ॥

येन पुण्येन ते प्राप्तं राज्यंप्राज्यमकण्टकम् । तत्पुण्यशेषतोभूयाद्विश्वनाथे मतिस्तव
यस्य प्रसादात्सुलभमायुःपुत्राम्बराङ्गनाः । समृद्धयःस्वर्गमोक्षौसविश्वेशःप्रसीदतु
नामश्रवणमात्रेणयस्यविश्वेशितुर्विभोः । महापातकविच्छेदःसविश्वेशोऽस्तुतेहृदि
त्वं वृद्धकालो भूपालःश्रुत्वेत्याशीः परम्पराम् ।
स्मरिष्यसीदं वृत्तान्तं पुलकाङ्कवपुस्तदा ॥ ३५ ॥
आकारगोपनं कृत्वा तेभ्यो दत्त्वा धनं बहु । सुमुहूर्तमनुप्राप्य सुतेराज्यं विधाय च
अनङ्गलेखया राज्ञ्या ततः काशीं गमिष्यसि ।
दत्त्वा दानानि भूरीणि प्रीणयित्वाऽर्थिनो जनान् ॥ ३७ ॥
स्वनाम्ना तत्र संस्थाप्य लिङ्गं निर्वाणकारणम् ।
प्रासादं तत्र कृत्वोच्चैस्तदग्रे कूपमुत्तमम् ॥ ३८ ॥
विधायविधिवत्तत्रकलशारोपणादिकम् । मणिमाणिक्यचाम्पेयदुकूलेभाश्वगोधनम्
महाध्वजपताकाश्च च्छत्रचामरदर्पणम् । देवोपकरणं भूरि विश्राण्यश्रमवर्जितः ॥
व्रतोपवासनियमैःपरिक्षीणकलेवरः । मध्यह्ने निर्जने तत्र द्रक्ष्यस्येकं तपोधनम् ॥
अतीवजीर्णवपुषं परिपिङ्गजटान्वितम् । मूर्तिमन्तमिव प्रांशुं धर्मं जनमनोहरम्
भारं शरीरयष्टेश्चदृढयष्ट्यांसमर्प्य च । गर्भागाराद्विनिष्क्रम्याभ्यायान्तं रङ्गमण्डपे
उपविश्यसमीपेतेप्रक्ष्यत्येवमनुक्रमात् । कोसित्वंकिमिहासित्वंद्वितीयइवकस्त्वयम्
प्रासादः कारितःकेनजानास्येष ततोवद । अस्यलिङ्गस्यकिंनामप्रायोजानेनवार्धकात्
पृष्टस्त्वमितितेनाथ तदावृद्धतपस्विना । कथयिष्यस्यहं राजा वृद्धकालइतिश्रुतः
दाक्षिणात्य इहप्राप्तस्त्वेतयासहकान्तया । ध्यायामिलिङ्गमेतच्चप्रार्थयामिनकिञ्चन
प्रासादस्यास्य जटिल! स्वयङ्कारयिता शिवः ।
विशेषतोऽस्य लिङ्गस्य नाम नो वेद्मि निश्चितम् ॥ ४८ ॥
इति श्रुत्वा नरपतेर्वाक्यं प्राहजटाधरः । सत्यमुक्तं त्वयैकं हिलिङ्गनामनवेत्सियत्
पश्येयन्त्वामहं नित्यमुपविष्टं सुनिश्चलम् । श्रुतोभविष्यतितवप्रासादो येनकारितः
ममाग्रे तत्समाचक्ष्वयदिजानासितत्त्वतः । आकर्ण्येति वचस्तस्यपुनःप्राहभवानिति

कर्ता कारयिता शम्भुः किमतथ्यं ब्रवीम्यहम् ।
अथवा चिन्तया किं मे तपस्विन्ननया विभो !॥ ५२ ॥
इतित्वयिस्थिते जोषं सपुनर्वृद्धतापसः । पिपासुरस्मि पानीयमानीयाशुप्रयच्छमे
इति तेनचनुन्नस्त्वं वार्यानीय च कूपतः । पाययिष्यसि तं वृद्धतापसंतत्क्षणाच्चसः
तदम्बुपानतो भूयात्सुपार्वणशशिप्रभः । तरुणो रूपसम्पन्नःकोशोन्मुक्तोरगो यथा
जाताश्चर्येण भवता पुनरेवाभ्यभाषिसः । कः प्रभावोहि भगवन्नेष ये न भवान्पुनः
परित्यज्याऽत्रजरसं न वोभ्राजसिसाम्प्रतम् । अस्तिचेदवकाशस्तेततो ब्रूहितपोधन

तपोधन उवाच

वृद्धकालक्षितिपते! जाने त्वां सुमहामते । इमामपि चज नेऽहं तव पत्नींपतिव्रताम्
जन्मनोऽस्मादियं राजन्नासीद्द्विप्रस्य कन्यका । तुर्वसोर्वेदवपुषः शुभाचाराशुभानना.
तेनदत्ता विवाहार्थं नैध्रुवाय महात्मने । स च कालवशं प्राप्तो नैध्रुवोऽप्राप्तयौवनः
वैधव्यं पालयन्त्येषा मृताऽवन्त्यांशुभव्रता । तेनपुण्येनसंजातापाण्ड्यस्यनृपतेःसुता
परिणीतात्वयाराजन्पतिव्रतरता सदा । त्वयासहेह संप्राप्तामुक्तिं प्राप्स्यत्यनुत्तमाम्
अयोध्यायामथावन्त्यां मथुरायामथापि वा ।
द्वारवत्यां च कान्त्यां वा मायापुर्यामथो नृप !॥ ६३ ॥
अपिपातकिनो येत्रकालेननिधनंगताः । तेहिस्वर्गादिहागत्य काश्यांमोक्षमवाप्नुयुः
अवैमित्वामपि नृप!द्विजोऽभूःपूर्वजन्मनि । माथुरःशिवशर्माख्योमायापुर्यांभवान्मृतः
तत्पुण्यात्प्राप्य वैकुण्ठं भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।
तत्पुण्यशेषात्क्षितिपो जातस्त्वं नन्दिवर्धने ॥ ६६ ॥
वृद्धकालावनीपाल! तेनेव सुकृतेन च । मोक्षक्षेत्रमिदंप्राप्तोमुक्तिं प्राप्स्यस्यनुत्तमाम्
अन्यच्च श्रृणु राजेन्द्र! त्वया यत्समुदीरितम् ।
कर्ता कारयिता शम्भुः प्रासादस्येति तत्स्फुटम् ॥ ६८ ॥
सुकृतं नैव सततमाख्यातव्यं कदाचन । कृतं मयेति कथनात्पुण्यं क्षयतितत्क्षणात्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं निधानवत् । सुकृतं कीर्तनाद्व्यर्थं भवेद्धस्महुतं तथा ॥

निश्चितं विश्वनाथेन प्रेरितेन त्वयाऽनघ । कृतंहि कृतकृत्येन प्रासादादिहवेद्म्यहम्
वृद्धकालेश्वरं नाम लिङ्गमेतन्महीपते !। जानीह्यनादिसंसिद्धंनिमित्तंकिन्तु वै भवान्
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य पूजानाच्छ्रवणान्नतेः ।
वृद्धकालेशलिङ्गस्य सर्वं प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥ ७३ ॥
कूपःकालोदको नाम जराव्याधिविघातकृत् । यदीयजलपानेनमातुःस्तन्यमपानवान्
कृतकूपोदकस्नानः कृतैतल्लिङ्गपूजनः । वर्षेणसिद्धिमाप्नोति मनोभिलषितां नरः ॥
न कुष्ठं न च विस्फोटा न रङ्का न विचर्चिका ।
पीतात्स्पृष्टात्प्रतिष्ठन्ति कफः कालदमोदकात् ॥ ७६ ॥
नाग्निमान्द्यं नैवशूलं नमेहोनप्रवाहिका । नमूत्रकृच्छ्रं नोपामापानीयस्यास्यसेवनात्
भूतज्वराश्च ये केचिद्ये केचिद्विषमज्वराः । तेक्षिप्रमुपशाम्यन्तिह्येतत्कूपोदसेवनात्
तवाग्रतो मम जरापलितं च यथाविधि । एतत्कूपोदपानेन क्षणान्नष्टं नवोऽभवम् ॥
वृद्धकालेश्वरेलिङ्गे सेविते न दरिद्रता । नोपसर्गा न वा रोगा न पापं नाघजं फलम्
उत्तरे कृत्तिवासस्यवाराणस्यां प्रयत्नतः । वृद्धकालेश्वरंलिङ्गं द्रष्टव्यंसिद्धिकामुकैः
इत्युक्त्वातंमहीपालं हस्तेधृत्वातपोधनः । सानङ्गलेखाराज्ञीकंतस्मिल्लिँङ्गेलयंययौ
महाकालमहाकालमहाकालेतिकीर्तनात् । शतधा मुच्यते पापैर्नात्रकार्याविचारणा ॥
इत्थंभवित्री ते मुक्तिःकैटभारातिदर्शनात् । भोगान्भुक्त्वाबहुविधान्वैकुण्ठनगरेशुभे
इति संहृष्टतनूरुहः स विप्रो भगवत्तद्गणवक्त्रतो निशम्य ।
स्वमुदर्कमथार्ककोटिरम्यं हरिलोकं परिलोकयाञ्चकार ॥ ८५ ॥

मैत्रावरुणिरुवाच

लोपामुद्रे!सविप्रेन्द्रोभोगान्भुक्त्वामनोरमान् । मायापुर्यांकृतप्राणत्यागपुण्यबलेनच
वैकुण्ठलोकादागत्य पत्तने नन्दिवर्धने ।
भौमानि भुक्त्वा सौख्यानि पुत्रानुत्पाद्य सुन्दरान् ॥ ८७ ॥
तेषु राज्यं विनिक्षिप्य प्राप्य वाराणसीं पुरीम् ।
विश्वेश्वरं समाराध्य निर्वाणपदमीयिवान् ॥ ८८ ॥

एतत्पुण्यतमाख्यानं विप्रस्य शिवशर्मणः । श्रुत्वा पापविनिर्मुक्तो ज्ञानंपरममृच्छति

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे शिवशर्मनिर्वाणप्रापणंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

स्कन्दागस्त्यदर्शनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणु सूतप्रवक्ष्यामि कथां कलशजन्मनः । यामाकर्ण्य नरो भूयाद्विरजाज्ञानभाजनम्
गिरिं प्रदक्षिणीकृत्य श्रीसञ्ज्ञं कलशोद्भवः । सपत्नीको ददर्शाथरम्यंस्कन्दवनंमहत्
सर्वर्तुकुसुमाढ्यं च रसवत्फलपादपम् । सुसेव्यकन्दमूलाढ्यं सुवल्कलमहीरुहम् ॥
निर्वातश्वापदगणं ससरित्पल्वलावृतम् ।
स्वच्छगम्भीरकासारं सारं सर्वभुवः परम् ॥ ४ ॥
नानापतत्रिसंघुष्टं नानामुनिजनोषितम् । तपःसङ्केतनिलयमिवैकं सम्पदां पदम् ॥
लोहितो नाम तत्रास्तिगिरिःस्वर्णगिरिप्रभः । सुकन्दरप्रस्रवणःस्वसानुशिखरप्रभः
कैलासस्यैकशकलं कर्मभूमाविहागतम् । तपस्तत्तुमिव प्रोच्चैर्नानाश्चर्यसमन्वितम्
तत्राऽद्राक्षीन्मुनिश्रेष्ठोऽगस्त्यःसाक्षात्षडाननम् ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ सपत्नीको महातपाः ॥ ८ ॥
तुष्टाव गिरिजासूनुं सूक्तैःश्रुतिसमुद्भवैः । तथा स्वकृतया स्तुत्या प्रवद्धकरसम्पुटः

अगस्तिरुवाच

नमोस्तु वृन्दारकवृन्दवन्द्यपादारविन्दाय सुधाकराय ।
षडाननायामितविक्रमाय गौरीहृदानन्दसमुद्भवाय ॥ १० ॥

नमोऽस्तु तुभ्यं प्रणतार्त्तिहन्त्रे कर्त्रे समस्तस्य मनोरथानाम् ।
दात्रे रथानां परतारकस्य हन्त्रे प्रचण्डासुरतारकस्य ॥ ११ ॥
अमूर्तमूर्ताय सहस्रमूर्त्तये गुणाय गुण्याय परात्पराय ।
अपारपाराय परापराय नमोऽस्तु तुभ्यं शिखिवाहनाय ॥ १२ ॥
नमोऽस्तु ते ब्रह्मविदां वराय दिगम्बरायाऽम्बरसंस्थिताय ।
हिरण्यवर्णाय हिरण्यबाहवे नमोहिरण्याय हिरण्यरेतसे ॥ १३ ॥
तपःस्वरूपाय तपोधनाय तपःफलानां प्रतिपादकाय ।
सदा कुमाराय हि मारमारिणे तृणीकृतैश्वर्यविरागिणे नमः ॥ १४ ॥
नमोऽस्तु तुभ्यं शरजन्मने विभो! प्रभातसूर्यारुणदन्तपङ्क्तये ।
बालाय चाबालपराक्रमाय षाण्मातुरायालमनातुराय ॥ १५ ॥
मीढुष्टमायोत्तरमीढुषे नमो नमोगणानां पतये गणाय ।
नमोऽस्तु ते जन्मजरातिगाय नमोविशाखाय सुशक्तिपाणये ॥ १६ ॥
सर्वस्य नाथस्य कुमारकाय क्रौञ्चारये तारकमारकाय ।
स्वाहेय! गाङ्गेय! च कार्त्तिकेय! शैवेय! तुभ्यं सततं नमोऽस्तु ॥ १७ ॥
इत्थं परिष्टुत्य सकार्त्तिकेयं नमोनमस्त्वित्यभिभाषमाणः ।
द्विस्त्रिः परिक्रम्य पुरोविवेश स्थितो मुनीशोपविशेति चोक्तः ॥ १८ ॥

कार्त्तिकेय उवाच

क्षेमोऽस्ति कुम्भजमुने! त्रिदशैकसहायकृत् ।
जाने त्वामिह संप्राप्तं तथा विन्ध्याचलोन्नतिम् ॥ १९ ॥
अविमुक्तेमहाक्षेत्रेक्षेमन्त्यक्षेणरक्षिते । यत्रक्षीणायुषांसाक्षाद्द्विरूपाक्षोऽस्तिमोक्षदः
भूर्भुवः स्वस्तले वाऽपि न पातालतले मलम् ।
नोद्र्ध्वलोके मया दृष्टं तादृक् क्षेत्रं क्वचिन्मुने !॥ २१ ॥
अहमेकचरोप्यत्र तत्क्षेत्रप्राप्तये मुने !। तप्ये तपांसि नाद्यापि फलेयुर्मे मनोरथाः
न तत्पुण्यैर्नतद्दानैर्नतपोभिर्नतज्जपैः । न लभ्यं विविधैर्यज्ञैर्लभ्यमैशादनुग्रहात् ॥

ईश्वरानुग्रहादेव काशीवासः सुदुर्लभः । सुलभः स्यान्मुने! नूनं नवैसुकृतकोटिभिः
अन्यैव काचित्सा सृष्टिर्विधातुर्याऽतिरेकिणी ।
न तत्क्षेत्रगुणान्वक्तुमीश्वरोऽपीश्वरो यतः ॥ २५ ॥
अहो मतेः सुदौर्बल्यमहोभाग्यस्यदौर्विधम् ।
अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्काशीह न सेव्यते ॥ २६ ॥
शरीरं जीर्यते नित्यं संजीर्यन्तीन्द्रियाण्यपि ।
आयुर्मृगो मृगयुना कृतलक्ष्यो हि मृत्युना ॥ २७ ॥
सापदं सम्पदं ज्ञात्वा सापायंकायमुच्चकैः । चपलाचपलं चायुर्मत्वाकाशींसमाश्रयेत्
यावन्नैत्यायुषश्चान्तस्तावत्काशी न मुच्यते ।
कालः कलालवस्यापि सङ्ख्यातुं नैव विस्मरेत् ॥ २६ ॥
जरानिकटनिक्षिप्तावाधन्तेव्याधयो भृशम् । तथापि देहोनानेहोनाहोकाशींसमीहते
तीर्थस्नानेनजप्येनपरोपकरणोक्तिभिः । विनाऽर्थं लभ्यतेधर्मोधर्मादर्थःस्वयम्भवेत्
विनैवार्थार्जनोपायं धर्माद्दर्थोभवेद्ध्रुवम् । अतोऽर्थचिन्तामुत्सृज्यधर्ममेकंसमाश्रयेत्
धर्माद्दर्थोऽर्थतः कामः कामात्सर्वसुखोदयः ।
स्वर्गोऽपि सुलभो धर्मात्काश्येका दुर्लभा परम् ॥ ३३ ॥
उपायत्रयमेवात्र स्थाणुर्निर्वाणकारणम् । शर्वाण्यग्रेबभाणाद्धा परिनिर्णीयसर्वतः
पूर्वं पाशुपतोयोगस्ततस्तीर्थंसितासितम् । ततोप्येकमनायासमविमुक्तंविमुक्तिदम्
श्रीशैलहिमशैलाद्यानानान्यायतनानिच । त्रिदण्डधारणंचापिसंन्यासःसर्वकर्म्मणाम्
तपांसि नानारूपाणिव्रतानिनियमायमाः । सिन्धूनामपिसम्भेदाअरण्यानिबहून्यपि
मानसान्यपि भौमानि धारातीर्थादिकानि च ।
ऊषराश्चापि पीठानि ह्यच्छिन्नाम्नाय पाठनम् ॥ ३८ ॥
जपश्चापिमनूनां च तथाऽग्निहवनानि च । दानानि नानाक्रतवो दैवतोपासनानि च
त्रिरात्रंपञ्चरात्राणिसाङ्ख्ययोगादयस्तथा । विष्णोराराधनंश्रेष्ठंमुक्तयेऽभिहितंकिल
पुर्यश्चापिसमाख्याताम्तृजन्तुविमुक्तिदाः । कैवल्यसाधनानीहभवन्त्येवविनिश्चितम्

एतानि यानि प्रोक्तानि काशीप्राप्तिकराणि च ।
प्राप्य काशीं भवेन्मुक्तो जन्तुर्नान्यत्र कुत्रचित् ॥ ४२ ॥
अत एवहितत्क्षेत्रंपवित्रमतिचित्रकृत् । विश्वेशितुःप्रियंनित्यंविष्वग्ब्रह्माण्डमण्डले
इदमेवहितत्क्षेत्रं कुशलप्रश्नकारणम् । एह्येहिदेहिमेस्पर्शं निजगात्रस्य सुव्रत !॥
अपि काश्याः समागच्छत्स्पर्शवत्स्पर्श इष्यते ।
मयाऽत्र तिष्ठता नित्यं किन्तु त्वं तत आगतः ॥ ४५ ॥
त्रिरात्रमपिये काश्यां वसन्तिनियतेन्द्रियाः । तेषांपुनन्तिनियतंस्पृष्टाश्चरणरेणवः
त्वन्तुतत्रकृतावासः कृतपुण्यमहोच्चयः । उत्तरप्रवहास्नानजातपिङ्गलमूर्धजः ॥ ४७ ॥
लवतत्रतुयत्कुण्डमगस्तीश्वरसन्निधौ । तत्रस्नात्वा च पीत्वा च कृतसर्वोदकक्रियः
पितॄन् पिण्डैः समभ्यर्च्य श्रद्धाश्राद्धविधानतः ।
कृतकृत्यो भवेज्जन्तुर्वाराणस्याः फलं लभेत् ॥ ४६ ॥
इत्युक्त्वा सर्वगात्राणि स्पृष्ट्वा कुम्भोद्भवस्य च ।
स्कन्दोऽमृतसरोवारि विगाह्य सुखमाप्तवान् ॥ ५० ॥
जयविश्वेश! नेत्राणि विनिमील्य वदन्नपि ।
ततः किञ्चित्क्षणं दध्यौ गुहः स्थाणुसुनिश्चलः ॥ ५१ ॥
स्कन्दे विसर्जितध्याने सुप्रसन्नमनोमुखे । प्रतीक्ष्य वागवसरं पप्रच्छाथ मुनिर्गुहम्

अगस्तिरुवाच

स्वामिन्यथा भगवता भगवत्यैपुराऽकथि । वाराणस्यास्तुमहिमाहिमशैलभुवेमुदा
त्वयायथा समाकर्णि तदुत्सङ्गनिवासिना । तथाकथयषड्वक्त्र!तत्क्षेत्रंमेऽतिरोचते

स्कन्द उवाच

शृणुष्व मैत्रावरुणे! यथा भगवताऽकथि । तत्क्षेत्रस्याविमुक्तस्य ममयातुः पुरःपुरा
श्रुतश्च यत्तदुत्सङ्गे स्थितेनस्थिरचेतसा । माहात्म्यंतच्छृणुमुनेकथ्यमानंमयाऽनघ!
गुह्यानांपरमंगुह्यमविमुक्तमिहेरितम् । तत्र संनिहितासिद्धि स्तत्रनित्यंस्थितोविभुः
भूर्लोकेनैव संलग्नं तत्क्षेत्रं त्वन्तरिक्षगम् । अयोगिनोनवीक्षन्तेपश्यन्त्येवचयोगिनः

यस्तत्र निवसेद्विप्रसंयतात्मासमाहितः । त्रिकालमपि भुञ्जानोवायुभक्षसमोभवेत्
निमेषमात्रमपि यो ह्यविमुक्तेऽतिभक्तिभाक् । ब्रह्मचर्यसमायुक्तं तेन तप्तं महत्तपः
यस्तु मासं वसेद्धीरो लध्वाहारो जितेन्द्रियः ।
सर्वं तेन व्रतं चीर्णं दिव्यं पाशुपतं भवेत ॥ ६१ ॥
संवत्सरं वसंस्तत्रजितक्रोधो जितेन्द्रियः । अपरस्वविपुष्टाङ्गः परान्नपरिवर्जकः
परापवादरहितः किञ्चिद्दानपरायणः । समाः सहस्रमन्यत्र तेन तप्तं महत्तपः ॥ ६३॥
यावज्जीवं वसेद्यस्तुक्षेत्रमाहात्म्यविन्नरः । जन्ममृत्युभयंहित्वा सयातिपरमाङ्गतिम्
नयोगैर्यागतिर्लभ्या जन्मान्तरशतैरपि । अन्यत्र हेलया साऽत्र लभ्येशस्यप्रसादतः
ब्रह्महा योऽभिगच्छेद्वै दैवाद्वाराणसीं पुरीम् ।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् ब्रह्महत्या निवर्त्तते ॥ ६६ ॥
आदेहपतनं यावद्योविमुक्तं न मुञ्चति । न केवलं ब्रह्महत्या प्रकृतिश्च निवर्तते ॥
अनन्यमानसो भूत्वा तत्क्षेत्रं यो न मुञ्चति । समुञ्चतिजरामृत्यु गर्भवासंसुदुःसहम्
अविमुक्तं निषेवेत देवर्षिगणसेवितम् । यदीच्छेन्मानवो धीमान्नपुनर्जननं भुवि ॥
अविमुक्तं नमुञ्चेत संसारभयमोचनम् । प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते
कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं त्विह ।
न तु क्रतुशतप्राप्यः स्वर्गः काशीपुरीं विना ॥ ७१ ॥
अन्तकाले मनुष्याणां भिद्यमानेषु मर्मसु । वातेनातुद्यमानानां स्मृतिर्नैवोपजायते
तत्रोत्क्रमणकाले तुसाक्षाद्विश्वेश्वरःस्वयम् । व्याचष्टेतारकंब्रह्मयेनासौयन्मयोभवेत्
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वामानुष्यं बहुकिल्बिषम् । अविमुक्तं निषेवेतसंसारभयनाशनम्
विघ्नैरालोड्यमानोऽपि योऽविमुक्तं न मुञ्चति ।
नैःश्रेयसीं श्रियं प्राप्य दुःखान्तं सोऽधिगच्छति ॥ ७५ ॥
महापापौघशमनींपुण्योपचयकारिणीम् । मुक्तिमुक्तिप्रदामन्तेकोनकाशींसुधीःश्रयेत्
एवं ज्ञात्वा तु मेधावी नाविमुक्तंत्यजेन्नरः । अविमुक्तप्रसादेन विमुक्तो जायते यतः
अविमुक्तस्य माहात्म्यं षड्भिर्वक्त्रैः कथं मया ।

वक्तुं शक्यं न शक्नोति सहस्रास्योऽपि यत्परम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
पूर्वार्धेस्कन्दागस्त्यदर्शनंनामपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

मणिकर्णिकाख्यानवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

प्रसन्नोऽसियदिस्कन्द!मयिप्रीतिरनुत्तमा । तत्समाचक्ष्वभगवंश्चिरंयन्मेहृदिस्थितम्
अविमुक्तमिदंक्षेत्रं कदारभ्य भुवस्तले । परां प्रथितिमापन्नं मोक्षदञ्चाभवत्कथम्
कथमेषा त्रिलोकीड्या गीयते मणिकर्णिका ।
तत्राऽऽसीत्किम्पुरा स्वामिन्यदा नाऽमरनिम्नगा ॥ ३ ॥
वाराणसीतिकाशीति रुद्रावासइतिप्रभो !। अवाप नामधेयानि कथमेतानि सा पुरी
आनन्दकाननं रम्यमविमुक्तमनन्तरम् ॥ ४ ॥
महाश्मशान इतिचकथं ख्यातंशिखिध्वज !। एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सन्देहंमेऽपनोदय

स्कन्द उवाच

प्रश्नभारोयमतुलस्त्वया यः समुदाहृतः । कुम्भयोनेऽमुमेवार्थमप्राक्षीदम्बिकाहरम्
यथा च देवदेवेन सर्वज्ञेन निवेदितम् । जगन्मातुः पुरस्ताच्च तथैव कथयामि ते ॥
महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजङ्गमे । आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूतलम् । अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजोविवर्धितम्
द्रष्टृत्वादिविहीनञ्च शब्दस्पर्शसमुज्झितम् । व्यपेतगन्धरूपञ्च रसत्यक्तमदिङ्मुखम्
इत्थं सत्यन्धतमसि सूचीभेद्ये निरन्तरे । तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्यासदैकं प्रतिपाद्यते
अमनोगोचरोवाचां विषयं न कथंचन । अनामरूपवर्णञ्च नस्थूलं नच यत्कृशम् ॥

अहस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम् । न यत्रोपचयः कश्चित्तथा चापचयोपिच ॥
अभिधत्ते सचकितं यदस्तीति श्रुतिःपुनः । सत्यं ज्ञानमनन्तश्च यदानन्दं परं महः
अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति । निर्गुणं योगिगम्यश्च सर्वव्याप्येककारणम् ॥
निर्विकल्पं निरारम्भं निर्मायं निरुपद्रवम् ।
यस्येत्थं संविकल्प्यन्ते संज्ञाः संज्ञोदितस्यवै ॥ १६ ॥
तस्यैकलस्य चरतोद्वितीयेच्छाभवत्किल । अमूर्त्तेनस्वमूर्त्तिश्च तेनाकल्पिस्वलीलया
सर्वैश्वर्यगुणोपेतासर्वज्ञानमयी शुभा । सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्वकारिणी ॥
सर्वैकवन्द्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसङ्कृतिः ।
परिकल्प्येति तां मूर्त्तिमीश्वरीं शुद्धरूपिणीम् ॥ १९ ॥
अन्तर्दधे पराख्यं यद् ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ॥ २० ॥
अमूर्त्तं यत्पराख्यं वैतस्यमूर्त्तिरहं प्रिये !। अर्वाचीनपराचीना ईश्वरं मां जगुर्बुधाः॥
ततस्तदेकलेनापि स्वैरं विहरतामया । स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टास्वशरीरानपायिनी
प्रधानं प्रकृतिंत्वाञ्च मायांगुणवतींपराम् । बुद्धितत्त्वस्यजननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम्
युगपच्च त्वयाशक्त्यासाकंकालस्वरूपिणा । मयाऽद्यपुरुषेणैतत्क्षेत्रंचापिविनिर्मितम्

स्कन्द उवाच

साशक्तिःप्रकृतिःप्रोक्तासपुमानीश्वरःपरः । ताभ्याञ्चरममाणाभ्यांतस्मिन्क्षेत्रेघटोद्भव
परमानन्दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणि । पञ्चक्रोशपरीमाणे स्वपादतलनिर्मिते ॥
मुने! प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रंकदाचन । विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तंततोविदुः
न यदा भूमिवलयं न यदाऽपां समुद्भव !। तदा विहर्तुमीशेन क्षेत्रमेतद्विनिर्मितम्
इदं रहस्यं क्षेत्रस्य वेदकोऽपि न कुम्भज । नास्तिकाय न वक्तव्यंकदाचिच्चर्मचक्षुषे
श्रद्धालवे विनीताय त्रिकालज्ञानचक्षुषे । शिवभक्तायशान्ताय वक्तव्यञ्चमुमुक्षवे ॥
अविमुक्तं तदारभ्य क्षेत्रमेतदुदीर्यते । पर्यङ्कभूतं शिवयोर्निरन्तरसुखास्पदम् ॥ ३१ ॥
अभावः कल्प्यते मूढैर्यदा च शिवयोस्तयोः ।
क्षेत्रस्यास्य तदाभावः कल्प्यो निर्वाणकारिणः ॥ ३२ ॥

अनाराध्यमहेशानमनवाप्यचकाशिकाम् । योगाद्युपायविज्ञोऽपिननिर्वाणमवाप्नुयात्
अस्यानन्दवनं नाम पुराऽकारिपिनाकिना । क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वाद्‌विमुक्तमनन्तरम्
आनन्दकन्दबीजानामङ्कुराणि यतस्ततः । ज्ञेयानि सर्वलिङ्गानि तस्मिन्नानन्दकानने ॥
.अविमुक्तमिति ख्यातमासीदित्थं घटोद्भव !।
तथा चाख्याम्यथ मुने ! यथाऽऽसीन्मणिकर्णिका ।। ३६ ॥
प्रागानन्दवने तत्र शिवयोरममाणयोः । इच्छेत्यभूत्कलशज! सृज्यः कोप्यपरः किल
यस्मिन्न्यस्ते महाभारे आवां स्वःस्वैरचारिणौ ।
निर्वाणश्राणनं कुर्वः केवलं काशिशायिनाम् ॥ ३८ ॥
स एव सर्वं कुरुते स ए व परिपाति च । स एव संवृणोत्यन्ते सर्वैश्वर्यनिधिःसच
चेतःसमुद्रमाकुञ्च्यचिन्ताकल्लोलदोलितम् । सत्त्वरत्नं तमोग्राहंरजोविद्रुमवल्लितम्
यस्य प्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानने । परिक्षिप्तमनोवृत्तौ क्वहिचिन्तातुरे सुखम्
संप्रधार्यैतिस विभुःसर्वतश्चित्स्वरूपया । तया सहजगद्धात्र्याजगद्धाताऽथधूर्जटिः
सव्ये व्यापारयाञ्चक्रे दृशमङ्गे सुधामुचम् । ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुन्दरः
शान्तः सत्त्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यजितसागरः ।
तथा च क्षमयायुक्तो मुनेऽलब्धोपमोऽभवत् ॥ ४४ ॥
इन्द्रनीलद्युतिःश्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः । सुवर्णाकृतिसुच्छायदुकूलयुगलावृतः ॥
लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलद्वयराजितः । उल्लसत्परमामोदनाभीहृदकुशेशयः ॥ ४६ ॥
एकःसर्वगुणावासस्त्वेकःसर्वकलानिधिः । एकःसर्वोत्तमोयस्मात्ततोयःपुरुषोत्तमः
ततो महान्तं तं वीक्ष्य महामहिमभूषणम् । महादेव उवाचेदं महाविष्णुर्भवाच्युत
तव निःश्वसितं वेदास्तेभ्यः सर्वमवैष्यसि । वेददृष्टेन मार्गेण कुरु सर्वं यथोचितम्
इत्युक्त्वा तं महेशानो बुद्धितत्त्वस्वरूपिणम् ।
शिवया सहितो रुद्रो विवेशाऽऽनन्दकाननम् ॥ ५० ॥
ततःसभगवान्विष्णुर्मौलावाज्ञां निधायच । क्षणंध्यानपरोभूत्वा तपस्येवमनोदधौ
खनित्वा तत्रचक्रेणरम्यां पुष्करिणींहरिः । निजाङ्गस्वेदसन्दोहंसलिलैस्तामपूरयत्

समाःसहस्रं पञ्चाशत्तप उग्रश्चचार सः । चक्रपुष्करिणीतीरे तत्र स्थाणुसमाकृतिः
ततःसभगवानीशो मृडान्यासहितोमृडः । दृष्ट्वाज्वलन्तंतपसा निश्चलंमीलितेक्षणम्
तमुवाच हृषीकेशं मौलिमान्दोलयन्मुहुः । अहो महत्त्वं तपसस्त्वहोधैर्यं च चेतसः
अहो अनिन्धनो वह्निर्ज्वलत्येष निरन्तरम् ।
अलं तप्त्वा महाविष्णो! वरं वरय सत्तम !॥ ५६ ॥
मृडस्याऽऽम्रेडितमिदं प्रत्यभिज्ञाय भाषितम् ।
उन्मीलितदृगम्भोजः समुत्तस्थौ चतुर्भुजः ॥ ५७ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

यदि प्रसन्नो देवेश!देवदेवमहेश्वर !। भवान्या सहितं त्वान्तु द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा
सर्वकर्मसु सर्वत्र त्वामेव शशिशेखर !। पुरश्चरन्तं पश्यामि यथा तन्मे वरस्तथा ॥
त्वदीयचरणाम्भोजमकरन्दमधूत्सुकः । मच्चेतोभ्रमरोभ्रान्ति विहायास्तुसुनिश्चलः

श्रीशिव उवाच

एवमस्तु हृषीकेश! यत्त्वयोक्तं जनार्दन !। अन्यं वरं प्रयच्छामि तमाकर्णय सुव्रत !॥
त्वदीयस्यास्य तपसो महोपचयदर्शनात् । यन्मयांदोलितोमौलिरहिश्रवणभूषणः
तदान्दोलनतःकर्णात्पपात मणिकर्णिका ।
मणिभिः खचिता रम्या ततोऽस्तु मणिकर्णिका ॥ ६३ ॥
चक्रपुष्करिणीतीर्थं पुराख्यातमिदं शुभम् । त्वया चक्रेण खननाच्छङ्खचक्रगदाधर
ममकर्णात्पपातेयं यदाचमणिकर्णिका । तदाप्रभृतिलोकेऽत्रख्यातास्तुमणिकर्णिका

श्रीविष्णुरुवाच

मुक्ताकुण्डलपातेन तवाद्रितनयाप्रिय !। तीर्थानां परमं तीर्थं मुक्तिक्षेत्रमिहास्तु वै ॥
काशतेऽत्रयतोज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वरः । अतोनामापरञ्चास्तुकाशीतिप्रथितंविभो
अन्यं वरं वरे देव! देयः सोप्यविचारितम् । स ते परोपकारार्थंजगद्रक्षामणे! शिव!
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चिज्जन्तुसञ्ज्ञितम् ।
चतुर्षु भूतग्रामेषु काश्यां तन्मुक्तिमाप्स्यतु ॥ ६९ ॥

अस्मिंस्तीर्थवरेशम्भो! मणिश्रवणभूषणे । सन्ध्यां स्नानं जपं होमं वेदाध्ययनमुत्तमम्
तर्पणं पिण्डदानञ्च देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ७० ॥
गोभूतिलहिरण्याश्वदीपान्नाम्बरभूषणम् । कन्यादानं प्रयत्नेन सप्ततन्तूननेकशः ॥
व्रतोत्सर्गं वृषोत्सर्गं लिङ्गादिस्थापनं तथा । करोति यो महाप्राज्ञो ज्ञात्वायुः क्षणगत्वरम्
विपत्तिं विपुलां चापि सम्पत्तिमतिभङ्गुराम् ।
अक्षया मुक्तिरेकास्तु विपाकस्तस्य कर्मणः ॥ ७३ ॥
अन्यच्चापि शुभं कर्म यदत्र श्रद्धयायुतम् । विनात्मघातमीशान! त्यक्त्वा प्रायोपवेशनम्
नैःश्रेयस्याः श्रियो हेतुस्तदस्तु जगदीश्वर !।
नाऽनुशोचति नाऽऽख्याति कृत्वा कालान्तरेऽपि यत् ॥ ७५ ॥
तदिहाक्षयतामेतु तस्येशत्वदनुग्रहात् । तव प्रसादात्तस्येश सर्वमक्षयमस्तु तत् ॥
यदस्ति यद्भविष्यच्च यद्भूतञ्च सदाशिव !। तस्मादेतच्च सर्वस्मात्क्षेत्रमस्तु शुभोदयम्
तथा सदाशिव! त्वत्तो न किञ्चिदधिकं शिवम् ।
तथा नन्दवनादस्मात्किञ्चिन्मास्त्वधिकं क्वचित् ॥ ७८ ॥
विना साङ्ख्येन योगेन विना स्वात्मावलोकनम् ।
विना व्रततपोदानैः श्रेयोऽस्तु प्राणिनामिह ॥ ७९ ॥
शशका मशकाः कीटाः पतङ्गास्तुरगोरगाः ।
पञ्चक्रोश्यां मृताः काश्यां सन्तु निर्वाणदीक्षिताः ॥ ८० ॥
नामाऽपि गृह्णतां काश्याः सदैवास्त्वेनसः क्षयः ॥ ८१ ॥
सदा कृतयुगं चास्तु सदा चास्तूत्तरायणम् । सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवसतां सताम्
यानि कानि पवित्राणि श्रुत्युक्तानि सदाशिव । तेभ्योऽधिकतरं चास्तु क्षेत्रमेतत्त्रिलोचन
चतुर्णामपि वेदानां पुण्यमध्ययनाच्च यत् । तत्पुण्यं जायतां काश्यां गायत्रीलक्षजाप्यतः
अष्टाङ्गयोगाभ्यासेन यत्पुण्यमपि जायते । तत्पुण्यं साधिकं भूयाच्छ्रद्धाकाशीनिषेवणात्
कृच्छ्रचान्द्रायणाद्यैश्च यच्छ्रेयः समुपार्ज्यते । तदेकेनोपवासेन भवत्वानन्दकानने
अन्यत्र यत्तपस्तप्त्वा श्रेयः स्याच्छरदांशतम् ।

तदस्तु काश्यां वर्षेण भूमिशय्या व्रतेन हि ॥ ८७ ॥
आजन्ममौनव्रततोयदन्यत्रफलंस्मृतम् । तदस्तुकाश्यांपक्षाहःसत्यवाक्परिभाषणात्
अन्यत्रदत्त्वासर्वस्वंसुकृतंयत्समीरितम् । सहस्रभोजनात्काश्यांतद्भूयादयुताधिकम्
मुक्तिक्षेत्राणि सर्वाणि यत्संसेव्योदितंफलम् ।
पञ्चरात्रात्तदत्रास्तु निषेव्य मणिकर्णिकाम् ॥ ९० ॥
प्रयागस्नानपुण्येनयत्पुण्यंस्याच्छिवप्रदम् । काशीदर्शनमात्रेणतत्पुण्यंश्रद्धयास्त्विह
यत्पुण्यमश्वमेधेन यत्पुण्यं राजसूयतः । काश्यां तत्पुण्यमाप्नोतु त्रिरात्रशयनाद्यमी
तुलापुरुषदानेन यत्पुण्यं सम्यगाप्यते । काशीदर्शनमात्रेण तत्पुण्यं श्रद्धयास्तु वै
इतिविष्णोर्वरंश्रुत्वा देवदेवोजगत्पतिः । उवाच च प्रसन्नात्मा तथाऽस्तु मधुसूदन

श्रीमहादेव उवाच

शृणुविष्णोमहाबाहोजगतःप्रभवाप्यय । विधेहिसृष्टिंविविधांयथावत्त्वंश्रुतीरिताम्
पितेवसर्वभूतानां धर्मतः पालको भव । विध्वंसनीयाविविधा धर्मध्वंसविधायिनः
धर्मेतरपथस्थानामुपसंहृतये हरे । हेतुमात्रं भवान्यस्मात्स्वकर्मनिहताहि ते ॥ ९७
यथा परिणतं सस्यंपतेत्प्रसवबन्धनात् । तेपरीणतपाप्मानःपतिष्यन्तितथास्वयम्
ये च त्वामवमन्यन्ते दर्पिताः स्वतपोबलैः । तेषांचैवोपसंहृत्यैप्रभविष्याम्यहं हरे !
उपपातकिनोयेच महापातकिनश्चये । तेऽपि काशीं समासाद्य भविष्यन्तिगतैनसः
इदंममप्रियंक्षेत्रं पञ्चक्रोशीपरीमितम् । ममाज्ञाप्रभवेदत्र नाऽन्याज्ञा प्रभवेदिह ॥१०१
पुनर्विष्णुर्मया प्रोक्तो मृडानि! शुभलोचने !। अत्युग्रतेजसातेजोभ्रमंस्त्रैलोक्यविभ्रमः
पापिनामपि जन्तूनामविमुक्तनिवासिनाम् ।
नान्यः शासयिता विष्णो! तेषां शास्ताऽहमेव हि ॥ १०३ ॥
योजनानांशतस्थोपियोऽविमुक्तंस्मरेद्धृदि । बहुपातकपूर्णोऽपि नसपापैःप्रभाव्यते
ममप्रियस्यक्षेत्रस्ययोऽविमुक्तस्यसंस्मरेत् । प्राणप्रयाणसमये दूरगोऽप्यघवानपि
सपापपूगमुत्सृज्यस्वर्गभोगान्समश्नुते । काशीस्मरणपुण्येनस्वर्गाद्भ्रष्टोहिजायते
पृथिव्यामेकराड् भूत्वा भुक्त्वा भोगाननेकशः ।

प्राप्याऽविमुक्तं तत्पुण्यान्निर्वाणपदभाग्भवेत् ॥ १०७ ॥
बहुकालमुषित्वाऽत्र नियतेन्द्रियमानसः । यद्यन्यत्रविपद्येत दैवयोगाच्छुचिस्मिते!
सोऽपि स्वर्गसुखं भुक्त्वा भूत्वा क्षितिपतीश्वरः ।
पुनः काशीमवाप्याथ विन्देन्नैःश्रेयसीं श्रियम् ॥ १०६ ॥
विष्णोऽविमुक्तेसंवासःकर्मनिर्मूलनक्षमः । द्वित्राणांहिपवित्राणांनिर्वाणायेहजायते

विष्णुरुवाच

देवेशक्षेत्रमाहात्म्यं योनजानातितत्त्वतः । नश्रद्दधातिम्रियते मृते तस्येह का गतिः

शिव उवाच

अन्यत्रकृत्वापापानि बहूनिसुमहान्ति च । अश्रद्दधानोऽतत्त्वज्ञो यद्यत्र च विपद्यते
महिमन्यनभिज्ञोंपिक्षेत्रस्यास्यजनार्दन !। तस्ययागतिरुद्दिष्टा तां निशामय सुव्रत!॥
पञ्चक्रोशींप्रविशतस्तस्यपातकसन्ततिः । बहिरेव प्रतिष्ठेत नान्तर्निर्विशते क्वचित्
भयाद् बहिः स्थितायाञ्च तस्य पातकसन्ततौ ।
त्रिशूलपाशपाणीनां गणानां सीमचारिणाम् ॥ ११५ ॥
प्रवेशमात्रादनघः सर्वैरेनोभिरुज्झितः । संस्नायमणिकर्णिक्यांपुण्यंप्राप्नोत्यनुत्तमम्
सर्वतीर्थेषुसंस्नानाद्यत्पुण्यंसमवाप्यते । तत्पुण्यमाप्यतेसम्यङ्मणिकर्ण्यैकमज्जनात्
विधिनातत्रसंस्नायमृद्गोमयकुशादिभिः । स्वशाखावारुणैर्मन्त्रैर्दूर्वापामार्गदर्भकैः ॥
सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वदानेषुयत्फलम् । मणिकर्ण्यांविधिस्नातःश्रद्धयातदवाप्नुयात्
अश्रद्धयापियःस्नातोमणिकर्ण्यांविधानतः । सोऽपिपुण्यमवाप्नोतिस्वर्गप्राप्तिकरंपरम्
श्रद्धया विधिवत्स्नात्वा कृत्वा देवादितर्पणम् ।
तिलबर्हिर्यवैः सम्यक्सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ १२१ ॥
श्रद्दधानोविधिस्नातः कृतसर्वोदकक्रियः । जपन्देवान्समभ्यर्च्य सर्वमन्त्रफलं लभेत्
स्नात्वामौनेन विश्वेशदर्शनान्नियतेन्द्रियः । सर्वव्रतकृतं श्रेयोलभेद्वाचंयमः शिवे
स्नाने देवार्चने जप्ये मलमूत्रविसर्जने । मौनं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनहोमयोः
विश्वेश्वरं समभ्यर्च्य सूपचारैर्विधानतः ।

यावज्जीवं शिवार्चायाः फलमाप्नोति वै सकृत् ॥ १२५ ॥
दत्त्वाऽल्पमपि देवेशि!न्यायेनोपार्जितंधनम् । अविमुक्तेममक्षेत्रे न दरिद्रोभवेत्कचित्
विविधंधनमावर्ज्ययोऽविमुक्ते न यच्छति । संप्राप्यनिधनंमूढोऽन्यत्रशोचतिसर्वदा
रम्याणि यानि रत्नानि गोगजाश्वाम्बराण्यपि ।
कृतानि तानि श्रेयोर्थमविमुक्तनिवासिनाम् ॥ १२८ ॥
विश्वेशप्रीणनार्थायधनंनिधनमेववा । न्यायेनकाश्यांयःकुर्यात्सधन्यःसचधर्मवित्
योऽसौ विश्वेश्वरो देवः काशीपुर्यामुमे ! स्थितः ।
लिङ्गरूपधरः साक्षान्ममश्रेयास्पदं हितत् ॥ १३० ॥
अविमुक्तं महत्क्षेत्रंपञ्चक्रोशपरीमितम् । ज्योतिर्लिङ्गं तदेकंहिज्ञेयंविश्वेश्वराभिधम्
एकदेशस्थितमपियथामार्तण्डमण्डलम् । दृश्यते सर्वगं सर्वैःकाश्यांविश्वेश्वरस्तथा
निष्प्रत्यूहेन योगेन नानाजन्मार्जितेन च ।
यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यां त्यजतस्तनुम् ॥ १३३ ॥
तप्त्वा तपांसि सर्वाणि बहुकालं जितेन्द्रियैः ।
यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यामेकरात्रतः ॥ १३४ ॥
अक्षेत्रमहिमज्ञोऽपि श्रद्धाहीनोऽपि कालतः । काशीप्रवेशादनघोऽमृतत्वं लभते मृतः
कृत्वाप्येनांसि चोग्राणि कालात्प्राप्याथ काशिकाम् ।
त्यक्त्वा तनुं प्रसादान्मे मामेव प्रतिपद्यते ॥ १३६ ॥
विना मम प्रसादं वै कःकाशींप्रतिपद्यते । विना ब्रध्नंविशालाक्षिदिनकृत्कइहोच्यते
अप्राप्यकाशींकोदेवि!निरन्तरसुखंलभेत् । ब्रह्माद्याः प्राकृतैः पाशैर्यतोबद्धानिरन्तरम्
चतुर्विंशतिभिः पाशैस्त्रिगुणैः क्रियया दृढैः ।
कण्ठे बद्धा विमुच्यन्ते कथं काशीं विना जनाः ॥ १३९ ॥
बहूपसर्गो योगोऽयं कृच्छ्रसाध्यन्तपो ह्ययत् ।
योगाद्भ्रष्टस्तपोभ्रष्टो गर्भक्लेशसहः पुनः ॥ १४० ॥
कृत्वाऽपि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत् ।

भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मुक्तिमवाप्स्यति ॥ १४१ ॥
काश्यां मृतानां जन्तूनांदैवात्पापकृतामपि । न पातोनरकेतेषांतेषां शास्ताहमेवयत्
कायं विज्ञाय सापायं स्मृत्वा गर्भस्य वेदनाम् ।
त्यक्त्वा राज्यमपि प्राज्यं सेव्या काशी निरन्तरम् ॥ १४३ ॥
अतर्कितंसमभ्येत्य यमदूताःसुदारुणाः । बद्ध्वापाशैर्हनिष्यन्तिक्षिप्रंकाशींततःश्रयेत्
नपापेभ्यो भयंयत्र नभयंयत्रवै यमात् । न गर्भवासभीर्यत्र तां काशीं को न संश्रयेत्
अद्यप्रातःपरश्वोवामरणंप्राप्यमेव च । यावत्कालविलम्बोऽस्तितावत्काशींसमाश्रयेत्
प्राप्ते तु मरणे पुंसां पुनर्जन्म पुनर्मृतिः । अपुनर्भवभूमिं च तस्मात्काशीं श्रयेद्बुधः
पुत्रक्षेत्रकलत्राख्यां त्यक्त्वा मायां हि वैष्णवीम् ।
भवान्तरेऽनेकरूपाम्भवघ्नीं काशिकां श्रयेत् ॥ १४८ ॥

स्कन्द उवाच

दूरं मे मरणं युवाहमधुना धार्य्यं न चित्ते त्विति,
श्रोतव्यो निभृतं कृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारवः ।
नैकस्यात्प्रकटोत्कटश्रमघटामप्राप्य हित्वा द्रुतं,
जीर्णां पर्णकुटीं ततः पटुमतिर्गच्छेत्पुरीं धूर्जटेः ॥ १४६ ॥

व्यास उवाच

अगस्त्यस्य पुरःसूत! कथयित्वा कथामिमाम् । सर्वपापप्रशमनीं पुनःस्कन्दउवाचह

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे मणिकर्णिकाख्यानं नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

गङ्गामहिमवर्णनपूर्वकंदशहरास्तोत्रकथनम्

स्कन्द उवाच

चाराणसीतीप्राथतं यथा चानन्दकाननम् । तथा च कथयामीह देवदेवेन भाषितम्

ईश्वरउवाच

निशामयमहाबाहो!विष्णोत्रैलोक्यसुन्दर !। प्राप्तंवाराणसीत्याख्यामविमुक्तंयथातथा
निर्दग्धान्सागराञ्छ्रुत्वा कपिलक्रोधवह्निना ।
अश्वमेधाश्वसंयुक्तान्पूर्वजान् स्वान् भगीरथः ॥ ३ ॥
सूर्यवंशे महातेजा राजा परमधार्मिकः । आरिराधयिषुर्गङ्गां तपसे कृतनिश्चयः ॥ ४॥
हिमवन्तं नगश्रेष्ठममात्यन्यस्तराज्यधूः । जगाम यशसां राशिरुद्दिधीर्षुः पितामहान्
ब्रह्मशापाग्निनिर्दग्धान्महादुर्गतिगानपि ।
विना त्रिमार्गगां विष्णो!कोजन्तूंस्त्रिदिवं नयेत् ॥ ६ ॥
ममैव सापरामूर्त्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका । ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारःप्रकृतिःपरा
शुद्धविद्यास्वरूपा चत्रिशक्तिःकरुणात्मिका । आनन्दामृतरूपा चशुद्धधर्मस्वरूपिणी
यामेतांजगतांधात्रींधारयामिस्वलीलया । विश्वस्यरक्षणार्थायपरब्रह्मस्वरूपिणीम्
त्रैलोक्ये यानितीर्थानिपुण्यक्षेत्राणियानिच । सर्वत्रसर्वेयेधर्माःसर्वे यज्ञाःसदक्षिणाः
तपांसि विष्णो!सर्वाणि श्रुतिः साङ्गा चतुर्विधा ।
अहं च त्वञ्च कश्चापि देवतानां गणाश्च ये ॥ ११ ॥
पुरुषार्थाश्च सर्वे वैशक्तयो विविधाश्च याः । गङ्गायांसर्व एवैते सूक्ष्मरूपेणसंस्थिताः
सस्नातःसर्वतीर्थेषु सर्वक्रतुषु दीक्षितः । चीर्णसर्वव्रतःसोपि यस्तुगङ्गां निषेवते
तपांसि तेन तप्तानि सर्वदानप्रदःस च । सप्राप्तयोगनियमो यस्तुगङ्गां निषेवते ॥
सर्ववर्णाश्रमेभ्यश्चवेदविद्भ्यश्च वै तथा । शास्त्रार्थपारगेभ्यश्चगङ्गास्नायीविशिष्यते

मनोवाक्कायजैर्दोषैर्दुष्टो बहुविधैरपि । वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतःपुरुषो नात्र संशयः ॥
कृते सर्वत्र तीर्थानि त्रेतायां पुष्करम्परम् । द्वापरेतुकुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गैवकेवलम् ॥
पूर्वजन्मान्तराभ्यासवासनावशतो हरे !। गङ्गातीरे निवासःस्यान्मदनुग्रहतः परात्
ध्यानं कृते मोक्षहेतुस्त्रेतायां तच्चवै तपः । द्वापरे तद्द्वयं यज्ञाःकलौ गङ्गैव केवलम्
यो देहपतनाद्यावद्गङ्गातीरं न मुञ्चति । स हि वेदान्तविद्योगी ब्रह्मचर्यव्रती सदा ॥
कलौ कलुषचित्तानां परद्रव्यरतात्मनाम् । विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिर्गङ्गांविनानहि

अलक्ष्मीः कालकर्णीच दुःस्वप्नो दुर्विचिन्तितम् ।
गङ्गागङ्गेतिजपनात्तानि नोपविशन्ति हि ॥ २२ ॥

गङ्गा हि सर्वभूतानामिहामुत्र फलप्रदा । भावानुरूपतो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता
यज्ञदानतपोयोगजपाः सनियमायमाः । गङ्गासेवासहस्रांशं न लभन्ते कलौ हरे !॥
किमष्टाङ्गेन योगेन किं तपोभिःकिमध्वरैः । वासएवहिगङ्गायांब्रह्मज्ञानस्य कारणम्

अपि दूरस्थितस्यापि गङ्गामाहात्म्यवेदिनः ।
अयोग्यस्यापि गोविन्द!भक्त्या गङ्गा प्रसीदति ॥ २६ ॥

श्रद्धाधर्मः परःसूक्ष्मः श्रद्धाज्ञानम्परन्तपः । श्रद्धास्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धया साप्रसीदति
अज्ञानरागलोभाद्यैःपुंसां सम्मूढचेतसाम् । श्रद्धा न जायते धर्मे गङ्गायां चविशेषतः
बहिःस्थितंजलंयद्वन्नारिकेलान्तरे स्थितम् । तथाब्रह्माण्डबाह्यस्थंपरब्रह्माम्बु जाह्नवी
गङ्गालाभात्परो लाभःकश्चिदन्योन विद्यते । तस्माद्गङ्गामुपासीत गङ्गैवपरमः पुमान्
शक्तस्यपण्डितस्यापिगुणिनोदानशीलिनः । गङ्गास्नानविहीनस्यहरे!जन्मनिरर्थकम्
वृथाकुलं वृथाविद्यावृथायज्ञा वृथातपः । वृथादानानितस्येह कलौगङ्गां न यो भजेत्
गुणवत्पात्रपूजायांन स्याद्वैतादृशं फलम् । यथागङ्गाजलस्नानपूजनेविधिना फलम्
ममतेजोऽग्निगर्भेयं ममवीर्यातिसंवृता । दाहिका सर्वदोषाणां सर्वपापविनाशिनी
स्मरणादेव गङ्गायाः पापसङ्घातपञ्जरम् । शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥

गङ्गां गच्छति यस्त्वेको यस्तु भक्त्याऽनुमोदयेत् ।
तयोस्तुल्यं फलं प्राहुर्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥ ३६ ॥

गच्छंस्तिष्ठञ्जपन् ध्यायन् भुञ्जन् जाग्रत् स्वपन् वदन् ।
यः स्मरेत्सततं गङ्गां स हि मुच्येत बन्धनात् ॥ ३७ ॥
पितॄनुद्दिश्ययोभक्त्यापायसंमधुसंयुतम् ।गुडसर्पिस्तिलैःसार्धंगङ्गाम्भसिविनिक्षिपेत्
तृप्ताभवन्तिपितरस्तस्यवर्षशतंहरे । यच्छन्ति विविधान्कामान्परितुष्टाः पितामहाः
लिङ्गे सम्पूजिते सर्वमर्चितंस्याज्जगद्यथा । गङ्गास्नानेन लभते सर्वतीर्थफलं तथा
गङ्गायांतुनरः स्नात्वायोलिङ्गंनित्यमर्चति । एकेनजन्मनामुक्तिपरां प्राप्नोतिसध्रुवम्
अग्निहोत्रंच यज्ञाश्चव्रतदानतपांसिच । गङ्गायांलिङ्गपूजायाःकोट्यंशेनापिनोसमाः
गङ्गां गन्तुं विनिश्चित्य कृत्वा श्राद्धादिकं गृहे ।
स्थितस्य सम्यक्सङ्कल्पात्तस्य नन्दन्ति पूर्वजाः ॥ ४३ ॥
पापानिचरुदन्त्याशुहा कयास्यामइत्यलम् । लोभमोहादिभिःसार्द्धंमन्त्रयन्तिपुनःपुनः
यथानगङ्गांयात्येषतथाविघ्नंप्रकुर्महे । गङ्गागतोयथाचैष न उच्छित्तिं विधास्यति ॥
गृहाद्गङ्गावगाहार्थंगच्छतस्तु पदे पदे । निराशानिव्रजन्त्येवपापान्यस्य शरीरतः ॥
पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैस्त्यक्त्वा लोभादिकं हरे ।
व्युदस्य सर्वविघ्नौघान् गङ्गां प्राप्नोति पुण्यवान् ॥ ४७ ॥
अनुषङ्गेन मौल्येन वाणिज्येनापि सेवया ।
कामासक्तोऽपि वा मर्त्यो गङ्गास्नातो दिवं व्रजेत् ॥ ४८ ॥
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनोहियथादहेत् । अनिच्छयापिसंस्नातागङ्गापापंतथादहेत्
तावद्भ्रमति संसारे यावद्गङ्गां न सेवते । संसेव्य गङ्गांनो जन्तुर्भवक्लेशं प्रपश्यति
योगङ्गाम्भसिनिस्नातो भक्त्या संत्यक्तसंशयः । मनुष्यचर्मणानद्धःसदेवोनात्रसंशयः
गङ्गास्नानार्थमुद्युक्तोमध्येमार्गं मृतो यदि । गङ्गास्नानफलं सोऽपि तदाप्नोतिनसंशयः
माहात्म्यं येच गङ्गायाः शृण्वन्ति च पठन्ति च ।
तेप्यशेषैर्महापापैर्मुच्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ ५३ ॥
दुर्बुद्धयोदुराचारा हैतुका बहुसंशयाः । पश्यन्ति मोहिताविष्णो गङ्गामन्यनदीमिव
जन्मान्तरकृतैर्दानैस्तपोभिर्नियमैर्व्रतैः । इह जन्मनिगङ्गायां नृणां भक्तिः प्रजायते

गङ्गाभक्तिमतामर्थे महेन्द्रादिपुरेषु च। हर्म्याणि रम्यभोगानिनिर्मितानिस्वयम्भुवा
सिद्धयः सिद्धिलिङ्गानि स्पर्शलिङ्गान्यनेकशः।
प्रासादा रत्नरचिताश्चिन्तामणिगणा अपि ॥ ५७ ॥
गङ्गाजलान्तस्तिष्ठन्ति कलिकल्मषभीतितः।
अत एव हि संसेव्या कलौ गङ्गेष्टसिद्धिदा ॥ ५८ ॥
सूर्योदये तमांसीव वज्रपातभयान्नगाः। तार्क्ष्येक्षणाद्यथा सर्पा मेघा वाताहता इव
तत्त्वज्ञानाद्यथामोहःसिंहंदृष्ट्वायथामृगाः। तथासर्वाणिपापानियान्तिगङ्गेक्षणात्क्षयम्
दिव्यौषधैर्यथारोगालोभेनच यथागुणाः। यथाग्रीष्मोष्मसम्पत्तिरगाधह्रदमज्जनात्
तूलशैलः स्फुलिङ्गेन यथा नश्यति तत्क्षणात्।
तथा दोषाः प्रणश्यन्ति गङ्गाम्भःस्पर्शनाद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥
क्रोधेन च तपोयद्वत्कामेन च यथा मतिः। अनयेन यथा लक्ष्मीर्विद्यामानेन वै यथा
दम्भकौटिल्यमायाभिर्यथा धर्मोविनश्यति। तथा नश्यन्तिपापानिगङ्गाया दर्शनेनतु
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम्। गङ्गां यः सेवतेसोऽत्रबुद्धेःपारंपरंगतः
विधूतपापायेमर्त्याःपरंज्योतिःस्वरूपिणीम्। सहस्रसूर्यप्रतिमांगङ्गांपश्यन्तितेभुवि
साधारणाम्भसापूर्णां साधारणनदीमिव। पश्यन्तिनास्तिकागङ्गांपापोपहतलोचनाः
संसारमोचकश्चाहं जनानामनुकम्पया। गङ्गातरङ्गरूपेण सोपानं निर्ममे दिवः ॥
सर्व एव शुभः कालः सर्वोदेशस्तथाशुभः। सर्वोजनो दानपात्रं श्रीमती जाह्नवीतटे
यथाऽश्वमेधो यज्ञानांनगानां हिमवान्यथा। व्रतानाञ्चयथा सत्यं दानानामभयंयथा
प्राणायामश्च तपसां मन्त्राणां प्रणवो यथा।
धर्माणामप्यहिंसा च काम्यानां श्रीर्यथा वरा ॥ ७१ ॥
यथात्मविद्याविद्यानां स्त्रीणां गौरीयथोत्तमा। सर्वदेवगणानाञ्चयथात्वं पुरुषोत्तम
सर्वेषामेव पात्राणां शिवभक्तो यथा वरः। तथा सर्वेषु तीर्थेषु गङ्गातीर्थंविशिष्यते
हरे! यश्चावयोर्भेदं न करोति महामतिः। शिवभक्तः सविज्ञेयो महापाशुपतश्च सः
पापपांसुमहावात्या पापद्रुमकुठारिका। पापेन्धनदवाग्निश्च गङ्गेयं पुण्यवाहिनी

नानारूपाश्च पितरो गाथा गायन्ति सर्वदा ।
अपि कश्चित्कुलेऽस्माकं गङ्गास्नायी भविष्यति ॥ ७६ ॥
देवर्षीन्परिसन्तर्प्य दीनानाथांश्च दुःखितान् ।
श्रद्धया विधिना स्नात्वा दास्यते सलिलाञ्जलिम् ॥ ७७ ॥
अपि नः स कुले भूयाच्छिवे विष्णौ च साम्यदृक् ।
तदालयकरोभक्त्या तस्य सम्मार्जनादिकृत् ॥ ७८ ॥

अकामोवासकामोवातिर्यग्योनिगतोऽपिवा । गङ्गायांयोमृतोमर्त्योनरकंसनपश्यति
तीर्थमन्यत्प्रशंसन्ति गङ्गातीरेस्थिताश्च ये । गङ्गांनबहुमन्यन्ते ते स्युर्निरयगामिनः
मां चत्वां चैवयोद्वेष्टि गङ्गांच पुरुषाधमः । स्वकीयैःपुरुषैःसार्धंसघोरं नरकं व्रजेत्
षष्टिर्गणसहस्राणि गङ्गां रक्षन्ति सर्वदा । अभक्तानाञ्च पापानां वासेविघ्नम्प्रकुर्वते
कामक्रोधमहामोहलोभादिनिशितैः शरैः । घ्नन्ति तेषांमनस्तत्रस्थितिंचापनयन्तिच
गङ्गां समाश्रयेद्यस्तुसमुनिः स चपण्डितः । कृतकृत्यः सविज्ञेयः पुरुषार्थचतुष्टये
गङ्गायाञ्च सकृत्स्नातो हयमेधफलं लभेत् । तर्पयंश्चपितृंस्तत्र तारयेन्नरकार्णवात्
नैरन्तर्येण गङ्गायांमासंयःस्नातिपुण्यवान् । शक्रलोके स वसतियावच्छक्रःसपूर्वजः

अब्दं यः स्नाति गङ्गायां नैरन्तर्येण पुण्यभाक् ।
विष्णोर्लोकं समासाद्य ससुखं संवसेन्नरः ॥ ८७ ॥

गङ्गायां स्नातियोमर्त्योयावज्जीवंदिने दिने । जीवन्मुक्तःसविज्ञेयोदेहान्तेमुक्तएवसः
तिथिनक्षत्रपूर्वादिनापेक्ष्यं जाह्नवीजले । स्नानमात्रेण गङ्गायां सञ्चिताघंविनश्यति

पण्डितोऽपि स मूर्खः स्याच्छक्तियुक्तोप्यशक्तिकः ।
यस्तु भागीरथीतीरं सुखसेव्यं न संश्रयेत् ॥ ९० ॥
किं वाऽऽयुषाऽप्यरोगेण विकासिन्याऽथ किं श्रिया ।
किंवा बुद्ध्या विमलया यदि गङ्गां न सेवते ॥ ९१ ॥

यः कारयेदायतनंगङ्गाप्रतिकृतेर्नरः । भुक्त्वा सभोगान्प्रेत्यापियातिगङ्गासलोकताम्
शृण्वन्तिमहिमानं ये गङ्गायानित्यमादरात् । गङ्गास्नानफलंतेषांवाचकप्रीणनाद्भवे

पितॄनुद्दिश्ययोलिङ्गं स्नपयेद्गाङ्गवारिणा । तृप्ताः स्युस्तस्यपितरोमहानिरयगाअपि
अष्टकृत्वो मन्त्रजप्तैर्वस्त्रपूतैःसुगन्धिभिः । प्रोचुर्गाङ्गजलैः स्नानंघृतस्नानाधिकंबुधाः
अष्टद्रव्यविमिश्रेण गङ्गातोयेन यः सकृत् । मागधप्रस्थमात्रेण ताम्रपात्रस्थितेन च
भानवेऽर्घं प्रदद्याच्चस्वकीयपितृभिः सह । सोऽतितेजो विमानेन सूर्यलोकेमहीयते
आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं मधुगवां दधि । रक्तानि करवीराणिरक्तचन्दनमित्यपि
अष्टाङ्गार्घोयमुद्दिष्टस्त्वतीव रवितोषणः ।
गाङ्गैर्वार्भिः कोटिगुणो ज्ञेयो विष्णोऽन्यवारितः ॥ ९९ ॥
गङ्गातीरे स्वशक्त्या यः कुर्याद्देवालयं सुधीः ।
अन्यतीर्थप्रतिष्ठातो भवेत्कोटिगुणं फलम् ॥ १०० ॥
अश्वत्थवटचूतादिवृक्षारोपेण यत्फलम् । कूपवापीतडागादिप्रपासत्रादिभिस्तथा
अन्यत्र यद्भवेत्पुण्यं तद्गङ्गादर्शनाद्भवेत् ।
पुष्पवाट्यादिभिश्चापि गङ्गास्पर्शं ततोऽधिकम् ॥ १०२ ॥
कन्यादानेन यत्पुण्यं यत्पुण्यं गोऽन्नदानतः ।
तत्पुण्यं स्याच्छतगुणं गङ्गागण्डूषपानतः ॥ १०३ ॥
चान्द्रायणसहस्रेणयत्पुण्यंस्याज्जनार्दन !। ततोऽधिकफलंगङ्गाऽमृतपानादवाप्नुयात्
भक्त्या गङ्गावगाहस्य किमन्यत्फलमुच्यते ।
अक्षयः स्वर्गवासोऽपि निर्वाणमथवा हरे !॥ १०५ ॥
गङ्गायाः पादुकायुग्मं नित्यमर्चति यो नरः ।
आयुः पुण्यं धनं पुत्रान्स्वर्गमोक्षौ च विन्दति ॥ १०६ ॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं कलिकल्मषनाशनम् । नास्ति मुक्तिप्रदं क्षेत्रमविमुक्तसमंहरे!
गङ्गास्नानरतं मर्त्यं दृष्ट्वैव यमकिङ्कराः ।
दिशो दश पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः ॥ १०८ ॥
गङ्गाभजनशीलस्य गङ्गातटनिवासिनः ।।अर्चां कृत्वायथान्यायमश्वमेधफलंलभेत् ॥
गोभूहिरण्यदानेन भक्त्या गङ्गातटे शुभे। नरो न जायते भूयः संसारे दुःखसङ्कटे ॥

दीर्घायुष्यञ्चवासोभिर्ज्ञानंपुस्तकदानतः । अन्नदानेन सम्पत्ति कीर्त्ति कन्याप्रदानतः
अन्यत्रयत्कृतंकर्मव्रतं दानं जपस्तपः । गङ्गातटे तु तत्सर्वं हरे ! कोटिगुणं भवेत्
धेनुं सवत्सां यो दद्याद्गङ्गातीरे विधानतः ।
गोरोमसंख्यया विष्णो! युगान्सर्वसमृद्धिमान् ॥ ११३ ॥
गोलोकेममलोकेवाकामधेनुव्रजावृतः । भुञ्जानःसर्वकामांस्तु दिव्यान्नानाविधान्बहून्
देवानामप्यलभ्यांश्च भुक्त्वातुसहबान्धवैः । पितृभिश्च सुहृद्भिश्च सर्वरत्नविभूषितः
जायते सत्कुलेपश्चाद्धनधान्यसमाकुले :। रत्नकाञ्चनसम्पन्ने शीलविद्यासमन्विते
भुक्त्वा स विपुलान् भोगान् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
पुनर्गङ्गां समासाद्य काश्यामुत्तरवाहिनीम् ॥ ११७ ॥
विश्वेश्वरंसमाराध्य प्राग्जनुर्वासनावशात् । कालाद्देहान्तमासाद्यब्रह्मसम्पद्यते ततः
विवर्तनद्वयमपिभूमेर्भागीरथीतटे । नरो ददाति यो भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु
तद्भूमित्रसरेणूनांसङ्ख्यययायुगमानया । महेन्द्रचन्द्रलोकेषुभुक्त्वाभोगान्मनःप्रियान्
सप्तद्वीपपतिर्भूत्वा महाधर्मपरायणः । नरकस्थान्पितॄन्सर्वान् प्रापयेत्त्रिदिवं हरे !
स्वर्गस्थांश्च पितॄन् सर्वान् मोचयित्वा महाद्युतिः ।
अन्ते ज्ञानासिना छित्त्वा ह्यविद्यां पाञ्चभौतिकीम् ॥ १२२ ॥
परं वैराग्यमापन्नो युञ्जानो योगमुत्तमम् । प्राप्याथवाविमुक्तञ्च परं ब्रह्माधिगच्छति
सुवर्णमात्रमपि यः सुवर्णं संप्रयच्छति । सुवर्णाय सुवर्णञ्च हरे ! भागीरथीतटे ॥
सहेमरत्नखचिते विमाने सर्वगे शुभे । सर्वैश्वर्यसमायुक्तः सर्वलोकेषु पूजितः ॥
ब्रह्माण्डान्तरसंस्थेषु भुञ्जन्भोगान्मनोरमान् ।
सर्वैः सम्पूजितो विष्णो ! यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १२६ ॥
एकराट् च ततोभूत्वाजम्बूद्वीपेप्रतापवान् । ततोऽविमुक्तमासाद्यपदंनिर्वाणमृच्छति
जन्मर्क्षे तु कृते स्नाने गङ्गायां भक्तिपूर्वकम् ।
जन्मप्रभृतिपापौघात्सञ्चितान्मुच्यते क्षणात् ॥ १२८ ॥
वैशाखे कार्त्तिकेमाघेगङ्गास्नानंसुदुर्लभम् । दर्शे शतगुणंपुण्यंसंक्रान्तौ च सहस्रकम्

चन्द्रसूर्यग्रहेलक्षंव्यतीपाते त्वनन्तकम् । अयुतं विषुवे चैव नियुतं त्वयनद्वये ॥
सोमग्रहः सोमदिने रविवारे रवेर्ग्रहः । तच्चूडामणिपर्वाख्यं तत्रस्नानमसङ्ख्यकम्
स्नानंदानंजपोहोमोयद्यच्चूडामणौकृतम् । तदक्षयंसर्वमिहविष्णो ! भागीरथीतटे
श्रद्धया भक्तियुक्तस्तु गङ्गां स्नात्वा विधानतः ।
ब्रह्महाऽपि विशुद्ध्येत किं पुनस्त्वन्यपातकी ॥ १३३ ॥
कृमिकीटपतङ्गाद्या येमृताजाह्नवीतटे । कूलात्पतन्तियेवृक्षास्तेपि यान्तिपरांगतिम्
ज्येष्ठेमासि सितेपक्षेदशम्यांहस्तसंयुते । गङ्गातीरे तु पुरुषो नारी वा भक्तिभावतः
निशायां जागरं कुर्याद्गङ्गां दशविधैर्हरे ! । पुष्पैः सुगन्धैर्नैवेद्यैः फलैर्दशदशोन्मितैः
प्रदीपैर्दशभिर्धूपैर्दशाङ्गैर्गरुडध्वज! । पूजयेच्छ्रद्धयाधीमान्दशकृत्वो विधानतः ॥ ३७
साज्यांस्तिलान्क्षिपेत्तोये गङ्गायाः प्रसृतीर्दश ।
गुडसक्तुमयान् पिण्डान्दद्याच्च दशमन्त्रतः ॥ १३८ ॥
नमःशिवायै प्रथमंनारायण्यै पदंततः । दशहरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एष वै ॥
स्वाहान्तःप्रणवादिश्चभवेद्विंशाक्षरो मनुः । पूजादानंजपोहोमोऽनेनैव मनुनास्मृतः
हेम्नारूप्येण वा शक्तया गङ्गामूर्त्तिं विधाय च ।
वस्त्राच्छादितवक्त्रस्य पूर्णकुम्भस्य चोपरि ॥ १४१ ॥
प्रतिष्ठाप्या 'येद्देवींपञ्चामृतविशोधिताम् । चतुर्भुजांत्रिनेत्राञ्च नदीनदनिषेविताम्
लावण्यामृतनिष्पन्दसंशीलद्गात्रयष्टिकाम् । पूर्णकुम्भसिताम्भोजवरदाभयसत्कराम्
ततो ध्यायेत्सुसौम्याञ्च चन्द्रायुतसमप्रभाम् ।
चामरैर्वीज्यमानाञ्च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम् ॥ १४४ ॥
सुधाप्लावितभूपृष्ठांदिव्यगन्धानुलेपनाम् । त्रैलोक्यपूजितपदांदेवर्षिभिरभिष्टुताम्
ध्यात्वा समर्च्यमन्त्रेणधूपदीपोपहारतः । मां च त्वाञ्चविधिंब्रध्नंहिमवन्तंभगीरथम्
प्रतिमाग्रे समभ्यर्च्यचन्दनाक्षतनिर्मिताम् । दशप्रस्थतिलान्दद्याद्दशविप्रेभ्यआदरात्
पलश्चकुडवःप्रस्थआढकोद्रोणएव च । धान्यमानेन बोद्धव्याः क्रमशोऽमीचतुर्गुणाः
मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान् । हंसकारण्डवबकचक्रटिट्टिभसारसान् ॥

यथाशक्तिस्वर्णरूप्यताम्रपृष्ठविनिर्मितान् । अभ्यर्च्यगन्धकुसुमैर्गङ्गायांप्रक्षिपेद्व्रती
एवंकृत्वाविधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । उपवासी वक्ष्यमाणैर्दशपापैःप्रमुच्यते ॥
अदत्तानामुपादानं हिंसाचैवाविधानतः । परदारोपसेवाचकायिकं त्रिविधंस्मृतम् ॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥
परद्रव्येष्वभिध्यानंमनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्चमानसंत्रिविधंस्मृतम्
एतैर्दशविधैः पापैर्दशजन्मसमुद्भवैः । मुच्यते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं गदाधर !॥
उद्धरेन्नरकात्पूर्वान्दशघोराद्दशावरान् । वक्ष्यमाणमिदं स्तोत्रं गङ्गाग्रे श्रद्धया जपेत्
ॐनमःशिवायैगङ्गायैशिवदायैनमोनमः । नमस्तेविष्णुरूपिण्यैब्रह्ममूर्त्त्यै नमोऽस्तुते
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमोनमः । सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्त्तये ॥

सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते ।
स्थास्नुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते ॥ १५६ ॥

संसारविषनाशिन्यै जीवनायैनमोऽस्तुते । तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यैते नमोनमः
शान्तिसन्तानकारिण्यैनमस्ते शुद्धमूर्त्तये । सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्त्तये ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यैभद्रदायैनमोनमः । भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तुते
मन्दाकिन्यैनमस्तेऽस्तुस्वर्गदायैनमोनमः । नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमोनमः ॥
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमोनमः । त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोनमः
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः । नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यैतेनमोनमः
बृहत्यैतेनमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यैनमोऽस्तुते । नमस्तेविश्वमित्रायैनन्दिन्यैतेनमोनमः
पृथ्व्यैशिवामृतायै च सुवृषायै नमोनमः । परापरशताढ्यायै तारायै ते न मोनमः
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायैनमोऽस्तुते । शान्तायै चवरिष्ठायै वरदायै नमोनमः
उग्रायै सुखजग्ध्यै चसञ्जीविन्यै नमोऽस्तुते । ब्रह्मिष्ठायैब्रह्मदायैदुरितघ्न्यै नमोनमः
प्रणतार्त्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तुते । सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमोनमः ॥
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे !। सर्वस्यार्तिहरे! देवि! नारायणि! नमोऽस्तुते ॥
निर्लेपायैदुर्गहन्त्र्यै दक्षायै तेनमोनमः । परापरपरायैच गङ्गे ! निर्वाणदायिनि ! ॥

गङ्गे!ममाऽग्रतोभूयागङ्गे!मेतिष्ठपृष्ठतः । गङ्गे!मेपार्श्वयोरेधिगङ्गे! त्वय्यस्तुमेस्थितिः
आदौत्वमन्तेमध्येचसर्वंत्वंगाङ्गते शिवे !। त्वमेव मूलंप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि
गङ्गे! त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमःशिवे !॥ १७४ ॥
यइदंपठते स्तोत्रं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽपियः । दशधामुच्यतेपापैःकायवाक्चित्तसम्भवैः
रोगस्थो रोगतो मुच्येद्विपद्भ्यश्च विपद्युतः ।
मुच्यते बन्धनाद् बद्धो भीतो भीतेः प्रमुच्यते ॥ १७६ ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य च त्रिदिवं व्रजेत् ।
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीपरिवीजितः ॥ १७७ ॥
गृहेऽपिलिखितंयस्यसदातिष्ठतिधारितम् । नाग्निचौरभयंतस्यनसर्पादिभयंक्वचित्
ज्येष्ठे मासे सितेपक्षे दशमीहस्तसंयुता । संहरेत्त्रिविधं पापं बुधवारेण संयुता ॥
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रंगङ्गाजलेस्थितः । यःपठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रोवापिचाक्षमः
सोऽपि तत्फलमाप्नोतिगङ्गांसंपूज्ययत्नतः । पूर्वोक्तेन विधानेनयत्फलंसंप्रकीर्तितम्
यथागौरीतथागङ्गातस्माद्गौर्यास्तुपूजने । योविधिर्विहितःसम्यक्सोपिगङ्गाप्रपूजने
यथाऽहं त्वंतथा विष्णोयथात्वन्तुतथाह्युमा । उमायथातथागङ्गाचतूरूपंन भिद्यते
विष्णुरुद्रान्तरं चैव श्रीगौर्योरन्तरंतथा । गङ्गागौर्यन्तरं चैव योब्रूते मूढधीस्तु सः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
गङ्गामहिमवर्णनपूर्वकंदशहरास्तोत्रकथनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

गङ्गामहिमवर्णनम्

उमोवाच

किञ्चित्प्रष्टुमनानाथ!स्वसन्देहापनुत्तये । वद खेदो यदि न ते त्रिकालज्ञानकोविद!॥
तथाभगीरथो राजाकक्कभागीरथीतदा । यदाविष्णुस्तपस्तेपेचक्रपुष्करिणीतटे ॥

शिव उवाच

सन्देहोऽत्रनकर्तव्योविशालाक्षि!सदाऽमले !। श्रुतौ स्मृतौ पुराणेषुकालत्रयमुदीर्यते
भूतंभाविभवच्चापिसंशयंमावृथाकृथाः । इत्युक्त्वापुनराहेशो गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥

अगस्त्य उवाच

पार्वतीनन्दन! पुनर्घु नद्याः परितो वद । महिमोक्तो हरौ यद्वद्देवदेवेन वै तदा ॥५ ॥

स्कन्द उवाच

मुनेऽत्र मैत्रावरुणे!यथादेवेन भाषितम् । शृणुत्रिपथगामिन्यामाहात्म्यंपातकापहम्
त्रिस्रोतसं समासाद्य सकृत्पिण्डान्ददाति यः ।
उद्धृताःपितरस्तेनभवाम्भोधेस्तिलोदकैः ॥ ७ ॥
यावन्तश्च तिलामर्त्यैर्गृहीताःपितृकर्मणि । तावद्वर्षसहस्राणि पितरः स्वर्गवासिनः
देवाःस पितरोयस्माद्गङ्गायांसर्वदास्थिताः । आवाहनंविसर्गश्चतेषां तत्र ततो नहि
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः
अजातदन्ता येकेचिद्ये च गर्भेप्रपीडिताः । अग्निविद्युच्चोरहता व्याघ्रदंष्ट्रिभिरेव च ॥
उद्बन्धनमृता ये च पतिता आत्मघातकाः ।
आत्मविक्रयिणश्चोरा ये तथाऽयाज्ययाजकाः ॥ १२ ॥
रसविक्रयिणोयेचयेचान्ये पापरोगिणः । अग्निदागरदाश्चैवगोघ्नाश्चैव स्ववंशजाः
असिपत्रवनेये च कुम्भीपाके च येगताः । रौरवेऽप्यन्धतामिस्रे कालसूत्रे च येगताः

जात्यन्तरसहस्रेषुभ्राम्यन्ते येस्वकर्मभिः । येतुपक्षिमृगादीनांकीटवृक्षादिवीरुधाम्

योनिं गतास्त्वसङ्ख्याताः सङ्ख्याता नामशोभनाः ।
प्रापिता यमलोकं तु सुघोरैर्यमकिङ्करैः ॥ १६ ॥
येऽबान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
येऽपि चाऽज्ञातनामानो ये चाऽपुत्राः स्वगोत्रजाः ॥ १७ ॥

विषेण च मृता वै ये ये वैश्शृङ्गिभिराहताः । कृतघ्नाश्च गुरुघ्नाश्च ये च मित्रद्रुहस्तथा
स्त्रीबालघातकाये च येच विश्वासघातकाः । असत्यहिंसानिरताः सदापापरताश्च ये
अश्वविक्रयिणोये च परद्रव्यहराश्चये । अनाथाःकृपणादीना मानुष्यं प्राप्तुमक्षमाः

तर्पिता जाह्नवीतोयैर्नरेण विधिना सकृत् ।
प्रयान्ति स्वर्गतिं तेऽपि स्वर्गिणो मुक्तिमाप्नुयुः ॥ २१ ॥

एतान्मन्त्रान्समुच्चार्ययःकुर्यात्पितृतर्पणम् । श्राद्धंपिण्डप्रदानञ्च संविधिज्ञ इहोच्यते

कामप्रदानि तीर्थानि त्रैलोक्ये यानि कानिचित् ।
तानि सर्वाणि सेवन्ते काश्यामुत्तरवाहिनीम् ॥ २३ ॥
स्वःसिन्धुःसर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।
काश्यां विशेषतो विष्णो यत्र चोत्तरवाहिनी ॥ २४ ॥

गायन्तिगाथामेतांवैदेवर्षिपितरोगणाः । अपिदृग्गोचरानः स्यात्काश्यामुत्तरवाहिनी
यत्रत्यामृतसंतृप्तास्तापत्रितयवर्जिताः । स्यामत्वमृतमेवाद्धा विश्वनाथप्रसादतः
गङ्गैवकेवला मुक्त्यैनिर्णीता परितोहरे । अविमुक्ते विशेषेणममाधिष्ठानगौरवात्

ज्ञात्वा कलियुगं घोरं गङ्गाभक्तिःसुगोपिता ।
न विन्दन्ति जना गङ्गां मुक्तिमार्गैकदायिकाम् ॥ २८ ॥

अनेकजन्मनियुतंभ्राम्यमाणस्तुयोनिषु । निर्वृतिंप्राप्नुयात्कोऽत्र जाह्नवीभजनंविना
नराणामल्पबुद्धीनामेनोविक्षिप्तचेतसाम् । गङ्गैव परमं विष्णो! भेषजं भवरोगिणाम्
खण्डस्फुटितसंस्कारंगङ्गातीरेकरोतियः । मम लोकेचिरंकालं तस्याऽक्षयसुखं हरे!
गन्तुमुद्दिश्ययोगङ्गां परार्थं स्वार्थमेववा । नगच्छतिपरं मोहात्स पतेत्पितृभिः सह

सर्वाणियेषांगाङ्गेयैस्तोयैःकृत्यानिदेहिनाम् । भूमिस्थाअपितेमर्त्याअमर्त्याएववैहरे!
चरमेऽपि वयोभागे स्वःसिन्धुं योनि षेवते ।
कृत्वाऽप्येनांसि बहुशः सोपि यायाच्छुभां गतिम् ॥ ३४ ॥
यावदस्थिमनुष्याणां गङ्गातोयेषुतिष्ठति । तावदब्दसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥

विष्णुरुवाच

देवदेवजगन्नाथ!जगतां हितकृत्प्रभो !। कीकसञ्चेत्पतेद्दैवाद्दुर्वृत्तस्य दुरात्मनः ॥
जलेद्युनद्यानिष्पापेकथं तस्य परागतिः । अपमृत्युविपन्नस्य तदीश!विनिवेद्यताम्॥

महेश्वर उवाच

अत्रार्थेकथयिष्यामिपुरावृत्तमधोक्षज !। शृणुष्वैकमनाविष्णो!वाहीकस्यद्विजन्मनः
पुरा कलिङ्गविषये द्विजो लवणविक्रयी । सन्ध्यास्नानविहीनश्चवेदाक्षरविवर्जितः
वाहीकोनामतोयज्ञसूत्रमात्रपरिग्रहः । परिग्रहश्चतस्यासीत्कौविन्दीविधवा नवा॥
दुर्भिक्षपीडितेनाऽथ वृषलीपतिना विना । प्राणाधारं तदा तेन देशाद्देशान्तरं ययौ
मध्येऽथदण्डकारण्यंक्षुत्क्षामःसङ्गवर्जितः । व्याघ्रेणघातितस्तत्र नरमांसप्रियेण सः
तस्य वामपदं गृध्रो गृहीत्वोदपतत्ततः । मांसाशिनाऽन्यगृध्रेणतस्य युद्धमभूद्दिवि॥
गृध्रयोरामिषंगृध्न्वोःपरस्परजयैषिणोः । अवाप तत्पादगुल्फं कंकचञ्चुपुटात्तदा ॥
तस्य वाहीकविप्रस्य व्याघ्रव्यापादितस्य ह ।
मध्येगङ्गं दैवयोगादपतद्यद् द्वन्द्वकारिणोः ॥ ४५ ॥
यदैव हतवान् द्वीपीतंवाहीकमरण्यगम् । तस्मिन्नेव क्षणेबद्धः सपाशैः क्रूरकिङ्करैः
कशाभिर्घातितोत्यन्तमाराभिः परितोदितः । वमन् रुधिरमास्येननीतस्तैःसयमाग्रतः
आपृच्छिधर्मराजेनचित्रगुप्तोऽथमापते !। धर्माधर्मंविचार्यास्यकथयाशुद्विजन्मनः ॥
वैवस्वतेन पृष्टोऽथचित्रगुप्तोविचित्रधीः । सर्वदा सर्वजन्तूनां वेदिता सर्वकर्मणाम्
जगाद यमुनाबन्धुं वाहीकस्य द्विजन्मनः । कर्मजन्मदिनारभ्य दुर्वृत्तस्य शुभेतरम्

चित्रगुप्त उवाच

गर्भाधानादिकं कर्म प्राक्कृतं नाऽस्य केनचित् ।

जातकर्मकृतं नाऽस्य पित्राऽज्ञानवता हरे ः।
गर्भैनः शमने हेतुः समस्तायुः सुखप्रदम् । एकादशेऽह्नि नामास्यनकृतं विधिपूर्वकम्
ख्यातः स्याद्येन विधिना सर्वत्र विधिपावनम् ।
नाकार्षीन्निर्गमं चाऽस्य चतुर्थे मासि मन्दधीः ॥ ५३ ॥
जनकः शुभतिथ्यादौ विदेशगमनापहम् । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासिनकृतं विधिपूर्वकम्
सर्वदामिष्टमश्नातिकर्मणा येन भास्करे !। न चूडाकरणं चास्य कृतमब्देयथाकुलम्
कर्मणा येन केशाः स्युः स्निग्धाः कुसुमवर्षिणः ।
नाऽकारि कर्णवेधोऽस्य जनित्रा समये शुभे ॥ ५६ ॥
सुवर्णग्राहिणौयेन कर्णौस्याताञ्चसुश्रुती । मौञ्जीबन्धोप्यभूदस्यव्यतीतेब्देऽष्टमेहरे!
ब्रह्मचर्याभिवृद्ध्यै यो ब्रह्मग्रहणहेतुकः ॥ ५७ ॥
मौञ्जीमोक्षणवार्ताऽपि कृता नास्य जनुः कृता ।
गार्हस्थ्यं प्राप्यते यस्मात्कर्मणोऽनन्तरं वरम् ॥ ५८ ॥
यथा कथञ्चिदूढाऽथपत्नीत्यक्तकुलाध्वगा । वृषलीपतिना तेन परदारापहारिणा ॥
आरभ्यपञ्चमाद्वर्षात्परस्वस्यापहारकः । अभूदेष दुराचारो दुरोदरपरायणः ॥ ६० ॥
रुमायां वसताऽनेन हता गौरेकवार्षिकी । एकदा दृढदण्डेन लिहन्ती लवणं मृता
जननीं पादघातेन बहुशोऽसावताडयत् । कदाचिदपि नो वाक्यं पितुः कृतमनेन वै
विषं भक्षितवानेष बहुशः कलहप्रियः । जनोपतापशीलोऽसौ कृतोदरविदारणः
धत्तूरकरवीरादि बहुधोपविषाणि च । क्रीडाकलहमात्रेण भक्षयच्चैष दुर्मतिः ॥
दग्धोऽसावग्निनासौरे!श्वभिश्चकवलीकृतः । शृङ्गिभिःपरितःप्रोतोविषाणाग्रैरसौबहु
दन्दशूकैर्भृशं दष्टो दुष्टः शिष्टैर्विगर्हितः । काष्ठेष्टलोष्टैः पापिष्ठः कृतानिष्टःसदात्मनः
आस्फालितं शिरोऽनेनासकृच्चापि दुरात्मना । यदर्च्यतेसदासद्भिरुत्तमाङ्गमनेकधा
असौ हि ब्राह्मणो मन्दो गायत्रीमपि वेद न ।
कामतो मत्स्यमांसानि जग्धान्येकेन दुर्धिया ॥ ६८ ॥
आत्मार्थं पायसमसौपर्यपाक्षीदनेकधा । लाक्षालवणमांसानां स पयोदधिसर्पिषाम्

विषलोहायुधानाञ्च दासीगोवाजिनामपि ।
विक्रेताऽसौ सदा मूढस्तथा वै केशचर्मणाम् ७० ॥
शूद्रान्नपरिपुष्टाङ्गः पर्वण्यहनि मैथुनी । पराङ्मुखो दैवपित्र्यकर्मण्येष दुरात्मवान् ॥
पक्षिणो घातितानेन मृगाश्चापि परः शतम् । अकारणद्रुमच्छेदीसदा निर्दयमानसः
उद्वेगजनको नित्यं निजबन्धुजनेष्वपि । असत्यवादी सततं सदाहिंसापरायणः ॥
अदत्तदानः पिशुनः शिश्नोदरपरायणः । किं बहूक्तेन रविज! साक्षात्पातकमूर्त्तिमान्
रौरवेऽप्यन्धतामिस्रे कुम्भीपाकेऽतिरौरवे । कालसूत्रेकृमिभुजि पूयशोणितकर्दमे
असिपत्रवने घोरे यन्त्रपीडे सुदंष्ट्रके । अधोमुखे पूतिगन्धे विष्ठागर्त्तेष्वभोजने ॥
सूचीभेद्येऽथसंदंशे लालापे क्षुरधारके । प्रत्येकं नरके त्वेव पात्यतां कल्पसङ्ख्यया
धर्मराजः समाकर्ण्यचित्रगुप्तमुखादिति । निर्भर्त्स्य तं दुराचारं किङ्करानादिदेशह
भ्रूसञ्ज्ञया हतैर्नीतःसवद्ध्वानिरयालयम् । आक्रन्दरावोयत्रोच्चैःपापिनांरोमहर्षणः

ईश्वर उवाच

यातनास्वतितीव्रासुवाहीकेसंस्थिते तदा । तत्कालपुण्यफलदे गाङ्गेयाम्भसिनिर्मले
पतितंतद्धि गृध्रास्याद्वाहीकस्यद्विजन्मनः । हरे! विमानं तत्कालमापन्नं सुरसद्मतः
घण्टावलम्बितं दिव्यं दिव्यस्त्रीशतसङ्कुलम् । आरुह्य देवयानं सदिव्यवेषधरोद्विजः
वीज्यमानोऽप्सरोवृन्दैर्दिव्यगन्धानुलेपनः । जगाम स्वर्गभुवनं गङ्गास्थिपतनाद्धरे

स्कन्द उवाच

वस्तुशक्तिविचारोऽयमद्भुतःकोऽपिकुम्भज !। द्रवरूपेणकाप्येषाशक्तिःसादाशिवीपरा
करुणामृतपूर्णेन देवदेवेन शम्भुना । एषा प्रवर्तिता गङ्गा जगदुद्धरणाय वै ॥ ८५॥
यथान्याः सरितोलोकेवारिपूर्णाःसहस्रशः । तथैषानानुमन्तव्यासद्भिस्त्रिपथगामिनी
श्रुत्यक्षराणिनिश्चोत्य कारुण्याच्छम्भुना मुने । निर्मितातद्द्रवैरेषागङ्गागङ्गाधरेणवै
योगोपनिषदामेतं सारमाकृष्य शङ्करः । कृपयासर्वजन्तूनांचकारसरिताम्वराम् ॥
अकलानिधयो रात्र्योविपुष्पाश्चैव पादपाः । यथा तथैव तेदेशायत्रनास्त्यमरापगा
अनयाः सम्पदो यद्वन्मखायद्वददक्षिणाः । तद्वद्देशादिशः सर्वाहीनागङ्गाम्भसाहरे !॥

व्योमाङ्गणमनर्कञ्च नक्तेऽदीपं यथागृहम् । अवेदाब्राह्मणा यद्वद्गङ्गाहीनास्तथादिशः

चान्द्रायणसहस्रन्तु यः कुर्याद्देहशोधनम् ।
गङ्गामृतं पिबेद्यस्तु तयोर्गङ्गाम्बुपोऽधिकः ॥ ९२ ॥

पादेनैकेनयस्तिष्ठेत्सहस्रं शरदांशतम् । अब्दंगङ्गाम्बुपो यस्तुतयोर्गङ्गाम्बुपोऽधिकः
अवाक्शिराः प्रलम्बेद्यः शतसंवत्सरान्नरः । भीष्मसूवालुकातलपशयस्तस्माद्वरोहरे
पापतापाभितप्तानां भूतानामिह जाह्नवी । पापतापहरायद्वद्गङ्गा नान्यत्तथाकलौ ॥

तार्क्ष्यवीक्षणमात्रेण फणिनो निर्विषा यथा ।
निष्प्रभाणि तथैनांसि भागीरथ्यवलोकनात् ॥ ९६ ॥
गङ्गातटोद्भवां मृत्स्नां यो मौलौ बिभृयान्नरः ।
बिभर्ति सोऽर्कबिम्बं वै तमोनाशायनिश्चितम् ॥ ९७ ॥

व्यसनैरभिभूतस्य धनहीनस्य पापिनः । गङ्गैव केवलं तस्य गतिरुक्ता नचान्यथा ॥
श्रुताऽभिलषिता दृष्टा स्पृष्टापीताऽवगाहिता । पुंसां वंशद्वयं गङ्गातारयेन्नात्रसंशयः
कीर्तनाद्दर्शनात्स्पर्शाद्गङ्गापानावगाहनात् । दशोत्तरगुणाज्ञेया पुण्यापुण्यर्धिनाशयोः

नसुतैर्न च वा वित्तैर्नान्येनाऽपि सुकर्मणा ।
तत्फलं प्राप्यते मर्त्यो गङ्गामाप्य यदाप्यते ॥ १०१ ॥
जात्यन्धाः पङ्गवस्ते वै जीवन्तोप्यथ ते मृताः ।
समर्था अपि ये गङ्गां न स्नायुर्मोक्षगर्भिणाम् ॥ १०२ ॥
श्रुतिं निशामय हरे! गङ्गामाहात्म्यभाषिणीम् ।
विनिश्चितार्थां यां श्रुत्वा श्रयेद्गङ्गां नरोत्तमः ॥ १०३ ॥
इरावतीं मधुमतीं पयस्विनीममृतरूपामूर्जस्वतीम् ।
त्रिदिवप्रसूतां गङ्गां श्रितासस्त्रिदिवं व्रजन्ति ॥ १०४ ॥
ऋषिजुष्टां विष्णुपदीं पुराणां सुपुण्यधारां मनसा, हि लोके ।
सर्वात्मना जाह्नवीं ये प्रपन्नास्ते ब्रह्मणःसदनं सम्प्रयान्ति ॥ १०५ ॥
लोकानिमान्नयति या जननीव पुत्रान्स्वर्गं सदा सर्वगुणोपपन्ना ।

स्थानमिष्टं ब्राह्मनभीप्समानैर्गङ्गा सदैवाऽऽत्मवशैरुपास्या ॥ १०६ ॥
उस्रैर्जुष्टा मिषतीं विश्वरूपामिरावतीं जनयित्रीं गुहस्यशिष्टैः ।
सेव्याममृतां ब्रह्मकान्तां गङ्गां श्रयेदात्मविशुद्धिकामः ॥ १०७ ॥
गङ्गायान्तुनरः स्नात्वा ब्रह्मचारीसमाहितः । विधूतपापोभवतिवाजपेयञ्च विन्दति
अशुभैः कर्मभिर्ग्रस्तान्मज्जमानान्महार्णवे । पततो निरये गङ्गा संश्रितानुद्धरेत्सदा ॥
ब्रह्मलोकस्तु लोकानां सर्वेषामुत्तमो यथा । सरितांसरसांवापिवरिष्ठाजाह्नवी तथा
अन्यत्र सम्यक्सङ्कल्प्य तपः कृत्वा समात्रयम् ।
यत्फलं तद्भवेद्भक्तया गङ्गायां घटिकाऽर्धतः ॥ १११ ॥
स्वर्गस्थस्यनसाप्रीतिर्भुञ्जतःसुखमक्षयम् । यास्याद्गङ्गातटेपुंसांरात्रौचन्द्रोदयेसति
जरारोगाभिपन्नन्तु कुणपञ्जाह्नवीजले । धैर्येण तृणवत्त्यक्त्वा प्रविशेदमरावताम्
वार्यौघैः सततं यस्याः प्लाव्यते शशिमण्डलम् ।
भूयोऽधिकतरां शोभां विभर्ति तदहःक्षये ॥ ११४ ॥
आप्लुतस्यजलेयस्याःसद्योनश्यतिपातकम् । महतःश्रेयसःप्राप्तिस्तत्क्षणादेवजायते
पितृभ्यःश्रद्धयायत्रदत्तास्त्वापःस्ववंशजैः । प्रयच्छन्तिपरां तृप्तिं शरदां त्रयमच्युत!
तारयेत्क्षितियान्मर्त्यानधस्थांश्च सरीसृपान् ।
स्वर्गे स्वर्गे सदो विष्णो! गङ्गा त्रिपथगा ततः ॥ ११७ ॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं सरितामुत्तमासरित् । स्वर्गदा सर्वजन्तूनां महापातकिनामपि
अध्युष्टाः कोटयो विष्णो सन्ति तीर्थानि सर्वतः ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च जाह्नव्यां तानि कृत्स्नशः ॥ ११६ ॥
ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च गङ्गायांयःपञ्चत्वमवाप्नुयात् ।
अनात्मघाती स्वर्गी स्यान्नरकान्स न पश्यति ॥ १२० ॥
गङ्गैवसर्वतीर्थानि गङ्गैव च तपोवनम् । गङ्गैवसिद्धिक्षेत्रं हि नात्र कार्या विचारणा
यत्रकामफलावृक्षा महीयत्रहिरण्मयी । जाह्नवीस्नायिनस्तत्र निवसन्ति घटोद्भव!
धेनुं भागीरथीतीरे सुशीलाञ्चपयस्विनीम् । वासोरत्नैरलंकृत्वाब्राह्मणायददातियः

यावन्ति तस्या लोमानिमुनेतत्सन्ततेरपि । तावद्वर्षसहस्राणिसस्वर्गसुखभुग्भवेत्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे गङ्गामहिमवर्णनंनामाऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—:*:—

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

गङ्गासहस्रनामवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

विना स्नानेन गङ्गायां नृणां जन्म निरर्थकम् ।
उपायान्तरमस्त्यन्यद्येन स्नानफलं लभेत् ॥ १ ॥
अशक्तानाञ्च पङ्गूनामालस्योपहतात्मनाम् ।
दूरदेशान्तरस्थानां गङ्गास्नानं कथं भवेत् ॥ २ ॥
दानं वाऽथव्रतंवाथमन्त्रःस्तोत्रंजपोऽथवा । तीर्थान्तराभिषेकोवादेवतोपासनन्तुवा
यद्यस्तिकिञ्चित्षड्वक्त्र! गङ्गास्नानफलप्रदम् । विधानान्तरमात्रेण तद्वदप्रणतायमे
त्वत्तो न वेद स्कन्दान्यो गङ्गागर्भसमुद्भव !। परं स्वर्गतरङ्गिण्या महिमानंमहामते

स्कन्द उवाच

सन्ति पुण्यजलानीह सरांसि सरितो मुने !।
स्थाने स्थाने च तीर्थानि जितात्माध्युषितानि च ॥ ६ ॥
दृष्टप्रत्ययकारीणिमहामहिमभाञ्ज्यपि । परंस्वर्गतरङ्गिण्याःकोट्यंशोपि न तत्र वै
अनेनैवानुमानेन बुद्ध्यस्व कलशोद्भव !। दध्रे गङ्गोत्तमाङ्गेन देवदेवेन शम्भुना ॥ ८॥
स्नानकालेऽन्यतीर्थेषु जप्यतेजाह्नवीजनैः । विनाविष्णुपदीं क्वान्यत्समर्थमघमोचने
गङ्गास्नाफलंब्रह्मन्गङ्गायामेव लभ्यते । यथा द्राक्षाफलस्वादो द्राक्षायामेवनान्यतः
अस्त्युपायइहत्वेकः स्याद्येनाविकलं फलम् । स्नानस्यदेवसरितोमहागुह्यतमो मुने!

शिवभक्ताय शान्तायविष्णुभक्तिपराय च । श्रद्धालवेत्वास्तिकायगर्भवासमुमुक्षवे
कथनीयं न चान्यस्य कस्यचित्केनचित्कचित् ।
इदं रहस्यं परमं महापातकनाशनम् ॥ १३ ॥
महाश्रेयस्करं पुण्यं मनोरथकरं परम् । द्युनदीप्रीतिजनकं शिवसन्तोषसन्तति ॥
नाम्नां सहस्रं गङ्गायाःस्तवराजेषुशोभनम् । जप्यानांपरमंजप्यंवेदोपनिषदासमम्
जपनीयं प्रयत्नेन मौनिना वाचकं विना । शुचिस्थानेषु शुचिना सुस्पष्टाक्षरमेव च

स्कन्द उवाच

ॐनमो गङ्गादेव्यै

ॐकाररूपिण्यजराऽतुलाऽनन्ताऽमृतस्रवा ।
अत्युदाराऽभयाऽशोकाऽलकनन्दाऽमृता १०ऽमला ॥ १७ ॥
अनाथवत्सलाऽमोघाऽपांयोनिरमृतप्रदा ।
अव्यक्तलक्षणाऽक्षोभ्याऽनवच्छिन्नाऽपराऽजिता २० ॥ १८ ॥
अनाथनाथाऽभीष्टार्थसिद्धिदाऽनङ्गवर्धिनी ।
अणिमादिगुणाधाराऽग्रगण्याऽलीकहारिणी ॥ १६ ॥
अचिन्त्यशक्तिरनघाऽद्भुतरूपा ३०ऽघहारिणी ।
अद्रिराजसुताऽष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदाऽच्युता ॥ २० ॥
अक्षुण्णशक्तिरसुदाऽनन्ततीर्थाऽमृतोदका ।
अनन्तमहिमाऽपारा ४० ऽनन्तसौख्यप्रदाऽन्नदा ॥ २१ ॥
अशेषदेवतामूर्त्तिरघोराऽमृतरूपिणी । अविद्याजालशमनी ह्यप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥ २२
अशेषविघ्नसंहर्त्री त्वशेषगुणगुम्फिता । अज्ञानतिमिरज्योति ५०रनुग्रहपरायणा ॥
अभिरामाऽनवद्याङ्ग्यनन्तसाराऽकलङ्किनी ।
आरोग्यदाऽऽनन्दवल्ली त्वापन्नार्तिविनाशिनी ॥ २४ ॥
आश्चर्यमूर्त्तिरायुष्या६० ह्याढ्याऽऽद्याऽऽप्राऽऽर्यसेविता ।
आप्यायिन्याप्तविद्याऽऽख्या त्वानन्दाऽऽश्वासदायिनी ॥ २५ ॥

आलस्यघ्न्या७० पदांहन्त्री ह्यानन्दामृतवर्षिणी ।
इरावतीष्टदात्रीष्टा त्विष्टापूर्त्तफलप्रदा ॥ २९ ॥
इतिहासश्रुतीड्यार्थात्विहामुत्रशुभप्रदा। इज्याशीलसमिज्येष्ठात्विन्द्रादिपरिवन्दिता
इलालङ्कारमालेद्धा त्विन्दिरारम्यमन्दिरा । इदिन्दिरादिसंसेव्यात्वीश्वरीश्वरवल्लभा
ईतिभीतिहरेड्याचत्वीडनीयचरित्रभृत् ९० । उत्कृष्टशक्तिरुत्कृष्टोडुपमण्डलचारिणी
उदिताम्बरमार्गोस्रोरगलोकविहारिणी । उक्षोर्वरोत्पलोत्कुम्भा१००उपेन्द्रचरणद्रवा
उदन्वत्पूर्तिहेतुश्चोदारोत्साहप्रवर्धिनी । उद्वेगघ्न्युष्णशमनी उष्णरश्मिसुतप्रिया
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण्युपरिचारिणी ।
ऊर्जंवह११०न्त्यूर्जधरोर्जावती चोर्मिमालिनी ॥ ३२ ॥
ऊर्ध्वरेतःप्रियोर्ध्वाध्वाह्यूर्मिलोर्ध्वगतिप्रदा ।
ऋषिवृन्दस्तुतर्द्धिश्च ऋणत्रयविनाशिनी १२० ॥ ३३ ॥
ऋतम्भरर्द्धिदात्री च ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया । ऋक्षमार्गवहर्क्षार्चिर्ऋजुमार्गप्रदर्शिनी
एधिताऽखिलधर्मार्था त्वेकैकामृतदायिनी १३० ।
एधनीयस्वभावेज्या त्वेजिताशेषपातका ॥ ३५ ॥
ऐश्वर्यदैश्वर्यरूपा ह्यैतिह्यं ह्यैन्दवीद्युतिः ।
ओजस्विन्योषधीक्षेत्रमोजोदौ १४०‘दनदायिनी ॥ ३६ ॥
ओष्ठामृतौन्नत्यदात्री त्वौषधम्भवरोगिणाम् ।
औदार्यचञ्चुरौपेन्द्री त्वौग्री ह्यौमेयरूपिणी ॥ ३७ ॥
अम्बराध्ववहाऽम्बष्ठा १५० म्बरमालाऽम्बुजेक्षणा ।
अम्बिकाऽम्बुमहायोनिरन्धोदाऽन्धकहारिणी ॥ ३८ ॥
अंशुमालाह्यंशुमतीत्वङ्गीकृतषडानना । अन्धतामिस्रहन्त्र्य १६० न्धुरञ्जनाह्यञ्जनावती
कल्याणकारिणी काम्या कमलोत्पलगन्धिनी ।
कुमुद्वती कमलिनी कान्तिः कल्पितदायिनी १७० ॥ ४० ॥
काञ्चनाक्षी कामधेनुःकीर्त्तिकृत्क्लेशनाशिनी । क्रतुश्रेष्ठाक्रतुफला कर्मबन्धविभेदिनी

कमलाक्षीक्लमहराकृशानुतपनद्युतिः १८० । करुणार्द्राचकल्याणीकलिकल्मषनाशिनी
कामरूपा क्रियाशक्तिःकमलोत्पलमालिनी ।
कूटस्था करुणा कान्ता कूर्मयाना १९० कलावती ॥ ४३ ॥
कमलाकल्पलतिका कालीकलुषवैरिणी । कमनीयजला कम्रा कपर्दिसुकपर्दगा ॥
कालकूटप्रशमनीकदम्बकुसुमप्रिया२०० ।कालिन्दीकेलिललिताकलकल्लोलमालिका
क्रान्तलोकत्रया कण्डूःकण्डूतनयवत्सला ।
खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खण्डेन्दुधारिणी २१० ॥ ४५ ॥
खेखेलगामिनी खस्था खण्डेन्दुतिलकप्रिया ।
खेचरी खेचरीवन्द्या ख्यातिः ख्यातिप्रदायिनी ॥ ४७ ॥
खण्डितप्रणताघौघा खलबुद्धिविनाशिनी ।
खातैनः कन्दसन्दोहा २२० खड्गखट्वाङ्गखेटिनी ॥ ४८ ॥
खरसन्तापशमनी खनिः पीयूषपाथसाम् । गङ्गा गन्धवती गौरी गन्धर्वनगरप्रिया
गम्भीराङ्गी गुणमयी गतातङ्का २३० गतिप्रिया ।
गणनाथाम्बिका गीता गद्यपद्यपरिष्टुता ॥ ५० ॥
गान्धारीगर्भशमनीगतिभ्रष्टगतिप्रदा । गोमतीगुह्यविद्यागौः२४० गोप्त्रीगगनगामिनी
गोत्रप्रवर्धिनी गुण्या गुणातीता गुणाग्रणीः ।
गुहाम्बिका गिरिसुता गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा ॥ ५२ ॥
गुणनीयचरित्रा २५० चगायत्रीगिरिशप्रिया । गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरववर्धिनी
ग्रहपीडाहरा गुन्द्रा गरघ्नी गानवत्सला २६० । घर्महन्त्री घृतवती घृततुष्टिप्रदायिनी
घण्टारवप्रियाघोराऽघौघविध्वंसकारिणी । घ्राणतुष्टिकरी घोषा घनानन्दाघनप्रिया
घातुका २७० घूर्णितजला घृष्टपातकसन्ततिः । घटकोटिप्रपीतापा घटिताशेषमङ्गला
घृणावतीघृणिनिधिर्घस्मरा घूकनादिनी । घुसृणापिञ्जरतनुर्घर्घरा २८० घर्घरस्वना
चन्द्रिका चन्द्रकान्ताम्बुश्चञ्चदापा चलद्युतिः ।
चिन्मयी चितिरूपा च चन्द्रायुतशतानना ॥ ५८ ॥

चाम्पेयलोचना चारु २९० आर्वङ्गी चारुगामिनी ।
चार्या चारित्रनिलया चित्रकृच्चित्ररूपिणी ॥ ५९ ॥
चम्पूश्चन्दनशुच्यम्बुश्चर्चनीया चिरस्थिरा ३०० ।
चारुचम्पकमालाढ्या चमिताशेषदुष्कृता ॥ ६० ॥
चिदाकाशवहाचिन्त्याचञ्चच्चामरवीजिता । चोरिताशेषवृजिना चरिताशेषमण्डला
छेदिताखिलपापौघाछद्मघ्नी३१०छलहारिणी । छन्नत्रिविष्टपतलाछोटिताशेषबन्धना
छुरितामृतधारौघा छिन्नैनाश्छन्दगामिनी । छत्रीकृतमरालौघा छटीकृतनिजामृता
जाह्नवी ज्या ३२० जगन्माता जप्या जङ्घालवीचिका ।
जया जनार्दनप्रीता जुषणीया जगद्धिता ॥ ६४ ॥
जीवनं जीवनप्राणा जग ३३० ज्ज्येष्ठा जगन्मयी ।
जीवजीवातुलतिका जन्मिजन्मनिबर्हिणी ॥ ६५ ॥
जाड्यविध्वंसनकरी जगद्योनिर्जलाविला । जगदानन्दजननी जलजा जलजेक्षणा
जनलोचनपीयूषा जटातटविहारिणी । जयन्ती जञ्जपूकघ्नी जनितज्ञानविग्रहा ॥
झल्लरीवाद्यकुशलाझलज्झालजलावृता । झिण्टीशवन्द्याझाङ्कारकारिणी झर्झरावती
टीकिताशेषपाताला टङ्किकैनोद्रिपाटने । टङ्कारनृत्यत्कल्लोला टीकनीयमहातटा ॥
डम्बरप्रवहा डीनराजहंसकुलाकुला । डमड्डमरुहस्ता च डामरोक्तमहाण्डका ॥७०॥
ढौकिताशेषनिर्वाणा ढक्कानादचलज्जला३६० ।
ढुण्ढिविघ्नेशजननी ढणड्ढुणितपातका ॥ ७१ ॥
तपणीतीर्थतीर्था चत्रिपथात्रिदशेश्वरी । त्रिलोकगोप्त्रीतोयेशीत्रैलोक्यपरिवन्दिता
तापत्रितयसंहर्त्री ३७० तेजोबलविवर्धिनी । त्रिलक्षातारणीतारातारापतिकरार्चिता
त्रैलोक्यपावनी पुण्या तुष्टिदा तुष्टिरूपिणी ।
तृष्णाछेत्री तीर्थमाता ३८० त्रिविक्रमपदोद्भवा ॥ ७४ ॥
तपोमयी तपोरूपा तपस्तोमफलप्रदा । त्रैलोक्यपावनी तृप्तिस्तृप्तिकृत्तत्वरूपिणी ॥
त्रैलोक्यसुन्दरी तुर्या ३९० तुर्यातीतपदप्रदा ।

त्रैलोक्यलक्ष्मीस्त्रिपदी तथ्या तिमिरचन्द्रिमा ॥ ७६ ॥
तेजोगर्भा तपःसारा त्रिपुरारिशिरोगृहा ।
त्रयीस्वरूपिणी तन्वी ४०० तपनाङ्गजभीतिनुत् ॥ ७७ ॥
तरिस्तरणिजामित्रन्तर्पिताशेषपूर्वजा । तुलाविरहिता तीव्रपापतूलतनूनपात् ॥
दारिद्र्यदमनी दक्षा दुष्प्रेक्षा दिव्यमण्डना ४१० ।
दीक्षावती दुरावाप्या द्राक्षामधुरवारिभृत् ॥ ७९ ॥
दर्शितानेककुतुका दुष्टदुर्जयदुःखहृत् । दैत्यहृद्दुरितघ्नी च दानवारिपदाब्जजा ॥
दन्दशूकविषघ्नी चदारिताघौघसंततिः ४२० । द्रुतादेवद्रुमच्छन्नादुर्वाराघविघातिनी
दमग्राह्या देवमातादेवलोकप्रदर्शिनी । देवदेवप्रियादेवी दिक्पालपददायिनी ॥ ८२ ॥
दीर्घायुःकारिणी ४३० दीर्घा दोग्ध्री दूषणवर्जिता ।
दुग्धाम्बुवाहिनी दोह्या दिव्या दिव्यगतिप्रदा ॥ ८३ ॥
द्युनदीदीनशरणंदेहिदेहनिवारिणी ४४० । द्राघीयसीदाघहन्त्रीदितपातकसन्ततिः ॥
दूरदेशान्तरचरी दुर्गमा देववल्लभा । दुर्वृत्तघ्नी दुर्विगाह्या दयाधारा दयावती ४५०
दुरासदादानशीला द्राविणीद्रुहिणस्तुता । दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री दुर्बुद्धिहारिणी
दानसारादयासाराद्यावाभूमिविगाहिनी । दृष्टादृष्टफलप्राप्ति ४६० दैवता वृन्दवन्दिता
दीर्घव्रता दीर्घदृष्टिर्दीप्ततोया दुरालभा । दण्डयित्री दण्डनीतिर्दुष्टदण्डधरार्चिता
दुरोदरघ्नीदावार्चि ४७० र्द्रवद्द्रव्यैकशेवधिः । दीनसंतापशमनी दात्रीदवथुवैरिणी
दरीविदारणपरादान्तादान्तजनप्रिया । दारिताद्रितटादुर्गा ४८० दुर्गारण्यप्रचारिणी
धर्मद्रवा धर्मधुराधेनुर्धीराधृतिर्ध्रुवा । धेनुदानफलस्पर्शा धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ९१ ॥
धर्मोर्मिवाहिनी ४९० धुर्या धात्रीधात्रीविभूषणम् ।
धर्मिणी धर्मशीला च धन्विकोटिकृतावना ॥ ९२ ॥
ध्यातृपापहराध्येयाधावनीधूतकल्मषा ५०० । धर्मधारा धर्मसारा धनदाधनवर्धिनी ॥
धर्माधर्मगुणच्छेत्री धत्तूरकुसुमप्रिया । धर्मेशी धर्मशास्त्रज्ञा धनधान्यसमृद्धिकृत् ॥
धर्मलभ्या ५१० धर्मजलाधर्मप्रसवधर्मिणी । ध्यानगम्यस्वरूपाचधरणी धातृपूजिता

धूर्धूर्जटिजटासंस्था धन्या धीर्धारणावती ५३० ।
नन्दा निर्वाणजननी नन्दिनी नुन्नपातका ॥ ९६ ॥
निषिद्धविघ्ननिचया निजानन्दप्रकाशिनी । नभोङ्गणचरीनूतिर्नम्यानारायणी५३०नुता
निर्मलानिर्मलाख्यानानाशिनीतापसंपदाम् । नियतानित्यसुखदानानाश्चर्यमहानिधिः
नदीनदसरोमातानायिका५४०नाकदीर्घिका । नष्टोद्धरणधीराच नन्दनानन्ददायिनी ॥
निर्णिक्ताशेषभुवना निःसङ्गा निरुपद्रवा ।
निरालम्बा निष्प्रपञ्चा निर्णाशितमहामला ५५० ॥ १०० ॥
निर्मलज्ञानजननी निःशेषप्राणितापहृत् । नित्योत्सवानित्यतृप्ता नमस्कार्यानिरञ्जना
निष्ठावतीनिरातङ्कानिर्लेपानिश्चलात्मिका५६० । निरवद्यानिरीहाचनीललोहितमूर्धगा
नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्यानागानन्दानगात्मजा । निष्प्रत्यूहानाकनदी निरयार्णवदीर्घनौः
पुण्यप्रदापुण्यगर्भा पुण्यापुण्यतरङ्गिणी । पृथुःपृथुफलापूर्णाप्रणतार्त्तिप्रभञ्जिनी
प्राणदा प्राणिजननी ५८० प्राणेशी प्राणरूपिणी ।
पद्मालया पराशक्तिः पुरजित्परमप्रिया ॥ १०५ ॥
परापरफलप्राप्तिः पावनी च पयस्विनी । परानन्दा ५९० प्रकृष्टार्थाप्रतिष्ठापालनीपरा
पुराणपठिता प्रीता प्रणवाक्षररूपिणी । पार्वती प्रेमसम्पन्ना पशुपाशविमोचनी६००
परमात्मस्वरूपा च परब्रह्मप्रकाशिनी । परमानन्दनिष्पन्दा प्रायश्चित्तस्वरूपिणी ॥
पानीयरूपनिर्वाणा परित्राणपरायणा । पापेन्धनदवज्वाला पापारिः पापनामनुत् ॥
परमैश्वर्यजननी ६१० प्रज्ञा प्राज्ञा परापरा । प्रत्यक्षलक्ष्मीः पद्माक्षीपरव्योमामृतस्रवा
प्रसन्नरूपा प्रणिधिः पूता प्रत्यक्षदेवता ६२० ।
पिनाकिपरमप्रीता परमेष्ठिकमण्डलुः ॥ १११ ॥
पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता पद्ममालिनी । परर्धिदा पुष्टिकरी पथ्या पूर्तिः प्रभावती
पुनाना ६३० पीतगर्भघ्नी पापपर्वतनाशिनी ।
फलिनी फलहस्ता च फुल्लाम्बुजविलोचना ॥ ११३ ॥
फालितैनोमहाक्षेत्रा फणिलोकविभूषणम् । फेनच्छलप्रणुन्नैनाः फुल्लकैरवगन्धिनी

फेनिलाच्छाम्बुधाराभा ६४० फुडुच्चाटितपातका ।
फाणितस्वादुसलिला फाण्टपथ्यजलाविला ॥ ११५ ॥
विश्वमाता च विश्वेशी विश्वा विश्वेश्वरप्रिया ।
ब्रह्मण्या ब्रह्मकृद् ब्राह्मी ६५० ब्रह्मिष्ठा विमलोदका ॥ ११६ ॥
विभावरी घविरजाविक्रान्तानेकविष्टपा । विश्वमित्रंविष्णुपदीवैष्णवीवैष्णवप्रिया
विरूपाक्षप्रियकरी ६६० विभूतिर्विश्वतोमुखी । विपाशावैबुधीवेद्यावेदाक्षररसस्रवा
विद्या वेगवती वन्द्या बृंहणी ६७० ब्रह्मवादिनी ।
वरदा विप्रकृष्टा च वरिष्ठा च विशोधनी ॥ ११६ ॥
विद्याधरी विशोका च वयोवृन्दनिषेविता ।
बहूदका बलवती ६८० व्योमस्था विबुधप्रिया ॥ १२० ॥
घार्णा वेदवती वित्ताब्रह्मविद्यातरङ्गिणी । ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुर्ब्रह्महत्यापहारिणी
ब्रह्मेशविष्णुरूपा च बुद्धि ६६० र्विभववर्धिनी ।
विलासिसुखदा वैश्या व्यापिनी च वृषारणिः ॥ १२२ ॥
वृषाङ्कमौलिनिलया विपन्नार्तिप्रभञ्जिनी ।
विनीता विनता ब्रध्नतनया ७०० विनयान्विता ॥ १२३ ॥
विपञ्ची वाद्यकुशला वेणुश्रुतिविचक्षणा । वर्चस्करी बलकरी बलोन्मूलितकल्मषा
विपाप्मा विगतातङ्का विकल्पपरिवर्जिता ७१० ।
वृष्टिकर्त्री वृष्टिजला विधिर्विच्छिन्नबन्धना ॥ १२५ ॥
व्रतरूपा वित्तरूपा बहुविघ्नविनाशकृत् ।
वसुधारा वसुमती विचित्राङ्गी ७२० विभावसुः ॥ १२६ ॥
विजंया विश्वबीजश्चवामदेवी वरप्रदा । वृषाश्रिताविषघ्नी च विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी
भव्या भोगवती ७३० भद्रा भवानी भूतभाविनी ।
भूतधात्री भयहरा भक्तदारिद्र्यघातिनी ॥ १२८ ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा भेशी भक्तस्वर्गापवर्गदा ।

भागीरथी ७४० भानुमती भाग्यं भोगवतीभृतिः ॥ १२९ ॥
भवप्रिया भवद्वेष्ट्री भूतिदा भूतिभूषणा ।
भाललोचनभावज्ञा भूतभव्यभवत्प्रभुः ७५० ॥ १३० ॥
भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा । भूरिदा भक्तिसुलभाभाग्यवद्दृष्टिगोचरी
भञ्जितोपप्लवकुला भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा ।
भिक्षणीया भिक्षुमाता भावा ७६० भावस्वरूपिणी ॥ १३२ ॥
मन्दाकिनी महानन्दा मातामुक्तितरङ्गिणी । महोदया मधुमती महापुण्या मुदाकरी
मुनिस्तुता ७७० मोहहन्त्री महातीर्था मधुस्रवा ।
माधवी मानिनी मान्या मनोरथपथातिगा ॥ १३४ ॥
मोक्षदा मतिदा मुख्या ७८० महाभाग्यजनाश्रिता ।
महावेगवती मेध्या महामहिमभूषणा ॥ १३५ ॥
महाप्रभावामहतीमीनचञ्चललोचना । महाकारुण्यसम्पूर्णामहर्द्धि ७९० श्चमहोत्पला
मूर्तिमन्मुक्तिरमणी मणिमाणिक्यभूषणा । मुक्ताकलापनेपथ्या मनोनयननन्दिनी
महापातकराशिघ्नीमहादेवार्धहारिणी । महोर्मिमालिनीमुक्ता ८००महादेवामनोन्मनी
महापुण्योदयप्राप्यामायातिमिरचन्द्रिका । महाविद्या महामाया महामेधामहौषधम्
मालाधरी महोपाया ८१० महोरगविभूषणा । महामोहप्रशमनी महामङ्गलमङ्गलम्
मार्तण्डमण्डलचरी महालक्ष्मीर्मदोज्झिता ।
यशस्विनी यशोदा च योग्या युक्तात्मसेविता ८२० ॥ १४१ ॥
योगसिद्धिप्रदा याज्या यज्ञेशपरिपूरिता । यज्ञेशी यज्ञफलदा यजनीया यशस्करी
यमिसेव्या योगयोनिर्योगिनी ८३० युक्तबुद्धिदा ।
योगज्ञानप्रदा युक्ता यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक् ॥ १४३ ॥
यन्त्रिताघौघसञ्चारा यमलोकनिवारिणी । यातायातप्रशमनी यातनानामकृन्तनी
यामिनीशहिमाच्छोदा युगधर्मविवर्जिता ८४० रेवतीरतिकृद्रम्यारत्नगर्भारमारतिः
रत्नाकरप्रेमपात्रं रसज्ञारसरूपिणी । रत्नप्रासादगर्भा च ८५० रमणीयतरङ्गिणी॥

नार्चीरुद्ररमणी रागद्वेषविनाशिनी । रमा रामा रम्यरूपा रोगिजीवातुरूपिणी ॥
रुचिकृद्रोचनी ८६० रम्या रुचिरा रोगहारिणी ।
राजहंसा रत्नवती राजत्कल्लोलराजिका ॥ १४८ ॥
रामणीयकरेखा च रुजारी रोगरोषिणी ।
राका ८७० रङ्कार्तिशमनी रम्या रोलम्बराविणी ॥ १४९ ॥
रागिणीरञ्जितशिवारूपलावण्यशेवधिः । लोकप्रसूर्लोकवन्द्यालोलत्कल्लोलमालिनी
लीलावती ८८० लोकभूमिर्लोकलोचनचन्द्रिका ।
लेखस्रवन्ती लटभा लघुवेगालघुत्वहृत् ॥ १५१ ॥
लास्यत्तरङ्गहस्ता च ललिता लयभङ्गिगा ।
लोकबन्धु ८९० र्लोकधात्री लोकोत्तरगुणोर्जिता ॥ १५२ ॥
लोकत्रयहिता लोका लक्ष्मीर्लक्षणलक्षिता ।
लीलालक्षितनिर्वाणा लावण्याऽमृतवर्षिणी ॥ १५३ ॥
वैश्वानरी ९०० वासवेड्या वन्ध्यत्वपरिहारिणी ।
वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी वज्रिवज्रनिवारिणी ॥ १५४ ॥
शुभावती शुभफला शान्तिः शान्तनुवल्लभा ।
शूलिनी शैशववयाः ९१० शीतलाऽमृतवाहिनी ॥ १५५ ॥
शोभावतीशीलवतीशोषिताशेषकिल्बिषा । शरण्याशिवदाशिष्टा शरजन्मप्रसूःशिवा
शक्तिः९२०शशाङ्कविमलाशमनस्वसृसम्मता । शमाशमनमार्गघ्नीशितिकण्ठमहाप्रिया
शुचिः शुचिकरी शेषा शेषशायिपदोद्भवा ।
श्रीनिवासश्रुतिः ९३० श्रद्धा श्रीमती श्रीः शुभव्रता ॥ १५८ ॥
शुद्धविद्या शुभावर्ता श्रुतानन्दा श्रुतिस्तुतिः ।
शिवेतरघ्नी शबरी ९४० शाम्बरीरूपधारिणी ॥ १५९ ॥
श्मशानशोधनी शान्ता शश्वच्छतधृतिष्टुता ।
शालिनी शालिशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभृत् ॥ १६० ॥

शंसनीयचरित्राचशातिताशेषपातका ९५० । षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना षडङ्गश्रुतिरूपिणी
षण्ढताहारिसलिला ष्ट्यायन्नदनदीशता । सरिद्वरा च सुरसा सुप्रभा सुरदीर्घिका ॥
स्वःसिन्धुःसर्वदुःखघ्नी ९६० सर्वव्याधिमहौषधम् ।
सेव्या सिद्धिः सती सूक्तिः स्कन्दसूश्च सरस्वती ॥ १६३ ॥
सम्पत्तरङ्गिणी स्तुत्या स्थाणुमौलिकृतालया ९७०
स्थैर्यदा सुभगा सौख्या स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी ॥ १६४ ॥
स्वर्गनिःश्रेणिका सूक्ष्मा स्वधा स्वाहा सुधाजला ।
समुद्ररूपिणी ९८० स्वर्या सर्वपातकवैरिणी ॥ १६५ ॥
स्मृताघहारिणी सीता संसाराब्धितरण्डिका ।
सौभाग्यसुन्दरी सन्ध्या सर्वसारसमन्विता ॥ १६६ ॥
हरप्रियाहृषीकेशी ९९० हंसरूपा हिरण्यमयी । हृताघसङ्घाहितकृद्धेला हेलाघगर्वहृत्
क्षेमदा क्षालिताघौघा क्षुद्रविद्राविणी क्षमा १००० ।
इति नामसहस्रं हि गङ्गायाःकलशोद्भव !। कीर्तयित्वानरःसम्यग्गङ्गास्नानफलंलभेत्
सर्वपापप्रशमनं सर्वविघ्नविनाशनम् । सर्वस्तोत्रजपाच्छ्रेष्ठं सर्वपावनपावनम् ॥
श्रद्धयाऽभीष्टफलदश्चतुर्वर्गसमृद्धिकृत् । सकृज्जपादवाप्नोति ह्येकक्रतुफलं मुने !॥
सर्वतीर्थेषुयः स्नातः सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । तस्य यत्फलमुद्दिष्टं त्रिकालपठनाच्चतत्
सर्वव्रतेषु यत्पुण्यं सम्यक्चीर्णेषुवाडव । तत्फलंसमवाप्नोति त्रिसन्ध्यन्नियतःपठन्
स्नानकाले पठेद्यस्तु यत्र कुत्र जलाशये । तत्र सन्निहिता नूनं गङ्गात्रिपथगा मुने!
श्रेयोर्थी लभते श्रेयो धनार्थी लभते धनम् ।
कामी कामानवाप्नोति मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ १७४ ॥
वर्षं त्रिकालपठनाच्छ्रद्धया शुचिमानसः । ऋतुकालाभिगमनादपुत्रःपुत्रवान्भवेत् ॥
नाकालमरणंतस्यनाग्निचोराहिसाध्वसम् । नाम्नांसहस्रं गङ्गायायोजपेच्छ्रद्धयामुने
गङ्गानामसहस्रन्तुजप्त्वाग्रामान्तरंव्रजेत् । कार्यसिद्धिमवाप्नोतिनिर्विघ्नोगेहमाविशेत्
तिथिवारर्क्षयोगानां नदोषः प्रभवेत्तदा । यदा जप्त्वा व्रजेदेतत्स्तोत्रं ग्रामान्तरन्नरः

आयुरारोग्यजननं सर्वोपद्रवनाशनम् । सर्वसिद्धिकरं पुंसांगङ्गानामसहस्रकम् ॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं सम्यगर्जितम् । गङ्गानामसहस्रस्य जपनात्तत्क्षयं व्रजेत्
ब्रह्मघ्नो मद्यपःस्वर्णस्तेयीच गुरुतल्पगः । तत्संयोगीभ्रूणहन्ता मातृहा पितृहा मुने!
विश्वासघाती गरदः कृतघ्नोमित्रघातकः । अग्निदो गोवधकरो गुरुद्रव्यापहारकः
महापातकयुक्तोपि संयुक्तोऽप्युपपातकैः । मुच्यतेश्रद्धयाजप्त्वा गङ्गानामसहस्रकम्
आधिव्याधिपरिक्षिप्तो घोरतापपरिप्लुतः ।
मुच्यते सर्वदुःखेभ्यः स्तवस्यास्यानुकीर्त्तनात् ॥ १८४ ॥
सम्वत्सरेणयुक्तात्मा पठन्भक्तिपरायणः । अभीप्सितांलभेत्सिद्धिंसर्वैःपापैःप्रमुच्यते
संशयाविष्टचित्तस्यधर्मविद्वेषिणोपिच । दाम्भिकस्यापिहिंस्रस्यचेतोधर्मपरम्भवेत्
वर्णाश्रमपथीनस्तु कामक्रोधविवर्जितः । यत्फलं लभतेज्ञानीतदाप्नोत्यस्यकीर्त्तनात्
गायत्र्ययुतजप्येन यत्फलं समुपार्जितम् । सकृत्पठनतःसम्यक् तदशेषमवाप्नुयात्
गां दत्त्वा वेदविदुषे यत्फलं लभतेकृती । तत्पुण्यंसम्यगाख्यातंस्तवराजसकृज्जपात्
गुरुशुश्रूषणं कुर्वन्यावज्जीवं नरोत्तमः । यत्पुण्यमर्जयेत्तद्भाग्वर्षं त्रिषवणञ्जपन् ॥१९०
वेदपारायणात्पुण्यं यदत्र परिपठ्यते । तत्षण्मासेन लभते त्रिसन्ध्यं परिकीर्तनात्
गङ्गायाः स्तवराज्यस्य प्रत्यहं परिशीलनात्
शिवभक्तिमवाप्नोति विष्णुभक्तोऽथवा भवेत् ॥ १९२ ॥
यः कीर्तयेदनुदिनं गङ्गानामसहस्रकम् । तत्समीपेसहचरी गङ्गादेवी सदाभवेत् ॥
सर्वत्रपूज्योभवति सर्वत्रविजयी भवेत् । सर्वत्र सुखमाप्नोति जाह्नवीस्तोत्रपाठतः
सदाचारी स विज्ञेयः स शुचिस्तु सदैव हि
कृतसर्वसुरार्चः स कीर्तयेद्य इमां स्तुतिम् ॥ १९५ ॥
तस्मिस्तृप्ते भवेत्तृप्ता जाह्नवी नात्रसंशयः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गङ्गाभक्तंसमर्चयेत्
स्तवराजमिमंगाङ्गं शृणुयाद्यश्च वै पठत् । श्रावयेदथतद्भक्तान्दम्भलोभविवर्जितः ॥
मुच्यतेत्रिविधैःपापैर्मनोवाक्कायसम्भवैः । क्षणान्निष्पापतामेतिपितॄणाञ्चप्रियोभवेत्
सर्वदेवप्रियश्चापि सर्वर्षिगणसम्मतः । अन्ते विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतसम्वृतः

दिव्याभरणसम्पन्नो दिव्यभोगसमन्वितः । नन्दनादिवने स्वैरं देववत्स ! प्रमोदते
भुज्यमानेषु विप्रेषु श्राद्धकाले विशेषतः । जपन्निदंमहास्तोत्रं पितृणांतृप्तिकारकम्

यावन्ति तत्र सिक्थानि यावन्तोऽम्बुकणाःस्थिताः ।
तावन्त्येव हि वर्षाणि मोदन्ते स्वः पितामहाः ॥ २०२ ॥
यथा प्रीणन्ति पितरो गङ्गायां पिण्डदानतः ।
तथैव तृप्नुयुः श्राद्धे स्तवस्यास्याऽनुसंश्रवात् ॥ २०३ ॥

एतत्स्तोत्रं गृहेयस्य लिखितं परिपूज्यते । तत्र पापभयं नास्ति शुचितद्भवनं सदा
अगस्ते! किम्बहूक्तेन श्रृणुमेनिश्चितं वचः । संशयो नात्रकर्तव्यः संदेग्धरि फलन्नहि

यावन्ति मर्त्त्ये स्तोत्राणि मन्त्रजालान्यनेकशः ।
तावन्ति स्तवराजस्य गाङ्गेयस्य समानि न ॥ २०६ ॥

यावज्जन्म जपेद्यस्तु नाम्नामेतत्सहस्रकम् । सकीकटेष्वपि मृतो न पुनर्गर्भमाविशेत्
नित्यं नियमवानेतद्योजपेत्स्तोत्रमुत्तमम् । अन्यत्रापिविपन्नःसगङ्गातीरे मृतोभवेत्
एतत्स्तोत्रवरंरम्यं पुराप्रोक्तं पिनाकिना । विष्णवेनिजभक्तायमुक्तिबीजाक्षरास्पदम्

गङ्गास्नानप्रतिनिधिः स्तोत्रमेतन्मयेरितम् ।
सिस्नासुर्जाह्नवीं तस्मादेतत्स्तोत्रं जपेत्सुधीः ॥ २१० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
पूर्वार्धे गङ्गासहस्रनामकथनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीमहिमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

ृण्वगस्त्यमहाभागसचराजाभगीरथः । आराध्यश्रीमहादेवमुद्दिधीर्षुः पितामहान्
ह्मशापविनिर्दग्धान्सर्वान् राजर्षिसत्तमः । महतातपसाभूमिमानिनाय त्रिवर्त्मगाम्
त्रयाणामपिलोकानांहितायमहतेनृपः । समानैषीत्ततोगङ्गांयत्राऽऽसीन्मणिकर्णिका
आनन्दकाननं शम्भोश्चक्रपुष्करिणीहरेः । परब्रह्मैकसुक्षेत्रं लीलामोक्षसमर्पकम् ॥
प्रापयामास तांगङ्गां दैलीपिः पुरतश्चरन् । निर्वाणकाशनाद्यत्र काशीति प्रथितापुरी
अविमुक्तं महाक्षेत्रं न मुक्तं शम्भुनाक्वचित् । प्रागेवहिमुनेऽनर्घ्यंजात्यंजाम्बूनदंस्वयम्
पुनर्वारितरेणापि हीरेणयदिसङ्गतम् । चक्रपुष्करिणीतीर्थंप्रागेव श्रेयसाम्पदम् ॥
ततःश्रेष्ठतरंशम्भोर्मणिश्रवणभूषणात् । आनन्दकानने तस्मिन्नविमुक्ते शिवालये ॥
प्रागेवमुक्तिःसंसिद्धागङ्गासङ्गात्ततोधिका । यदाप्रभृतिसागङ्गामणिकर्ण्यांसमागता
तदा प्रभृतितत्क्षेत्रंदुष्प्रापन्त्रिदशैरपि । कृत्वाकर्माण्यनेकानिकल्याणानीतराणिवा

तानि क्षणात्समुत्क्षिप्य काशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।
तस्यां वेदान्तवेद्यस्य निदिध्यासनतो विना ॥ ११ ॥
विना साङ्ख्येन योगेन काश्यां संस्थोऽमृतो भवेत् ।
कर्मनिर्मूलनवता विना ज्ञानेन कुम्भज !॥ १२ ॥
शशिमौलिप्रसादेन काशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ।
यत्नतोऽयत्नतो वापि कालात्त्यक्त्वा कलेवरम् ॥ १३ ॥

तारकस्योपदेशेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् । अनेकजन्मसंसिद्धैर्वद्धोऽपिप्राकृतैर्गुणैः
असिसम्भेदयोगेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् । देहत्यागोऽत्रवैदानंदेहत्यागोऽत्रवैतपः

देहत्यागोऽत्र वै योगः काश्यां निर्वाणसौख्यकृत् ।

प्राप्योत्तरवहां काश्यामतिदुष्कृतवानपि ॥ १६ ॥
यायात्स्वं हेलया त्यक्त्वा तद्विष्णोःपरमम्पदम् ।
यमेन्द्राग्निमुखा देवा दृष्ट्वा मुक्तिपथोन्मुखान् ॥ १७ ॥
सर्वान्सर्वेसमालोक्य रक्षाञ्चक्रुःपुरापुरः । असिमहासिरूपाञ्चप्राप्यसन्मतिखण्डनीम्
दुष्टप्रवेशान्धुन्वानान्धुनीन्देवा विनिर्ममुः । वरणाञ्च व्यधुस्तत्रक्षेत्रविघ्ननिवारिणीम्
दुर्वृत्तसुप्रवृत्तेश्च निर्वृत्तिकरणींसुराः । दक्षिणोत्तरदिग्भागेकृत्वासिं वरणां सुराः
क्षेत्रस्यमोक्षनिक्षेपरक्षांनिर्वृतिमाप्नुयुः । क्षेत्रस्यपश्चाद्दिग्भागेतं देहलिविनायकम्
स्वयंव्यापारयामास रक्षार्थं शशिशेखरः । अनुज्ञातप्रवेशानां विश्वेशेन कृपावता ॥
ते प्रवेशम्प्रयच्छन्ति नान्येषांहि कदाचन । इत्यर्थेकथयिष्येऽहमितिहासम्पुरातनम्
आश्चर्यकारिपरमं काशीभक्तिप्रवर्धनम् ॥ २३ ॥

स्कन्द उवाच

दक्षिणाब्धितटे कश्चित्सेतुबन्धसमीपतः । वणिग्धनञ्जयोनाममातृभक्तिसमन्वितः
पुण्यमार्गार्जितधनो धनतोषितमार्गणः । मार्गणस्फारितयशा यशोदातनयार्चकः
समुन्नतोऽपिसम्पत्त्याविनयानतकन्धरः । आकरोपिगुणानांहिगुणिष्वाकारगोपकः
रूपसम्पदुदारोपि परदारपराङ्मुखः । स सम्पूर्णकलोऽप्यासीन्निष्कलङ्कोदयःसदा
ससत्यानृतवृत्तिश्च प्रायः सत्यप्रियो मुने !। वर्णेतरोऽप्यभूल्लोके सुवर्णकृतवर्णनः ॥
सदाचरणगोऽप्येष सुखयानचरःकृती । अदरिद्रोऽपि मेधावी सोऽभूत्पापदरिद्रधीः
तस्यैवंवर्तमानस्यकदाचित्कालपर्ययात् । जननीनिधनम्प्राप्ता व्याधितातिजरातुरा
तया च यौवनम्प्राप्यमेघच्छायातिचञ्चलम् । प्रावृण्नदीपूरसमं स्वपतिः परिवञ्चितः
दिनत्रिचतुरस्थायि या नारी प्राप्य यौवनम् ।
भर्त्तारं वञ्चयेन्मोहात्साऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥ ३२ ॥
शीलभङ्गेन नारीणां भर्त्ता धर्मपरोऽपि हि ।
पतेद् दुःखार्जितात्स्वर्गाच्छीलं रक्ष्यन्ततःस्त्रियाः ॥ ३३ ॥
विष्ठागर्ते च निरये स्वयम्पतति दुर्मतिः । आभूतसंप्लवंयावत्ततःस्याद्ग्रामसूकरी

स्वविष्ठापायिनी चाथ वल्गुली वृक्षलम्बिनी ।
उलूकी वा दिवान्धा स्याद्व वृक्षकोटरवासिनी ॥ ३५ ॥
रक्षणीयम्महायत्नादिदं सुकृतभाजनम् ।
वपुःपरस्य दुःस्पर्शात्सुखाभासात्मकात्स्त्रियाः ॥ ३६ ॥
अनेनैवशरीरेण भर्तृसाद्विहितेन हि । किं सती न च तस्तम्भभानुमुद्यन्तमाज्ञया
अत्रिपत्न्यनुसूया किम्भर्तृभक्तिप्रभावतः । दधार न त्रयींगर्भे पतिव्रतपरायणा ॥
इह कीर्त्तिश्च विपुला स्वर्गे वासस्तथाऽक्षयः ।
पातिव्रत्यात्स्त्रिया लभ्यं सखित्वञ्च श्रिया सह ॥ ३९ ॥
सादुर्वृत्त्यापरित्यज्यपतिधर्मं सनातनम् । स्वच्छन्दचारिणीभूत्वामृतानिरयमुद्ययौ
धनञ्जयोऽपिच मुने! केनचिच्छिवयोगिना । सार्धन्तपोदयादित्थंसोऽभवद्धर्मतत्परः
धनञ्जयोऽपि धर्मात्मा मातृभक्तिपरायणः ।
आदायाऽस्थीन्यथो मातुर्गङ्गामार्गस्थितोऽभवत् ॥ ४२ ॥
पञ्चगव्येन संस्नाप्यततःपञ्चामृतेनवै । यक्षकर्दमलेपेन लिप्त्वापुष्पैः प्रपूज्य च ॥
आवेष्ट्य नेत्रवस्त्रेण ततःपट्टाम्बरेण वै । ततः सुरसवस्त्रेण ततो माञ्जिष्ठवाससा ॥
नैपालकम्बलेनाथ मृदाचाऽथविशुद्धया । ताम्रसम्पुटकेकृत्वामातुरङ्गान्यहोवणिक्
अस्पृष्टहीनजातिः स शुचिष्मान्स्थण्डिलेशयः ।
आनयञ्त्वरितोऽप्यासीन्मध्येमार्गं धनञ्जयः ॥ ४६ ॥
भारवाहः कृतस्तेनकश्चिद्दत्वोचितांभृतिम् । किम्बहूक्तेनघटज!काशीप्राप्ताऽथतेनवै
धृत्वा सम्भृतिरक्षार्थं भारवाहंधनञ्जयः । जगामापणमानेतुंकिञ्चिद्वस्त्वशनादिकम्
भारवाह्यन्तरं प्राप्य तस्यसम्भृतिमध्यतः । ताम्रसम्पुटमादाय धनंज्ञात्वा गृहं ययौ
वासस्थानमथागत्य तमदृष्ट्वा धनञ्जयः । त्वरावान्सम्भृतिवीक्ष्यताम्रसम्पुटवर्जिताम्
हाहेत्याताड्य हृदयं चक्रन्द बहुशो भृशम् । इतस्ततस्तमालोक्यगतस्तदनुसारतः
अकृत्वाजाह्नवीस्नानमनवेक्ष्य जगत्पतिम् । तस्यसंवसथंप्राप्तो भारवोढुर्धनञ्जयः ॥
भारवाडप्यरण्यान्यां ताम्रसम्पुटमध्यतः ।

दृष्ट्वाऽस्थीनि विनिःश्वस्य तानि त्यक्त्वा गृहं ययौ ॥ ५३ ॥
वणिक्चतद्गृहं प्राप्य शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । दृष्ट्वाऽथचैलशकलं तृणकुस्यन्तरे तदा
आशया किञ्चिदाश्वस्य तत्पत्नीं परिपृष्टवान् ।
सत्यं ब्रूहि न भेतव्यं दास्याम्यन्यदपि ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
वसु!कतेगतोभर्तामातुरस्थीनि मेऽर्पय । वयं कार्पटिकाभद्रे भवामो न च दुःखदाः
अज्ञात्वालोभवशतस्तेन नीतोऽस्थिसम्पुटः । तस्यैवदोषोनोभद्रेमातुर्मेकर्मतादृशम्
अथवा न प्रसूदोषो मन्दभाग्योऽस्मि तत्सुतः ।
सुतेन कृत्यं यत्कृत्यं तत्प्राप्तिर्नास्ति भिल्लि! मे ॥ ५८ ॥
उद्यमंकृतवानस्मिनसिद्ध्येन्मन्दभाग्यतः । आयातुसत्यवाक्यान्मेमाबिभेतुवनेचरः
अस्थीनि दर्शय त्वाऽऽशु धनं दास्येऽधिकंततः ।
इत्युक्ता तेन सा भिल्ली व्याजहार निजं पतिम् ॥ ६० ॥
लज्जानम्रशिराः सोऽथवृत्तान्तंविनिवेद्य च । निनायतामरण्यानींशबरस्तं धनञ्जयम्
वनेचरोऽथ तत्स्थानं दैवाद्विस्मृतवान्मुने !। दिग्भ्रान्तिसमवाप्याथपरिबभ्रामकानने
इतोरण्यात्ततो याति ततोऽरण्यादितो व्रजेत् ।
वनाद्वनान्तरं भ्रान्त्वा खिन्नः सोऽपि वनेचरः ॥ ६३ ॥
विहाय मध्येऽरण्यानि तं ययौ च स्वपक्कणम् ।
द्वित्राण्यहानि सम्भ्रम्य स कार्पटिकसत्तमः ॥ ६४ ॥
क्षुत्क्षामः शुष्ककण्ठोष्ठो हाहेति परिदेवयन् ।
पुनः काशीपुरीं प्राप्तः परिम्लानमुखो वणिक् ॥ ६५ ॥
तन्मन्दभाग्यतांश्रुत्वा लोकात्कार्पटिकोमुने । कृत्वागयांप्रयागञ्चततःस्वविषयंययौ
काश्यां प्रवेशं प्राप्याऽपि तदस्थीनि घटोद्भव !।
विना वैश्वेश्वरीमाज्ञाम्बहिर्यातानि तत्क्षणात् ॥ ६७ ॥
एवंकाश्यांप्रविश्यापिपापीधर्मानुषङ्गतः । नक्षेत्रफलमाप्नोतिबहिर्भवति तत्क्षणात्
तस्माद्विश्वेश्वराज्ञैवकाशीवासेऽत्र कारणम् । असिश्चवरणायत्र क्षेत्ररक्षाकृतौ कृते

वाराणसीतिविख्याता तदारभ्यमहामुने !। असेश्चवरणायाश्च सङ्गमं प्राप्यकाशिका

वाराणसीह करुणामयदिव्यमूर्त्तिरुत्सृज्य यत्र तु तनुं तनुभृत्सुखेन ।
विश्वेशदिङ्महसि यत्सहसा प्रविश्य रूपेण तां वितनुताम्पदवीं दधाति ॥
जातो मृतो बहुषु तीर्थवरेषु रेत्वं जन्तो! न जातु तव शान्तिरभून्निमज्ज्य ।
वाराणसी निगदतीह मृतोऽमृतत्वं प्राप्याऽधुना मम बलात्स्मरशासनःस्याः ॥
अन्यत्र तीर्थसलिले पतितो द्विजन्मा देवादिभावमयते न तथा तु काश्याम् ।
चित्रं यदत्र पतितःपुनरुत्थितिं न प्राप्नोति पुल्कसजनोऽपिकिमग्रजन्मा ॥ ७३॥
सैषा पुरी संसृतिरूपपारावारस्यपारम्पुरहापुरारिः ।
यस्यां परं पौरुषमर्थमिच्छन्सिद्धिन्नयेत्पौरपरम्परां सः ॥ ७४ ॥
तीर्थान्तराणि मनुजःपरितोऽवगाह्य हित्वा तनुं कलुषितां दिवि दैवतं स्यात्
वाराणसीपरिसरे तु विसृज्य देहं सन्देहभाग्भवति देहदशाप्तयेऽपि ॥ ७५ ॥
वाराणसीसमरसीकरणादृतेऽपि योगादयोगिजनतां जनतापहन्त्री ।
तत्तारकं श्रवणगोचरतां नयन्ती तद्ब्रह्म दर्शयति येन पुनर्भवो न ॥ ७६ ॥
वाराणसीपरिसरे तनुमिष्टधात्रीं धर्मार्थकामनिलयामहहा विसृज्य ।
इष्टं पदं किमपि हृष्टतरोऽभिलष्य लाभोऽस्तु मूलमपि नो यदवाप शून्यम् ७७
आः काशिवासिजनता ननु वञ्चिताऽभूद्भाले विलोचनवता वनितार्धभाजा ।
आदाय यत्सुकृतभाजनमिष्टदेहं निर्वाणमात्रमपवर्जयता पुनर्भुं ॥ ७८ ॥
वाराणसीस्फुरदसीमगुणैकभूमिर्यत्र स्थितास्तनुभृतःशशिभृत्प्रभावात् ।
सर्वे गले गरलिनोऽक्षियुजो ललाटे वामार्धवामतनवोऽतनवस्ततोऽन्ते ॥ ७९॥
आनन्दकाननमिदं सुखदं पुरैव तत्रापि चक्रसरसीमणिकर्णिकाऽथ ।
स्वःसिन्धुसंगतिरथोपरमास्पदञ्च विश्वेशितुः किमिह तन्नविमुक्तये यत् ८० ॥
वाराणसीह वरणासिसरिद्वरिष्ठा सम्भेदखेदजननी द्युनदी लसच्छ्रीः ।
विश्रामभूमिरचलामलमोक्षलक्ष्म्या हैनां विहाय किमु सीदति मूढजन्तुः ८१ ॥
किं विस्मृतं त्वहह गर्भजमामनस्यं कार्तान्तदूतकृतबन्धनताडनञ्च ।

शम्भोरनुग्रहपरिग्रहलभ्य काशीं मूढो विहाय किमु याति करस्थमुक्तिम् ॥
तीर्थान्तराणि कलुषाणि हरन्ति सद्यःश्रेयो ददत्यपि बहु त्रिदिवं नयन्ति ।
पानावगाहनविधानतनुप्रहाणैर्वाराणसी तु कुरुते बत मूलनाशम् ॥ ८३ ॥
काशीपुरीपरिसरे मणिकर्णिकायां त्यक्त्वा तनुन्तनुभृतस्तनुमाप्नुवन्ति ।
भाले विलोचनवतीं गलनीललक्ष्मीं वामार्धबन्धुरवधूं विधुरावरोधाः ॥ ८४ ॥
ज्ञात्वा प्रभावमतुलं मणिकर्णिकायां यःपुद्गलन्त्यजति चाशुचि पूयगन्धि ।
स्वात्मावबोधमहसा सहसा मिलित्वा कल्पान्तरेष्वपि स नैव पृथक्त्वमेति
रागादिदोषपरिपूरमनोहृषीकाः काशीपुरीमतुलदिव्यमहाप्रभावाम् ।
ये कल्पयन्त्यपरतीर्थसमां समन्तात्ते पापिनो न सहतैःपरिभाषणीयम् ॥ ८६ ॥
वाराणसीं स्मरहरप्रियराजधानीं त्यक्त्वा कुतो व्रजसि मूढ! दिगन्तरेषु ।
प्राप्याप्यजाद्यसुलभां स्थिरमोक्षलक्ष्मीं लक्ष्मीं स्वभावचपलांकिमु कामयेथाः
विद्याधनानि सदनानि गजाश्वभृत्याः स्रक्चन्दनानि वनिताश्च नितान्तरम्याः ।
स्वर्गोऽप्यगम्य इह नोद्यमभाजि पुंसि वाराणसी त्वसुलभा शलभादिमुक्तिः ॥
धात्रा धृतानि तुलया तुलनामवैतुं वैकुण्ठमुख्यभुवनानि च काशिका च ।
तान्युद्ययुर्लघुतयान्यगियं गुरुत्वात्तस्थौ पुरीह पुरुषार्थचतुष्टयस्य ॥ ८९ ॥
काशीपुरीमधिवसन्हि नरो नरोऽपि ह्यारोप्यमाण इह मान्य इवैकरुद्रः ।
नानोपसर्गजनिसर्गजदुःखभारैः कर्मापनुद्य स विशेत्परमेशधाम्नि ॥ ९० ॥
स्थिरापायंकायञ्जननमरणक्लेशनिलयंविहायास्यांकाश्यामहहपरिगृह्णीतनकुतः
वपुस्तेजोरूपं स्थिरतरपरानन्दसदनं,
विमूढोऽसौ जन्तुः स्फुटितमिव कांस्यं विनिमयन् ॥ ९१ ॥
अहो! लोकःशोकं किमिह सहते हन्त हतधीर्विपद्द्वारैःसारैर्नियतनिधनैर्ध्वंसितधनैः
क्षितौ सत्यां काश्यां कथयति शिवो यत्र निधने ।
श्रुतौ किञ्चिद् भूयः प्रविशति न येनोदरदरीम् ॥ ९२ ॥
काशिवासिनि जने वनेचरे द्वित्रिभुज्यपि समीरभोजने ।

स्वैरचारिणि जितेन्द्रियेप्यहोकाशिवासिनि जने विशिष्टता ।
नाऽस्तीह दुष्कृतकृतां सुकृतात्मनां वा काचिद्विशेषगतिरन्तकृतां हि काश्याम्
बीजानि कर्मजनितानि यदूषरायां नाङ्कूरयन्ति हरदृग्ज्वलितानि तेषाम् ९४॥
शशका मशका बकाः शुकाः कलविङ्काश्च वृकाः सजम्बुकाः ।
तुरगोरगवानरा नरा गिरिजे! काशिमृताः परामृतम् ॥ ९५ ॥
अरुद्ररुद्राक्षफणीन्द्रभूषणास्त्रिपुण्ड्रचन्द्रार्धधरा धरां गताः ।
निरन्तरं काशिनिवासिनो जना गिरीन्द्रजे! पारिषदा मता मम ॥ ९६ ॥
यावन्त एव निवसन्ति च जन्तवोऽत्र काश्याञ्जलस्थलचरा झषजम्बुकाद्याः ।
तावन्त एवमदनुग्रहरुद्रदेहादेहावसानमधिगम्य मयि प्रविष्टाः ॥ ९७ ॥
ये तुवर्षेषवो रुद्रा दिवि देवप्रकीर्तिताः । वातेषवोऽन्तरिक्षे ये ये भुव्यन्नेषवः प्रिये!
रुद्रा दशदशप्राच्यवाचीप्रत्यगुदक्स्थिताः ।
ऊर्ध्वदिक्स्थाश्च ये रुद्राःपठ्यन्ते वेदवादिभिः ॥ ९९ ॥
असङ्ख्याताःसहस्राणि ये रुद्रा अधिभूतले ।
तत्सर्वेभ्योऽधिकाःकाश्यां जन्तवो रुद्ररूपिणः ॥ १०० ॥
रुद्रावासस्ततःप्रोक्तमविमुक्तं घटोद्भव !।
यस्मात्समर्च्य काशिस्थान्वर्णान्वर्णेतराश्रमान् ॥ १०१ ॥
श्रद्धयेश्वरबुद्ध्या च रुद्रार्चाफलभाङ्नरः । ॥ १०२ ॥
श्मशब्देनशवः प्रोक्तःशानं शयनमुच्यते । निर्वचन्ति श्मशानार्थंमुने!शब्दार्थकोविदाः
महान्त्यपि च भूतानि प्रलयेसमुपस्थिते । शेरतेऽत्र शवा भूत्वा श्मशानंतुततोमहत्
अप्सु भूरिह लये लयं व्रजेदाप और्ववदनोग्रकन्दरे ।
मातरिश्वनि महास्तनूनपाद्व्योम्नि संक्षयति वै सदागतिः ॥ १०५ ॥
व्योम चापि लयमेत्यहंकृतौ साऽपि षोडशविकारसंयुता ।
लीयते महति बुद्धिसञ्ज्ञके हा! महान्प्रकृतिमध्यगो भवेत् ॥ १०६ ॥
सा गुणत्रयमयी च निर्गुणन्तं पुमांसमवगुह्य तिष्ठति ।

पञ्चविंशतिः तमः परः पुमान्देहगेहपतिरेषजीवकः ॥ १०७ ॥
प्राकृतः प्रलय एष उच्यते हंसयानहरिरुद्रवर्जितः ।
कालमूर्त्तिरथ तञ्च पूरुषं हेलया कलयतीश्वरः परः ॥ १०८ ॥
स वै महाविष्णुरितीर्यते बुधैस्तं वै महादेवमुदाहरन्ति ।
सोऽन्तादिमध्यैः परिवर्जितः शिवः स श्रीपतिः सोऽपिहि पार्वतीपतिः
दैनन्दिनेऽथ प्रलये त्रिशूलकोटौ समुत्क्षिप्य पुरीं हरः स्वाम् ।
विभर्त्ति संवर्तमहास्थिभूषणस्ततो हि काशी कलिकालवर्जिता ॥ ११०

स्कन्द उवाच

वाराणसीत्ति काशीति रुद्रावास इति द्विज !।
महाश्मशानमित्येवं प्रोक्तमानन्दकाननम् ॥ १११ ॥
इति देवीपुरः प्रोक्तं देवदेवेन शम्भुना । यथाविष्णोः पुराख्यातं तथैव च मयाश्रुतम्
तच्च त्वदग्रे कथितं रहस्यं काशिजं महत् ।
जप्त्वाऽध्यायमिमं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥ ११३ ॥
श्रावयित्वा द्विजान्सम्यक् शिवलोकेमहीयते । अतःपरं कलशज! किंशुश्रूषसितद्वद
काशीकथा कथ्यमाना ममाऽपि परितोषकृत् ॥ ११५ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
पूर्वार्धे वाराणसीमहिमवर्णनंनामत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

भैरवप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

सर्वज्ञहृदयानन्दस्कन्द!स्कन्दितारक !। नतृप्तिमधिगच्छामिश्रृण्वन्वाराणसीकथाम्
अनुग्रहो यदिमयियोग्योऽस्मि श्रवणे यदि । तदा कथयमेनाथकाश्यांभैरवसंकथाम्
कोऽसौभैरवनामात्रकाशिपुर्यांव्यवस्थितः । किंरूपमस्यकिंकर्मकानिनामानिचास्यवै
कथमाराधितश्चैव सिद्धिदः साधकस्यवै । आराधितःकुत्रकाले क्षिप्रंसिध्यतिभैरवः

स्कन्द उवाच

वाराणस्यां महाभाग!यथातेप्रेमवर्तते । तथा न कस्यचिन्मन्ये ततो वक्ष्याम्यशेषतः
प्रादुर्भावंभैरवस्य महापातकनाशनम् । यच्छ्रुत्वाकाशिवासस्यफलंनिर्विघ्नमाप्नुयात्

पाणिभ्यां परितः प्रपीड्य सुदृढं निश्चोत्य निश्चोत्य च ।
ब्रह्माण्डं सकलं पचेलिमरसालोच्चैः फलाभं मुहुः ॥
पायं पायमपायतस्त्रिजगतीमुन्मत्तवत्तैरसै-
र्नृत्यंस्ताण्डवडम्बरेण विधिना पायान्महाभैरवः ॥ ७ ॥

कुम्भयोने! न वेत्त्येवमहिमानंमहेशितुः । चतुर्भुजोऽपिवैकुण्ठश्चतुर्वक्त्रोपिविश्वकृत्
नचित्रमत्रभूदेव! भवमाया दुरत्यया । तया संमोहिताः सर्वेनावयन्त्यपितं परम्
वेदयेद्यदि चात्मानं सएव परमेश्वरः । तदा विदन्ति ब्रह्माद्याः स्वेच्छयैव न तं विदुः
ससर्वगोपि नेक्ष्येत स्वात्मारामोमहेश्वरः । देववद्बुध्यतेमूढैरतीतो योमनोगिराम्
पुरापितामहं विप्रमेरुश्रृङ्गे महर्षयः । प्रोचुः प्रणम्य लोकेशं किमेकन्तत्त्वमव्ययम्
समायया महेशस्यमोहितो लोकसम्भवः । अविज्ञाय परम्भावमात्मानम्प्राहवर्षिणम्
जगद्योनिरहंधाता स्वयम्भूरेक ईश्वरः । अनादिमदहम्ब्रह्म मामनर्च्य न मुच्यते
प्रवर्तको हिजगतामहमेको निवर्तकः । नान्योयदधिकःसत्यं कश्चित्कोपिसुरोत्तमाः

तस्यैवम्ब्रुवतो धातुः क्रतुर्नारायणांशजः । प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं रोषताम्रविलोचनः
अविज्ञाय परंतत्त्वं किमेतत्प्रतिपाद्यते । अज्ञानं योगयुक्तस्य नचैतदुचितन्तव ॥
अहंकर्ता हिलोकानां यज्ञो नारायणःपरः । न मामनादृत्य विधे ! जीवनञ्जगतामज
अहमेव परञ्ज्योतिरहमेव परा गतिः । मत्प्रेरितेन भवता सृष्टिरेषा विधीयते
एवं विप्रकृतौ मोहात्परस्परजयैषिणौ । पप्रच्छतुः प्रमाणज्ञानागमांश्चतुरोपि तौ

विधिक्रतू ऊचतुः

वेदाः प्रमाणं सर्वत्र प्रतिष्ठाम्परमामिताः । यूयमेव न सन्देहः किन्तत्त्वम्प्रति तिष्ठत

श्रुतय ऊचुः

यदि मान्यावयन्देवौसृष्टिस्थितिकरौविभू । तदा प्रमाणंवक्ष्यामोभवत्सन्देहभेदकम्
श्रुत्युक्तमिदमाकर्ण्य प्रोचतुस्तौ श्रुतीः प्रति ।
युष्मदुक्तम्प्रमाणं नौ किन्तत्त्वं सम्यगुच्यताम् ॥ २३ ॥

ऋगुवाच

यदन्तःस्थानि भूतानि यतः सर्वं प्रवर्तते । यदाहुस्तत्परन्तत्त्वं स रुद्रस्त्वेक एवहि

यजुरुवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेनचसमिज्यते । येन प्रमाणं हि वयं सएकः सर्वदृक् शिवः

साम उवाच

येनेदम्भ्राम्यते विश्वं योगिभिर्यो विचिन्त्यते ।
यद्भासा भासते विश्वं स एकस्त्र्यम्बकः परः ॥ २६ ॥

अथर्व उवाच

यम्प्रपश्यन्ति देवेशम्भक्त्यानुग्रहिणो जनाः । तमाहुरेकंकैवल्यं शङ्करं दुःखतस्करम्
श्रुतीरितं निशम्येत्थन्तावतीव विमोहितौ ।
स्मित्वाऽऽहतुः क्रतुविधी मोहान्ध्येनाङ्कितौ मुने !॥ २८ ॥
कथम्प्रमथनाथोऽसौ रममाणो निरन्तरम् । दिगम्बरःपितृवने शिवया धूलिधूसरः
विटङ्कवेशो जटिलोवृषगोव्यालभूषणः । परं ब्रह्मत्वमापन्नः क्व चतत्सङ्गवर्जितम्

तदुदीरितमाकर्ण्य प्रणवात्मा सनातनः । अमूर्त्तो मूर्त्तिमान्भूत्वाहसमान उवाच तौ

प्रणव उवाच

नह्येष भगवाञ्छक्त्या स्वात्मनोव्यतिरिक्तया । कदाचिद्रमते रुद्रो लीलारूपधरोहरः
असौ हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।
आनन्दरूपा तस्यैषा शक्तिर्नागन्तुकी शिवा ॥ ३३ ॥
इत्येवमुक्तेऽपि तदा मखमूर्तेरजस्य हि । नाज्ञानमगमन्नाशं श्रीकण्ठस्यैव मायया
प्रादुरासीत्ततोज्योतिरुभयोरन्तरे महत् । पूरयन्निजयाभासा द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्
ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थो ददृशे पुरुषाकृतिः । प्रजज्वालाथ कोपेन ब्रह्मणःपञ्चमं शिरः
आवयोरन्तरं कोऽसौ बिभृयात्पुरुषाकृतिम् ।
विधिःसम्भावयेद्यावत्तावत्सहि विलोकितः ॥ ३७ ॥
सष्ट्राक्षणेन चमहान्पुरुषो नीललोहितः । त्रिशूलपाणिर्भालाक्षो नागोडुपविभूषणः
हिरण्यगर्भस्तम्प्राह जाने त्वाञ्चन्द्रशेखरम् । भालस्थलान्ममपुरा रुद्रःप्रादुरभृद्भवान्
रोदनाद्रुद्रनाम्नापि योजितोसिमया पुरा । मामेव शरणं याहि पुत्र! रक्षांकरोमि ते
अथेश्वरः पद्मयोनेः श्रुत्वागर्ववतींगिरम् । सकोपतः समुत्पाद्य पुरुषं भैरवाकृतिम्
प्राहपङ्कजजन्मासौशास्यस्तेकालभैरव !। कालवद्राजसेसाक्षात्कालराजस्ततोभवान्
विश्वम्भर्तुंसमर्थोऽसिभरणाद्भैरवःस्मृतः । त्वत्तोभेष्यतिकालोपिततस्त्वंकालभैरवः
आमर्दयिष्यति भवांस्तुष्टोदुष्टात्मनोयतः । आमर्दक इतिख्यातिं ततःसर्वत्रयास्यति
यतःपापानि भक्तानांभक्षयिष्यतितत्क्षणात् । पापभक्षण इत्येव तव नामभविष्यति
यामेमुक्तिपुरी काशीसर्वाभ्योपिगरीयसी । आधिपत्यञ्चतस्यास्तेकालराजसदैवहि
तत्रये पापकर्तारस्तेषांशास्ता त्वमेवहि । शुभाशुभंन तत्कर्म चित्रगुप्तो लिखिष्यति
एतान्वरान्प्रगृह्याऽथतत्क्षणात्कालभैरवः । वामाङ्गुलिनखाग्रेण चकर्त्त चशिरोविधेः
यदङ्गमपराध्नोति कार्यन्तस्यैव शासनम् । अतो येनकृतानिन्दातच्छिन्नम्पञ्चमंशिरः
यज्ञमूर्त्तिधरो विष्णुस्ततस्तुष्टाव शङ्करम् । भीतोहिरण्यगर्भोपिजजाप शतरुद्रियम्
आश्वास्यतौ महादेवः प्रीतःप्रणतवत्सलः । प्राह स्वाम्मूर्तिमपराम्भैरवं तंकपर्दिनम्

मान्योऽध्वरोसौभवतातथाशतधृतिस्त्वयम् । कपालंवैधसञ्चापिनाललोहितधारय
ब्रह्महत्यापनोदाय व्रतं लोकाय दर्शयन् । चर त्वं सततम्भिक्षांकापालव्रतमास्थितः
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो देवस्तेजोरूपस्तदाशिवः ॥ ५३ ॥
उत्पाद्य कन्यामेकांतु ब्रह्महत्येति विश्रुताम् । रक्ताम्बरधरांरक्तांरक्तस्रग्गन्धलेपनाम्
दंष्ट्राकरालवदनां ललज्जिह्वातिभीषणाम् । अन्तरिक्षैकपादाग्राम्पिबन्तीं रुधिरम्बहु
कर्त्रीकर्परहस्ताग्रां स्फुरत्पिङ्गोग्रतारकाम् ।
गर्जयन्तीम्महावेगाम्भैरवस्यापि भीषणाम् ॥ ५६ ॥
यावद्वाराणसीन्दिव्याम्पुरीमेषगमिष्यति । तावत्त्वम्भीषणेकालमनुगच्छोग्ररूपिणि
सर्वत्र ते प्रवेशोऽस्ति त्यक्त्वा वाराणसीम्पुरीम् ।
नियोज्यतामिति शिवोऽप्यन्तर्धानं गतस्ततः ॥ ५८ ॥
तत्सान्निध्याद् भैरवोऽपि कालोऽभूत्कालकालतः ।
स देवदेववाक्येन बिभ्रत्कापालिकं व्रतम् ॥ ५९ ॥
कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम् । नात्याक्षीच्चापि तन्देवंब्रह्महत्यासुदारुणा
सत्यलोकेऽपिवैकुण्ठे महेन्द्रादिपुरीष्वपि । त्रिजगत्पतिरुग्रोपिव्रती त्रिजगतीश्वरः
प्रतितीर्थम्भ्रमन्नापि विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ६२ ॥
अनेनैवानुमानेन महिमा त्ववगम्यताम् । ब्रह्महत्यापनोदिन्याः काश्याःकलशसम्भव!
सन्ति तीर्थान्यनेकानि बहून्यायतनानि च ।
अधित्रिलोकिनो काश्याः कलामर्हन्ति षोडशीम् ॥ ६४ ॥
तावद्गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यलम् ।
यावन्नाम न शृण्वन्ति काश्याः पापाचलाशनेः ॥ ६५ ॥
प्रमथैः सेव्यमानोऽयन्त्रिलोकीं विचरन्हरः ।
कापालिको ययौ देवो नारायणनिकेतनम् ॥ ६६ ॥
अथायान्तम्महाकालन्त्रिनेत्रं सर्पकुण्डलम् । महादेवांशसंभूतं भैरवं भीषणाकृतिम्
पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वा तं गरुडध्वजः । देवाश्च मुनयश्चैव देवनार्यः समंततः ॥

निपेतुः प्रणिपत्यैनंप्रणतःकमलापतिः । शिरस्यञ्जलिमारोप्य स्तुत्वाबहुविधैःस्तवैः
क्षीरोदमथनोद्भूतां प्राहपद्मालयांहरिः । प्रिये!पश्याऽब्जनयनेधन्याऽसिसुभगेऽनघे
धन्योऽहं देवि! सुश्रोणि! यत्पश्यावो जगत्पतिम् ।
अयं धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः ॥ ७१ ॥
अनादिः शरणः शान्तः परः षड्विंशसंमितः । सर्वज्ञः सर्वयोगीशःसर्वभूतैकनायकः
सर्वभूतान्तरात्मा यं सर्वेषां सर्वदः सदा ।
यं विनिद्रा विनिःश्वासाः शान्ता ध्यानपरायणाः ॥ ७३ ॥
धिया पश्यन्तिहृदयेसोऽयमद्यसमीक्ष्यताम् । यंविदुर्वेदतत्त्वज्ञायोगिनोयतमानसाः
अरूपो रूपवान्भूत्वा सोयमायाति सर्वगः । अहोविचित्रं देवस्य चेष्टितं परमेष्ठिनः
यस्याख्याम्ब्रुवतान्नित्यंनदेहः सोऽपि देहधृक् । यं दृष्ट्वा नपुनर्जन्मलभ्यतेमानवैर्भुवि
सोयमायाति भगवांस्त्र्यम्बकःशशिभूषणः । पुण्डरीकदलायामे धन्येमेऽद्यविलोचने
धिग्धिक्पदन्तु देवानां परं दृष्ट्वात्रशङ्करम् । लभ्यतेयन्ननिर्वाणं सर्वदुःखान्तकृत्तुयत्
देवत्वादशुभंकिञ्चिद्देवलोके न विद्यते । दृष्ट्वाऽपि सर्वदेवेशं यन्मुक्तिं न लभामहे ॥
एवमुक्त्वाहृषीकेशःसम्प्रहृष्टतनूरुहः । प्रणिपत्यमहादेवमिदमाह वृषध्वजम् ॥ ८० ॥
किमिदं देवदेवेन सर्वज्ञेन त्वया विभो । क्रियते जगतांधात्रा सर्वपापहराऽव्यय
क्रीडेयं तव देवेश! त्रिलोचन! महामते!। किं कारणं विरूपाक्ष! चेष्टितन्तेस्मरार्दन
किमर्थम्भगवञ्छम्भो! भिक्षां चरसि शक्तिप !।
संशयो मे जगन्नाथ! नतत्रैलोक्यराज्यद !। ८३ ॥
एवमुक्तस्ततः शम्भुर्विष्णुमेतदुदाहरत् । ब्रह्मणस्तु शिरश्छिन्नमङ्गुल्यग्रनखेन ह ॥
तदघप्रतिघं विष्णो! चराम्येतद् व्रतं शुभम् । एवमुक्तो महेशेन पुण्डरीकविलोचनः
स्मित्वा किञ्चिन्नतशिराः पुनरेवंव्यजिज्ञपत् । यथेच्छसि तथाक्रीडसर्वविष्टपनायक
मायया मांमहादेव न च्छादयितुमर्हसि । नाभीकमलकोशात्तु कोटिशःकमलासनान्
कल्पे कल्पे सृजामीशत्वन्नियोगबलाद्विभो ।
त्यज मायामिमां देव ! दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ८८ ॥

मदादयो महादेव! मायया तव मोहिताः। यथावदवगच्छामि चेष्टितन्तेशिवापते !
संहारकालेसम्प्राप्तेस देवानखिलान्मुनीन्। लोकान्वर्णाश्रमवतो हरिष्यसि यदाहर
तदा क ते महादेव पापंब्रह्मवधादिकम्। पारतन्त्र्यं न तेशम्भो!स्वैरंक्रीडेत्ततोभवान्
अतीतब्रह्मणामस्थनां स्रक्कण्ठे तव भासते। तदा तदा कनु गता ब्रह्महत्या तवानघ

कृत्वाऽपि सुमहत्पापं त्वां यः स्मरति भावतः।
आधारं जगतामीशं तस्य पापंविलीयते ॥ ६३ ॥

यथा तमो न तिष्ठेत सन्निधावंशुमालिनः। तथा न भवभक्तस्यपापं तस्यव्रजेत्क्षयम्

यश्चिन्तयति पुण्यात्मा तव पादाम्बुजद्वयम्।
ब्रह्महत्यादिकमपि पापं तस्य व्रजेत्क्षयम् ॥ ६५ ॥

तव नामानुरक्तावाग्यस्य पुंसो जगत्पते। अप्यद्रिकूटतुलितं नैनस्तमनुवाधते ॥

रजसा तमसा विवर्धितं क नु पापं परितापदायकम्।
क च ते शिवनाममङ्गलं जनजीवातुजगद्रुजापहम् ॥ ६७ ॥
यदि जातुचिदन्धकद्विषस्तव नामोष्ठपुटाद्विनिःसृतम्।
शिव ! शङ्कर ! चन्द्रशेखरेत्यसकृत्तस्य न संसृतिः पुनः ॥ ६८ ॥

परमात्मन्परन्धाम स्वेच्छाविधृतविग्रह। कुतूहलं तवेशेदं क पराधीनतेश्वरे ॥ ६६॥
अद्य धन्योऽस्मिदेवेश! यन्नपश्यन्ति योगिनः। पश्यामितंजगन्मूलम्परमेश्वरमक्षयम्
अद्य मे परमोलाभस्त्वद्य मे मङ्गलम्परम्। त्वद्दृष्ट्यमृततृप्तस्य तृणं स्वर्गापवर्गदम्
इत्थं वदतिगोविन्दे विमला पद्मया तया। मनोरथवती नाम भिक्षापात्रे समर्पिता
भिक्षाटनाय देवोऽपि निरगात्परया मुदा। दृष्ट्वाऽनुयायिनींतां तु समाहूय जनार्दनः

सम्प्रार्थयद् ब्रह्महत्यां विमुञ्च त्वं त्रिशूलिनम्।

ब्रह्महत्योवाच

अनेन निमिषेणाऽहं संसेव्याऽमुं वृषध्वजम्।
आत्मानं पावयिष्यामि क पुनर्भवदर्शनम् ॥ १०४ ॥
सा तत्याज न तत्पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा।

तमूचेऽथ हरिं शम्भुः स्मेरास्यो वचनं शुभम् ॥ १०५ ॥
त्वद्वाक्पीयूषपानेन तृप्तोऽस्मि बहुमानद । वरंवृणीष्व गोविन्दवरदोऽस्मितवानघ
न माद्यन्ति तथाभैक्षैर्भिक्षवोप्यतिसंस्कृतैः । यथामानसुधापानैर्नुन्नभिक्षाटनज्वराः

महाविष्णुरुवाच

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं देवताधिपम् । पश्यामि त्वान्देवदेवंमनोरथपथातिगम्
अनभ्रेयं सुधावृष्टिरनायासो महोत्सवः । अयत्नोनिधिलाभोयद्वीक्षणं हरते सताम्
अवियोगोऽस्तुमे देवत्वदङ्घ्रियुगलेनवै । एष एव वरः शम्भो! नान्यं कञ्चिद्वरंवृणे

श्रीईश्वर उवाच

एवम्भवतु तेऽनन्त यत्त्वयोक्तम्महामते !। सर्वेषामपि देवानांवरदस्त्वम्भविष्यसि ॥
अनुगृह्येति दैत्यारिं केन्द्रादिभुवने चरन् ।
भेजे विमुक्तिजननीं नाम्ना वाराणसीं पुरीम् ॥ ११२ ॥
यत्र स्थितानां जन्तूनां कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
अपि ब्रह्मादिदेवानां पदानि विपदाम्पदम् ॥ ११३ ॥
वरं वाराणसीवासी जटी मुण्डीदिगम्बरः । नान्यत्रच्छत्रसंछन्नवसुधामण्डलेश्वरः
वरं वाराणसीभिक्षा न लक्षाधिपताऽन्यतः ।
लक्षाधीशो विशेद्गर्भं तद्भिक्षाशी न गर्भभाक् ॥ ११५ ॥
भिक्षाऽपि यत्र भिक्षुभ्यो दत्ताऽऽमलकसम्मिता ।
सुमेरुणाऽपि तुलिता वाराणस्यां गुरुर्भवेत् ॥ ११६ ॥
वर्षाशनं हि यो दद्यात्काश्यां सीदत्कुटुम्बिने ।
यावन्त्यब्दानि तावन्ति युगानि स दिवीज्यते ॥ ११७ ॥
वाराणस्यां वर्षभोज्यंयोदद्यान्निरुपायिने । सकदाचित्तुट्क्षुधानोदुःखंभुङ्क्तेनरर्षभः
वाराणस्यां निवसतां यत्पुण्यमुपजायते । तदेव संवासयितुः फलंत्वविकलंभवेत्
ब्रह्महत्यादिपापानि यस्या नाम्नोऽपि कीर्तनात् ।
त्यजन्ति पापिनं काशी सा केनेहोपमीयते ॥ १२० ॥

क्षेत्रे प्रविष्टमात्रेऽथ भैरवे भीषणाकृतौ । हाहेत्युक्त्वा ब्रह्महत्यापातालतलमाविशत्
कपालंब्रह्मणोरुद्रः सर्वेषामेव पश्यताम् । हस्तात् पतितमालोक्य ननर्तपरयामुदा
विधेः कपालं नाऽमुञ्चत्करमत्यन्तदुःसहम् ।
हरस्य भ्रमतः क्वापि तत्काश्यां क्षणतोऽपतत् ॥ १२३ ॥
शूलिनोब्रह्मणोहत्यानापैतिस्मचयाक्वचित् । साकाश्यांक्षणतोनष्टाकथंकाशीनदुर्लभा
अतः प्रदक्षिणीकार्या पूजनीया पुरी त्वियम् । ॥ १२५ ॥
वाराणसीतिकाशीतिमहामन्त्रमिमंजपन् । यावज्जीवंत्रिसन्ध्यन्तुजन्तुर्जातुनजायते
अविमुक्तं महाक्षेत्रंस्मरन्प्राणांस्तुयस्त्यजेत् । दूरदेशान्तरस्थोपिसोपिजातुन जायते
आनन्दकानने यस्यचित्तं संस्मरते सदा । तत्क्षेत्रनामश्रवणान्न स भूयोऽभिजायते
रुद्रावासे वसेन्नित्यं नरोनियतमानसः । एनसामपि सम्भारं कृत्वा कालाद्विमुच्यते
महाश्मशानमासाद्य यदि दैवाद्विपद्यते । पुनः श्मशानशयनं न क्वापिलभते पुमान्
कपालमोचनं काश्यां ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ।
तेषां विनङ्क्ष्यति क्षिप्रमिहान्यत्रापि पातकम् ॥ १३१ ॥
आगस्त्यतीर्थप्रवरे स्नानंकृत्वाविधानतः । तर्पयित्वापितॄन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वावाराणस्यांवसन्तिये । देहान्तेतत्परंज्ञानंतेषां दास्यति शङ्करः
इयं काशीपुरी विप्र!साक्षाद्रुद्रतनुः परा । अनिर्वाच्यापरानन्दादुष्प्राप्येशविरोधिभिः
अस्यास्तत्त्वमहंजाने शिवभक्तिपरोऽपिवा । मुच्यन्तेजन्तवोऽत्रैवयथायोगेनयोगिनः
परम्पदमियं काशी परानन्द इयम्पुरी । इयमेवपरंज्ञानं सेव्याऽसौ मोक्षकाङ्क्षिभिः
अत्रोषित्वाऽपीशभक्तान्विरुणद्धितुयःकुधीः । पुर्यैद्रुह्यतिवामूढस्तस्यान्यत्राऽत्रनोगतिः
कपालमोचनं तीर्थंपुरस्कृत्वा तु भैरवः । तत्रैवतस्थौ भक्तानां भक्षयन्नघसन्ततिम्
पापभक्षणमासाद्य कृत्वा पापशतान्यपि । कुतोबिभेति पापेभ्यः कालभैरवसेवकः
आमर्दयति पापानि दुष्टानाञ्चमनोरथान् । आमर्दकइतिख्यातस्ततोऽसौ कालभैरवः
कलिं कालं कलयति सदा काशीनिवासिनाम् ।
अतः ख्यातिं परामप्राप्तः कालभैरवसञ्ज्ञिताम् ॥ १४१ ॥

सदैवयस्यभक्तेभ्योयमदूताःसुदारुणाः । परमाम्भीरुताम्प्राप्तास्ततोऽसौभैरवःस्मृतः
मार्गशीर्षाऽसिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ । उपोष्य जागरन्कुर्वन्महापापैः प्रमुच्यते
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धितः । तत्सर्वंविलयं याति कालभैरवदर्शनात्
अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुभिस्त्वघम् । तत्सर्वं विलयत्याशु कालभैरवदर्शनात्
कृत्वा च विविधां पूजां महासम्भारविस्तरैः ।
नरो मार्गासिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत् ॥ १४६ ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां रविभूमिजवासरे । यात्राञ्च भैरवीं कृत्वा कृतैः पापैः प्रमुच्यते
कालभैरवभक्तानां सदा काशीनिवासिनाम् । विघ्नं यःकुरुतेमूढःसदुर्गतिमवाप्नुयात्
विश्वेश्वरेऽपि ये भक्तानोभक्ताः कालभैरवे । काश्यान्तेविघ्नसङ्घातंलभन्ते तु पदे पदे
तीर्थे कालोदकेस्नात्वाकृत्वातर्पणमत्वरः । विलोक्यकालराजंचनिरयादुद्धरेत्पितॄन्
अष्टौ प्रदक्षिणीकृत्य प्रत्यहं पापभक्षणम् । नरो न पापैर्लिप्येत मनोवाक्कायसम्भवैः
तस्मिन्नामर्दके पीठे जप्त्वा स्वाभीष्टदेवताम् ।
षण्मासं सिद्धिमाप्नोति साधको भैरवाज्ञया ॥ १५२ ॥
वाराणस्यामुषित्वा यो भैरवं न भजेन्नरः । तस्यपापानि वर्धन्ते शुक्लपक्षे यथा शशी
यं यं सञ्चिन्तयेत्कामं पापभक्षणसेवया । बलिपूजोपहारैश्च तं तं स समवाप्नुयात्
कालराजं नयःकाश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम् । भजेत्तस्यक्षयेत्पुण्यं कृष्णपक्षेयथाशशी
श्रुत्वाऽध्यायमिमम्पुण्यं ब्रह्महत्यापनोदकम् । भैरवोत्पत्तिसञ्ज्ञंच सर्वपापैःप्रमुच्यते
बन्धनागारसंस्थोऽपि प्राप्तोऽपि विपदम्पराम् ।
प्रादुर्भावम्भैरवस्य श्रुत्वा मुच्येत सङ्कटात् ॥ १५७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे भैरवप्रादुर्भाववर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

दण्डपाणिप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

बर्हियान!समाचक्ष्वहरिकेशसमुद्भवम् । कोऽसौकस्यसुतःश्रीमान्कीदृगस्यतपोमहत
कथञ्च देवदेवस्यप्रियत्वं समुपेयिवान् । काशीवासिजनीनोऽभूत्कथं वादण्डनायक
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुम्प्रसादंकुरुमे विभो !। अन्नदत्वञ्च सम्प्राप्तः कथमेष महामति
सम्भ्रमो विभ्रमश्चोभौ कथंतदनुगामिनौ ।
विश्रान्तिकारिणौ क्षेत्रवैरिणां सर्वदा नृणाम् ॥ ४ ॥

स्कन्द उवाच

सम्यगापृच्छि भवता काशीवासिसमाहितम् ।
कुम्भसम्भव ! विप्रर्षे ! दण्डपाणिकथानकम् ॥ ५ ॥
यदाकर्ण्य नरः प्राज्ञ! काशीवासस्य यत्फलम् ।
निष्प्रत्यूहन्तदाप्नोति विश्वभर्त्तुरनुग्रहात् ॥ ६ ॥
रत्नभद्र इतिख्यातः पर्वते गन्धमादने । यक्षः सुकृतलक्षश्रीः पुरापरमधार्मिक
पूर्णभद्रं सुतम्प्राप्य सोऽभूत्पूर्णमनोरथः । वयश्चरममासाद्य भुक्त्वा भोगाननेकश
शाम्भवेनाथयोगेनदेहमुत्सृज्य पार्थिवम् । आससादशिवंशान्तंशान्तसर्वेन्द्रियार्थक
पितर्युपरते सोऽथ पूर्णभद्रो महायशाः । सुकृतोपात्तविभवभवसम्भोगभुक्तिभाक
सर्वान्मनोरथाँल्लेभेविनास्वर्गैकसाधनम् । गार्हस्थ्याश्रमनेपथ्यंपथ्यम्पैतामहं महत
संसारतापसंतप्तावयवामृतशीकरम् । अपत्यं पतताम्पोतं बहुक्लेशमहार्णवे
पूर्णभद्रोऽथसंवीक्ष्य मन्दिरं सर्वसुन्दरम् । तद्बालकोमलालापविकलं त्यक्तमङ्गलम
शून्यं दरिद्रहृदिवजीर्णारण्यमिवाथवा । पान्थवत्प्रान्तरमिवखिन्नोऽतीवानपत्यवान
आहूय गृहिणीं सोऽथ यक्षः कनककुण्डलाम् ।

उवाच यक्षिणीं श्रेष्ठां पूर्णभद्रो घटोद्भव !॥ १५ ॥
नहर्म्यं सुखदं कान्ते! दर्पणोदरसुन्दरम् । मुक्तागवाक्षसुभगं चन्द्रकान्तशिलाजिरम्
पद्मरागेन्द्रनीलार्चिरर्चिताट्टालकं क्वणत् ।
विद्रुमस्तम्भशोभाढ्यं स्फुरत्स्फटिककुड्यवत् ॥ १७ ॥
प्रेङ्खत्पताकानिकरं मणिमाणिक्यमालितम् । कृष्णागुरुमहाधूपबहुलामोदमोदितम्
अनर्घ्यासनसंयुक्तं चारुपर्यङ्कभूषितम् । रम्यार्गलकपाटाढ्यं दुकूलच्छन्नमण्डपम्
सुरम्यरतिशालाढ्यं वाजिराजिविराजितम् ।
दासीदासशताकीर्णं किङ्किणीनादनादितम् ॥ २० ॥
नूपुरारावसोत्कण्ठकेकिकेकारवाकुलम् । कूजत्पारावतकुलं गुरुसारीकथावरम्
खेलन्मरालयुगलं जीवञ्जीवककान्तिमत् । माल्याहूतद्विरेफाणांमञ्जुगुञ्जारवावृतम्
कर्पूरैणमदामोदसोदरानिलबीजितम् । क्रीडामर्कटदंष्ट्राग्रीकृतमाणिक्यदाडिमम्
दाडिमीबीजसम्भ्रान्तशुकतुण्डात्तमौक्तिकम् । धनधान्यसमृद्धञ्चपद्मालयमिवापरम्
कमलामोदगर्भं च गर्भरूपं विनाप्रिये । गर्भरूपमुखम्प्रेक्ष्ये कथं कनककुण्डले
यद्युपायोऽस्तितद्ब्रूहि धिगपुत्रस्य जीवितम् । सर्वंशून्यमिवाभातिगृहमेतदनङ्गजम्
धिगेतत्सौधसौन्दर्यं धिगेतद्धनसञ्चयम् । विनापत्यं प्रियतमे!जीवितञ्चधिगावयोः
प्रलपन्तमिव प्रोच्चैः प्रियं कनककुण्डला ।
बभाषेऽन्तर्विनिःश्वस्य यक्षिणी सा पतिव्रता ॥ २८ ॥

कनककुण्डलोवाच

किमर्थं खिद्यसे कान्त! ज्ञानवानसि यद्भवान् ।
अत्रोपायोऽस्त्यपत्याप्त्यै विस्रब्धमवधारय ॥ २६ ॥
किमुद्यमवताम्पुंसां दुर्लभं हि चराचरे । ईश्वरार्पितबुद्धीनां स्फुरन्त्यग्रे मनोरथाः
दैवं हेतुं वदन्त्येवंभृशंकापुरुषाः पते !। स्वयम्पुराकृतंकर्मदैवं तच्च नहीतरत् ॥ ३१ ॥
ततः पौरुषमालम्ब्य तत्कर्म प्रशान्तये । ईश्वरं शरणं यायात्सर्वकारणकारणम्
अपत्यं द्रविणं दाराहाराहर्म्यंहया गजाः । सुखानिस्वर्गमोक्षौ च न दूरेशिवभक्तितः

विधातुः शाम्भवींभक्तिप्रिय! सर्वैमनोरथाः ! सिद्धयोऽष्टौगृहद्वारंसेवन्तेनात्रसंशयः
नारायणोऽपि भगवानन्तरात्मा जगत्पतिः । चराचराणामविताजातःश्रीकण्ठसेवया
ब्रह्मणः सृष्टिकर्तृत्वं दत्तं तेनैव शम्भुना । इन्द्रादयोलोकपालाजाताःशम्भोरनुग्रहात्
मृत्युञ्जयं सुतं लेभे शिलादोऽप्यनपत्यवान् । श्वेतकेतुरपि प्रापजीवितंकालपाशितः
क्षीरार्णवाधिपतितामुपमन्युरवाप्तवान् । अन्धकोऽप्यभवद्भृङ्गीगाणपत्यपदोर्जितः
जिगाय शार्ङ्गिणं सङ्ख्ये दधीचिः शम्भुसेवया ।
प्राजापत्यपदं प्राप दक्षः संशील्य शङ्करम् ॥ ३६ ॥
मनोरथंपथातीतं यच्च वाचामगोचरम् । गोचरो गोचरीकुर्यात्तत्पदं क्षणतोमृडः
अनाराध्य महेशानं सर्वदं सर्वदेहिनाम् ।
कोऽपि क्वाऽपि किमप्यत्र न लभेतेति निश्चितम् ॥ ४१ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शङ्करं शरणं व्रज । यदिच्छसिप्रियं पुत्रं प्रिय!सर्वजनीनकम्
इति श्रुत्वा वचःपत्न्याःपूर्णभद्रःसयक्षराट् । आराध्यश्रीमहादेवंगीतज्ञोगीतविद्यया
दिनैः कतिपयैरेव परिपूर्णमनोरथः । पुत्रकाममवापोच्चैस्तस्यां पत्न्यां दृढव्रतः
नादेश्वरं समभ्यर्च्य कैः कैर्नापि स्वचिन्तितम् ।
तस्मात्काश्यां प्रयत्नेन सेव्यो नादेश्वरो नृभिः ॥ ४५ ॥
अन्तर्वत्न्यथ कालेन तत्पत्नी सुषुवे सुतम् । तस्यनामपिता चक्रे हरिकेश इतिद्विज!
प्रीतिदायंददौ चाथ भूरि पुत्राननेक्षणात् । पूर्णभद्रस्तथाऽगस्त्य!हृष्टाकनककुण्डला
बालोऽपि पूर्णचन्द्राभवदनो मदनोपमः । वृद्धिंप्रतिक्षणं प्राप शुक्लपक्षइवोडुराट्
यदाष्टवर्षदेशीयो हरिकेशोऽभवच्छिशुः । नित्यं तदाप्रभृत्येवं शिवमेकममन्यत
पांसुक्रीडनसक्तोऽपि कुर्याल्लिङ्गं रजोमयम् । शाद्वलैःकोमलतृणैःपूजयेच्चसकौतुकम्
आका[illegible]तिमित्राणिशिवनाम्नाऽखिलानिसः । चन्द्रशेखर!भूतेश!मृत्युंजय!मृडेश्वर!
धू[illegible]ण्डपरशो! मृडानीश! त्रिलोचन !। भर्गशम्भो! पशुपते! पिनाकिन्नुग्रशङ्कर
श्री[illegible]नीलकण्ठेश! स्मरारे! पार्वतीपते !। कपालिन्भालनयन! शूलपाणे! महेश्वर!
अजिनाम्बर! दिग्वासः! स्वर्धुनीक्लिन्नमौलिज !।

विरूपाक्षाऽहिनेपथ्य! गृणन्नामावलीमिमाम् ॥ ५४ ॥
स वयस्कानिति मुहुः समाह्वयति लालयन् ।
शब्दग्रहौ न गृह्णीतस्तस्यान्याख्यां हरादृते ॥ ५५ ॥
पद्भ्यां न पद्यते चान्यदृते भूतेश्वराजिरात् । द्रष्टुं रूपान्तरंतस्यवीक्षणेनविचक्षणे
रसयेत्तस्य रसना हरनामाक्षरामृतम् । शिवाङ्घ्रिकमलामोदाद्घ्राणं नैव जिघृक्षति
करौतत्कौतुककरौ मनो मनति नापरम् । शिवसात्कृत्यपेयानि पीयन्तेतेनसद्धिया
भक्ष्यन्ते सर्वभक्ष्याणि त्र्यक्षप्रत्यक्षगान्यपि ।
सर्वावस्थासु सर्वत्र न स पश्येच्छिवं विना ॥ ५६ ॥
गच्छन् गायन्स्वपंस्तिष्ठञ्छयानोऽदन्पिबन्नपि ।
परितस्त्र्यक्षमैक्षिष्ट नान्यं भावं चिकेति सः ॥ ६० ॥
क्षणदासु प्रसुप्तोऽपिक्रयासीतिवदन्मुहुः । क्षणंत्र्यक्ष!प्रतीक्षस्वबुध्यतीतिसबालकः
स्पष्टां चेष्टां विलोक्येतिहरिकेशस्यतत्पिता । अशिक्षयत्सुतंसोऽथगृहकर्मरतोभव
एते तुरङ्गमा वत्स! तवैतेऽश्वकिशोरकाः ।
चित्राणीमानि वासांसि सुदुकूलान्यमूनि च ॥ ६३ ॥
रत्नान्याकरशुद्धानि नानाजातीन्यनेकशः । कुप्यं बहुविधंचैतद्गोधनानि महान्ति च
अमत्राणि महार्हाणि रौप्यकांस्यमयानि च ।
पणनीयानि वस्तूनि नानादेशोद्भवान्यपि ॥ ६५ ॥
चामराणि विचित्राणि गन्धद्रव्याण्यनेकशः ।
एतान्यन्यानि बहुशस्त्वनेके धान्यराशयः ॥ ६६ ॥
एतत्त्वदीयं सकलं वस्तुजातं समन्ततः । अर्थोपार्जनविद्याश्च सर्वाः शिक्षस्वपुत्रक!
चेष्टास्त्यज दरिद्राणां धूलिधूसरिणाममूः ।
अभ्यस्य विद्याः सकला भोगान्निर्विश्य चोत्तमान् ॥ ६८ ॥
तां दशाश्चरमां प्राप्य भक्तियोगं ततश्चर । असकृच्छिक्षितःपित्रेत्यवमन्यगुरोर्गिरम्
रुष्टदृष्टिश्च जनकं कदाचिदवलोक्य सः । निर्जगाम गृहाद्भीतो हरिकेशउदारधीः

ततश्चिन्तामवापोच्चैर्दिग्भ्रान्तिमपि चाप्तवान् ।
अहो बालिशबुद्धित्वात्कुतस्त्यक्तं गृहं मया ॥ ७१ ॥
क्व यामि क्व स्थिते शम्भो! मम श्रेयो भविष्यति
पित्रानिर्वासितश्चाऽहं न च वेद्म्यथ किञ्चन ॥ ७२ ॥
इतिश्रुतंमया पूर्वंपितुरुत्सङ्गवर्तिना । गदतस्तात पुरतः कस्यचिद्वचनं स्फुटम्
मात्रा पित्रा परित्यक्ता ये त्यक्ता निजबन्धुभिः ।
येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ॥ ७४ ॥
जरया परिभूता ये ये व्याधिविकलीकृताः ।
येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ॥ ७५
पदेपदेसमाक्रान्तायेविपद्भिरहर्निशम् । येषांकाऽपिगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः
पापराशिभिराक्रान्ता ये दारिद्र्यपराजिताः ।
येषां काऽपिगतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ॥ ७७ ॥
संसारभयभीता येयेबद्धाःकर्मबन्धनैः । येषांकापिऽगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः
श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः ।
येषां काऽपि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः ॥ ७९ ॥
येच योगपरिभ्रष्टास्तपोदानविवर्जिताः । येषांकापिगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः
मध्येबन्धुजने येषामपमानं पदे पदे । तेषामानन्ददं चैकं शम्भोरानन्दकाननम् ॥ ८१
आनन्दकाननं येषां रुचिर्वैवसतां सताम् । विश्वेशानुगृहीतानान्तेषामानन्दजोदयः
भर्ज्यन्ते कर्मबीजानि यत्र विश्वेशवह्निना । अतोमहाश्मशानं तदगतीनां परा गतिः
हरिकेशोऽविचार्येति यातो वाराणसीं पुरीम् ।
यत्राऽविमुक्ते जन्तूनां त्यजतां पार्थिवीं तनुम् ॥ ८४ ॥
पुनर्नोतनुसम्बन्धस्तनुद्वेषिप्रसादतः । आनन्दवनमासाद्य स तपः शरणं गतः ॥
अथकालान्तरेशम्भुःप्रविश्यानन्दकाननम् । पार्वत्यैदर्शयामास निजमाक्रीडकाननम्
अमन्दामोदमन्दारं कोविदारपरिष्कृतम् । चारुचम्पकचूताढ्यं प्रोत्फुल्लनवमल्लिकम्

विकसन्मालतीजालं करवीरविराजितम् । प्रस्फुटत्केतकिवनं प्रोद्यत्कुरबकोर्जितम्
जृम्भद्विचकिलामोदं लसत्कङ्केलिपल्लवम् । नवमल्लीपरिमलाकृष्टषट्पदनादितम् ॥
पुष्प्यपुन्नागनिकरं बकुलामोदमोदितम् । मेदस्विपाटलामोदसदामोदितदिङ्मुखम्
बहुशो लम्बिरोलम्बमालामालितभूतलम् । चलच्चन्दनशाखाग्ररममाणपिकाकुलम्
गुरुणाऽगुरुणामत्तभद्रजातिविहङ्गमम् । नागकेसरशाखास्थशालभञ्जिविनोदितम्
मेरुतुङ्गनमेरुस्थच्छायाक्रीडितकिन्नरम् । किन्नरीमिथुनोद्गीतंगानवच्छुककिंशुकम् ॥
कदम्बानां कदम्बेषु गुञ्जद्रोलम्बयुग्मकम् । जितसौवर्णवर्णोच्चकर्णिकारविराजितम्
लसत्सप्तच्छदामोदं खर्जूरीराजिराजतम् । नारिकेलतरुच्छन्नं नारङ्गीरागरञ्जितम्
फलिजम्बीरनिकरं मधूकमधुपाकुलम् । शाल्मलीशीतलच्छायं पिचुमन्दमहावनम्
मधुरामोददमनच्छन्नं मरुवनोदितम् । लवलीलोललीलाभृन्मन्दमारुतदोलितम् ॥
भिल्लीहल्लीसकप्रीतिभिल्लीरावविराविणम् ।
क्वचित्सरःपरिसरक्रीडत्क्रोडकदम्बकम् ॥ ९८ ॥
मरालीगलनालीस्थबिसासक्तसितच्छदम् ।
विशोककोकमिथुनक्रीडाक्रेङ्कारसुन्दरम् ॥ ९९ ॥
बकशावकसञ्चारं लक्ष्मणासक्तसारसम् । मत्तबर्हिणसंघुष्टं कपिञ्जलकुलाकुलम् ॥
जीवञ्जीवलसञ्जीवं क्वणत्कारण्डवोत्कटम् ।
दीर्घिकावारिसञ्चारिशीतमारुतवीजितम् ॥ १०१ ॥
मन्दान्दोलितकह्लारपरागपरिपिङ्गलम् । उल्लसत्पङ्कजमुखं नीलेन्दीवरलोचनम् ॥
तमालकबरीभारं विलसद्दाडिमीरदम् । भ्रमरालीलसद्भ्रूकं शुकनासाविराजितम्
महान्धुश्रवणन्दूर्वाश्मश्रुभिः परिशोभितम् ।
कमलामोदनिःश्वासं बिम्बीफलरदच्छदम् ॥ १०४ ॥
सुपद्मपत्रवसनंकर्णिकारविभूषणम् । कम्रकम्बुलसत्कण्टं शङ्करस्कन्धबन्धुरम् ॥
गन्धसारसमासक्ताहीनदोर्दण्डमण्डितम् । अशोकपल्लवाङ्गुष्टंकेतकीनखरोज्ज्वलम्
लसत्कण्ठीरवोरस्कंगण्डशैलपृथूदरम् । जलावर्तलसन्नाभितरुजङ्घायुगान्वितम्

स्थलभाक्पद्मचरणं मत्तमातङ्गगामिनम् । लसत्कदलिकेदारदलच्चीनांशुकावृतम् ॥
नानाकुसुममालाभिर्मालितश्चसमन्ततः । अकण्टकितरुच्छन्नम्महिषश्वापदावृतम् ॥
चन्द्रकान्तशिलासुश्लक्ष्णौणहरितोडुपम् । तरुप्रकीर्णकुसुमजितस्वर्लोकतारकम्
दर्शयन्नित्थमाक्रीडन्देव्यै देवोऽविशद्वनम् ॥ ११० ॥

देवदेव उवाच

यथा प्रियतमादेवि ! ममत्वं सर्वसुन्दरि । तथा प्रियतरश्चैतन्मे सदानन्दकाननम् ॥
अत्रानन्दवने देवि! मृतानां मदनुग्रहात् । वपुस्त्वमृतता प्राप्तमपुनर्भविनस्तु ते ॥
भविनो ये विपद्यन्ते वाराणस्यां ममाज्ञया ।
तेषां बीजानि दग्धानि श्मशानज्वलदग्निना ॥ ११३ ॥
महाश्मशाने ये प्राप्ता दीर्घनिद्रांगिरीन्द्रजे !। न पुनर्गर्भशयने ते स्वपन्ति कदाचन
ब्रह्मज्ञानेन मुच्यन्ते नाऽन्यथा जन्तवः क्वचित् ।
ब्रह्मज्ञानमये क्षेत्रे प्रयागे वा तनुत्यजः ॥ ११५ ॥
ब्रह्मज्ञानं तदेवाहं काशीसंस्थितिभागिनाम् ।
दिशामि तारकं प्रान्ते मुच्यन्ते ते तु तत्क्षणात् ॥ ११६ ॥
गृह्णीयुः पापकर्माणि काशीमृतविनिन्दकाः ।
सुकृतानि स्तुतिकृतो मुच्यन्ते तेऽत्र जन्तवः ॥ ११७ ॥
ब्रह्मज्ञानंकुतोदेविकलिनोपहतात्मनाम् । स्वभावचञ्चलाक्षाणांतद्ब्रह्म हदिशाम्यहम्
योगिनो योगविभ्रष्टाः पतन्त्यैश्वर्यमोहिताः ।
काश्यां पतित्वा न पुनः पतन्त्यपि महालये ॥ ११६ ॥
ब्रह्मज्ञानं न विन्दन्ति योगैरेकेन जन्मना । जन्मनैकेनमुच्यन्तेकाश्यामन्तकृतो जनाः
यथेहमुच्यते जन्तुर्गिरिजे मदनुग्रहात् । अविमुक्ते महाक्षेत्रे न तथाऽन्यत्र कुत्रचित्
बहुजन्मसमभ्यासाद्योगी मुच्येत वा न वा । मृतमात्रोविमुच्येतकाश्यामेकेनजन्मना
न सिध्यति कलौ योगो न सिध्यति कलौ तपः ।
न्यायार्जितधनोत्सर्गः सर्गः सिध्येत्कलौ नरः ॥ १२३ ॥

न व्रतं न तपो नेज्या न जपो न सुरार्चनम् । दानमेव कलौमुक्त्यैकाशीदानैरवाप्यते
कलौविश्वेश्वरोदेवः कलौवाराणसीपुरी । कलौभागीरथीगङ्गाकलौदानंविशिष्यते
गङ्गोत्तरवहाकाश्यां लिङ्गं विश्वेश्वरं मम । उभेविमुक्तिदेपुंसां प्राप्येदानबलात्कलौ
पुण्यवानितरो वाऽपि ममक्षेत्रस्य सेवया । मुक्तोभवति देवेशि!नात्रकार्याविचारणा
अविमुक्तस्य माहात्म्यात्पुण्यपापेन कर्मणा । देवि!प्रभवतःपुंसामपिजन्मशतार्जिते
अविमुक्तं न मोक्तव्यं तस्माद्देवि! मुमुक्षुणा । हन्यमानेन बहुधा ह्युपसर्गशतैरपि
विधाय क्षेत्रसंन्यासं ये वसन्तीह मानवाः ।
जीवन्मुक्तास्तु ते देवि! तेषां विघ्नं हराम्यहम् ॥ १३० ॥
न योगिनां हृदाकाशे न कैलाशे न मन्दरे । तथावासरतिर्मेऽस्तियथाकाश्यांरतिर्मम
काशीवासिजनो देवि!ममगर्भे वसेत्सदा । अतस्तं मोचयाम्यन्तेप्रतिज्ञेयं यतो मम
तामसीं प्रकृतिं प्राप्य कालो भूत्वा चराचरम् ।
ग्रसामि लीलया देवि! काशीं रक्षामि यत्नतः ॥ १३३ ॥
प्रेमपात्रद्वयं देवि! नितरां नेतरन्मम । त्वं वा तपोधने! गौरि! काशीवानन्दभूमिका
विना काशीं न मे स्थानं विना काशीं न मे रतिः ।
विना काशीं न निर्वाणं सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १३५ ॥
ब्रह्माण्डगोलके यद्वन्मुक्तिः काश्यां व्यवस्थिता ।
अष्टाङ्गयोगयुक्त्या वा न तथा हेलयाऽन्यतः ॥ १३६ ॥
इतिब्रुवाणो देवेशो हरिकेशमवैक्षत । मध्ये वनं तपस्यन्तमशोकतरुमूलगम् ॥
शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसञ्चयं निश्चलाकृतिम् ।
वल्मीककीटकाकोटिशोषितासृगसृग्धरम् ॥ १३८ ॥
निर्मांसकीकसचयंस्फटिकोपलनिश्चलम् । शङ्खकुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसच्छ्रियम्
सत्त्वावलम्बितप्राणमायुःशेषेण रक्षितम् ।
निःश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवितम् ॥ १४० ॥
निमेषोन्मेषसञ्चारपिशुनीकृतजन्तुकम् । पिङ्गतारस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितदिङ्मुखम्

तत्तपोग्निशिखादावचुम्बितम्लानकाननम् ।
तत्सौम्यदृक्सुधावर्षसंसिक्ताऽखिलभूरुहम् ॥ १४२ ॥
साक्षात्तपस्यन्तमिव तपो धृत्वा नराकृतिम् ।
निराकृतिं निराकाङ्क्षं कृत्वा भक्तिञ्च काञ्चन ॥ १४३ ॥
कुरङ्गशावैर्गणशोभ्रमद्भिः परिवारितम् । नितान्तभीषणास्यैश्चपञ्चास्यैःपरिरक्षितम्
तं तथाभूतमालोक्य देवीदेवं व्यजिज्ञपत् । वरेणच्छन्दयेशामुं निजभक्तंतपस्विनम्
त्वदेकचित्तं त्वदधीनजीवितं त्वदेककर्माणममुं त्वदाश्रयम् ।
तीव्रैस्तपोभिः परिशुष्कविग्रहं कुरुष्व यक्षस्य वरैरनुग्रहम् ॥ १४६ ॥
देवो वृषेन्द्रादवरुह्य देव्या शैलादिनादत्तकरावलम्बः ।
समाधिसङ्कोचितनेत्रपत्रं पस्पर्श हस्तेन दयार्द्रचेताः ॥ १४७ ॥
ततः स यक्षो विनिर्मील्य चक्षुषी त्र्यक्षं पुरो वीक्ष्य समक्षमात्मनः ।
उद्यत्सहस्रांशुसहस्रतेजसं जगादहर्षाकुलगद्गदाक्षरम् ॥ १४८ ॥
जयेश! शम्भो! गिरिजेश! शङ्कर! त्रिशूलपाणे! शशिखण्डशेखर! ।
स्पर्शत्कृपालो! तव पाणिपङ्कजं प्राप्याऽमृतीभूततनूलतोऽभवम् ॥ १४९ ॥
श्रुत्वोदितां तस्य महेश्वरो गिरं मृद्वीकया साम्यमुपेयुषीं मृदु ।
भक्तस्य धीरस्य महातपोनिधे! ददौ वराणां निकरन्तदा मुदा ॥ १५० ॥
क्षेत्रस्य यक्षाऽस्य मम प्रियस्य भो भवाऽधुना दण्डधरोवरान्मम ।
स्थिरस्त्वमद्यादिदुरात्मदण्डकः सुपालकः पुण्यकृताञ्च मत्प्रियः ॥ १५१ ॥
त्वं दण्डपाणिर्भवनामतोऽधुना सर्वान्गणाञ्छाधि ममाज्ञयोत्कटान् ।
गणाविमौ त्वामनुयायिनौ सदा नाम्ना यथार्थौ नृषु संभ्रमोद्भ्रमौ ॥ १५२ ॥
त्वमन्त्यभूषां कुरु काशिवासितां गलेसुनीलाम्भुजगेन्द्रकङ्कणाम् ।
भाले सुनेत्रां करिकृत्तिवाससं वामेक्षणालक्षितवामभागाम् ॥ १५३ ॥
मौलौ लसत्पिङ्गकपर्दभारिणीं विभूतिसंक्षालितपुण्यविग्रहाम् ।
अहो हिमांशोः कलयालसत्क्रियं वृषेन्द्रलीलागतिमन्दगामिनीम् ॥ १५४ ॥

त्वमन्नदःकाशिनिवासिनां सदा त्वं प्राणदो ज्ञानद एक एव हि ।
त्वं मोक्षदो मन्मुखसूपदेशस्त्वं निश्चलां सद्वसतिं विधास्यसि ॥ १५५ ॥
त्वं विघ्नपूगैःपरिपीड्यपापिनः सम्भ्रान्तिमुत्पाद्य विनेष्यसे बहिः ।
आनीय भक्तान् क्षणतोपि दूरतो मुक्तिं परां दापयितासि पिङ्गल !॥ १५६ ॥
त्वत्सात्कृते क्षेत्रवरे हि यक्षराट् कस्त्वामनाराध्य विमुक्तिभाजनम् ।
स भाजनं पूर्वत एव ते चरेत्ततःसमर्चां मम भक्त आचरेत् ॥ १५७ ॥
त्वं ग्रामवासप्रद एव मे पुरेऽध्यक्षस्त्वमेधीह च दण्डनायकः ।
दुष्टान्समुद्घाटय काशिवैरिणःकाशींपुरीं रक्ष सदा मुदान्वितः ॥ १५८ ॥
पूर्णभद्रसुत! दण्डनायक! त्र्यक्ष! यक्ष! हरिकेश! पिङ्गल !।
काशिवासवसतां सदाऽन्नद ! ज्ञानमोक्षद ! गणाग्रणीर्भव ॥ १५९ ॥
मद्भक्तियुक्तोऽपि विना त्वदीयां भक्तिं न काशी वसतिं लभेत ।
गणेषु देवेषु हि मानवेषु तदग्रमान्यो भव दण्डपाणे !॥ १६० ॥
ज्ञानोदतीर्थे विहितोदकक्रियो यस्त्वां समाराधयिता गणेशम् ।
स एव लोके कृतकृत्यतामगान्ममातुलानुग्रहतोऽत्रपुण्यवान् ॥ १६१ ॥
त्वं दक्षिणस्यां दिशि दण्डपाणे! सदैव मे नेत्रसमक्षमत्र ।
त्वं दण्डयन्प्राणभृतो दुरीहानिहास्वनृन्स्वानभयं दिशन्वै ॥ १६२ ॥

स्कन्द उवाच

इति दत्त्वावरान्विप्र गिरीशोदण्डपाणये । वृषेन्द्रमधिरुह्याथ विवेशानन्दकाननम्
कुम्भोद्भव! तदारभ्य यक्षराड्दण्डनायकः । पुरींवाराणसींसम्यगनुशास्ति निदेशतः
अहमप्यत्रवसतिं चक्रे तदनुसूयया । वसन्नपि मयाकाश्यां यतः सम्भवितो न सः

मुने! क्षेत्रं यदत्याक्षीस्त्वमप्येवंविधो वशी ।
शङ्के तत्राऽहमेवाद्धा कामं तस्यैव विक्रियाम् ॥ १६६ ॥
मनाग्विरुद्धाचरणं यदि द्विज! विलक्षयेत् ।
हरिकेशस्तदा काश्यां क्व स्थितिः क्व च निर्वृतिः ॥ १६७ ॥

दण्डपाणिमनाराध्य कःकाश्यां सुखमाप्नुयात् ।
प्रविविक्षुरहं काशीं दूरगोऽपि भजामि तम् ॥ १६८ ॥
रत्नभद्राङ्गजोद्भूत!पूर्णभद्रसुतोत्तम !। निर्विघ्नं कुरु मे यक्ष! काशीवासं शिवाप्तये
धन्योयक्षःपूर्णभद्रो धन्याकाञ्चनकुण्डला । ययोर्जठरपीठेऽभूर्दण्डपाणे! महामते !॥
जययक्षपते ! धीर जयपिङ्गललोचन !। जयपिङ्ग! जटाभार ! जयदण्ड! महायुध!
अविमुक्तमहाक्षेत्रसूत्रधारोग्रतापस !। दण्डनायक! भीमास्य!जयविश्वेश्वरप्रिय !॥
सौम्यानां सौम्यवदनभीषणानां भयानक !। क्षेत्रपापधियांकालमहाकालमहाप्रिय!
जय प्राणद! यक्षेन्द्र! काशीवासान्नमोक्षद! । महारत्नस्फुरद्रश्मिचयचर्चितविग्रह!
महासम्भ्रान्तिजनक! महोद्भ्रान्तिप्रदायक !।
अभक्तानां च भक्तानां सम्भ्रान्त्युद्भ्रान्तिनाशक !॥ १७५ ॥
प्रान्तनेपथ्यचतुर! जयज्ञाननिधिप्रद !। जय गौरीपदाब्जाले! मोक्षेक्षणविचक्षण
यक्षराजाष्टकं पुण्यमिदंनित्यं त्रिकालतः । जपामिमैत्रावरुणे!वाराणस्याप्तिकारणम्
दण्डपाण्यष्टकंधीमान् जपन्विघ्नैर्नजातुचित् । श्रद्धयापरिभूयेतकाशीवासफलंलभेत्
प्रादुर्भावं दण्डपाणेः शृण्वन् स्तोत्रमिदं गृणन् ।
विपत्तिमन्यतः प्राप्य काशीं जन्मान्तरे लभेत् ॥ १७६ ॥
श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंदण्डपाणिसमुद्भवम् । पठित्वापाठयित्वाऽपिनविघ्नैरभिभूयते

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे दण्डपाणिप्रादुर्भावो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ज्ञानवापीमाहात्म्यवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

स्कन्द! ज्ञानोदतीर्थस्य माहात्म्यं वद साम्प्रतम् ।
ज्ञानवापीं प्रशंसन्ति यतः स्वर्गौकसोप्यलम् ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

घटोद्भवमहाप्राज्ञ! शृणुपापप्रणोदिनीम् । ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिकथ्यमानां मयाधुना
अनादिसिद्धे संसारेपुरा देवयुगे मुने !। प्राप्तः कुतश्चिदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः
नवर्षन्तियदाभ्राणिनप्रावर्तन्त निम्नगाः । जलाभिलाषो न यदास्नानपानादिकर्मणि
क्षारस्वादूदयोरेव यदासीज्जलदर्शनम् । पृथिव्यां नरसंचारे वर्तमाने क्वचित् क्वचित्
निर्वाणकमलाक्षेत्रं श्रीमदानन्दकाननम् ! महाश्मशानं सर्वेषां बीजानां परमूषरम्
महाशयनसुप्तानां जन्तूनांप्रतिबोधकम् । संसारसागरावर्तपतज्जन्तुतरण्डकम्
यातायातातिसंखिन्नजन्तुविश्राममण्डपम् । अनेकजन्मगुणितकर्मसूत्रच्छिदाक्षुरम्
सच्चिदानन्दनिलयम्परब्रह्मरसायनम् । सुखसन्तानजनकम्मोक्षसाधनसिद्धिदम्
प्रविश्य क्षेत्रमेतत्स ईशानो जटिलस्तदा। लसत्त्रिशूलविमलरश्मिजालसमाकुलः
आलुलोके महालिङ्गं वैकुण्ठपरमेष्ठिनोः । महाहमहमिकायां प्रादुरास यदादितः
ज्योतिर्मयीभिर्मालाभिःपरितःपरिवेष्टितम् । वृन्दैर्वृन्दारकर्षीणांगणानाञ्चनिरन्तरम्
सिद्धानां योगिनांस्तोमैरर्च्यमानंनिरन्तरम् । गीयमानं चगन्धर्वैःस्तूयमानंचचारणैः
अङ्गहारैरप्सरोभिः सेव्यमानमनेकधा । नीराज्यमानं सततन्नागीभिर्मणिदीपकैः
विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रिकालंकृतमण्डनम् । अमरीचमरीराजिवीज्यमानमितस्ततः
अस्येशानस्य तल्लिङ्गं दृष्ट्वेच्छेत्यभवत्तदा । स्नपयामि महल्लिङ्गं कलशैः शीतलैर्जलैः
चखान चत्रिशूलेन दक्षिणाशोपकण्ठतः । कुण्डं प्रचण्डं वेगेन रुद्रोरुद्रवपुर्धरः

पृथिव्यावरणाम्भांसि निष्क्रान्तानि तदा मुने !। भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरियं वसुधावृता
तैर्जलैःस्नापयाञ्चक्रे त्वस्पृष्टैरन्यदेहिभिः । तुषारैर्जाड्यविधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः
सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवर्त्मवत् ।
ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैः पावनैः शम्भुनामवत् ॥ २० ॥
पीयूषवत्स्वादुतरैः सुखस्पर्शैर्गवाङ्गवत् । निष्पापधीवद्गम्भीरैस्तरलैःपापिशर्मवत्
विजिताब्जमहागन्धैःपाटलामोदमोदिभिः । अदृष्टपूर्वलोकानां मनोनयनहारिभिः
अज्ञानतापसं तप्तप्राणिप्राणैकरक्षिभिः । पञ्चामृतानां कलशैः स्नपनाति फलप्रदैः
श्रद्धोपस्पर्शि हृदयलिङ्गत्रितयहेतुभिः । अज्ञानतिमिरार्काभैर्ज्ञानदानंनिदायकैः २४ ॥
विश्वभर्त्तु रुमास्पर्शसुखातिसुखकारिभिः । महावभृथसुस्नानमहाशुद्धिविधायिभिः
सहस्रधारैः कलशैः स ईशानोघटोद्भव !। सहस्रकृत्वः स्नपयामास संहृष्टमानसः
ततः प्रसन्नो भगवान् विश्वात्माविश्वलोचनः । तमुवाच तदेशानंरुद्रंरुद्रवपुर्धरम्
तव प्रसन्नोऽस्मीशान कर्मणाऽनेन सुव्रत !। गुरुणानन्यपूर्वेण ममाति प्रीतिकारिणा
ततस्त्वं जटिलेशान! वरं ब्रूहि तपोधन !। अदेयं न तवास्त्यद्य महोद्यमपरायण!

ईशान उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश! वरयोग्योऽस्म्यहं यदि । तदेतदतुलं तीर्थं तव नाम्नास्तु शङ्कर!

विश्वेश्वर उवाच

त्रिलोक्यां यानि तीर्थानि भूर्भुवःस्वःस्थितान्यपि ।
तेभ्यो खिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः शिवतीर्थमिदं परम् ॥ ३१ ॥
शिवंज्ञानमिति ब्रयुः शिवशब्दार्थचिन्तकाः । तच्च ज्ञानन्द्रवीभूतमिहमे महिमोदयात्
अतो ज्ञानोदनामैतत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । अस्य स्पर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते
ज्ञानोदतीर्थसंस्पर्शादश्वमेधफलं लभेत् । स्पर्शनाचमनाभ्याञ्च राजसूयाश्वमेधयोः
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वासन्तर्प्यच पितामहान् । यत्फलंसमवाप्नोतितदत्रश्राद्धकर्मणा
गुरुपुष्यासिताष्टम्यां व्यतीपातोयदाभवेत् । तदात्र श्राद्धकरणाद्गयाकोटिगुणंभवेत्
यत्फलं समवाप्नोतिपितॄन्सन्तर्प्यपुष्करे । तत्फलं कोटिगुणितंज्ञानतीर्थेतिलोदकैः

सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे तमोग्रस्ते विवस्वति। यत्फलं पिण्डदानेन तज्ज्ञानोदेदिनेदिने
पिण्डनिर्वपणं येषांज्ञानतीर्थे सुतैः कृतम्। मोदन्ते शिवलोके ते यावदाभूतसंप्लवम्
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः।
प्रातः स्नात्वाऽथ पीताम्भस्त्वन्तर्लिङ्गमयो भवेत् ॥ ४० ॥
एकादश्यामुपोष्यात्रप्राश्नातिचुलुकत्रयम्। हृदयेतस्यजायन्तेत्रीणिलिङ्गान्यसंशयम्
ईशानतीर्थेयःस्नात्वाविशेषात्सोमवासरे। संतर्प्यदेवर्षिपितॄन्दत्त्वादानं स्वशक्तितः
ततः समर्च्यश्रीलिङ्गंमहासंभारविस्तरैः। अत्रापि दत्त्वा नानार्थान्कृतकृत्योभवेन्नरः
उपास्य सन्ध्यांज्ञानोदेयत्पापं काललोपजम्। क्षणेनतदपाकृत्यज्ञानवान्जायतेद्विजः
शिवतीर्थमिदं प्रोक्तंज्ञानतीर्थमिदंशुभम्। तारकाख्यमिदं तीर्थं मोक्षतीर्थमिदं ध्रुवम्
स्मरणादपि पापौघो ज्ञानोदस्य क्षयेद् ध्रुवम्।
दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात्पानाद्धर्मादिसम्भवः ॥ ४६ ॥
डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतवेतालराक्षसाः।
ग्रहाः कूश्माण्डझोटिङ्गाः कालकर्णी शिशुग्रहाः ॥ ४७ ॥
ज्वरापस्मारविस्फोटद्वितीयकचतुर्थकाः। सर्वे प्रशममायान्तिशिवतीर्थजलेक्षणात्
ज्ञानोदतीर्थपानीयैर्लिङ्गंयः स्नापयेत्सुधीः। सर्वतीर्थोदकैस्तेनध्रुवं संस्नापितम्भवेत्
ज्ञानरूपोऽहमेवात्रद्रवमूर्तिविधाय च । जाड्यविध्वंसनंकुर्यां कुर्यां ज्ञानोपदेशनम् ॥
इति दत्त्वावराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत। कृतकृत्यमिवात्मानंसोप्यमंस्तत्रिशूलभृत्
ईशानो जटिलोरुद्रस्तत्प्राश्य परमोदकम्। अवाप्तवान् परंज्ञानं येन निर्वृतिमाप्तवान्

स्कन्द उवाच

कलशोद्भव! चित्रार्थमितिहासं पुरातनम्।
ज्ञानवाप्यां हि यद्वृत्तन्तदाख्यामि निशामय ॥ ५३ ॥
हरिस्वामीति विख्यातः काश्यामासीद् द्विजः पुरा।
तस्यैका तनया जाता रूपेणाऽप्रतिमा भुवि ॥ ५४ ॥
न समा शीलसम्पत्त्या तस्याःकाचन भूतले।

कलाकलापकुशला स्वरेण जितकोकिला ॥ ५५ ॥
न नारी तादृगस्तीह नाऽमरीकिन्नरीन च । विद्याधरीननो नागागन्धर्वीनासुरीनच
सर्वसौन्दर्यनिलया सर्वलक्षणसत्खनिः ।
अधिशेते ध्रुवं ध्वान्तन्तन्मौलिं ब्रध्नसाध्वसात् ॥ ५७ ॥
तदास्यंशरणंयातोमन्येदर्शभयाच्छशी । दिवापि नत्यजेत्तान्तुत्रस्तश्चण्डमरीचितः
तद्भूभ्रमरराजीवगण्डपत्रलतान्तरे । उदञ्चन्न्यञ्चदुड्डीनगतेरभ्यासभाजिनी ॥
तच्चारुलोचनक्षेत्रे विचरन्तौ च खञ्जनौ । सदैव शारदीं प्रीतिं निर्विशेते निजेच्छया
सुदत्या रदनश्रेणीछदेषु विषमेषुणा । विहिता काञ्चनी रेखा क्वेन्दावेतावतीकला
प्रायो मदनभूपालहर्म्यरत्नान्तरेशुभे । जितप्रवालसुच्छाये तस्यारदनवाससी
स्वर्गे मर्त्येचपातालेनैषारेखा क्वचित्स्त्रियाम् । तत्कण्ठरेखात्रितयव्याजेनशपतेस्मरः
शङ्के चित्तभुवो राज्ञो लसत्पटकुटीद्वयम् । अनर्घ्यरत्नकोशाढ्यन्तस्यावक्षोरुहद्वयम्
अनङ्गभूनियमतोऽदृश्येमध्ये नतभ्रुवः । रोमालीलक्षिकामूर्ध्वामिवयष्टिंविधिर्व्यधात्
तस्या नाभीदरीं प्राप्य कन्दर्पोऽनङ्गताङ्गतः । पुनः प्राप्तमिवाङ्गानि तप्यते परमंतपः
गुरुणैतन्नितम्बेन महामन्मथदीक्षया । भुविकेकेयुवानो न स्वाधीनाःप्रापितादृशाम्
ऊरुस्तम्भेन चैतस्याः स्तम्भवत्कस्यनोमनः । तस्तम्भेनमुनेर्वापिसुवृत्तेनसुवर्तनम्
पादाङ्गुष्ठनखज्योतिःप्रभयाकस्यनप्रभा । विवेकजनिताऽध्वंसि मुने! तस्यामृगीदृशः
सा प्रत्यहं ज्ञानवाप्यां स्नायं स्नायं शिवालये ।
संमार्जनादिकर्माणि कुरुतेऽनन्यमानसा ॥ ७० ॥
तत्पादप्रतिबिम्बेषु रेखाशष्पाङ्कुरञ्चरन् । नान्यद्वनान्तरंयाति काश्यांयूनांमनोमृगः
तदास्यपङ्कजं हित्वा यूनां नेत्रालिमालया । नलतान्तरमासेविअप्यामोदप्रसूनयुक्
सुलोचनाऽपि सा कन्या प्रेक्षेताऽऽस्यं न कस्यचित् ।
सुश्रवा अपि सा बाला नाऽऽदत्ते कस्यचिद्वचः ॥ ७३ ॥
सुशीला शीलसम्पन्नारहस्तद्विरहातुरैः । प्रार्थितापि सुरूपाढ्यैर्नाभिलाषम्बबन्धसा
धनैस्तस्या जनेतापि युवभिः प्रार्थितो बहु ।

नाऽशकत्तां सुशीलां स दातुं शीलोर्जितश्रियम् ॥ ७५ ॥
ानोदतीर्थभजनात्सासुशीलाकुमारिका । बहिरन्तस्तदाऽद्राक्षीत्सर्वंलिङ्गमयंजगत्
कदाचिदेकदातां तु प्रसुप्तांसदनाङ्गणे । मोहितोरूपसम्पत्त्या कश्चिद्विद्याधरोऽहरत्
्योमवर्त्मनितां रात्रौ यावन्मलयपर्वतम् । सनिनीषतितावच्चविद्युन्मालीसमागतः
राक्षसो भीषणवपुः कपालकृतकुण्डलः । वसारुधिरलिप्ताङ्गः श्मश्रुलः पिङ्गलोचनः

राक्षस उवाच

मम दृग्गोचरं यातो विद्याधरकुमारक !। अद्य त्वामेतया सार्धं प्रेषयामियमालयम्
इति श्रुत्वाऽथ सा वाक्यं व्याघ्राघ्राता मृगी यथा ।
चकम्पेऽतीव संभीता कदलीदलवन्मुहुः ॥ ८१ ॥
निजघान त्रिशूलेन रक्षोविद्याधरं च तम् । विद्याधरकुमारोऽपि नितरांमधुराकृतिः
तद्भीषणत्रिशूलेन भिन्नोरस्कोमहाबलः । जघान मुष्टिघातेन वज्रपातोपमेन तम् ॥८३
नरमांसवसामत्तं विद्युन्मालिनमाहवे । घूर्णितोमुष्टिपातेन सोऽपतद्वसुधातले
राक्षसो मृत्युवशगो वज्रेणेव महीधरः । विद्याधरोपि तच्छूलघातेन विकलीकृतः
उवाच गद्गदं वाक्यं विघूर्णितविलोचनः । प्रिये मुधासमानीतासुशित्यर्धोक्तिमुच्चरन्
जहौ प्राणान् रणे वीरस्तां प्रियां परितः स्मरन् ॥ ८७ ॥
अनन्यपूर्वसंस्पर्शसुखं समनुभूय सा । तमेव च पतिं मत्वा चक्रेशोकाग्निसात्तनुम्
लिङ्गत्रयशरीरिण्यास्तस्याः सान्निध्यतः स हि ।
दिव्यं वपुः समासाद्य राक्षसस्त्रिदिवं ययौ ॥ ८६ ॥
णेपणीकृतप्राणो विद्याधरसुतोऽपि सः । अन्ते प्रियां स्मरन्प्राप जनुर्मलयकेतुतः
ध्यायन्ती साऽपि तं बाला विद्याधरकुमारकम् ।
विरहाग्नौ विसृष्टासुः कर्णाटे जन्मभागभूत् ॥ ६१ ॥
सुतो मलयकेतोस्तां कालेन परिणीतवान् ।
माल्यकेतुरनङ्गश्रीः पित्रा दत्तां कलावतीम् ॥ ६२ ॥
ापि प्राग्वासनायोगाल्लिङ्गार्चनरता सती । हित्वा मलयजक्षोदं विभूतिंबह्वमंस्तवै

मुक्तावैदूर्यमाणिक्यपुष्परागेभ्य एव सा । मेने रुद्राक्षनेपथ्यमनर्घ्यं गर्भसुन्दरी
कलावती माल्यकेतुं पतिं प्राप्य पतिव्रता । अपत्यत्रितयंलेभेदिव्यभोगसमृद्धिभाक्
एकदा कश्चिदौदीच्यो माल्यकेतुं नरेश्वरम् ।
चित्रकृच्चित्रपटिकां चित्रां दर्शितवानथ ॥ ९६ ॥
तांतु चित्रपटीं राजा कलावत्यै समार्पयत् । साथ चित्रपटींरम्यां संप्रहृष्टतनूरुहा
मुहुर्मुहुः प्रपश्यन्ती रहसि प्राणदेवताम् ।
विसस्मार स्वमपि च समाधिस्थेव योगिनी ॥ ९८ ॥
क्षणमुन्मील्य नयने कृत्वा नेत्रातिथिं पटीम् ।
तर्जन्यग्रमथोत्क्षिप्य स्वात्मानं समबोधयत् ॥ ९९ ॥
संभेदोऽयमसे! रम्यउपलोलार्कमग्रतः । उपश्रीकेशवपदं वरणैषा सरिद्वरा ॥ १००॥
स्वर्गे प्रार्थितसंस्पर्शासैषास्वर्गतरङ्गिणी । उदग्वहाभिलष्यन्तियांदिवोद्युसदःसदा
अलक्ष्या मोक्षलक्ष्मीर्या वेदान्ते परिपठ्यते ।
विमुक्तये सतां सैषा श्रीमती मणिकर्णिका ॥ १०२ ॥
मरणं मङ्गलं यत्र सफलं यत्र जीवितम् । स्वर्गस्तृणायते यत्र सैषाश्रीमणिकर्णिका
यत्र सम्पत्तिसम्भारान्विश्राण्यनिधनेच्छया ।
यतिव्रतं समालम्ब्य तिष्ठते मूलकन्दभुक् ॥ १०४ ॥
यत्र त्रिमार्गगां गङ्गांमार्गमाणोमृतान् हरः । स्वमौलिबालचन्द्रेणमुक्तिमार्गंप्रदर्शयन्
संसारं यत्र दुर्वारं प्रतारयति शङ्करः । मृता अप्यमृतायन्ते कर्णधाराद्यतो नराः
संसारसारपदवी यत्र स्याददवीयसी । कर्णे जपान्महेशानात्करुणावरुणालयात्
अनेकभवसम्भूतप्रभूतसुकृतैर्नराः । कर्णेजपं भवं यत्र लभन्ते ते भवापहम् ॥ १०८ ॥
स्वीकृत्य क्षेत्रसंन्यासंयद्बलेनमहाधियः । तृणं कृतान्तंमन्यन्तेसेयंश्रीमणिकर्णिका
तृणीकृत्य निजं देहं यत्र राजर्षिसत्तमः ।
हरिश्चन्द्रः सपत्नीको व्यक्रीणाद् भूरियं हिसा ११०॥
अभिलष्यन्ति यत्रत्यमपि वैकुण्ठवासिनः । सैकतंमृदुलं तल्पंसैषाश्रीमणिकर्णिका

अनेकजन्मजनितकर्मसूत्रनियन्त्रणम् । उन्मुच्य यत्रमुक्ताःस्युः सैषाश्रीमणिकर्णिका
सत्यलोकेऽपि ये लोकास्तेऽर्थयन्ति निरन्तरम् ।
यामहोदीर्घनिद्रायै सेयं श्रीमणिकर्णिका ॥ ११३ ॥
अयं हिसकुलस्तम्भो यत्रश्रीकालभैरवः । क्षेत्रपापकृतःशास्ति दर्शयंस्तीव्रयातनाम्
अन्यत्र विहितम्पापं नश्येत्काशीनिरीक्षणात् ।
काश्यां कृतानां पापानां दारुणेयन्तु यातना ॥ ११५ ॥
कपालमोचनंतीर्थमेतत्तदपि पावनम् । कपालं पतितं यत्र विधेर्भैरवपाणितः ॥
ऋणत्रयाद्विमुच्यन्ते यत्र स्नाता नरोत्तमाः । तीर्थंविशुद्धिजनकं तदेतदृणमोचनम्
प्रणवाख्यं परंब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते । स पञ्चायतनोपेत ॐङ्कारेशोऽयमद्भुतः ॥
अश्च उश्चमकारश्च नादो बिन्दुश्च पञ्चमः । पञ्चात्मकं परं ब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते
एषा मत्स्योदरी रम्या यत्स्नातो मानवोत्तमः ।
मातुर्जातूदरदरीं न विशेदेष निश्चयः ॥ १२० ॥
त्रिलोचनोयंभगवान्कुर्यादेवत्रिलोचनम् । निजभक्तंकृपायुक्तस्त्वपिदेशान्तरस्थितम्
असौ कामेश्वरो देवोयःकामान्पूरयेत्सताम् । दुर्वासाअपियत्रापनिजकाममहोदयम्
स्वयंलीनो महेशोत्रत्रभक्तकामसमृद्धये । तस्मात्स्वर्लीनसञ्ज्ञास्यदेवदेवस्यशूलिनः
वाराणस्यां महादेवो यः पुराणेषुपठ्यते । क्षेत्राभिमानीभगवांस्तत्प्रासादोऽयमद्भुतः
असौस्कन्देश्वरोदेवः श्रद्धयायद्विलोकनात् । आजन्मब्रह्मचर्यस्य फलमाप्नोतिमानवः
विनायकेश्वरश्चायं सर्वसिद्धिप्रदायकः । यत्सेवया प्रणश्यंन्तिनृणां सर्वेविनायकाः
इयं वाराणसी देवी साक्षान्मूर्त्तिमयी शुभा ।
यस्याविलोकनात्पुंसां भूयो नो गर्भसम्भवः ॥ १२७ ॥
पार्वतीश्वरलिङ्गस्य महदायतनंत्विदम् । यत्रनित्यं महेशानो गौर्यासह विमुक्तिदः
एष भृङ्गीश्वरः श्रीमान्महापातकनाशनः ।
जीवन्मुक्तोऽभवद् भृङ्गी यस्य लिङ्गस्य सेवया ॥ १२६ ॥
चतुर्वेदेश्वरश्चैष चतुर्वेदधरो विधिः । लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रो वेदाध्ययनजं फलम् ॥

यज्ञैः संस्थापितश्चैतल्लिङ्गं यज्ञेश्वराभिधम् । यदर्चनाल्लभेन्मर्त्यः सर्वयागफलं महत्
पुराणेश्वरनामैतल्लिङ्गमष्टादशाङ्गुलम् । अष्टादशानां विद्यानांस्यादाधारोयदीक्षणात्
धर्मशास्त्रेश्वरश्चायं स्मृतिभिश्च प्रतिष्ठितः ।
स्मृत्यध्ययनजम्पुण्यं यद्विलोकनतोभवेत् ॥ १३३ ॥
सारस्वतमिदं लिङ्गं सर्वजाड्यविनाशकृत् । सर्वतीर्थेश्वरंलिङ्गमेतत्सद्योविशुद्धिदम्
शैलश्वरस्यलिङ्गस्य मण्डपोऽयंमहाद्भुतः । सर्वेषांरत्नजातानां योबिभर्तिपरां श्रियम्
सप्तसागरसंज्ञं वै लिङ्गमेतन्मनोहरम् । यद्वीक्षणाल्लभेन्मर्त्यःसप्ताब्धिस्नानजं फलम्
असौमन्त्रेश्वरःश्रीमान्मन्त्रजाप्यफलप्रदः । सप्तकोटिमहामन्त्रैः स्थापितोयःपुरायुगे
त्रिपुरेशस्य लिङ्गस्यपुरः कुण्डमिदंमहत् । त्रिपुरैः खानितम्पूर्वं त्रिपुरारिप्रियम्परम्
इदं बाणेश्वरं लिङ्गं सहस्रभुजपूजितम् । द्विभुजस्यापि बाणस्य सहस्रभुजहेतुकम्
वैरोचनेश्वरश्चैष पुरः प्रह्लादकेशवात् । बलिकेशवनामासावेष नारदकेशवः ॥ १४० ॥
आदिकेशवपूर्वेण त्वयमादित्यकेशवः । भीष्मकेशवनामासौ दत्तात्रेयेश्वरस्त्वयम्
दत्तात्रेयेश्वरात्पूर्वमेष आदिगदाधरः । भृगुकेशवनामासावेष वामनकेशवः ॥ १४२ ॥
नरनारायणावेतौ यज्ञवाराहकेशवः । विदारनारसिंहोऽयं गोपीगोविन्द एष ह ॥१४३
एष लक्ष्मीनृसिंहस्य प्रासादो रत्नकेतनः । यस्य प्रसादात्प्रह्लादः पदमैन्द्रमवाप्तवान्
अखर्वसिद्धिदःपुंसामेष खर्वविनायकः । शेषमाधवनामासौ शेषेण स्थापितः पुरा
यस्य भक्ता न दह्यन्ते त्वपि संवर्तवह्निना ।
शङ्खमाधवनामाऽसौ शङ्खं हत्वाऽत्रसंस्थितः ॥ १४६ ॥
इदं सारस्वतंस्रोतः परं ब्रह्म रसायनम् । सरस्वत्या महानद्या सङ्गमो यत्र गङ्गया
यत्राप्लुतानरा भूयःसम्भवन्तिनभूतले । श्रीबिन्दुमाधवस्त्वेषसाक्षाल्लक्ष्मीपतिःपरः
श्रद्धया यं नमन्मर्त्यो न वसेद्गर्भवेश्मनि । नदारिद्र्यमवाप्नोतिव्याधिर्नाऽभिभूयते
बिन्दुमाधवभक्तो यस्तं यमोऽपि नमस्यति ।
प्रणवात्मा य एकोऽस्ति नादबिन्दुस्वरूपधृक् ॥ १५० ॥
अमूर्त्तं यत्परंब्रह्मबिन्दुमाधव एवसः । पतत्पञ्चनदन्तीर्थं पञ्चब्रह्मात्मसञ्ज्ञकम् ॥ १५१

यत्र स्नातो न गृह्णीयाच्छरीरं पाञ्चभौतिकम् ।
एषा सा मङ्गलागौरीकाश्यां परममङ्गलम् ॥ १५२ ॥
यत्प्रसादादवाप्नोति नरोऽत्र चपरत्र च । मयूखादित्यसञ्ज्ञोऽयंरश्मिमालीतमोपहः
गभस्तीशो महालिङ्गमेतद्दिव्यमहःप्रदम् ।
मृकण्डुसूनुनाऽप्यत्र तपस्तप्तं पुरा महत् ॥ १५४ ॥
लिङ्गं संस्थाप्य परमं स्वनाम्नायुःप्रदम्परम् ।
किरणेश्वरनामैतल्लिङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५५ ॥
सकृन्नतमिदं लोकं नयेत्किरणमालिनः । धौतपापेश्वरं लिङ्गमेतत्पातकधावनम्
निर्वाणनरसिंहोऽयं भक्तनिर्वाणकारणम् । मणिप्रदीपनागोऽयं महामणिविभूषणः
यदर्चनान्नरो जातु न नागैः परिभूयते । कपिलेशमिदं लिङ्गंकपिलेन प्रतिष्ठितम्
मुच्यन्ते कपयोऽप्यस्य दर्शनात्किमु मानवाः । प्रियव्रतेश्वरं लिङ्गं महदेतत्प्रकाशते
यस्यार्चनाल्लभेज्जन्तुः प्रियत्वं सर्वजन्तुषु । इदमायतनं श्रेष्ठंमणिमाणिक्यनिर्मितम्
श्रीमतः कालराजस्य कलिकालार्त्तिहारिणः ।
निजभक्तं जनं पाति यः पापात्पापभक्षणः ॥ १६१ ॥
क्षेत्रविघ्नकरान्पापान्यातयन्यातनाशतैः । इयं मन्दाकिनी रम्या तपस्तप्तुमिहागता
काशीवाससुखं प्राप्य नाद्याऽपि दिवमीहते ।
स्नात्वाऽत्र सन्तर्प्य पितॄञ्छ्राद्धं कृत्वा विधानतः ॥ १६३ ॥
नरो न नरकंपश्येदपि दुष्कृतकर्मकृत् ।
यानि कानि च लिङ्गानि काश्यां सन्ति सहस्रशः ॥ १६४ ॥
रत्नभूतमिदंतेषु लिङ्गं रत्नेश्वराभिधम् । रत्नेश्वरप्रसादेन भुक्त्वा रत्नान्यनेकशः
पुरुषार्थमहारत्नं निर्वाणं को न लब्धवान् । कृत्तिवासेश्वरस्यैषामहाप्रासादनिर्मितिः
यां दृष्ट्वाऽपि नरो दूरात्कृत्तिवासःपदं लभेत् ।
सर्वेषामपि लिङ्गानां मौलित्वं कृत्तिवाससः ॥ १६७ ॥
ओङ्कारेशः शिखा ज्ञेया लोचनानि त्रिलोचनः ।

गोकर्णभारभूतेशौ तत्कर्णौ परिकीर्तितौ ॥ १६८ ॥
विश्वेश्वराविमुक्तौ च द्वावेतौदक्षिणौ करौ । धर्मेशमणिकर्णेशौद्वौकरौदक्षिणेतरौ
कालेश्वरकपर्दीशौचरणावतिनिर्मलौ । ज्येष्ठेश्वरो नितम्बश्च नाभिर्वैमध्यमेश्वरः
कपर्दोऽस्य महादेवः शिरोभूषा श्रुतीश्वरः । चन्द्रेशोहृदयन्तस्य आत्मावीरेश्वरःपरः
लिङ्गन्तस्यतु केदारःशुक्रंशुक्रेश्वरं विदुः । अन्यानियानिलिङ्गानिपरःकोटिशतानि च
ज्ञेयानिनखलोमानिवपुषोभूषणान्यपि । यावेतौदक्षिणौहस्तौनित्यनिर्वाणदौहितौ
जन्तूनामभयं दत्त्वा पततांमोहसागरे । इयं दुर्गाभगवती पितृलिङ्गमिदम्परम्
इयं हि चित्रघण्टेशी घण्टाकर्णह्रदस्त्वयम् ।
इयं सा ललिता गौरी विशालाक्षीयमद्भुता ॥ १७५ ॥
आशाविनायकस्त्वेषधर्मकूपोऽयमद्भुतः । यत्रपिण्डान्नरो दत्त्वा पितॄन्ब्रह्मपदं नयेत्
एषा विश्वभुजादेवीविश्वैकजननीपरा । असौ बन्दीमहादेवीनित्यन्त्रैलोक्यवन्दिता
निगडस्थानपि जनान् पाशान्मोचयति स्मृता ।
दशाश्वमेधिकं तीर्थमेतत्त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ १७८ ॥
यत्राहुतित्रयेणाऽपिअग्निहोत्रफलंलभेत् । प्रयागाख्यमिदंस्रोतःसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्
अशोकाख्यमिदं तीर्थं गङ्गाकेशव एष वै । मोक्षद्वारमिदं श्रेष्ठं स्वर्गद्वारमिदं विदुः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
पूर्वार्धे ज्ञानवापीवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ज्ञानवापीप्रशंसनवर्णनम्

स्कन्द उवाच

पुनर्ददर्श तन्वङ्गी चित्रपत्न्यांघटोद्भव !। स्वर्गद्वारात्पुरोभागे श्रीमतीं मणिकर्णिकाम्
संसारसर्पदष्टानां जन्तूनां यत्र शङ्करः। अपसव्येन हस्तेन ब्रूते ब्रह्मस्पृशच्छ्रुतिम्
न कापिलेन योगेन न साङ्ख्येन न च व्रतैः।
या गतिः प्राप्यते पुम्भिस्तां दद्यान्मोक्षभूरियम् ॥ ३ ॥
वैकुण्ठेविष्णुभवनेविष्णुभक्तिपरायणाः। जपेयुःसततंमुक्त्यैश्रीमतींमणिकर्णिकाम्
हुत्वाऽग्निहोत्रमपि च यावज्जीवन्द्विजोत्तमाः।
अन्ते श्रयन्ते मुक्त्यै यां सेयं श्रीमणिकर्णिका ॥ ५ ॥
वेदान्पठित्वा विधिवद् ब्रह्मयज्ञरता भुवि।
यां श्रयन्ति द्विजा मुक्त्यै सेयं श्रीमणिकर्णिका ॥ ६ ॥
इष्ट्वा क्रतूनपिनृपावहून्पर्याप्तदक्षिणान्। श्रयन्ते श्रेयसेधन्याःप्रान्तेऽधिमणिकर्णिकम्
सीमन्तिन्योपिसततंपतिव्रतपरायणाः। मुक्त्यैपतिमनुव्रज्यश्रयन्तिमणिकर्णिकाम्
वैश्या अपि च सेवन्ते न्यायोपार्जितसम्पदः।
धनानि साधुसात्कृत्वा प्रान्ते श्रीमणिकर्णिकाम् ॥ ९ ॥
त्यक्त्वापुत्रकलत्रादिसच्छूद्रान्यायमार्गगाः। निर्वाणप्राप्तयेचैनांभजेयुर्मणिकर्णिकाम्
यावज्जीवञ्चरन्तोऽपि ब्रह्मचर्यञ्जितेन्द्रियाः।
निःश्रेयसे श्रयन्त्येनां श्रामतीं मणिकर्णिकाम् ॥ ११ ॥
अतिथीनपि सन्तर्प्य पञ्चयज्ञरता अपि।
गृहस्थाश्रमिणो नेमां त्यजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १२ ॥
वानप्रस्थाश्रमयुजोज्ञात्वानिर्वाणसाधनम्। सन्नियम्येन्द्रियग्रामंमणिकर्णीमुपासते

अनन्यसाधनां मुक्तिं ज्ञात्वा शास्त्रैरनेकधा ।
मुमुक्षुभिस्त्वेकदण्डैः सेव्यते मणिकर्णिका ॥ १४ ॥
दण्डयित्वा मनो वाचं कायं नित्यन्त्रिदण्डिनः ।
नैःश्रेयसीं श्रियम्प्राप्तुं श्रयन्ते मणिकर्णिकाम् ॥ १५ ॥
संन्यस्ताखिलकर्माणो दण्डयित्वाऽचलं मनः ।
एकदण्डव्रता मुक्त्यै भजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १६ ॥
शिखी मुण्डी जटी वापि कौपीनी वा दिगम्बरः ।
मुमुक्षुः को न सेवेत मुक्तिदां मणिकर्णिकाम् ॥ १७ ॥

तपः कर्तुं न शक्ता ये दानं वादातुमक्षमाः । योगाभ्यासविहीनायेतेषामेषाविमुक्तिदा
सन्त्युपायाः सहस्रन्तुमुक्तये नतथामुने । हेलयैषा यथादद्यान्निर्वाणं मणिकर्णिकाम्
अनशनव्रतभृतेत्रिकालाभ्यवहारिणे । प्रान्तेदद्यात्समांमुक्तिमुभाभ्यांमणिकर्णिकाम्
यथोक्तमाचरेदेको निष्ठा पाशुपतं व्रतम् । निरन्तरं स्मरेदेको द्वयेनांमणिकर्णिकाम्
द्वष्टात्र वपुषः पातेद्वयोश्च सदृशी गतिः । तस्मात्सर्वं विहायाशुसेव्यैषामणिकर्णिका
स्वर्गद्वारे विशेयुर्ये विगाह्यमणिकर्णिकाम् । तेषांविधूतपापानां क्वापिस्वर्गोनदूरतः
स्वर्गद्वाःस्वर्गभूरेषा मोक्षभूर्मणिकर्णिका । स्वर्गापवर्गावत्रैवनोपरिष्टान्न चाप्यधः
दत्त्वादानान्यनेकानिविगाह्यमणिकर्णिकाम् । स्वर्गद्वारम्प्रविष्टा येन तेनिरयगामिनः
स्वर्गापवर्गयोरर्थः कोविदैश्च निरूपितः । स्वर्गः सुखं समुद्दिष्टमपवर्गो महासुखम्
मणिकर्ण्युपविष्टस्ययत्सुखं जायते सतः । सिंहासनोपविष्टस्यतत्सुखं क्वशतक्रतोः
महासुखं यदुद्दिष्टंसमाधौविस्मृतात्मनाम् । श्रीमत्यांमणिकर्ण्यान्तत्सहजेनैवजायते
स्वर्गद्वारात्पुरोभागेदेवनद्याश्चपश्चिमे । सौभाग्यभाग्यैकनिधिःक्वाचिदेका महास्थली

यावन्तो भास्वतः स्पर्शाद्भासन्ते सैकताः कणाः ।
तावन्तो द्रुहिणा जग्मुर्नैत्येषा मणिकर्णिका ॥ ३० ॥
सन्ति तीर्थानि तावन्ति परितो मणिकर्णिकाम् ।
यावद्भिस्तिलमात्राऽपि न भूमिर्विरलीकृता ॥ ३१ ॥

यदन्वये कोऽपि मुक्तःसम्प्राप्य मणिकर्णिकाम् ।
तद्वंश्यस्तत्प्रभावेण मान्याः स्वर्गौकसामपि ॥ ३२ ॥
तर्पिताःपितरो येनसम्प्राप्य मणिकर्णिकाम् । सप्तसप्ततथासप्तपूर्वजास्तेन तारिताः
आमध्याद्देवसरित आहरिश्चन्द्रमण्डपात् । आगङ्गाकेशवादाचस्वर्द्वारान्मणिकर्णिका
एतद्रजःकणतुलान्त्रिलोक्यपि न गच्छति ।
एतत्प्राप्त्यै प्रयतते त्रिलोकस्थोऽखिलो भवी ॥ ३५ ॥
कलावती चित्रपटीम्पश्यन्तीत्थं मुहुर्मुहुः । ज्ञानवापींददर्शाथ श्रीविश्वेश्वरदक्षिणे
यदम्बुसततं रक्षेद्दुर्वृत्ताद्दण्डनायकः । सम्भ्रमोविभ्रमश्चासौदत्त्वाभ्रान्तिगरीयसीम्
योऽष्टमूर्त्तिर्महादेवः पुराणेपरिपठ्यते । तस्यैवाम्बुमयी मूर्तिर्ज्ञानदा ज्ञानवापिका
नेत्रयोरतिथीकृत्य ज्ञानवापीं कलावतीम् । कदम्बकुसुमाकारां बभार क्षणतस्तनुम्
अङ्गानि वेपथुम्प्रापुः स्विन्ना भालस्थली भृशम् ।
हर्षबाष्पाम्बुकलिले जाते तस्य विलोचने ॥ ४० ॥
तस्तम्भ गात्रलतिकामुखंवैवर्ण्यमापच । स्वरोऽथ गद्गदोजातो व्यभ्रंशत्तत्करात्पटी
साक्षणंस्वं विसस्मारकाहंकाहं नवेत्तिच । सौषुप्तायांदशायाञ्च परमात्मेवनिश्चला
अथ तत्परिचारिण्यस्त्वरमाणा इतस्ततः ।
किं किं किमेतद्देतत्किं पृच्छन्ति स्म परस्परम् ॥ ४३ ॥
तदवस्थां समालोक्य तां ताश्चतुरचेतसः । विज्ञाय सात्त्विकैर्भावैरिदमूचुःपरस्परम्
भवान्तरे प्रेमपात्रमेतयैक्षि तु किञ्चन । चिरात्तेन च सङ्गत्यसुखमूर्च्छामवाप ह
अथनेत्थं कथमियमकाण्डात्पर्यमूमुहत् । प्रेक्षमाणा रहश्चित्रपटीमतिपटीयसीम्
तन्मोहस्य निदानन्ताः सम्यगेव विचार्य च । उपचेरुर्महाशान्तैरुपचारैरनाकुलम्
काचित्तां वीजयाञ्चक्रे कदलीतालवृन्तकैः । बिसिनीवलयैरन्या धन्यांतापर्यभूषयत्
अमन्दैश्चन्दनरसैरभ्यषिञ्चदमुम्परा । अशोकपल्लवैरस्याः काचिच्छोकमनीनशत्
धारामण्डपधाराम्बुशीकरैस्तत्तनूलताम् । इष्टार्थविरहग्लानां सिञ्चयामास काचन
जलार्द्रवाससा काचिद्देतस्यास्तनुमावृणोत् । कर्पूरक्षोदजालेयैरन्यास्तामन्वलेपयन्

पद्मिनीदलशय्याञ्च काचिद्व्यरचयन्मृदुम् । काचित्कुलिशनेपथ्यंदूरीकृत्य तदङ्गतः
मुक्ताकलापं रचयांचक्रेवक्षोजमण्डले । काचिच्छशिमुखीतान्तुचन्द्राकान्तशिलातले
स्वापयामासतन्वङ्गींस्रवच्छीताम्बुशीतले दृष्ट्वोपचार्यमाणान्तामित्थम्बुद्धिशरीरिणी
अतितापपरीताङ्गी ताःसखीःप्रत्यभाषत । एतस्यास्तापशान्त्यर्थं जानेहम्परमौषधम्
उपचारानिमान्सर्वान्दूरीकुरुत माचिरम् । अपतापांकरोम्येनांसद्यः पश्यतकौतुकम्
दृष्ट्वाचित्रपटीमेषा सद्योविह्वलतामगात् । अत्रैव काचिदेतस्याःप्रेमभूरस्ति निश्चितम्
अतश्चित्रपटीस्पर्शात्परितापं विहास्यति ।
वाक्याद् बुद्धिशरीरिण्यास्ततस्तत्परिचारिकाः ॥ ४६ ॥
निधाय तत्पुरः प्रोचुःपटीम्पश्य कलावति !। तवानन्दकरी यत्र काचिदस्तीष्टदेवता
सापीष्टदेवता नाम्ना तत्पटीदर्शनेन च । सुधासेकमिवप्राप्यमूर्च्छांहित्वोत्थिताद्रुतम्
अवग्रहपरिम्लानावर्षासारैरिवौषधीः । पुनरालोकयाञ्चक्रे ज्ञानदां ज्ञानवापिकाम्
स्पृष्ट्वाकलावतीतान्तु वापीञ्चित्रगतामपि । लेभेभवान्तरज्ञानं यथाऽऽसीत्पूर्वजन्मनि
पुनर्विचारयाञ्चक्रे वापीमाहात्म्यमुत्तमम् । अहोचित्रगतापीयं संस्पृष्टा ज्ञानवापिका
ज्ञानंमेजनयामास भवान्तरसमुद्भवम् । अथ तासाम्पुरो हृष्टा कथयामास सुन्दरी
निजम्प्राग्भववृत्तान्तं ज्ञानवापीप्रभावजम् ।

कलावत्युवाच

एतस्माज्जन्मनः पूर्वमहं ब्राह्मणकन्यका ॥ ६५ ॥
उपविश्वेश्वरं काश्यां ज्ञानवाप्यां रमेमुदा । जनको मे हरिस्वामी जनयित्रीप्रियंवदा
आख्याममसुशीलेतिमाञ्चविद्याधरोऽहरत् । मध्येमार्गंनिशीथेऽथतदोपमलयाचलम्
रक्षसा स हतो वीरो राक्षसं स जघानह । रक्षोपिमुक्तं शापात्तु दिव्यं वपुरवाप ह
अवाप जन्मगन्धर्वस्त्वसौ मलयकेतुतः । कर्णाटनृपतेः कन्या बभूवाहं कलावती
इति ज्ञानं ममोद्भूतं ज्ञानवापीक्षणात्क्षणात् ।
इति तस्या वचः श्रुत्वा साऽपि बुद्धिशरीरिणी ॥ ७० ॥
ताश्च तत्परिचारिण्यः प्रहृष्टास्यास्तदाऽभवन् ।

प्रोचुस्ताम्प्रणिपत्याथ पुण्यशीलां कलावतीम् ॥ ७१ ॥
अहो! कथं हि सा लभ्या यत्प्रभावोऽयमीदृशः ।
धिग्जन्म तेषां मर्त्येऽस्मिन्यैर्नैक्षि ज्ञानवापिका ॥ ७२ ॥
कलावति! नमस्तुभ्यं कुरुनोपिसमीहितम् । जनिंसफलयास्माकंनयनःप्राथ्र्यभूपतिम्
अयञ्चनियमोस्माकमद्यारभ्यकलावति । निर्वेक्ष्यामोमहाभोगान्दृष्ट्वातांज्ञानवापिकाम्
अवश्यं ज्ञानवापीसानाम्ना भवितुमर्हति । चित्रश्चित्रगतापीह यातव ज्ञानदायिनी
ॐकृत्य तासां वाक्यं सा स्वाकारम्परिगोप्य च ।
प्रियाणि कृत्वा भूभर्तुः प्रस्तावज्ञा व्यजिज्ञपत् ॥ ७६ ॥

कलावत्युवाच

जीवितेश! न मे त्वत्तः किञ्चित्प्रियतरं क्वचित् ।
त्वामासाद्य पतिं राजन् प्राप्ताः सर्वे मनोरथाः ॥ ७७ ॥
एको मनोरथःप्राथ्र्यामिमास्त्यत्रार्यपुत्रक !। विचारपथमापन्नस्तवापि स महाहितः
मम तु त्वदधीनायाः सुदुष्प्रापतरो महान् ।
तव स्वाधीनवृत्तेस्तु सिद्धप्रायो मनोरथः ॥ ७६ ॥
प्राणेश! किम्बहूक्तेन यदि प्राणैः प्रयोजनम् ।
तदाभिलषितन्देहि प्राणा यास्यन्त्यथाऽन्यथा ॥ ८० ॥
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यास्तस्या वाक्यं निशम्य सः ।
उवाच वचनं राजा तस्याः स्वस्यापि च प्रियम् ॥ ८१ ॥

राजोवाच

नाहंप्रिये! तवादेयमिहपश्यामिभामिनि !। प्राणाअपिममक्रीतास्त्वयाशीलकलागुणैः
अविलम्बितमाचक्ष्व कृतं विद्धि कलावति !।
भवद्विधानां साध्वीनां मन्येऽप्राप्यं न किञ्चन ॥ ८३ ॥
कः प्राथ्र्यःप्रार्थनीयंकिंकोवाप्रार्थयिता प्रिये !। नपृथग्जनवत्किञ्चिद्वर्तनंनौकलावति!
देशः कोशो बलं दुर्गं यदन्यदपि भामिनि !।

तत्त्वदीयं न मे किञ्चित्स्वाम्यमात्रमिहास्ति मे ॥ ८५ ॥
तच्च स्वाम्यं ममान्यत्र त्वदृते जीवितेश्वरि !।
राज्यन्त्यजेयन्त्वद्वाक्यात्तृणीकृत्याऽपि मानिनि !॥ ८६ ॥
माल्यकेतोर्महीजानेरिति वाक्यं निशम्य सा ।
प्राह गम्भीरया वाचा वचश्चारु कलावती ॥ ८७ ॥

कलावत्युवाच

नाथ! प्रजासृजा पूर्वं सृष्टा नानाविधाः प्रजाः । प्रजाहिताय संसृष्टम्पुरुषार्थचतुष्टयम्
तद्विहीनाज्जनिरपि जलबुद्बुदवन्मुधा । तस्मादेकोपि संसाध्यः परत्रेह च शर्मणे
यत्रानुकूल्यन्दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते । यदुच्यते पुराविद्भिरिति तत्तथ्यमीक्षितम्
मद्विधानांतुदासीनां शतन्तेऽस्तीहमन्दिरे । तथापिनितराम्प्रेमस्वामिनोमयिदृश्यते
तव दास्यपि भोगाढ्या किमुताङ्कस्थलीचरी ।
तत्राऽप्यनन्यसम्पत्तिस्तत्र स्वाधीनभर्तृता ॥ ९२ ॥
विपश्चित्सञ्चयेदर्थानिष्टापूर्ताय कर्मणे । तपोर्थमायुर्निर्विघ्नं दारांश्चापत्यलब्धये ॥
तवैतत्सर्वमस्तीहविश्वेशानुग्रहात्प्रिय । पूरणीयोऽभिलाषो मे यदि तद्वच्म्यहंशृणु
तूर्णंप्रहिणु मांनाथविश्वनाथपुरीम्प्रति । प्राणाःप्रयाताःप्रागेववपुःशेषास्मि केवलम्
माल्यकेतुः कलावत्या इत्याकर्ण्य वचः स्फुटम् ।
क्षणं विचार्य स्वहृदि राजा प्रोवाच ताम्प्रियाम् ॥ ९६ ॥
प्रियेकलावतियदि तवगन्तव्यमेवहि । राज्यलक्ष्म्यानया किम्मेचलया त्वद्विहीनया
नराज्यंराज्यमित्याहूराज्यश्रीः प्रेयसीध्रुवम् । सप्ताङ्गमपितद्राज्यन्तयाहीनन्तृणायते
निःसपत्नं कृतं राज्यं भुक्त्वा भोगान्निरन्तरम् ।
हृषीकार्थाः कृतार्थाश्च विधृता आधृतिः प्रिये !॥ ९९ ॥
अपत्यान्यपि जातानि किं कर्तव्यमिहास्ति मे ।
अवश्यमेव गन्तव्याऽऽवाभ्यां वाराणसीपुरी ॥ १०० ॥
माल्यकेतुः प्रियामित्थमाश्वास्यकृतनिश्चयः । संमाहूय च दैवज्ञान्प्रकृतीःपरिपूज्यच

पुत्रेराज्यंनिधायाथ राजाकाशीम्प्रतस्थिवान् । रत्नजातंकियदपिपुत्रादर्थम्प्रगृह्यच
दृष्ट्वा विश्वेश्वरपुरीं हृष्टरोमा नरेश्वरः । मेने कृतार्थमात्मानं संसाराम्बुधिपारगम् ॥
प्राग्जन्मवासनायोगात्सापिराज्ञीकलावती । ग्रामान्तरादागतेवपुरीमार्गांनवैत्स्वयम्
मणिकर्ण्यामथ स्नात्वा भूरिदत्त्वाततो वसु । विश्वेशमर्चयित्वाऽथरत्नजातैरनेकशः
दत्त्वातत्रापिरत्नानिगजानश्वान् गवांव्रजम् । दुकूलानिविचित्राणिपूजोपकरणानिच
सुवर्णरूप्यकलशान्दीपीदर्पणचामरान् ।
ध्वजस्तम्भपताकाश्च विचित्रोल्लोचकानि च ॥ १०७ ॥
अथप्रदक्षिणीकृत्य मुक्तिमण्डपमाविशत् । तत्रधर्मकथां श्रुत्वादत्त्वातत्रापि सद्धनम्
सायन्तनीम्महापूजाम्पुनः कृत्वाक्षितीश्वरः । तत्रजागरणंकृत्वा तौर्यत्रिकमहोत्सवैः
अथप्रातःसमुत्थायकृत्वाशौचाचमक्रियाम् । राज्ञ्याविनिर्दिष्टपथाज्ञानवापींनृपोययौ
नृपः सार्धं कलावत्या तत्र सस्नौ प्रहृष्टवत् ।
अथ पिण्डान्सनिर्वाप्य सन्तर्प्य श्रद्धया पितॄन् ॥ १११ ॥
तत्र रूप्यसुवर्णादि पात्रेभ्यः प्रतिपाद्य च । दीनान्धकृपणानाथान् महार्हैरत्नजातकैः
प्रीणयित्वा नरपतिः पारणां कृतवांस्ततः । संस्कार्यरत्नसोपानैर्ज्ञानवापीं कलावती
आवबन्ध रतिं तत्र सह भर्त्रा तपस्विनी । एकान्तरोपवासैश्च कदाचिच्च त्र्यहोव्रतैः
षडहोभोजनैश्चापि पक्षार्धनियमैरथ । पक्षान्तरोपवासैश्च मासोपवसनादिभिः ॥
चान्द्रायणव्रतैः कृच्छ्रैर्भर्त्तुः शुश्रूषणैरपि । निनाय क्षणवत्कालमायुःशेषस्यसाऽनघाः
एकदा ज्ञानवाप्यान्तु प्रातः स्नात्वोपरिष्टयोः ।
आगत्य जटिलः कश्चिद्विभूतिं दत्तवान्करे ॥ ११७ ॥
उवाच च प्रसन्नास्य आशीर्भिरभिनन्द्यच । उत्तिष्ठतम्प्रकुरुतं महानेपथ्यमद्य वै ॥
तारकोदयसम्प्राप्तिर्भवित्री वां क्षणादिह । यावदित्थंसमाचष्ट जटिलोऽग्रे तयोर्वचः
तावद्विमानमापन्नं स क्वणत्किङ्किणीगणम् ।
पश्यतां सर्वलोकानाञ्चन्द्रमौलिरथोरथात् ॥ १२० ॥
उत्तीर्यतच्छ्रुतिपुटेकिमपिस्वयमादिशत् । अनाख्यंयत्परंज्योतिरुच्चक्रामघतत्क्षणात्

उद्योतयन्नभोवर्त्म देवोऽपि स्वालयंययौ ।

स्कन्द उवाच

तदाप्रभृति लोकेऽत्र ज्ञानवापी विशिष्यते ॥ १२२ ॥
सर्वेभ्यस्तीर्थमुख्येभ्यः प्रत्यक्षज्ञानदा मुने । सर्वज्ञानमयी चैषा सर्वलिङ्गमयी शुभा
साक्षाच्छिवमयी मूर्त्तिर्ज्ञानकृज्ज्ञानवापिका ।
सन्ति तीर्थान्यनेकानि सद्यः शुचिकराण्यपि ॥ १२४ ॥
परन्तु ज्ञानवाप्या हि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिं यः श्रोष्यति समाहितः ॥
न तस्य ज्ञानविभ्रंशो मरणे जायते क्वचित् ॥ १२५ ॥
महाख्यानमिदम्पुण्यम्महापातकनाशनम् । महादेवस्य गौर्याश्च महाप्रीतिविवर्धनम्
पठित्वा पाठयित्वा वा श्रुत्वा वा श्रद्धयाऽन्वितः ।
ज्ञानवाप्याः शुभाख्यानं शिवलोके महीयते ॥ १२७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे पूर्वार्धे ज्ञानवापीप्रशंसनवर्णनंनामचतुस्त्रिशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

कुम्भयोनिरुवाच

अविमुक्तं महाक्षेत्रं परं निर्वाणकारणम् । क्षेत्राणाम्परमं क्षेत्रं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्
श्मशानानाञ्च सर्वेषां श्मशानम्परमं महत् । पीठानाम्परमम्पीठमूषराणां महोषरम्
धर्माभिलाषिबुद्धीनां धर्मराशिकरम्परम् ।
अर्थार्थिनां शिखिरथ! परमार्थप्रकाशकम् ॥ ३ ॥

कामिनां कामजननं मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम् । श्रूयते यत्र यत्रैतत्तत्र तत्र परामृतम्
क्षेत्रैकदेशवर्तिन्या ज्ञानवाप्याः कथाम्पराम् । श्रुत्वेमामितिमन्येऽहं गौरीहृदयनन्दन

अणुप्रमाणमपि या मध्ये काशिविकाशिनी ।
मही महीयसी ज्ञेया सा सिद्ध्यै न मुधा क्वचित ॥ ६ ॥
कियन्ति सन्ति तीर्थानि नेह क्षोणीतलेऽखिले ।
परं काशीरजोमात्रतुलासाम्यं क्व तेष्वपि ॥ ७ ॥
कियन्त्यो न स्रवन्त्योऽत्र रत्नाकरमुदावहाः ।
परं स्वर्गतरङ्गिण्याः काश्यां का साम्यमुद्वहेत् ॥ ८ ॥
कियन्ति सन्ति नो भूम्यां मोक्षक्षेत्राणि षण्मुख !।
परं मन्येऽविमुक्तस्य कोऽप्यंशोपि न तेष्वहो ॥ ९ ॥

गङ्गाविश्वेश्वरः काशीजागर्तित्रितयंयतः । तत्रनैःश्रेयसीलक्ष्मीर्लभ्यतेचित्रमत्रकिम्
कथमेषा त्रयीस्कन्द! प्राप्यते नियतं नरैः । तिष्ये युगेविशेषेणनितरांचञ्चलेन्द्रियैः

तपस्तादृक् क्व वा तिष्ये तिष्ये योगः क्वतादृशः ।
क्व वा व्रतं क्व वा दानंतिष्ये मोक्षस्त्वतः कुतः ॥ १२ ॥
विनाऽपि तपसा स्कन्द! विना योगेन षण्मुख !।
विना व्रतैर्विनादानैः काश्यां मोक्षस्त्वयेरितः ॥ १३ ॥

किंकिमाचरता स्कन्द काशीप्राप्येत तद्वद । मन्येविनासदाचारंनसिद्ध्येयुर्मनोरथाः
आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः । आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारात्पापसंक्षयः
आचारमेव प्रथमं तस्मादाचक्ष्व षण्मुख !। देवदेवो यथा प्राह तवाग्रे त्वं तथावद

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणजाख्यामि सदाचारं सतां हितम् ।
यदाचरन्नरो नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥
स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।
क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥ १८ ॥

सहस्रभागः प्रथमाद्द्वितीयोनुक्रमात्तथा । सर्व एतेमहाभागायावन्मुक्तिसमाश्रयाः
चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोऽतीव चोत्तमाः ।
प्राणिभ्योऽपि मुने!श्रेष्ठाः सर्वे बुद्ध्युपजीविनः ॥ २० ॥
मतिमद्भ्यो नराः श्रेष्ठास्तेभ्यः श्रेष्ठास्तुवाडवाः ।
विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥ २१ ॥
कृतधीभ्योपि कर्तारः कर्तृभ्योब्रह्मतत्पराः । नतेषामर्चनीयोऽन्यस्त्रिषुलोकेषुकुम्भज
अन्योन्यमर्चकास्तेवै तपोविद्याऽविशेषतः । ब्राह्मणोब्रह्मणासृष्टः सर्वभूतेश्वरोयतः
अतोजगत्स्थितंसर्वंब्राह्मणोऽर्हतिनापरः । सदाचारोहिसर्वार्होनाचाराद्विच्युतःपुनः
तस्माद्विप्रेण सततं भाव्यमाचारशीलिना॥ २४ ॥
विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्तियंमुने !। विद्वांसस्तं सदाचारंधर्ममूलं विदुर्बुधाः
लक्षणैः परिहीनोपि सम्यगाचारतत्परः । श्रद्धालुरनसूयुश्च नरोजीवेत्समाःशतम्
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं स्वेषु च कर्मसु । सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ॥
दुराचाररतोलोकेगर्हणीयःपुमान्भवेत् । व्याधिभिश्चाभिभूयेतसदाल्पायुःसुदुःखभाक्
त्याज्यं कर्म पराधीनं कार्यमात्मवशं सदा ।
दुःखीयतः पराधीनः सदैवात्मवशः सुखी ॥ २६ ॥
यस्मिन्कर्मण्यन्तरात्मा क्रियमाणे प्रसीदति । तदेवकर्मकर्तव्यंविपरीतं न चक्वचित्
प्रथमं धर्मसर्वस्वं प्रोक्ता यन्नियमायमाः । अतस्तेष्वेव वै यत्नःकर्तव्योधर्ममिच्छता
सत्यं क्षमार्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ।
दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश॥ ३२ ॥
शौचं स्नानन्तपोदानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम् ।
उपोषणोपस्थदण्डौ दशैतेनियमाः स्मृताः ॥ ३३ ॥
कामं क्रोधं मदं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च ।
अमून् षड्वैरिणो जित्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ३४ ॥
शनैः शनैः सञ्चिनुयाद्धर्मंवल्मीकशृङ्गवत् । परपीडामकुर्वाणः परलोकसहायिनम्

धर्म एव सहायी स्यादमुत्र न परिच्छदः । पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनादिकः
जायते चैकलः प्राणी प्रम्रियेततथैकलः । एकलः सुकृतम्भुङ्क्ते भुङ्क्तेदुष्कृतमेकलः
देहं पञ्चत्वमापन्नं त्यक्त्वा कौ काष्ठलोष्टवत् ।
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥
कृती सञ्चिनुयाद्धर्मं ततोऽमुत्रसहायिनम् । धर्मंसहायिनंलब्ध्वासन्तरेद्दुस्तरंतमः
सम्बन्धानाचरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैःसुधीः । अधमानधमांस्त्यक्त्वाकुलमुत्कर्षतां नयेत्
उत्तमानुत्तमानेव गच्छन् हीनांश्च वर्जयन् । ब्राह्मणःश्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्
अनध्ययनशीलञ्च सदाचारविलङ्घिनम् । सालसञ्च दुरन्नादं ब्राह्मणम्बाधतेऽन्तकः
ततोऽभ्यसेत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विजः ।
तीर्थान्यप्यभिलष्यन्ति सदाचारिसमागमम् ॥ ४३ ॥
रजनीप्रान्तयामार्धं ब्राह्मःसमयउच्यते । स्वहितञ्चिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिंश्चोत्थायसर्वदा
गजास्यंसंस्मरेदादौ ततईशंसहाम्बया । श्रीरङ्गं श्रीसमेतन्तु ब्रह्माण्या कमलोद्भवम्
इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥ ४६ ॥
क्षीरोदादीन्समुद्रांश्चमानसादिसरांसि च । वनानिनन्दनादीनिधेनूःकामदुघादिकाः
कल्पवृक्षादिवृक्षांश्चधातून्काञ्चनमुख्यतः । दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्यागरुडादीन्पतत्रिणः
नागांश्च शेषप्रमुखान् गजानैरावतादिकान् ।
अश्वानुच्चैःश्रवोमुख्यान् कौस्तुभादीन्मणीञ्छुभान् ॥ ४९ ॥
स्मरेदरुन्धतीमुख्याःपतिव्रतवतीवधूः । नैमिषादीन्यरण्यानि पुरीः काशीपुरीमुखाः
विश्वेशादीनि लिङ्गानि वेदानृक्प्रमुखानपि ।
गायत्रीप्रमुखान्मन्त्रान्योगिनःसनकादिकान् ॥ ५१ ॥
प्रणवादिमहाबीजंनारदादींश्चवैष्णवान् । शिवभक्तांश्चबाणादीन्प्रह्लादादीन्दृढव्रतान्
वदान्यांश्च दधीच्यादीन्हरिश्चन्द्रादिभूपतीन् ।
जननीचरणौ स्मृत्वा सर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ ५३ ॥

पितरश्च गुरूंश्चापिहृदिध्यात्वाप्रसन्नधीः । ततश्चावश्यकंकर्त्तुं नैर्ऋतींदिशमाश्रयेत्
ग्रामद्धनुःशतंगच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम् । तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा
कर्णोपवीत्युदग्वक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ।
विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः ॥ ५६ ॥
नतिष्ठन्नाप्सुनो विप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः । न फालकृष्टे भूभागेन रथ्यासेव्यभूतले
नालोकयेद्दिशोभागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभोमलम् ।
वामेन पाणिना शिश्नं धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ॥ ५८ ॥
अथो मृदं समादाय जन्तुकर्करवर्जिताम् ।
विहाय मूषकोत्खातां शौचोच्छिष्टाश्च नाकुलाम् ॥ ५९ ॥
गुह्ये दद्यान्मृदश्चैकाम्पायौपञ्चाम्बुसान्तराः । दश वामकरे चापि सप्तपाणिद्वये मृदः
एकैकाम्पादयोर्दद्यात्तिस्रः पाण्योर्मृदस्तथा । इत्थं शौचं गृहीकुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि
क्रमाद्द्वैगुण्यमेतस्माद्ब्रह्मचर्यादिषुत्रिषु । दिवाविहितशौचस्य रात्रावर्धं समाचरेत्
रुज्यर्धश्च तदर्धश्च पथिचौरादिबाधिते । तदर्धंयोषिताञ्चापि सुस्थे न्यूनं न कारयेत्
अपिसर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चापि गोमयैः । आपादमाचरञ्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक्
आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ।
सर्वाश्चाहुतयोऽप्येव ग्रासाश्चान्द्रायणेऽपि च ॥ ६५ ॥
प्रागास्य उदगास्यो वा सूपविष्टः शुचौ भुवि ।
उपस्पृशेद्विहीनायान्तुषाङ्गारास्थिभस्मभिः ॥ ६६ ॥
अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिर्हृद्गाभिरत्वरः । ब्राह्मणो ब्राह्मतीर्थेन दृष्टिपूताभिराचमेत्
कण्ठगाभिर्नृपः शुद्ध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः ।
स्त्रीशूद्रावास्यसंस्पर्शमात्रेणापि विशुद्ध्यतः ॥ ६८ ॥
शिरःप्रावृत्यकण्ठं वाजलेमुक्तशिखोऽपि च । अक्षालितपदद्वन्द्वआचान्तोप्यशुचिर्मतः
त्रिः पीत्वाम्बुविशुद्ध्यर्थन्ततः खानि विशोधयेत् ।
अङ्गुष्ठमूलदेशेनद्विर्द्विरोष्ठाधरौ स्पृशेत् ॥ ७० ॥

अङ्गुलीभिस्त्रिभिःपश्चात्पुनरास्यंस्पृशेत्सुधीः ।तर्जन्यङ्गुष्ठकोट्याचघ्राणरन्ध्रेपुनःपुनः
अङ्गुष्ठानामिकाग्राभ्यां चक्षुः श्रोत्रेपुनः पुनः । कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेननाभिरन्ध्रमुपस्पृशेत्
स्पृष्ट्वा तलेन हृदयं समस्ताभिः शिरः स्पृशेत् ।
अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्वत्र संस्पृशेत् ॥ ७३ ॥
आचान्तःपुनराचामेत्कृतेरथ्योपसर्पणे । स्नात्वामुक्त्वापयःपीत्वाप्रारम्भेशुभकर्मणाम्
सुप्त्वावासःपरीधायतथादृष्ट्वाप्यमङ्गलम् । प्रमादादशुचिस्पृष्ट्वाद्विराचान्तः शुचिर्भवेत्
अथो मुखविशुद्ध्यर्थं गृह्णीयाद्दन्तधावनम् ।
आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ ७६ ॥
प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवासरे । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम्
अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धेवाऽथ वासरे । गण्डूषा द्वादशग्राह्या मुखस्यपरिशुद्धये
कनिष्ठाग्रपरीमाणं सत्वचंनिर्व्रणंऋजुम् । द्वादशाङ्गुलमानञ्च सार्धं स्याद्दन्तधावनम्
एकैकाङ्गुलह्रासेनवर्णेष्वन्येषुकीर्तितम् । आम्राम्रातकधात्रीणां कङ्कोलखदिरोद्भवम्
शम्यपामार्गखर्जूरीशेलुश्रीपर्णिपीलुजम् । राजादनञ्च नारङ्गं कषायकटुकण्टकम्
क्षीरवृक्षोद्भवंवापिप्रशस्तंदन्तधावनम् । जिह्वोल्लेखनिकांचापिकुर्याच्चापाकृतिंशुभाम्
अन्नाद्यायव्यूहध्वंसो सोमोराजायमागतम् । समेमुखम्प्रमार्क्ष्यते यशसाच भगेन च
आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनिच । ब्रह्मप्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वन्नो देहि वनस्पते
मन्त्रावेतौ समुच्चार्ययःकुर्याद्दन्तधावतम् । वनस्पतिगतःसोमस्तस्यनित्यम्प्रसीदति
मुखेपर्युषिते यस्माद्भवेदशुचिभाङ्नरः । ततः कुर्यात्प्रयत्नेनशुद्ध्यर्थं दन्तधावनम्
उपवासेऽपिनो दुष्येद्दन्तधावनमञ्जनम् । गन्धालङ्कारसद्वस्त्रपुष्पमालानुलेपनम् ८७
प्रातःसन्ध्यां ततःकुर्याद्दन्तधावनपूर्विकाम् । प्रातःस्नानञ्चरित्वाचशुद्धेतीर्थेविशेषतः
प्रातः स्नानाद्यतः शुद्ध्येत्कायोऽयं मलिनः सदा ।
छिद्रितोनवभिश्छिद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम् ॥ ८६ ॥
उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्त्तकम् । मनः प्रसन्नताहेतुः प्रातः स्नानम्प्रशस्यते
प्रस्वेदलालाद्याक्लिन्नो निद्राधीनो यतो नरः ।

प्रातः स्नानात्ततोऽर्हः स्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु ॥ ९१ ॥
प्रातःप्रातस्तुयत्स्नानं सञ्जातेचारुणोदये । प्राजापत्यसमम्प्राहुस्तन्महाघविघातकृत्
प्रातः स्नानं हरेत्पापमलक्ष्मीं ग्लानिमेव च ।
अशुचित्वञ्च दुःस्वप्नं तुष्टिम्प्रपुष्टिम्प्रयच्छति ॥ ९३ ॥
नोपसर्पन्तिवै दुष्टाःप्रातःस्नायिजनंक्वचित् । दृष्टादृष्टफलंयस्मात्प्रातःस्नानंसमाचरेत्
प्रसङ्गतः स्नानविधिं वक्ष्यामि कलशोद्भव !।
विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥ ९५ ॥
विशुद्धां मृदमादाय बर्हींषि तिलगोमयम् ।
शुचौ देशे परिस्थाप्य त्वाचम्य स्नानमाचरेत् ॥ ९६ ॥
उपग्रही बद्धशिखो जलमध्ये समाविशेत् । उरुंहीति मन्त्रेण तोयमावर्त्यसृष्टितः
येते शतन्ततो जप्त्वा तोयस्यामन्त्रणाय च ।
सुमित्रियानो मन्त्रेण पूर्वं कृत्वा जलाञ्जलिम् ।
क्षिपेद् द्वेष्यं समुद्दिश्य जपन् दुर्मित्रिया इति ॥ ९८ ॥
इदं विष्णुरिमञ्जप्त्वा लिम्पेदङ्गानि मृत्स्नया ।
मृदैकया शिरः क्षाल्य द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ॥ ९९ ॥
नाभेरधस्तु तिसृभिः पादौ षड्भिर्विशोधयेत् ।
मज्जेत्प्रवाहाभिमुख आपो अस्मानिमं जपन् ॥ १०० ॥
उद्दिदाभ्यः शुचिरिति मन्त्र उन्मज्जने मतः ।
मानस्तोक इमं जप्त्वा लिम्पेद्गात्राणि गोमयैः ॥ १०१ ॥
इमम्मेवरुणेत्यादिमन्त्रैः स्वात्माभिषेचनम् ।
तत्त्वायामि तथा त्वन्नः सत्वं नश्चाप्युदुत्तमम् ॥ १०२ ॥
धाम्नो धाम्नस्तथा मापोमौषधीरिति संजपेत् ।
यदाहुरघ्न्या मुञ्चन्तु मेति चावभृथेति च ॥ १०३ ॥
अब्दैवता इमे मन्त्राः प्रोक्ताः स्वात्माभिषेचने ।

प्रणवेन ततो विप्रो महाव्याहृतिभिस्ततः ॥ १०४ ॥
आत्मानम्पावयेद्विद्वान् गायत्र्या च ततः कृती ।
आपोहिष्ठेति तिसृभिः प्रत्यृचंपावनं स्मृतम् ॥ १०५ ॥
एतेऽपिपावना मन्त्रा इदमापो हविष्मतीः । देवीराप अपो देवा द्रुपदादिव संज्ञकाः
शन्नोदेवीरपो देवीरपाᳫंरसमित्यपि । पुनन्तु मेति च नव पावमान्यः प्रकीर्तिताः
ततोऽघमर्षणं जप्त्वा द्रुपदाञ्च ततो जपेत् । प्राणायामञ्चविधिवदथवान्तर्जलेजपेत्
प्रणवं त्रिर्जपेद्वापि विष्णुं वा संस्मरेत्सुधीः ।
स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौतवाससी ॥ १०६ ॥
आचम्य च ततःकुर्यात्प्रातःसन्ध्यां कुशान्विताम् ।
यो न सन्ध्यामुपासीत ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥ ११० ॥
स जीवन्नेव शूद्रस्तु मृतःश्वाजायते ध्रुवम् । सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसु
यदन्यत्कुरुतेकर्मनतस्यफलभाग्भवेत् । प्रणवम्प्राग्दिशिस्मृत्वाततोदत्त्वाकुशासनम्
चतुःसूक्तिरिमं मन्त्रं पठित्वा नान्यदृङ्मनाः ॥ ११३ ॥
प्राङ्मुखोबद्धचूडोवाप्युपविष्टउदङ्मुखः । प्रदक्षिणंस्वमभ्युक्ष्यप्राणायामंसमाचरेत्
गायत्रींशिरसासार्धंसप्तव्याहृतिपूर्विकाम् । त्रिर्जपेत्सदशोङ्कारःप्राणायामोयमुच्यते
प्राणायामांश्चरन्विप्रो नियतेन्द्रियमानसः । अहोरात्रकृतैः पापैर्मुक्तोभवतितत्क्षणात्
दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदि । नियम्य मानसं तेन तदातप्तंमहत्तपः
सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तुषोडश । अपिभ्रूणंहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः
यथा पार्थिवधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ।
तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वाल्यन्ते प्राणसंयमात् ॥ ११६ ॥
एकं सम्भोज्य विधिवद्व ब्राह्मणं यत्फलं लभेत् ।
प्राणायामैर्द्वादशभिस्तत्फलं श्रद्धयाऽऽप्यते ॥ १२० ॥
वेदादिवाङ्मयं सर्वं प्रणवे यत्प्रतिष्ठितम् । ततः प्रणवमभ्यस्येद्वेदादिं वेदजापकः
प्रणवेनित्ययुक्तस्यसप्तसुव्याहृतिष्वपि । त्रिपदायान्तुगायत्र्यां न भयंजायतेक्वचित्

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः । गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं कलशोद्भव
कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम् ।
उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत् ॥ १२४ ॥
यदह्ना कुरुतेपापंमनोवाक्कायकर्मभिः । आसीनः पश्चिमांसन्ध्यांतत्प्राणायामतोहरेत्
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमान्तु समासीनः सम्यगर्क्षविभावनात् ॥ १२६ ॥
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमान्तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ १२७ ॥
नोपतिष्ठेत्तुयः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्ब बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द द्विजकर्मणः ॥ १२८ ॥
अपांसमीपमासाद्य नित्यकर्म्मसमाचरेत् । गायत्रीमप्यधीर्यात गत्वारण्यंसमाहितः
गृहाद्द बहुगुणा यस्मात्सन्ध्याबहिरुपासिता ।
गायत्र्यभ्यासमात्रोऽपि वरं विप्रो जितेन्द्रियः ॥ १३० ॥
त्रिवेद्यपि चनोमान्यः सर्वभुक्सर्वविक्रयी । सवितादेवतायस्यामुखमग्निस्त्रिपाच्चया
विश्वामित्रोऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ।
गायत्रीमुषसि ध्यायेल्लोहितां ब्रह्मदैवताम् ॥ १३२ ॥
हंसाऽऽरूढामष्टवर्षां शुक्लस्रगनुलेपनाम् । ऋक्स्वरूपामभयदामक्षमालावलम्बिनीम्
व्यासर्षिणास्तूयमानांछन्दसानुष्टुभायुताम् । एतद्ध्यानादुषर्दैव्यानैशमेनोव्यपोहति
सूर्यश्चेति च मन्त्रेण स्यादाचमनमुत्तमम् । आपोहिष्ठेतितिसृभिर्मार्जनन्तु ततश्चरेत्
भूमौ शिरसि चाऽऽकाशे आकाशे भुवि मस्तके ।
मस्तके च तथाऽऽकाशे भूमौ च नवधा क्षिपेत् ॥ १३६ ॥
भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयंस्मृतम् । शिरस्येवशिरः शब्दो मार्जनज्ञैरुदाहृतः ॥
वारुणादपिचाग्नेयाद्वायव्यादपिचैन्द्रतः । मन्त्रस्नानादपि परं ब्राह्मंस्नानमिदं परम्
ब्राह्मस्नानेन यः स्नातः स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ।

सर्वत्र चार्हतामेति देवपूजादिकर्मणि ॥ १३६ ॥
नक्तन्दिनं निमज्ज्याप्सु कैवर्ताः किमु पावनाः ।
शतशोऽपि तथा स्नाता न शुद्धा भावदूषिताः ॥ १४० ॥
अन्तःकरणशुद्धा येतान्विभूतिःपवित्रयेत् । किंपावनाःप्रकीर्त्यन्तेरासभाभस्मधूसराः
स स्नातः सर्वतीर्थेषु ससर्वमलवर्जितः । तेन क्रतुशतैरिष्टंचेतो यस्येहनिर्मलम् ॥
तदेव निर्मलश्चेतो यथा स्यात्तन्मुने! शृणु ।
विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्तदास्यान्नान्यथा क्वचित् ॥ १४३ ॥
तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थंकाशीनाथंसमाश्रयेत् । तदाश्रयेणनियतंसंक्षीयन्तेमनोमलाः
संक्षीणमानसमलो विश्वेशानुग्रहात्परात् । इदं शरीरमुत्सृज्य परम्ब्रह्माधिगच्छति
विश्वेशानुग्रहेहेतुःसदाचारोमतो नृणाम् । श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंतस्मात्तमनुसंश्रयेत्
द्रुपदान्तु ततोजप्त्वा जलमादायपाणिना । कुर्याद्व्रतश्चमन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम्
निमज्ज्याप्सु च यो विद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम् ।
यथाश्वमेधावभृथस्तस्य स्यात्तत्तथा ध्रुवम् ॥ १४८ ॥
जलेवाऽपि स्थलेवाऽपियःकुर्यादघमर्षणम् । तस्याघौघोविनश्येतयथासूर्योदयेतमः
इमंमन्त्रन्ततश्चोक्त्वा कुर्यादाचमनंद्विजः । आचार्याःकेचिदिच्छन्तिशाखाभेदेनचापरे
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम् ॥ १५१ ॥
गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृतिपूर्विकाम् ।
प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन् क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ॥ १५२ ॥
तेन वज्रोदकेनाशुमन्देहानाम राक्षसाः । सूर्यारयः प्रलीयन्ते शैला वज्रहताइव ॥
विवस्वतःसहायार्थंयोद्विजोनाञ्जलित्रयम् । क्षिपेन्मन्देहनाशायसोपिमन्देहतांव्रजेत्
प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्य दर्शनम् ।
उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात् ॥ १५५ ॥
काललोपोनकर्तव्योद्विजेनस्वहितेप्सुना । अर्द्धोदयास्तसमयेतस्माद्वज्रोदकं क्षिपेत्

विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीताऽफलाभवेत् ।
अयमेव हि दृष्टान्तो वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ १५७ ॥
जलं वामकरे कृत्वा या सन्ध्याचरिताद्विजैः । वृषली सा परिज्ञेयारक्षोगणमुदावहा
उद्वयन्तमुदुत्यञ्च चित्रन्देवेतितत्परम् । तच्चक्षुरित्युपस्थानमन्त्राव्रध्नस्य सिद्धिदाः
सहस्रकृत्वो गायत्र्याः शतकृत्वोऽथवा पुनः ।
दशकृत्वोऽथ देव्यैव कुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ॥ १६० ॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यान्दशावराम् । गयत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते
विभ्राडित्यनुवाकं वा सूक्तंवापौरुषं जपेत् । शिवसङ्कल्पमथवा ब्राह्मणं मण्डलन्तुवा
एतानि चोपस्थानानि रविप्रीतिकराणि च । रक्तचन्दनमिश्राद्भिरक्षतैः कुसुमैःकुशैः
वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घम्प्रदापयेत् । अर्चितः सवितायेन तेन त्रैलोक्यमर्चितम्
अर्चितः सवितासूनेसुतान् पशुवसूनिच । व्याधीन्हरेद्ददात्यायुः पूरयेद्वाञ्छितान्यपि
अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकरः । रविर्हिरण्यगर्भोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्यमा
रवेस्तु तोषणात्तुष्टा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । इन्द्रादयोऽखिला देवा मरीच्याद्यामहर्षयः
मानवा मनुमुख्याश्च सोमपाद्याःपितामहाः । रवेरर्चां विधायेत्थं ततस्तर्पणमारभेत्
दर्भानगर्भानादायनव सप्तचपञ्चवा । साग्रान्समूलानच्छिन्नान् द्विजोदक्षिणपाणिना
अन्वारब्धेन सव्येन तर्पयेत् षड्विनायकान् ।
ब्रह्मादीनखिलान्देवान् मरीच्यादींस्तथा मुनीन् ॥ १७० ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीगन्धवत्कुसुमैरपि । तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्विवति समुच्चरन्
सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तर्प्पयेद्यवैः । अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृजून्द्विजः
कव्यवाडनलादींश्च पितृन्दिव्यान्प्रतर्प्पयेत् ।
प्राचीनावीतिको दर्भैर्द्विगुणैस्तिलमिश्रितैः ॥ १७३ ॥
रवौ शुक्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां निशि सन्ध्ययोः ।
श्रेयोऽर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ १७४ ॥
यदि कुर्यात्ततः कुर्याच्छुक्लैरेवतिलैःकृती । चतुर्दश यमान्पश्चात्तर्पयेन्नाम उच्चरन् ॥

ततःस्वगोत्रमुच्चार्य तर्प्पयेत्स्वपितॄन्मुदा । सव्यजानुनिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यतः
एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादिकाः ।
पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्ति स्त्रिय एकैकमञ्जलिम् ॥ १७७ ॥
अङ्गुल्यग्रे भवेद्दैवमार्षमङ्गुलिमूलगम् । ब्राह्ममङ्गुष्ठमूले तु पाणिमध्ये प्रजापतेः ॥ १७८
मध्येऽङ्गुष्ठप्रदेशिन्योःपित्र्यन्तीर्थम्प्रचक्षते । नवर्चमुच्चरन्विद्वान्विदध्यात्पितृतर्पणम्
उदीरतामङ्गिरस आयन्तु न इतीष्यते । ऊर्जंवहन्तीपितृभ्यःस्वधायिभ्यस्ततःपठेत्
ये चेहपितरस्तद्वन्मधुवाताइतित्र्यृचम् । नमोवः पितरश्चोक्त्वापठन्सिञ्चेज्जलम्भुवि
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः । तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनांसप्तद्वीपनिवासिनाम् । आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तुतिलोदकम्
ये चाऽस्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणोमृताः ।
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु वस्त्रनिष्पीडनोदकैः ॥ १८४ ॥
अग्निकार्यन्ततः कृत्वा वेदाभ्यासन्ततश्चरेत् ।
श्रुत्यभ्यासःपञ्चधा स्यात् स्वीकारोऽर्थविचारणम् ॥ १८५ ॥
अभ्यासश्च जपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ।
लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्य च लब्धये ॥ १८६ ॥
दातारं समुपेयाद्वै स्वगुरुत्वञ्च वर्धयेत् । प्रातःकृत्यमिदम्प्रोक्तंद्विजातीनांद्विजोत्तम!
अथवाप्रातरुत्थाय कृत्वाऽऽवश्यकमेव च । शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥
विशोध्य सर्वगात्राणि प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ।
वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधान्यपि ॥ १८९ ॥
अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ।
उपेयादीश्वरञ्चैवयोगक्षेमादिसिद्धये ॥ १९० ॥
ततोमध्याह्नसिद्ध्यर्थं पूर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ॥ १९१ ॥
नवयौवनभिन्नाङ्गीं शुद्धस्फटिकनिर्मलाम् ।

त्रिष्टुप्छन्दःसमायुक्तां सावित्रीं रुद्रदैवताम् ॥ १९२ ॥
कश्यपर्षिसमायुक्तां युजुर्वेदस्वरूपिणीम् । त्र्यक्षरांवृषभारूढां भक्ताभयकराम्पराम्
देवताम्परिपूज्याऽथनैत्यिकंविधिमाचरेत् । पचनाग्निसमुज्ज्वाल्यवैश्वदेवंसमाचरेत्
निष्पावान्कोद्रवान्माषान् कलायांश्चणकांस्त्यजेत् ।
तैलपक्वञ्च पक्वान्नं सर्व्वं लवणयुक् त्यजेत् ॥ १९५ ॥
आढकीश्च मसूरांश्च वर्तुलान्वरटांस्तथा । भुक्तशेषं पर्युषितं वैश्वदेवे विवर्जयेत्
दर्भपाणिः समाचम्यप्राणायामं विधायच । पृष्ठोदीवीतिमन्त्रेण पर्युक्षणमथाचरेत्
प्रदक्षिणञ्चपर्युक्ष्य त्रिपरिस्तीर्यवैकुशान् । एषोहदेवमन्त्रेण कुर्याद्वह्निं सुसम्मुखम्
वैश्वानरं समभ्यर्च्य साज्यपुष्पाक्षतैरथ ।
भूराद्याश्चाहुतीस्तिस्रः स्वाहान्ताः प्रणवादिकाः ॥ १९९ ॥
ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहेतिविप्रोदद्यात्तथाहुतिम् । तथादेवकृतस्याद्याज्जुहुयाच्चषडाहूतीः
यमाय तूष्णीमेकाञ्च तथा स्विष्टकृतीद्वयम् ।
विश्वेभ्यश्चापि देवेभ्यो भूमौ दद्यात्ततो बलिम् ॥ २०१ ॥
सर्पेभ्यश्चापि भूतेभ्योनमोदद्यात्तदुत्तरे । तद्दक्षिणेपितृभ्यश्च प्राचीनावीतिको ददेत्
निर्णेजनोदकान्नञ्चैशान्यां वै यक्ष्मणेऽर्पयेत् । ततोब्रह्मादिदेवेभ्यो नमोदद्यात्तदुत्तरे
निवीती सनकादिभ्यः पितृभ्यस्त्वपसव्यवान् ।
हन्तः षोडशभिर्ग्रासैश्चतुर्भिः पुष्कलं स्मृतम् ॥ २०४ ॥
ग्रासमात्राभवेद्भिक्षा गृहस्थसुकृतप्रदा । अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः
यतिश्चब्रह्मचारीचषडेते धर्मभिक्षुकाः । अतिथिः पथिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः
मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ।
अपि श्वपाके शुनि वा नैवान्नं निष्फलम्भवेत् ॥ २०७ ॥
अन्नार्थिनिसमायातेपात्रापात्रं नचिन्तयेत् । शुनाञ्चपतितानाञ्चश्वपचाम्पापरोगिणाम्
काकानाञ्चकृमीणाञ्चवहिरन्नंकिरेद्भुवि । ऐन्द्रवारुणवायव्याःसौम्या वै नैर्ऋताश्च ये
प्रतिगृह्णन्त्विमंपिण्डंकाकाभूमौमयार्पितम् । द्वौश्वानौश्यामशबलौवैवस्वतकुलोद्भवौ

ताभ्याम्पिण्डम्प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ ।
देवा मनुष्याः पशवो रक्षोयक्षोरगाः खगाः ॥ २११ ॥
दैत्याःसिद्धाःपिशाचाश्चप्रेताभूताश्चदानवाः । तृणानितरवश्चापिमद्दत्तान्नाभिलाषुकाः
कृमिकीटपतङ्गाद्याः कर्मबद्धाबुभुक्षिताः । तृप्त्यर्थमन्नं हि मयादत्तन्तेषां मुदेऽस्तुवै
इत्थम्भूतबलिन्दत्त्वा कालंगोदोहमात्रकम् ।
प्रतीक्ष्यातिथिमायान्तं विशेद्भोज्यगृहन्ततः ॥ २१४ ॥
अदत्त्वावायसबलिंनित्यश्राद्धंसमाचरेत् नित्यश्राद्धेस्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापिवा
भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्धृत्यदुर्बलः । नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादिविवर्जितम्
दक्षिणारहितंत्वेतद्दातृभोक्तृव्रतोज्झितम् । पितृयज्ञं विधायेत्थं स्वस्थबुद्धिरनातुरः
अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ।
सुगन्धिः सुमनाः स्रग्वी शुचिवासोद्वयान्वितः ॥ २१८ ॥
प्रागास्य उदगास्यो वा भुञ्जीतपितृसेवितम् ॥ २१६ ॥
विधायान्नमनग्नन्तदुपरिष्टादधस्तथा । आपोशानविधानेन कृत्वाऽश्नीयात्सुधीर्द्विजः
प्रदद्याद्भुवः पतये भुवनपतये तथा । भूतानाम्पतये स्वाहेत्युक्त्वा भूमौ बलित्रयम्
सकृच्चापउपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् । दद्याज्जठरकुण्डाग्नौ दर्भपाणिः प्रसन्नधीः
दर्भपाणिस्तु यो भुङ्क्ते तस्य दोषो न विद्यते ।
केशकीटादिसम्भूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः ॥ २२३ ॥
यावद्रुच्यन्नमश्नीयान्नब्रूयात्तद्गुणागुणान् । भुञ्जते पितरस्तावद्यावन्नोक्तागुणागुणाः
अतो मौनन यो भुङ्क्ते सभुङ्क्तेकेवलामृतम् । अनुपीयततःक्षीरन्तक्रम्पानीयमेववा
अमृतापिधानमसीत्येवं प्राश्योदकं सकृत् । पीतशेषंक्षिपेद्भूमौतोयंमन्त्रमिमम्पठन्
अप्रक्षालितहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः । रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम्
उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ २२८ ॥
पुनराचम्य मेधावी शुर्भूं त्वा प्रयत्नतः । हस्तेनोदकमादाय मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥
अङ्गुष्ठमात्रःपुरुषस्त्वंगुष्ठञ्चसमाश्रितः । ईशःसर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणातिविश्वभुक्

इत्यन्नं परिसङ्कल्प्य प्रक्षाल्य चरणौकरौ । ततोऽन्नपरिणामार्थं मन्त्रानेतानुदीरयेत्
अग्निराप्याययन्धातून्पार्थिवान्पवनेरितः । दत्तावकाशोनभसा जरयत्वस्तुमे सुखम्
प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नम्पुष्टिकरञ्चास्तु ममाऽस्त्वव्याहतं सुखम् ॥ २३३ ॥
समुद्रोवडवाग्निश्च ब्रध्नोब्रध्नस्य नन्दनः । मयाऽभ्यवहृतं यत्तदशेषं जरयन्त्विमे ॥
मुखशुद्धिततःकृत्वा पुराणश्रवणादिभिः । अतिवाह्यदिवाशेषंततः सन्ध्यां समारभेत्
गृहेगोष्ठे नदीतीरे सन्ध्या दशगुणा क्रमात् ।
सम्भेदे स्याच्छतगुणा ह्यनन्ताशिवसन्निधौ ॥ २३६ ॥
उपासिता बहिःसन्ध्या दिवामैथुनपातकम् । शमयेदनृतोक्ताद्यं मद्यगन्धजमेव च ॥
सामवेदस्वरूपाञ्च वसिष्ठर्षिसमायुताम् ।
कृष्णाङ्गीं कृष्णवसनां मनाक् स्खलितयौवनाम् ॥ २३८ ॥
सरस्वतीं तार्क्ष्ययानां विघ्नघ्नीं विष्णुदैवताम् ।
जगतीच्छन्दसायुक्तां ध्यायेदेकाक्षराम्पराम् ॥ २३९ ॥
अग्निश्चेति च मन्त्रेण विधायाचमनंसुधीः । पश्चिमास्योजपेत्तावद्यावन्नक्षत्रदर्शनम्
अतिथिं सायमायान्तमपिवाग्भूतृणोदकैः ।
सम्भाव्य परिकल्प्येत्थं निशः प्राक् प्रहरं सुधीः ॥ २४१ ॥
इत्थंदिवाकर्मकृत्वाश्रुतेःपठनपाठनैः । एककाष्ठमयींशय्यां नातितृप्तोऽथ संविशेत्
उद्देशतःसमाख्यातोह्येषनित्यतमोविधिः । इत्थंसमाचरन्विप्रोनावसीदतिकर्हिचित्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे सदाचारवर्णनं नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

—:*:—

षट्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मचारिसदाचारवर्णनम्

स्कन्द उवाच

पुनर्विशेषंवक्ष्यामि सदाचारस्यकुम्भज! । यंश्रुत्वापिनरोधीमान्नाज्ञानतिमिरंविशेत्
ब्राह्मणाः क्षत्त्रिया वैश्यास्त्रयोवर्णा द्विजाः स्मृताः ।
प्रथमं मातृतो जाताद् द्वितीयं चोपनायनात् ॥ २ ॥
एषांक्रियानिषेकादिश्मशानान्ताचवैदिकी । आदधीतसुधीर्गर्भमृतौमूलंमघां त्यजेत्
स्पन्दनात्प्राक् पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः । मासिषष्ठेऽष्टमेवापिजातेथोजातकर्मच
नामाह्न्येकादशेगेहाच्चतुर्थेमासिनिष्क्रमः । मासेऽन्नप्राशनंषष्ठेचूडाब्दे वा यथाकुलम्
शममेनो व्रजेदेवंवैजंगर्भजमेव च । स्त्रीणामेताःक्रियास्तूष्णीस्पाणिग्राहस्तुमन्त्रवान्
सप्तमेऽथाष्टमेवाब्देसावित्रीं ब्राह्मणोऽर्हति । नृपस्त्वेकादशेवैश्योद्वादशेवायथाकुलम्
ब्रह्मतेजोऽभिवृद्ध्यर्थं विप्रोऽब्दे पञ्चमेऽर्हति ।
षष्ठे बलार्थी नृपतिर्मौञ्जीं वैश्योऽष्टमे ध्रियेत् ॥ ८ ॥
महाव्याहृतिपूर्वञ्च वेदमध्यापयेद्गुरुः । उपनीय च तं शिष्यंशौचाचारे च योजयेत्
पूर्वोक्तविधिना शौचं कुर्यादाचमनन्तथा ।
दन्ताञ्जिह्वां विशोध्याथ कृत्वा मलविशोधनम् ॥ १० ॥
स्नात्वाम्बुदैवतैर्मन्त्रैः प्राणानायम्य यत्नतः । उपस्थानंरवेःकृत्वासन्ध्ययोरुभयोरपि
अग्निकार्यं ततः कृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत् । ब्रुवन्नमुकगोत्रोहमभिवादय इत्यपि
अभिवादनशीलस्य वृद्धसेवारतस्य च । आयुर्यशोबलम्बुद्धिर्वर्धतेऽहरहोऽधिकम्
अधीते गुरुणाहूतः प्राप्तंतस्मैनिवेदयेत् । कर्मणामनसावाचा हितं तस्याचरेत्सदा
अध्याप्या धर्मतोनार्थात्साध्वाप्तज्ञानवित्तदाः ।
शक्ताः कृतज्ञाः शुचयोऽद्रोहकाश्चानसूयकाः ॥ १५ ॥

धारयेन्मेखलादण्डोपवीताजिनमेव च । अनिन्द्येषु चरेद्भैक्ष्यं ब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशामादिमध्यावसानतः । भैक्ष्यचर्याक्रमेणस्याद्भवच्छब्दोपलक्षिता
वाग्यतो गुर्वनुज्ञातो भुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ।
एकान्नं न समश्नीयाच्छ्राद्धेऽश्नीयात्तथापदि ॥ १८ ॥
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम् । अपुण्यंलोकविद्विष्टंतस्मात्तत्परिवर्जयेत्
न द्विर्भुञ्जीत चैकस्मिन्दिवा क्वापि द्विजोत्तमः ।
सायम्प्रातर्द्विजोऽश्नीयादग्निहोत्रविधानवित् ॥ २० ॥
मधुमांसम्प्राणिहिंसाभास्करालोकनाञ्जने । स्त्रियंपर्युषितोच्छिष्टंपरिवादंविवर्जयेत्
औपनायनिकःकालो ब्रह्मक्षत्रविशाम्परः । आषोडशादाद्वाविंशादाचतुर्विंशदब्दतः
इतोऽप्यूर्ध्वं न संस्कार्याः पतिता धर्मवर्जिताः ।
व्रात्यस्तोमेन यज्ञेन तत्पातित्यम्परिव्रजेत् ॥ २३ ॥
सावित्रीपतितैःसार्द्धं सम्बन्धंन समाचरेत् । ऐणरौरवंवास्तंक्रमाच्चर्मद्विजन्मनाम्
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानिच । द्विजस्यमेखलामौञ्जीमौर्वीचभुजजन्मनः
भवेत्त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा विशस्तु शणतान्तवी ।
मुञ्जाभावे विधातव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः । ग्रन्थिनैकेनसंयुक्तात्रिभिःपञ्चभिरेववा
उपवीतं क्रमेण स्यात्कार्पासंशाणमाविकम् । त्रिवृदूर्द्ध्वंवृतन्तच्च भवेदायुर्विवृद्धये
बिल्वपालाशयोर्दण्डोब्राह्मणस्यनृपस्य तु । न्यग्रोधबालदलयोःपीलूदुम्बरयोर्विशः
आमौलि वाऽऽललाटं वाऽऽनासमूर्ध्वप्रमाणतः ।
ब्रह्मक्षत्रविशां दण्डस्त्वगाढ्यो नाग्निदूषितः ॥ २६ ॥
प्रदक्षिणं परीत्याऽग्निमुपस्थाय दिवाकरम् ।
दण्डाजिनोपवीताढ्यश्चरेद्भैक्ष्यं यथोदितम् ॥ ३० ॥
मातृमातृष्वसृस्वसृपितृस्वसृपुराः सराः । प्रथमं भिक्षणीयाःस्युरेतायाचननोवदेत्
यावद्वेदमधीते च चरन्वेदव्रतानिच । ब्रह्मचारीभवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो गृहीभवेत्
प्रोक्तोऽसावुपकुर्वाणो द्वितीयस्तत्र नैष्ठिकः ।

तिष्ठेत्तावद् गुरुकुले यावत्स्यादायुषः क्षयः ॥ ३३ ॥
गृहाश्रमं समाश्रित्य यः पुनर्ब्रह्मचर्यभाक् ।
नाऽसौ यतिर्वनस्थो वा स्यात्सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ३४ ॥
अनाश्रमी न तिष्ठेतदिनमेकमपिद्विजः । आश्रमन्तु विनातिष्ठन्प्रायश्चित्तीयतोहिसः
जपं होमं व्रतं दानं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ।
कुर्वाणोऽथाऽऽश्रमभ्रष्टो नासौ तत्फलमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥
मेखलाजिनदण्डाश्च लिङ्गं स्याद्ब्रह्मचारिणः । गृहिणोवेदयज्ञादिनखलोमवनस्थितेः
त्रिदण्डादियतेरुक्तमुपलक्षणमत्र वै । एतल्लक्षणहीनस्तु प्रायश्चित्ती दिने दिने
जीर्णं कमण्डलुं दण्डमुपवीताजिने अपि ।
अप्स्वेव तानि निक्षिप्य गृह्णीतान्यच्च मन्त्रवत् ॥ ३९ ॥
विदध्यात्षोडशे वर्षे केशान्तंकर्मचक्रमात् । द्वाविंशे च चतुर्विंशेगार्हस्थ्यप्रतिपत्तये
तपोयज्ञव्रतेभ्यश्च सर्वस्माच्छुभकर्मणः । द्विजातीनांश्रुतिर्ह्येकाहेतुर्निःश्रेयसश्रियः
वेदारम्भे विसर्गे च विदध्यात्प्रणवं सदा ।
अफलोऽनोङ्कृतो यस्मात्पठितोऽपि न सिद्धये ॥ ४२ ॥
वेदस्य वदनम्प्रोक्तं गायत्री त्रिपदा परा । तिसृभिःप्रणवाद्याभिर्महाव्याहृतिभिःसह
सहस्रं साधिकंकिञ्चित्त्रिकमेतज्जपन्यमी । मासम्बहिः प्रतिदिनंमहापापादपिमुच्यते
अत्यब्दमिति योऽभ्यस्येत्प्रतिघस्रमनन्यधीः ।
स व्योममूर्तिः शुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ४५ ॥
त्रिवर्णमयमोङ्कारं भूर्भुवः स्वरितित्रयम् । पादत्रयञ्चसावित्र्यास्त्रयोवेदा अदूदुहन्
एतदक्षरमेनाञ्च जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम् । सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते
विधिक्रतोर्दशगुणं जपस्य फलमश्नुते । विधिक्रतोर्दशगुणो जपक्रतुरुदीरितः
उपांशुस्तच्छतगुणः सहस्रो मानसस्ततः ॥ ४९ ॥
अधीत्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा शक्तितो द्विजः ।
सुवर्णपूर्णधरणीदानस्य फलमश्नुते ॥ ५० ॥

श्रुतिमेवसदाभ्यस्येत्तपस्तप्तु ं द्विजोत्तमः । श्रुत्यभ्यासोहिविप्रस्य परमंतपउच्यते
हित्वा श्रुतेरध्ययनं योऽन्यत्पठितुमिच्छति ।
स दोग्ध्रीं धेनुमुत्सृज्य ग्रामक्रोडीं दुधुक्षति ॥ ५२ ॥
उपनीय चवैशिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः । सकल्पंसरहस्यञ्च तमाचार्यं विदुर्बुधाः
योऽध्यापयेदेकदेशं श्रुतेरङ्गान्यथापि वा । वृत्त्यर्थंसउपाध्यायो विद्वद्भिः परिगीयते
यथाविधिनिषेकादियः कर्मकुरुते द्विजः । सम्भावयेत्तथान्नेन गुरुः स इह कीर्त्यते
अग्न्याधेयस्पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ ५६ ॥
उपाध्यायाद्दशाचार्य आचार्यात्तु शतम्पिता । सहस्रंतु पितुर्मातागौरवेणातिरिच्यते
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्य ं बाहुजानान्तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः पज्जातानां तु जन्मतः ॥ ५८ ॥
यथा दारुमयो हस्ती यथा कृत्तिमयो मृगः ।
तथा विप्रोऽनधीयानस्त्रयोऽमी नामधारिणः ॥ ५९ ॥
स्वप्ने सित्तवा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचञ्जपेत् ॥ ६० ॥
स्वधर्मनिरतानाञ्च वेदयज्ञक्रियावताम् । ब्रह्मचारी चरेद्भैक्ष्यं वेश्मसुप्रयतोऽन्वहम् ॥
अकृत्वाभैक्ष्यचरणमसमिध्यहुताशनम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतञ्चरेत् ॥ ६२
यथेष्टचेष्टो न भवेद्द गुरोर्नयनगोचरे । न नाम परिगृह्णीयात्परोक्षेप्यविशेषणम्
गुरुनिन्दाभवेद्यत्र परिवादस्तुयत्र च । श्रुती पिधायवास्थेयं यातव्यं वाततोऽन्यतः
खरो गुरोः परीवादाच्छ्वा भवेद्द गुरुनिन्दकः ।
मत्सरी क्षुद्रकीटः स्यात्परिभोक्ता भवेत् कृमिः ॥ ६५ ॥
नाभिवाद्या गुरोः पत्नी स्पृष्ट्वाङ्घ्री युवती सती ।
क्वापि विंशति वर्षेण ज्ञातृणा गुणदोषयोः ॥ ६६ ॥
स्वभावश्चञ्चलःस्त्रीणांदोषःपु ंसामतःस्मृतः । प्रमदासुप्रमाद्यन्तिक्वचिन्नैवविपश्चितः

द्वांसमप्यविद्वांसं यतस्ताधर्षयन्त्यलम् । स्ववशंवापिकुर्वन्तिसूत्रबद्धशकुन्तवत्
न मात्रा न दुहित्रा वा न स्वस्रैकान्तशीलता ।
बलवन्तीन्द्रियाण्यत्र मोहयन्त्यपि कोविदान ॥ ६९ ॥
यत्नेनखनन्यद्वद्भूमेर्वार्यधिगच्छति । शुश्रूषयागुरोस्तद्वद्विद्यांशिष्योऽधिगच्छति
यानमभ्युदयते ब्रध्नश्चेद्ब्रह्मचारिणम् । प्रमादादथ निम्लोचेज्जपन्नुपवसेद्दिनम्
सुतस्य सम्भवे क्लेशं सहेते पितरौ च यत् ।
शक्या वर्षशतेनापि नो कर्तुं तस्य निष्कृतिः ॥ ७२ ॥
अतस्तयोः प्रियं कुर्याद्ग् गुरोरपि चसर्वदा । त्रिषु तेषु सुतुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते । तानतिक्रम्य यत्कुर्यात्तन्नसिद्ध्येत्कदाचन
त्रीनेवामून्समाराध्य त्रीँल्लोकान्स जयेत्सुधीः ।
देववद्दिवि दीव्येत तेषां तोषं विवर्धयन् ॥ ७५ ॥
भूर्लोकञ्जननीभक्त्या भुवर्लोकन्तथापितुः । गुरोःशुश्रूषणात्तद्वत्स्वर्लोकञ्चजयेत्कृती
एतदेव नृणाम्प्रोक्तम्पुरुषार्थचतुष्टयम् । यदेतेषां हि सन्तोष उपधर्मोऽन्य उच्यते
अधीत्य वेदान्वेदौवा वेदंवापिक्रमाद्द्विजः । अप्रस्खलद्ब्रह्मचर्योगृहाश्रममथाश्रयेत्
अविप्लुतब्रह्मचर्योविश्वेशानुग्रहाद्भवेत् । अनुग्रहश्च वैश्वेशः काशीप्राप्तिकरः परः
काशीप्राप्त्या भवेज्ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ।
निर्वाणार्थम्प्रयत्नो हि सदाचारस्य धीमताम् ॥ ८० ॥
सदाचारो गृहे यद्वन्न तथाऽस्त्याऽऽश्रमान्तरे ।
विद्याजातम्पठित्वाऽन्ते गृहस्थाश्रममाश्रयेत् ॥ ८१ ॥
गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि पत्नीवशंवदा । आनुकूल्यंहि दम्पत्योस्त्रिवर्गोदयहेतवे
आनुकूल्यं कलत्रं चेत्त्रिदिवेनाऽपि किं ततः ।
प्रातिकूल्यं कलत्रं चेन्नरकेणाऽपि किंततः ॥ ८३ ॥
गृहाश्रमःसुखार्थायभार्यामूलंचतत्सुखम् । साचभार्याविनीतायात्रिवर्गोविनयोध्रुवम्
लौकयोपमीयन्ते प्रमदामन्दबुद्धिभिः । मृगीदृशां जलौकानां विचारान्महदन्तरम्

जलौकाकेवलं रक्तमाददानातपस्विनी । प्रमदा सर्वदादत्ते चित्तं वित्तं वलं सुखम्
दक्षा प्रजावती साध्वी प्रियवाक्च वशंवदा ।
गुणैरमीभिः संयुक्ता सा श्रीःस्त्रीरूपधारिणी ॥ ८७ ॥
गुरोरनुज्ञयास्नात्वाव्रतं वेदं समाप्यच । उद्वहेत ततो भार्यां सवर्णां साधुलक्षणाम्
जनेतुरसगोत्राया मातुर्याप्यसपिण्डका । दारकर्मणियोग्या साद्विजानां धर्मवृद्धये
स्त्रीसम्बन्धेऽप्यपस्मारिक्षयिश्वित्रिकुलं त्यजेत् ।
अभिशस्तिसमायुक्तं तथा कन्याप्रसूं त्यजेत् ॥ ९० ॥
रोगहीनां भ्रातृमतीं स्वस्मात्किञ्चिल्लवीयसीम् ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सौम्यास्यां मृदुभाषिणीम् ॥ ९१ ॥
नपर्वतर्क्षवृक्षाह्वां न नदीसर्पनामिकाम् । नपक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं सौम्याख्यामुद्वहेत्सुधीः
न चाऽतिरिक्तहीनाङ्गीं नातिदीर्घां न वा कृशाम् ।
नाऽलोमिकां नाऽतिलोमां नाऽस्निग्धस्थूलमौलिजाम् ॥ ९३ ॥
मोहात्समुपयच्छेतकुलहीनांनकन्यकाम् । हीनोपयमनाद्याति सन्तानमपि हीनताम्
लक्षणानिपरीक्ष्यादौततःकन्यां समुद्वहेत् । सुलक्षणा सदाचारा पत्युरायुर्विवर्धयेत्
ब्रह्मचारिसदाचार इति ते समुदीरितः । घटोद्भव! प्रसङ्गेन स्त्रीलक्षणमथ ब्रुवे ॥ ९६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे ब्रह्मचारिसदाचारवर्णनंनाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणवर्णनम्

स्कन्द उवाच

सदागृहीसुखंभुङ्क्तेस्त्रीलक्षणवतीयदि । अतः सुखसमृद्ध्यर्थमादौ लक्षणमीक्षयेत्
वपुरावर्तगन्धाश्च छायासत्त्वं स्वरोगतिः । वर्णश्चेत्यष्टधा प्रोक्ता बुधैर्लक्षणभूमिका
आपादतलमारभ्ययावन्मौलिरुहंक्रमात् । शुभाशुभानिवक्ष्यामि लक्षणानिमुने! शृणु
आदौपादतलंरेखास्ततोऽङ्गुष्ठाङ्गुलीनखाः । पृष्ठंगुल्फद्वयंपार्ष्णीजङ्घेरोमाणिजानुनी
ऊरूकटीनितम्बस्फिग्भगोजघनवस्तिके । नाभिःकुक्षिद्वयं पार्श्वोदरमध्यबलित्रयम्
रोमालीहृदयंवक्षोवक्षोजद्वयच्चूचुकम् । जत्रुस्कन्धांसकक्षादोर्मणिबन्धकरद्वयम् ॥
पाणिपृष्ठम्पाणितलंरेखाङ्गुष्ठाङ्गुलीनखाः । पृष्ठिः कृकाटिका कण्ठेचिबुकश्चहनुद्वयम्
कपोलोवक्त्रमधरोत्तरोष्ठौद्विजजिह्विकाः । घण्टिकातालुहसितंनासिकाक्षुतमक्षिणी
पक्ष्मभ्रूकर्णभालानिमौलिसीमन्तमौलिजाः । षष्टिः षडुत्तरायोषिदङ्गलक्षणसत्खनिः
स्त्रीणांपादतलंस्निग्धंमांसलंमृदुलंसमम् । अस्वेदमुष्णमरुणंबहुभोगोचितं स्मृतम्
रूक्षंविवर्णम्परुषंखण्डितप्रतिविम्वकम् । शूर्पाकारं विशुष्कञ्च दुःखदौर्भाग्यसूचकम्
चक्रस्वस्तिकशङ्खाब्जध्वजमीनातपत्रवत् । यस्याःपादतलेरेखासाभवेत्क्षितिपाङ्गना
भवेदखण्डभोगायोर्ध्वानध्याङ्गुलिसङ्गता ।
रेखाऽऽखुसर्पकाकाभा दुःखदारिद्र्यसूचिका ॥ १३ ॥
उन्नतोमांसलोऽङ्गुष्ठोवर्त्तुलोऽतुलभोगदः । वक्रोह्रस्वश्चचिपिटःसुखसौभाग्यभञ्जकः
विधवाविपुलेनस्याद्दीर्घाङ्गुष्ठेनदुर्भगा । मृदवोऽङ्गुलयः शस्या घनावृत्ताः समुन्नताः
दीर्घाङ्गुलीभिःकुलटाकृशाभिरतिनिर्धना ह्रस्वायुष्याचह्रस्वाभिर्भुग्नाभिर्भुग्नवर्त्तिनी
चिपिटाभिर्भवेद्दासी विरलाभिर्दरिद्रिणी । परस्परंसमारूढाःपादाङ्गुल्योभवन्तिहि
हत्वाबहूनपिपतीन्परप्रेष्यातदाभवेत् । यस्याःपथिसमायान्त्यारजोभूमेःसमुच्छलेत्

सा पांसुला प्रजायेत कुलत्रयविनाशिनी ।
यस्याः कनिष्ठिका भूमिं न गच्छन्त्याः परिस्पृशेत् ॥ १६ ॥
सानिहत्यपतिंयोषाद्वितीयंकुरुतेपतिम् । अनामिकाचमध्याचयस्याभूमिंनसंस्पृशेत्
पतिद्वयंनिहन्त्याद्या द्वितीयाचपतित्रयम् । पतिहीनत्वकारिण्यौहीने ते द्वे इमे यदि
प्रदेशिनीभवेद्यस्याअङ्गुष्ठाव्यतिरेकिणी । कन्यैवकुलटा सा स्यादेष एव विविश्चयः
स्निग्धा समुन्नतास्ताम्रा वृत्ताः पादनखाः शुभाः । ॥ २३ ॥
राज्ञीत्वसूचकं स्त्रीणांपादपृष्ठं समुन्नतम् । अस्वेदमशिराढ्यञ्च मसृणं मृदुमांसलम्
दरिद्रामध्यनम्रेण शिरालेन सदाध्वगा । रोमाढ्येन भवेद्दासी निर्मांसेन च दुर्भगा
गूढौ गुल्फौ शिवायोक्तावशिरालौ सुवर्तुलौ ।
स्थपुटौ शिथिलौ दृश्यौ स्यातां दौर्भाग्यसूचकौ ॥ २६ ॥
समपार्ष्णिः शुभा नारी पृथुपार्ष्णिश्च दुर्भगा ।
कुलटोन्नतपार्ष्णिः स्याद्दीर्घपार्ष्णिश्च दुःखभाक् ॥ २७ ॥
रोमहीने समे स्निग्धे यज्जङ्घे क्रमवर्त्तुले । सा राजपत्नी भवति विशिरे सुमनोहरे
एकरोमा राजपत्नी द्विरोमा च सुखावहा । त्रिरोमारोमकूपेषु भवेद्वैधव्यदुःखभाक्
वृत्तं पिशितसंलग्नंजानुयुग्मस्प्रशस्यते । निर्मांसंस्वैरचारिण्यादरिद्रायाश्चविश्लथम्
विशिरैः करभाकारैरूरुभिर्मसृणैर्घनैः । सुवृत्तैरोमरहितैर्भवेयुर्भूपवल्लभा ॥ ३१ ॥
वैधव्यंरोमशैरुक्तं दौर्भाग्यञ्चिपिटैरपि । मध्यच्छिद्रैर्महादुःखं दारिद्र्यं कठिनत्वचैः
चतुर्भिरङ्गुलैः शस्ता कटिर्विंशतिसंयुतैः । समुन्नतनितम्बाढ्या चतुरस्रा मृगीदृशाम्
विनताचिपिटादीर्घानिर्मांसासङ्कटाकटिः । ह्रस्वारोमयुतानार्यादुःखवैधव्यसूचिका
नितम्बविम्बोनारीणामुन्नतोमांसलःपृथुः । महाभोगायसम्प्रोक्तस्तदन्योऽशर्मणेमतः
कपित्थफलवद्वृत्तौ मृदुलौ मांसलौ घनौ ।
स्फिचौ बलिविनिर्मुक्तौ रतिसौख्यविवर्धनौ ॥ ३६ ॥
शुभः कमठपृष्ठाभो गजस्कन्धोपमोभगः । वामोन्नतस्तु कन्याजःपुत्रजोदक्षिणोन्नतः
आखुरोमा गूढमणिः सुश्लिष्टः संहतः पृथुः । तुङ्गःकमलपर्णाभःशुभोश्वत्थदलाकृतिः

कुरङ्गखुररूपो यश्चुल्लिकोदरसन्निभः ।
रोमशो विवृतास्यश्च दृश्यनासोऽतिदुर्भगः ॥ ३६ ॥
शङ्खावर्तो भगोयस्याःसागर्भमिहनेच्छति । चिपिटः खर्पराकारः किङ्करीपददोभगः
वंशवेतसपत्राभो गजरोमोच्चनासिकः । विकटः कुटिलाकारो लम्बगल्लस्तथाऽशुभः
भगस्य भालश्रवनंविस्तीर्णन्तुङ्गमांसलम् । मृदुलंदुलोमाढ्य दक्षिणावर्तमीडितम्
वामावर्तञ्च निर्मांसं भुग्नं वैधव्यसूचकम् । सङ्कटस्थपुटं रूक्षं जघनं दुःखदं सदा
वस्तिःप्रशस्ताविपुलामृद्वी स्तोकसमुन्नता । रोमशाचशिरालाच रेखाङ्कानैवशोभना.
गम्भीरा दक्षिणावर्ता नाभी स्यात्सुखसम्पदे ।
वामावर्ता समुत्ताना व्यक्तग्रन्थिर्न शोभना ॥ ४५ ॥
सूतेसुतान्बहून्नारीपृथुकुक्षिः सुखास्पदम् । क्षितीशञ्जनयेत्पुत्रंमण्डूकाभेन कुक्षिणा
उन्नतेन वलीभाजासावर्तेनापि कुक्षिणा । बन्ध्याप्रव्रजिता दासीक्रमाद्योषा भवेदिह
समैः समांसैर्मृदुभिर्योषिन्मग्नास्थिभिःशुभैः ।
पार्श्वैः सौभाग्यसुखयोर्निधानं स्यादसंशयम् ॥ ४८ ॥
यस्या दृश्यशिरेपार्श्वेउन्नते रोमसंयुते । निरपत्या च दुःशीलासाभवेद्दुःखशेवधिः
उदरेणातितुच्छेन विशिरेणमृदुत्वचा । योषिद्भवति भोगाढ्यानित्यंमिष्टान्नसेविनी
कुम्भाकारं दरिद्रायाा जठरञ्च मृदङ्गवत् ।
कूष्माण्डाभं यवाभञ्च दुष्पूरञ्जायते स्त्रियाः ॥ ५१ ॥
सुविशालोदरी नारी निरपत्या च दुर्भगा । प्रलम्बजठरा हन्ति श्वशुरञ्चापिदेवरम्
मध्मक्षामा च सुभगा भोगाढ्या सवलित्रया ।
ऋज्वी तन्वी च रोमाली यस्याः सा शर्मनर्मभूः ॥ ५३ ॥
कपिला कुटिला स्थूला विच्छिन्ना रोमराजिका ।
चौरवैधव्यदौर्भाग्यं विदध्यादिह योषिताम् ॥ ५४ ॥
निर्लोमहृदयं यस्याः समं निम्नत्ववर्जितम् । ऐश्वर्यञ्चाप्यवैधव्यं प्रियप्रेमचसालभेत्
विस्तीर्णहृदया योषापुंश्चलीनिर्दयातथा । उद्भिन्नरोमहृदयापतिंहन्तिविविश्चितम्

अष्टादशाङ्गुलततमुरःपीवरमुन्नतम् । सुखाय दुःखाय भवेद्रोमशं विषमं पृथु ॥
घनौ वृत्तौ दृढौ पीनौ समौ शस्तौ पयोधरौ ।
स्थूलाग्रौ विरलौ शुष्कौ वामोरूणां न शर्मदौ ॥ ५८ ॥
दक्षिणोन्नतवक्षोजा पुत्रिणी त्वग्रणीर्मता ।
वामोन्नतकुचा सूते कन्यां सौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ५६ ॥
अरघट्टघटीतुल्यौ कुचौ दौःशील्यसूचकौ ।
पीवरास्यौ सान्तरालौ पृथूपान्तौ न शोभनौ ॥ ६० ॥
मूले स्थूलौक्रमकृशावग्रे तीक्ष्णौपयोधरौ । सुखदौपूर्वकाले तु पश्चादत्यन्तदुःखदौ
सुदृढं चूचुकयुगं शस्तं श्यामं सुवर्तुलम् । अन्तर्मग्नञ्च दीर्घञ्च कृशं क्लेशाय जायते
पीवराभ्याञ्च जत्रुभ्यां धनधान्यनिधिर्वधूः ।
श्लथास्थिभ्याञ्च निम्नाभ्यां विषमाभ्यां दरिद्रिणी ॥ ६३ ॥
अबद्धावनतौ स्कन्धावदीर्घावकृशौ शुभौ ।
वक्रौ स्थूलौ च रोमाढ्यौ प्रेष्यवैधव्यसूचकौ ॥ ६४ ॥
निगूढसन्धी स्रस्ताग्रौ शुभावंसौ सुसंहतौ ।
वैधव्यदौ समुच्चाग्रौ निर्मांसावतिदुःखदौ ॥ ६५
कक्षेसुसूक्ष्मरोमे तु तुङ्गेस्निग्धे च मांसले । शस्तेन शस्तेगम्भीरेशिराले स्वेदमेदुरे
स्यातां दोषौ सुनिर्दोषौ गूढाऽस्थिग्रन्थिकोमलौ ।
विशिरौ च विरोमाणौ सरलौ हरिणीदृशाम् ॥ ६७ ॥
वैधव्यं स्थूलरोमाणौ ह्रस्वौ दौर्भाग्यसूचकौ ।
परिक्लेशाय नारीणां परिदृश्यशिरौभुजौ ॥ ६८ ॥
अम्भोजमुकुलाकारमङ्गुष्ठाङ्गुलिसम्मुखम् । हस्तद्वयं मृगाक्षीणां बहुभोगाय जायते
मृदुमध्योन्नतं रक्तं तलं पाण्योररन्ध्रकम् । प्रशस्तं शस्तरेखाढ्यमल्परेखं शुभश्रियम्
विधवा बहुरेखेण विरेखेण दरिद्रिणी । भिक्षुकी सुशिराढ्येन नारीकरतलेन वै ॥
विरोमविशिरं शस्तं पाणिपृष्ठं समुन्नतम् ।

वैधव्यहेतुरोमाढ्यं निर्मांसं स्नायुमत्त्यजेत् । ७२ ॥

रक्ताव्यक्तागभीराचस्निग्धापूर्णाचवर्तुला । कररेखाङ्गनायाःस्याच्छुभाभाग्यानुसारतः

मत्स्येन सुभगा नारी स्वस्तिकेन वसुप्रदा । पद्मेन भूपतेः पत्नी जनयेद्भूपतिसुतम्

चक्रवर्तिस्त्रियाः पाणौनन्द्यावर्तः प्रदक्षिणः । शङ्खातपत्रकमठा नृपमातृत्वसूचकाः

तुलामानाकृती रेखे वणिक्पत्नीत्वहेतुके । गजवाजिवृषाकाराः करे वामे मृगीदृशाम्

रेखाःप्रासादवज्राभाव्र्युस्तीर्थकरं सुतम् । कृषीवलस्य पत्नीस्याच्छकटेन युगेन वा

चामरांकुशकोदण्डैराजपत्नी भवेद्ध्रुवम् । अङ्गुष्ठमूलान्निर्गत्यरेखायाति कनिष्ठिकाम्

यदि सा पतिहन्त्री स्याद्द दूरतस्तां त्यजेत्सुधीः ।
त्रिशूलासिगदाशक्तिदुन्दुभ्याकृतिरेखया ।
नितम्बिनी कीर्तिमती त्यागेन पृथिवीतले ॥ ७६ ॥

कङ्कजम्बूकमण्डूकवृकवृश्चिकभोगिनः । रासभोष्ट्रबिडालाःस्युःकरस्थादुःखदाःस्त्रियाः

शुभदः सरलोऽङ्गुष्ठो वृत्तो वृत्तनखो मृदुः ॥ ८१

अङ्गुल्यश्चसुपर्वाणोदीर्घावृत्ताःक्रमात्कृशाः चिपिटाःस्थपुटारूक्षाःपृष्ठरोमयुजोऽशुभाः

अतिह्रस्वाः कृशावक्राचिरलारोगहेतुकाः । दुःखायाङ्गुलयः स्त्रीणां बहुपर्वसमन्विताः

अरुणाः सशिखास्तुङ्गाः करजाः सदृशांशुभाः ।
निम्ना विवर्णाः शुक्त्याभाः पीता दारिद्र्यदायकाः ॥ ८४ ॥
नखेषु विन्दवः श्वेताः प्रायः स्युः स्वैरिणीस्त्रियाः ।
पुरुषा अपि जायन्ते दुःखिनः पुष्पितैर्नखैः ॥ ८५ ॥

अन्तर्निमग्नवंशास्थिः पृष्ठिः स्यान्मांसलाशुभा । पृष्ठेनरोमयुक्तेन वैधव्यं लभतेध्रुवम्

भुग्नेनविनतेनापिक्षशिरेणापिदुःखिता । ऋज्वीकृकाटिकाश्रेष्ठासमांसाचसमुन्नता

शुष्काशिरालारोमाढ्याविशालाकुटिलाशुभा । मांसलोवर्तुलःकण्ठःप्रशस्तश्चतुरङ्गुलः

शस्ता ग्रीवा त्रिरेखाङ्का त्वव्यक्ताऽस्थिःसुसंहता ।
निर्मांसा चिपिटा दीर्घा स्थपुटा न शुभप्रदा ॥ ८६ ॥

स्थूलग्रीवाचविधवावक्रग्रीवाचकिङ्करी । वन्ध्याहिचिपिटग्रीवाह्रस्वग्रीवाचनिःसुता

चिवुकंद्व्यङ्गुलंशस्तंवृत्तंपीनंसुकोमलम् । स्थूलंद्विधासंविभक्तमायतं रोमशंत्यजेत्
हनुश्चिवुकसंलग्नानिर्लोमासुघनाशुभा । वक्रास्थूलाकृशा ह्रस्वा रोमशा न शुभप्रदा
शस्तौ कपोलौ वामाक्ष्याः पीनौ वृत्तौ समुन्नतौ ।
रोमशौ परुषौ निम्नौ निर्मांसौ परिवर्जयेत् ॥ ९३ ॥
समं समांसं सुस्निग्धं स्वामोदं वर्तुलम्मुखम् ।
जनेतृवदनच्छायंधन्यानामिह जायते ॥ ९४ ॥
पाटलोवर्तुलःस्निग्धोलेखाभूषितमध्यभूः । सीमन्तिनीनामधरोधराजानिप्रियोभवेत्
कृशः प्रलम्बः स्फुटितो रूक्षो दौर्भाग्यसूचकः ।
श्यावः स्थूलोऽधरोष्ठःस्याद्वैधव्यकलहप्रदः ॥ ९६ ॥
मसृणो मत्तकाशिन्याश्चोत्तरोष्ठः सुभोगदः ।
किञ्चिन्मध्योन्नतोऽरोमा विपरीतो विरुद्धकृत् ॥ ९७ ॥
गोक्षीरसन्निभाः स्निग्धा द्वात्रिंशद्दशनाः शुभाः ।
अधस्तादुपरिष्टाच्च समाः स्तोकसमुन्नताः ॥ ९८ ॥
पीताः श्यावाश्च दशनाः स्थूला दीर्घाद्विपङ्क्तयः ।
शुक्त्याकाराश्च विरलादुःखदौर्भाग्यकारणम् ॥ ९९ ॥
अधस्तादधिकैर्दन्तैर्मातरं भक्षयेत्स्फुटम् । पतिहीना च विकटैः कुलटाविरलैर्भवेत्
जिह्वेष्टमिष्टभोक्त्री स्याच्छोणा मृद्वी तथासिता ।
दुःखाय मध्यसङ्कीर्णा पुरोभागसविस्तरा ॥ १०१ ॥
सितयातोयमरणं श्यामयाकलहप्रिया । दरिद्रिणी मांसलयालम्बयाऽभक्ष्यभक्षिणी
विशालया रसनयाप्रमदातिप्रमादभाक् । स्निग्धं कोकनदाभासंप्रशस्तं तालुकोमलम्
सिते तालुनि वैधव्यं पीते प्रव्रजिता भवेत् ।
कृष्णेऽपत्यवियोगार्ता रूक्षे भूरि कुटुम्बिनी ॥ १०४ ॥
कण्ठे स्थूला सुवृत्ता च क्रमतीक्ष्णा सुलोहिता ।
अप्रलम्बा शुभा घण्टी स्थूला कृष्णा च दुःखदा ॥ १०५ ॥

अलक्षितद्विजं किञ्चित्किञ्चित्फुल्लकपोलकम् ।
स्मितं प्रशस्तं सुदृशामनिमीलितलोचनम् ॥ १०६ ॥
समवृत्तपुटानासा लघुच्छिद्रा शुभावहा । स्थूलाग्रामध्यनम्रा च नप्रशस्तासमुन्नता
आकुञ्चितारुणाग्रा च वैधव्यक्लेशदायिनी ।
परप्रेष्या च चिपिटा ह्रस्वा दीर्घा कलिप्रिया ॥ १०८ ॥
दीर्घायुः कृत्क्षुतंदीर्घं युगपद्द्वित्रिपिण्डितम् ।
ललनालोचने शस्ते रक्तान्ते कृष्णतारके ॥ १०९ ॥
गोक्षीरवर्णविशदे सुस्निग्धेकृष्णपक्ष्मणी । उन्नताक्षी नदीर्घायुर्वृत्ताक्षीकुलटाभवेत्
मेषाक्षी महिषाक्षी च केकराक्षीनशोभना । कामगृहीलानितरां गोपिङ्गाक्षीसुदुर्वृता
पारावताक्षी दुःशीला रक्ताक्षी भर्तृघातिनी । कोटरानयनादुष्टा गजनेत्रा न शोभना
पुंश्चली वामकाणाक्षी वन्ध्या दक्षिणकाणिका ।
मधुपिङ्गाक्षी रमणी धनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ ११३ ॥
पक्ष्मभिः सुघनैः स्निग्धैः कृष्णैः सूक्ष्मैः सुभाग्यभाक् ।
कपिलैर्विरलैः स्थूलैर्निन्द्या भवति भामिनी ॥ ११४ ॥
भ्रुवौ सुवर्तुलेतन्व्याःस्निग्धेकृष्णे असंहते । प्रशस्तेमृदुरोमाणौ सुभ्रुवःकार्मुकाकृती
खररोमा च पृथुला विकीर्णा सरला स्त्रियाः ।
न भ्रूः प्रशस्ता मिलिता दीर्घरोमा च पिङ्गला ॥ ११६ ॥
लम्बौ कर्णौ शुभावर्तौ सुखदौ च शुभप्रदौ ।
शष्कुलीरहितौ निन्द्यौ शिरालौ कुटिलौ कृशौ ॥ ११७ ॥
भालः शिराविरहितो निर्लोमार्धेन्दुसन्निभः ।
अनिम्नस्त्र्यङ्गुलो नार्याः सौभाग्यारोग्यकारणम् ॥ ११८ ॥
व्यक्तस्वस्तिकरेखश्च ललाटंराज्यसम्पदे । प्रलम्बम्मस्तकंयस्यादेवरंहन्तिसाध्रुवम्
रोमशेन शिरालेन प्रांशुनारोगिणी मता ॥ १२० ॥
सीमन्तः सरलः शस्तो मौलिः शस्तः समुन्नतः ।

गजकुम्भनिभो वृत्तः सौभाग्यैश्वर्यसूचकः ॥ १२१ ॥
स्थूलमूर्धा च विधवा दीर्घशीर्षा च बन्धकी ।
विशालेनाऽपि शिरसा भवेद्दौर्भाग्यभाजनम् ॥ १२२ ॥
केशा अलिकुलच्छायाः सूक्ष्माः स्निग्धाः सुकोमलाः ।
किञ्चिदाकुञ्चिताग्राश्च कुटिलाश्चातिशोभनाः ॥ १२३ ॥
परुषाःस्फुटिताग्राश्च विरलाश्चशिरोरुहाः । पिङ्गलालघवोरूक्षादुःखदारिद्र्यबन्धदाः
भ्रुवोरन्तर्ललाटे वा मशकोराज्यसूचकः । वामेकपोलेमशकःशोणोमिष्टान्नदःस्त्रियाः
तिलकं लाञ्छनं वापि हृदिसौभाग्यकारणम् ।
यस्या दक्षिणवक्षोजे शोणो तिलकलाञ्छने ॥ १२६ ॥
कन्याचतुष्टयंसूते सूतेसा च सुतत्रयम् । तिलकंलाञ्छनं शोणं यस्यावामेकुचेभवेत्
एकं पुत्रं प्रसूयादौ ततः साविधवाभवेत् । गुह्यस्य दक्षिणे भागेतिलकंयदियोषितः
तदाक्षितिपतेः पत्नीसूनेवाक्षितिपं सुतम् । नासाग्रेमशकःशोणोमहिष्याएवजायते
कृष्णः स एव भर्तृघ्न्याः पुंश्चल्याश्च प्रकीर्तितः ।
नाभेरधस्तात्तिलकं मशको लाञ्छनं शुभम् ॥ १३० ॥
मशकस्तिलकं चिह्नं गुल्फदेशे दरिद्रकृत् । करे कर्णेकपोले वा कण्ठे वामेभवेद्यदि
एषां त्रयाणामेकं तुप्रागगर्भे पुत्रदम्भवेत् । भालगेन त्रिशूलेन निर्मितेन स्वयम्भुवा
नितम्बिनी सहस्राणां स्वामित्वं योषिदाप्नुयात् ।
सुप्ता परस्परं यातु दन्तान् किटिकिटायते ॥ १३३ ॥
सुलक्ष्मापि न सा शस्ता या किञ्चित्प्रलपेत्तथा ।
पाणौप्रदक्षिणावर्त्तौ धर्म्यौ वामो न शोभनः ॥ १३४ ॥
नाभौ श्रुतावुरसि वादक्षिणावर्तईडितः । सुखाय दक्षिणावर्तः पृष्ठवंशस्यदक्षिणे
अन्तःपृष्ठं नाभिसमो वह्वायुः पुत्रवर्धनः । राजपत्न्याः प्रदृश्येत भगमौलौप्रदक्षिणः
सचेच्छकटभङ्गः स्याद्वह्वपत्यसुखप्रदः । कटिगो गुह्यवेधेन पत्यपत्यनिपातनः
स्यातामुदरवेधेन पृष्ठावर्तौ न शोभनौ । एकेन हन्ति भर्तारं भवेदन्येन पुंश्चली

कण्ठगो दक्षिणावर्तोदुःखवैधव्यहेतुकः । सीमन्तेऽथललाटेवात्याज्योदूरात्प्रयत्नतः
सा पतिं हन्ति वर्षेण यस्या मध्ये कृकाटिकम् ।
प्रदक्षिणो वा वामो वा रोम्णामावर्त्तकः स्त्रियाः ॥ १४० ॥
एको वा मूर्धनि द्वौ वा वामे वामगती यदि ।
आदशाहम्पतिघ्नौ तौ त्याज्यौ दूरात्सुबुद्धिना ॥ १४१ ॥
कट्यावर्ता च कुलटा नाभ्यावर्ता पतिव्रता । पृष्ठावर्त्ता च भर्तृघ्नीकुलटावाथजायते

स्कन्द उवाच

सुलक्षणाऽपि दुःशीला कुलक्षणशिरोमणिः ।
अलक्षणाऽपि सा साध्वी सर्वलक्षणभूस्तु सा ॥ १४३ ॥
सुलक्षणा सुचारित्रा स्वाधीना पतिदेवता । विश्वेशानुग्रहादेव गृहेयोषिदवाप्यते
अलङ्कृताःस्ववासिन्योयाभिःप्राक्तनजन्मनि नानाविधैरलङ्कारैस्ताःसुरूपाभवन्तिहि
सुतीर्थेषु वपुर्याभिः क्षयितं वा विहायितम् ।
ता लावण्यतरङ्गिण्यो भवन्तीह सुलक्षणाः ॥ १४६ ॥
अर्चिता जगताम्माता याभिर्मृडवधूरिव ।
ता भवन्ति सुचारित्रा योषाः स्वाधीनभर्तृकाः ॥ १४७ ॥
स्वाधीनपतिकानाञ्च सुशीलानांमृगीदृशाम् । स्वर्गापवर्गावत्रैवसुलक्षणफलंहितत्
सुलक्षणैः सुचरितैरपि मन्दायुषम्पतिम् । दीर्घायुषम्प्रकुर्वन्ति प्रमदाःप्रमदास्पदम्
अतः सुलक्षणायोषापरिणेयाविचक्षणैः । लक्षणानिपरीक्ष्यादौहित्वादुर्लक्षणान्यपि
लक्षणानिमयोक्तानि सुखाय गृहमेधिनाम् । विवाहानपिवक्ष्यामितन्निबोधघटोद्भव!

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
स्त्रीलक्षणवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

सदाचारवर्णनेऽष्टविवाहवर्णनम्

स्कन्द उवाच

विवाहा ब्राह्मदैवार्षाः प्राजापत्यासुरौतथा । गान्धर्वोराक्षसश्चापि पैशाचोऽष्टमउच्यते
सब्राह्मोवरमाहूययत्रकन्या स्वलङ्कृता । दीयते तत्सुतः पूयात् पुरुषानेकविंशतिम्
यज्ञस्थायर्त्विजेदैवस्तज्जः पातिचतुर्दश । वरादादाय गोद्वन्द्वमार्षस्तज्जःपुनातिषट्
सहोभौचरतां धर्ममित्युक्त्वा दीयतेऽर्थिने ।
यत्र कन्या प्राजापत्यस्तज्जो वंशान्पुनाति षट् ॥ ४ ॥
चत्वार एते विप्राणां धर्म्याः पाणिग्रहाः स्मृताः ।
आसुरः क्रयणाद् द्रव्यैर्गान्धर्वोऽन्योन्यमैत्रतः ॥ ५ ॥
प्रसह्यकन्याहरणाद्राक्षसोनिन्दितःसताम् । छलेनकन्याहरणात्पैशाचोगर्हितोऽष्टमः
प्रायःक्षत्रविशोरुक्तागान्धर्वासुरराक्षसाः । अष्टमस्त्वेषपापिष्ठःपापिष्ठानाञ्चसम्भवेत्
सवर्णयाकरोग्राह्यो धार्यःक्षत्रिययाशरः । प्रतोदोवैश्ययाधार्योवासोन्तः पज्ञयातथा
असवर्णस्त्वेषविधिः स्मृतो दूष्टश्चवेदने ।
सवर्णाभिस्तु सर्वाभिः पाणिर्ग्राह्यस्त्वयं विधिः ॥ ६ ॥
धर्म्यैर्विवाहैर्जायन्ते धर्म्या एव शतायुषः । अधर्म्यैर्धर्मरहिता मन्दभाग्यधनायुषः ॥
ऋतुकालाभिगमनंधर्मोऽयंगृहिणः परः । स्त्रीणां वरमनुस्मृत्य यथाकाम्यथवाभवेत्
दिवाभिगमनंपुंसामनायुष्यं परं मतम् । श्राद्धाहःसर्वपर्वाणियत्नात्त्याज्यानिधीमता
तत्र गच्छन् स्त्रियं मोहाद्धर्मात्प्रच्यवतेपरात् ॥ १३ ॥
ऋतुकालाभिगामीयःस्वदारनिरतश्चयः । ससदाब्रह्मचारी च विज्ञेयः सद्गृहाश्रमी
ऋतुषोडशयामिन्यश्चतस्रस्तासु गर्हिताः ।
पुत्रास्तास्वपि या युग्मा अयुग्माः कन्यकाप्रजाः ॥ १५ ॥

त्यक्त्वा चन्द्रमसं दुःस्थं मघां पौष्णं विहाय च।
शुचिःसन्निर्विशेत्पत्नींपुन्नामर्क्षे विशेषतः। शुचिं पुत्रं प्रसूयेत पुरुषार्थप्रसाधकम्
आर्षेविवाहे गोद्वन्द्वं यदुक्तंतन्नशस्यते। शुल्कमण्वपिकन्यायाःकन्याविक्रयपापकृत्
अपत्यविक्रयीकल्पंवसेद्विट्कृमिभोजने। अतोनाण्वपिकन्यायाउपजीवेत्पिताधनम्
स्त्रीधनान्युपजीवन्ति येमोहादिह बान्धवाः। नकेवलंनिरयगास्तेषामपि हि पूर्वजाः
पत्यातुष्यति यत्र स्त्री तुष्येद्यत्र स्त्रिया पतिः। तत्रतुष्टामहालक्ष्मीर्निवसेद्दानवारिणा
वाणिज्यं नृपतेः सेवावेदानध्यापनं तथा। कुविवाहः क्रियालोपः कुले पतनहेतवः
कुर्याद्वैवाहिके वह्नौ गृह्यंकर्मान्वहं गृही। पञ्चयज्ञक्रियां चाऽपि पक्तिं दैनन्दिनीमपि
गृहस्थाश्रमिणः पञ्चसूनाकर्म दिने दिने। कण्डनी पेषणीचुल्ली ह्युदकुम्भस्तुमार्जनी
तासां च पञ्चसूनानां निराकरणहेतवः। क्रतवः पञ्चनिर्दिष्टा गृहिश्रेयोऽभिवर्धनाः
पाठनं ब्रह्मयज्ञः स्यात्तर्पणञ्चपितृक्रतुः। होमोदैवोबलिर्भौतोऽतिथ्यर्चानृक्रतुःक्रमात्
पितृप्रीतिम्प्रकुर्वाणः कुर्वीतश्राद्धमन्वहम्। अन्नोदकपयोमूलैः फलैर्वापि गृहाश्रमी
गोदानेन च यत्पुण्यं पात्राय विधिपूर्वकम्।
सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षां दत्त्वा तत्फलमाप्नुयात्॥ २७॥
तपोविद्यासमिद्धाग्नेहुतं विप्रास्यपावके। तारयेद्विघ्नसङ्घेभ्यःपापाब्धेरपिदुस्तरात्
अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद्भग्नाशो यस्य गच्छति।
आजन्मसञ्चितात्पुण्यात्क्षणात्स हि बहिर्भवेत्॥ २९॥
सान्त्वपूर्वाणिवाक्यानिशय्यार्थेभूस्तृणोदके। एतान्यपिप्रदेयानिसदाऽभ्यागततुष्टये
गृहस्थः परपाकादी प्रेत्य तत्पशुतांव्रजेत्। श्रेयः परान्नपुष्टस्यगृह्णीयादन्नदो यतः
आदित्योढोऽतिथिःसायं सत्कर्तव्यः प्रयत्नतः।
असत्कृतोऽन्यतो गच्छन्दुष्कृतं भूरि यच्छति॥ ३२॥
भुञ्जानोऽतिथिशेषान्नमिहायुर्धनभाग्भवेत्।
प्राणोद्यातिथिमन्नाशी किल्बिषी च गृहाश्रमी॥ ३३॥
वैश्वदेवान्तसम्प्राप्तः सूर्योढोवातिथिःस्मृतः। न पूर्वकालआयातोनचदृष्टचरःक्वचित्

बलिपात्रकरेविप्रे यद्यन्योतिथिरागतः । अदत्वातम्बलिं तस्मै यथाशक्त्यान्नमर्पयेत्
कुमाराश्च सुवासिन्यो गर्भिण्योऽतिरुजान्विताः ।
अतिथेरादितोप्येते भोज्या नाऽत्र विचारणा ॥ ३६ ॥
पितृदेवमनुष्येभ्योदत्त्वाऽश्नात्यमृतंगृही । स्वार्थम्पचन्नघम्भुङ्क्तेकेवलंस्वोदरम्भरिः
माध्याह्निकं वैश्वदेवं गृहस्थः स्वयमाचरेत् ।
पत्नी सायम्बलिं दद्यात्सिद्धान्नैर्मन्त्रवर्जितम् ॥ ३८ ॥
एतत्सायन्तनंनाम वैश्वदेवं गृहाश्रमे । सायम्प्रातर्भवेदेवं वैश्वदेवं प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥
वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः । सर्वे ते वृषला ज्ञेयाःप्राप्तवेदाअपिद्विजाः
अकृत्वावैश्वदेवंतु भुञ्जते ये द्विजाधमाः । इहलोकेऽन्नहीनाःस्युःकाकयोनिंव्रजन्त्यथ
वेदोदितंस्वकंकर्मनित्यंकुर्यादतन्द्रितः । तद्धिकुर्वन्यथाशक्तिप्राप्नुयात्सद्गतिम्पराम्
षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापं तैले मांसे सदैव हि । पञ्चदश्याञ्चतुर्दश्यां तथैव च भगे क्षुरे
उदयन्तं न चेक्षेत नास्तं यान्तं न मध्यगम् ।
न राहुणोपसृष्टञ्च नाऽम्बुसंस्थं दिवाकरम् ॥ ४४ ॥
नवीक्षेतात्मनो रूपमाशुधावेन्नवर्षति । नोल्लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न नग्नो जलमाविशेत्
देवतायतनं विप्रं धेनुं मधुमृदं घृतम् । जातिवृद्धं वयोवृद्धं विद्यावृद्धं तपस्विनम्
अश्वत्थञ्चैत्यवृक्षञ्च गुरुं जलभृतं घटम् ।
सिद्धान्नन्दधिसिद्धार्थं गच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥
रजस्वलां न सेवेत नाश्नीयात्सह भार्यया । एकवासान भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने
नाश्नन्तीं स्त्रीं समीक्षेत तेजस्कामो द्विजोत्तमः ।
असन्तर्प्य पितॄन्देवान्नाद्यादन्नंनवं क्वचित् ॥ ४९ ॥
पक्वान्नञ्चापि नोमांसं दीर्घकालञ्जिजीविषुः । नमूत्रंगोव्रजेकुर्यान्नवल्मीकेनभस्मनि
न गर्त्तेषु ससत्त्वेषुनतिष्ठन्नव्रजन्नपि । गोविप्रसूर्यवाय्वग्निचन्द्रर्क्षाऽम्बुगुरूनपि ॥
अभिपश्यन्नकुर्वीत मलमूत्रविसर्जनम् । तिरस्कृत्यावनिंलोष्टकाष्ठपर्णतृणादिभिः
प्रावृत्य वाससा मौलिं मौनोविण्मूत्रमुत्सृजेत् ।

यथासुखमुखो रात्रौ दिने छायाऽन्धकारयोः ॥ ५३ ॥
भीतिषु प्राणबाधायां कुर्यान्मलविसर्जनम् । मुखेनोपधमेन्नाग्निनग्नांनेक्षेतयोषितम्
नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्त्वशुचि निक्षिपेत् ।
प्राणिहिंसां न कुर्वीत नाश्नीयात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ५५ ॥
न संविशेत सन्ध्यायां प्रत्यक्सौम्यशिरा अपि ।
विण्मूत्रष्ठीवनंनाप्सु कुर्याद्दीर्घं जिजीविषुः ॥ ५६ ॥
नाचक्षीत धयन्तींगांनेन्द्रचापं प्रदर्शयेत् । नैकःसुप्यात्क्वचिच्छून्येनशयानम्प्रबोधयेत्
पन्थानंनैकलो यायान्नवार्यञ्जलिनापिबेत् । नदिवोद्धृतसारञ्च भक्षयेद्दधि नो निशि
स्त्रीधर्मिण्या नाभिवदेन्नाद्यादातृप्तिरात्रिषु ।
तौर्यत्रिकप्रियो न स्यात्कांस्ये पादौ न धावयेत् ॥ ५९ ॥
श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ।
दातुः श्राद्धफलंनास्ति भोक्ता किल्बिषभुग्भवेत् ॥ ६० ॥
न धारयेदन्यभुक्तंवासश्चोपानहावपि । न भिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते
आरोहणं गवां पृष्ठेप्रेतधूमं सरित्तरम् । बालातपंदिवा स्वापं त्यजेद्दीर्घंजिजीविषुः
स्नात्वानमार्जयेद्गात्रं विसृजेन्न शिखांपथि । हस्तौशिरो न धुनुयान्नाकर्षेदासनम्पदा
नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन । करजैः करजच्छेदं तृणच्छेदं विवर्जयेत्
शुभाय न यदायत्यां त्यजेत्तत्कर्मयत्नतः । अद्वारेण न गन्तव्यं स्ववेश्मपरवेश्मनोः
क्रीडेन्नाक्षैःसहासीत नधर्मघ्नैर्नरोगिभिः । नशयीत क्वचिन्नग्नः पाणौ भुञ्जीत नैव च
आर्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालञ्जीवति । संविशेन्नार्द्रचरणोनोच्छिष्टःक्वचिदाव्रजेत्
शयनस्थोन चाश्नीयान्नपिबेन्नजपेद्द्विजः । सोपानत्कश्चनाचामेन्नतिष्ठन्धारया पिबेत्
सर्वं तिलमयंनाद्यात्सायं शर्माभिलाषुकः ।
न निरीक्षेत विण्मूत्रे नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः ॥ ६६ ॥
नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः । पतितैः सह संवासः पतनायैव जायते
श्रावयेद्वैदिकं मन्त्रं नशूद्राय कदाचन । ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रः शूद्रो धर्माच्च हीयते

धर्मोपदेशःशूद्राणांस्वश्रेयः प्रतिघातयेत् । द्विजशुश्रूषणं धर्मः शूद्राणां हि परो मतः
कण्डूयनंहिशिरसःपाणिभ्यां नशुभम्मतम् । आताडनंकराभ्याञ्चक्रोशनंकेशलुञ्चनम्
अशास्त्रवर्तिनो भूपाल्लुब्धात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ।
ब्राह्मणः सान्वयो याति नरकानेकविंशतिम् ॥ ७४ ॥
अकालविद्युत्स्तनिते वर्षतौपांसुवर्षणे । महावातध्वनौरात्रावनध्यायाः प्रकीर्तिताः
उल्कापातेच भूकम्पेदिग्दाहेमध्यरात्रिषु । सन्ध्ययोर्वृषलोपान्ते राज्ञोराहोश्च सूतके
दर्शाष्टकासुभूतायांश्राद्धिकम्प्रतिगृह्यच । प्रतिपद्यपिपूर्णायांगजोष्ट्राभ्यां कृतान्तरे
खरोष्ट्रक्रोष्टृविरुते समवाये रुदत्यपि । उपाकर्मणि चोत्सर्गे नाविमार्गे तरौ जले
आरण्यकमधीत्यापिबाणसाम्नोरपिध्वनौ । अनध्यायेषुचैतेषुनाधीयीतद्विजः क्वचित्
कृतान्तरायोनपठेद्भेकाखुश्वाहिबभ्रुभिः । भूताष्टम्योः पञ्चदश्योर्ब्रह्मचारी सदा भवेत्
अनायुष्यकरञ्चैवपरदारोपसर्पणम् । तस्मात्तद्दूरतस्त्याज्यं वैरिणाञ्चोपसेवनम्
पूर्वर्धिभिःपरित्यक्तमात्मानं नावमानयेत् । सदोद्यमवतांयस्माच्छ्रियोविद्यानदुर्लभाः
सत्यम्ब्रूयात्प्रियम्ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् । प्रियञ्चनानृतम्ब्रूयादेष धर्मोघटोद्भव!
भद्रमेव वदेन्नित्यं भद्रमेव विचिन्तयेत् । भद्रैरेवेह संसर्गो नाभद्रैश्च कदाचन
रूपवित्तकुलैर्हीनान्सुधीर्नाधिक्षिपेन्नरान् । पुष्पवन्तौनचेक्षेतत्वशुचिर्ज्योतिषाङ्गणम्
वाचोवेगं मनोवेगं जिह्वावेगं च वर्जयेत् । उत्कोचद्यूतदौत्यार्त्तद्रव्यं दूरात्परित्यजेत्
गोब्राह्मणाग्नीनुच्छिष्टपाणिना नैव संस्पृशेत् ।
न स्पृशेदनिमित्तेन खानि स्वानि त्वनातुरः ॥ ८७ ॥
गुह्यजान्यपिलोमानितत्स्पर्शादशुचिर्भवेत् । पादधौतोदकंमूत्रमुच्छिष्टान्नोदकानिच
निष्ठीवनञ्चश्लेष्माणंगृहाद्दूरंविनिक्षिपेत् । अहर्निशश्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात्
अद्रोहवत्या बुद्ध्या च पूर्वजन्म स्मरेद्द्विजः ॥ ८६ ॥
वृद्धान्प्रयत्नाद्वन्देतदद्यात्तेषांस्वमासनम् । विनम्रधमनिस्तस्मादनुयायात्ततश्च तान्
श्रुतिभूदेवदेवानांनृपसाधुतपस्विनाम् । पतिव्रतानांनारीणांनिन्दांकुर्यान्नकर्हिचित्
नमनुष्यस्तुतिंकुर्यान्नात्मानमपमानयेत् । अभ्युद्यतं न प्रणुदेत्परमर्माणि नोच्चरेत्

अधर्मादेधतेपूर्वंविद्वेष्टॄनपिसञ्जयेत् । सर्वतोभद्रमाप्यापि ततो नश्येच्च सान्वयः
उद्धृत्य पञ्चमृत्पिण्डान्स्नायात्परजलाशये ।
अनुद्धृत्य च तत्कर्तुरेनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ ९४ ॥
श्रद्धयापात्रमासाद्ययत्किञ्चिद्दीयतेवसु । देशे काले च विधिना तदानन्त्याय कल्पते
भूप्रदोमण्डलाधीशःसर्वत्रसुखिनोऽन्नदाः । तोयदातासदातृप्तोरूपवान्रूप्यदो भवेत्
प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदाताऽर्यमलोकभाक् ।
स्वर्णदाता च दीर्घायुस्तिलदः स्यात्तु सुप्रजाः ॥ ९७ ॥
वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशोवस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक् । हयप्रदोदिव्ययानोलक्ष्मीवान्वृषभप्रदः
सुभार्यः शिबिकादाता सुपर्यङ्कप्रदोऽपि च । धान्यैः समृद्धिमान्नित्यमभयप्रदईशिता
ब्रह्मदोब्रह्मलोकेज्योब्रह्मदः सर्वदो मतः । उपायेनापि यो ब्रह्म दापयेत्सोऽपि तत्समः
श्रद्धया प्रतिगृह्णाति श्रद्धया यः प्रयच्छति ।
स्वर्गिणौ तावुभौ स्यातां पततोऽश्रद्धयात्यधः ॥ १०१ ॥
अनृतेनक्षरेद्यज्ञस्तपोविस्मयतः क्षरेत् । क्षरेत्कीर्तनतो दानमायुर्विप्रापवादतः
गन्धपुष्पकुशाञ्च्छय्यां शाकं मांसम्पयोदधि ।
मणिमत्स्यगृहं धान्यं ग्राह्यमेतदुपस्थितम् ॥ १०३ ॥
मधूदकंफलं मूलमेधांस्यभयदक्षिणा । अभ्युद्यतानि ग्राह्याणि त्वेतान्यपि निकृष्टतः
दासनापितगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः । भोज्यान्नाःशूद्रवर्गेऽमीतथात्मविनिवेदकः
इत्थमानृण्यमासाद्यदेवर्षिपितृजादृणात् । माध्यस्थ्यमाश्रयेद्गेहेसुतेविष्वग्विसृज्यच
गेहेऽपि ज्ञानमभ्यस्येत्काशीं वाथ समाश्रयेत् ।
सम्यग्ज्ञानेन वा मुक्तिः किंवा विश्वेशवेश्मनि ॥ १०७ ॥
सम्यग्ज्ञानम्भवेत्पुंसां कुतएकेनजन्मना । वाराणस्यां ध्रुवामुक्तिःशरीरत्यागमात्रतः
अद्यश्वोवापरश्वोवाकालाद्वाथपरःशतात् । सत्वरोगत्वरीदेहःकाश्याञ्चेदमृतीभवेत्
साचवाराणसीलभ्यासदाचारवतासदा । मनसापि सदाचारमतो विद्वान्न लङ्घयेत्
आकर्ण्येतिततोऽगस्त्यःपुनःप्राहषडाननम् । पुनः काशींसमाचक्ष्वसदाचारेण याप्यते

कानिकानिचलिङ्गानिस्कन्द!ज्ञानप्रदानिच। वाराणस्याम्परिब्रूहितानिमेपरिपृच्छतः
विना काशींनमेप्रीतिर्विना काशींनमेरतिः। चित्रपुत्रकवच्चास्मि विनाकाशींषडानन!
ननिद्रामिनजागर्मिनाश्नामिनपिबाम्यपः। काशीद्व्यक्षरपीयूषं पिबामि हि चकेवलम्
इति श्रुत्वा वचः स्कन्दो मैत्रावरुणिभाषितम्।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ११५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां सहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे सदाचारवर्णनंनामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

अविमुक्तेशाविर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्य महाभाग! कथाम्पापप्रणाशिनीम्।
नैःश्रेयस्याः श्रियोहेतुमविमुक्तसमाश्रयाम् ॥ १ ॥
परंब्रह्म यदाम्नातं निष्प्रपञ्चंनिरात्मकम्। निर्विकल्पंनिराकारमव्यक्तं स्थूलसूक्ष्मवत्
तदेतत्क्षेत्रमापूर्यस्थितंसर्वगमप्यहो। किमन्यत्र नशक्तोऽसौजन्तून्मोचयितुम्भवात्
भवो ध्रुवं यदत्रैवमोचयेत्तं निशामय। महत्या योगयुक्त्या वामहादानैरकामिकैः
सुमहद्भिस्तपोभिर्वाशिवोऽन्यत्रविमोचयेत्। योगयुक्तिंनमहतीं नदानानिमहान्ति च
न तपांस्यति दीर्घाणि काश्याम्मुक्त्यैशिवोऽर्थयेत्।
वियुनक्ति न यत्काश्या उपसर्गे महत्यपि ॥ ६ ॥
अयमेव महायोग उपयोगस्त्विहापरः। नियमेन तुविश्वेशे पुष्पम्पत्रं फलं जलम्
यद्दत्तंसुमनोवृत्त्या महादानं तदत्र वै। मुक्तिमण्डपिकायां च क्षणं यत्स्थिरमास्यते
स्नात्वागङ्गामृते शुद्धेतपएतदिहोत्तमम्। सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षायत्काश्याम्परिदीयते

तुलापुरुष एतस्याः कलां नार्हति षोडशीम् । ॥ ६ ॥
हृदि सञ्चिन्त्यविश्वेशंक्षणंयद्विनिमील्यते । देवस्यदक्षिणे भागे महायोगोऽयमुत्तमः
इदमेवतपोऽत्युग्रंयदिन्द्रियविलोलताम् । निषिध्यस्थीयतेकाश्यांक्षुत्तापाद्यवमन्यच
मासि मासि यदाप्येत व्रताचान्द्रायणात्फलम् ।
अन्यत्र तदिहाप्येत भूतायां नक्तभोजनात् ॥ १२ ॥
मासोपवासादन्यत्र यत्फलंसमुपाज्यर्ते । श्रद्धयैकोपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम्
चातुर्मास्यव्रतात्प्रोक्तंयदन्यत्रमहाफलम् । एकादश्युपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम्
षण्मासान्नपरित्यागाद्यदन्यत्रफलंलभेत् । शिवरात्र्युपवासेनतत्काश्याञ्जायते ध्रुवम्
वर्षंकृत्वोपवासानिलभेदन्यत्र यद्व्रती । तत्फलं स्यात्त्रिरात्रेणकाश्यामविकलं मुने
मासि मासि कुशाग्राम्बुपानादन्यत्रयत्फलम् । काश्यामुत्तरवाहिन्यामेकेनचुलुकेनतत्
अनन्तो महिमा काश्याः कस्तं वर्णयितुम्प्रभुः ।
विपत्तिमिच्छतो जन्तोर्यत्रकर्णेजपः शिवः ॥ १८ ॥
शम्भुस्तत्किञ्चिदाचष्टे म्रियमाणस्य जन्मिनः ।
कर्णेऽक्षरं यदाकर्ण्य मृतोऽप्यमृततां व्रजेत् ॥ १६
स्मारं स्मारं स्मररिपोःपुरींत्वमिवशङ्करः । अद्युनोन्मन्दरं यातो बहुशस्तदवाप्तये

अगस्त्य उवाच

स्वकार्यनिपुणैः स्वामिन्! गीर्वाणैरतिदारुणैः ।
त्याजितोऽहम्पुरींकाशीं हरोऽत्याक्षीत्कुतः प्रभुः ॥ २१ ॥
पराधीनोऽहमिव किंदेवदेवः पिनाकवान् ।
काशिकां सोऽत्यजत्कस्मान्निर्वाणमणिराशिकाम् ॥ २२ ॥

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणसम्भूत! कथयामि कथामिमाम् ।
तत्याज च यथा स्थाणुः काशीं विद्ध्युपरोधतः ॥ २३ ॥
प्रार्थितस्त्वं यथा लेखैः परोपकृतये मुने !। द्रुहिणेन तथा रुद्रः स्वरक्षणविचक्षणः

अगस्त्य उवाच

कथंसभगवान् रुद्रोद्रुहिणेन कृपाम्बुधिः । प्रार्थितोऽभूत्किमर्थञ्च तन्मे ब्रूहि षडानन

स्कन्द उवाच

पाद्मेकल्पेपुरा वृत्तेमनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे । अनावृष्टिरभूद्विप्र सर्वभूतप्रकम्पिनी ॥
तयातुषष्टिहायिन्यापीडिताःप्राणिनोऽखिलाः । केचिदम्बुधितीरेषुगिरिद्रोणीषुकेचन
महानिम्नेषु कच्छेषुमुनिवृत्त्याजनाः स्थिताः । अरण्यान्यवनिर्जातााग्रामखर्वटवर्जिता
क्रव्यादा एव सर्वेषु नगरेषु पुरेषु च । आसन्नभ्रंलिहोवृक्षाः सर्वत्र क्षोणिमण्डले
चौराएवमहाचौरैरुल्लुठ्यन्तइतस्ततः । मांसवृत्त्योपजीवन्ति प्राणिनः प्राणरक्षिणः
अराजकेसमुत्पन्नेलोकेऽत्याहितशंसिनि । प्रयत्नोविफलस्त्वासीत्सृष्टेःसृष्टिकृतस्तदा
चिन्तामवाप महतीं जगद्योनिः प्रजाक्षयात् ।
प्रजासु क्षीयमाणासु क्षीणा यज्ञादिकाः क्रियाः ॥ ३२ ॥
तासुक्षीणासुसंक्षीणाः सर्वेयज्ञभुजोऽभवन् । ततश्चिन्तयता स्रष्ट्रा दृष्टोराजर्षिसत्तमः
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तपस्यन्निश्चलेन्द्रियः । मनोरन्वयजो वीरःक्षात्त्रो धर्म इवोदितः
रिपुञ्जय इति ख्यातो राजा परपुरञ्जयः । अथ ब्रह्मा तमासाद्य बहुगौरवपूर्वकम्
उवाच वचनं राजन् रिपुञ्जयमहामते !। इलां पालय भूपाल! ससमुद्राद्रिकाननाम्
नागकन्यां नागराजः पत्न्यर्थं ते प्रदास्यति ।
अनङ्गमोहिनीं नाम्ना वासुकिः शीलभूषणाम् ॥ ३७ ॥
दिवोपिदेवा दास्यन्ति रत्नानि कुसुमानि च । प्रजापालनसन्तुष्टा महाराजप्रतिक्षणम्
दिवोदास इतिख्यातमतोनामत्वमाप्स्यसि । मत्प्रभावाच्चनृपतेदिव्यं सामर्थ्यमस्तुते
परमेष्ठिवचः श्रुत्वा ततोऽसौराजसत्तमः । वेधसं बहुशः स्तुत्वा वाक्यं चेदमुवाचह

राजोवाच

पितामहमहाप्राज्ञ! जनाकीर्णे महीतले । कथंनान्ये च राजानो मां कथं कथ्यते त्वया

ब्रह्मोवाच

त्वयिराज्यं प्रकुर्वाणेदेवो वृष्टिंविधास्यति । पापनिष्ठेचवैराज्ञि न देवो वर्षते पुनः

राजोवाच

पितामहमहामान्य! त्रिलोकीकरणक्षम !। महाप्रसाद इत्याज्ञां त्वदीयां मूर्ध्न्युपाददे
किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोऽहं तन्मदर्थंकरोषिचेत् । ततःकरोम्यहं राज्यंपृथिव्यामसपत्नवत्

ब्रह्मोवाच

अविलम्बेन तद्ब्रूहिकृतं मन्यस्व पार्थिव !। यत्तेहृदि महाबाहोतवादेयंन किञ्चन

राजोवाच

यद्यहंपृथिवीनाथः सर्वलोकपितामह !। तदा दिविषदो देवा दिवि तिष्ठन्तु मा भुवि
देवेषुदिवितिष्ठत्सुमयितिष्ठति भूतले । असपत्नेन राज्येन प्रजासौख्यमवाप्स्यति
तथेतिविश्वसृक्प्रोक्तोदिवोदासोनरेश्वरः । पटहंघोषयाञ्चक्रे दिवंदेवा व्रजन्त्विति
मागच्छन्त्विह वै नागा नराः स्वस्था भवन्त्वितः ।
मयि प्रशासति क्षोणीं सुराः स्वस्था भवन्त्विति ॥ ४६ ॥

एतस्मिन्नन्तरेब्रह्माविश्वेशम्प्रणिपत्यह । यावद्विज्ञप्तुकामोऽभूत्तावदीशोऽब्रवीद्विधिम्
लोकेश्वरसमायाहिमन्दरोनाम भूधरः । कुशद्वीपादिहागत्य तपस्तप्येत दुष्करम्
यावत्तस्मैवरंदातुं बहुकालं तपस्यते । इत्युक्त्वा पार्वतीनाथो नन्दिभृङ्गिपुरोगमः
जमाम वृषमारुह्य मन्दरो यत्र तिष्ठति । उवाच च प्रसन्नात्मादेवदेवो वृषध्वजः
उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्ते वरम्ब्रूहि धरोत्तम !। सोऽथ श्रुत्वामहेशानं देवदेवं त्रिलोचनम्
प्रणम्यबहुशो भूमावद्रिरेतद्व्यजिज्ञपत् । लीलाविग्रहभृच्छम्भो प्रणतैककृपानिधे!
सर्वज्ञोऽपि कथं नाम न वेत्थममवाञ्छितम् । शरणागतसन्त्राणसर्ववृत्तान्तकोविद!
सर्वेषांहृदयानन्द! शर्वसर्वगसर्वकृत् । यदि देयो वरो मह्यं स्वभावाद्द्रुपदात्मने ॥
याचकायाऽतिशोच्याय प्रणतार्त्तिप्रभञ्जक !।
ततोऽविमुक्तक्षेत्रस्य साम्यं ह्यभिलषाम्यहम् ॥ ५८ ॥

कुशंद्वीपउमासार्धं नाथाद्यसपरिच्छदः । मन्मौलौ विहितावासः प्रयात्वेष वरोमम
सर्वेषां सर्वदः शम्भुः क्षणं यावद्विचिन्तयेत् ।
विज्ञातावसरो ब्रह्मा तावच्छम्भुं व्यजिज्ञपत् ।

प्रणम्याऽग्रेसरो भूत्वा मौलौ बद्धकरद्वयः ॥ ६० ॥

ब्रह्मोवाच

विश्वेश जगतां नाथ! पत्या व्यापारितोऽस्म्यहम् ।
कृतप्रसादेन विभो! सृष्टिं कर्तुं चतुर्विधाम् ॥ ६१ ॥

प्रयत्नेन मयासृष्टा सासृष्टिस्त्वदनुज्ञया । अवृष्ट्याषष्टिहायिन्या तत्रनष्टाऽप्रजाभुवि
अराजकं महच्चासीद् दुरवस्थमभूज्जगत् । ततो रिपुञ्जयो नाम राजर्षिर्मनुवंशजः
मयाभिषिक्तोराजर्षिःप्रजाः पातुं नरेश्वरः । चकारसमयंसोऽपि महावीर्यो महातपाः

तवाऽऽज्ञया चेत्स्थास्यन्ति सर्वे दिविषदो दिवि ।
नागलोके तथा नागास्ततो राज्यं करोम्यहम् ॥ ६५ ॥
तथेति च मया प्रोक्तं प्रमाणीक्रियतां तु तत् ।
मन्दराय वरो दत्तो भवेद्देवं कृपानिधे !॥ ६६ ॥

तस्य राज्ञः प्रजात्रातुम्भूयाच्चैव मनोरथः । ममनाडीद्वयंराज्यंतस्यापिच शतक्रतोः
मर्त्यानांगणनाक्वेहनिमेषार्धनिमेषिणाम् । देवोऽपिनिर्गलं मत्वामन्दरंचारुकन्दरम्
विधेश्चगौरवंरक्षंस्तथोरीकृतवान्हरः । जम्बूद्वीपे यथा काशी निर्वाणपददासदा
तथा बहुतिथं कालं द्वीपोभूत्सोऽपि मन्दरः । यियासुनाचदेवेन मन्दरंचित्रकन्दरम्
निजमूर्त्तिमयंलिङ्गमविज्ञातं विधेरपि । स्थापितंसर्वसिद्धीनांस्थापकेभ्यःसमर्पितुम्
विपन्नानाञ्चजन्तूजांदातुंनैःश्रेयसींश्रियम् । सर्वेषामिहसंस्थानांक्षेत्रंचैवाभिरक्षितुम्
मन्दराद्रिगतेनापि क्षेत्रंनैतत्पिनाकिना । विमुक्तंलिङ्गरूपेण अविमुक्तमतः स्मृतम्
पुराऽऽनन्दवनंनामक्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् । अविमुक्तं तदारभ्यनामाऽस्य प्रथितम्भुवि
नामाविमुक्तमभवदुभयोः क्षेत्रलिङ्गयोः । एतद् द्वयंसमासाद्य न भूयो गर्भभाग्भवेत्
अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं दृष्ट्वाक्षेत्रेऽविमुक्तके । विमुक्त एव भवतिसर्वस्मात्कर्मबन्धनात्

अर्चन्ति विश्वे विश्वेशं विश्वेशोऽर्चति विश्वकृत् ।
अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं भुविमुक्तिप्रदायकम् ॥ ७७ ॥
पुरा न स्थापितं लिङ्गं कस्यचित्केनचित्क्वचित् ।

किमाकृति भवेल्लिङ्गं नैतद्वेत्त्यपि कश्चन ॥ ७८ ॥
आकारमविमुक्तस्यदृष्ट्वाब्रह्माच्युतादयः । लिङ्गं संस्थापयामासुर्वसिष्ठाद्यास्तथर्षयः
आदिलिङ्गमिदंप्रोक्तमविमुक्तेश्वरम्महत् । ततो लिङ्गान्तराण्यत्रजातानिक्षितिमण्डले
अविमुक्तेशनामाऽपि श्रुत्वा जन्मार्जितादघात् ।
क्षणान्मुक्तो भवेन्मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ॥ ८१ ॥
अविमुक्तेश्वरंलिङ्गं स्मृत्वादूरगतोऽपि च । जन्मद्वयकृतात्पापात्क्षणादेवविमुच्यते
अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽविमुक्तमवलोक्य च । त्रिजन्मजनितं पापं हित्वा पुण्यमयोभवेत्
यत्कृतं ज्ञानविभ्रंशादेनः पञ्चसुजन्मसु । अविमुक्तेशसंस्पर्शात्तत्क्षयेदेव नाऽन्यथा
अर्चयित्वामहालिङ्गमविमुक्तेश्वरं नरः । कृतकृत्योभवेदत्र न च स्याज्जन्मभाक्कुतः
स्तुत्वा नत्वाऽर्चयित्वा च यथाशक्ति यथामति ।
अविमुक्ते विमुक्तेशं स्तूयते नम्यतेऽर्च्यते ॥ ८६ ॥
अनादिमदिदंलिङ्गं स्वयंविश्वेश्वरार्चितम् । काश्याम्प्रयत्नतःसेव्यमविमुक्तंविमुक्तये
सन्ति लिङ्गान्यनेकानि पुण्येष्वायतनेषु च ।
आयान्ति तानिलिङ्गानि माघीं प्राप्य चतुर्दशीम् ॥ ८८ ॥
कृष्णायां माघभूतायामविमुक्तेशजागरात् ।
सदाविगतनिद्रस्य योगिनो गतिभाग्भवेत् ॥ ८९ ॥
नानायतनलिङ्गानि चतुर्वर्गप्रदान्यपि । माघकृष्णचतुर्दश्यामविमुक्तमुपासते ॥ ९०
किंबिभेति नरोधीरः कृतादघशिलोच्चयात् । अविमुक्तेशलिङ्गस्य भक्तिवज्रधरोयदि
क्वाविमुक्तं महालिङ्गं चतुर्वर्गफलोदयम् ।
क्व पापिपापशैलोऽल्पो यः क्षयेन्नाम्नि संस्मृते ॥ ९२ ॥
अविमुक्तेमहाक्षेत्रे विश्वेशसमधिष्ठिते । यैर्नदृष्टं विमूढास्तेऽविमुक्तं लिङ्गमुत्तमम्
द्रष्टारमविमुक्तस्य दृष्ट्वादण्डधरो यमः । दूरादेव प्रणमतिप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९४ ॥
धन्यंतन्नेत्रनिर्माणं कृतकृत्यौ तु तौ करौ । अविमुक्तेश्वरंयेनयाभ्यामैक्षिष्टयःस्पृशेत्
त्रिसन्ध्यमविमुक्तेशं योजपेन्नियतः शुचिः । दूरदेशविपन्नोऽपि काशीमृतफलंलभेत्

अविमुक्तंमहालिङ्गंदृष्ट्वाग्रामान्तरंव्रजेत् । लब्ध्वाऽऽशुकार्यसंसिद्धिंक्षेमेणप्रविशेद्गृहम्

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
पूर्वार्धेऽविमुक्तेशाविर्भाववर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

गृहस्थधर्मवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अविमुक्तेशमाहात्म्यंवर्णितंतेऽग्रतो मया । अथोकिमसिशुश्रुषुःकथयिष्यामितत्पुनः

अगस्त्य उवाच

अविमुक्तेशमाहात्म्यं श्रावंश्रावं श्रुतीमम । अतीवसुश्रुते जातेतथापि न धिनोम्यहम्
अविमुक्तेश्वरंलिङ्गं क्षेत्रं चाप्यविमुक्तकम् । एतयोस्तुकथंप्राप्तिर्भवेत्षण्मुख तद्वद

स्कन्द उवाच

शृणु कुम्भज!वक्ष्यामि यथाप्राप्तिर्भवेदिह । स्वश्रेयो दातुरेतस्याविमुक्तस्यमहामते
समीहितार्थसंसिद्धिर्लभ्यते पुण्यभारतः । तच्चपुण्यम्भवेद्विप्र! श्रुतिवर्त्म सभाजनात्
श्रुतिवर्त्मजुषःपुंसःसंस्पर्शान्नश्यतोमुने! । कलिकालावपिसदाछिद्रंप्राप्यजिघांसतः
वर्जितस्य विधानेन प्रोक्तस्याकरणेन वै । कलिकालावपिहतो ब्राह्मणं रन्ध्रदर्शनात्
निषिद्धाचरणंतस्मात्कथयिष्ये तवाग्रतः । तद्दूरतः परित्यज्य नरो न निरयीभवेत्
पलाण्डुं विड्वराहश्च शेलुं लशुनगृञ्जने । गोपीयूषं तण्डुलीयं वर्ज्यश्च कवकं सदा
व्रश्चनान्वृक्षनिर्यासान्पायसापूपशष्कुलीः । अदेवपित्र्यंपललमवत्सागोपयस्त्यजेत्

पय ऐकशफं हेयं तथा क्रामेलकाविकम् ।
रात्रौ न दधि भोक्तव्यं दिवा न नवनीतकम् ॥ ११ ॥
टिट्टिभंकलविङ्कञ्च हंसं चक्रं प्लवम्बकम् ।

त्यजेन्मांसाशिनः सर्वान् सारसं कुक्कुटं शुकम् ॥ १२ ॥
जालपादान्खञ्जरीटान् बुडित्वा मत्स्यभक्षकान् ।
मत्स्याशी सर्वमांसाशी तन्मत्स्यान् सर्वथा त्यजेत् ॥ १३ ॥
हव्यकव्यानि युक्तौ तु भक्ष्यौ पाठीनरोहितौ ।
मांसाशिभिस्त्वमी भक्ष्याः शशशल्लकच्छपाः ॥ १४ ॥
श्वाविद्गोधे प्रशस्ते च ज्ञाताश्च मृगपक्षिणः ।
आयुष्कामैः स्वर्गकामैस्त्याज्यं मांसम्प्रयत्नतः ॥ १५ ॥
यज्ञार्थं पशुहिंसाया सास्वर्ग्यानेतराक्वचित् । त्यजेत्पर्युषितं सर्वमखण्डस्नेहवर्जितम्
प्राणात्ययेक्रतौश्राद्धेभेषजेविप्रकाम्यया । अलौल्यमित्थं पललम्भक्षयन्नैव दोषभाक्
न तादृशम्भवेत्पापं मृगयावृत्तिकाङ्क्षिणः ।
यादृशम्भवति प्रेत्य लौल्यान्मांसोपसेविनः ॥ १८ ॥
मखार्थम्ब्रह्मणा सृष्टाःपशुद्रुममृगौषधीः । निघ्नन्नहिंसको विप्रस्तासामपि शुभागतिः
पितृदेवक्रतुकृते मधुपर्कार्थमेव च । तत्र हिंसाप्यहिंसा स्याद्धिंसान्यत्र सुदुस्तरा
योजन्तूनात्मपुष्ट्यर्थं हिनस्तिज्ञानर्वलः । दुराचारस्यतस्येहनामुत्राऽपि सुखं क्वचित्
भोक्ताऽनुमन्ता संस्कर्ता क्रयिविक्रयिहिंसकाः ।
उपहर्ता घातयिता हिंसकाश्चाऽष्टधा स्मृताः ॥ २२ ॥
प्रत्यब्दमश्वमेधेन शतंवर्षाणि यो यजेत् । अमांसभक्षको यश्च तयोरन्त्योविशिष्यते
यथैवात्मापरस्तद्वद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता । सुखदुःखानितुल्यानि यथात्मनि तथापरे
सुखंवायदिवाचान्यद्यत्किञ्चित्क्रियतेपरे । तत्कृतंहिपुनःपश्चात्सर्वमात्मनिसम्भवेत्
नक्लेशेनविनाद्रव्यमर्थहीने कुतःक्रियाः । क्रियाहीने कुतो धर्मो धर्महीने कुतःसुखम्
सुखंहिसर्वैराकाङ्क्ष्यं तच्च धर्मसमुद्भवम् । तस्माद्धर्मोऽत्र कर्तव्यश्चातुर्वर्ण्येन यत्नतः
न्यायागतेनद्रव्येणकर्तव्यम्पारलौकिकम् । दानञ्च विधिना देयंकाले पात्रे च भावतः
विधिहीनन्तथाऽपात्रे यो ददातिप्रतिग्रहम् । नकेवलंहितद्यातिशेषं तस्य च नश्यति
व्यसनार्थे कुटुम्बार्थे यद्दणार्थे च दीयते । तदक्षयंभवेदत्र परत्रच न संशयः

मातापितृविहीनं यो मौञ्जीपाणिग्रहादिभिः ।
संस्कारयेन्निजैरर्थैस्तस्य श्रेयस्त्वनन्तकम् ॥ ३१ ॥
अग्निहोत्रैर्नतच्छ्रेयोनाग्निष्टोमादिभिर्मखैः । यच्छ्रेयः प्राप्यते मर्त्यैर्द्विजेचैकेप्रतिष्ठिते
यो ह्यनाथस्य विप्रस्य पाणिं ग्राहयते कृती ।
इह सौख्यमवाप्नोति सोऽक्षयं स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥
पितृगेहे तु या कन्या रजःपश्येदसंस्कृता । भ्रूणहाततिपताज्ञेयो वृषलीसापिकन्यका
यस्तां परिणयेन्मोहात्सभवेद्वृषलीपतिः । तेन सम्भाषणंत्याज्यमापङ्क्तेयेनसर्वदा
विज्ञायदोषमुभयोः कन्यायाश्चवरस्यच । सम्बन्धंरचयेतपश्चादन्यथादोषभाक्पिता
स्त्रियःपवित्राः सततं नैता दुष्यन्ति केनचित् ।
मासि मासि रजस्तासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ३७ ॥
पूर्वंस्त्रियः सुरैर्भुक्ताःसोमगन्धर्ववह्निभिः । भुञ्जतेमानुषाःपश्चान्नैतादुष्यन्तिकेनचित्
स्त्रीणां शौचं ददौ सोमः पावकः सर्वमेध्यताम् ।
कल्याणवाणीं गन्धर्वास्तेन मेध्याः सदा स्त्रियः ॥ ३६ ॥
कन्याम्भुङ्क्तेरजःकालेऽग्निःशशीलोमदर्शने । स्तनोद्भेदेषुगन्धर्वास्तत्प्रागेवप्रदीयते
दृश्यरोमा त्वपत्यघ्नी कुलघ्न्युद्गतयौवना ।
पितृघ्न्याविष्कृतरजास्ततस्ताः परिवर्जयेत् ॥ ४१ ॥
कन्यादानफलप्रेप्सुस्तस्माद्द्द्यादनग्निकाम् । अन्यथा न फलंदातुः प्रतिग्राहीपतेदधः
कन्यामभुक्तां सोमाद्यैर्ददद्दानफलंभेत् । देवभुक्तांददद्दाता न स्वर्गमधिगच्छति ॥
शयनाशनयानानिकुणपंस्त्रीमुखं कुशाः । यज्ञपात्राणिसर्वाणिन दुष्यन्तिबुधाक्वचित्
वत्सः प्रस्नवणेमेध्यः शकुनिःफलपातने । नार्योरतिप्रयोगेषु श्वामृगग्रहणे शुचिः ॥
अजाश्वयोर्मुखम्मेध्यं गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः ।
पादतो ब्राह्मणामेध्याः स्त्रियोमेध्यास्तु सर्वतः ॥ ४६ ॥
बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगतापि वा ।
न त्याज्या दयिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते ॥ ४७ ॥

अम्लेन ताम्रशुद्धिःस्याच्छुद्धिः कांस्यस्य भस्मना।
संशुद्धीरजसा नार्यास्तटिन्या वेगतःशुचिः ॥ ४८ ॥
मनसाऽपि हि या नेह चिन्तयेत्पुरुषान्तरम् ।
सोमया सह सौख्यानि भुङ्क्ते चात्राऽपि कीर्तिभाक् ॥ ४६ ॥
पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः
अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृतौ ।
स्वयं त्वभावे दातृणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् ॥ ५१ ॥
हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।
परिभूतामधः शय्यां वासयेद् व्यभिचारिणीम् ॥ ५२ ॥
व्यभिचाराद्दृतौ शुद्धिर्गर्भेत्यागो विधीयते । गर्भभर्तृवधादौ तु महत्यपि च कल्मषे
शूद्रस्य भार्या शूद्रैव सा च स्वा च विशः स्मृतेः ।
ते च स्वा चैव राज्ञस्तु ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥ ५४ ॥
आरोप्य शूद्रांशयने विप्रोगच्छेदधोगतिम् । उत्पाद्यपुत्रंशूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते
दैवपित्र्यातिथे यानि तत्प्रधानानि यस्य तु ।
देवाद्यास्तन्न चाश्नन्ति स च स्वर्गं न गच्छति ॥ ५६ ॥
जामयो यानिगेहानिशपन्त्यप्रतिपूजिताः । कृत्याभिर्निहतानीवनश्येयुस्तान्यसंशयम्
तदभ्यर्च्याःसुवासिन्यो भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यंसत्कारेषूत्सवेषुच
यत्रनार्यः प्रमुदिता भूषणाच्छादनाशनैः । रमन्ते देवतास्तत्रस्युस्तत्रसफलाःक्रियाः
यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति ।
तत्र वेश्मनि कल्याणं सम्पद्येत पदे पदे ॥ ६० ॥
अहुतश्च हुतश्चैव प्रहुतम्प्राशितं तथा । ब्राह्मं हुतम्पञ्चमंच पञ्चयज्ञा इमे शुभाः ॥
जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ।
प्राशितम्पितृसंतृप्तिर्हुतं ब्राह्मं द्विजार्चनम् ॥ ६२ ॥
पञ्चयज्ञानिमान्कुर्वन् ब्राह्मणोनावसीदति । एतेषामननुष्ठानात्पञ्चसूनाअवाप्नुयात्

ब्राह्मणं कुशलम्पृच्छेद् बाहुजातमनामयम् । वैश्यंसुखंसमागम्य शूद्रं सन्तोषमेव च
जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समाः स्मृताः ।
भक्ष्याभक्ष्येषु नो दुष्येद्यावन्नैवोपनीयते ॥ ६५ ॥
भरणम्पोष्यवर्गस्य दृष्टादृष्टफलोदयम् । प्रत्यवायो ह्यभरणे भर्तव्यस्तत्प्रयत्नतः
माता पिता गुरुः पत्नी त्वपत्यानि समाश्रिताः ।
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गा अमी नव ॥ ६७ ॥
सजीवतिपुमान्योऽत्रबहुभिश्चोपजीव्यते । जीवन्मृतोऽथविज्ञेयःपुरुषःस्वोदरम्भरिः
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यम्भूतिकाम्यया । अदत्तदाना जायन्तेपरभाग्योपजीविनः
विभागशीलसंयुक्तोदयावांश्चक्षमायुतः । देवतातिथिभक्तस्तुगृहस्थोधार्मिकःस्मृतः
शर्वरीमध्ययामौ यौ हुतशेषश्च यद्धविः । तत्र स्वपंस्तदश्नंश्च ब्राह्मणो नावसीदति
नवैतानि गृहस्थस्य कार्याण्यभ्यागते सदा ।
सुधाव्ययानि यत्सौम्यं वाक्चक्षुर्मनोमुखम् ॥ ७२ ॥
अभ्युत्थानमिहायातसस्नेहम्पूर्वभाषणम् । उपासनमनुव्रज्या गृहस्थोन्नतिहेतवे
तथैषद्व्यययुक्तानिकार्याण्येतानि वै नव । आसनम्पादशौचञ्चयथाशक्त्याशनंक्षितिः
शय्यातृणजलाभ्यङ्गदीपागार्हस्थ्यसिद्धिदाः ।
तथा नव विकर्माणि त्याज्यानि गृहमेधिनाम् ॥ ७५ ॥
पैशून्यम्परदाराश्चद्रोहः क्रोधानृताप्रियम् । द्वेषोदम्भश्चमायाचस्वर्गमार्गार्गलानि हि
नवावश्यककर्माणि कार्याणि प्रतिवासरम् ।
स्नानं सन्ध्या जपोहोमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥ ७७ ॥
वैश्वदेवंतथाऽऽतिथ्यं नवमं पितृतर्पणम् । नव गोप्यानि यान्यत्रमुने तानि निशामय
जन्मर्क्षंमैथुनं मन्त्रो गृहच्छिद्रञ्च वञ्चनम् । आयुर्धनापमानंस्त्री न प्रकाश्यानि सर्वथा
नवैतानिप्रकाश्यानि रहः पापमकुत्सितम् । प्रायोग्यमृणशुद्धिश्चसान्वयःक्रयविक्रयौ
कन्यादानं गुणोत्कर्षो नान्यत्केनापि कुत्रचित् ॥ ८० ॥
पात्रमित्रविनीतेषु दीनानाथोपकारिषु । मातापितृगुरुष्वेतन्नवकं दत्तमक्षयम्

निष्फलं नवसूत्सृष्टं चाटचारणतस्करे । कुवैद्ये कितवे धूर्ते शठे मल्ले च वन्दिनि
आपत्स्वपि नदेयानि नववस्तूनिसर्वथा । अन्वये सतिसर्वस्वं दारांश्च शरणागतान्
न्यासाधीकुलवृत्तिं चनिक्षेपंस्त्रीधनंसुतम् । योददातिसमूढात्माप्रायश्चित्तैर्विशुध्यति
एतन्नवानांनवकं ज्ञात्वाप्रियमवाप्नुयात् । अन्यच्चनवकं वच्मि सर्वेषां स्वर्गमार्गदम्

सत्यं शौचमहिंसा च क्षान्तिर्दानं दया दमः ।
अस्तेयमिन्द्रियाकोचः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥ ८६ ॥
अभ्यस्य नवतिश्चैतां स्वर्गमार्गप्रदीपिकाम् ।
सतामभिमताम्पुण्यां गृहस्थो नावसीदति ॥ ८७ ॥

जिह्वाभार्यासुतोभ्रातामित्रदाससमाश्रिताः । यस्यैतेविनयाढ्याश्चतस्यसर्वत्र गौरवम्
पानंदुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोटनम् । स्वप्नोऽन्यगृहवासश्चनारीणांदूषणानि षट्
समर्घंधान्यमुद्धृत्यमहर्घं यः प्रयच्छति । सहिवार्धुषिको नामतस्यान्नं न च भक्षयेत्
अग्रेमाहिषिकंदृष्ट्वा मध्येचवृषलीपतिम् । अन्ते वार्धुषिकञ्चैव निराशाः पितरोगताः

महिषीत्युच्यते नारी या च स्याद्व्यभिचारिणी ।
तां दुष्टां कामयेद्यस्तु सवै माहिषिकः स्मृतः ॥ ९२ ॥

स्ववृषं या परित्यज्य परवृषे वृषायते । वृषली सा हि विज्ञेया न शूद्री वृषलीभवेत्
यावदुष्णम्भवत्यन्नं यावन्मौनेन भुज्यते । तावदश्नन्तिपितरोयावन्नोक्ताहविर्गुणाः
विद्याविनयसम्पन्ने श्रोत्रियेगृहमागते । क्रीडन्त्योषधयः सर्वायास्यामःपरमांगतिम्
भ्रष्टशौचव्रताचारे विप्रे वेदविवर्जिते । रोदित्यन्नंदीयमानं किं मया दुष्कृतं कृतम्
यस्यकोष्ठगतं चान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यति । स तारयति दातारं दशपूर्वान्दशापरान्
नस्त्रीणांवपनंकार्यं नचगाःसमनुव्रजेत् । न च रात्रौवसेद्गोष्ठे न कुर्याद्वैदिकीं श्रुतिम्
सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलद्वयम् । एवमेवतुनारीणांशिरसो मुण्डनम्भवेत्
राजावाराजपुत्रो वाब्राह्मणो वाबहुश्रुतः । अकारयित्वा वपनम्प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमादिशेत् । द्विगुणा दक्षिणा देया ब्राह्मणे वेदपारगे

यो गृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इतिमन्यते ।

अन्नन्तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ १०२ ॥

दाराग्निहोत्रदीक्षाञ्चकुरुतेयोऽग्रजेस्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः
परिवित्तिः परिवेत्तायया च परिविद्यते । सर्वेते नरकं यान्तिदातृयाजकपञ्चमाः
क्लीवे देशान्तरस्थे च मूके प्रव्रजिते जडे । कुब्जे खर्वे च पतिते न दोषः परिवेदने
वेदाक्षराणियावन्ति नियुञ्ज्यादर्थकारणे । तावतीर्वै भ्रूणहत्या वेदविक्रयकृल्लभेत्
यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा सेवते मैथुनम्पुनः । षष्टिर्वर्षसहस्राणिविष्ठायांजायते कृमिः
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेणच सहासनम् । शूद्राद्विद्यागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपिपातयेत्
शूद्रादाहृत्यनिर्वापं ये पचन्त्यबुधाद्विजाः । तेयान्ति नरकंघोरम्ब्रह्मतेजो विवर्जिताः
माक्षिकंफाणितं शाकंगोरसंलवणं घृतम् । हस्तदत्तानि भुक्तानि दिनमेकमभोजनम्
हस्तदत्ताश्चयेस्नेहालवणं व्यञ्जनानिच । दातारंनोपतिष्ठन्तेभोक्ताभुङ्क्तेतुकिल्बिषम्
आयसेनैवपात्रेण यदन्नमुपदीयते । भोक्तातद्विट्समं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्
अङ्गुल्यादन्तकाष्ठञ्च प्रत्यक्षंलवणञ्चयत् । मृत्तिकाभक्षणं यच्च समं गोमांसभक्षणैः
पानीयम्पायसम्भैक्षं घृतं लवणमेव च । हस्तदत्तं न गृह्णीयात्तुल्यं गोमांसभक्षणैः
अग्रतोनिवसेन्मूर्खो दूरतश्चगुणान्वितः । गुणान्वितायदातव्यंनास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः
ब्राह्मणातिक्रमोनास्ति विप्रे वेदविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्यनहिभस्मनि हूयते
सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजने चैव दाने च दहेदासप्तमं कुलम्

गोरक्षकान् वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान्
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्छूद्रवदाचरेत् ॥ १८ ॥

देवद्रव्यविभागेनब्रह्मस्वहरणेन च । कुलान्याशु विनश्यन्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च
मादेहीतिचयोब्रूयाद्गवाग्निब्राह्मणेषु च । तिर्यग्योनिशतंगत्वा चाण्डालेष्वभिजायते
वाचा यच्च प्रतिज्ञातं कर्मणानोपपादितम् । ऋणं तद्धर्मसंयुक्तमिह लोके परत्र च
विघसाशी भवेन्नित्यंनित्यञ्चामृतभोजनः । यज्ञशेषोऽमृतम्भुक्तंशेषन्तु विघसं विदुः
सव्यादंसात्परिभ्रष्टेनाभिदेशेव्यवस्थिते । वस्त्रेसएकवासास्तं दैवेपित्र्ये च वर्जयेत
यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः ।

तेनैव सर्वमाप्नोति,पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ १२४ ॥
हस्तौ प्रक्षाल्य गण्डूषं यःपिबेद्भोजनोत्तरम् । दैवं पित्र्यं तथात्मानंत्रयंसउपघातयेत्
गणान्नं गणिकान्नञ्चयदन्नं ग्रामयाजके । स्त्रीणांप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत्
पक्षे वा यदि वा मासे यस्य गेहेऽत्ति न द्विजः ।
भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ १२७ ॥
सत्रिणां दीक्षितानाञ्च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
एतेषां सूतकं नास्ति ऋत्विजां कर्म कुर्वताम् ॥ १२८ ॥
अजीर्णेऽभ्युदिते वान्ते श्मश्रुकर्मणिमैथुने । दुःस्वप्नेदुर्जनस्पर्शेस्नानमेवविधीयते
चैत्यवृक्षं चितिं यूपं शिवनिर्माल्यभोजनम् ।
वेदविक्रयिणं स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥ १३० ॥
अग्न्यगारेगवांगोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ । स्वाध्याये भोजने पानेपादुकेवैविसर्जयेत्
खलक्षेत्रगतं धान्यं कूपवापीषु यज्जलम् । अग्राह्यादपितद्ग्राह्यं यच्चगोष्ठगतम्पयः
यद्वेष्टितशिराभुङ्क्ते यद्व भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्च यद्व भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ १३३ ॥
यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः ।
हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥ १३४ ॥
ब्रह्माद्याश्चसुराः सर्वेवसिष्ठाद्यामहर्षयः । मण्डलञ्चोपजीवन्ति ततः कुर्वीत मण्डलम्
ब्राह्मणे चतुरस्रं स्यात् त्र्यस्रं वै बाहुजन्मनः ।
वर्तुलञ्च विशः प्रोक्तं शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम् ॥ १३६ ॥
नोत्सङ्गे भोजनं कृत्वा नोपाणौ नैव कर्पटे । नासनेनचशय्यायाम्भुञ्जीतनमलार्दितः
धर्मशास्त्ररथारूढावेदखड्गधरा द्विजाः । क्रीडार्थमपियद्ब्रयुः सधर्मः परमः स्मृतः
रात्रौ धाना दधियुतं धर्मकामो न भक्षयेत् ।
अश्नतो धर्महानिःस्याद्व्याधिभिश्चोपपीड्यते ॥ १३९ ॥
फाणितं गोरसं तोयं लवणम्मधुकाञ्जिकम् ।

हस्तेन ब्राह्मणो दत्त्वा कृच्छ्रं चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ १४० ॥
गन्धाभरणमाल्यानि यः प्रयच्छतिधर्मवित् । ससुगन्धिः सदाहृष्टोयत्रयत्रोपजायते
नीलीरक्तं तु यद्वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत् । स्त्रीणांक्रीडार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति
पालनाद्विक्रयाच्चैव तद्वृत्तेरुपजीवनात् । अपवित्रोभवेद्विप्रस्त्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुध्यति
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवासो बिभर्ति यः ॥ १४४ ॥
नीलीरक्तंयदा वस्त्रं विप्रः स्वाङ्गेषुधारयेत् । तन्तुसन्ततिसंख्याकेनरकेसवसेद्ध्रुवम्
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ १४६ ॥
नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपकल्पयेत् । भोक्ताविष्ठासमम्भुङ्क्ते दाता चनरकंव्रजेत्
अमृतम्ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नम्पयः स्मृतम् ।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ १४८ ॥
वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः । अमृतन्तेनविप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम्
व्यवहारानुरूपेण न्यायेन तु यदर्जनम् । क्षत्रियस्य पयस्तेन प्रजापालनतो भवेत्
प्रहरानड्वाहाद्यदन्नमुत्पाद्य यच्छति । सीतायज्ञविधानेन वैश्यान्नन्तेन संस्कृतम्
अज्ञानतिमिरान्धस्य मद्यपानरतस्य च । रुधिरं तेन शूद्रान्नं वेदमन्त्रविवर्जितम्
न वृथाशपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरोत्तमः । वृथा हि शपथंकुर्वन्प्रेत्यचेहविनश्यति
कामिनीषु विवाहे च गवाम्भुक्ते धनक्षये ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथैर्नास्ति पातकम् ॥ १५४ ॥
सत्येनशापयेद्विप्रं क्षत्रियंवाहनायुधैः । गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यंशूद्रं सर्वैस्तुपातकैः
अग्निंवाहारयेदेनमप्सुचैनं निमज्जयेत् । स्पर्शयेत्पुत्रदाराणां शिरांस्येनञ्चवापृथक्
नयमंयममित्याहुरात्मावैयमउच्यते । आत्मासंयमितोयेन तं यमः किंकरिष्यति
न निस्त्रिंशस्तथा तीक्ष्णः फणी वा दुरतिक्रमः ।
रिपुर्वा नित्यसंक्रुद्धो यथात्मा दुरधिष्ठितः ॥ १५८ ॥
एकः क्षमावतां दोषोनद्वितीयः कथञ्चन । यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यतेजनः ॥१५६

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ।
न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकवित्तग्रहणे रतस्य ॥ १६० ॥
एकान्तशीलस्य सदैव तस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।
स्वाध्याययोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य ॥ १६१ ॥
क्वैकान्तशीलत्वमिहास्ति पुंसः क्वचेन्द्रियप्रीतिनिवृत्तिरस्ति ।
क्व योगयुक्तिः क्वचदैवतेज्याकाश्यांविनैभिः सहजेन मुक्तिः ॥ १६२ ॥
विश्वेशसंशीलनमेव योगस्तपश्च विश्वेशपुरीनिवासः ।
व्रतानि दानं नियमा यमाश्च स्नानं द्युनद्यां यदुदग्वहायाम् ॥ १६३ ॥

स्कन्द उवाच

न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोतिथिप्रियः । श्राद्धकृत्सत्यवादीचगृहस्थोपीहमुच्यते
दीनान्धकृपणार्थिभ्योदत्त्वान्नानिविशेषतः ।
कृत्वा गार्ह्याणि कर्माणि गृहस्थः श्रेय आप्नुयात् ॥ १६५ ॥
इत्थमाचरताम्पुंसां काशीनाथः प्रसीदति ।
काशीनाथप्रसादेन काशीप्राप्तिस्तु मोक्षकृत् ॥ १६६ ॥
स सर्वतीर्थसुस्नातः स सर्वक्रतुदीक्षितः । सदत्तसर्वदानस्तुकाशीयेननिषेविता

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पूर्वार्धे काशीखण्डे
गृहस्थधर्माख्यानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

योगाख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

उषित्वैवंगृहे विप्रोद्वितीयादाश्रमात्परम् । वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयाश्रममाविशेत्
अपत्यापत्यमालोक्य ग्राम्याहारान्विसृज्य च ।
पत्नीं पुत्रेषु सन्त्यज्य पत्न्या वा वनमाविशेत् ॥ २ ॥
वसानश्चर्मचीराणिसाग्निर्मुन्यन्नवर्तनः । जटी सायम्प्रगेस्नायीश्मश्रुलोनखलोमभृत्
शाकमूलफलैर्वापिपञ्चयज्ञान्न हापयेत् । अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेद्भिक्षुकातिथीन्
अनादाता च दाताचदान्तःस्वाध्यायतत्परः । वैतानिकश्चजुहुयादग्निहोत्रंयथाविधि
मुन्यन्नैः स्वयमानीतैःपुरोडाशांश्चनिर्वपेत् । स्वयंकृतश्चलवणंखादेत्स्नेहंफलोद्भवम्
वर्जयेच्छेलुशिग्रूत्रकवकम्पललम्मधु । मुन्यन्नमाश्विने मासि त्यजेत्द्यत्पूर्वसञ्चितम्
ग्राम्याणि फलमूलानि फालजान्नञ्च सन्त्यजेत् ।
दन्तोलूखलको वा स्यादश्मकुट्टोऽथ वा भवेत् ॥ ८ ॥
सद्यःप्रक्षालको वास्यादथवा माससञ्चयी । त्रिषड्द्वादशमासान्नफलमूलादिसंग्रही
नक्ताश्येकान्तराशी वा षष्ठकालाशनोऽपि वा ।
चान्द्रायणव्रती वा स्यात्पक्षभुग्वाऽथ मासभुक् ॥ १० ॥
वैखानसमतस्थस्तु फलमूलाशनोऽपि वा । तपसा शोषयेद्देहं पितृन्देवांश्च तर्पयेत्
अग्निमात्मनि चाधाय विचरेदनिकेतनः । भिक्षयेत्प्राणयात्रार्थं तापसान्वनवासिनः
ग्रामादानीय वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वसन्वने । इत्थं वनाश्रमीविप्रोब्रह्मलोके महीयते
अतिवाह्यायुषो भागंतृतीयमितिकानने । आयुषस्तुतुरीयांशेत्यक्त्वासङ्गान्परिव्रजेत्
ऋणत्रयमसंशोध्यत्वनुत्पाद्य सुतानपि । तथा यज्ञाननिष्ट्वा च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः
मनागपि न भूतानां यस्मादुत्पद्यतेभयम् । सर्वभूतानि तस्येह प्रयच्छन्त्यभयं सदा

एक एव चरेन्नित्यमनग्निरनिकेतनः । सिद्ध्यर्थमसहायः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्
जीवितम्मरणं वाथनाभिकाङ्क्षेत्कचिद्यतिः । कालमेवप्रतीक्षेतनिर्देशम्भृतको यथा
सर्वत्र ममताशून्यः सर्वत्र समतायुतः । वृक्षमूलनिकेतश्च मुमुक्षुरिहशस्यते
ध्यानं शौचं तथाभिक्षा नित्यमेकान्तशीलता । यतेश्चत्वारिकर्माणिपञ्चमं नोपपद्यते
वार्षिकांश्चतुरो मासान्विहरेन्न यतिःक्वचित् ।
बीजाङ्कुराणां जन्तूनां हिंसा तत्र यतो भवेत् ॥ २१ ॥
गच्छेत्परिहरञ्जन्तूम्पिबेत्कंवस्त्रशोधितम् । वाचंवदेदनुद्वेगांनक्रुध्येत्केनचित्कचित्
चरेदात्मसहायश्च निरपेक्षो निराश्रयः । नित्यमध्यात्मनिरतो नीचकेशनखो वशी
कुसुम्भवासा दण्डाढ्यो भिक्षाशी ख्यातिवर्जितः ।
अलाबुदारुमृद्वेणुपात्रं शस्तं न पञ्चमम् ॥ २४ ॥
नग्राह्यन्तैजसम्पात्रं भिक्षुकेन कदाचन । वराटके संगृहीते तत्र तत्र दिने दिने ॥ २५॥
गोसहस्रवधम्पापं श्रुतिरेषा सनातनी । हृदिसस्नेहभावेन चेद्द्रक्षेत्स्त्रियमेकदा
कोटिद्वयम्ब्रह्मकल्पं कुम्भीपाकी न संशयः । एककालञ्चरेद्भैक्षं न कुर्यात्तत्र विस्तरम्
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यञ्चरेद्यतिः
अल्पाहारो रहःस्थायी त्विन्द्रियार्थेष्वलोलुपः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्तो भिक्षर्मोक्षाय कल्पते ॥ २६ ॥
आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्तमपि विश्रमेत् । किन्तस्यानेकतन्त्रेणकृतकृत्यः स जायते
सञ्चितं यद्गृहस्थेनपापमामरणान्तिकम् । निर्धक्ष्यतिहितत्सर्वमेकरात्रोषितोयतिः
दृष्ट्वा जराभिभवनमसह्यं रोगपीडितम् । देहत्यागं पुनर्गर्भंगर्भक्लेशञ्च दारुणम्
नानायोनिनिवासञ्च वियोगञ्च प्रियैःसह । अप्रियैःसहसंयोगमधर्माद्दुःखसम्भवम्
पुनर्निरयसंवासं नानानरकयातनाः । कर्मदोषसमुद्भूता नृणां गतिरनेकधा
देहेष्वनित्यतां दृष्ट्वानित्यतां परमात्मनः । कुर्वीत मुक्तये यत्नं यत्र यत्राश्रमे रतः
करपात्रीति विख्याता भिक्षापात्रविवर्जिताः । तेषांशतगुणम्पुण्यम्भवत्येवदिनेदिने
आश्रमांश्चतुरस्त्वेवं क्रमादासेव्य पण्डितः । निर्द्वन्द्वस्त्यक्तसङ्गश्चब्रह्मभूयाय कल्पते

असंयतःकुबुद्धीनामात्मा बन्धाय कल्पते । धीमद्भिः संयतःसोऽपिपदंदद्यादनामयम्
श्रुतिस्मृतिपुराणञ्च विद्योपनिषदस्तथा ।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्चान्यद्वाङ्मयं क्वचित् ॥ ३६ ॥
वेदानुवचनं ज्ञात्वा ब्रह्मचर्यं तपो दमः । श्रद्धोपवासःस्वातन्त्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः
सहिसर्वैर्विजिज्ञास्यआत्मैवाश्रमवर्तिभिः । श्रोतव्यस्त्वथमन्तव्योद्रष्टव्यश्चप्रयत्नतः
आत्मज्ञानेनमुक्तिःस्यात्तच्च योगादृतेनहि । सचयोगश्चिरंकालमभ्यासादेवसिध्यति
नारण्यसंश्रयाद्योगो न नानाग्रन्थचिन्तनात् । न दानैर्नव्रतैर्वापि नतपोभिर्नवा मखैः
नच पद्मासनाद्योगो न वाग्राणाग्रवीक्षणात् । न शौचेन न मौनेन न मन्त्राराधनैरपि
अभियोगात्सदाभ्यासात्तत्रैव च विनिश्चयात् ।
पुनः पुनरनिर्वेदात्सिध्येद्योगो न चान्यथा ॥ ४५ ॥
आत्मक्रीडस्यसततं सदात्ममिथुनस्यच । आत्मन्येव सुतृप्तस्य योगसिद्धिर्नदूरतः
अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो नपश्यति । आत्मारामःसयोगीन्द्रोब्रह्मीभूतोभवेदिह
संयोगस्त्वात्ममनसोर्योग इत्युच्यतेबुधैः । प्राणापानसमायोगो योग इत्यपि कैश्चन
विषयेन्द्रियसंयोगोयोगइत्यप्यपण्डितैः । विषयासक्तचित्तानां ज्ञानं मोक्षश्च दूरतः
दुर्निवारा मनोवृत्तिर्यावत्सा ननिवर्तते । किंवदन्त्यपि योगस्य तावन्नेदीयसी कुतः
वृत्तिहीनंमनः कृत्वाक्षेत्रज्ञे परमात्मनि । एकीकृत्य विमुच्येत योगयुक्तः सउच्यते
बहिर्मुखानिसर्वाणिकृत्वाखान्यन्तराणिवै । मनस्यैवेन्द्रियग्रामंमनश्चात्मनियोजयेत्
सर्वभावविनिर्मुक्तंक्षेत्रज्ञंब्रह्मणि न्यसेत् । एतद्ध्यानंचयोगश्च शेषोऽन्योग्रन्थविस्तरः
यन्नास्तिसर्वलोकेषु तदस्तीतिविरुध्यते । कथ्यमानं तदन्यस्य हृदयेनावतिष्ठते
स्वसंवेद्यंहितद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखंयथा । अयोगीनैतद्वेत्ति जात्यन्ध इव वर्तिकाम्
नित्याभ्यसनशीलस्यस्वसंवेद्यंहि तद्भवेत् । तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यंपरंब्रह्म सनातनम्
क्षणमप्येकमुदकं यथानस्थिरतामियात् । वाताहतंयथाचित्तं तस्मात्तस्यनविश्वसेत्
अतोऽनिलंनिरुन्धीतचित्तस्यस्थैर्यहेतवे । मरुन्निरोधनार्थाय षडङ्गं योगमभ्यसेत्
आसनंप्राणसंरोधः प्रत्याहारश्चधारणा । ध्यानंसमाधिरेतानियोगाङ्गानिभवन्तिषट्

आसनानीह तावन्ति यावन्त्यो जीवयोनयः ।
सिद्धासनमिदं प्रोक्तं योगिनो योगसिद्धिदम् ॥ ६० ॥
एतदभ्यसनान्नित्यं वर्ष्मदार्ढ्यमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥
दक्षिणं चरणं न्यस्यवामोरूपरियोगवित् । याम्योरूपरि वामं चपद्मासनमिदं विदुः
कराभ्यां धारयेत्पश्चादङ्गुष्ठौदृढबन्धवित् । भवेत्पद्मासनादस्मादभ्यासाद्दृढविग्रहः
अथ बाह्यासने यस्मिन्सुखमस्योपजायते ।
स्वस्तिकादौ तदध्यास्य योगं युञ्जीत योगवित् ॥ ६४ ॥
नतोयवह्निसामीप्ये न जीर्णारण्यगोष्ठयोः । नदंशमशकाकीर्णेनचैत्येन च चत्वरे
केशभस्मतुषाङ्गारकीकसादिप्रदूषिते । नाभ्यसेत्पूतिगन्धादौ न स्थाने जनसङ्कुले
सर्वबाधाविरहिते सर्वेन्द्रियसुखावहे । मनः प्रसादजनने स्रग्धूपामोदमोदिते
नातितृप्तः क्षुधार्तो न नविण्मूत्रप्रबाधितः ।
नाध्वखिन्नो न चिन्तार्तो योगं युञ्जीत योगवित् ॥ ६८ ॥
ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम् ।
उत्तानंकिञ्चिदुन्नम्य वक्त्रं विष्टभ्य चोरसा ॥ ६९ ॥
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ।
तालुस्थाचलजिह्वश्च सम्वृतास्यः सुनिश्चलः ॥ ७० ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामंनाति नीचोच्छ्रितासनः । मध्यमंचोत्तमंचाथप्राणायाममुपक्रमेत्
चलेऽनिलेचलं सर्वं निश्चले तत्र निश्चलम् ।
स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगी ततोऽनिलनिरुन्धनात् ॥ ७२ ॥
यावद्देहे स्थितः प्राणोजीवितं तावदुच्यते । निर्गते तत्र मरणंततःप्राणंनिरुन्धयेत्
यावद्बद्धो मरुद्देहेयावच्चेतोनिराश्रयम् । यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्येतावत्कालभयंकुतः
कालसाध्वसतो ब्रह्मा प्राणायामं सदाचरेत् ।
योगिनः सिद्धिमापन्नाः सम्यक् प्राणनियन्त्रणात् ॥ ७५ ॥
मन्दोद्वादशमात्रस्तुमात्रालघ्वक्षरामता । मध्यमो द्विगुणःपूर्वादुत्तमस्त्रिगुणस्ततः

स्वेदंकम्पंविषादं च जनयेत्क्रमशस्त्वसौ । प्रथमे न जयेत्स्वेदं द्वितीयेन तु वेपथुम्
विषादं हि तृतीयेन सिद्धः प्राणोऽथ योगिनः ।
भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धः सिद्धः प्राणोऽथ योगिना ।
क्रमेण सेव्यमानोऽसौ नयते यत्र चेच्छति ॥ ७८ ॥
हठान्निरुद्धप्राणोऽयं रोमकूपेषु निःसरेत् । देहं विदारयत्येष कुष्ठादिजनयत्यपि
तत्प्रत्याययितव्योऽसौ क्रमेणाऽरण्यहस्तिवत् !
वन्यो गजो गजारिर्वा क्रमेण मृदुतामियात् ॥ ८० ॥
करोति शास्तृनिर्देशंन च तंपरिलङ्घयेत् । तथा प्राणोहृदिस्थोयंयोगिनाक्रमयोगतः
गृहीतः सेव्यमानस्तुविश्रम्भमुपगच्छति ॥ ८१ ॥
षट्त्रिंशदङ्गुलो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः । सव्यापसव्यमार्गेण प्रयाणात्प्राणउच्यते
शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रमनाकुलम् । तदैव जायतेयोगी क्षमः प्राणनिरोधने
दृढासनो यथाशक्ति प्राणंचन्द्रेण पूरयेत् । रेचयेदथ सूर्येण प्राणायामोऽयमुच्यते
स्रवत्पीयूषधारौघं ध्यायंश्चन्द्रसमन्वितम् ।
प्राणायामेन योगीन्द्रः सुखमाप्नोति तत्क्षणात ॥ ८५ ॥
रविणा प्राणमाकृष्य पूरयेदौदरीं दरीम् । कुम्भयित्वाशनैःपश्चाद्योगीचन्द्रेणरेचयेत्
ज्वलज्ज्वलनपुञ्जाभं शीलयन्नुष्मगुं हृदि । अनेन याम्यायामेनयोगीन्द्रःशर्मभाग्भवेत्
इत्थं मासत्रयाभ्यासादुभयायामसेवनात् ।
सिद्धनाडीगणो योगी सिद्धप्राणोऽभिधीयते ॥ ८८ ॥
यथेष्टंधारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम् । नादाभिव्यक्तिरारोग्यंभवेन्नाडीविशोधनात्
प्राणोदेहगतोवायुरायामस्तन्निबन्धनम् । एकश्वाससमयीमात्राप्राणायामो निरुच्यते
प्राणायामेऽधमेघर्मः कम्पोभवतिमध्यमे । उत्तिष्ठेदुत्तमे देहो बद्धपद्मासनो मुहुः
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्प्रत्याहारेण पातकम् । मनोधैर्यं धारणया ध्यानेनेश्वरदर्शनम्
समाधिना लभेन्मोक्षं त्यक्त्वा धर्मं शुभाशुभम् ।
आसनेन वपुर्दार्ढ्यं षडङ्गमिति कीर्तितम् ॥ ९३ ॥

प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः । प्रत्याहारैर्द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तिता
भवेदीश्वरसङ्गत्यै ध्यानं द्वादशधारणम् । ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते
समाधेःपरतोज्योतिरनन्तंस्वप्रकाशकम् । तस्मिन् दृष्टेक्रियाकाण्डंयातायातंनिवर्तते
पवने व्योमसम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् । घण्टादीनाम्प्रवाद्यानां ततःसिद्धिरदूरतः
प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः

हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः ।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥ ९९ ॥
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत् ।
युक्तं युक्तञ्च बध्नीयादित्थं सिध्यति योगवित् ॥ १०० ॥

इन्द्रियाणां हि चरतांविषयेषु यदृच्छया । यत्प्रत्याहरणंयुक्त्याप्रत्याहारःसउच्यते
प्रत्याहरति यः स्वानिकूर्मोङ्गानीवसर्वतः । प्रत्याहृतिविधानेनसस्याद्विगतकल्मषः
नाभिदेशेवसेद्भानुस्तालुदेशे च चन्द्रमाः । वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः
करणन्तच्चकर्तव्यंयेन सा प्राप्यते सुधा । ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशी

करणं विपरीताख्यमभ्यासादेव जायते ॥ १०४ ॥

काकचञ्चुवदास्येन शीतलंशीतलंपिबेत् । प्राणं प्राणविधानज्ञो योगीभवतिनिर्जरः
रसनां तालुविवरे निधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् । धयन्निर्जरताङ्गच्छेदाषण्मासान्न संशयः

ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।
मासार्धेन न सन्देहो मृत्युञ्जयति योगवित् ॥ १०७ ॥

सम्पीड्य रसनाग्रेणराजदन्तर्बिलं महत् । ध्यात्वासुधामयींदेवींषण्मासेनकविर्भवेत्
अमृतापूर्णदेहस्ययोगिनोद्वित्रिवत्सरात् । ऊर्ध्वं प्रवर्ततेरेतोह्यणिमादिगुणोदयम्
नित्यं सोमकलापूर्णंशरीरं यस्ययोगिनः । तक्षकेणापिदष्टस्यविषं तस्य न सर्पति
आसनेन समायुक्तःप्राणायामेन संयुतः । प्रत्याहारेण सम्पन्नोधारणामथचाभ्यसेत्
हृदये पञ्चभूतानां धारणं यत्पृथक्पृथक् । मनसोनिश्चलत्वेन धारणासाभिधीयते

हरितालनिभां भूमिं सलकारां सवेधसम् ।

चतुष्कोणां हृदि ध्यायेदेषास्यात् क्षितिधारणा ॥ ११३ ॥
कण्ठेऽम्बुतत्त्वमर्धेन्दु निभं विष्णुसमन्वितम् ।
वकारबीजं कुन्दाभं ध्यायन्नम्बुजयेदिति ॥ ११४ ॥
तालुस्थमिन्द्रगोपाभंत्रिकोणंरेफसंयुतम् । रुद्रेणाधिष्ठितंतेजोध्यात्वावह्निंजयेदिति
वायुस्तत्त्वंभ्रुवोर्मध्ये वृत्तमञ्जनसन्निभम् । यम्बीजमीशदैवत्यंध्यायन्वायुंजयेदिति
आकाशञ्चमरीचिवारिसदृशं यद्ब्रह्मरन्ध्रस्थितं,
यन्नाथेन सदाशिवेन सहितं शान्तं हकाराक्षरम् ।
प्राणं तत्र विनीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वितं धारये-
देषा मोक्षकपाटपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ॥ ११७
स्तम्भनीप्लावनी चैव दहिनी भ्रामणीतथा । शमनीचभवन्त्येताभूतानांपञ्चधारणाः
ध्यैचिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्तातत्त्वे सुनिश्चला ।
एतद्ध्यानमिह प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं द्विधा ॥ ११६ ॥
सगुणंवर्णभेदेन निर्गुणंकेवलम्मतम् । समन्त्रं सगुणं विद्धि निर्गुणं मन्त्रवर्जितम्
अन्तश्चेतो बहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् । समत्वञ्चशरीरस्यध्यानमुद्रातिसिद्धिदा
नाश्वमेधेन तत्पुण्यं नच वै राजसूयतः । यत्पुण्यमेकध्यानेन लभेद्योगी स्थिरासनः
शब्दादीनाञ्च तन्मात्रा यावत्कर्णादिषु स्थिता ।
तावदेव स्मृतं ध्यानं स्यात्समाधिरतःपरम् ॥ १२३ ॥
धारणा पञ्चनाडीका ध्यानं स्यात्षष्टिनाडिकम् ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिरिह भण्यते ॥ १२४ ॥
जलसैन्धवयोः साम्यं यथा भवति योगतः । तथात्ममनसोरैक्यंसमाधिरिहभण्यते
यदासंक्षीयते प्राणो मानसञ्च प्रलीयते । तदा समरसत्वं यत्ससमाधिरिहोच्यते
यत्समत्वंद्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः । स नष्टसर्वसङ्कल्पः समाधिरभिधीयते ॥
नात्मानंनपरंवेत्ति न शीतं नोष्ममेव च । समाधियुक्तो योगीन्द्रोनसुखंन सुखेतरत्
काल्यते नैवकालेन लिप्यते नैव कर्मणा । भिद्यते न चशस्त्रास्त्रैर्योगीयुक्तःसमाधिना

युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टोहि कर्मसु । युक्तनिद्रावबोधश्च योगीतत्त्वं प्रपश्यति ॥
तत्त्वंविज्ञानमानन्दम्ब्रह्मब्रह्मविदोविदुः । हेतुदृष्टान्तरहितं वाङ्मनोभ्यामगोचरम् ॥
तत्र योगी निरालम्बे निरातङ्के निरामये। षडङ्गयोगविधिना परेब्रह्मणि लीयते ॥
यथा घृते घृतं क्षिप्तं घृतमेव हि तद्भवेत् । क्षीरेक्षीरं तथा योगी तत्रतन्मयतां व्रजेत्
अनसं जातपानीयैर्विदध्यादङ्गमर्दनम् । त्यजेत्कटुष्मं लवणं क्षीरभोजी सदा भवेत्
ब्रह्मचारी जितक्रोधो जितलोभो विमत्सरः ।
अब्दमित्थं सदाभ्यासात्स योगीति निगद्यते ॥ १३५ ॥
महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम् । मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीयोगसिद्धिभाक्
शोधनंनाडीजालस्य चटनञ्चन्द्रसूर्ययोः । रसानां शोषणंसम्यङ्महामुद्राभिधीयते
योनिं वामाङ्घ्रिणाऽऽपीड्य कृत्वा वक्षस्थले हनुम् ।
हस्ताभ्यां प्रसृतम्पादं धारयेद्दक्षिणं चिरम् ॥ १३८ ॥
प्राणेन कुक्षिमापूर्य चिरं संरेचयेच्छनैः । एषाप्रोक्ता महामुद्रा महाघौघविनाशिनी
चन्द्राङ्गे तु समभ्यस्य सूर्याङ्गे पुनरभ्यसेत् ।
यावत्तुल्या भवेत्सङ्ख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥ १४० ॥
नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाःसर्वेऽपिनीरसाः । अपिघोरंविषम्पीतम्पीयूषमिवजीर्यति
क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः । तस्यदोषाःक्षयंयान्तिमहामुद्राञ्चयोऽभ्यसेत्
कपालकुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा । भ्रुवोरन्तर्गतादृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ ४३
न पीड्यते शरोगेण न च लिप्येत कर्मणा ।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ १४४ ॥
चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खेगता । तेनैषा खेचरीनाम मुद्रासिद्धैर्निषेविता
यावद्बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।
यावद् बद्धा नभोमुद्रा तावद् बिन्दुर्नगच्छति ॥ १४६ ॥
उड्डीनंकुरुतेयस्मादहोरात्रं महाखगः । उड्डीयानन्ततः प्रोक्तं तत्र बन्धो विधीयते ॥
जठरेपश्चिमं तानंनाभेरूर्ध्वञ्चधारयेत् । उड्डीयानो ह्ययम्बन्धो मृत्योरपिभयं त्यजेत्

वध्नातिहिशिराजालमधोगामिनभोजलम् । एषजालन्धरोवन्धःकण्ठेदुःखौघनाशनः
जालन्धरे कृतेवन्धे कण्ठसङ्कोचलक्षणे । न पीयूषंपतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ॥
पार्ष्णिभागेन सम्पीड्ययोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् । अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलवन्धोविधीयते
अपानप्राणयोरैक्ये क्षयो मूत्रपुरीषयोः । युवाभवतिवृद्धोऽपि सततम्मूलवन्धनात्
प्राणापानवशो जीव ऊर्ध्वाधः परिधावति ।
वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलो न स्थितिं लभेत् ॥ १५३ ॥
गुणवद्धोयथापक्षी गतोप्याकृष्यतेपुनः । गुणैर्वद्धस्तथाजीवः प्राणायामेन कृष्यते
अपानः कर्षति प्राणम्प्राणोऽपानञ्च कर्षति ।
ऊर्ध्वाधःसंस्थितावेतौ संयोजयति योगवित् ॥ १५५ ॥
हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः । हंसहंसेत्यतोमन्त्रंजीवोजपति सर्वदा
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येक विंशतिः ।
एतत्सङ्ख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ १५७ ॥
अजपा नामगायत्री योगिनां मोक्षदायिनी । अस्याः सङ्कल्पमात्रेणनरःपापैःप्रमुच्यते
अन्तराया भवन्तीह योगिनोयोगहानिदाः । श्रूयतेदूरगा वार्ता दूरस्थं दृश्यते पुरः
योजनानां शतं यातुं शक्तिः स्यान्निमिषार्धतः ।
अचिन्तितानि शास्त्राणि कण्ठपाठी भवन्ति हि ॥ १६० ॥
धारणाशक्तिरत्युग्रा महाभारोलघुर्भवेत् । क्षणंकृशःक्षणंस्थूलः क्षणमल्पःक्षणंमहान्
परकायं प्रविशति तिरश्चां वेत्ति भाषितम् ।
दिव्यगन्धं तनौ धत्ते दिव्यां वाणीं प्रवक्ति च ॥ १६२ ॥
प्रार्थ्यते दिव्यकन्याभिर्दिव्यं धारयते वपुः ।
इत्यादयोऽन्तरायाः स्युर्योगसंसिद्धिसूचकाः ॥ १६३ ॥
यद्येभिरन्तरायैर्नक्षिप्यतेऽस्येहमानसम् । तदग्रे तत्समाप्नोति पदम्ब्रह्मादिदुर्लभम्
यत्प्राप्य न निवर्तेत यत्प्राप्यन च शोचति । तल्लभ्यते षडङ्गेन योगेन कलशोद्भव
एकेन जन्मनायोगःकथमित्थम्प्रसिद्ध्यति । ऋतेचयोगसंसिद्धेःकथंमुक्तिरिहाप्यते

उभे एव हि निर्वाणवर्त्मनी किल कुम्भज !।
किम्वा काश्यां तनुत्यागः किम्वा योगोऽयमीदृशः ॥ १६७ ॥
चञ्चलेन्द्रियवृत्तित्वात्कलिकल्मषजृम्भणात् ।
अल्पायुषां तथा नृणां क्वेह योगमहोदयः ॥ १६८ ॥

अतएव हि जन्तूनां महोदयपदप्रदः। सदैव सदयावार्धिःकाश्यां विश्वेश्वरःस्थितः
काश्यांसुखेनकैवल्यं यथालभ्येतजन्तुभिः। योगयुक्तयाद्युपायैश्चनतथान्यत्रकुत्रचित्
काश्यांस्वदेहसंयोगः सम्यग्योग उदाहृतः। मुच्यतेनेह योगेन क्षिप्रमन्येन केनचित्
विश्वेश्वरोविशालाक्षीद्युनदीकालभैरवः। श्रीमान् दुण्ढिर्दण्डपाणिःषडङ्गोयोग एषवै
एतत्षडङ्गं यो योगं नित्यंकाश्यां निषेवते। सम्प्राप्य योगनिद्रां सदीर्घाममृतमश्नुते
ॐङ्कारः कृत्तिवासाश्चकेदारश्च त्रिविष्टपः। वीरेश्वरोऽथविश्वेशः षडङ्गो यमिहापरः
पादोदकासिसम्भेदज्ञानोदमणिकर्णिकाः । षडङ्गोऽयम्महायोगो ब्रह्मधर्महृदावपि
षडङ्गसेवनादस्माद्वाराणस्यां नरोत्तम !। न जातु जायते जन्तुर्जननीजठरे पुनः
गङ्गास्नानं महामुद्रामहापातकनाशिनी । एतन्मुद्राकृताभ्यासोऽप्यमृतत्वमवाप्नुयात्
काशीवीथिषु सञ्चारो मुद्रा भवति खेचरी। खेचरो जायते नूनं खेचर्यामुद्रयानया
उड्डीयसर्वतो देशाद्यानं वाराणसीम्प्रति। उड्डीयानो महावन्ध एष मुक्त्यै प्रकल्पते
जलस्य धारणंमूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः। एष जालन्धरो वन्धः समस्तसुरदुर्लभः
वृतोविघ्नशतेनापियन्न काशीं त्यजेत्सुधीः। मूलवन्धःस्मृतोह्येषदुःखमूलनिकृन्तनः
इतियोगः समाख्यातो मयातेद्विविधो मुने !। सषडङ्गः समुद्रश्च मुक्तयेशम्भुभाषितः

यावन्नेन्द्रियवैक्लव्यं यावद्व्याधिर्न वाधते ।
यावत्कालविलम्बोऽस्ति तावद्योगरतो भवेत् ॥ १८३ ॥

उभयोर्योगयोर्मध्येकाशीयोगोऽयमुत्तमः। काशीयोगंसमभ्यस्यप्राप्नुयाद्योगमुत्तमम्

आधिव्याधिसहायिन्या जरया मृत्युलिङ्गया ।
कालं निकटतो ज्ञात्वा काशीनाथं समाश्रयेत् ॥ १८५ ॥
काशीनाथं समाश्रित्य कुतः कालभयं नृणाम् ।

क्रुद्धोऽपि जीवहृत्कालस्तच्च काश्यां सुमङ्गलम् ॥ १८६ ॥
आतिथ्येनेहसि यथा प्रतीक्षेताऽतिथिं कृती ।
काश्यां कालं तथा यान्तं भाग्यवान्सम्प्रतीक्षते ॥ १८७ ॥
कलिः कालः कृतंकर्मत्रिकण्टकमितीरितम् । एतत्त्रयं न प्रभवेदानन्दवनवासिनाम्
अन्यत्राऽतर्कितः कालः कलयिष्यत्यसंशयम् ।
कालादभयमिच्छेच्चेत्ततः काशीं समाश्रयेत् ॥ १८८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे पूर्वार्धे योगाख्यानंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कालवञ्चनोपायवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

कथंनिकटतःकालो ज्ञायतेहरनन्दन !। तानि चिह्नानि कतिचिद्ब्रूहि मे परिपृच्छतः

कुमार उवाच

वदामिकालचिह्नानिजायन्ते यानिदेहिनाम् । मृत्यौनिकटमापन्ने मुने! तानि निशामय
याम्यनासापुटेयस्यवायुर्वाति दिवानिशम् । अखण्डमेवतस्यायुःक्षयत्यब्दत्रयेणहि
द्व्यहोरात्रं त्र्यहोरात्रं रविर्वहति सन्ततम् । अब्दमेकञ्च तस्येह जीवनावधिरुच्यते
वहेन्नासापुटयुगे दशाहानि निरन्तरम् । वातश्चेत्सहसंक्रान्तिस्तया जीवेद्दिनत्रयम्
नासावर्त्मद्वयंहित्वामातरिश्वामुखाद्वहेत् । शंसेद्दिनद्वयादर्वाक् प्रयाणंतस्यचाध्वनि
अकस्मादेवयत्कालेमृत्युःसन्निहितोभवेत् । चिन्तनीयःप्रयत्नेनसकालोमृत्युभीरुणा
सूर्येसप्तमराशिस्थेजन्मर्क्षस्थेनिशाकरे । पौष्णःसकालोद्रष्टव्योयदा याम्ये रविर्वहेत्
अकस्माद्वीक्षतेयस्तुपुरुषंकृष्णपिङ्गलम् । तस्मिन्नेव क्षणेऽरूपं स जीवेद्वत्सरद्वयम्

यस्यबीजम्मलंमूत्रं क्षुतम्मूत्रं मलं तु वा । इहैकदा पतेद्यस्य अब्दन्तस्यायुरिष्यते
इन्द्रनीलनिभं व्योम्नि नागवृन्दं यईक्षते । इतस्ततः प्रसृमरं षण्मासं न सजीवति
व्यभ्रेऽह्नि वारिपूर्णास्यः पृष्ठीकृत्य दिवाकरम् ।
फूत्कृत्याश्विन्द्रचापं न पश्येत्षण्मासजीवितः ॥ १२ ॥
अरुन्धतींध्रुवञ्चैव विष्णोस्त्रीणिपदानिच । आसन्नमृत्युर्नोपश्येच्चतुर्थं मातृमण्डलम्
अरुन्धतीभवेज्जिह्वाध्रुवोनासाग्रमुच्यते । विष्णोःपदानि भ्रूमध्येनेत्रयोर्मातृमण्डलम्
वेत्ति नीलादिवर्णस्य कट्वम्लादिरसस्य हि ।
अकस्मादन्यथाभावं षण्मासेन समृत्युभाक् ॥ १५ ॥
षण्मासमृत्योर्मर्त्यस्य कण्ठोष्ठरसनारदाः ।
शुष्यन्ति सततं तद्वद्विच्छायास्तालुपञ्चमाः ॥ १६ ॥
रेतःकरजनेत्रान्तानीलिमानम्भजन्ति चेत् । तर्हिकीनाशनगरीं षष्ठे मासि व्रजेन्नरः
सम्प्रवृत्तेनिधुवने मध्येऽन्तेक्षौति चेन्नरः । निश्चितं पञ्चमेमासि धर्मराजातिथिर्भवेत्
द्रुतमारुह्य सरटस्त्रिवर्णो यस्य मस्तके । प्रयातियातितस्यायुः षण्मासेन परिक्षयम्
सुस्नातस्याऽपि यस्याशु हृदयम्परिशुष्यति ।
चरणौ च करौ वापि त्रिमासं तस्य जीवितम् ॥ २० ॥
प्रतिबिम्बम्भवेद्यस्य पदंखण्डपदाकृति । पांसौ वा कर्दमेवापिपञ्चमासान्सजीवति
छायाप्रकम्पते यस्य देहबन्धेऽपि निश्चले । कृतान्तदूता बध्नन्ति चतुर्थेमासितंनरम्
निजस्य प्रतिबिम्बस्यनीराज्यमुकुरादिषु । उत्तमाङ्गं न यःपश्येत्समासेनविनश्यति
मतिभ्रंश्येत्स्खलेद्वाणी धनुरैन्द्रं निरीक्षते । रात्रौचन्द्रद्वयञ्चापिदिवाद्वौचदिवाकरौ
दिवा च तारकाचक्रं रात्रौव्योमवितारकम् । युगपच्चचतुर्दिक्षुशाक्रंकोदण्डमण्डलम्
भूरुहे भूधराग्रे चगन्धर्वनगरालयम् । दिवापिशाचनृत्यञ्च एते पञ्चत्वहेतवः ॥ २६॥
सर्वेष्वेतेषु चिह्नेषु यद्येकमपि वीक्षते । तदामासावधि मृत्युः प्रतीक्षेत नचाधिकम्
करावरुद्धश्रवणःशृणोति न यदा ध्वनिम् ।
स्थूलः कृशः कृशः स्थूलस्तदा मासान्निवर्तते ॥ २८ ॥

यः पश्येदात्मनश्छायां दक्षिणाशासमाश्रिताम् ।
दिनानि पञ्च जीवित्वा पञ्चत्वमुपयाति सः ॥ २९ ॥

प्रोह्यते भक्ष्यते वापि पिशाचासुरवायसैः । भूतैः प्रेतैः श्वभिर्गृध्रैर्गामायुखरसूकरैः रासभैः करभैः कीशैः श्येनैरश्वतरैर्वकैः । स्वप्ने स जीवितंत्यक्त्वावर्षान्तेयमसीक्षते

गन्धपुष्पांशुकैः शोणैः स्वां तनुं भूषितां नरः ।
यः पश्येत्स्वप्नसमये सोऽष्टौ मासाननित्यहो ॥ ३२ ॥

पांसुराशिश्चवल्मीकंयूपदण्डमथापि वा । योऽधिरोहतिवैस्वप्नेसषष्ठेमासिनश्यति

रासभारूढमात्मानं तैलाभ्यक्तश्च मुण्डितम् ।
नीयमानं यमाशां यः स्वप्ने पश्येत्स्वपूर्वजान् ॥ ३४ ॥

स्वमौलौ स्वतनौ वापि यः पश्येत्स्वप्नगो नरः ।
तृणानि शुष्ककाष्ठानि षष्ठे मासि न तिष्ठति ॥ ३५ ॥

लोहदण्डधरं कृष्णं पुरुषं कृष्णवाससम् ।
स्वयं योऽग्रे स्थितम्पश्येत्स त्रीन् मासान्न लङ्घयेत् ॥ ३६ ॥

काली कुमारीयं स्वप्नेबध्नीयाद्बाहुपाशकैः । समासेनसमीक्षेतनगरींशमनोषिताम् नरोयोवानरारूढोयायात्प्राचीं दिशंस्वपन् । दिनैःसपञ्चभिरेवपश्येत्संयमिनीम्पुरीम्

कृपणोऽपि वदान्यः स्याद्वदान्यः कृपणो यदि ।
प्रकृतेर्विकृतिश्चेत्स्यात्तदा पञ्चत्वमृच्छति ॥ ३९ ॥

एतानि कालचिह्नानि सन्त्यन्यानि बहून्यपि ।
ज्ञात्वाऽभ्यसेन्नरो योगमथवा काशिकां श्रयेत् ॥ ४० ॥

न कालवञ्चनोपायं मुनेऽन्यमवयास्यहम् । विनामृत्युञ्जयंकाशीनाथं गर्भावरोधकम् तावद्गर्जन्ति पापानि तावद्गर्जेद्यमो नृपः । यावद्विश्वेशशरणं नरो न निरतोव्रजेत् प्राप्तविश्वेश्वरावासःपीतोत्तरवहापयाः । स्पृष्टविश्वेशसल्लिङ्गःकश्चयातिनवन्द्यताम्

करिष्येत्कुपितः कालः किंकाशीवासिनां नृणाम् ।
काले शिवः स्वयं कर्णे यत्र मन्त्रोपदेशकः ॥ ४४ ॥

यथाप्रयाति शिशुता कौमारञ्च यथागतम् । सत्वरंगत्वरं तद्वद्यौवनञ्चापिवार्द्धकम्
यावन्नहिजराक्रान्तिर्यावन्नेन्द्रियवैक्लवम् । तावत्सर्वंफल्गुरूपंहित्वाकाशींश्रयेत्सुधीः
अन्यानि काललक्ष्माणितिष्ठन्तुकलशोद्भव !। जरैवप्रथमं लक्ष्मचित्रं तत्रापिभीर्नहि
पराभूतो हि जरया सर्वैश्च परिभूयते । हृततारुण्यमाणिक्यो धनहीनः पुमानिव
सुतावाक्यं न कुर्वन्ति पत्नीप्रेमापि मुञ्चति । बान्धवानैवमन्यन्तेजरसाश्लेषितंनरम्
आश्लिष्टञ्जरयादृष्ट्वा परयोषिद्विशङ्किता । भवेत्पराङ्मुखीनित्यंप्रणयिन्यपिकामिनी
नजरासदृशो व्याधिर्नदुःखं जरयासमम् । कारयित्र्यपमानस्य जरैव मरणं नृणाम्
न जीयते तथाकालस्तपसायोगयुक्तिभिः । यथाचिरेणकालेनकाशीवासाद्विजीयते
विनायज्ञैर्विनादानैर्विनाव्रतजपादिभिः । विनाऽतिपुण्यसम्भारैःकःकाशीम्प्राप्तुमीहते

काशीप्राप्तिरयं योगः काशीप्राप्तिरिदं तपः ।
काशीप्राप्तिरिदं दानं काशीप्राप्तिः शिवैकता ॥ ५४ ॥
कः कलिः कोऽथवा कालः का जरा किञ्च दुष्कृतम् ।
का रुजः केऽन्तराया वा श्रिता वाराणसी यदि ॥ ५५ ॥
कलिस्तानेव बाधेत कालस्तांश्च जिघांसति ।
एनांसि तांश्च बाधन्ते ये न काशीं समाश्रिताः ॥ ५६ ॥
काशीसमाश्रितायैश्चयैश्चविश्वेश्वरोऽर्चितः । तारकंज्ञानमासाद्यतेमुक्ताःकर्मपाशतः
धनिनो न तथा सौख्यम्प्राप्नुवन्ति नराः क्वचित् ।
यथा निर्धनतः काश्यां लभन्ते सुखमव्ययम् ॥ ५८ ॥
वरंकाशीसमावासी नासीनो द्युसदाम्पदम् । दुःखान्तंलभतेपूर्वःसुखान्तंलभतेपरः
स्थितोऽपि भगवानीशो मन्दरं चारुकन्दरम् ।
काशीं विना रतिं नाऽऽप दिवोदासनृपोषिताम् ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
कालवञ्चनोपायो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

दिवोदासप्रतापवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

दिवोदासं नरपतिंकथंदेवस्त्रिलोचनः । काशीं सन्त्याजयामासकथमागाच्चमन्दरात्
एतदाख्यानमाख्याहि श्रोतॄणाम्प्रमुदे भगोः ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

मन्दरंगतवान्देवो ब्रह्मणो वाक्यगौरवात् । तपसा तस्य सन्तुष्टोमन्दरस्यैवभूभृतः
गतेविश्वेश्वरे देवे मन्दरंगिरिसुन्दरम् । गिरिशेन समञ्जग्मुरपिसर्वेदिवौकसः
क्षेत्राणिवैष्णवानीह त्यक्त्वा विष्णुरपि क्षितेः । प्रयातोमन्दरं यत्र देवदेवउमाधवः
स्थानानिगाणपत्यानिगणेशोपिततोव्रजत् । हित्वाहमपिविप्रेन्द्रगतवान्मन्दरम्प्रति
सूरः सौराणि सन्त्यज्य गतश्चायतनादरम् ।
स्वं स्वं स्थानं क्षितौ त्यक्त्वा ययुरन्येऽपि निर्जराः ॥ ६ ॥

गतेषुदेवसङ्घेषुपृथिव्याः पृथिवीपतिः । चकार राज्यं निर्द्वन्द्वं दिवोदासःप्रतापवान्
विधाय राजधानींसवाराणस्यांसुनिश्चलाम् । एधाञ्चक्रेमहाबुद्धिःप्रजाधर्मेणपालयन्
सूर्यवत्सप्रतपिता दुर्हृदां हृदि नेत्रयोः । सोमवत्सुहृदामासीन्मानसेषु स्वकेष्वपि
अखण्डमाखण्डलवत्कोदण्डं कलयन् रणे । पलायमानैरालोकि शत्रुसैन्यबलाहकैः
सधर्मराजवज्ज्ञातोधर्माधर्मविवेचकः । अदण्ड्यान्मण्डयन् राजादण्ड्यांश्चपरिदण्डयन्
धनञ्जय इवाऽधाक्षीत्परारण्यान्यनेकशः । पाशीव पाशयाञ्चक्रे वैरिचक्रं विदूरगः
सोऽभूत्पुण्यजनाधीशो रिपुराक्षसवर्धनः । जगत्प्राणसमानश्च जगत्प्राणनतत्परः
राजराजः सएवाभूत्सर्वेषान्धनदः सताम् । सएवरुद्रमूर्तिश्च प्रैक्षिष्ट रिपुभीरणे
विश्वेषां सहिदेवानांतपसारूपधृग्यतः । विश्वेदेवास्ततस्तन्तुस्तुवन्तिचभजन्तिच
असाध्यः सहि साध्यानां वसुभ्यो वसुनाऽधिकः ।

ग्रहाणां विग्रहधरो दस्रतोऽजस्ररूपभाक् ॥ १६ ॥
मरुद्गणानगणयंस्तुषितांस्तोषयन्गुणैः । सर्वविद्याधरो यस्तु सर्वविद्याधरेष्वपि
अगर्वानेव गन्धर्वान्यश्चक्रेनिजगीतिभिः । ररक्षुर्यक्षरक्षांसि तद्दुर्गं स्वर्गसोदरम्
नागा नागांसिचक्रुश्च तस्य नागबलीयसः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वातश्चसिषेविरे
जाता गुह्यचरा यस्यगुह्यकाःपरितोनृषु । संसेविष्यामहे राजन्नसुरास्त्वांस्ववैभवैः
वयं यतस्त्वद्विषये सुरावासोऽपि दुर्लभः । अशिक्षयत्क्षितिपतेरिह यस्यतुरङ्गमान्
आशुगश्चाशुगामित्वं पावमाने पथि स्थितः ॥ २१ ॥
अगजान्यस्य तुगजान्नगवर्ष्मसु वर्ष्मणः । अजस्रदानिनो दृष्ट्वाऽभवन्नन्येऽपि दानिनः
सदोजिरे चवोद्धारोयोद्धारश्चरणाजिरे । न यस्यशास्त्रैर्विजितानशस्त्रैःकेनचित्क्वचित्
ननेत्रविषये जाता विषये यस्य भूभृतः । सदा नष्टपदा द्वेष्यास्तदाऽनष्टपदाःप्रजाः
कलावानेक एवाऽस्ति त्रिदिवेऽपि दिवौकसाम् ।
तस्य क्षोणिभृतः क्षोण्यां जनाः सर्वे कलालयाः ॥ २५ ॥
एकएवहिकामोस्तिस्वर्गेसोप्यङ्गवर्जितः । साङ्गोपाङ्गाश्चसर्वेषांसर्वेकामाहितद्भुवि
तस्योपवर्तनेप्येको न श्रुतोगोत्रभित्क्वचित् ।
स्वर्गे स्वर्ग सदामीशो गोत्रभित्परिकीर्तितः ॥ २७ ॥
क्षयी च तस्य विषये कोप्याऽऽकर्णि न केनचित् ।
त्रिविष्टपे क्षपानाथः पक्षे पक्षे क्षयीष्यते ॥ २८ ॥
नाके नवग्रहाः सन्ति देशास्तस्याऽनवग्रहाः ॥ २९ ॥
हिरण्यगर्भःस्वर्लोकेऽप्येक एवप्रकाशते । हिरण्यगर्भाःसर्वेषां तत्पौराणामिहालयाः
सप्ताश्व एकः स्वर्लोके नितरां भासतेंऽशुमान् ।
सदंशुकाः प्रतिदिनं बह्वश्वास्तत्पुरौकसः ॥ ३१ ॥
सदप्सरा यथा स्वर्भूस्तत्पुर्यपिसदप्सराः । एकैव पद्मावैकुण्ठेतस्यपद्माकराःशतम्
अनातयश्च तद्ग्रामा नाराजपुरुषाः क्वचित् । गृहे गृहेऽत्रधनदा नाकएकोऽलकापतिः
दिवोदासस्य तस्यैवं काश्यां राज्यं प्रशासतः ।

गतं वर्षं दिनप्रायं शरदामयुताष्टकम् ॥ ३४ ॥
गीर्वाणाविप्रतीकारमथ तस्य चिकीर्षवः । गुरुणा मन्त्रयाञ्चक्रुर्धर्मवर्त्मानुयायिनः
भवादृशामिव मुने प्रायशोधर्मचारिणाम् । विबुधाविदधत्येव महतीरापदांततीः
यद्यप्यसौधराधीशो व्याधिनोद्दुर्धराध्वरैः । तानध्वरभजोऽत्यन्तंतथापिसुहृदोनते
स्वभाव एवद्युसदाम्परोत्कर्षा सहिष्णुता । बलिबाणदधीच्याद्यैरपराद्धं किमत्र तैः
अन्तरायाभवन्त्येव धर्मस्यापि पदे पदे । तथापि न निजो धर्मो धर्मधीभिर्विमुच्यते
अधर्मिणःसमेधन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः । अधर्मादेव च परं समूलं यान्त्यधोगतिम्
प्रजाः पालयतस्य पुत्रानिव निजौरसान् । रिपुञ्जयस्य नाऽल्पोपि बभूवाधर्मसंग्रहः
षाड्गुण्यवेदिनस्तस्य त्रिशक्त्यूर्जितचेतसः । चतुरोपायवित्तस्यनरन्ध्रंविविदुःसुराः
बुद्धिमन्तोऽपि विबुधा विप्रतीकर्तुमुद्यताः । मनागपिन संशेकुरपकर्तुं तदीशितुः
एकपत्नीव्रताःसर्वेपुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काचिन्नैवासीदपतिव्रतधर्मिणी
अनधीतो न विप्रोऽभूदशूरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनभिज्ञोनैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु
अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणम्प्रति । तस्य राष्ट्रे समभवन्दिवोदासस्य भूपतेः
अविप्लुतब्रह्मचर्यास्तद्राष्ट्रे ब्रह्मचारिणः । नित्यं गुरुकुलाधीना वेदग्रहणतत्पराः
आतिथ्यधर्मप्रवणाधर्मशास्त्रविचक्षणाः । नित्यंसाधुसमाचारागृहस्थास्तस्यसर्वतः
तृतीयाश्रमिणो यस्मिन्वनवृत्तिकृतादराः । निःस्पृहाग्रामवार्तासुवेदवर्त्मानुसारिणः
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तानिर्मुक्तानिष्परिग्रहाः । वाङ्मनःकर्मदण्डाढ्यायतयोयत्रनिःस्पृहाः
अन्येऽनुलोमजन्मानःप्रतिलोमभवा अपि । स्वपारम्पर्यतो दृष्टं मनाग्वर्त्म न तत्यजुः
अनपत्योनतद्राष्ट्रे धनहीनोऽपि कोपि न । अवृद्धसेवी नो कश्चिदकाण्डमृतिभाक्चन
नचाटानैववाचाटावञ्चकानोन हिंसकाः । नपाखण्डानवैभण्डानरण्डानच शौण्डिकाः
श्रुतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदेपदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदामङ्गलगीतयः
वीणावेणुप्रवादाश्च मृदङ्गा मधुरस्वनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठीनकर्णगा
मांसाशिनः पुरोडाशेनैवान्यत्र कदाचन । न दुरोदरिणो यत्र नाधमर्णानतस्कराः
पुत्रस्यपित्रोःपदयोः पूजनं देवपूजनम् । उपवासो व्रतं तीर्थं देवताराधनम्परम्

नारीणां भर्तृपदयोरर्चनं तद्वचः श्रुतिः । समर्चयन्ति सततं मनुजानिजमग्रजम्
सपर्ययन्ति मुदिताभृत्याःस्वामिपदाम्बुजम् । हीनवर्णैरग्रवर्णो वर्ण्यते गुणगौरवैः
वरिवस्यन्तिभूयोऽपित्रिकालंकाशिदेवताः । सर्वत्रसर्वेविद्वांसःसमर्च्यन्ते मनोरथैः
विद्वद्भिश्च तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियाः ।
जितेन्द्रियैर्ज्ञाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिवयोगिनः ॥ ६१ ॥
मन्त्रपूतंमहार्हञ्च विधियुक्तं सुसंस्कृतम् । वाडवानां मुखाग्नौ च हूयतेऽहर्निशं हविः
वापीकूपतडागानामारामाणाम्पदे पदे । शुचिभिर्द्रव्यसम्भारैः कर्तारोयत्र भूरिशः
यद्राष्ट्रे हृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्तेसर्वजातयः । अनिन्द्यसेवासम्पन्ना विना मृगयुसौनिकान्
इत्थंतस्यमहीजानेः सर्वत्रशुचिवर्तिनः । उन्मिषन्तोऽप्यनिमिषामनाक्छिद्रंनलेभिरे
अथोवाचामरगुरुर्देवानपचिकीर्षुकान् । तस्मिन् राजनि धर्मिष्ठेवरिष्ठे मन्त्रवेदिषु

गुरुरुवाच

सन्धिविग्रहयानास्तिसंश्रयंद्वैधभावनम् । यथास राजासं वेत्ति नतथाऽत्रापिकश्चन
उपायोप्येक एवास्तिचतुर्ष्विहदिवौकसः । भेदोनामसचेत्सिध्येत्तपोबलिनि तत्रहि
तेनयद्यपिभूभर्त्राभूमेर्देवाविवासिताः । तथापिभूरिशस्तत्र सन्त्यस्मत्पक्षपातिनः
कालो निमिषमात्रोऽपि यान् विना न सुखं व्रजेत् ।
अस्माकमपि तस्यापि सन्ति ते तत्र मानिताः ॥ ७० ॥
अन्तर्वहिश्चरानित्यं सर्वविश्रम्भभूमयः । समागतेषु तेष्वत्रसर्वं नः सेत्स्यतिप्रियम्
समाकर्ण्य च ते सर्वे त्रिदशागीष्पतीरितम् ।
निर्णीतवन्तस्तस्याऽर्थं तस्मादन्तर्वहिश्चरान् ॥
अभिनन्द्याऽथ तं सर्वे प्रोचुरित्थम्भवेदिति ॥ ७२ ॥
ततःशक्रःसमाहूयवीतिहोत्रम्पुरः स्थितम् । ऊचे मधुरया वाचा बहुमानपुरःसरम्
हव्यवाहनयामूर्तिस्तव तत्र प्रतिष्ठिता । तामुपासंहर क्षिप्रं विषयात्तस्य भूपतेः
समागतायां तन्मूर्तौ सर्वा नष्टाग्नयः प्रजाः ।
हव्यकव्यक्रिया शून्या विरजिष्यन्ति राजनि ॥ ७५ ॥

प्रजासुचविरक्तासुराज्यकामदुघासुवै । कृच्छ्रेणोपार्जितोऽपार्थोराजशब्दोभविष्यति
प्रजानांरञ्जनाद्राजायेयंरूढिरुपार्जिता । तस्यांरूढ्यांप्रणष्टायांराज्यमेव विनङ्क्ष्यति
प्रजाविरहितो राजाकोशदुर्गबलादिभिः । समृद्धोऽप्यचिरान्नश्येत्कूलसंस्थ इवद्रुमः
त्रिवर्गसाधनाहेतुःप्राक्प्रजैव महीपतेः । क्षीणवृत्त्याम्प्रजायांवैत्रिवर्गः क्षीयतेस्वयम्
क्षीणे त्रिवर्गे संक्षीणा गतिर्लोकद्वयात्मिका ॥ ८० ॥

इतीन्द्रवचनाद्वह्निरह्नायक्षोणिमण्डलात् । आचकर्षनिजाम्मूर्तियोगमायाबलान्वितः
निन्ये नकेवलं त्रेतांजाठराग्निमपिप्रभुः । वज्रिणो वचसावह्निर्निजशक्तिसमन्वितम्
वह्नौस्वर्लोकमापन्नेजातेमध्यन्दिनेनृपः । कृतमाध्याह्निकस्तूर्णंप्राविशद्भोज्यमण्डपम्
महानसाधिकृतयोवेपमानास्ततोमुहुः । क्षुधार्तमपि भूपालमिदं मन्दं व्यजिज्ञपन्

सूपकारा ऊचुः

अत्यहस्करतेजस्कप्रतापविजितानल । किञ्चिद्विज्ञप्तकामाःस्मोप्यकाण्डेरणपण्डित
यदि विश्राणयेद्राजन्भवानभयदक्षिणाम् । तदा विज्ञापयिष्यामः प्रबद्धकरसम्पुटाः
भ्रूसञ्ज्ञयाकृतादेशाःप्रशस्तास्येनभूभुजा । मृदु विज्ञापयाञ्चक्रुः पाकशालाधिकारिणा
नजानीमोवयंनाथ त्वत्प्रतापभयार्दितः । कुसृत्याथकयाविद्वान्नष्टो वैश्वानरः पुरात्
कृशानौकृशताम्प्राप्तेकथं पाकक्रियाभवेत् । तथाऽपि सूर्यपाकेनसिद्धा पक्तिर्हिकाचन
प्रभोरादेशमासाद्य तामिहैवानयामहे । मन्यामहे च भूजाने! पक्तिरद्यतनी शुभा
श्रुत्वाऽन्धसिकवाक्यं स महासत्त्वो महामतिः ।
नृपतिश्चिन्तयामास देवानां वै कृतं त्विदम् ॥ ८१ ॥

क्षणं संशीलयंस्तत्र ददर्शतपसो बलात् । न केवलञ्जहौ गेहं हुतभुक्चौदरीर्दरीः
अप्यहासीदितो लोकाज्जगामचसुरालयम् । भवत्विह हिकाहानिरस्माकं ज्वलनेगते
तेषामेव विचाराच्च हानिरेषा सुपर्वणाम् । तद्बलेन च किं राज्यं मयेदमुररीकृतम्
पितामहेन महतो गौरवात्प्रतिपादितम् । इति चिन्तयतस्तस्य मध्यलोकशतक्रतोः
पौराःसमागता द्वारि सह जानपदैर्नरैः । द्वाऽस्थेनचाज्ञयाराज्ञस्ततस्तेन्तःप्रवेशिताः
दत्त्वोपदं यथार्हं ते प्रणेमुःक्षोणिवज्रिणम् । केचित्सम्भाषिताराज्ञादरसोदरया गिरा

चिच्च समुदा द्रूष्ट्या केचिच्च करसञ्ज्ञया । विसर्जितासनाराज्ञा बहुमानपुरःसरम्
तेऽजिरे भेजिरे सर्वे रत्नार्चिः परिसेविते । विजितामोदसन्दोहे सुरानोकहसौरभैः
राज्ञः शतशलाकस्य च्छत्रस्य च्छायया शुभे ॥ ९९ ॥
विशाम्पतिरथोवाच तन्मुखच्छाययेरितम् ।
विज्ञाय तदभिप्रायमलम्भीत्या पुरौकसः ॥ १०० ॥
विकारकारिभिर्लेखैर्यदिनीतोऽनलोभुवः । एतावतैवकिंसिद्ध्येन्मयि तेषाम्पराभवः
चिकीर्षुरहमेवासंपौराःकार्यमिदम्पुरा । परंह्युपेक्षितप्रायं दिष्ट्यातैःस्मारितश्चिरात्
गतोऽनलोऽभवद्भद्रं जगत्प्राणोऽपि यात्वितः ।
वरुणः पुष्पवन्ताभ्यामविलम्बम्प्रयात्वितः ॥ १०३ ॥
अहमेव हि पर्जन्योभविष्यामि तपोबलात् । मुदे जनपदानाञ्च सर्वसस्यसमृद्धिदः
तपोयोगबलेनाहमात्मानम्परिकल्प्य च । त्रिधावह्निस्वरूपेण पक्तीष्टिव्युष्टिकृत्तमः
अन्तर्बहिश्चयोद्वेधानभस्वत्पदवीं दधत् । सर्वेषामेववेत्स्यामित्वन्तःकरणचेष्टितम्
विधायचाम्भसीम्मूर्तिसर्वजीवैकजीवनीम् । प्रजाःसञ्जीवयिष्यामिकिञ्जडैर्विषयेमम
यदाखेतमसापौराग्रस्येतेशशिभास्करौ । तदानकिंविनाताभ्यांजीवामःक्षितिमण्डले
श्रियश्चान्द्रमसीम्प्राप्य ह्लादयिष्याम्यहम्प्रजाः ।
निशाचरेण किमिह क्षयिणा च कलङ्किना ॥ १०६ ॥
अस्मत्कुलेमूलभूतोभास्करोमान्य एव नः । स तिष्ठतु सुखेनाऽत्रयातायातं करोतु च
सएकोजगतामात्मा विशेषात्कुलदेवता । सोपकर्तुं नवेत्त्येव तस्येदं व्रतमुत्तमम्
इति नरपतिवाक्सुधारसौघं श्रुतिपुटकैः परिपीय पौरवर्गः ।
विकसितवदनाम्बुजो जगाम निजनिजमालयमाधिमुक्तचित्तः ॥ ११२ ॥
क्षितिपतिरपि तत्तथाविधाय तपसोऽसाध्यमिहास्तिकिंत्रिलोक्याम् ।
अतिवह्न्यर्कमसौ दधच्च तेजो ह्यसदां शल्यमिवोच्चकैर्बभूव ॥ ११३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे दिवोदासप्रतापवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

काशीवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथ मन्दरकन्दरोदरोल्लसदसमद्युतिरत्नमन्दिरे ।
परितः समधिष्ठितामरे निजशिखरैर्वसनीकृताम्बरे ॥ १ ॥
निवसञ्जगदीश्वरो हरः कृशरजनीशकलामनोहरः ।
लभते स्म न शर्म शङ्करः प्रसरत्काशिवियोगजज्वरः ॥ २ ॥
विरहानलशान्तये तदा समलेपि त्रिपुरारिणाऽपि यः ।
मलयोद्भव पङ्क एष सम्प्रतिपेदे ह्यधुनापि पांसुताम् ॥ ३ ॥
परितापहराणि पद्मिनीनां मृदुलान्यपि कङ्कणीकृतानि ।
गदितानि यदीश्वरेण सर्पास्तदभूत्सत्यमहो महेश्वरेच्छा ॥ ४ ॥
यदु दुग्धनिधिं निमथ्य देवैर्मृदुसारः समकर्षि पूर्णचन्द्रः ।
स बभूव कृशो वियोगतप्तेश्वरमूर्ध्नोष्णपरिक्षरच्छरीरः ॥ ५ ॥
यददीधरदेष जाततापः पृथुले मौलिजटानि कुञ्जकोणे ।
परितापहरां हरस्तदानीं द्युनदीं तामधुनापि नोज्झिहीते ॥ ६ ॥
महतो विरहस्य शङ्करः प्रसभं तस्य वशी वशङ्गतः ।
विविदे न सुरैः सदोगतैरपि संवीतसुतापवेष्टितः ॥ ७ ॥
अति चित्रमिदं यदात्मना शुचिरप्येष कृपीटयोनिना ।
स्वपुरीविरहोद्भवेन वै परिताप्येत जगत्त्रयेश्वरः ॥ ८ ॥
निजभालतलं कलानिधेः कलया नित्यमलङ्करोति यः ।
स तदीश्वरमप्यतापयद्विधुरेको विपरीत एव तु ॥ ९ ॥
गरलं गलनालिकातले विलसेदस्य न तेन तापितः ।

अमृतांशुतुषारदीधितिप्रचयैरेव तु तापितोऽद्भुतम् ॥ १० ॥
विलसद्धरिचन्दनोदकच्छटयातद्विरहापनुत्तये ।
हृदयाहितयाप्यदूयतप्रसरद्भोगिफटाभवैर्नतु ॥ ११ ॥
सकलम्भ्रममेष नाशयेत्स्रगहित्वाद्यपदेशजं हरः ।
इदमद्भुतमस्य यद्ध्रमः स्फुटमाल्येऽपि महाहिसम्भवः ॥ १२ ॥
स्मृतिमात्रपथङ्गतोऽपि यस्त्रिविधन्तापमपाकरोत्यलम् ।
स हि काशिवियोगतापितः स्वगतं किञ्चिदजल्पदित्यजः ॥ १३ ॥
अपि काशिसमागतोऽनिलो यदि गात्राणि परिष्वजेन्मम ।
दवथुः परिशान्तिमेति तन्नहि मानी परिगाहनैरपि ॥ १४ ॥
अगमिष्यदहो कथं स तापो ननु दक्षाङ्गजयाय एधितः ।
मम जीवा तुलता झटित्यलं ह्यभविष्यन्नहि माद्रिजा यदि ॥ १५ ॥
न तथोज्झितदेहया तया मम दक्षोद्भवया मनोऽदुनोत् ।
अविमुक्तवियोगजन्मना परिदूयेत यथा महोष्मणा ॥ १६ ॥
अयि काशि मुदा कदा पुनस्तव लप्स्ये सुखमङ्गसङ्गजम् ।
अतिशीतलितानि येन मेऽद्भुतगात्राणि भवन्ति तत्क्षणात् ॥ १७ ॥
अयि काशि विनाशिताघसङ्घे तव विश्लेषज आशुशुक्षणिः ।
अमृतांशुकलामृदुद्रवैरतिचित्रं हविषेव वर्धते ॥ १८ ॥
अगमन्मम दक्षजावियोगजो दवथुः प्राग्घिमवत्सुतौषधेन ।
अधुना खलु नैवशान्तिमीयां यदि काशीं न विलोकयेहमाशु ॥ १९ ॥
मनसेतिगृणंस्तदाशिवः सुतरां सम्भृततापवैकृतः ।
जगदम्बिकयाधियाऽनन्यया कथमप्येष वियुक्त इत्यमानि ॥ २० ॥
प्रियया वपुषोऽर्धयाऽनयाप्यपरिज्ञातवियोगकारणः ।
वचनैरुपचर्यते स्म स प्रणतप्राणिनिदाघदारणः ॥ २१ ॥

श्रीपार्वत्युवाच

किमर्थमागतोऽस्माकं वनम्वरधनुर्धरः। अत्रावध्या मृगाः सर्वे वर्तमाना निषादप !॥
आशु गच्छ वनादस्मादाकाशनृपपालितात्। इति तासाम्वचःश्रुत्वाहयादवरुरोह सः
कास्तु यूयमियञ्चापि कन्यकाम्बुजसन्निभा। सुभगाचारुसर्वाङ्गीपीनोन्नतपयोधरा
ब्रूत मेऽहं गमिष्यामि श्रुत्वा स्वस्याऽऽलयङ्गिरिम्॥ ४३॥
इति तस्या वचः श्रुत्वाधरण्यात्मजयेरिता। सखीपद्मावतीप्राह निषादम्पर्वतालयम्
आकाशराजतनया वसुधातलसम्भवा। अस्माकं नायिका शूर! पद्मिनीनाम नामतः॥
ब्रूहि त्वं सुभगाकार ! किन्नामा कस्य वा सुतः।
जातिः का कुत्र ते वासः किमर्थन्त्वमिहाऽऽगतः॥
इति पृष्टः स ताः प्राह मन्दस्मितमुखाम्बुजः॥ ४६॥
दिवाकरकुलम्प्राहुरस्माकन्तुपुराविदः। तस्य नामान्यनन्वाति पावनानिमनीषिणाम्
वर्णतो नामतश्चापि कृष्णं प्राहुतपस्विनः। ब्रह्मद्विषां सुरारीणांयस्यचक्रंभयावहम्
यस्यशङ्खध्वनिं श्रुत्वामोहमीयुर्हि वैरिणः। यस्य वै धनुषस्तुल्यं धनुर्नैवाऽमरेष्वपि
तं मां वीरपतिं प्राहुर्वेङ्कटाद्रिनिवासिनम्। तस्मादद्रितटात्सोऽहं निषादैरनुगैर्वृतः॥
मृगयार्थं हयारूढो युष्माकं वनमागतः। मयाऽप्यनुद्रुतः कश्चिन्मृगो वायुगतिर्ययौ
तमदृष्ट्वावनं पश्यन्दृष्टवान्सुभगामिमाम्। कामादिहागतोऽहंवोमयाकिंलभ्यतेत्वियम्
इति कृष्णवचः श्रुत्वाक्रुद्धास्ताःपुनरब्रुवन्। आकाशराजोदृष्ट्वात्वांकृत्वानिगडबन्धनम्
यावन्नयति तावत्त्वं गच्छ शीघ्रं स्वमालयम्॥ ५३॥
तर्जितस्ताभिरेवं स हयमारुह्यशीघ्रगम्। युक्तः स्वानुचरैः सर्वैर्ययौ द्रुततरं गिरिम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे उद्यानवासिन्याः पद्मावत्याःसमीपे
नारदगमनश्रीनिवासमृगयादिवर्णनंनामचतुर्थोऽध्याः ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

पद्मावतीदर्शनेनश्रीनिवासस्यमोहप्राप्तिः

श्रीवराह उवाच

सम्प्राप्यंचालयदिव्यमवतीर्यहयोत्तमात्। विसृज्यसोऽनुगान्सर्वान्देवान्कैरातरूपकान्
विश्रमध्वमिति प्रोच्यविवेशमणिमण्डपम् । आरुह्य मणिसोपानंपञ्चकक्षाअतीत्य च
मुक्तागृहं समासाद्य तस्मिँल्लीलायिते शुभे । नवरत्नमये मञ्चे सम्विवेशावशो हरिः
संस्मरन्पद्मगर्भाभांतामेवायतलोचनाम् । तनुमध्यांपीनकुचांमन्दस्मितमुखाम्बुजाम्
क्षीराब्धितनयामेव मेने पद्मोद्भवां शुभाम् ।
तस्यां गतमना देवः श्रीनिवासो मुमोह च ॥ ५ ॥

ततो मध्याह्नसमये कृत्वान्नं दिव्यमुत्तमम् । सूपदंशं सुगन्धं च देवार्हमतिशोभनम्
शुद्धान्नं पायसान्नं च गौडं मुद्गान्नमेव च । कृत्वा पञ्चविधापूपान्पूरिकावटकानपि ॥
देवं द्रष्टुं ययौ शीघ्रं सखी वकुलमालिका । पद्मावती पद्मपत्रा चित्ररेखासमन्विता
निवेश्य द्वारि देवस्यताः सर्वाः प्रमदोत्तमाः । विवेशतत्समीपंसास्वयंवकुलमालिका
गत्वा समीपं देवस्य ववन्दे भक्तिभावतः । दृष्ट्वाऽथ देवं विवशं पर्यङ्के रत्नभूषिते ॥
पादसंवाहनं कृत्वा निमीलितविलोचनम् । तंध्यायन्तंचकिमपिव्याजहारशुचिस्मिता
उत्तिष्ठ देवदेवेश किं शेषे पुरुषोत्तम !। परमान्नं कृतं देव ! भोक्तुमागच्छ माधव !॥
किं वा त्वमार्तवच्छेषे सर्वलोकार्तिनाशन । मृगयामटता देव किं दृष्टं भवता वने ॥
अवस्थाते विशालाक्ष! कामुकस्येवदृश्यते । कादृष्टादेवकन्यावामानुषीवाऽहिकन्यका
ब्रूहि मे त्वमचिन्त्यात्मन्कन्यां तां चित्तहारिणीम् ॥ १५ ॥

श्रीवराह उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा निःश्वासमकरोद्विभुः । निःश्वसन्तंपुनःप्राहप्रीतावकुलमालिका
एवं मनोहरा का सा तवापि पुरुषोत्तम !। तामवोचद्धृषीकेशोवक्ष्यामि. शृणु, तत्त्वतः-

श्रीभगवानुवाच

पुरा त्रेतायुगे पुण्ये रावणं हतवानहम्। तदा वेदवती कन्या साहाय्यमकरोच्छ्रियः
सीतारूपाऽभवल्लक्ष्मीर्जनकस्य महीतलात्। गते मयि तु मारीचं हन्तुं पञ्चवटीवने ॥
ममानुजोऽपिमामेवसीतया चोदितोऽन्वयात्। तदन्तरेराक्षसेन्द्रोहर्त्तुं सीतामुपाययौ
अग्निहोत्रगतो वह्निस्तं ज्ञात्वा रावणोद्यमम्।
आदाय सीतां पाताले स्वाहायां सन्निवेश्य च ॥ २१ ॥
तेनैव रक्षसा स्पृष्टां पुरा वेदवतीं शुभाम्। अग्नौ विसृष्टदेहां तां संहर्तुं रावणं पुनः
सीताया रूपसदृशीं कृत्वा चैवोत्ससर्ज ह। सा रावणहृताभूत्वालङ्कायांचनिवेशिता
हते तु रावणे पश्चात्पुनरग्निंविवेशसा। अग्निस्तुरक्षितांलक्ष्मींस्वाहायांममजानकीम्
दत्त्वा हस्ते च मामाह सीतया सहितां सखीम्।
इयं वेदवती देव सीतायाः प्रियकारिणी ॥ २५ ॥
सीतार्थं राक्षसपुरे तेन बन्दीकृता स्थिता। तस्मादेनां वरेणैव प्रीणय त्वं श्रिया सह
इति वह्निवचः श्रुत्वा सीता मामवदच्छुभा। मम प्रीतिकरीनित्यमियंवेदवतीविभो!
तस्मात्परां भागवतीं देवैनां वरय प्रभो !॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच

तथा देवि करिष्यामि ह्यष्टाविंशे कलौ युगे। तावदेषा ब्रह्मलोके वसत्वमरपूजिता
पश्चात्तु भूमितनया भविष्यति वियत्सुता। इति दत्तवरा पूर्वं मया लक्ष्म्याचसुन्दरी
अद्य नारायणपुरे सम्भूता धरणीतलात्। पद्मासमा पद्मनेत्री पद्मा दत्तवरा सती॥३१
सखीभिरनुरूपाभिर्वने पुष्पाणि चिन्वती। मृगयामटता तत्र मया दृष्टा मनोरमा ॥
तस्यारूपं मया वक्तुं न शक्यं शतहायनैः। लक्ष्म्येव च तयामेऽद्यसङ्गमोभवितायदि
प्राणाः स्थिरा भविष्यन्ति सत्यमित्यवधारय ॥ ३४ ॥
त्वं तत्र गत्वातांकन्यांदृष्ट्वाबकुलमालिके। जानीहिरूपलावण्यादियंयोग्येतिचास्य वै
अनवद्या विशालाक्षी पद्मेन्दीवरलोचना ॥ ३५ ॥
इत्युक्त्वामोहमापन्नं तं प्राह बकुला पुनः। इतो गच्छामि देवेश! मनोज्ञा तव यत्र सा

मार्गं वद रमाधीश! गमिष्ये येन तां प्रति । एवमुक्तो रमाधीशस्तांप्राह बकुलस्रजम्
इतो गच्छ महाभागे ! श्रीनृसिंह गुहायतः ।
तन्मार्गेणाऽवतीर्याऽस्माद् भूधरेन्द्रान्मनोरमात् ॥ ३८ ॥
अगस्त्याश्रममासाद्य दृष्ट्वा लिङ्गं तदर्चितम् । अगस्त्येश इतिख्यातं सुवर्णमुखरीतटे
तीरेणैव ततो गच्छ शुकब्रह्म ऋषेर्वनम् । पश्यन्ती स्वर्णमुखरींतत्रकल्लोलमालिनीम्
तत्र पद्म सरोनाम पावनं पद्मसंयुतम् । तत्र स्नात्वाऽथ तत्तीरे तपन्तं मुनिसत्तमम्
छायाशुकं नमस्कृत्य कृष्णं च बलसंयुतम् । आराध्यमानं मुनिनाशुकेन सततं शुभे
इन्द्रनीलमणिश्यामं पीतनिर्मलवाससम् । तीर्थयात्रां गमिष्यन्तंबलभद्रंसिताकृतिम्
उपासयन्तम्मन्त्राणि मुक्तान्वितकरद्वयम् । उद्यन्तम्पादुकायुक्तम्बलभद्रम्प्रणम्य च ॥
आदाय स्वर्णकमलं सरसोऽस्माद्वरानने । तीर्त्वा सुवर्णमुखरीं वनान्युपवनानि च ॥
अरणीतीरमासाद्य विश्रम्य च वनान्तरे । नारायणपुरीं दृष्ट्वा विस्मयं च गमिष्यसि
तस्याश्चोपवने वृक्षान्पुष्पाढ्यान्फलसंयुतान् ।
पनसाऽऽम्रशिरीषांश्च कुन्दतिन्दुकपाटलान् ॥ ४७ ॥
पुन्नागनागवरणरसालाङ्कोलचम्पकान् । बकुलामलकान्सालांस्तालहिन्तालपद्मकान्
जम्बूनिम्बकदम्बैलापिप्पलीमधुकार्जुनान् । प्रियङ्गुहिङ्गुखर्जूरमायूराशोकलोध्रकान् ॥
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षबदरीभूर्जकीचकान् । चिञ्चाकिंशुकमन्दारशाल्मलीबीजपूरकान् ॥
पूगनारङ्गलिकुचनारिकेलवनाकुलान् । मल्लिकामालतीकुन्दयूथिकाकेतकीयुतान् ॥
करवीराब्जसम्पन्नान्राजरम्भाविराजितान् । मयूरकीरगरुडशुकसारससङ्कुलान् ॥५२।
भृङ्गझङ्कारनिविडानारामान्सुमनोहरान् । पश्यन्ती परमं हर्षमवाप्य च नदीतटे ॥
गत्वा पूर्वोत्तरे मार्गे पुरीमिन्द्रपुरीसमाम् । गङ्गयेवाऽऽवृतांनित्यं सरितारणिनामया
आकाशराजनगरीं गत्वा तत्रोचितं कुरु ॥ ५५ ॥

श्रीवराह उवाच

इत्यादिश्य सुराधीशः सखीं तां बकुलाभिधाम् ।
विसृज्य शयने शुभ्रे स शिश्ये श्रीसमन्वितः ॥ ५६ ॥

प्रणम्य देवदेवेशं सखी बकुलमालिका । गुञ्जामणिसमाकारं रक्ताश्वमधिरुह्य सा ॥
यथोक्तमार्गेण ययौ पश्यन्ती विविधान्मृगान् ।
मत्तेभान्पर्वताकाराञ्छ्वेतदन्तविभूषितान् ॥ ५८ ॥
करिणीयूथसहिताञ्जलदादानतत्परान् । सिंहाञ्छतघनप्रख्यान्सिंहीयूथैरनुद्रुतान् ॥५९
शार्दूलर्क्षांश्च खड्गांश्च शरभान्गवयान्मृगान् ।
कृष्णसारांश्च गोमायूञ्छशांश्च प्रियकानपि ॥ ६० ॥
सारसांश्च मयूरांश्चमार्जारान्वनगोचरान् । वृकाञ्छुकान्सूकरांश्चसुवाचःपक्षिणस्तथा
पश्यन्ती विविधाकारांस्तुष्यन्ती च मुहुर्मुहुः ।
आससादाऽरणीतीरं पश्चिमं पादपाकुलम् ॥ ६२ ॥
अवतीर्याऽरुणादश्वादगस्त्येशसमीपतः । दृष्ट्वाऽगस्त्येश्वरं लिङ्गमगस्त्येन सुपूजितम् ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च विशश्राम नदीतटे ॥ ६४ ॥
तत्राऽऽगताराजगृहाद्योषितोदेवसन्निधौ । सखीःपद्मालयायास्ता दृष्ट्वा बकुलमालिका
गत्वा समीपे तासां सा किंवदन्ती स्म पृच्छति ॥ ६६ ॥

बकुलमालिकोवाच

कायूयं योषितो ब्रूत विचित्राभरणस्रजः । कुतः समागता ह्यत्रकिंकार्यंवोऽमलाननाः
तास्तु तस्यावचःश्रुत्वास्मितपूर्वमथाऽब्रुवन् । शृणुष्वावहितादेविवयंवक्ष्यामहेऽधुना

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येधरणीवराहसम्वादेपद्मावतीदर्शनेनश्रीनिवासस्य मोहप्राप्त्यादिवर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

वकुलमालिकाम्प्रतिसखीविनिवेदितपद्मावत्युदन्तवर्णनम्

योषित ऊचुः

वयमाकाशराजस्य शुद्धान्तनिलयाः स्त्रियः। सख्यः पद्मालयाया वै दुहितुर्वसुधापतेः
राजपुत्रीं पुरस्कृत्य गताः पूर्वं वनान्तरम्। कुर्वन्त्यः पुष्पावचयं राजपुत्र्यर्थमाकुलाः
वृक्षमूले समासीनास्तत्रपश्यामपूरुषम्। इन्द्रनीलमणिश्याममिन्दिरामन्दिरोरसम्
ईषत्स्मितमुखं चारुपीनदीर्घभुजद्वयम्। मृष्टपीताम्बरं हेमबाणबाणासनोज्ज्वलम्॥
सुवर्णमुकुटं हारकेयूरादिविभूषितम्। तं तु पद्मालया दृष्ट्वा सखी कमललोचना॥५
द्रुतहेमनिभाकारा पश्य पश्येति साऽब्रवीत्।
पश्यन्तीनां तदाऽस्माकं गतोऽन्तर्धानमाशु सः॥ ६ ॥
सा सखी मूर्च्छिताऽस्माभिर्नीता राजगृहं ततः॥ ७ ॥
दृष्ट्वाऽस्वस्थांनृपः पुत्रीमपृच्छद्दैवचिन्तकम्। वदविप्रेन्द्र पुत्र्या मे ग्रहचारफलं मुने
बृहस्पतिसमोविप्रोविचार्याऽऽत्मनि खेचरान्। अनुकूला ग्रहाःसर्वे तवपुत्र्यानृपोत्तम
किन्तु नित्यं ग्रहफलं किञ्चिद्भ्रान्तिकरं नृप। तमुवाच पुनर्धीमान्प्रश्नकालंविचार्यच
छायां गुणित्वा लग्नश्चतत्फलानिविचार्यच। लग्नेलग्नाधिपश्चन्द्रःकेन्द्रेचैवबृहस्पतिः
निद्राति दिनपक्षी तु प्रश्नपक्षीतुराज्यगः। शृणुराजन्फलंतस्यस्वास्थ्यमेवभविष्यति
उत्तमः पुरुषः कश्चिदागतः कन्यकाम्प्रति। तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता पुत्रीतेनयोगंसमेष्यति
तेनैव प्रेषिताः काचिदागमिष्यतिकन्यका। सातुवक्ष्यतियद्वाक्यंतद्धितंतेभविष्यति
तत्कुरुष्व महाराज! सत्यंसत्यं वदाम्यहम्। किंचसर्वार्थदंयत्तुसर्वव्याधिविनाशनम्
वक्ष्यामि तत्कुरुष्वाऽद्य पुत्र्यास्तव सुखावहम्।
कार्याऽगस्त्यलिङ्गस्य ब्राह्मणैरभिषेचनम्॥ १६ ॥
इत्युक्त्वाऽथ गृहं यातो राजानं दैवचिन्तकः॥ १७ ॥

आकाशराजोऽपि तदा विप्रानाहूय वैदिकान् ।
अभ्यर्च्याऽऽज्ञापयामास गत्वा देवालयं द्विजाः ॥ १८ ॥
महाभिषेकं शम्भोश्च कुरुध्वं मन्त्रपूर्वकम् । इत्यनुज्ञाप्य तानस्मानाहूयाऽभ्यवदच्छुभे
महाभिषेकसम्भारान्सम्पादयत कन्यकाः । इत्याज्ञप्ता नृपेणैव वयं देवालयं गताः ॥
ब्रूहि त्वं सुभगेऽस्माकं त्वदाऽऽगमनमञ्जसा ।
कुतोऽसि कस्य वाऽर्थेन क्व वा जिगमिषा हि ते ! ॥ २१ ॥
दिव्याश्वमधिरुह्येमं देवलोकादिवाऽऽगता ॥ २२ ॥

श्रीवराह उवाच

इति ताभिस्तदा पृष्टा हृष्टा बकुलमालिका । प्रोवाचवाचंमधुरांहर्षयन्तीवबालिकाः

बकुलमालिकोवाच

श्रीवेङ्कटाद्रेः प्राप्ताऽहं नाम्ना बकुलमालिका । धरणींद्रष्टुकामाऽहमारुह्येमं तुरङ्गमम्
द्रष्टुं शक्या भवेद्देवी किमु तत्रनृपालये । इतितस्यावचःश्रुत्वाताःप्रोचुर्नृपकन्यकाः
अस्माभिः सहिता त्वम्वै द्रक्ष्यसे धरणीं शुभे !।
इत्युक्ता सा ततस्ताभिरागता नृपमन्दिरम् ॥ २६ ॥
आगच्छन्तीषु तास्वेवं धरणी तु पुलिन्दिनीम् ॥ २७ ॥
आयान्तीं वीथिकायां सा सगुञ्जाशङ्खभूषिताम् ।
शिशुं स्तनन्धयं पृष्ठे बद्ध्वा वस्त्राञ्चलेन वै ॥ २८ ॥
वदामि सत्यं शृणुतभूतंभव्यंभविष्यकम् । वदन्तीवीथिवीथीषुतामाहूयशुचिस्मिता
स्वर्णशूर्पं समादाय तस्मिन्मुक्ता निधाय च ।
त्रिप्रस्थमात्रांस्त्रीत्राशीन्कृत्वा तस्यै निधाय च ॥ ३० ॥
वदसत्यंपुलिन्दे! त्वमेष्यद्वाभूतमेववा । इत्येवंधरणीदेवी पृच्छन्तीतांस्थिताऽभवत्
पृष्टा साऽवददस्यास्तु मनसा यद्विचिन्तितम् ।
मध्यराशौ चिन्तितं ते वद कल्याणि! मे ऋजु ॥ ३२ ॥
ओमित्याहाऽद्य धरणी पुलिन्दां राजवल्लभा ।

धरण्युवाच

राशिरुक्तः फलम्ब्रूहि धनराशिं ददामि ते ॥ ३३ ॥

पुलिन्दोवाच

सत्यम्वदामि ते सुभ्रु शिशोरन्नं प्रयच्छ मे । इत्युक्तासातु धरणीस्वर्णपात्रेऽन्नमाददे
दत्त्वातस्यैपुलिन्दिन्यैसत्यंब्रूहीतिसाऽवदत् । सक्षीरमन्नमादाय दत्त्वापुत्रायभामिनी
सा सत्यमवदत्सुभ्रु र्दुहितुर्देहशोषणम् । पुरुषादागतं भीरु ! तद्रूपाऽदर्शनादियम् ॥
अङ्गतापं समापन्ना ह्यनङ्गशरपीडिता । स तु देवादिदेवो वै वैकुण्ठादागतः स्वयम्
श्रीवेङ्कटाद्रिशिखरे स्वामिपुष्करिणीतटे । मायावी परमानन्दः श्रिया सह रमापतिः
कामरूपी विहरते भक्ताभीष्टप्रदो हरिः । स तुरङ्गं समारुह्य विरहन्काननान्तरे ॥३६॥
आगत्योपवनं राज्ञि तव कन्यां स दृष्टवान् । रमासमामिमां दृष्ट्वास्वयं कामवशंगतः

स्वसखीं ललितां देवः प्रेषयिष्यति तेऽन्तिकम् ।
रमेव तं समेत्यैषा रमिष्यति सुखं चिरम् ॥ ४१ ॥

एतत्सत्यं मम वचः पश्याद्यैवनृपात्मजे !। पुत्रस्यान्नंप्रयच्छेतितूष्णीमासपुलिन्दिनी
अन्नं दत्त्वापुनर्भूरितस्यैतांविससर्जह । तस्यांविनिर्गतायान्तुपुलिन्दिन्यामनिन्दिता

उत्थाय चाऽङ्गणात्तस्माद्विवेशान्तःपुरं शुभम् ।
यत्र पद्मालया कन्या समास्ते स्वसखीवृता ॥ ४४ ॥
गत्वा पुत्री समीपस्था कन्यां कामातुरां सुताम् ।
पुत्रि ! किं ते करिष्यामि वस्तु किम्वा प्रियं शुभे !॥ ४५ ॥
इति मात्राऽभिपृष्टा सा मन्दमाह मनस्विनी ॥ ४६ ॥

नेत्राभिरामं यल्लोके सतामपि मनःप्रियम् । यद्द्रष्टुकामा ब्रह्माद्या यत्तुसर्वगतं महत्
तेजसामपि तेजस्वि देवानामपि दैवतम् । भक्तैस्सद्भिरिह प्राप्यमभक्तैर्न कदाचन
तस्मिन्नेव मनो मेऽस्य वस्तुनीह प्रवर्तते । तदेवाऽन्विष्यतांमातर्भक्तानांसर्वकामदम्

श्रीवराह उवाच

एतच्छ्रुत्वाऽथ धरणी तामपृच्छत्पुनःसुताम् । तद्भक्तलक्षणम्ब्रूहियैःप्राप्यन्तत्सुलोचने

पद्मालयोवाच

भक्तानां लक्षणं मातः! शृणु गुह्यं समाहिता । शङ्खचक्राङ्कितानित्यंभुजयुग्मेवसुन्धरे
ऊर्ध्वंपुण्ड्रं सान्तरालं तेषामेव विशेषतः । पुण्ड्रानि द्वादश पुनर्धारयन्ति तथाऽपरे
ललाटोदरहृत्कण्ठे जठरे पार्श्वयोरपि । कूर्परयोर्भुजद्वन्द्वे च पृष्ठे च गलपृष्ठके ॥५३
केशवादीनि नामानिद्वादशाङ्गेषुद्वादश । वासुदेवेति तन्मूर्ध्निधारयन्तिनमोऽस्त्विति
तेषान्तुनियमान्वक्ष्ये मातः! शृणु मनोरमान् । वेदपारायणरताःकर्म कुर्वन्तिवैदिकम्
सत्यम्वदन्ति ये देवि नासूयन्तिपरान्क्वचित् । परनिन्दां न कुर्वन्तिपरस्वंनहरन्तिच

न स्मरन्ति न पश्यन्ति न स्पृशन्ति कदाचन ।
परदारान्सुरूपांश्च ये च तान्विद्धि वैष्णवान् ॥ ५७ ॥

सर्वभूतदयावन्तः सर्वभूतहितेरताः । सदा गायन्ति देवेशमेतान्भक्तानवेहि वै ॥ ५८
येन केनचसन्तुष्टाःस्वदारनिरताश्च ये । वीतरागभयक्रोधास्तान्भक्तान्विद्धिवैष्णवान्
एवंविधैर्गुणैर्युक्ताःपञ्चायुधधरा अपि । पित्रा चाऽऽचार्यरूपेणशिष्टेनाऽन्येन वा पुनः
स्वगृह्योक्तविधानेन वह्निमादाय वै बुधः । चक्राद्यायुधमन्त्रेणजुहुयात्षोडशाहुतीः
मूलमन्त्रेण सूक्तेन पौरुषेण ततः परम् । जातवेदः सुमन्त्रेणपश्चादष्टोत्तरं शतम् ॥
हुत्वा महाव्याहृतिभिश्चक्रादींस्तत्रतापयेत् । सद्यान्सुतप्तान्गुरुणामन्त्रवद्धारयेद्बुधः
भुजद्वये शङ्खचक्रे मूर्ध्नि शार्ङ्गशरौ तथा । ललाटे तु गदा धार्या हृदये खड्गमेव च
एवं धार्याणि पञ्चैव विष्णुभक्तैर्मुमुक्षुभिः । अथवा भुजयोश्चक्रशङ्खौचैव सुलक्षणौ
एवंलाञ्छनयुक्ता ये भक्तास्तेवैष्णवाःस्मृताः । तैरेवलभ्यंतद्ब्रह्म सदाचारसमन्वितैः

तस्मिन्नेव मम प्रीतिस्तत्प्राप्तिं वाञ्छते (काङ्क्षते) मनः ।
मातर्विष्णुं विनाऽन्येषु वाञ्छा काचिन्न जायते ॥ ६७ ॥
स्मरामि श्यामलं विष्णुं वदामि हरिमच्युतम् ।
तेनैव मातर्जीवामि तद्योगे चिन्त्यतां विधिः ॥ ६८ ॥

श्रीवराह उवाच

इत्युक्त्वा मातरं दीना विररामाऽम्बुजानना ।

SPS 891.431 M 20 CH
30077

तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास विष्णुः प्रीतः कथम्भवेत् ॥ ६९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे कन्या अगस्त्येशं समर्च्यच । आगताधरणीं द्रष्टुं सहैव वकुलस्रजा
आगतान्ब्राह्मणान्साऽथ पूजयित्वा सुभोजनैः ।
दत्त्वाऽथ दक्षिणाः पूर्णा वस्त्रालङ्कारसंयुताः ॥ ७१ ॥
आशिषो वाचयित्वाऽथ वाञ्छितार्थस्य सिद्धये ।
विसृज्य ब्राह्मणान्सर्वानथाऽपृच्छतस्त्वयोषितः ॥ ७२ ॥
पूजयित्वा ह्यगस्त्येशमागतास्ता मनस्विनीः ॥ ७३ ॥

इति स्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्येधरणीवाराहसम्वादेवकुलमालिकांप्रतिसखीविनिवेदित-पद्मावत्युदन्तविष्णुभक्तलक्षणादिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

धरणीदेव्यैवकुलमालिकानिवेदितश्रीनिवासोदन्तवर्णनम्

धरण्युवाच

कैषा ब्रूत वरा कन्या युष्माभिः सङ्गता कुतः । किमर्थमागताचेह पूज्यैषाप्रतिभातिमे

कन्यका ऊचुः

एषा दिव्याङ्गना देवी त्वयि कार्यार्थमागता । देवालयेसङ्गतेयमस्माभिःशिवसन्निधौ
पृष्टाऽवदच्च भवतीं द्रष्टुमेवाऽऽगतेति वै । शक्या द्रष्टुं राजगृहे मया राज्ञी सुखेन वा॥
एवं पृष्टास्ततो ब्रूमः सहाऽस्माभिश्च गम्यताम् ।
वयं तु धरणीदास्यो गमिष्यामो नृपालयम् ॥ ४ ॥
इत्युक्ताऽस्माभिरायाता त्वत्समीपं वसुन्धरे !।
भवत्या पृच्छयतामेषा किमित्याऽऽगमनं तव ॥ ५ ॥

श्रीवाराह उवाच

इति तासां वचः श्रुत्वा तामपृच्छद्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

धरण्युवाच

कुतस्त्वमागतादेवि! किं वा कार्यंमयातव । ब्रूहिसत्यंकरिष्यामित्वदागमनकारणम्

बकुलमालिकोवाच

वेङ्कटाद्रेः समायाता नाम्ना बकुलमालिका ॥ ८ ॥

स्वामी नारायणोऽस्माकमास्तेश्रीवेङ्कटाचले । कदाचिद्धयमारुह्यहंसशुक्लंमनोजवम्

मृगयार्थं गतो राज्ञो वेङ्कटाद्रेः समीपतः । वनानि विचरन्काले शोभने कुसुमाकरे ॥

पश्यन्मृगान्गजान्सिंहान्गवयाञ्छरभान्रुरून् ।

शुकान्पारावतान्हंसानपक्षिणोऽन्यान्वनान्तरे ॥ ११ ॥

गजराजं तत्र कञ्चिद्यूथपं मदवर्षिणम् । करेणुसहितं तुङ्गमन्वगच्छत्सुरोत्तमः ॥१२॥

वनाद्वनान्तरं गत्वा नृपं शङ्खमुपागमत् । तपस्यन्तं बृहच्छैले प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥

श्रीभूमिसहितं नित्यमर्चयन्तं च भक्तितः । शङ्खनागबिलन्नाम सरः पावनमुत्तमम्

तत्सरस्तीरमासाद्य तुरङ्गादवरुह्य च । राजवेषं समासाद्य तमपृच्छन्नृपोत्तमम् ॥१५॥

क्रियते किं नृपश्रेष्ठ! पादेऽस्मिञ्छेषभूभृतः ॥ १६ ॥

शङ्ख उवाच

अहं हैहयदेशीयःपुत्रः श्वेतस्य भूभृतः । महाविष्णोः प्रीतयेऽत्र कृतवानखिलान्क्रतून्

अनर्शनान्महाविष्णोर्निर्विण्णोऽहं नृपात्मज !।

तदानीमवदद्दिव्या वाणी सर्वार्त्तिनाशिनी ॥ १८ ॥

राजन्नाऽत्र भविष्यामि प्रत्यक्षस्ते वचः शृणु ।

गच्छ नारायणाद्रिं त्वं तपः कुर्विति मां स्फुटम् ॥ १६ ॥

ततो देशमहं त्यक्त्वा तपसाऽऽराधयाम्यहम् ।

अत्र देवं नृपाऽचिन्त्यं प्रतिष्ठाप्य श्रियः पतिम् ॥ २० ॥

अगस्त्यानुग्रहान्नित्यमर्चयामिविधानतः । इतितस्य वचःश्रुत्वासोत्प्रासंप्राहतंविभुम्

च्छ नारायणाद्रिंत्वमस्यपादेकिमास्यते । आरुह्याऽनेनमार्गेणपश्चिमेशिखरेस्थितम्
प्रणम्य विष्वक्सेनं त्वं बालं न्यग्रोधमूलतः ।
स्वामिपुष्करिणीं गत्वा स्नात्वा तीरेऽथ पश्चिमे ॥ २३ ॥
अश्वत्थं तत्र वल्मीकं द्रक्ष्यसे नृपनन्दन !। तयोर्मध्यंसमासाद्य तपः कुर्वित्यचोदयत्
कश्चिच्छ्वेतो वराहोऽस्मिन्वल्मीके चरति ध्रुवम् । सतुपुण्यवतामेवदर्शनंयातिभूपते

श्रीवाराह उवाच

इत्यादिश्य हयारुढो जगाम मृगयाम्विभुः । चरन्वनाद्वनंसुभ्रूः समासाद्यारणींनदीम्
अवरुह्य हयात्तत्र विचचार तटे शुभे । वनान्तादागतो वायुः पद्मकह्लारशीतलः ॥
श्रमापनयनो मन्दं सिषेवे पुरुषोत्तमम् ॥ २७ ॥
तरवः पुष्पवर्षाणि विकिरन्तः सिषेविरे । एवं स विचरन्देवः पुष्पभारानतांस्तरून्
विचिन्वन्राजराजन्तं पुष्पलावीर्ददर्श ह । कन्याः सुवेषा रुचिरा मेघेष्विव शतह्रदाः
तासां मध्यगतां तन्वीं ददर्शाऽतिमनोहराम् ।
लक्ष्मीसमां हेमवर्णां तस्यां सक्तमना अभूत् ॥ ३० ॥
तां पृच्छुराह ताःकन्याःकेयमित्येवपूरुषः । उक्तस्ताभिरियं कन्या वियद्राज्ञोमहाबल
इदं श्रुत्वा वचस्तासां हयमारुह्य वेगवान् ।
आजगामाऽऽशु भगवान्स्वालयं रुचिरं गिरिम् ॥ ३२ ॥
तत्र स्वालयमासाद्य स्वामिपुष्करिणीतटे । मामाहूयाऽवदद्देवो हलावकुलमालिके॥
वियद्राजपुरङ्गत्वाप्रविश्याऽन्तःपुरं सखि । तत्पत्नीं धरणींप्राप्य पृष्ट्वा कुशलमेव च
याचस्वतनयांतस्यारुचिराङ्कमलालयाम् । राज्ञोऽभिमतमाज्ञायशीघ्रमागच्छभामिनि!
इत्थं देवेन चाज्ञप्ता देवित्वद्गृहमागता । यथोचितं कुरुष्वेह राज्ञा मन्त्रियुतेन च ॥
कन्यया च विचार्यैव प्रोच्यतामुत्तरम्वचः ॥ ३७ ॥

श्रीवराह उवाच

थ तस्या वचःश्रुत्वाप्रीता राज्ञी बभूवह । आहूयाऽऽकाशराजंतमुपेत्यकमलालयाम्
न्त्रिमध्येऽवदद्देवीवचनम्वकुलस्रजः । श्रुत्वा प्रीतोऽवदद्राजामन्त्रिणःसपुरोहितान्

आकाशराज उवाच

कन्या त्वयोनिजा दिव्या सुभगा कमलालया । अर्थिता देवदेनेनवेङ्कटाद्रिनिवासिना
पूर्णोमनोरथोमेऽद्य ब्रूत किं सम्मतं तु वः । श्रुत्वा मन्त्रिगणाःसर्वेराज्ञोवचनमुत्तमम्
प्रोचुः सुप्रीतमनसो वियद्राजं महीपतिम् ।
वयं कृतार्था राजेन्द्र ! कुलं सर्वोन्नतम्भवेत् ॥ ४२ ॥
भवत्कन्येयमतुला श्रिया सह रमिष्यति । दीयतां देवदेवाय शार्ङ्गिणे परमात्मने ॥
अयं वसन्तः श्रीमांश्च शुभं शीघ्रं विधीयताम् ॥ ४४ ॥
आहूय धिषणं लग्नं विवाहार्थं विधीयताम् ॥ ४५ ॥
तथाऽस्त्वित्याह्वयामासमुरलोकाद्बृहस्पतिम् । पप्रच्छकन्यावरयोर्विवाहार्थंनरेश्वरः

राजोवाच

कन्याया जन्मनक्षत्रं मृगशीर्षमितिस्मृतम् । देवस्यश्रवणर्क्षन्तुतयोर्योगोविचार्यताम्
श्रुत्वाऽब्रवीत्सधिषणस्तयोरुत्तरफल्गुनी । सम्मतासुखवृद्ध्यर्थंप्रोच्यतेदैवचिन्तकैः
तयोरुत्तरफल्गुन्यां विवाहः क्रियतामिति ।
वैशाखमासे विधिवत्क्रियतामिति सोऽब्रवीत् ॥ ४६ ॥

श्रीवराह उवाच

राजा तु धिषणं तत्र सम्पूज्याऽथ विसृज्य च । देवस्यदूतिकामाहगच्छदेवालयंशुभे
वैशाखे देवदेवाय कल्याणं वःसुव्रते । वैवाहिकविधानं तु कृत्वा चाऽऽगम्यतामिति
ततो देव्याःप्रियकरंशुकं दूतं तया सह । विसृज्य वायुंस्वसुतमिन्द्राद्यानयनेऽसृजत्
आहूय विश्वकर्माणं पुरालङ्कारकर्मणि । नियोजयामास सोऽपिनिर्ममेनिमिषान्तरात्
इन्द्रोऽसृजत्पुष्पवृष्टिं ननृतुश्चाप्सरोगणाः । धनदो धनधान्याद्यैः पूरयामास वेश्मतत्
यमस्तु रोगरहितांश्चकार मनुजान्भुवि । वरुणो रत्नजालानि मौक्तिकादीन्यपूरयत्
एवं सम्पाद्य सर्वाणि ययुर्देवा वृषाचलम् ॥ ५६ ॥

श्रीवराह उवाच

ततः सा हयमारुह्य शुकेन सहिता ययौ । श्रीवेङ्कटाद्रिमासाद्यदेवालयसमीपतः ॥ ५७

अवरुह्य तुरङ्गात्सा सशुकाऽभ्यन्तरं ययौ । दृष्ट्वा देवं रत्नपीठे श्रिया सह सुलोचनम्
प्रणम्य ह्यवदत्प्रीता कृत्यं तत्र कृतं विभो । माङ्गल्यवार्तां वक्तुं वै शुक एव समागतः
वदेति देवेनाऽऽज्ञप्तः शुको नत्वा तमब्रवीत् ।

शुक उवाच

त्वां प्रत्याह सुता भूमेर्मामङ्गीकुरु माधव !॥ ६० ॥
वदामि तव नामानि स्मरामि त्वद्वपुस्सदा । ध्रियन्ते तवचिह्नानिभुजाद्यङ्गे रमापते
त्वद्भक्तानर्चयामीह पञ्चसंस्कारसंयुतान् । त्वत्प्रीतये हि कर्माणि करोमि मधुसूदन
एवं सदैवाचारन्त्याः पित्रोरनुमते मम । कुरु प्रसादं देवेश मामङ्गीकुरु माधव ॥ ६३
इति विज्ञापयामास कमलस्था धरासुता । शुकस्य वचनं श्रुत्वासुप्रियंत्वात्मनोहरिः

श्रीभगवानुवाच

कर्तुं कल्याणमुद्वाहमागमिष्यामि चाऽमरैः । शुकगच्छवदैवंतामित्थंदेवोऽब्रवीदिति
शुकः श्रुत्वा देववाक्यमादाय वनमालिकाम् । देवदत्तांययौ शीघ्रं वियद्राजसुतां प्रति
तुलसीमालिकांदत्त्वामृगनाभिसुगन्धिनीम् । प्रणम्यदेवीमवदच्छुकोदेववचः शुभम्
श्रुत्वा तन्मालिकांगृह्यभूमिजाशिरसादधौ । चक्रेऽलङ्कारमुचितंदेवागमनकाङ्क्षिणी
वियद्राजोऽपि सानन्दमिन्दुमाहूय सादरम् । अन्नंविधीयतांराजन्विविधंरससंयुतम्
विष्णोर्नैवेद्ययोग्यं यत्परमान्नं विधीयताम् ।
देवानाञ्च ऋषीणाञ्च नराणामपि सम्मतम् ॥ ७० ॥
चतुर्विधं सुगन्धाढ्यममृतांशैः सुधाकर !।
एवं कृत्वासन्विधानं प्रतीक्ष्याऽऽगमनं विभोः ॥ ७१ ॥
सभायां मन्त्रिसहितःसमास्तप्रीतमानसः । पुत्रीमलङ्कृतां कृत्वा धरणीसहितोनृपः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकादशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे धरणीदेव्यैवकुमालिका-
निवेदितश्रीनिवासोदन्तकमलालयाकल्याणविध्यादि
वृत्तान्तवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः

अष्टमोऽध्यायः

श्रीनिवासस्यलक्ष्म्यादिकृतपरिणयालङ्कारवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

ततोदेवाधिदेवोऽपिलक्ष्मीमाहूयभामिनीम् । किंकार्यंवदकल्याणिविवाहार्थंसुलोचने
आज्ञापयस्व स्वसखी रमे कार्यं कुरु प्रियम् ।
श्रीस्तु कृष्णवचः श्रुत्वा सखीराहूय चोदयत् ॥ २ ॥
श्रियाऽऽज्ञप्ताततःप्रीतिःसुगन्धंतैलमाददौ । श्रुतिःक्षौमंसमादायतस्थौदेवस्यसन्निधौ
भूषणानि समादाय स्मृतिरप्याययौ मुदा । धृतिरादर्शमाधत्त शान्तिर्मृगमदं दधौ
यक्षकर्दममादाय ह्रीः स्थिता पुरतो हरेः । कीर्तिः कनकपट्टं च सरत्नं मुकुटं दधौ
छत्रं दधौ तदेन्द्राणी चामरं तु सरस्वती । द्वितीयं चामरं गौरी व्यजनेविजयाजये
आगतास्ताः समालोक्यश्रीरुत्थायाऽथसत्वरा । सुगन्धंतैलमादायदेवमभ्यज्यशीर्षतः
उद्वर्तितं गन्धचूर्णैर्देवाङ्गं परिमृज्य च ।
आनीतान्करिभिस्तोयकलशान्काञ्चनाञ्छतम् ॥ ८ ॥
वियद्गङ्गादितीर्थेभ्यः कर्पूरादिसुवासितान् ।
एकमेकं समादाय त्वभ्यषिञ्चद्रमा हरिम् ॥ ९ ॥
सन्धूप्य केशान्धूपेनतानाश्यामान्बबन्ध च । सुगन्धेनानुलिप्याङ्गंस्वर्णवर्णेनतद्विभोः
पीतकौशेयकंबद्ध्वाकट्यांकाञ्चीसमन्वितम् । मुकुटादिविभूषाभिर्भूषयामास चेन्दिरा
अङ्गुलीयकरत्नानि सर्वास्वेवाऽङ्गुलीषु च । आदर्शं दर्शयामास धृतिर्देवस्य सन्निधौ
दृष्ट्वाऽऽदर्शंदेवदेवोह्यूर्ध्वपुण्ड्रं स्वयंदधौ । आरुह्यगरुडंपश्चात्स्वयं लक्ष्मीसमन्वितः
ब्रह्मेशवज्रिवरुणयमयक्षेशसेवितः । वसिष्ठाद्यैर्मुनीन्द्रैश्च सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥ १४
भक्तैर्भागवतैर्युक्तो नारायणपुरीं ययौ । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः ॥१५
देवदुन्दुभयो नेदुस्तदा देवस्य सन्निधौ । जपन्तः स्वस्तिसूक्तानिमुनयस्तंसमन्वयुः

देवो देवगणैर्युक्तो विष्वक्सेनादिपार्षदैः ।
सखीभिस्स्यन्दनस्थाभिर्वकुलाद्याभिरन्वितः ।
आकाशराजस्य पुरमाससाद स्वलङ्कृतम् ॥ १७ ॥
देवमागतमालोक्य कन्यामैरावतस्थिताम् । पुरीं प्रदक्षिणीकृत्य गोपुरद्वारमागताम्
आलोक्याऽऽकाशराजोऽपिसमानीयवधूवरौ । बन्धुभिःसहितस्तस्थौदेवमालोक्यकेशवम्
विष्णोर्मालां स्वकण्ठस्थां हस्तेनाऽऽदाय सस्मितः ।
कमलायाः स्कन्धदेशे मुमोच सुमनश्चिताम् ॥ २० ॥
आदाय मल्लिकामालां साऽस्य कण्ठेसमर्पयत् । एवं त्रिवारं तौकृत्वावाहनादवरुह्यच
स्थित्वा पीठे क्षणंपश्चाद्गृहं विविशतुः शुभम् । ब्रह्मादिदेवयूथैश्चसहितौभूमिजाहरी
माङ्गल्यसूत्रबन्धादि साङ्कुरार्पणमब्जजः । वैवाहिकं कारयित्वा लाजहोमान्तमेव च
व्रतादेशं समाज्ञाय सहितौ कमलाहरी । चतुर्थेदिवसे सर्वं समापय्य चतुर्मुखः ॥२४
अनुज्ञाप्य वियद्राजमारोप्य गरुडे हरिम् । देवीभ्यां सहितं देवं देवैर्गन्तुं प्रचक्रमे
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैः सम्प्राप्य वृषभाचलम् । तुष्टुवुर्देवदेवेशं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥
शुकादयो मुनिगणास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ।
स्तूयमानोऽथ देवोऽपि विवेश मणिमण्डपम् ॥ २७ ॥
रमाधरणिजाभ्यां च तत्र सिंहासनं ययौ ॥ २८ ॥
आकाशराजोऽपि तथा महेन्द्रादिसुरैः सह ।
पुत्रीविष्ण्वोः प्रियार्थं तु प्राभृतं कर्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥
सौवर्णेषु कटाहेषु तण्डुलाञ्छालिसम्भवान् । मुद्गपात्राण्यनेकानि घृतकुम्भशतानि च
पयोघटसहस्राणि दधिभाण्डान्यनेकशः । दिव्यानि चूतकदलीनारिकेलफलानि च
धात्रीफलानि कूष्माण्डराजरम्भाफलानि च ।
पनसान्मातुलुङ्गांश्च शर्करापूरितान्घटान् ॥ ३२ ॥
सुवर्णमणिमुक्ताश्च क्षौमकोट्यम्बराणि च ।
दासीदाससहस्राणि कोटिशो गास्तथैव च ॥ ३३ ॥

हंसेन्दुशुक्लवर्णानां हयानामयुतं ददौ ।
तुङ्गानां नित्यमत्तानां गजानामधिकं शतात् ॥ ३४ ॥
अन्तःपुरचरा नारीर्नृत्तगीतविशारदाः । ददौ चतुःसहस्राणि श्रीनिवासाय विष्णवे
दत्त्वा चैतानि सर्वाणि तस्थौ देवपुरो विभुः ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा देवोऽपि तत्सर्वं देवीभ्यां सहितो हरिः ॥ ३६ ॥
सुप्रीतः प्राह राजानं श्वशुरं वेङ्कटेश्वरः । वरं वृणीष्व हे राजन्गुरो मत्तो यदीच्छसि
इति श्रीशवचः श्रुत्वा वियद्राजोऽवदद्विभुम् ।
त्वत्सेवैवेह देवैवं भूयादव्यभिचारिणी ॥ ३८ ॥
मनस्त्वत्पादकमले त्वयि भक्तिर्ममाऽस्तु वै ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वया यदुक्तं राजेन्द्र ! सर्वमेतद्भविष्यति । इतिदत्त्वावरंतस्मैसम्मान्यैवयथोचितम्
ब्रह्मेशादिसुरान्सर्वान्समभ्यर्च्य यथोचितम् । स्वर्लोकगमनायैवमनुमेने मुदा हरिः
गतेषु तेषु सर्वेषु श्रिया भूमिजया युतः ॥ ४१ ॥
विहरन्स यथापूर्वं स्वामिपुष्करिणीतटे ।
आस्ते दिव्यालये देवोऽप्यर्च्यमानो गुहेन वै ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये धरणीवराहसम्वादे ब्रह्मादिभिः साकं श्रीनिवासस्यवियद्राजपुरगमनकमलालयापरिणयादिवर्णनंनामा अष्टमोऽध्यायः ॥ ८

नवमोऽध्यायः

वसुनामकनिषादवृत्तान्तेसुतहननोद्युक्तंतम्प्रतिभगवदुक्तिवर्णनम्

धरण्युवाच

कलौ युगे भूमिधर ! केनत्वंद्रक्ष्यसे प्रिय !। विमानं केन ते देव कार्यंतेऽस्मिन्महीध्रे

श्रीनिवासोऽपि केनैव द्रक्ष्यते सुभगाकृतिः ।
एतद् ब्रूहि मम प्रीत्या श्रोतुं कौतूहलं विभो !॥ २ ॥

श्रीवराह उवाच

वक्ष्यामि शृणु हे देवि ! भविष्यद्यद्वदामि ते ।
अस्मिन्महीध्रे पुण्ये निषादो वसुनामकः ॥ ३ ॥

श्यामाकवनपालोऽभूद्भक्तिमान्पुरुषोत्तमे । श्यामाकतण्डुलान्पक्वामधुना परिषिच्य च
निवेद्य देवदेवाय श्रीभूमिसहिताय च । एवं भक्तिमतस्तस्य भार्या चित्रवती शुभा
असूत तनयं बाला वीरनामानमुत्तमम् । वसुः पुत्रेण सहितो भार्यया पतिभक्तया

कस्मिंश्चिद्दिवसे पुत्रं श्यामाकं पालयेति च ।
विसृज्य पत्न्या सहितो मध्वन्वेषणतत्परः ॥ ७ ॥

गतो वनान्तरंशीघ्रं मधुच्छत्रदिदृक्षया । बालःश्यामाकपक्वानिगृहीत्वाऽग्नौनिधायच
पिष्ट्वा निवेदयामास वृक्षमूले श्रियः पतेः । नैवेद्यं भक्षयित्वैव वीरस्त्वास सुखेन वै
तदन्तरेवसुश्चापि मध्वादाय समागतः । श्यामाकान्भक्षितान्दृष्ट्वासन्तर्ज्यसुतमात्मनः

खड्गमादाय तं हन्तुं त्वरया हस्तमुद्दधौ ॥ ११ ॥
तद्वृक्षस्थस्तदा विष्णुः खड्गं जग्राह पाणिना ।
खड्गो गृहीतः केनेति पश्यन्वृक्षं ददर्श सः ॥ १२ ॥

शङ्खचक्रगदापाणि वृक्षारूढार्धविग्रहम् । मुक्त्वा वसुश्च तं खड्गं प्रणम्योवाच केशवम्

किमिदं देवदेवेश ! चेष्टितं क्रियते त्वया ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच

वसोश्शृणुवचोमेत्वंपुत्रस्तेभक्तिमान्मयि । त्वत्तोऽपिमेप्रियतमस्तस्मात्प्रत्यक्षमागतः
अस्य सर्वत्रतिष्ठामि तव स्वामिसरस्तटे । इति देववचः श्रुत्वा प्रीतिमानभवद्वसुः
एतस्मिन्नेव काले तु पाण्ड्यदेशात्समागतः ।
बाल्यात्प्रभृति शूद्रोऽपि विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥ १७ ॥
नारायणपुरीं प्राप्य श्रीवराहम्प्रणम्य च । तत्र श्रुत्वाश्रीनिवासंवेङ्कटाद्रिनिवासिनम्
स्वयम्भुवं देवदेवसेवितं प्रययौ ततः । सुवर्णमुखरीं प्राप्य स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तटे
कमलाख्ये सरसि च स्नात्वा पुण्यप्रदायिनि । तत्तीरवासिनंदेवंकृष्णंरामेणसंयुतम्
नमस्कृत्य ततः प्रायाद्वनंगजघटायुतम् । शनैः सम्प्राप्य शेषाद्रिनिर्झरं सन्ददर्श ह
तत्समीपं समासाद्य कपिलापूजितं शिवम् ।
तत्पुरश्चक्रतीर्थं तदगाधम्पापनाशनम् ॥ २२ ॥
तत्र स्नात्वा ततोऽगच्छद्वेङ्कटाद्रिं शनैःशनैः । आरोढुं गच्छतामार्गेयुक्तोवैखानसेनच
रङ्गदासस्त्वारुरोह बालो द्वादशवार्षिकः ।
स्वामिपुष्करिणीम्प्राप्य स्नात्वा भक्तिसमन्वितः ॥ २४ ॥
वैखानसेन मुनिना गोपीनाथेन पूजितम् । वनमध्ये तरोर्मूले स्वामिपुष्करिणीतटे ॥
तिष्ठन्तंपुण्डरीकाक्षंश्रीभूमिसहितंहरिम् । आकाशस्थं सन्ददर्श पीननीलाकृतिशुभम्
पार्श्वस्थशङ्खचक्राभ्यां गदासिभ्यां निषेवितम् ।
पक्षौ विस्तार्य चाऽऽकाशे देवमूर्ध्नि वितानवत् ॥ २७ ॥
स्थितश्च गरुडेशानम्पश्चाच्छार्ङ्गं शरन्तथा ॥ २८ ॥
एवंदृष्ट्वाश्रीनिवासंविस्मितोरङ्गदासकः । अस्यदेवस्यचारामं करिष्यामीत्यचिन्तयत्
निश्चित्य मनसा सर्वं तरुमूलेऽवसत्सुधीः । कृत्वावैखानसाद्विष्णोर्नैवेद्यश्च दिनेदिने
शनैश्छित्त्वा वनं घोरं वृक्षांश्चिच्छेद पार्श्वगान् ।
आस्थानचिञ्चां देवस्य रमायाश्चम्पकं तरुम् ॥ ३१ ॥
देवाज्ञप्तो वर्जयित्वा तावुभौ देवसेवितौ । देवस्यपरितोभूमौशिलाकुड्यन्तदाकरोत्

प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः। प्रत्याहारैर्द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तिता
भवेदीश्वरसङ्गत्यै ध्यानं द्वादशधारणम् । ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते
समाधेःपरतोज्योतिरनन्तंस्वप्रकाशकम् । तस्मिन्दृष्टेक्रियाकाण्डंयातायातंनिवर्तते
पवने व्योमसम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् । घण्टादीनाम्प्रवाद्यानां ततःसिद्धिरदूरतः
प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः

हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः ।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥ ९९ ॥
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत् ।
युक्तं युक्तञ्च बध्नीयादित्थं सिध्यति योगवित् ॥ १०० ॥

इन्द्रियाणां हि चरतांविषयेषु यदृच्छया । यत्प्रत्याहरणंयुक्त्याप्रत्याहारःसउच्यते
प्रत्याहरति यः स्वानिकूर्मोङ्गानीवसर्वतः । प्रत्याहृतिविधानेनसस्याद्विगतकल्मषः
नाभिदेशेवसेद्भानुस्तालुदेशे च चन्द्रमाः । वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः
करणन्तच्चकर्तव्यंयेन सा प्राप्यते सुधा । ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशी

करणं विपरीताख्यमभ्यासादेव जायते ॥ १०४ ॥

काकचञ्चुवदास्येन शीतलंशीतलंपिबेत् । प्राणं प्राणविधानज्ञो योगीभवतिनिर्जरः
रसनां तालुविवरे निधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् । धयन्निर्जरताङ्गच्छेदाषण्मासान्न संशयः

ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।
मासार्धेन न सन्देहो मृत्युञ्जयति योगवित् ॥ १०७ ॥

सम्पीड्य रसनाग्रेणराजदन्तबिलं महत् । ध्यात्वासुधामयींदेवींषण्मासेनकविर्भवेत्
अमृतापूर्णदेहस्ययोगिनोद्वित्रिवत्सरात् । ऊर्ध्वं प्रवर्ततेरेतोह्यणिमादिगुणोदयम्
नित्यं सोमकलापूर्णंशरीरं यस्ययोगिनः । तक्षकेणापिदष्टस्यविषं तस्य न सर्पति
आसनेन समायुक्तःप्राणायामेन संयुतः । प्रत्याहारेण सम्पन्नोधारणामथचाभ्यसेत्
हृदये पञ्चभूतानां धारणं यत्पृथक्पृथक् । मनसोनिश्चलत्वेन धारणासाभिधीयते

हरितालनिभां भूमिं सलकारां सवेधसम् ।

चतुष्कोणां हृदि ध्यायेदेषास्यात् क्षितिधारणा ॥ ११३ ॥
कण्ठेऽम्बुतत्त्वमर्धेन्दु निभं विष्णुसमन्वितम् ।
वकारबीजं कुन्दाभं ध्यायन्नम्बुजयेदिति ॥ ११४ ॥
तालुस्थमिन्द्रगोपाभंत्रिकोणंरेफसंयुतम् । रुद्रेणाधिष्ठितंतेजोध्यात्वावह्निजयेदिति
वायुस्तत्त्वंभ्रु वोर्मध्ये वृत्तमञ्जनसन्निभम् । यम्बीजमीशदैवत्यंध्यायन्वायुं जयेदिति
आकाशञ्चमरीचिवारिसदृशं यद्ब्रह्मरन्ध्रस्थितं,
यन्नाथेन सदाशिवेन सहितं शान्तं हकाराक्षरम् ।
प्राणं तत्र विनीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वितं धारये-
देषा मोक्षकपाटपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ॥ ११७
स्तम्भनीप्लावनी चैव दहिनी भ्रामणीतथा । शमनीचभवन्त्येताभूतानांपञ्चधारणाः
ध्यैचिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्तातत्त्वे सुनिश्चला ।
एतद्ध्यानमिह प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं द्विधा ॥ ११६ ॥
सगुणंवर्णभेदेन निर्गुणंकेवलस्मतम् । समन्त्रं सगुणं विद्धि निर्गुणं मन्त्रवर्जितम्
अन्तश्चेतो बहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् । समत्वञ्चशरीरस्यध्यानमुद्रातिसिद्धिदा
नाश्वमेधेन तत्पुण्यं नच वै राजसूयतः । यत्पुण्यमेकध्यानेन लभेद्योगी स्थिरासनः
शब्दादीनाञ्च तन्मात्रा यावत्कर्णादिषु स्थिता ।
तावदेव स्मृतं ध्यानं स्यात्समाधिरतःपरम् ॥ १२३ ॥
धारणा पञ्चनाडीका ध्यानं स्यात्षष्टिनाडिकम् ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिरिह भण्यते ॥ १२४ ॥
जलसैन्धवयोः साम्यं यथा भवति योगतः । तथात्ममनसोरैक्यंसमाधिरिहभण्यते
यदासंक्षीयते प्राणो मानसञ्च प्रलीयते । तदा समरसत्वं यत्ससमाधिरिहोच्यते
यत्समत्वंद्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः । स नष्टसर्वसङ्कल्पः समाधिरभिधीयते ॥
नात्मानंनपरंवेत्ति न शीतं नोष्ममेव च । समाधियुक्तो योगीन्द्रोनसुखंन सुखेतरत्
काल्यते नैवकालेन लिप्यते नैव कर्मणा । भिद्यते न चशस्त्रास्त्रैर्योगीयुक्तःसमाधिना

युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टोहि कर्मसु । युक्तनिद्रावबोधश्च योगीतत्त्वं प्रपश्यति ॥
तत्त्वंविज्ञानमानन्दम्ब्रह्मब्रह्मविदोविदुः । हेतुदृष्टान्तरहितं वाङ्मनोभ्यामगोचरम् ॥
तत्र योगी निरालम्बे निरातङ्के निरामये। षडङ्गयोगविधिना परेब्रह्मणि लीयते ॥
यथा घृते घृतं क्षिप्तं घृतमेव हि तद्भवेत् । क्षीरेक्षीरं तथा योगी तत्रतन्मयतां व्रजेत्
अनसं जातपानीयैर्विदध्यादङ्गमर्दनम् । त्यजेत्कदुष्मं लवणं क्षीरभोजी सदा भवेत्
ब्रह्मचारी जितक्रोधो जितलोभो विमत्सरः ।
अब्दमित्थं सदाभ्यासात्स योगीति निगद्यते ॥ १३५ ॥
महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम् । मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीयोगसिद्धिभाक्
शोधनंनाडीजालस्य वटनश्चन्द्रसूर्ययोः । रसानां शोषणंसम्यङ्महामुद्राभिधीयते
योनिं वामाङ्घ्रिणाऽऽपीड्य कृत्वा वक्षस्थले हनुम् ।
हस्ताभ्यां प्रसृतम्पादं धारयेद्दक्षिणं चिरम् ॥ १३८ ॥
प्राणेन कुक्षिमापूर्य चिरं संरेचयेच्छनैः । एषाप्रोक्ता महामुद्रा महापौघविनाशिनी
चन्द्राङ्गे तु समभ्यस्य सूर्याङ्गे पुनरभ्यसेत् ।
यावत्तुल्या भवेत्सङ्ख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥ १४० ॥
नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाःसर्वेऽपिनीरसाः । अपिघोरंविषम्पीतम्पीयूषमिवजीर्यति
क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः । तस्यदोषाःक्षयंयान्तिमहामुद्राञ्चयोऽभ्यसेत्
कपालकुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा । भ्रुवोरन्तर्गताद्दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ ४३
न पीड्यते शरीघेण न च लिप्येत कर्मणा ।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥ १४४ ॥
चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खेगता । तेनैषा खेचरीनाम मुद्रासिद्धैर्निषेविता
यावद्बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ।
यावद्द बद्धा नभोमुद्रा तावद्द बिन्दुर्नगच्छति ॥ १४६ ॥
उड्डीनंकुरुतेयस्वोदहोरात्रं महाखगः । उड्डीयानन्ततः प्रोक्तं तत्र बन्धो विधीयते ॥
जठरेपश्चिमं तानंनाभेरूर्ध्वञ्चधारयेत् । उड्डीयानो ह्ययम्बन्धो मृत्योरपिभयं त्यजेत्

वध्नातिहिशिराजालमधोगामिनभोजलम् । एषजालन्धरोबन्धःकण्ठेदुःखौघनाशनः
जालन्धरे कृतेबन्धे कण्ठसङ्कोचलक्षणे । न पीयूषंपतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ॥
पार्ष्णिभागेन सम्पीड्ययोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् । अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलबन्धोविधीयते
अपानप्राणयोरैक्ये क्षयो मूत्रपुरीषयोः । युवाभवतिवृद्धोऽपि सततम्मूलबन्धनात्
प्राणापानवशो जीव ऊर्ध्वाधः परिधावति ।
वामदक्षिणमार्गेण चञ्चलो न स्थितिं लभेत् ॥ १५३ ॥
गुणबद्धोयथापक्षी गतोप्याकृष्यतेपुनः । गुणैर्बद्धस्तथाजीवः प्राणायामेन कृष्यते
अपानः कर्षति प्राणम्प्राणोऽपानञ्च कर्षति ।
ऊर्ध्वाधःसंस्थितावेतौ संयोजयति योगवित् ॥ १५५ ॥
हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः । हंसहंसेत्यतोमन्त्रंजीवोजपति सर्वदा
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येक विंशतिः ।
एतत्सङ्ख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ १५७ ॥
अजपा नामगायत्री योगिनां मोक्षदायिनी । अस्याः सङ्कल्पमात्रेणनरःपापैःप्रमुच्यते
अन्तराया भवन्तीह योगिनोयोगहानिदाः । श्रूयतेदूरगा वार्ता दूरस्थं दृश्यते पुरः
योजनानां शतं यातुं शक्तिः स्यान्निमिषार्धतः ।
अचिन्तितानि शास्त्राणि कण्ठपाठी भवन्ति हि ॥ १६० ॥
धारणाशक्तिरत्युग्रा महाभारोलघुर्भवेत् । क्षणंकृशःक्षणंस्थूलः क्षणमल्पःक्षणंमहान्
परकायं प्रविशति तिरश्चां वेत्ति भाषितम् ।
दिव्यगन्धं तनौ धत्ते दिव्यां वाणीं प्रवक्ति च ॥ १६२ ॥
प्रार्थ्यते दिव्यकन्याभिर्दिव्यं धारयते वपुः ।
इत्यादयोऽन्तरायाः स्युर्योगसंसिद्धिसूचकाः ॥ १६३ ॥
यद्येभिरन्तरायैर्नक्षिप्यतेऽस्येहमानसम् । तदग्रे तत्समाप्नोति पदम्ब्रह्मादिदुर्लभम्
यत्प्राप्य न निवर्तेत यत्प्राप्यन च शोचति । तल्लभ्यते षडङ्गेन योगेन कलशोद्भव
एकेन जन्मनायोगःकथमित्थम्प्रसिद्ध्यति । ऋतेचयोगसंसिद्धेःकथंमुक्तिरिहाप्यते

उभे एव हि निर्वाणवर्त्मनी किल कुम्भज !।
किम्वा काश्यां तनुत्यागः किम्वा योगोऽयमीदृशः ॥ १६७ ॥
चञ्चलेन्द्रियवृत्तित्वात्कलिकल्मषजृम्भणात् ।
अल्पायुषां तथा नृणां क्वेह योगमहोदयः ॥ १६८ ॥

अतएव हि जन्तूनां महोदयपदप्रदः । सदैव सदयावार्धिःकाश्यां विश्वेश्वरःस्थितः
काश्यांसुखेनकैवल्यं यथालभ्येतजन्तुभिः । योगयुक्तयाद्युपायैश्चनतथान्यत्रकुत्रचित्
काश्यांस्वदेहसंयोगः सम्यग्योग उदाहृतः । मुच्यतेनेह योगेन क्षिप्रमन्येन केनचित्
विश्वेश्वरोविशालाक्षीद्युनदीकालभैरवः । श्रीमान् ढुण्ढिर्दण्डपाणिःषडङ्गोयोग एषवै
एतत्षडङ्गं यो योगं नित्यंकाश्यां निषेवते । सम्प्राप्य योगनिद्रांसदीर्घाममृतमश्नुते
ॐकारः कृत्तिवासाश्चकेदारश्च त्रिविष्टपः । वीरेश्वरोऽथविश्वेशः षडङ्गो यमिहापरः
पादोदकासिसम्भेदज्ञानोदमणिकर्णिकाः । षडङ्गोऽयम्महायोगो ब्रह्मधर्महृदावपि
षडङ्गसेवनादस्माद्वाराणस्यां नरोत्तम !। न जातु जायते जन्तुर्जननीजठरे पुनः
गङ्गास्नानं महामुद्रामहापातकनाशिनी । एतन्मुद्राकृताभ्यासोऽप्यमृतत्वमवाप्नुयात्
काशीवीथिषु सञ्चारो मुद्रा भवति खेचरी । खेचरो जायते नूनं खेचर्यामुद्रयानया
उड्डीयसर्वतो देशाद्यानं वाराणसीम्प्रति । उड्डीयानो महावन्ध एष मुक्त्यै प्रकल्पते
जलस्य धारणंमूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः । एष जालन्धरो वन्धः समस्तसुरदुर्लभः
वृतोविघ्नशतेनापियन्न काशीं त्यजेत्सुधीः । मूलवन्धःस्मृतोह्येषदुःखमूलनिकृन्तनः
इतियोगः समाख्यातो मयातेद्विविधो मुने !। सषडङ्गः समुद्रश्च मुक्तयेशम्भुभाषितः

यावन्नेन्द्रियवैक्लव्यं यावद्व्याधिर्न वाधते ।
यावत्कालविलम्बोऽस्ति तावद्योगरतो भवेत् ॥ १८३ ॥

उभयोर्योगयोर्मध्येकाशीयोगोऽयमुत्तमः । काशीयोगंसमभ्यस्यप्राप्नुयाद्योगमुत्तमम्

आधिव्याधिसहायिन्या जरया मृत्युलिङ्गया ।
कालं निकटतो ज्ञात्वा काशीनाथं समाश्रयेत् ॥ १८५ ॥
काशीनाथं समाश्रित्य कुतः कालभयं नृणाम् ।

क्रुद्धोऽपि जीवहृत्कालस्तच्च काश्यां सुमङ्गलम् ॥ १८६ ॥
आतिथ्येनेहसि यथा प्रतीक्षेताऽतिथिं कृती ।
काश्यां कालं तथा यान्तं भाग्यवान्सम्प्रतीक्षते ॥ १८७ ॥
कलिः कालः कृतंकर्मत्रिकण्टकमितीरितम् । एतत्त्रयं न प्रभवेदानन्दवनवासिनाम्
अन्यत्राऽतर्कितः कालः कलयिष्यत्यसंशयम् ।
कालादभयमिच्छेच्चेत्ततः काशीं समाश्रयेत् ॥ १८६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे योगाख्यानंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कालवञ्चनोपायवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

कथंनिकटतःकालो ज्ञायतेहरनन्दन !। तानि चिह्नानि कतिचिद्ब्रूहि मे परिपृच्छतः

कुमार उवाच

वदामिकालचिह्नानिजायन्ते यानिदेहिनाम् । मृत्यौनिकटमापन्नेमुने! तानि निशामय
याम्यनासापुटेयस्यवायुर्वाति दिवानिशम् । अखण्डमेवतस्यायुःक्षयत्यब्दत्रयेणहि
द्व्यहोरात्रं त्र्यहोरात्रं रविर्वहति सन्ततम् । अब्दमेकञ्च तस्येह जीवनावधिरुच्यते
वहेन्नासापुटयुगे दशाहानि निरन्तरम् । वातश्चेत्सहसंक्रान्तिस्तया जीवेद्दिनत्रयम्
नासावर्त्मद्वयंहित्वामातरिश्वामुखाद्वहेत् । शंसेद्दिनद्वयादर्वाक् प्रयाणंतस्यचाध्वनि
अकस्मादेवयत्कालेमृत्युःसन्निहितोभवेत् । चिन्तनीयःप्रयत्नेनसकालोमृत्युभीरुणा
सूर्येसप्तमराशिस्थेजन्मर्क्षस्थेनिशाकरे । पौष्णःसकालोद्रष्टव्योयदा याम्ये रविर्वहेत्
अकस्माद्वीक्षतेयस्तुपुरुषंकृष्णपिङ्गलम् । तस्मिन्नेव क्षणेऽरूपं स जीवेद्वत्सरद्वयम्

यस्यबीजम्मलंमूत्रं क्षुतम्मूत्रं मलं तु वा । इहैकदा पतेद्यस्य अब्दन्तस्यायुरिष्यते
इन्द्रनीलनिभं व्योम्नि नागवृन्दं यईक्षते । इतस्ततः प्रसृमरं षण्मासं न सजीवति
व्यभ्रेऽह्नि वारिपूर्णास्यः पृष्ठीकृत्य दिवाकरम् ।
फूत्कृत्याशिवन्द्रचापं न पश्येत्षण्मासजीवितः ॥ १२ ॥
अरुन्धतींध्रुवञ्चैव विष्णोस्त्रीणिपदानिच । आसन्नमृत्युर्नोपश्येच्चतुर्थं मातृमण्डलम्
अरुन्धतीभवेज्जिह्वाध्रुवोनासाग्रमुच्यते । विष्णोःपदानि भ्रूमध्येनेत्रयोर्मातृमण्डलम्
वेत्ति नीलादिवर्णस्य कट्वम्लादिरसस्य हि ।
अकस्मादन्यथाभावं षण्मासेन समृत्युभाक् ॥ १५ ॥
षण्मासमृत्योर्मर्त्यस्य कण्ठोष्ठरसनारदाः ।
शुष्यन्ति सततं तद्वद्विच्छायास्तालुपञ्चमाः ॥ १६ ॥
रेतःकरजनेत्रान्तानीलिमानम्भजन्ति चेत् । तर्हिकीनाशनगरीं षष्ठे मासि व्रजेन्नरः
सम्प्रवृत्तेनिधुवने मध्येऽन्तेक्षौति चेन्नरः । निश्चितं पञ्चमेमासि धर्मराजातिथिर्भवेत्
द्रुतमारुह्य सरटस्त्रिवर्णो यस्य मस्तके । प्रयातियातितस्यायुः षण्मासेन परिक्षयम्
सुस्नातस्याऽपि यस्याशु हृदयम्परिशुष्यति ।
चरणौ च करौ वापि त्रिमासं तस्य जीवितम् ॥ २० ॥
प्रतिबिम्बम्भवेद्यस्य पदंखण्डपदाकृति । पांसौ वा कर्दमेवापिपञ्चमासान्सजीवति
छायाप्रकम्पते यस्य देहबन्धेऽपि निश्चले । कृतान्तदूता बध्नन्ति चतुर्थेमासितंनरम्
निजस्य प्रतिबिम्बस्यनीराज्यमुकुरादिषु । उत्तमाङ्गं न यःपश्येत्समासेनविनश्यति
मतिर्भ्रश्येत्स्खलेद्वाणी धनुरैन्द्रं निरीक्षते । रात्रौचन्द्रद्वयञ्चापिदिवाद्वौचदिवाकरौ
दिवा च तारकाचक्रं रात्रौव्योमवितारकम् । युगपच्चचतुर्दिक्षुशाक्रंकोदण्डमण्डलम्
भूरुहे भूधराग्रे चगन्धर्वनगरालयम् । दिवापिशाचनृत्यञ्च एते पञ्चत्वहेतवः ॥ २६॥
सर्वेष्वेतेषु चिह्नेषु यद्येकमपि वीक्षते । तदामासावधि मृत्युः प्रतीक्षेत नचाधिकम्
करावरुद्धश्रवणःशृणोति न यदा ध्वनिम् ।
स्थूलः कृशः कृशः स्थूलस्तदा मासान्निवर्तते ॥ २८ ॥

यः पश्येदात्मनश्छायां दक्षिणाशासमाश्रिताम् ।
दिनानि पञ्च जीवित्वा पञ्चत्वमुपयाति सः ॥ २६ ॥
प्रोह्यते भक्ष्यते वापि पिशाचासुरवायसैः । भूतैः प्रेतैः श्वभिर्गृध्रैर्गामायुखरसूकरैः
रासभैः करभैः कीशैः श्येनैरश्वतरैर्वकैः । स्वप्ने स जीवितंत्यक्त्वावर्षान्तेयममीक्षते
गन्धपुष्पांशुकैः शोणैः स्वां तनुं भूषितां नरः ।
यः पश्येत्स्वप्नसमये सोऽष्टौ मासाननित्यहो ॥ ३२ ॥
पांसुराशिञ्चवल्मीकंयूपदण्डमथापि वा । योऽधिरोहतिवैस्वप्नेसषष्ठेमासिनश्यति
रासभारूढमात्मानं तैलाभ्यक्तञ्च मुण्डितम् ।
नीयमानं यमाशां यः स्वप्ने पश्येत्स्वपूर्वजान् ॥ ३४ ॥
स्वमौलौ स्वतनौ वापि यः पश्येत्स्वप्नगो नरः ।
तृणानि शुष्ककाष्ठानि षष्ठे मासि न तिष्ठति ॥ ३५ ॥
लोहदण्डधरं कृष्णं पुरुषं कृष्णवाससम् ।
स्वयं योऽग्रे स्थितम्पश्येत्स त्रीन् मासान्न लङ्घयेत् ॥ ३६ ॥
काली कुमारीयं स्वप्नेवध्नीयाद्बाहुपाशकैः । समासेनसमीक्षेतनगरींशमनोषिताम्
नरोयोवानरारूढोयायात्प्राचीं दिशंस्वपन् । दिनैःसपञ्चभिरेवपश्येत्संयमिनीम्पुरीम्
कृपणोऽपि वदान्यः स्याद्वदान्यः कृपणो यदि ।
प्रकृतेर्विकृतिश्चेत्स्यात्तदा पञ्चत्वमृच्छति ॥ ३६ ॥
एतानि कालचिह्नानि सन्त्यन्यानि बहून्यपि ।
ज्ञात्वाऽभ्यसेन्नरो योगमथवा काशिकां श्रयेत् ॥ ४० ॥
न कालवञ्चनोपायं मुनेऽन्यमवयाम्यहम् । विनामृत्युञ्जयंकाशीनाथं गर्भावरोधकम्
तावद्गर्जन्ति पापानि तावद्गर्जेद्यमो नृपः । यावद्विश्वेशशरणं नरो न निरतोव्रजेत्
प्राप्तविश्वेश्वरावासःपीतोत्तरवहापयाः । स्पृष्टविश्वेशसल्लिङ्गःकश्चयातिनवन्द्यताम्
करिष्येत्कुपितः कालः किंकाशीवासिनां नृणाम् ।
काले शिवः स्वयं कर्णे यत्र मन्त्रोपदेशकः ॥ ४४ ॥

यथाप्रयाति शिशुता कौमारञ्च यथागतम् । सत्वरंगत्वरं तद्वद्यौवनञ्चापिवार्द्धकम्
यावन्नहिजराक्रान्तिर्यावन्नेन्द्रियवैक्लवम् । तावत्सर्वंफल्गुरूपंहित्वाकाशींश्रयेत्सुधीः
अन्यानि काललक्ष्माणितिष्ठन्तुकलशोद्भव !। जरैवप्रथमंलक्ष्मचित्रं तत्रापिभीर्नहि
पराभूतो हि जरया सर्वैश्च परिभूयते । हृततारुण्यमाणिक्यो धनहीनः पुमानिव
सुतावाक्यं न कुर्वन्ति पत्नीप्रेमापि मुञ्चति । बान्धवानैवमन्यन्तेजरसाश्लेषितंनरम्
आश्लिष्टञ्जरयादृष्ट्वा परयोषिद्विशङ्किता । भवेत्पराङ्मुखीनित्यंप्रणयिन्यपिकामिनी
नजरासदृशो व्याधिर्नदुःखं जरयासमम् । कारयित्र्यपमानस्य जरैव मरणं नृणाम्
न जीयते तथाकालस्तपसायोगयुक्तिभिः । यथाचिरेणकालेनकाशीवासाद्विजीयते
विनायज्ञैर्विनादानैर्विनाव्रतजपादिभिः । विनाऽतिपुण्यसम्भारैःकःकाशीम्प्राप्तुमीहते

काशीप्राप्तिरयं योगः काशीप्राप्तिरिदं तपः ।
काशीप्राप्तिरिदं दानं काशीप्राप्तिः शिवैकता ॥ ५४ ॥
कः कलिः कोऽथवा कालः का जरा किञ्च दुष्कृतम् ।
का रुजः केऽन्तराया वा श्रिता वाराणसी यदि ॥ ५५ ॥
कलिस्तानेव बाधेत कालस्तांश्च जिघांसति ।
एनांसि तांश्च बाधन्ते ये न काशीं समाश्रिताः ॥ ५६ ॥

काशीसमाश्रितायैश्चयैश्चविश्वेश्वरोऽर्चितः । तारकंज्ञानमासाद्यतेमुक्ताःकर्मपाशतः

धनिनो न तथा सौख्यम्प्राप्नुवन्ति नराः क्वचित् ।
यथा निधनतः काश्यां लभन्ते सुखमव्ययम् ॥ ५८ ॥

वरंकाशीसमावासी नासीनो ह्यसदाम्पदम् । दुःखान्तंलभतेपूर्वःसुखान्तंलभतेपरः

स्थितोऽपि भगवानीशो मन्दरं चारुकन्दरम् ।
काशीं विना रतिं नाऽऽप दिवोदासनृपोषिताम् ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
कालवञ्चनोपायो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

दिवोदासप्रतापवर्णनम्

अगस्तिरुवाच

दिवोदासं नरपतिंकथंदेवस्त्रिलोचनः । काशीं सन्त्याजयामासकथमागाच्चमन्दरात्
एतदाख्यानमाख्याहि श्रोतृणाम्प्रमुदे भगोः ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

मन्दरंगतवान्देवो ब्रह्मणो वाक्यगौरवात् । तपसा तस्य सन्तुष्टोमन्दरस्यैवभूभृतः
गतेविश्वेश्वरे देवे मन्दरंगिरिसुन्दरम् । गिरिशेन समञ्जग्मुरपिसर्वेदिवौकसः
क्षेत्राणिवैष्णवानीह त्यक्त्वा विष्णुरपि क्षितेः । प्रयातोमन्दरं यत्र देवदेवउमाधवः
स्थानानिगाणपत्यानिगणेशोपिततोव्रजत् । हित्वाहमपिविप्रेन्द्रगतवान्मन्दरम्प्रति
सूरः सौराणि सन्त्यज्य गतश्चायतनादरम् ।
स्वं स्वं स्थानं क्षितौ त्यक्त्वा ययुरन्येऽपि निर्जराः ॥ ६ ॥

गतेषुदेवसङ्घेषुपृथिव्याः पृथिवीपतिः । चकार राज्यं निर्द्वन्द्वं दिवोदासःप्रतापवान्
विधाय राजधानीं सवाराणस्यांसुनिश्चलाम् । एधाञ्चक्रेमहाबुद्धिःप्रजाधर्मेणपालयन्
सूर्यवत्सप्रतपिता दुर्हृदां हृदि नेत्रयोः । सोमवत्सुहृदामासीन्मानसेषु स्वकेष्वपि
अखण्डमाखण्डलवत्कोदण्डं कलयन् रणे । पलायमानैरालोकि शत्रुसैन्यबलाहकैः
सधर्मराजवज्ज्ञातोधर्माधर्मविवेचकः । अदण्ड्यान्मण्डयन् राजादण्ड्यांश्चपरिदण्डयन्
धनञ्जय इवाऽधाक्षीत्परारण्यान्यनेकशः । पाशीव पाशयाञ्चक्रे वैरिचक्रं विदूरगः
सोऽभूत्पुण्यजनाधीशो रिपुराक्षसवर्धनः । जगत्प्राणसमानश्च जगत्प्राणनतत्परः
राजराजः सएवाभूत्सर्वेषान्धनदः सताम् । सएवरुद्रमूर्तिश्च प्रैक्षिष्ट रिपुभीरणे
विश्वेषां सहिदेवानांतपसारूपधृग्यतः । विश्वेदेवास्ततस्तन्तुस्तुवन्तिचभजन्तिच
असाध्यः सहि साध्यानां वसुभ्यो वसुनाऽधिकः ।

ग्रहाणां विग्रहधरो दस्रतोऽजस्ररूपभाक् ॥ १९ ॥
मरुद्गणानगणयंस्तुषितांस्तोषयन्गुणैः । सर्वविद्याधरो यस्तु सर्वविद्याधरेष्वपि
अगर्वानेव गन्धर्वान्यश्चक्रेनिजगीतिभिः । ररक्षुर्यक्षरक्षांसि तद्दुर्गं स्वर्गसोदरम्
नागा नागांसिचक्रुश्च तस्य नागबलीयसः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वातश्चसिषेविरे
जाता गुह्यचरा यस्यगुह्यकाःपरितोनृषु । संसेविष्यामहे राजन्नसुरास्त्वांस्ववैभवैः
वयं यतस्त्वद्विषये सुरावासोऽपि दुर्लभः । अशिक्षयत्क्षितिपतेरिह यस्यतुरङ्गमान्
आशुगश्चाशुगामित्वं पावमाने पथि स्थितः ॥ २१ ॥
अगजान्यस्य तुगजान्नगवर्ष्मसु वर्ष्मणः । अजस्रदानिनो दृष्ट्वाऽभवन्नन्येऽपि दानिनः
सदोजिरे चवोद्धारोयोद्धारश्चरणाजिरे । न यस्यशास्त्रैर्विजितानशस्त्रैःकेनचित्क्वचित्
ननेत्रविषये जाता विषये यस्य भूभृतः । सदा नष्टपदा द्वेष्यास्तदाऽनष्टपदाःप्रजाः
कलावानेक एवाऽस्ति त्रिदिवेऽपि दिवौकसाम् ।
तस्य क्षोणिभृतः क्षोण्यां जनाः सर्वे कलालयाः ॥ २५ ॥
एकएवहिकामोस्तिस्वर्गेसोप्यङ्गवर्जितः । साङ्गोपाङ्गाश्चसर्वेषांसर्वेकामाहितद्भुवि
तस्योपवर्तनेप्येको न श्रुतोगोत्रभित्क्वचित् ।
स्वर्गे स्वर्ग सदामीशो गोत्रभित्परिकीर्तितः ॥ २७ ॥
क्षयी च तस्य विषये कोप्याऽऽकर्णि न केनचित् ।
त्रिविष्टपे क्षपानाथः पक्षे पक्षे क्षयीष्यते ॥ २८ ॥
नाके नवग्रहाः सन्ति देशास्तस्याऽनवग्रहाः ॥ २९ ॥
हिरण्यगर्भःस्वर्लोकेऽप्येक एवप्रकाशते । हिरण्यगर्भाःसर्वेषां तत्पौराणामिहालयाः
सप्ताश्व एकः स्वर्लोके नितरां भासतेंऽशुमान् ।
सदंशुकाः प्रतिदिनं बह्वश्वास्तत्पुरौकसः ॥ ३१ ॥
सदप्सरा यथा स्वर्भूस्तत्पुर्यपिसदप्सराः । एकैव पद्मावैकुण्ठेतस्यपद्माकराःशतम्
अनातयश्च तद्ग्रामा नाराजपुरुषाः क्वचित् । गृहे गृहेऽत्रधनदा नाकएकोऽलकापतिः
दिवोदासस्य तस्यैवं काश्यां राज्यं प्रशासतः ।

गतं वर्षं दिनप्रायं शरदामयुताष्टकम् ॥ ३४ ॥
गीर्वाणाविप्रतीकारमथ तस्य चिकीर्षवः । गुरुणा मन्त्रयाञ्चक्रुर्धर्मवर्त्मानुयायिनः
भवादृशामिव मुने प्रायशोधर्मचारिणाम् । विबुधाविदधत्येव महतीरापदांततीः
यद्यप्यसौधराधीशो व्याधिनोद्दुर्धराध्वरैः । तानध्वरभजोऽत्यन्तंतथापिसुहृदोनते
स्वभाव एवह्यसदास्परोत्कर्षा सहिष्णुता । बलिबाणदधीच्याद्यैरपराद्धं किमत्र तैः
अन्तरायाभवन्त्येव धर्मस्यापि पदे पदे । तथापि न निजो धर्मो धर्मधीभिर्विमुच्यते
अधर्मिणःसमेधन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः । अधर्मादेव च परं समूलं यान्त्यधोगतिम्
प्रजाः पालयतस्य पुत्रानिव निजौरसान् । रिपुञ्जयस्य नाऽल्पोपि बभूवाधर्मसंग्रहः
षाड्गुण्यवेदिनस्तस्य त्रिशक्त्यूर्जितचेतसः । चतुरोपायवित्तस्यनरन्ध्रंविविदुःसुराः
बुद्धिमन्तोऽपि विबुधा विप्रतीकर्तुमुद्यताः । मनागपिन संशेकुरपकर्तुं तदीशितुः
एकपत्नीव्रताःसर्वेपुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काचिन्नैवासीदपतिव्रतधर्मिणी
अनधीतो न विप्रोऽभूदशूरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनभिज्ञोनैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु
अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणस्प्रति । तस्य राष्ट्रे समभवन्दिवोदासस्य भूपतेः
अविप्लुतब्रह्मचर्यास्तद्राष्ट्रे ब्रह्मचारिणः । नित्यं गुरुकुलाधीना वेदग्रहणतत्पराः
आतिथ्यधर्मप्रवणाधर्मशास्त्रविचक्षणाः । नित्यंसाधुसमाचारागृहस्थास्तस्यसर्वतः
तृतीयाश्रमिणो यस्मिन्वनवृत्तिकृतादराः । निःस्पृहाग्रामवार्तासुवेदवर्त्मानुसारिणः
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तानिर्मुक्तानिष्परिग्रहाः । वाङ्मनःकर्मदण्डाढ्यायतयोयत्रनिःस्पृहाः
अन्येऽनुलोमजन्मानःप्रतिलोमभवा अपि । स्वपारम्पर्यतो दृष्टं मनाग्वर्त्म न तत्यजुः
अनपत्योनतद्राष्ट्रे धनहीनोऽपि कोपि न । अवृद्धसेवी नो कश्चिदकाण्डमृतिभाक्चन
नचाटानैववाघाटावञ्चकानोन हिंसकाः । नपाखण्डानवैभण्डानरण्डानच शौण्डिकाः
श्रुतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदेपदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदामङ्गलगीतयः
वीणावेणुप्रवादाश्च मृदङ्गा मधुरस्वनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठीनकर्णगा
मांसाशिनः पुरोडाशेनैवान्यत्र कदाचन । न दुरोदरिणो यत्र नाधमर्णानतस्कराः
पुत्रस्यपित्रोःपदयोः पूजनं देवपूजनम् । उपवासो व्रतं तीर्थं देवताराधनम्परम्

नारीणां भर्तृपदयोरर्चनं तद्वचः श्रुतिः । समर्चयन्ति सततं मनुजानिजमग्रजम्
सपर्ययन्ति मुदिताभृत्याःस्वामिपदाम्बुजम् । हीनवर्णैरग्रवर्णो वर्ण्यते गुणगौरवैः
वरिवस्यन्तिभूयोऽपित्रिकालंकाशिदेवताः । सर्वत्रसर्वेविद्वांसःसमर्चयन्ते मनोरथैः
विद्वद्भिश्च तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियाः ।
जितेन्द्रियैर्ज्ञाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिवयोगिनः ॥ ६१ ॥
मन्त्रपूतंमहार्हञ्च विधियुक्तं सुसंस्कृतम् । वाडवानां मुखाग्नौ च हूयतेऽहर्निशं हविः
वापीकूपतडागानामारामाणाम्पदे पदे । शुचिभिर्द्रव्यसम्भारैः कर्तारोयत्र भूरिशः
यद्राष्ट्रे हृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्तेसर्वजातयः । अनिन्द्यसेवासम्पन्ना विना मृगयुसौनिकान्
इत्थंतस्यमहीजानेः सर्वत्रशुचिवर्तिनः । उन्मिषन्तोऽप्यनिमिषामनाक्छिद्रंनलेभिरे
अथोवाचामरगुरुर्देवानपचिकीर्षुकान् । तस्मिन् राजनि धर्मिष्ठेवरिष्ठे मन्त्रवेदिषु

गुरुरुवाच

सन्धिविग्रहयानास्तिसंश्रयंद्वैधभावनम् । यथास राजासं वेत्ति नतथाऽत्रापिकश्चन
उपायोप्येक एवास्तिचतुर्ध्विहदिवौकसः । भेदोनामसचेत्सिध्येत्तपोवलिनि तत्रहि
तेनयद्यपिभूभर्त्राभूमेर्देवाविवासिताः । तथापिभूरिशस्तत्र सन्त्यस्मत्पक्षपातिनः
कालो निमिषमात्रोऽपि यान् विना न सुखं व्रजेत् ।
अस्माकमपि तस्यापि सन्ति ते तत्र मानिताः ॥ ७० ॥
अन्तर्वहिश्चरानित्यं सर्वविश्रम्भभूमयः । समागतेषु तेष्वत्रसर्वं नः सेत्स्यतिप्रियम्
समाकर्ण्य च ते सर्वे त्रिदशागीष्पतीरितम् ।
निर्णीतवन्तस्तस्याऽर्थं तस्मादन्तर्वहिश्चरान् ॥
अभिनन्द्याऽथ तं सर्वे प्रोचुरित्थम्भवेदिति ॥ ७२ ॥
ततःशक्रःसमाहूयवीतिहोत्रम्पुरः स्थितम् । ऊचे मधुरया वाचा वहुमानपुरःसरम्
हव्यवाहनयामूर्तिस्तव तत्र प्रतिष्ठिता । तामुपासंहर क्षिप्रं विषयात्तस्य भूपतेः
समागतायां तन्मूर्तौ सर्वा नष्टाग्नयः प्रजाः ।
हव्यकव्यक्रिया शून्या विरजिष्यन्ति राजनि ॥ ७५ ॥

प्रजासुचविरक्तासुराज्यकामदुघासुवै । कृच्छ्रेणोपार्जितोऽपार्थोराजशब्दोभविष्यति
प्रजानांरञ्जनाद्राजायेयंरूढिरुपार्जिता । तस्यांरूढ्यांप्रणष्टायांराज्यमेव विनङ्क्ष्यति
प्रजाविरहितो राजाकोशदुर्गबलादिभिः । समृद्धोऽप्यचिरान्नश्येत्कूलसंस्थ इवद्रुमः
त्रिवर्गसाधनाहेतुःप्राक्प्रजैव महीपतेः । क्षीणवृत्त्यास्प्रजायांवैत्रिवर्गः क्षीयतेस्वयम्
क्षीणे त्रिवर्गे संक्षीणा गतिर्लोकद्वयात्मिका ॥ ८० ॥
इतीन्द्रवचनाद्वह्निरह्नायक्षोणिमण्डलात् । आचकर्षनिजाम्मूर्तियोगमायाबलान्वितः
निन्ये नकेवलं त्रेतांजाठराग्निमपिप्रभुः । वज्रिणो वचसावह्निर्निजशक्तिसमन्वितम्
वह्नौस्वर्लोकमापन्नेजातेमध्यन्दिनेनृपः । कृतमाध्याह्निकस्तूर्णंप्राविशद्भोज्यमण्डपम्
महानसाधिकृतयोवेपमानास्ततोमुहुः । क्षुधार्तमपि भूपालमिदं मन्दं व्यजिज्ञपन्

सूपकारा ऊचुः

अत्यहस्करतेजस्कप्रतापविजितानल । किञ्चिद्विज्ञप्तकामाःस्मोप्यकाण्डेरणपण्डित
यदि विश्राणयेद्राजन्भवानभयदक्षिणाम् । तदा विज्ञापयिष्यामः प्रबद्धकरसम्पुटाः
भ्रूसञ्ज्ञयाकृतादेशाःप्रशस्तास्येनभूभुजा । मृदु विज्ञापयाञ्चक्रुः पाकशालाधिकारिणा
नजानीमोवयंनाथ त्वत्प्रतापभयार्दितः । कुसृत्याथकयाविद्वान्नष्टो वैश्वानरः पुरात्
कृशानौकृशताम्प्राप्तेकथं पाकक्रियाभवेत् । तथाऽपि सूर्यपाकेनसिद्धा पक्तिर्हिकाचन
प्रभोरादेशमासाद्य तामिहैवानयामहे । मन्यामहे च भूजाने! पक्तिरद्यतनी शुभा
श्रुत्वाऽन्धसिकवाक्यं स महासत्त्वो महामतिः ।
नृपतिश्चिन्तयामास देवानां वै कृतं त्विदम् ॥ ९१ ॥
क्षणं संशीलयंस्तत्र ददर्शतपसो बलात् । न केवलञ्जहौ गेहं हुतभुक्चौदरीर्दरीः
अप्यहासीदितो लोकाज्जगामचसुरालयम् । भवत्विह हिकाहानिरस्माकं ज्वलनेगते
तेषामेव विचाराच्च हानिरेषा सुपर्वणाम् । तद्बलेन च किं राज्यं मयेदमुररीकृतम्
पितामहेन महतो गौरवात्प्रतिपादितम् । इति चिन्तयतस्यस्य मध्यलोकशतक्रतोः
पौराःसमागता द्वारि सह जानपदैर्नरैः । द्वाःस्थेनचाज्ञयाराज्ञस्ततस्तेन्तःप्रवेशिताः
दत्त्वोपदं यथार्हं ते प्रणेमुःक्षोणिवज्रिणम् । केचित्सम्भाषिताराज्ञादरसोदरया गिरा

चिच्च समुदा दृष्ट्या केचिच्च करसञ्ज्ञया । विसर्जितासनाराज्ञा बहुमानपुरःसरम्
जिरे भेजिरे सर्वे रत्नार्चिः परिसेविते । विजितामोदसन्दोहे सुरानोकहसौरभैः
राज्ञः शतशलाकस्य च्छत्रस्य च्छायया शुभे ॥ ९९ ॥
विशाम्पतिरथोवाच तन्मुखच्छाययेरितम् ।
विज्ञाय तदभिप्रायमलम्भीत्या पुरौकसः ॥ १०० ॥
कारकारिभिर्लेखैर्यदिनीतोऽनलोभुवः । एतावतैवकिंसिद्ध्येन्मयि तेषाम्पराभवः
चिकीर्षुरहमेवासंपौराःकार्यमिदम्पुरा । परंह्युपेक्षितप्रायं दिष्ट्यातैःस्मारितश्चिरात्
गतोऽनलोऽभवद्भद्रं जगत्प्राणोऽपि यात्वितः ।
वरुणः पुष्पवन्ताभ्यामविलम्बम्प्रयात्वितः ॥ १०३ ॥
अहमेव हि पर्जन्योभविष्यामि तपोबलात् । मुदे जनपदानाञ्च सर्वसस्यसमृद्धिदः
तपोयोगबलेनाहमात्मानम्परिकल्प्य च । त्रिधावह्निस्वरूपेण पक्तीष्टिव्युष्टिकृत्तमः
अन्तर्बहिश्चयोद्वेधानभस्वत्पदवीं दधत् । सर्वेषामेववेत्स्यामित्वन्तःकरणचेष्टितम्
विधायचाम्भसीम्मूर्तिसर्वजीवैकजीवनीम् । प्रजाःसञ्जीवयिष्यामिकिञ्जडैर्विषयेमम
यदाखेतमसापौराग्रस्येतेशशिभास्करौ । तदानकिंविनाताभ्यांजीवामःक्षितिमण्डले
श्रियश्चान्द्रमसीम्प्राप्य ह्लादयिष्याम्यहम्प्रजाः ।
निशाचरेण किमिह क्षयिणा च कलङ्किना ॥ १०६ ॥
अस्मत्कुलेमूलभूतोभास्करोमान्य एव नः । स तिष्ठतु सुखेनाऽत्रयातायातं करोतु च
सएकोजगतामात्मा विशेषात्कुलदेवता । सोपकर्तुं नवेत्त्येव तस्येदं व्रतमुत्तमम्
इति नरपतिवाक्सुधारसौघं श्रुतिपुटकैः परिपीय पौरवर्गः ।
विकसितवदनाम्बुजो जगाम निजनिजमालयमाधिमुक्तचित्तः ॥ ११२ ॥
क्षितिपतिरपि तत्तथाविधाय तपसोऽसाध्यमिहास्तिकिंत्रिलोक्याम् ।
अतिवह्ह्यर्कमसौ दधच्च तेजो द्यसदां शल्यमिवोच्चकैर्बभूव ॥ ११३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे दिवोदासप्रतापवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

काशीवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथ मन्दरकन्दरोदरोल्लसदसमद्युतिरत्नमन्दिरे ।
परितः समधिष्ठितामरे निजशिखरैर्वसनीकृताम्बरे ॥ १ ॥
निवसञ्जगदीश्वरो हरः कृशरजनीशकलामनोहरः ।
लभते स्म न शर्म शङ्करः प्रसरत्काशिवियोगजज्वरः ॥ २ ॥
विरहानलशान्तये तदा समलेपि त्रिपुरारिणाऽपि यः ।
मलयोद्भव पङ्क एष सम्प्रतिपेदे ह्यधुनापि पांसुताम् ॥ ३ ॥
परितापहराणि पद्मिनीनां मृदुलान्यपि कङ्कणीकृतानि ।
गदितानि यदीश्वरेण सर्पास्तदभूत्सत्यमहो महेश्वरेच्छा ॥ ४ ॥
यदु दुग्धनिधिं निमथ्य देवैर्मृदुसारः समकर्षि पूर्णचन्द्रः ।
स बभूव कृशो वियोगतप्तेश्वरमूर्धोष्णपरिक्षरच्छरीरः ॥ ५ ॥
यद्दीश्वरद्वेष जाततापः पृथुले मौलिजटानि कुञ्जकोणे ।
परितापहरां हरस्तदानीं द्युनदीं तामधुनापि नोज्झिहीते ॥ ६ ॥
महतो विरहस्य शङ्करः प्रसभं तस्य वशी वशङ्गतः ।
विविदे न सुरैः सदोगतैरपि संवीतसुतापवेष्टितः ॥ ७ ॥
अति चित्रमिदं यदात्मना शुचिरप्येष कृपीटयोनिना ।
स्वपुरीविरहोद्भवेन वै परिताप्येत जगत्त्रयेश्वरः ॥ ८ ॥
निजभालतलं कलानिधेः कलया नित्यमलङ्करोति यः ।
स तदीश्वरमप्यतापयद्विधुरेको विपरीत एव तु ॥ ९ ॥
गरलं गलनालिकातले विलसेदस्य न तेन तापितः ।

अमृतांशुतुषारदीधितिप्रचयैरेव तु तापितोऽद्भुतम् ॥ १० ॥
चिलसद्धरिचन्दनोदकच्छटयातद्विरहापनुत्तये ।
हृदयाहितयाप्यदूयतप्रसरद्भोगिफटाभवैर्नतु ॥ ११ ॥
सकलम्भ्रममेष नाशयेत्स्रगहित्वाद्यपदेशजं हरः ।
इदमद्भुतमस्य यद् भ्रमः स्फुटमाल्येऽपि महाहिसम्भवः ॥ १२ ॥
स्मृतिमात्रपथङ्गतोऽपि यस्त्रिविधन्तापमपाकरोत्यलम् ।
स हि काशिवियोगतापितः स्वगतं किञ्चिदजल्पदित्यजः ॥ १३ ॥
अपि काशिसमागतोऽनिलो यदि गात्राणि परिष्वजेन्मम ।
दवथुः परिशान्तिमेति तन्नहि मानी परिगाहनैरपि ॥ १४ ॥
अगमिष्यदहो कथं स तापो ननु दक्षाङ्गजयाय एधितः ।
मम जीवा तुलता झटित्यलं ह्यभविष्यन्नहि माद्रिजा यदि ॥ १५ ॥
न तथोज्झितदेहया तया मम दक्षोद्भवया मनोऽदुनोत् ।
अविमुक्तवियोगजन्मना परिदूयेत यथा महोष्मणा ॥ १६ ॥
अयि काशि मुदा कदा पुनस्तव लप्स्ये सुखमङ्गसङ्गजम् ।
अतिशीतलितानि येन मेऽद्भुतगात्राणि भवन्ति तत्क्षणात् ॥ १७ ॥
अयि काशि विनाशिताघसङ्घे तव विश्लेषज आशुशुक्षणिः ।
अमृतांशुकलामृदुद्रवैरतिचित्रं हविषेव वर्धते ॥ १८ ॥
अगमन्मम दक्षजावियोगजो दवथुः प्राग्घिमवत्सुतौषधेन ।
अधुना खलु नैवशान्तिमीयां यदि काशीं न विलोकयेहमाशु ॥ १९ ॥
मनसेतिगृणंस्तदाशिवः सुतरां सम्भृततापवैकृतः ।
जगदम्बिकयाधियाऽनन्यया कथमप्येष वियुक्त इत्यमानि ॥ २० ॥
प्रियया वपुषोऽर्धयाऽनयाप्यपरिज्ञातवियोगकारणः ।
वचनैरुपचर्यते स्म स प्रणतप्राणिनिदाघदारणः ॥ २१ ॥

श्रीपार्वत्युवाच

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

त्रिलोचनप्रभाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृणुष्व मैत्रावरुणे! पुराकल्पे रथन्तरे । इतिहासइहासीद्यः पीठे विरजसञ्ज्ञिते ॥
त्रिलोचनस्यप्रासादेमणिमाणिक्यनिर्मिते । नानाभङ्गिगवाक्षाढ्ये रत्नसानाविवायते
कदाचिदपिकल्पान्ते द्योलोकेभ्रंशतिक्षये । प्रोत्तम्भनस्तम्भइवदत्तोविश्वकृतास्वयम्
मरुत्तरङ्गिताग्राभिः पताकाभिरितस्ततः । सन्निवारयतीवेत्थमघौघान्विशतो मुने!
देदीप्यमानसौवर्णकलशेन विराजिते । पार्वणेन शशाङ्केन खेदादिव समाश्रिते ॥ ५॥

तत्र पारावतद्वन्द्वं वसेत्स्वैरं कृतालयम् ।
प्रातः सायञ्च मध्याह्ने कुर्वन्नित्यम्प्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥

उड्डायमानम्परितः पक्षवातैरितस्ततः । रजः प्रासादसँल्लग्नं दूरीकुर्वद्दिने दिने ॥
त्रिलोचनेति सततं नामभक्तैरुदाहृतम् । त्रिविष्टपेति च तथा तयोःकर्णातिथिर्भवेत्

चतुर्विधानि वाद्यानि शम्भुप्रीतिकराण्यलम् ।
तयोः कर्णगुहाम्प्राप्य प्रतिशब्दम्प्रतन्वते ॥ ९ ॥
मङ्गलारार्तिकज्योतिस्त्रिसन्ध्यम्पक्षिणोस्तयोः ।
नेत्रान्तर्निविशन्नित्यं भक्तचेष्टाम्प्रदर्शयेत् ॥ १० ॥
प्राणयात्रां विहायाऽपि कदाचित्स्थिरमानसौ ।
नोड्डीय वाञ्छितं यातः पश्यन्तौ कौतुकं खगौ ॥ ११ ॥

तत्र भक्तजनाकीर्णं प्रासादम्परितो मुने !। तण्डुलादिञ्चरन्तौतौ कुर्वातेचप्रदक्षिणम्
देवदक्षिणदिग्भागेचतुःस्रोतस्विनीजलम् ।तृषार्तौधयतोविप्रस्नातौजातुचिदण्डजौ
तयोरित्थं विचरतोस्त्रिलोचनसमीपतः । अगाद्बहुतिथःकालोद्विजयोःसाधुचेष्टयोः
अथदेवालयस्कन्धे गवाक्षान्तर्गतौ च तौ । श्येनेनकेनचिद्दृष्टौक्रूरदृष्ट्यासुखस्थितौ

तच्च पारावतद्वन्द्वं श्येनः परिजिघृक्षुकः । अवतीर्याम्बरादाशु प्रविष्टोऽन्यशिवालये
ततो विलोकयामास तदागमविनिर्गमौ । केन मार्गेण विशतो दुर्गमेतौ पतत्रिणौ
केनाऽध्वना च निर्यातः ककालेकुरुतश्चकिम् । कथंयुगपदेतौमेग्राह्यौस्वैरम्भविष्यतः
मध्ये दुर्गम्प्रविष्टौ च ममवश्याविमौ न यत् ।
एकदृष्टिः क्षणं तस्थौ श्येन इत्थं विचिन्तयन् ॥ १६ ॥
अहोदुर्गबलम्प्राज्ञाः शंसन्त्येवेति हेतुतः । दुर्बलोऽप्याकलयितुं सहसारिर्नशक्यते ॥
करिणां तु सहस्रेण वराश्वानां नलक्षतः । तत्कर्मसिद्धिर्नृपतेर्दुर्गेणैकेन यद्भवेत् ॥
दुर्गस्थो नाभिभूयेतविपक्षःकेनचित्कचित् । स्वतन्त्रंयदिदुर्गंस्यादमर्मज्ञप्रकाशितम्
इति दुर्गबलंशंसञ्श्येनोरोषारुणेक्षणः । असाध्वसौकलरवौवीक्ष्ययातोनभोऽङ्गणम्
अथ पारावती दक्षा विपक्षम्प्रेक्ष्य पक्षिणम् । महाबलं दुर्गबलाप्राहपारावतम्पतिम्

कलरव्युवाच

प्रियं पारावत प्राज्ञ! सर्वकामिसुखारव !। तव दृग्विषयम्प्राप्तः श्येनोऽयम्प्रबलो रिपुः
सावज्ञं वाक्यमाकर्ण्य पारावत्याः स तत्पतिः ।
पारावतीमुवाचेदं का चिन्तेति तव प्रिये !॥ २६ ॥

पारावत उवाच

कतिनाम नसन्तीह सुभगेव्योमचारिणः । कतिदेवालयेष्वेषु खगा नोपविशन्तिहि
कति चैव न पश्यन्ति नौ सुखस्थाविह प्रिये !।
तेभ्यो यदि हि भेतव्यं कुतो नौ तत्सुखम्प्रिये !॥ २८ ॥
रमस्व त्वम्मयासार्धं त्यजचिन्तामिमांशुभे । अस्यश्येनवराकस्यगणनापिनमे हृदि
इत्थंपारावतवचः श्रुत्वापारावतीततः । मौनमालम्ब्यसन्तस्थेपत्युः पादार्पितेक्षणा
हितवर्त्मोपदिश्याऽपि प्रियप्रियचिकीर्षया ।
साध्व्या जोषं समास्थेयं कार्यं पत्युर्वचःसदा ॥ ३१ ॥
अन्येद्युरप्यथायातःश्येनोपश्यत्सदम्पती । अपरिच्छिन्नयादृष्ट्यायथामृत्युर्गतायुषम्
अथमण्डलगत्या स प्रासादम्परितोभ्रमन् । निरीक्ष्यतद्गतायातौ यातो गमनमार्गतः

गतेऽथनभसिश्येने पुनःपारावताङ्गना । प्रोवाच प्रेयसी नाथ! दुष्टो दुष्टस्त्वयाऽहितः
तस्या वाक्यं समाकर्ण्य पुनः कलरवोऽब्रवीत् ।
किंकरिष्यत्यसौ मुग्धे! मम व्योमविहारिणः ॥ ३५ ॥
दुर्गश्च स्वर्गतुल्यं मे यत्र नास्त्यरितो भयम् । अयंनतागतीर्वेत्तियावेदाहं नभोङ्गणे
अडीनोड्डीनसण्डीनकाण्डव्याडकपाटिकाः । स्रंसनीमण्डलवतीगतयोऽष्टावुदाहृताः
यथैतास्विह कौशल्यं मयिपारावतिप्रिये । गतिषुक्वापिकस्यापिपक्षिणोन तथाम्बरे
सुखेन तिष्ठकाचिन्ता मयिजीवतिते प्रिये । इतितद्वचनंश्रुत्वासास्थितामूकवत्सती
अपरेद्युरपिश्येनस्तत्रभारशिलातले । कियदन्तरमासाद्योपविष्टोऽतिप्रहृष्टवत् ॥ ४०
आयामं तत्र संस्थित्वा तत्कुलायं विलोक्य च ।
पुनर्विनिर्गतःश्येनः साऽपि भीताऽब्रवीत्पुनः ॥ ४१ ॥
प्रियस्थानमिदंत्याज्यंदुष्टदृष्टिविदूषितम् । असौक्रूरोऽतिनिकटमुपविष्टोऽतिहृष्टवत्
सावशां स पुनः प्राह किं करिष्यत्यसौ प्रिये ।
मृगाक्षीणां स्वभावोऽयं प्रायशो भीरुवृत्तयः ॥ ४३ ॥
इतरेद्युरपिप्राप्तः सचश्येनो महाबलः । तयोरभिमुखं तत्र स्थितो यामद्वयावधि ॥
पुनर्विलोक्य तद्वर्त्मशीघ्रंयातोयथागतम् । गतेऽथ शकुनौतस्मिन्साबभाषेविहङ्गमी
नाथ! स्थानान्तरं यावो मृत्युर्नौनिकटोऽत्र यत् ।
पुनर्दुष्टे प्रणष्टेऽस्मिन्नावां स्यावः सुखम्प्रिय !॥ ४६ ॥
प्रिययस्य सपक्षस्य गतिःसर्वत्रसिद्धिदा ।
स किं स्वदेशरागेण नाशम्प्राप्नोति बुद्धिमान् ॥ ४७ ॥
सोपसर्गंनिजंदेशं त्यक्त्वा योऽन्यत्र न व्रजेत् । सपङ्गुर्नाशमाप्नोतिकूलस्थितइवद्रुमः
प्रियोदितं निशम्येतिसभवित्री दशार्दितः । सरीढंपुनरप्याहप्रिये! माभैः खगात्ततः ॥
अथापरस्मिन्नहनिसश्येनः प्रातरेव हि । तद्द्वारदेशमासाद्यसायं यावत्स्थितो बलः
अस्ताचलस्य शिखरंयातेभानौगतेखगे । कुलायाद्बाह्यमागत्योवाचपारावतीपतिम्
नाथनिर्गमनस्यायंकालःकालोऽतिदूरतः । यावत्तावद्विनिर्याहित्यक्त्वामामपिसन्मते

त्वयिजीवतिदुष्प्राप्यं नकिञ्चिज्जगतीतले। पुनर्दाराः पुनर्मित्रं पुनर्वसु पुनर्गृहम्॥
यद्यात्मारक्षितः पुंसा दारैरपि धनैरपि। तदा सर्वं हरिश्चन्द्रभूपेनेवेह लभ्यते॥
अयमात्मा प्रियो बन्धुरयमात्मा महद्धनम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामयमात्मार्जकः परः॥ ५५॥
यावदात्मनि वै क्षेमंतावत्क्षेमं जगत्त्रये। सोऽपि क्षेमः सुमतिनायशसासहवाञ्छ्यते
यशोहीनन्तु यत्क्षेमं तत्क्षेमान्निधनंवरम्। तद्यशः प्राप्यते पुम्भिर्नीतिमार्गप्रवर्तने
अतो नीतिपथं श्रुत्वा नाथ! स्थानादितो व्रज।
न गमिष्यसि चेत्प्रात स्ततो मे संस्मरिष्यसि॥ ५८॥
इत्युक्तोऽपिसवैपत्न्यापारावत्यासुमेधया। ननिर्ययौप्रतिस्थानाद्भवित्याप्रतिवारितः
अथोषसि समागत्य श्येनेन बलिना तदा। तन्निर्गमाध्वासंरुद्धःकिञ्चिद्भक्ष्यवतामुने
दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वा श्येनो महामतिः।
पारावतमुवाचेदंधिक्त्वाम्पौरुषवर्जितम्॥ ६१॥
किं वा युध्यस्व दुर्बद्धे! किं वा निर्याहि मे गिरा।
क्षुधाक्षीणो मृतः पश्चान्निरयं यास्यसि ध्रुवम्॥ ६२॥
द्वौभवन्तावहञ्चैकश्चलौ जयपराजयौ। स्थानार्थं युध्यतःसत्त्वात्स्वर्गोवादुर्गमेववा
पुरुषार्थं समालम्ब्ययेयतन्ते महाधियः। विधिरेवहिसाहाय्यंकुर्यात्तत्सत्त्वचोदितः
इत्थं स श्येनसंप्रोक्तः पत्न्याऽप्युत्साहितः खगः।
अयुध्यत्तेन श्येनेन स्वदुर्गद्वारमाश्रितः॥ ६५॥
क्षुधितस्तृषितः सोऽथश्येनेन बलिना धृतः। चरणेनदृढेनाशुचञ्च्वासापिधृताखगी
तावादायोड्डुयाञ्चक्रे श्येनो व्योमनि सत्वरम्।
चिन्तयन्भक्षणस्थानमन्यपक्षिविवर्जितम्॥ ६७॥
अथ पत्न्याकलरवः प्रोक्तस्तत्र सुमेधया। वचोऽधमानितंनाथत्वयामेस्त्रीतिबुद्धितः
अतोऽवस्थामिमाम्प्राप्तः किं कुर्यामबला यतः।
अधुनाऽपि वचश्चैकं करोषि यदि मे प्रिय!॥ ६९॥

तदाहितंतेवक्ष्यामिकुरुचैवाविचारितम् । ममैकवाक्यकरणात्स्त्रीजितोनभविष्यसि
यावदास्यगताऽस्म्यस्य यावत्स्वस्थो न भूमिगः ।
तावदात्मविमुक्त्यै त्वमरेः पादं दृढं दश ॥ ७१ ॥
इतिपत्नीवचः श्रुत्वा तथासकृतवान्खगः । सपीडितोदृढं पादे श्येनश्चीत्कृतवान्बहु
तेनचीत्करणेनाथमुक्तासामुखसम्पुटात् । पादांगुलिश्लथत्वेनसोपिपारावतोऽपतत्
विपद्यपि च न प्राज्ञैः सन्त्याज्यः क्वचिदुद्यमः ।
क्व च चञ्चुपुटस्तस्य क्व च तत्पादपीडनम् ॥ ७४ ॥
क्व च द्वयोस्तथा भूतादरेर्मोक्षणमद्भुतम् । दुर्बलेऽप्युद्यमवति फलं भाग्यं यतोऽर्पयेत्
तस्माद्भाग्यानुसारेण फलत्येव सदोद्यमः । प्रशंसन्त्युद्यमंचातो विपद्यपिमनीषिणः
अथ तौ कालयोगेन विपन्नौ सरयूतटे । मुक्तिपुर्यामयोध्यायामेकोविद्याधरोऽभवत्
मृतानां यत्र जन्तूनां काशीप्राप्तिर्भवेद्ध्रुवम् । मन्दारदामतनयो नाम्ना परिमलालयः
अनेकविद्यानिलयः कलाकौशलभाजनम् । कौमारंवय आसाद्यशिवभक्तिपरोऽभवत्
नियमश्चातिजग्राहविजितेन्द्रियमानसः । एकपत्नीव्रतंनित्यञ्चरिष्यामीतिनिश्चितम्
परयोषित्समासक्तिरायुःकीर्तिम्बलं सुखम् ।
हरेत्स्वर्गगतिश्चापितस्मात्तां वर्जयेत्सुधीः ॥ ८१ ॥
अपरश्चापि नियमंसशुचिष्मान्समाददे । गतजन्मान्तराभ्यासात्त्रिलोचनसमाश्रयात्
समस्तपुण्यनिलयं समस्तार्थप्रकाशकम् । समस्तकामजनकं परानन्दैककारणम् ॥
यावच्छरीरमरुजं यावन्नेन्द्रियविप्लवः ।
तावत्त्रिलोचनं काश्यामनर्च्याऽश्नामि नाण्वपि ॥ ८४ ॥
इत्थं मान्दारदामिः स नित्यं परिमलालयः ।
काश्यां त्रिविष्टपं द्रष्टुं समागच्छेत्प्रयत्नवान् ॥ ८५ ॥
पारवत्यपि सा जाता रत्नदीपस्य मन्दिरे । नागराजस्यपाताले नाम्नारत्नावलीतिच
समस्तनागकन्यानां रूपशीलकलागुणैः । एकैव रत्नभूताऽऽसीद्रत्नदीपोरगात्मजा
तस्याः सखीद्वयंचासीदेकानाम्ना प्रभावती । कलावतीतथान्या च नित्यंतदनुगेउभे

स्वदेहादनपायिन्यौ छायाकान्ती यथा तथा ।
ते द्वे सख्यावभूतां हि रत्नावल्या घटोद्भव !॥ ८९ ॥
ातुबाल्ये व्यतिक्रान्ते किञ्चिदुद्भिन्नयौवना । शिवभक्तंस्वपितरंदृष्ट्वानियममग्रहीत्
पितस्त्रिलोचनं काश्यामर्चयित्वा दिने दिने ।
आभ्यां सखीभ्यां सहिता मौनं त्यक्ष्यामि नान्यथा ॥ ९१ ॥
एवं नागकुमारी सा सखीद्वयसमन्विता । त्रिलोचनंसमभ्यर्च्य गृहानहरहो व्रजेत्
दिने दिने सा प्रत्यग्रैः कुसुमैरिष्टगन्धिभिः ।
सुविचित्राणि माल्यानि परिगुम्फ्याऽर्चयेद्विभुम् ॥ ९३ ॥
तिस्रोपि गीतंगायन्तिलसद्गान्धारसुन्दरम् । रासमण्डलभेदेनलास्यंतिस्रोपिकुर्वते
वीणावेणुमृदङ्गांश्च लयतालविचक्षणाः ।
वादयन्ति मुदा युक्तास्तिस्रोऽपीश्वरसन्निधौ ॥ ९५ ॥
इत्थमाराधयन्तीशं तिस्रोनागकुमारिकाः । विचित्रगन्धमालाभिःसम्मार्जनविलेपनैः
एकदा माधवे मासितृतीयायामुपोषिताः । रात्रौजागरणंकृत्वानृत्यगीतकथादिभिः
प्रातश्चतुर्थीं स्नात्वाथ तीर्थे पैलिपिले शुभे । त्रिलोचनंसमभ्यर्च्याथ प्रसुप्तारङ्गमण्डपे
सुप्तासु तासु बालासु त्रिनेत्रः शशिभूषणः । शुद्धकर्पूरगौराङ्गो जटामुकुटमण्डलः
तमालनीलसुग्रीवः स्फुरत्फणिविभूषणः । वामार्धविलसच्छक्तिर्नागयज्ञोपवीतवान्
तस्मादेव विनिष्क्रम्य लिङ्गात्पन्नगमेखलात् ।
उवाच च ततो बाला विभुरुत्तिष्ठतेति सः ॥ १०१ ॥
उत्थाय ताविनिर्मार्ज्य लोचने श्रुतिसङ्गते । अङ्गमोटनवत्यश्चजृम्भाभि·क्वणिताननाः
यावत्पश्यन्तिपुरतः संभ्रमापन्नमानसाः । अतर्कितागमस्तावत्ताभिर्दृष्टस्त्रिलोचनः
ववन्दुरथ ता बाला ज्ञात्वा लक्ष्मभिरीश्वरम् ।
तुष्टुवुश्च प्रहृष्टास्याः सन्नकण्ठ्योऽतिगद्गदम् ॥ १०४ ॥
य शम्भो! जयेशान ! जय सर्वग! सर्वद !। जय त्रिपुरसंहर्तर्जयान्धकनिषूदन !॥
य जालन्धरहर ! जयकन्दर्पदर्पहृत् !। जय त्रैलोक्यजनक ! जयत्रैलोक्यवर्धन !॥

जय त्रैलोक्यनिलय ! जयत्रैलोक्यवन्दित !। जयभक्तजनाधीन! जयप्रमथनायक !॥
जय त्रिपथगापाथः! प्रक्षालितजटातट !। जयचन्द्रकलाज्योतिर्विद्योतितजगत्त्रय!
जय सर्पफणारत्नप्रभाभासितविग्रह !। जयाद्रिराजतनयातपःक्रीतार्धदेहक !॥ ६ ॥
जय श्मशाननिलय! जयवाराणसीप्रिय !। जयानन्दवनाध्यासिप्राणिनिर्वाणदायक!
जय विश्वपते! शर्व! शर्वरीपरिर्वाजत !। जनन्नृत्यप्रियेशोग्र! जयगीतविशारद !॥
जयप्रणवसद्वास ! जय धाममहानिधे !। जय शूलिन्विरूपाक्ष! जयप्रणतसर्वद !॥

विधिः सर्वविधिज्ञोऽपि न त्वां स्तोतुं विचक्षणः ।
वाचो वाचस्पतेर्नाथ! त्वत्स्तुतौ परिकुण्ठताः ॥ ११३ ॥

विदन्ति वेदाः सर्वज्ञ नत्वांनाथयथार्थतः । मनतीह मनो नत्वामनन्तं चादिवर्जितम्
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंनमोनमः । त्रिलोचननमस्तुभ्यं त्रिविष्टपनमोस्तुते

इत्युक्त्वा दण्डवद्भूमौप्रणिपेतुः कुमारिकाः ।
अथोत्थाप्य कुमारीस्ताः प्रोवाच शशिभूषणः ॥ ११६ ॥

सुतो मन्दारदाम्नश्च नाम्नापरिमलालयः । पतिर्विद्याधरवरो भवतीनां भविष्यति

चिरं विद्याधरे लोके भोगान्भुक्त्वा समन्ततः ।
ततो निर्वेदमापन्नाः काशीं सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ११८ ॥
यूयं तिस्रोऽपि मे भक्ताः स च विद्याधरो युवा ।
चत्वारोऽप्येत एवाऽत्र प्रान्ते मोक्षमवाप्स्यथ ॥ ११६ ॥

जन्मान्तरेऽपिमेसेवा भवतीभिश्च तेन च । विहितातेनवोजन्म निर्मलंभक्तिभावितम्
एतच्चभवतीस्तोत्रं यःपठिष्यतिमेपुरः । तस्यकामं प्रदास्यामि भवतीनामिवस्फुटम्
त्यजेत्क्षपाकृतंपातं शुचिःप्रातःपठन्नरः । दिवाकृतमलं हन्ति सायं पठनतः स्फुटम्
इत्युक्तवतिदेवेशे ताः कन्याहृष्टमानसाः । प्रणम्य प्रोचुरीशानं प्रबद्धकरसम्पुटाः ॥

नागकन्या ऊचुः

पृच्छामो ब्रूहिनो नाथ करुणाकरशङ्कर !। जन्मान्तरे कथं सेवाचतुर्भिर्भवतःकृता
भवप्राग्भववृत्तान्तं तस्यापि सुकृतात्मनः । अस्माकमपिचाख्याहिकृपांकुरुकृपानिधे

इतिश्रुत्वाप्रणयतोबालोदीरितमीशिता। प्रोवाचतासांतस्याऽपिभवान्तरविचेष्टितम्

ईश्वर उवाच

श्रृणुध्वं नागतनयास्तिस्रोऽपि हि समाहिताः।
प्राग्भवं भवतीनां च तस्याऽपि कथयाम्यहम् ॥ १२७ ॥
एषा रत्नावलीपूर्वमासीत्पारावती खगी। सचविद्याधरवरः पतिरस्याः खगोऽभवत्
प्रासादेऽत्रममैताभ्यामुषितंसुचिरं सुखम्। रजः प्रासादसँल्लग्नं नुन्नं पक्षानिलैः पुनः
उपरिष्टादधस्ताच्च कृता बह्व्यः प्रदक्षिणाः।
व्योम्ना सञ्चरमाणाभ्यां सञ्चरद्भ्यां ममाऽजिरे ॥ १३० ॥
स्नातं चतुर्नदेतीर्थे पीतंतत्राम्बुचासकृत्। आभ्यांकलरवाभ्यां च कृतः कलरवो मुदे
एताभ्यांस्थिरचेतोभ्यांमुदिताभ्यामतीवहि। दृष्टानिकौतुकान्यत्रममभक्तैःकृतानिवै
अमूभ्यां बहुशो दृष्टामममङ्गलदीपिकाः। पीतं श्रुतिपुटाभ्यां च ममनामाक्षरामृतम्
तिर्यग्योनिप्रभावेण नमृतौममसन्निधौ। मृतंपुर्यांमयोध्यायांकाशीप्राप्तिकृतिध्रुवम्
अयोध्यानिधनादेषा रत्नदीपसुताभवत्। पतिःपारावतोऽस्याःसजातोविद्याधराङ्गजः
एषा प्रभावती नागीनागराजस्य पद्मिनः। इहजन्मनिकन्यासीत्पूर्वं जन्मब्रवीमि वः
त्रिशिखस्योरगेन्द्रस्यसुताचेयं कलावती। एतस्याअपिवृत्तान्तंनिशामयतवच्म्यहम्
भवान्तरेतृतीयेऽतः कन्येचारायणस्य ह। आस्तांमहर्षेःशीलाढ्ये प्रेमवत्यौपरस्परम्
पित्राचारायणेनापि ताभ्यां सम्प्रेरितेनते। आमुष्यायणपुत्राय दत्ते नारायणाय हि
अप्राप्तयौवनः सोऽथ समिदाहरणाय वै। गतो विधिवशाद्दष्टो दन्दशूकेन कानने ॥
भवानीगौतमीनाम्न्यौ तेतुचारायणाङ्गजे। वैधव्यदुःखमापन्ने दैन्यग्रस्ते बभूवतुः
अतएव प्रयत्नेन परिणेता विवर्जयेत्। देवतासरिदाह्वानां कन्यां पाणिग्रहे सुधीः
अथर्षेः कस्यचिद्दैवादाश्रयेपरमाद्भुते। रम्भाफलान्यदत्तानि मोहाज्जगृहतुस्तदा ॥
कृत्वा मासोपवासादिव्रतानि ब्राह्मणाङ्गजे।
अवाप्य निधनं कालाच्छाखामृग्यौ बभूवतुः ॥ १४४ ॥
फलचौर्यविपाकेन वानरीत्वं तयोरभूत्। शीलरक्षणधर्मेण काश्यां जनिमवापतुः

सचनारायणो विप्रः पितृशुश्रूषणव्रतः । दष्टोऽपिदन्दशूकेन काश्याम्पारावतोऽभवत्
एवम्भवान्तरे चासीदेतयोः पतिरेषकः । तिसृणाम्भवतीनाञ्चभावीभर्ताधुनापिहि
प्रासादस्यास्य पार्श्वे तु न्यग्रोधस्तु महानभूत् ।
तस्मिञ्शाखिनिशाखाढ्ये शाखामृग्यौ बभूवतुः ॥ १४८ ॥
चतुःस्रोतस्विनीतीर्थे क्रीडयाचममज्जतुः । पपतुश्चापिपानीयंतस्मिंस्तीर्थे तृषातुरे
जातिस्वभावचापल्यात्क्रीडन्त्यौच प्रदक्षिणम् । चक्रतुर्बहुकृत्वश्च लिङ्गं ददृशतुर्बहु
विचरन्त्याविति स्वैरं तत्रन्यग्रोधसन्निधौ । केनचिद्योगिवेषेण पाशेनचनियन्त्रिते
भिक्षार्थं शिक्षिते तेनतद्वुत्प्लुत्यादिनर्तनम् । अथ ते क्वापि मर्कट्यौकालधर्मवशंगते
काशीवासजपुण्येन त्रैलोचन्यानुसेवया । प्रादक्षिण्यादिरूपिण्याजाते नागसुते इति
अधुना तम्पतिम्प्राप्य विद्याधरकुमारकम् ।
निर्विश्य स्वर्गभोगांश्च काश्यां निर्वृतिमेष्यथ ॥ १५४ ॥
यदल्पमपिवैकाश्यां कृतं कर्मशुभावहम् । तस्यमोक्षः परीपाकोनिश्चितं मदनुग्रहात्
त्रिलोक्या अपि सर्वस्याः श्रेष्ठा वाराणसीपुरी ।
ततोऽपि लिङ्गमोङ्कारं ततोऽप्यत्र त्रिलोचनम् ॥ १५६ ॥
तिष्ठमानोत्रलिङ्गेऽहंभक्तमुक्तिदिशाम्यहम् । ततःसर्वप्रयत्नेनकाश्याम्पूज्यस्त्रिलोचनः
इत्युक्तवादेवदेवेशः प्रासादान्तरमाविशत् । अवाच्यरूपमासाद्य स्थूलंत्रिभुवनादपि
ताश्चस्वंस्वम्पदम्प्राप्यतद्वृत्तान्तमशेषतः । स्वमातृपुरतश्चोक्त्वाकृतकृत्याइवाभवन्
एकदा माधवे मासि महायात्रा समागता ।
विद्याधरास्तथा नागा मिलिताः सपरिच्छदाः ॥ १६० ॥
विरजस्के महाक्षेत्रे त्रिलोचनसमीपतः । देवस्य वरदानाच्चपृष्ट्वाऽन्योन्यं कुलावलीम्
विद्याधराय ता नागैः कन्यास्तिस्रोऽपि कल्पिताः ॥
मन्दारदामा सन्तुष्टः प्राप्य तच्च स्नुषात्रयम् ॥ १६२ ॥
रत्नदीपश्च नागेन्द्रः पद्मी चभुजगेश्वरः । त्रिशिखोऽपिफणीन्द्रश्च हृष्टाएतेत्रयोऽपिच
जामातरंसमासाद्य शुभम्परिमलालयम् । अन्योन्यंस्वजनास्तेतुमुदाविकसितेक्षणाः

विवाहोत्सवमाकल्प्य स्वं स्वम्भुवनमाविशन् ।
त्रिलोचनस्य लिङ्गस्य वर्णयन्तोऽतिगौरवम् ॥ १६५ ॥
स च विद्याधरः श्रीमान्नागीभिर्विपुलं सुखम् ।
भुक्त्वा वाराणसीम्प्राप्य संसेव्याऽथ त्रिलोचनम् ॥ १६६ ॥
गायन्गीतंसुमधुरंनागीभिःसहितःकृती । आत्मानञ्चातिसंस्मृत्यमध्येलिङ्गंलयंगतः

स्कन्द उवाच

त्रिलोचनस्य महिमाकलौदेवेन गोपितः । अतोऽल्पसत्त्वामनुजा न तल्लिङ्गमुपासते
त्रिलोचनकथामेतां श्रुत्वा पापान्वितोऽप्यहो ॥
विपाप्मा जायते मर्त्यो लभते च परां गतिम् ॥ १६६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेत्रिलोचनप्रभाववर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

केदारमहिमाख्यानवर्णनम्

पार्वत्युवाच

नमस्ते देवदेवेश! प्रणमत्करुणानिधे !। वद केदारमाहात्म्यं भक्तानामनुकम्पया ॥ १
तस्मिँल्लिङ्गे महाप्रीतिस्तव काश्यामनुत्तमा ।
तद्भक्ताश्च जना नित्यं देवदेव ! महाप्रियः ॥ २ ॥

देवदेव उवाच

शृण्वपर्णेऽभिधास्यामि केदारेश्वरसंकथाम् ।
समाकर्ण्याऽपि याम्पापोऽप्यपापो जायते क्षणात् ॥ ३ ॥
दारं यातुकामस्य पुंसोनिश्चितचेतसः । आजन्मसञ्चितम्पापंतत्क्षणादेवनश्यति

गृहाद्विनिर्गते पुंसिकेदारमभिनिश्चितम् । जन्मद्वयार्जितम्पापं शरीरादपिनिर्व्रजेत्
मध्येमार्गम्प्रपन्नस्यत्रिजन्मजनितन्त्वघम् । देहगेहाद्विनिःसृत्यनिराशंयातिनिःश्वसत्
सायंकेदारकेदारकेदारेति त्रिरुच्चरन् । गृहेऽपि निवसन्नूनं यात्राफलमवाप्नुयात् ॥
दृष्ट्वा केदारशिखरं पीत्वा तत्रत्यमम्बुच । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नाऽत्रसंशयः
हरपापह्रदे स्नात्वा केदारेशम्प्रपूज्यच । कोटिजन्मार्जितैनोभिर्मुच्यते नात्र संशयः
सकृत्प्रणम्य केदारं हरपापकृतोरकः । स्थाप्य लिङ्गं हृदम्भोजे प्रान्तेमोक्षंगमिष्यति
हरपापह्रदे श्राद्धं श्रद्धया यः करिष्यति । उद्धृत्य सप्तपुरुषान्स मे लोकंगमिष्यति
पुरा रथन्तरे कल्पे यदभूदत्रतच्छृणु । अपर्णे! दत्तकर्णात्वं वर्णयामि तवाग्रतः
एको ब्राह्मणदायाद उज्जयिन्या इहागतः । कृतोपनयनः पित्रा ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ॥

स्थलीम्पाशुपतीं काशीं स विलोक्य समन्ततः ।
द्विजैः पाशुपतैः कीर्णं जटामुकुटभूषितैः ॥ १४ ॥

कृतलिङ्गसमर्चश्च भूतिभूषितवर्ष्मभिः । भिक्षाहृतान्नसन्तुष्टैः पुष्टैर्गङ्गामृतोदकैः
बभूवाऽऽनन्दितमनाव्रतंजग्राहचोत्तमम् । हिरण्यगर्भादाचार्यान्महत्पाशुपताभिधम्
सचशिष्योवशिष्ठोऽभूत्सर्वपाशुपतोत्तमः । स्नात्वाह्रदेहरपापेनित्यम्प्रातःसमुत्थितः
विभूत्याहरहः स्नातित्रिकालंलिङ्गमर्चयन् । नान्तरंसविजानातिशिवलिङ्गेगुरौतथा
स द्वादशाब्ददेशीयो वशिष्ठो गुरुणा सह । ययौकेदारयात्रार्थंगिरिंगौरीगुरोर्गुरुम्

यत्र गत्वा न शोचन्ति किञ्चित्संसारिणः क्वचित् ।
प्राश्योदकं लिङ्गरूपं लिङ्गरूपत्वमागताः ॥ २० ॥

असिधारंगिरिम्प्राप्य वशिष्ठस्य तपस्विनः । गुरुर्हिरण्यगर्भाख्यः पञ्चत्वमगमत्तदा
पश्यतांतापसानाञ्च विमाने सार्वकामिके । आरोप्यतम्पारिषदाः कैलासमनयन्मुदा
यस्तु केदारमुद्दिश्यगेहादर्धपथेऽप्यहो । अकातरस्त्यजेत्प्राणान्कैलासेसचिरं वसेत्
तदाश्चर्यं समालोक्य स वशिष्ठस्तपोधनः । केदारमेव लिङ्गेषु बह्वमंस्तसुनिश्चितम्
अथ कृत्वा सकैदारीं यात्रांवाराणसीमगात् । अग्रहीन्नियमञ्चापियथार्थञ्चाकरोत्पुनः

प्रतिचैत्रं सदा चैत्र्यां यावज्जीवमहं ध्रुवम् ।

विलोकयिष्ये केदारं वसन्वाराणसीम्पुरीम् ॥ २६ ॥
तेन यात्राः कृताः सम्यक्षष्टिरेकाधिका मुदा ।
आनन्दकानने नित्यं वसता ब्रह्मचारिणा ॥ २७ ॥
पुनर्यात्रां सवै चक्रेमधौ निकटवर्तिनि । परमोत्साहसन्तुष्टःपलिताकलितोऽप्यलम्
तपोधनैस्तन्निधनं शङ्कमानैर्निवारितः । कारुण्यपूर्णहृदयैरन्यैरपि च सङ्गिभिः ॥
ततोऽपि नतदुत्साहभङ्गोऽभूद्दृढचेतसः । मध्येमार्गं मृतस्यापि गुरोरिव गतिर्मम
इति निश्चितचेतस्के वशिष्ठे तापसे शुचौ । अशूद्रान्नपरीपुष्टे तुष्टोऽहंचण्डिकेऽभवम्
स्वप्ने मया स सम्प्रोक्तो वशिष्ठस्तापसोत्तमः ।
दृढव्रत! प्रसन्नोऽस्मि केदारं विद्धि मामिह ॥ ३२ ॥
अभीष्टञ्च वरं मत्तः प्रार्थयस्वाऽविचारितम् ।
इत्युक्तवत्यपि मयि स्वप्नोमिथ्येति सोऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥
ततोऽपि स मया प्रोक्तः स्वप्नो मिथ्याऽशुचिष्मताम् ।
भवादृशाममिथ्यैव स्वाख्या सुदृशवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥
वरम्ब्रूहि प्रसन्नोस्मिस्वप्न शंकान्त्यजद्विज। तवसत्त्ववतःकिञ्चिन्मयादेयंनकिञ्चिन
इत्युक्तं मे समाकर्ण्य वरयामास मामिति । शिष्योहिरण्यगर्भस्यतपस्विजनसत्तमः
यदि प्रसन्नो देवेश तदा मे सानुगा इमे । सर्वे शूलिन्ननुग्राह्या एष एव वरोमम ॥
देवि! तस्येदमाकर्ण्य परोपकृतिशालिनः । वचनं नितरां प्रीतस्तथेति तमुवाचह ॥
पुनः परोपकरणात्तत्तपोद्विगुणीकृतम् । तेन पुण्येन स मया पुनः प्रोक्तो वरं वृणु
स वशिष्ठो महाप्राज्ञो दृढपाशुपतव्रतः । देवि! मे प्रार्थयामासहिमशैलादिहस्थितिम्
ततस्तत्तपसा कृष्टः कलामात्रेण तत्रहि । हिमशैले ततश्चात्र सर्वभावेन संस्थितः
ततः प्रभाते संजाते सर्वेषां पश्यतामहम् ।
हिमाद्रेः प्रस्थितः प्राप्तः स्तूयमानः सुरर्षिभिः ॥ ४२ ॥
वशिष्ठं पुरतः कृत्वा सर्वसार्थसमायुतम् । हरपापह्रदे तीर्थे स्थितोऽहं तदनुग्रहात्
मत्परिग्रहतः सर्वे हरपापेकृतोदकाः । आराध्यमामनेनैव वपुषा सिद्धिमागताः ॥

तदाप्रभृति लिङ्गेऽस्मिन् स्थितः साधकसिद्धये ।
अविमुक्ते परेक्षेत्रे कलिकाले विशेषतः ॥ ४५ ॥
तुषाराद्रिं समारुह्य केदारं वीक्ष्ययत्फलम् । तत्फलं सप्तगुणितं काश्यां केदारदर्शने
गौरीकुण्डं यथा तत्र हंसतीर्थं च निर्मलम् ।
यथा मधुस्रवा गङ्गा काश्यां तदखिलं तथा ॥ ४७ ॥
इदं तीर्थं हरपापं सप्तजन्माघनाशनम् । गङ्गायां मिलितं पश्चाज्जन्मकोटिकृताघहम्
अत्र पूर्वं तु काकोलौ युध्यन्तौ खान्निपेततुः ।
पश्यतां तत्र संस्थानां हंसौ भूत्वा विनिर्गतौ ॥ ४६ ॥
गौरि!त्वया कृतं पूर्वं स्नानमात्रं महाह्रदे । गौरीतीर्थं ततःख्यातंसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्
अत्रामृतस्रवागङ्गा महामोहान्धकारहृत् । अनेकजन्मजनितजाड्यध्वंसविधायिनी
सरसामानसेनाऽत्र पूर्वं तप्तं महातपः । अतस्तु मानसं तीर्थं जने ख्यातिमिदंगतम्
अत्र पूर्वं जनः स्नानमात्रेणैवप्रमुच्यते । पश्चात्प्रसादितश्चाहं त्रिदशैर्मुक्तिदुर्दशैः ॥
सर्वे मुक्तिं गमिष्यन्ति यदि देवेह मानवाः ।
केदारकुण्डे सुस्नातास्तदोच्छिन्त्तिर्भविष्यति ॥ ५४ ॥
सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां च धर्मिणाम् ।
तस्मात्तनुविसर्गेऽत्र मोक्षं दास्यति नान्यथा ॥ ५५ ॥
ततस्तदुपरोधेन तथेति च मयोदितम् । तदारभ्य महादेवि! स्नानात्केदारकुण्डतः
समर्चनाच्च भक्त्या वै मम नामजपादपि ।
नैःश्रेयसीं श्रियं दद्यामन्यत्रापि तनुत्यजाम् ॥ ५७ ॥
केदारतीर्थे यः स्नात्वा पिण्डान्दास्यति चात्वरः ।
एकोत्तरशतं वंश्यास्तस्य तीर्णाभवाम्बुधिम् ॥ ५८ ॥
भौमवारेयदा दर्शस्तदायः श्राद्धदो नरः । केदारकुण्डमासाद्य गयाश्राद्धेन किं ततः
केदारं गन्तुकामस्य बुद्धिर्दैयानरैरियम् ।
काश्यां स्पृशंस्त्वं केदारं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ६० ॥

त्रकृष्णचतुर्दश्यामुपवासं विधाय च । त्रिगण्डूषान्पिबन्प्रातर्हृल्लिङ्गमधितिष्ठति
केदारोदकपानेन यथा तत्र फलं भवेत् । तथाऽत्र जायतेपुंसांस्त्रीणांचापिन संशयः
केदारभक्तं सम्पूज्य वासोन्नद्रविणादिभिः ।
आजन्मजनितं पापं त्यक्त्वा याति ममालयम् ॥ ६३ ॥
आषण्मासं त्रिकालंयः केदारेशं नमस्यति । तन्नमस्यन्ति सततं लोकपालायमादयः
कलौ केदारमाहात्म्यं योऽपि कोऽपिनवेत्स्यति ।
यो वेत्स्यति सपुण्यात्मा सर्वं वेत्स्यति सध्रुवम् ॥ ६५ ॥
केदारेशं सकृद् दृष्ट्वा देविमेऽनुचरोभवेत् । तस्मात्काश्यां प्रयत्नेनकेदारेशंविलोकयेत्
चित्राङ्गदेश्वरं लिङ्गं केदारादुत्तरेशुभम् । तस्यार्चनान्नरो नित्यं स्वर्गभोगानुपाश्नुते
केदाराद्दक्षिणेभागे नीलकण्ठविलोकनात् ।
संसारोरगदष्टस्य तस्य नास्ति विषाद्भयम् ॥ ६८ ॥
तद्वायव्येऽम्बरीषेशो नरस्तदवलोकनात् । गर्भवासं न चाप्नोति संसारे दुःखसङ्कुले
इन्द्रद्युम्नेश्वरं लिङ्गं तत्समीपे समर्च्यच । तेजोमयेन यानेन स स्वर्गभुवि मोदते
तद्दक्षिणे नरो दृष्ट्वा लिङ्गंकालञ्जरेश्वरम् । जरां कालं विनिर्जित्यममलोकेवसेच्चिरम्
दृष्ट्वा क्षेमेश्वरं लिङ्गमुदक्चित्राङ्गदेश्वरात् । सर्वत्र क्षेममाप्नोति लोकेऽत्र च परत्र च

स्कन्द उवाच

देवदेवेन विन्ध्यारे!केदारमहिमामहान् । इत्याख्यायिपुराऽम्बायैमयातेऽपिनिरूपितः
केदारेश्वरलिङ्गस्य श्रुत्वोत्पत्तिं कृती नरः ।
शिवलोकमवाप्नोति निष्पापो जायते क्षणात् ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेकेदारमहिमाख्यानंनाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

धर्मेशमहिमाख्यानवर्णनम्

पार्वत्युवाच

आनन्दकानने शम्भो! यल्लिङ्गं पुण्यवर्धनम् । यन्नामस्मरणादेव महापातकसंक्षयः ॥
यत्सेव्यं साधकैर्नित्यं यत्रप्रीतिरनुत्तमा । यत्रदत्तं हुतं जप्तं ध्यातं भवति चाक्षयम्
यस्य संस्मरणादेव यल्लिङ्गस्य विलोकनात् ।
यल्लिङ्गप्रणतेश्चाऽपि यस्य संस्पर्शनादपि ॥ ३ ॥
पञ्चामृतादिस्नपनपूर्वाद्यस्यार्चनादपि । तल्लिङ्गं कथयेशान भवेच्छ्रेयः परम्परा ॥

स्कन्द उवाच

इति देवीसमुदितं समाकर्ण्यवटोद्भव !। सर्वज्ञेन यदाख्यातं तदाख्यास्यामितेश्रृणु

देवदेव उवाच

उमेभवत्या यत्पृष्टंभवबन्धविमोक्षकृत् । ततोऽहं कथयिष्यामि लिङ्गंस्थिरमनाभव
आनन्दकानने चात्र रहस्यं परमं मम । नमया कस्यचित्ख्यातं नप्रष्टुं वेत्ति कश्चन
सन्तिलिङ्गान्यनेकानि ममानन्दवने प्रिये !। परंत्वया यथापृष्टं यथावत्तद्ब्रवीमि ते
यत्रमुक्तिस्वरूपात्वं स्वयंतिष्ठसिविश्वगे । यत्र तेनन्दनश्चास्तिक्षेत्रविघ्नविघातकृत्
ममापि येन त्रिपुरसमरे जयकाङ्क्षिणः । जयाशापूरितास्तुत्या बहुमोदकदानतः
यत्राऽस्ति तीर्थमवहृत्पितृप्रीतिविवर्धनम् ।
यत्स्नानाद्वृत्रहा वृत्रवधपापाद्विमुक्तवान् ॥ ११ ॥
धर्माधिकरणं यत्र धर्मराजोऽप्यवाप्तवान् । सुदुष्करं तपस्तप्त्वा परमेण समाधिना
पक्षिणोऽपिहियत्रापुर्ज्ञानं संसारमोचनम् । रम्यो हिरण्मयोयत्र बभूव बहुपाद्द्रुमः
यल्लिङ्गदर्शनादेवदुर्दमोनामपार्थिवः । उद्वेजकोऽपि लोकानां क्षणाद्धर्ममतिस्त्वभूत्
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यमाविर्भावं च सुन्दरि !।

निशामयाऽभिधास्यामि महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥
धर्मपीठं तदुद्दिष्टमत्रानन्दवने मम । तत्पीठदर्शनादेव नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥
पुरा विवस्वतः पुत्रोयमः परमसंयमी । तपस्तताप विपुलं विशालाक्षि ! तवाग्रतः
शिशिरेजलमध्यस्थोवर्षास्वभ्रावकाशकः । तपर्तौपञ्चवह्निस्थःकदाचिदितितप्तवान्
पादाग्राङ्गुष्ठभूस्पर्शी बहुकालं स तस्थिवान् ।
एकपादस्थितः सोऽपि कदाचिद्द् वह्वनेहसम् ॥ १६ ॥
समीराभ्यवहर्तासीद्बहुदिष्टं सदिष्टवान् । पपौ स तुपिपासुः सन्कुशाग्रजलविप्रुषः
दिव्यां चतुर्युगीमित्थं सनिनायतपश्चरन् । चतुर्गुणंदिदृक्षुर्मां परमेण समाधिना ॥
ततोऽहं तस्य तपसा सन्तुष्टः स्थितचेतसः । ययौतस्मैवरान्दातुं शमनायमहात्मने
वटःकाञ्चनशाखाख्यो यस्तपस्तापसन्ततिम् ।
दूरीचकार सुच्छायो बहुद्विजसमाश्रयः ॥ २३ ॥
मन्दमन्दमरुल्लोलपल्लवैः करपल्लवैः । योऽध्वगानध्वसन्तप्तानाह्वयेदिवतापहृत् ॥
स्वानुरागैः सुरभिभिःस्वादुभिश्च पचेलिमैः । प्रीणयेदर्थिसार्थंयो वृत्तैर्निजफलैरलम्
तदधस्तात्परंवीक्ष्यतमहंतपनाङ्गजम् । स्थाणुनिश्चलवर्ष्माणं नासाग्रन्यस्तलोचनम्
तपस्तेजोभिरुद्यद्भिःपरितः परिधीकृतम् । भानुमन्तमिवाकाशे सुनीलेस्वेनतेजसा
स्वाख्याङ्कितं महालिङ्गं प्रतिष्ठाप्याऽतिभक्तितः ।
स्वच्छसूर्योपलमयं तेजःपुञ्जैरिवार्चितम् ॥ २८ ॥
साक्षीकृत्येव तल्लिङ्गं तप्यमानंमहत्तपः । प्रत्यवोचं धर्मराजं वरंब्रूहीति भास्करे
अलंतप्त्वा महाभाग! प्रसन्नोऽस्मिशुभव्रतः । निशम्य!शमनश्चेति दृष्ट्वामां प्रणनाम ह
चकारस्तवनं चापि परिहृष्टेन्द्रियेश्वरः । निर्व्याजंससमाधि च विसृज्य ब्रध्ननन्दनः

धर्म उवाच

नमो नमःकारणकारणानां नमो नमः कारणवर्जिताय ।
नमो नमः कार्यमयाय तुभ्यं नमो नमः कार्यविभिन्नरूप !॥ ३२ ॥
अरूपरूपाय समस्तरूपिणे पराणुरूपाय परापराय ।

अपारपाराय पराब्धिपारप्रदाय तुभ्यं शशिमौलये नमः ॥ ३३ ॥
अनीश्वरस्त्वं जगदीश्वरस्त्वं गुणात्मकस्त्वं गुणवर्जितस्त्वम् ।
कालात्परस्त्वं प्रकृतेः परस्त्वं कालाय कालात्प्रकृते नमस्ते ॥ ३४ ॥
त्वमेव निर्वाणपदप्रदोऽसि त्वमेव निर्वाणमनन्तशक्ते ! ।
त्वमात्मरूपः परमात्मरूपस्त्वमन्तरात्माऽसि चराचरस्य ॥ ३५ ॥
त्वत्तो जगत्त्वं जगदेवसाक्षाज्जगत्त्वदीयं जगदेकबन्धो ! ।
हर्ताऽविता त्वं प्रथमो विधाता विधातृविष्णवीश नमोनमः ॥ ३६ ॥
मृडस्त्वमेव श्रुतिवर्त्मगेषु त्वमेव भीमोऽश्रुतिवर्त्मगेषु ।
त्वं शङ्करःसोमसुभक्तिभाजामुग्रोऽसि रुद्रत्वमभक्तिभाजाम् ॥ ३७ ॥
त्वमेव शूली द्विषतां त्वमेव विनम्रचेतो वचसां शिवोऽसि ।
श्रीकण्ठ एकः स्वपदश्रितानां दुरात्मनां हालहलोग्रकण्ठः ॥ ३८ ॥
नमोऽस्तु ते शङ्कर! शान्त! शम्भो! नमोऽस्तु ते चन्द्रकलावतंस ! ।
नमोऽस्तु तुभ्यं फणिभूषणाय पिनाकपाणेऽन्धकवैरिणे नमः ॥ ३९ ॥
स एव धन्यस्तव भक्तिभाग्यस्तवाऽर्चको यः सुकृती स एव ।
तव स्तुतिं यः कुरुते सदैव स स्तूयते दुश्च्यवनादिदेवैः ॥ ४० ॥
कस्त्वामिह स्तोतुमनन्तशक्ते! शक्नोति मादृग्लघुबुद्धिवैभवः ।
प्राचां न वाचामिहगोचरो यः स्तुतिस्त्वयीयं नतिरेव यावत् ॥ ४१ ॥

स्कन्द उवाच

उदीर्यसूर्यस्य सुतोऽतिभक्त्या नमः शिवायेति समुच्चरन्सः ।
इलामिलन्मौलिरतीव हृष्टः सहस्रकृत्वः प्रणनाम शम्भुम् ॥ ४२ ॥
ततः शिवस्तं तपसाऽतिखिन्नं निवार्य ताभ्यः प्रणतिभ्य ईश्वरः ।
वरान्ददौ सप्त तुरङ्गसूनवे त्वं धर्म्मराजो भव नामतोऽपि ॥ ४३ ॥
त्वमेव धर्माधिकृतो समस्तशरीरिणां स्थावरजङ्गमानाम् ।
मया नियुक्तोऽद्यदिनादिकृत्यः प्रशाधि सर्वान्मम शासनेन ॥ ४४ ॥

त्वं दक्षिणायाश्च दिशोऽधिनाथस्त्वं कर्मसाक्षी भवसर्वजन्तोः ।
त्वद्दर्शिताध्वान इतो व्रजन्तु स्वकर्मयोग्यां गतिमुत्तमाधमाः ॥ ४५ ॥
त्वया यदेतन्ममभक्तिभाजा लिङ्गं समाराधितमत्र धर्म !।
तद्दर्शनात्स्पर्शनतोऽर्चनाच्च सिद्धिर्भविष्यत्यचिरेण पुंसाम् ॥ ४६ ॥
धर्मेश्वरं यः सकृदेवमर्त्यो विलोकयिष्यत्यवदातबुद्धिः ।
स्नात्वा पुरस्तेऽत्र च धर्मतीर्थे न तस्य दूरे पुरुषार्थसिद्धिः ॥ ४७ ॥
कृत्वाऽप्यघानामिहयः सहस्रं धर्मेश्वरं पश्यति दैवयोगात् ।
सहेत नो जातु स नारकीं व्यथां कथां तदीयां दिवि कुर्वतेऽमराः ॥ ४८ ॥
यो धर्मपाठं प्रतिलभ्य काश्यां स्वश्रेयसेनो यततेऽत्र मर्त्यः ।
कथं स धर्मत्वमिवातितेजाः करिष्यति स्वं कृतकृत्यमेव ॥ ४९ ॥
त्वया यथात्ता इह धर्मराज मनोरथास्ते गुरुभिस्तपोभिः ।
तथैवधर्मेश्वरभक्तिभाजां कामाः फलिष्यन्ति न संशयोऽत्र ॥ ५० ॥
कृत्वाऽप्यघान्येवमहान्त्यपीह धर्मेश्वरार्चां सकृदेव कुर्वन् ।
कुतोबिभेति प्रियबन्धुरेव तव त्वदीयार्चितलिङ्गभक्तः ॥ ५१ ॥
पत्रेण पुष्पेण जलेन दूर्वया यो धर्म! धर्मेश्वरमर्चयिष्यति ।
समर्चयिष्यन्त्यमृतान्धसस्तंमन्दारमालाभिरतिप्रहृष्टाः ॥ ५२ ॥
त्वत्तो विभेष्यन्ति कृतैनसो ये भयं न तेषां भविता कदाचित् ।
धर्मेश्वरार्चारचनां करिष्यतां हरिष्यतां बन्धुतया मनस्ते ॥ ५३ ॥
यदत्र दास्यन्ति हि धर्मपीठे नरा द्युनद्यां कृतमज्जनाश्च ।
तदक्षयं भावि युगान्तरेऽपि कृतप्रणामास्तव धर्मलिङ्गे ॥ ५४ ॥
ये कार्त्तिके मासि सिताष्टमीतिथौ यात्रां करिष्यन्ति नरा उपोषिताः ।
रात्रौ च वै जागरणं महोत्सवैर्धर्मेश्वरे ते न पुनर्भवा भुवि ॥ ५५ ॥
स्तुतिं च ये वै त्वदुदीरितामिमां नराः पठिष्यन्ति तवाऽग्रतः क्वचित् ।
निरेनसस्ते मम लोकगामिनः प्राप्स्यन्ति ते वै भवतः सखित्वम् ॥ ५६ ॥

पुनर्वरं ब्रूहि यथेप्सितं ददे तेजोनिधेर्नन्दन ! धर्मराज ! ।
अदेयमत्राऽस्ति न किञ्चिदेव ते विधेहि वागुद्यममात्रमेव ॥ ५७ ॥
प्रसन्नमूर्ति स विलोक्य शङ्करं कारुण्यपूर्णं स्वमनोरथाभिदम् ।
आनन्दसन्दोहसरोनिमग्नो वक्तुं क्षणंनैव शशाक किञ्चित् ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
उत्तरार्धे धर्मेशमहिमाख्यानंनामाऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

धर्मेशाख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

आनन्दबाष्पसलिलरुद्धकण्ठं विलोक्य तम् ।
मृडः परस्पर्श पाणिभ्यां सौधाभ्यान्तु सुधाम्बुधिः ॥ १ ॥
अथ तत्स्पर्शसौख्येन धर्मराजो महातपाः । पुनरङ्कुरयामास तपोग्निज्वलितांतनुम्
ततः प्रोवाच सव्राध्निर्देवदेवमुमापतिम् । प्रसन्नवदनं शान्तं शान्तपारिषदावृतम् ॥
प्रसन्नोऽसि यदीशानसर्वज्ञकरुणानिधे !। किमन्येन वरेणाऽत्रयत्त्वंसाक्षात्कृतो मया
यन्नवेदाविदुः सम्यङ्नचतौवेदपूरुषौ । ततोऽपिवरयोग्योऽस्मितन्नाथप्रार्थयाम्यहम्
श्रीकण्ठाण्डजडिम्भानाममीषां मधुरब्रुवाम् ।
मत्तपक्षिरसाक्षीणां मत्पुरः प्राप्तजन्मनाम् ॥ ६ ॥
पितृभ्यांपरिहीनानामितिहासकथाविदाम् । त्यक्ताहारविहाराणांकीराणांवरदोभव
एतत्प्रसूतिसमये आमयेन प्रपीडिता । शुकी पञ्चत्वमापन्ना शुकः श्येनेन भक्षितः ॥
रक्षितानामनाथानां सदामन्मुखदर्शिनाम् । अनाथनाथभवता ह्यायुः शेषस्वरूपिणा
इति धर्मवचः श्रुत्वा परोपकृतिनिर्म्मलम् । तानाहूय मुने शम्भुर्विनयावनताननान्

उवाच धर्मेतिप्रीतः शुकशावानिदं वचः । अयि पत्ररथाब्रूतसाधवो धर्म्मसङ्गताः
कोवरो भवतां देयो धर्मेशपरिचारिणाम् । साधुसंसर्गसंक्षीणजन्मान्तरमहैनसाम्
इति श्रुत्वा महेशस्य वचनन्तेपतत्त्रिणः । प्रोचुः प्रणम्य देवेशं नमस्ते भवनाशन!॥

पक्षिण ऊचुः

अनाथनाथ सर्वज्ञ को वरो नः समीहितः ।
इतोऽपि त्र्यक्ष! यत्साक्षात्तिर्यक्त्वेऽपि समीक्षिताः ॥ १४ ॥
लाभाः सन्तूद्यमवतांगिरिशेहपरःशताः । परम्परोऽयंलाभोऽत्र यत्त्वंदृग्गोचरीभवेः
यदेतद् दृश्यते नाथ! तत्सर्वं क्षणभङ्गुरम् । अभङ्गुरो भवानेकस्त्वत्सपर्याप्यभङ्गुरा॥
विचित्रजन्मकोटीनां स्मृतिर्नोऽत्रपरिस्फुरेत् ।
एतत्तपस्विरचितलिङ्गपूजाविलोकनात् ॥ १७ ॥
देवयोनिरपिप्राप्ताचिरमस्माभिरीशितः । दिव्याङ्गनाःसहस्राणितत्रभुक्ताःस्वलीलया
आसुरीदानवी नागीनैर्ऋतीचापिकैन्नरी । विद्याधरीचगान्धर्वीयोनिरस्माभिरर्जिता
नरत्वे भूपतित्वञ्चपरिप्राप्तमनेकशः । जले जलचरत्वञ्च स्थले च स्थलचारिता॥
वने वनौकसो जाताग्रामेषु ग्रामवासिनः । दातारो याचितारश्चरक्षितारश्च घातुकाः
सुखिनोऽपि वयञ्जाता दुःखिनोवयमास्मच । जेतारश्चवयञ्जाताः पराजेतार एवच ॥
अधीतिनोपि मूर्खाश्च स्वामिनः सेवकाअपि । चतुर्षु भूतग्रामेषु उत्तमाधममध्यमाः
अभूमभूरिशःशम्भोनक्वापिस्थैर्यमागताः । इतोयोनेस्ततोयोनौततोयोनेस्ततोन्यतः
पिनाकिन्क्वापिनप्रापि सुखलेशो मनागपि । इदानींपुण्यसम्भारैर्धर्मेश्वरविलोकनात्
तापनैःसुतपोवह्निज्वालाप्रज्वलितैनसः । सम्वीक्ष्यत्र्यक्षसाक्षात्त्वांकृतकृत्याबभूविम
तथापि चेद्वरो देयस्तिर्यक्ष्वस्मासु धूर्जटे !।
कृपणेष्वपि शोच्येषु ज्ञानं सर्वज्ञ! देहि तत् ॥ २७ ॥
येनज्ञानेनमुक्ताःस्मोऽमुष्मात्संसारबन्धनात् । यन्त्रिताःप्राकृतैःपाशैर्दुर्भेद्यैश्च मादृशैः
ऐन्द्रं पदं न वाञ्छामो न चान्द्रन्नान्यदेवहि ।
वाञ्छामः केवलं मृत्युं काश्यां शम्भोऽपुनर्भवम् ॥ २६ ॥

त्वत्सान्निध्याद्विजानीमः सर्वज्ञ! सकलं वयम् ।
यथा चन्दनसंसर्गात्सर्वे सुरभयो द्रुमाः ॥ ३० ॥

एतदेव परं ज्ञानं संसोरोच्छित्तिकारणम् । वपुर्विसर्जनं काले यत्तवानन्दकानने
निर्मथ्यविष्वग्वाग्जालंसारभूतमिदंपरम् ।ब्रह्मणोदीरितंपूर्वंकाश्यांमुक्तिस्तनुत्यजाम्
यद्वाच्यं बहुभिर्ग्रन्थैस्तदष्टाभिरिहाक्षरैः । हरिणोक्तंरविपुरःकैवल्यंकाशिसंस्थितौ
याज्ञवल्क्यो मुनिवरः प्रोक्तवान्मुनिसंसदि । रवेरधीत्यनिगमान्काश्यामन्तेपरम्पदम्
स्वामिनापि जगद्धात्री पुरतो मन्दराचले । इदमेव परा प्रोक्तं काशीनिर्वाणजन्मभूः

कृष्णद्वैपायनोऽप्येवं शम्भो! वक्ष्यति नान्यथा ।
यत्र विश्वेश्वरः साक्षान्मुक्तिस्तत्र पदे पदे ॥ ३६ ॥
वदन्त्यन्येऽपि मुनयस्तीर्थसंन्यासकारिणः ।
चिरन्तनालोमशाद्याः काशिका मुक्तिकाशिका ॥ ३७ ॥

वयमप्येवं जानीमो यत्र स्वर्गतरङ्गिणी । आनन्दकानने शम्भोर्मोक्षस्तत्रैवनिश्चितम्
भूतं भावि भविष्यंयत्स्वर्गे मर्त्ये रसातले । तत्सर्वमेवजानामोधर्म्मेशानुग्रहात्परात्
अतोहिरण्यगर्भोक्तं हरिप्रोक्तं मुनीरितम् । भवतोक्तं च निखिलंशम्भोजानामहेवयम्
करामलकवत्सर्वमेतद्ब्रह्माण्डगोलकम् । अस्मद्वाग्गोचरेऽस्त्येव धर्मपीठनिषेवणात्

धर्मराजस्य तपसा तिर्यञ्चोऽपि वयं विभो !।
जाताः स्म निर्विकल्पं हि सर्वज्ञानस्य भाजनम् ॥ ४२ ॥

मधुरम्मृदुलं सत्यं स्वप्रमाणं सुसंस्कृतम् । हितंमितं सदृष्टान्तंश्रुत्वापक्षिसुभाषितम्
देवोऽतिविस्मयापन्नोऽवर्णयत्पीठगौरवम् । त्रैलोक्यनगरे चात्र काशीराजगृहम्मम
तत्रापिभोगभवनमनर्घ्यमणिनिर्मितम् । मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यःप्रासादोमेतिशर्मभूः
पतत्त्रिणोपिमुच्यन्तेयंकुर्वाणाःप्रदक्षिणम् ।स्वेच्छयाविचरन्तःखेखेचराअपिदेवताः

मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्य विलोकनात् ।
शरीराद् दूरतो याति ब्रह्महत्याऽपि नान्यथा ॥ ४७ ॥
मोक्षलक्ष्मीविलासस्य कलशो यैर्निरीक्षितः ।

निधानकलशास्तांस्तु न मुञ्चन्ति पदे पदे ॥ ४८ ॥
दूरतोऽपि पताकापि ममप्रासादमूर्धगा । नेत्रातिथीकृता यैस्तुनित्यन्तेऽतिथयोमम
भूर्मि भित्त्वा स्वयं जातस्तत्प्रासादमिषेण हि ।
आनन्दाख्यस्य कन्दस्य कोऽप्येष परमोऽङ्कुरः ॥ ५० ॥
ब्रह्मादिस्थावरान्तानि यत्र रूपाण्यनेकशः । मामेवोपासतेनित्यंचित्रंचित्रगतान्यपि
ससौधो मेऽखिलेलोकेस्थानम्परमनिर्वृतेः । रतिशालासमेरम्यासमेविश्वासभूमिका
मम सर्वगतस्यापि प्रासादोऽयम्परास्पदम् । परम्ब्रह्मयदाम्नातम्परमोपनिषद्गिरा ॥
अमूर्तं तदहम्मूर्तौ भूयां भक्तकृपावशात् ॥ ५३ ॥
नैःश्रेयस्याः श्रियो धाम तद्याम्यां मण्डपोऽस्ति मे ।
तत्राऽहं सततन्तिष्ठेत्तत्सदो मण्डपम्मम ॥ ५४ ॥
निमेषार्धप्रमाणञ्च कालंतिष्ठति निश्चलः । तत्र यस्तेनवैयोगःसमभ्यस्तःसमाःशतम्
निर्वाणमण्डपंनाम तत्स्थानञ्जगतीतले । तत्रचं सञ्जपन्नेकां लभेत्सर्वश्रुतेः फलम्
प्राणायामन्तु यः कुर्यादप्येकम्मुक्तिमण्डपे ।
तेनाऽष्टाङ्गः समभ्यस्तो योगोऽन्यत्रायुतंसमाः ॥ ५७ ॥
निर्वाणमण्डपे यस्तु जपेदेकं षडक्षरम् । कोटिरुद्रेण जप्तेन यत्फलं तस्य तद्भवेत्
शुचिर्गङ्गाम्भसि स्नातो यो जपेच्छतरुद्रियम् ।
निर्वाणमण्डपे ज्ञेयः सरुद्रो द्विजवेषभृत् ॥ ५६ ॥
ब्रह्मयज्ञं सकृत्कृत्वा मम दक्षिणमण्डपे । ब्रह्मलोकमवाऽप्याथ परं ब्रह्माऽधिगच्छति
धर्मशास्त्रं पुराणानि सेतिहासानि तत्र यः । पठेन्निरभिलाषुः सन्सवसेन्ममवेश्मनि
तिष्ठेदिन्द्रियचापल्यं योनिवार्यक्षणंकृती । निर्वाणमण्डपेऽन्यत्र तेन तप्तम्महत्तपः
वायुभक्षणतोऽन्यत्र यत्पुण्यं शरदां शतम् । तत्पुण्यं घटिकार्धेनमौनं दक्षिणमण्डपे
मितं कृष्णलकेनापि यो दद्यान्मुक्तिमण्डपे। स्वर्णं सौवर्णयानेन स तुसञ्चरतेदिवि
तत्रैकं जागरं कुर्याद्यस्मिन्कस्मिन् दिनेऽपि यः ।
उपोषितोऽर्चयेल्लिङ्गं स सर्वव्रतपुण्यभाक् ॥ ६५ ॥

तत्र दत्त्वा महादानन्तत्र कृत्वा महाव्रतम् । तत्राधीत्याखिलंवेदंच्यवते न नरोदिवः
प्रयाणं कुर्वते यस्य प्राणा मे मुक्तिमण्डपे । समामनुप्रविष्टोऽत्र तिष्ठेद्यावदहं खलु
जलक्रीडां सदा कुर्यां ज्ञानवाप्यां सहोमया । यदम्बुपानमात्रेण ज्ञानंजायेतनिर्मलम्
तज्जलक्रीडनस्थानं मम प्रीतिकरम्महत् । अमुष्मिन्राजसदने जाड्यहृज्जलपूरितम्
तत्प्रासादपुरो भागे मम शृङ्गारमण्डपः । श्रीपीठं तद्धिविज्ञेयं निःश्रीकश्रीसमर्पणम्
मदर्थं तत्रयो दद्याद्दुकूलानि शुचीन्यहो । माल्यानिसुविचित्राणियक्षकर्दमवन्तिच
नानानेपथ्यवस्तूनि पूजोपकरणान्यपि ।
स श्रियालङ्कृतस्तिष्ठेद्यत्र कुत्राऽपि सत्तमः ॥ ७२ ॥
निर्वाणलक्ष्मीर्वृणुते तन्निर्वाणपदाप्तये । यत्र कुत्रापि निधनं प्राप्नुयादपिसद्ध्रुवम्
मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्योत्तरे मम । ऐश्वर्यमण्डपं रम्यं तत्रैश्वर्यंददाम्यहम्
मत्प्रासादैन्द्रदिग्भागे ज्ञानमण्डपमस्ति यत् ।
ज्ञानं दिशामि सततं तत्र मां ध्यायतां सताम् ॥ ७५ ॥
भवानि राजसदने ममास्तिहिमहानसम् । यत्तत्रोपहृतम्पुण्यं निर्विशामि मुदैव तत्
विशालाक्ष्या महासौधे मम विश्रामभूमिका ।
तत्र संसृतिखिन्नानां विश्रामं श्राणयाम्यहम् ॥ ७७ ॥
नियमस्नानतीर्थञ्च चक्रपुष्करिणी मम । तत्र स्नानवतांपुंसांतन्नैर्मल्यं दिशाम्यहम्
यदाहुः परमन्तत्त्वं यदाहुर्ब्रह्मसत्तमम् । स्वसंवेद्यं यदाहुश्चतत्तत्रान्ते दिशाम्यहम्
यदाहुस्तारकं ज्ञानं यदाहुरतिनिर्मलम् । स्वात्मारामंयदाहुश्च तत्तत्रान्तेदिशाम्यहम्
जगन्मङ्गलभूर्यात्र परमामणिकर्णिका । विपाशयामि तत्राहं कर्मभिः पाशितान्पशून्
निर्वाणश्राणने यत्र पात्रापात्रं न चिन्तये ।
आनन्दकानने तन्मे दानस्थानं दिवानिशम् ॥ ८२ ॥
भवाम्बुधौ महागाधे प्राणिनः परिमज्जतः ।
भूत्वैव कर्णधारोऽन्ते यत्र सन्तारयाम्यहम् ॥ ८३ ॥
सौभाग्यभाग्यभूर्या वै विख्याता मणिकर्णिका ।

ददामि तस्यां सर्वस्वमग्रजायाऽन्त्यजाय वा ॥ ८४ ॥
महासमाधिसम्पन्नैर्वेदान्तार्थनिषेविभिः । दुष्प्रापोन्यत्रयोमोक्षःशोच्यैरपिसलभ्यते
दीक्षितो वा दिवाकीर्तिः पण्डितो वाऽप्यपण्डितः ।
तुल्यो मे मोक्षदीक्षायां सम्प्राप्य मणिकर्णिकाम् ॥ ८६ ॥
यस्त्यागेऽन्यत्रकृपणस्तत्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ।
ददामि जन्तुमात्राय सर्वस्वञ्चिरसञ्चितम् ॥ ८७ ॥
यदिदैवादिह प्राप्तस्त्रिसंयोगोऽतिदुर्घटः । अविचारन्तदा देयं सर्वस्वञ्चिरसञ्चितम्
शरीरमथ सम्पत्तिरथसा मणिकर्णिका । त्रिसंयोगोऽयमप्राप्यो देवैरिन्द्रादिकैरपि
पुनः पुनर्विचार्येतिजन्तुमात्रेभ्यएव च । निर्वाणलक्ष्मींयच्छामिसदोपमणिकर्णिकम्
मुक्तिदानमही सा मे वाराणस्यां महीयसी ।
तन्महीरजसा साम्यं त्रिलोक्यपि न चोद्वहेत् ॥ ९१ ॥
परंलिङ्गार्चनस्थानमविमुक्तेश्वरेश्वरम् । तत्र पूजां सकृत्कृत्वा कृतकृत्यो नरो भवेत्
सायम्पाशुपतीं सन्ध्यां कुर्यां पशुपतीश्वरे ।
विभूतिधारणात्तत्र पशुपाशैर्न बध्यते ॥ ९३ ॥
प्रातः सन्ध्यां करोम्येव सदोङ्कारनिकेतने । तत्रैकापिकृतासन्ध्यासर्वपातककृन्तनी
वसामि कृत्तिवासेऽहं सदा प्रतिचतुर्दशि । अत्र जागरणं कृत्वाचतुर्दश्यांनगर्भभाक्
रत्नेश्वरोऽर्चितो दद्यान्महारत्नानि भक्तितः ।
रत्नैःसमर्च्य तल्लिङ्गंस्त्रीरत्नादिलभेन्नरः ॥ ९६ ॥
विष्टपत्रितयान्तस्थोऽप्यहं लिङ्गेत्रिविष्टपे । तिष्ठामि सततम्भक्तमनोरथसमृद्धये ॥
विरजस्कं महापीठंतत्र संसेव्य मानवः । विरजा जायते नूनं चतुर्नदकृतोदकः ॥
महादेवे महापीठं मम साधकसिद्धिदम् ।
तत्पीठदर्शनादेव महापापैः प्रमुच्यते ॥ ९९ ॥
पितृप्रीतिप्रदम्पीठं वृषभध्वजसञ्ज्ञकम् । पितृतर्पणकृत्तत्रपितॄंस्तारयति क्षणात्
मादिकेशवपीठेऽहमादिकेशवरूपधृक् । श्वेतद्वीपंनयेभक्तान्वैष्णवानतिवल्लभान् ॥

तत्रैव मङ्गलापीठे सर्वमङ्गलदायिनि। उपपञ्चनदे तीर्थे भक्तान्सन्तारयाम्यहम् ॥
बिन्दुमाधवरूपेण यत्राऽहं वैष्णवाञ्जनान्। नयेपञ्चनदस्नातांस्तद्विष्णोःपरमम्पदम्
पञ्चमुद्रे महापीठे ये वीरेश्वरसेवकाः। तेषां परमनिर्वाणंकालेनाऽल्पेन जायते १०४
तत्रसिद्धेश्वरीपीठे चन्द्रेश्वरसमीपतः। तत्रसन्निधिकर्तृणांसिद्धिःषण्मासतो भवेत्
काश्याञ्च योगिनीपीठे योगसिद्धिविधायिनि।
सिद्धीरुच्चाटनाद्याश्च कैर्न लब्धाः सुसाधकैः ॥ १०६ ॥
अनेकानीह पीठानि सन्ति काश्याम्पदे पदे । परं धर्मेशपीठस्यकाचिच्छक्तिरनुत्तमा
यत्राऽमी बालकीराश्च निर्मलज्ञानभाजनम्।
आसुः सदुपदेशान्मे त्रातत्रातेतिभाषिणः ॥ १०८ ॥
एतद्धर्मेश्वरं पीठन्त्यजाम्यद्य दिनावधि। न कदाचित्तरणिज त्वत्तपोवनमुत्तमम् ॥
ममानुग्रहतः कीरानेतान्पश्य रवेःसुत !। दिव्यं विमानमारुह्य गन्तारो मत्पुरम्महत्
तत्र भुक्त्वा चिरम्भोगाञ्ज्ञानम्प्राप्य मयेरितम्।
इह मुक्तिमवाप्स्यन्ति त्वत्संसर्गातिनिर्मलाः ॥ १०११ ॥
इत्युक्तवतिदेवेशे कैलासशिखरोपमम्। दिव्यं विमानमापन्नं रुद्रकन्यापरिष्कृतम् ॥
आरुह्य तेन यानेन दिव्यरूपधराः खगाः। कैलासमभिसञ्जग्मुर्धर्ममापृच्छ्यतेऽमलाः

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे धर्मेशाख्यानं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

विश्वभुजाशाविनायकप्रशंसनेमनोरथतृतीयाव्रताख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

कुम्भोद्भूत! तदाश्चर्यं विलोक्य जगदम्बिका।
उवाच शम्भुं प्रणता प्रणतार्तिहरं परम्॥ १॥

अम्बिकोवाच

अस्य पीठस्य माहात्म्यं महादेव महेश्वर!। तिरश्चामपि यज्जातंज्ञानं संसारमोचनम्
अतः प्रभावंविज्ञाय धर्मपीठस्य धूर्जटे!। धर्मेश्वरसमीपेऽहं स्थास्याम्यद्यदिनावधि
अत्रलिङ्गंतुयेभक्ताःस्त्रियोवापुरुषास्तुवा। तेषामभीष्टांसंसिद्धिंसाधयिष्याम्यहंसदा

ईश्वर उवाच

साधुकृतंत्वया देवि! कृतवत्या परिग्रहम्। अस्येहधर्मपीठस्य मनोरथकृतः सताम्
त एव विश्वभोक्तारो विश्वमान्यास्त एव हि।
ये त्वां विश्वभुजामत्र पूजयिष्यन्ति मानवाः॥ ६॥
विश्वे विश्वभुजे विश्वस्थित्युत्पत्तिलयप्रदे।
नरास्त्वदर्चकाश्चाऽत्र भविष्यन्त्यमलात्मकाः॥ ७॥
मनोरथतृयीयायां यस्ते भक्तिं विधास्यति। तन्मनोरथसंसिद्धिर्भवित्रीमदनुग्रहात्
नारीवा पुरुषोवाऽथ त्वद्व्रताचरणात्प्रिये। मनोरथानिह प्राप्य ज्ञानमन्तेचलप्स्यते

देव्युवाच

मनोरथतृतीयायां व्रतं कीदृक्कथाकथम्। किंफलंकैः कृतंनाथ! कथयैतत्कृपां कुरु॥

ईश्वर उवाच

शृणुदेवि यथापृष्टं भवत्या भवतारिणि!। मनोरथव्रतं चैतद्‌ गुह्याद्गुह्यतरम्परम्॥
पुलोमतनया पूर्वं ततापपरमंतपः। किञ्चिन्मनोरथं प्राप्तुं नचाऽऽप तपसः फलम्॥

अपूपुजत्ततो मां सा भक्त्या परमया मुदा ।
गीतेन सरहस्येन कलकण्ठीकलेनहि ॥ १३ ॥

तद्गानेनातिसन्तुष्टो मृदुना मधुरेण च । सुतालेन सुरङ्गेण धातुमात्रा कलावता ॥
प्रोवाच त्वं वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि पुलोमजे । अनेन च सुगीतेन त्वनयालिङ्गपूजया

पुलोमजोवाच

यदि प्रसन्नो देवेश तदा यो मे मनोरथः । तं पूरय महादेव महादेवीमहाप्रिय ॥
सर्वदेवेषु यो मान्यः सर्वदेवेषु सुन्दरः । यायजूकेषु सर्वेषु यः श्रेष्ठः सोऽस्तुमेपतिः
यथाऽभिलषितं रूपं यथाऽभिलषितं सुखम् । यथाऽभिलषितंचायुःप्रसन्नोदेहिमेभव

यदा यदा च पत्या मे सङ्गः स्याद्धृतसुखेच्छया ।
तदा तदा च तं देहं त्यक्त्वाऽन्यं देहमाप्नुयाम् ॥ १६ ॥

सदा च लिङ्गपूजायां मम भक्तिरनुत्तमा । भव भूयाद्भवहर जरामरणहारिणी ॥
भर्तुर्व्ययेऽपि वैधव्यं क्षणमात्रमपीह न । मम भावि महादेव पातिव्रत्यं च यातु मा

स्कन्द उवाच

इमं मनोरथं तस्याः पौलोम्याः पुरसूदनः ।
समाकर्ण्य क्षणं स्मित्वा प्राहेशो विस्मयान्वितः ॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच

पुलोमकन्ये! यश्चैष त्वयाऽकारिमनोरथः । लप्स्यसेव्रतचर्यातस्तत्कुरुष्वजितेन्द्रिये
मनोरथतृतीयायाश्चरणेनभविष्यति । तत्प्राप्तये व्रतं वक्ष्ये तद्विधेहियथोदितम् ॥
तेन व्रतेन चीर्णेन महासौभाग्यदेन तु । अवश्यं भविता बाले तव चैवं मनोरथः ॥

पुलोमकन्योवाच

कारुण्यवारिधे!शम्भोप्रणतप्राणिसर्वद !। किमात्मिकाथकाशक्तिःकापूज्यातत्रदेवता
कदाचतद्विधातव्यमितिकर्तव्यता च का । इत्याकर्ण्यशिवोवाक्यंतां तुप्रणिजगादह

ईश्वर उवाच

मनोरथतृतीयायां व्रतं पौलोमि! तच्छुभम् ।

पूज्या विश्वभुजा गौरी भुजविंशतिशालिनी ॥ २८ ॥
वरदोऽभयहस्तश्च साक्षसूत्रः समोदकः ।
देव्याः पुरस्ताद् व्रतिना पूज्य आशाविनायकः ॥ २९ ॥
चैत्रशुक्लद्वितीयायांकृत्वावैदन्तधावनम् ।सायन्तनींचनिर्वर्त्यनातितृप्त्याभुजिक्रियाम्
नियमं चेति गृह्णीयाज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
सन्त्यक्तास्पृश्यसंस्पर्शः शुचिस्तद्गतमानसः ॥ ३१ ॥
प्रातर्व्रतं चरिष्यामि मातर्विश्वभुजेऽनघे । विधेहि तत्रसान्निध्यं मन्मनोरथसिद्धये
नियमं चेतिसंगृह्यस्वपेद्रात्रौ शुभंस्मरन् । प्रातरुत्थायमेधावीविधायावश्यकंविधिम्
शौचमाचमनं कृत्वा दन्तकाष्ठं समाददे । अशोकवृक्षस्य शुभं सर्वशोकनिशातनम्
नित्यन्तनं च निष्पाद्य विधिं विधिविदाम्वरः ।
स्नात्वा शुद्धाम्बरः सायं गौरीपूजां समाचरेत् ॥ ३५ ॥
आदौ विनायकं पूज्य घृतपूरान्निवेद्यच । ततोऽर्चयेद्विश्वभुजामशोककुसुमैःशुभैः ३६
अशोकवर्तिनैवेद्यैर्धूपैश्चागुरुसम्भवैः ।
कुङ्कुमेनानुलिप्यादावेकभक्तं ततश्चरेत् ॥ ३७ ॥
अशोकवर्तिसहितैर्घृतपूरैर्मनोहरैः । एवं चैत्रतृतीयायां व्यतीतायां पुलोमजे !॥
राधादिफाल्गुनान्तासु तृतीयासु व्रतं चरेत् ।
क्रमेण दन्तकाष्ठानि कथयामि तवाऽनघे ॥ ३९ ॥
अनुलेपनवस्तूनि कुसुमानि तथैव च । नैवेद्यानिगजास्यस्य देव्याश्चाऽपि शुभव्रते
अन्नानि चैकभक्तस्य शृणु तानि फलाप्तये । जम्ब्वपामार्गखदिरजातीचूतकदम्बकम्
प्लक्षोदुम्बरखर्जूरीबीजपूरीसदाडिमी । दन्तकाष्ठद्रुमा एते व्रतिनः समुदाहृताः
सिन्दूरागुरुकस्तूरीचन्दनं रक्तचन्दनम् । गोरोचनादेवदारुपद्माक्षं च निशाद्वयम्
प्रीत्यानुलेपनं बाले! यक्षकर्दमसम्भवम् । सर्वेषामप्यलाभेच प्रशस्तो यक्षकर्दमः
कस्तूरिकाया द्वौभागौ द्वौ भागौ कुङ्कुमस्यच ।
चन्दनस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि ॥ ४५ ॥

यक्षकर्दम इत्येष समस्तसुरवल्लभः । अनुलिप्याथकुसुमैरर्चयेद्वच्मि तान्यपि ॥
पाटलामल्लिकापद्मकेतकीकरवीरकैः । उत्पलैराजचम्पैश्च नन्द्यावर्तैश्च जातिभिः ॥
कुमारीभिः कर्णिकारैरलाभेतच्छदैः सह । सुगन्धिभिःप्रसूनौघैःसर्वालाभेपिपूजयेत्
करम्भोदधिभक्तं च सचूतरसमण्डकाः । फेणिका वटकाश्चैवपायसं च सशर्करम्
समुद्गं सघृतं भक्तं कार्त्तिके विनिवेदयेत् ।
इण्डेरिकाश्च लडडूका माघे लम्पसिका शुभा ॥ ५० ॥
मुष्टिकाः शर्करागर्भाः सर्पिषापरिसाधिताः ।
निवेद्याः फाल्गुनेदेव्यै सार्धं विघ्नजिता मुदा ॥ ५१ ॥
निवेदयेद्यदन्नंहिएकभक्तेऽपि तत्स्मृतम् । अन्यंनिवेद्य सम्मूढोभुञ्जानोऽन्यत्पतेदधः
प्रतिमासं तृतीयायामेवमाराध्यवत्सरम् । व्रतसम्पूर्तयेकुर्यात्स्थण्डिलेऽग्निसमर्चनम्
जातवेदसमन्त्रेण तिलाज्यद्रविणेनच । शतमष्टाधिकं होमं कारयेद्विधिना व्रती ॥
सदैव नक्ते पूजोक्ता सदा नक्ते तुभोजनम् । नक्त एव हिहोमोऽयं नक्त एवक्षमापनम्
गृहाण पूजां मे भक्त्या मातर्विघ्नजिता सह ।
नमोऽस्तु ते विश्वभुजे ! पूरयाऽऽशु मनोरथम् ॥५६ ॥
नमोविघ्नकृते तुभ्यं नम आशाविनायक !। त्वं विश्वभुजया सार्धं ममदेहिमनोरथम्
एतौ मन्त्रौ समुच्चार्य पूज्यौ गौरीविनायकौ ।
व्रतक्षमापने देयः पर्यङ्कस्तूलिकान्वितः ॥ ५८ ॥
उपधान्यासमायुक्तो दीपीदर्पणसंयुतः । आचार्यं च सपत्नीकं पर्यङ्क उपवेश्यच ॥
व्रतीसमर्चयेद्वस्त्रैः करकर्णविभूषणैः । सुगन्धचन्दनैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितः ॥
दद्यात्पयस्विनीं गां च व्रतस्य परिपूर्तये ।
तथोपभोगवस्तूनि च्छत्रोपानत्कमण्डलुम् ॥ ६१ ॥
मनोरथतृतीयाया व्रतमेतन्मयाकृतम् । न्यूनातिरिक्तं सम्पूर्णमेतदस्तु भवद्गिरा ।
इत्याचार्यं समापृच्छय तथेत्युक्तश्च तेन वै ।
आसीमान्तमनुव्रज्य दत्त्वाऽन्येभ्योऽपि शक्तितः ॥ ६३ ॥

नक्तंसमाचरेत्पोष्यैः सार्धंसुप्रीतमानसः । प्रातश्चतुर्थ्यांसम्भोज्य चतुश्च कुमारकान्
अभ्यर्च्यगन्धमाल्याद्यैर्द्वादशापिकुमारिकाः । एवंसम्पूर्णतांयातिव्रतमेतत्सुनिर्मलम्
कार्यंमनोरथावाप्त्यै सर्वैरेतद्व्रतं शुभम् । पत्नींकनोरमांकुल्यांमनोवृत्त्यनुसारिणीम्
तारिणींदुःसंसारसागरस्यपतिव्रताम् । कुर्वन्नेतद् व्रतंवर्षं कुमारः प्राप्नुयात्स्फुटम्

कुमारी पतिमाप्नोति स्वाढ्यं सर्वगुणाधिकम् ।
सुवासिनी लभेत्पुत्रान्पत्युः सौख्यमखण्डितम् ॥ ६८ ॥

दुर्भगासुभगास्याच्चधनाढ्यास्याद्दरिद्रिणी । विधवापिनवैधव्यंपुनराप्नोतिकुत्रचित्
गुर्विणीचशुभंपुत्रं लभते शुचिरायुषम् । ब्राह्मणोलभतेविद्यां सर्वसौभाग्यदायिनीम्

राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं वैश्यो लाभं च विन्दति ।
चिन्तितं लभते शूद्रो व्रतस्यास्य निषेवणात् ॥ ७१ ॥
धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमप्नुयात् ।
कामी कामानवाप्नोति मोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात् ॥ ७२ ॥

योयो मनोरथो यस्य सततंविन्दते ध्रुवम् । मनोरथतृतीयाया व्रतस्य चरणाद्व्रती

स्कन्द उवाच

इत्थं निशम्यशिवतः शिवा सन्तुष्टमानसा । पुनः पप्रच्छविश्वेशं प्रबद्धकरसम्पुटा
अन्यत्र येव्रतं चैतत्करिष्यन्तिसदाशिव !। तेकथंपूजयिष्यन्तिमाञ्चआशाविनायकम्

शिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि! सर्वसन्देहभेदिनि !।
वाराणस्यां समर्च्या त्वं विश्वे प्रत्यक्षरूपिणी ॥ ७६ ॥

आशाविघ्नजिता सार्धंसर्वाशापूर्तिकारिणा । हारिणानन्तविघ्नानांममक्षेत्रशुभार्थिना
क्षिप्रमागमयित्वा चनत्वा दूरं गतानपि । कृतकृत्यान्विधायाऽथचिन्तितैःसुमनोरथैः
अन्यत्र व्रतिभिर्विश्वे काञ्चनीप्रतिमातव । पञ्चकृष्णलकादूर्ध्वंकार्याविघ्नहृतोऽपिच

आचार्याय व्रती दद्याद् व्रतान्ते प्रतिमाद्वयम् ।
सकृत्कृते व्रते चाऽस्मिन्कृतकृत्यो व्रती भवेत् ॥ ८० ॥

ततः पुलोमजा देवि! श्रुत्वैतद्व्रतमुत्तमम् । कृत्वामनोरथं प्रापयथाभिवाञ्छितंहृदि
अरुन्धत्या वसिष्ठोऽपि लब्धोऽत्रिरनसूयया ।
सुनीत्योत्तानपादाच्च ध्रुवः प्राप्तोऽङ्गजोत्तमः ॥ ८२ ॥
सुनीतेर्दुर्भगत्वञ्च पुनरस्माद्व्रताद्गतम् । चतुर्भुजः पतिः प्राप्तः क्षीरनीरधिजन्मना
किं बहूक्तेन सुश्रोणि! कृतं येनव्रतं त्विदम् । व्रतानितेनसर्वाणिकृतानिव्रतिनाध्रुवम्
श्रुत्वा धीमान्कथास्पुण्यां पुनस्तद्गतमानसः ।
शुभबुद्धिमवाप्नोति पापैरपि विमुच्यते ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे धर्मेश्वराख्यानेविश्वभुजाशाविनायकप्रशंसने मनोरथतृतीयाव्रताख्यानं
नामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

धर्मेशाख्यानवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

धर्मतीर्थस्यमाहात्म्यंकीदृग्देवेनशम्भुना । स्कन्द!देव्यैसमाख्यातंतदाख्याहिकृपांकुरु

स्कन्द उवाच

विन्ध्योन्नतिहृदाख्यामिधर्मतीर्थसमुद्भवम् । आकर्णय महाप्राज्ञ! यथादेवेनभाषितम्
वृत्रं निहत्यवृत्रारिर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् । अनुतप्तोऽथ पप्रच्छ प्रायश्चित्तं पुरोहितम्

बृहस्पतिरुवाच

यदि त्वं देवराजेमां ब्रह्महत्यां सुदुस्त्यजाम् ।
अपानुनुत्सुस्तद्याहि काशीं विश्वेशपालिताम् ॥ ४ ॥

नान्यत्किञ्चित्क्वचिद् दृष्टं ब्रह्महत्या महौषधम् ।
राजधानीं परित्यज्य शक्र! विश्वेशितुःपराम् ॥ ५ ॥
भैरवस्यापिहस्ताग्रादपतद्वैधसंशिरः । यत्रानन्दवने तत्र वृत्रशत्रोव्रजद्रुतम् ॥
सीमानमपि सम्प्राप्य शक्रानन्दवनस्यहि । प्रह्महत्या पलायेत वेपमाना निराश्रयाः
अन्येषामपिपापानां महापापजुषामपि । नाशयित्री पराकाशी विश्वेशसमधिष्ठिता
महापातकतोमुक्तिः काश्यामेव शतक्रतो !। महासंसारतोमुक्तिःकाश्यामेवनचान्यतः
निर्वाणनगरीकाशी काशीसर्वाघसङ्घहृत् ।
विश्वेशितुःप्रिया काशी द्यौः काशी सदृशी नहि ॥ १० ॥
ब्रह्महत्याभयं यस्य यस्य संसारतो भयम् ।
जातुचित्तेन न त्याज्या काशिका मुक्तिकाशिका ॥ ११ ॥
जन्तूनांकर्मबीजानां यत्रदेहविसर्जने । न जातुचित्प्ररोहोऽस्तिहरदृष्ट्याप्तशुष्मणाम्
तां काशीं प्राप्यवृत्रारे! वृत्रहत्यापनुत्तये । समाराध्य विश्वेशं विश्वमुक्तिप्रदायकम्
वृहस्पतेरितिवचो निशम्य ससहस्रदृक् । आयाद् द्रुततरंकाशींमहापातकघातुकाम्
स्नात्वोत्तरवहायांच धर्मेशं परितःस्थितः । आराधयन् महादेवं ब्रह्महत्यापनुत्तये
महारुद्रजपासक्तःसुत्रामाऽथत्रिलोचनम् । ददर्शलिङ्गमध्यस्थंस्वभासादीपिताम्बरम्
पुनस्तुष्टाव वेदोक्तै रुद्रसूक्तैरनेकधा । विनिष्क्रम्य ततो लिङ्गादाविर्भूय भवोऽवदत्
शचीपते! प्रसन्नोऽस्मि वरं वरयसुव्रत । किं देयं द्रुतमाख्याहि धर्मपीठकृतास्पद !॥
श्रुत्वेति देवदेवस्य स प्रेमवचनं हरिः । सर्वज्ञकिन्तेऽविदितं तमुवाचेति वृत्रहा
ततस्तत्कृपया नुन्नो धर्मपीठनिषेवणात् ।
निष्पाद्य तीर्थं तत्रेशोऽत्र स्नाहीन्द्रेतिचाऽब्रवीत् ॥ २० ॥
तत्रेन्द्रः स्नानमात्रेण दिव्यगन्धोऽभवत्क्षणात् ।
अवाप च रुचिश्चारु प्राक्तनीं शातयाज्ञिकीम् ॥ २१ ॥
तदाश्चर्यमथोदृष्ट्वा मुनयोनारदादयः । परिसस्नुर्मुदायुक्ता धर्मतीर्थेऽघहारिणि ॥
अतर्पयन्पितृन्दिव्यान्व्यधुःश्राद्धानिश्रद्धया । धर्मेशंस्नापयामासुस्तत्तीर्थाम्बुभृतैर्घटैः

तदाप्रभृतितत्तीर्थं धर्मान्धुरितिविश्रुतम् । ब्रह्महत्यादि पापानामक्लेशं क्षालनं परम्
यत्फलं तीर्थराजस्य स्नानेनपरिकीर्त्यते । सहस्रगुणितंतत्स्याद्धर्मान्धुस्नानमात्रतः
गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे गङ्गासागरसङ्गमे । यत्फलं लभते मर्त्यो धर्मतीर्थे तदाप्नुयात्
नर्मदायां सरस्वत्यांगौतम्यांसिंहगेगुरौ । स्नात्वायत्फलमाप्येतधर्मकूपेतदाप्नुयात्
मानसे पुष्करे चैव द्वारिकेसागरेतथा । तीर्थेस्नात्वाफलंयत्स्यात्तत्स्याद्धर्मजलाशये
कार्त्तिक्यां सूकरक्षेत्रे चैत्र्यांगौरीमहाह्रदे । शङ्खोद्धारेहरिदिनेयत्फलंतत्फलंत्विह
तीर्थद्वये प्रतीक्षन्ते सिस्नासून्पितरो नरान् । गङ्गायांधर्मकूपेच पिण्डनिर्वपणाशया
पितामहसमीपेवा धर्मेशस्याग्रतोऽथवा । फल्गौच धर्मकूपे च माद्यन्ति प्रपितामहाः
धर्मकूपे नरः स्नात्वापरितर्प्य पितामहान् । गयांगत्वाकिमधिकंकर्तापितृमुदावहम्

यथा गयायां तृप्ताःस्युः पिण्डदाने पितामहाः ।
धर्मतीर्थे तथैव स्युर्न न्यूनं नैव चाधिकम् ॥ ३३ ॥
ते धन्याः पितृभक्तास्तु प्रीणितास्तैः पितामहाः ।
पैत्रादृणाद्धर्मतीर्थे निष्कृतिर्यैः कृता सुतैः ॥ ३४ ॥

तत्तीर्थस्यप्रभावेण निष्पापोऽभूत्क्षणेन च । प्रणम्यदेवदेवशमिन्द्रोऽगादमरावतीम्
अपारो महिमा तस्यधर्मतीर्थस्यकुम्भज !। तत्कूपेस्वन्निरीक्ष्यापिश्राद्धदानफलंलभेत्
तत्रापि काकिणीमात्रं यच्छेत्पितृमुदेनरः । अक्षयम्फलमाप्नोति धर्मपीठप्रभावतः

तत्र यो भोजयेद्विप्रान्यतिनोऽथ तपस्विनः ।
सिक्थे सिक्थे लभेत्सोऽथ वाजपेयफलं स्फुटम् ॥ ३८ ॥

प्राप्यामरावतीं शक्रस्ततोदिविषदांपुरः । धर्मपीठस्यमाहात्म्यंमहत्काश्यामवर्णयत्
आगत्यपुनरप्यत्र शम्भोरानन्दकानने । मुनिवृन्दारकैः सार्द्धं लिङ्गमस्थापयद्धरिः
तारकेशात्पश्चिमत इन्द्रेश्वरमितीरितम् । तस्य सन्दर्शनात्पुंसामैन्द्रलोकोन दूरतः

तद्दक्षिणे शचीशश्च स्वयं शच्या प्रतिष्ठितः ।
शचीशार्चनतः स्त्रीणां सौभाग्यमतुलंभवेत् ॥ ४२ ॥

तत्समीपेऽस्तिरम्भेशो बहुसौख्यसमृद्धिदः । इन्द्रेश्वरस्य परितोलोकपालेश्वरोपरः

तदर्चनात्प्रसीदन्तिलोकपालाःसमृद्धिदाः ।धर्मेशात्पश्चिमाशायांधरिणीशःप्रकीर्तितः
तद्दर्शनेन धैर्यं स्याद्राज्ये राजकुलादिषु ॥ ४४ ॥
धर्मेशाद्दक्षिणे पूज्यं तत्त्वेशाख्यम्परंनरैः । तत्त्वज्ञानम्प्रवर्तेत तल्लिङ्गस्य समर्चनात्
धर्मेशात्पूर्वदिग्भागे वैराग्येशं समर्चयेत् । निवृत्तिश्चेतसस्तस्य लिङ्गस्यस्पर्शनादपि
ज्ञानेश्वरं तथैशान्यां ज्ञानदंसर्वदेहिनाम् । ऐश्वर्येशमुदीच्याञ्चलिङ्गाद्धर्मेश्वराच्छुभात्
तद्दर्शनाद्भवेन्नृणामैश्वर्यं मनसेप्सितम् । पञ्चवक्त्रस्यरूपाणि लिङ्गान्येतानिकुम्भज!
एतान्यवश्यं संसेव्य नरः प्राप्नोति शाश्वतम् ।
अन्य त्तत्रैव यद्वृत्तं तदाख्यामि मुने! शृणु ॥ ४६ ॥
यच्छ्रुत्वापि नरो घोरे संसाराब्धौनमज्जति । कदम्बशिखरोनामविन्ध्यपादोमहानिह
दमस्य पुत्रस्तत्रासीद्दुर्दमोनामपार्थिवः । पितर्युपरतेराज्यंसम्प्राप्याविजितेन्द्रियः
हरेत्पुरन्ध्रीःप्रसभम्पौराणां काममोहितः ।
असाधवः प्रियास्तस्य साधवोऽप्रियतां ययुः ॥ ५२ ॥
अदण्ड्यान्दण्डयाञ्चक्रे दण्ड्येष्वासीत्पराङ्मुखः ।
सदैव मृगयाशीलः सोऽभून्मृगयुसङ्गतः ॥ ५३ ॥
विवासिताः स्वविषयात्तेन सन्मतिदायिनः ।
धर्माधिकारिणः शूद्रा ब्राह्मणाः करदीकृताः ॥ ५४ ॥
परदारेषु सन्तुष्टः स्वदारेषु पराङ्मुखः । आनर्चजातुचिन्नैवदेवौ दुःखान्तकारिणौ
हारिणौ सर्वपापानांसर्ववाञ्छितदायिनौ । सर्वेषांजगतीसारौश्रीकण्ठश्रीपतीपती
स्वप्रजास्वेक उदितो धूमकेतुरिवाऽपरः । दुर्दमोनामभूपालः क्षयायाकाण्ड एव हि
स कदाचिन्मृगयुभिः पापर्धिव्यसनातुरः ।
साधं विवेशारण्यानि गृध्रिपृष्ठानुगो हयी ॥ ५८ ॥
एकाकी दैवयोगेन दुर्दमः सोऽवनीपतिः । धन्वीतुरङ्गमारूढोऽविशदानन्दकननम्
सविलोक्याथ सर्वत्र पादपानवकेशिनः । सुच्छायांश्च सुविस्तारान्गतश्रमइवाभवत्
सुगन्धेन सुशीतेन सुमन्देन सुवायुना । क्षणंसंवीजितो राजा पल्लवव्यजनैःकुजैः

केवलम्मृगयाजातस्तत्खेदो न व्यपाव्रजत् ।
आजन्म जनितः खेदो निरगात्तद्वनेक्षणात्॥ ६२ ॥
मध्येवनं सचापश्यत्प्रासादंचुम्बिताम्बरम् । महारत्नशलाकानां रम्यमेकमिवाकरम्
अथावरुह्य तुरगात्सभूपालोऽतिविस्मितः । धर्मेशमण्डपम्प्राप्यस्वात्मानंप्रशशंसह
धन्योऽस्म्यहम्प्रसन्नोऽस्मि धन्ये मेऽद्यविलोचने ।
धन्यमद्यतनश्चाहर्यदपश्यमिमां भुवम् ॥ ६५ ॥
पुनर्निनिन्द चात्मानं धर्मपीठप्रभावतः । धिङ्मां दुर्जनसंसर्गंत्यक्तसज्जनसङ्गमम्
जन्तूद्वेगकरं मूढम्प्रजापीडनपण्डितम् । परदारपरद्रव्यापहृत्यासुखमानिनम् ॥
अद्ययावन्ममगतं वृथाजन्माल्पमेधसः । धर्मस्थानानीदृशानि यद्दृष्टानिनकुत्रचित्
एवं बहु विनिन्द्य स्वं नत्वा धर्मेश्वरं विभुम् ।
आरुह्याऽश्वं ययौ राजा दुर्दमो विषयं स्वकम् ॥ ६६ ॥
ततोऽमात्यान्समाहूय क्रमायातांश्चिरन्तनान् ।
नवीनान्परिनिर्वास्यपौरांश्चाऽपि समाह्वयत् ॥ ७० ॥
ब्राह्मणांश्च नमस्कृत्य तेभ्यो वृत्तीः प्रदायच । पुत्रेराज्यंसमारोप्यप्रजाधर्मेनिवेश्यच
परिदण्ड्य च दण्डार्हान्साधूंश्चपरितोष्य च । दारानपिपरित्यज्यविषयेषुपराङ्मुखः
समागच्छदथैकाकी काशीं श्रेयोविकासिनीम् ।
धर्मेश्वरं समाराध्य कालान्निर्वाणमाप्तवान् ॥ ७३ ॥
धर्मेशदर्शनान्नित्यं तथाभूतः स दुर्दमः । वभूव दमिनां श्रेष्ठः प्रान्तेमोक्षञ्चलब्धवान्
इत्थं धर्मेशमाहात्म्यं मया स्वल्पं निरूपितम् ।
धर्मपीठस्य माहात्म्यं सम्यक्को वेद कुम्भज !॥ ७५ ॥
इदं धर्मेश्वराख्यानं यः श्रोष्यति नरोत्तमः ।
आजन्मसञ्चितात्पापात्स मुक्तो भवति क्षणात् ॥ ७६ ॥
श्राद्धकाले विशेषेणधर्मेशाख्यानमुत्तमम् ।
श्रावयेद्व्राह्मणान्धीमान्पितृणां तृप्तिकारणम् ॥ ७७ ॥

धर्माख्यानमिदंशृण्वन्नपिदूरस्थितःसुधीः । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तोगन्तान्तेशिवमन्दिरम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे धर्मेश्वराख्याननामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

वीरेश्वरप्रादुर्भावेऽमित्रजित्पराक्रमवर्णनम्

[पार्वत्युवाच

वीरेशस्य महेशान! श्रूयते महिमा महान् । परांसिद्धिं परापेतुस्तत्रसिद्धाःपरःशताः
कथमाविर्भवस्तस्य काश्यां लिङ्गवरस्यतु । आशुसिद्धिप्रदस्येह तन्मेब्रूहि जगत्पते

महेश्वर उवाच

निशामय महादेवि वीरेशाविर्भवम्परम् । यंश्रुत्वापिनरः पुण्यम्प्राप्नोतिविपुलंशिवे
आसीदमित्रजिन्नामराजा परपुरञ्जयः । धार्मिकःसत्त्वसम्पन्नः प्रजारञ्जनतत्परः ॥ ४॥
यशोधनो वदान्यश्च सुधीर्ब्राह्मणदैवतः । सदैवावभृथस्नानपरिक्लिन्नशिरोरुहः ॥
विनीतो नीतिसम्पन्नःकुशलःसर्वकर्मसु । विद्याब्धिपारदृश्वाचगुणवान्गुणिवत्सलः
कृतज्ञोमधुरालापःपापकर्मपराङ्मुखः। सत्यवाक्शौचनिलयःस्वल्पवाग्विजितेन्द्रियः
रणाङ्गणे कृतान्ताभः संख्यावांश्च सदोजिरे ।
कामिनीकामकेलिज्ञो युवापि स्थविरप्रियः ॥ ८ ॥
धर्मार्थैर्धितकोशश्च समृद्धबलवाहनः । सुभगश्चसुरूपश्चसुमेधाः सुप्रजाश्रयः ॥ ९ ॥
स्थैर्यधैर्यसमापन्नोदेशकालविचक्षणः । मान्यमानप्रदोनित्यंसर्वदूषणवर्जितः ॥ १०॥
वासुदेवाङ्घ्रियुगलेचेतोवृत्तिनिधायसः । चकारराज्यंनिर्द्वन्द्वंविष्वगीतिविवर्जितम्
अलङ्घ्यशासनः श्रीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ।
अभुनक्प्रचुरान्भोगान्समन्ताद्विष्णुसात्कृतान् ॥ १२ ॥

हरेरायतनान्युच्चैः प्रतिसौधम्पदेपदे । तस्य राज्येसमभवन्महाभाग्यनिधेः शिवे ॥
गोविन्द! गोपगोपल! गोपीजनमनोहर!। गदापाणे! गुणातीतगुणाढ्यगरुडध्वज!
केशिहृत्कैटभाराते! कंसारे! कमलापते !। कृष्ण! केशव! कञ्जाक्ष! कीनाशभयनाशन!
पुरुषोत्तम ! पापारे ! पुण्डरीकविलोचन !। पीतकौशेयवसन! पद्मनाभ ! परात्पर!
जनार्दन! जगन्नाथ ! जाह्नवीजलजन्मभूः । जन्मिनां जन्महरणजञ्जपूकावनाशन !॥

श्रीवत्सवक्षः! श्राकान्त! श्रीकरश्रेयसान्निधे !।
श्रीरङ्ग ! शार्ङ्गकोदण्ड ! शौरे! शीतांशुलोचन !॥ १८ ॥

दैत्यारे! दानवाराते! दामोदर! दुरन्तक !। देवकीहृदयानन्द! दन्दशूकेश्वरेशय !॥ १९
विष्णो!वैकुण्ठनिलय!बाणारेविष्टर! श्रवः !। विष्वक्सेनविराधारेवनमालिन्वनप्रिय
त्रिविक्रमत्रिलोकीशचक्रपाणेचतुर्भुज । इत्यादीनिपवित्राणिनामानिप्रतिमन्दिरम्
स्त्रीवृद्धबालगोपालवदनोदीरितानितु । श्रूयन्तेयत्रकुत्रापिरम्याणिमधुविद्विषः ॥
सुरसाकाननान्येवविलोक्यन्तेगृहेगृहे । चरित्राणिविचित्राणिपवित्राण्यब्धिजापतेः
सौधभित्तिषुदृश्यन्तेचित्रकृन्निर्मितानितु । ऋतेहरिकथायास्तुनान्यावार्तानिशम्यते
हरिणानैव विध्यन्ते हरिनामांशधारिणः । तस्यराज्ञोभयाद्व्याधैररण्यसुखचारिणः
नमत्स्यानैव कमठानवराहाश्चकेनचित् । हन्यन्तेक्वापितद्भीत्यामत्स्यमांसाशिनापिवै
अप्युत्तानशयास्तस्यराष्ट्रे मित्रजितःक्वचित् । स्तनपानंनकुर्वन्तिसम्प्राप्यहरिवासरम्
पशवोऽपि तृणाहारम्परित्यज्यहरेर्दिने । उपोषणपराजाताअन्येषांकाकथानृणाम् !
महामहोत्सवः सर्वैः पुरौकोभिर्वितन्यते । तस्मिन्प्रशासतिभुवंसम्प्राप्तेहरिवासरे ॥

स एव दण्ड्योऽभूत्तस्य राज्ञो मित्रजितःक्षितौ ।
यो विष्णुभक्तिरहितः प्राणैरपि धनैरपि ॥ ३० ॥
अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शङ्खचक्राङ्कधारिणः ।
सम्प्राप्य वैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इव सम्बभुः ॥ ३१ ॥

शुभानियानिकर्माणि क्रियन्तेऽनुदिनंजनैः । वासुदेवेसमर्प्यन्तेतानितैरफलेप्सुभिः
विना मुकुन्दंगोविन्दं परमानन्दमच्युतम् । नान्योजप्येत मन्येतनमज्येतजनैःकश्चित्

कृष्ण एव परोदेवः कृष्णएव परागतिः । कृष्णएवपरोबन्धुस्तस्यासीदवनीपते
एवं तस्मिन्महीपाले राज्यं सम्यक्प्रशासति ।
एकदा नारदः श्रीमांस्तं दिदृक्षुः समाययौ ॥ ३५ ॥
राज्ञा समर्चितः सोऽथ मधुपर्कविधानतः ।
नारदो वर्णयामास तममित्रजितं नृपम् ॥ ३६ ॥

नारद उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि मान्योऽप्यसि दिवौकसाम् ।
सर्वभूतेषु गोविन्दम्परिपश्यन्विशाम्पते !॥ ३७ ॥
योवेदपुरुषोविष्णुर्योयज्ञपुरुषोहरिः । योऽन्तरात्माऽस्यजगतःकर्ताहर्ताऽविताविभुः
तन्मयम्पश्यतोविश्वं तव भूपालसत्तम !। दर्शनम्प्राप्यशुभदं शुचित्वमगमम्परम् ॥
एक एव हि सारोऽत्र संसारेक्षणभङ्गुरे । कमलाकान्तपादाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः
परित्यज्य हि यः सर्वं विष्णुमेकं सदाभजेत् । सुमेधसम्भजन्तेतंपदार्थाःसर्वएवहि
हृषीकेशोहृषीकाणियस्यस्थैर्यंगतान्यहो । स एवस्थैर्यमाप्नोति ब्रह्माण्डेऽतीवचञ्चले
यौवनं धनमायुष्यं पद्मिनीजलबिन्दुवत् । अतीवचपलंज्ञात्वाऽच्युतमेकं समाश्रयेत्
यावि चेतसिसर्वत्र यस्य देवो जनार्दनः । स एव सर्वदा वन्द्यो नररूपी जनार्दनः
निर्व्याजप्रणिधानेन शीलयित्वा श्रियःपतिम् । पुरुषोत्तमतांकोनप्राप्तवानिह भूतले
अनयाविष्णुभक्तया ते सन्तुष्टेन्द्रियमानसः । उपकर्तुमना ब्रूयां तन्निशामय भूपते !॥
बालाविद्याधरसुता नाम्ना मलयगन्धिनी । क्रीडन्तीपितुराक्रीडे हृताकङ्कालकेतुना
कपालकेतुपुत्रेण दानवेन बलायसा । आगामिन्यां तृतीयायां तस्याःपाणिग्रहःकिल
पाताले चम्पकावत्यां नगर्यां साऽस्ति साम्प्रतम् ।
हाटकेशात्समागच्छंस्तयाऽहं साश्रुनेत्रया ॥ ४६ ॥
दृष्टःप्रणम्यविज्ञप्तो यथा तच्च निशामय । ब्रह्मचारिमुनिश्रेष्ठ! गन्धमादनशैलतः ॥
बालक्रीडनकासक्तां मोहयित्वा निनायसः । कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तोदुर्जयोऽन्यास्त्रघाततः
स्वस्य त्रिशूलघातेन म्रियतेनान्यथारणे । जगत्पर्याकुलीकृत्य निद्रात्यत्रविनिर्भयः

यदिकोपिकृतज्ञो मां हत्वेमं दुष्टदानवम् । मद्दत्तेन त्रिशूलेन नयेद्भद्रं भवेन्नरः ॥
यदत्रोपचिकीर्षुस्त्वं रक्ष मां दुष्टदानवात् । ममापिहिवरोदत्तो भगवत्या महामुने
विष्णुभक्तो युवा धीमान्पुत्रि! त्वां परिणेष्यति ।
आतृतीयातिथियथा तद्वाक्यं तथ्यतां व्रजेत् ॥ ५५ ॥
तथानिमित्तमात्रं त्वं भव यत्नं समाचर । इति तद्वचनाद्राजन्विष्णुभक्तिपरायणम्
युवानञ्चापि धीमन्तं त्वामनुप्राप्तवाहनम् ॥ ५६ ॥
तद्गच्छ कार्यसिद्ध्यै त्वं हत्वा तं दुष्टदानवम् ।
आनयाऽऽशु महाबाहो ! शुभां मलयगन्धिनीम् ॥ ५७ ॥
सातुविद्याधरी जीवेद्विलोक्य त्वांनरेश्वर । पार्वतीवचनाद्दुष्टं घातयिष्यत्ययत्नतः
इतिनारदवाक्यंसनिशम्यामित्रजिन्नृपः । अनल्पोत्कलिकोजातोविद्याधरसुतांप्रति
उपायञ्चापि पप्रच्छ गन्तुं तां चम्पकावतीम् । नारदेनपुनःप्रोक्तः सराजागिरिराजजे
तूर्णमर्णवमासाद्यपूर्णिमादिवसेनृप । भवान् द्रक्ष्यतिपोतस्थःकल्पवृक्षंरथस्थितम्
तत्रदिव्याङ्गना काचिद्दिव्यपर्यङ्कसंस्थिता ।
वीणामादाय गायन्ती गाथां गास्यति सुस्वरम् ॥ ६२ ॥
यत्कर्म विहितंयेन शुभंवाथशुभेतरन् । स एवभुङ्क्ते तत्तथ्यं विधिसूत्रनियन्त्रितः
गाथामिमां सा सङ्गीयसरथासमहीरुहा । सपर्यङ्काक्षणादेवमध्येसिन्धुं प्रवेक्ष्यति
भवानप्यविशङ्कश्च ततः पोतान्महार्णवे । तामनुव्रजतु क्षिप्रं यज्ञवाराहमास्तुवन्
ततोद्रक्ष्यसि पाताले नगरीं चम्पकावतीम् । महामनोहरां राजन्सहितांबालयानया
इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो देवि!सचतुर्मुखनन्दनः । राजाप्यर्णवमासाद्ययथोक्तंपरिलक्ष्यच
विवेशाऽन्तःसमुद्रञ्च नगरीमाससादताम् । साऽथविद्याधरीबाला नेत्रप्राघुणकीकृता
तेन राज्ञात्रिजगतीसौन्दर्यश्रीरिवैकिका । पातालदेवतेयं वा ममनेत्रोत्सवायकिम्
निरणायि मधुद्रेष्ट्रास्रष्टुःसृष्टिविलक्षणा । कुहूराहुभयादेषाकान्तिश्चान्द्रमसीकिमु
योषिद्रूपं समाश्रित्य तिष्ठतेऽत्राऽकुतोभया ।
इत्थं क्षणं तां निर्वर्ण्य स राजाऽगात्तदन्तिकम् ॥ ७१ ॥

सा विलोक्याऽथ तं बाला नितराम्मधुराकृतिम् ।
विशालोरस्थलतलं प्रलम्बतुलसीस्रजम् ॥ ७२ ॥
शङ्खचक्राङ्कसुभगभुजद्वयविराजितम् । हरिनामाक्षरसुधासुधौतरदनावलिम् ॥ ७३॥
भवानीभक्तिबीजोत्थं भूरुहम्पुरुषाकृतिम् । मनोरथफलैः पूर्णमासीद् धृष्टतनूरुहा ॥
दोलापर्यङ्कमुत्सृज्य ह्रीभरा नम्रकन्धरा। वेपथुञ्च परिष्टभ्य बाला प्रोवाच भूपतिम्
कस्त्वमत्रकृतान्तस्य भवनम्मधुराकृते । प्राप्तोमे मन्दभाग्यायाश्चेतोवृत्ति निरुन्धयन्
यावन्नायाति सुभग! सकठोरतराकृतिः । अतिपर्याकुलीकृत्यत्रिलोकींदानवो मुहुः
कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तस्त्ववध्यःपरहेतिभिः । तावद्गुप्तं समातिष्ठ शस्त्रागारेऽतिगह्वरः
न मे कन्याव्रतं भङ्क्तुं स समर्थ उमावरात् ।
आगामिन्यां तृतीयायां परश्वः पाणिपीडनम् ॥ ७९ ॥
सञ्चिकीर्षति दुष्टात्मा गतायुर्ममशापतः । मातङ्गीतिंकुरुयुवस्तत्कार्यंभविता चिरम्
विद्याधर्य्येति चोक्तः सशस्त्रागारे निगूढवत् । स्थितोवीरोमहाबाहुर्दानवागमनेक्षणः
अथ सायं समायातोदानवोभीषणाकृतिः । त्रिशूलंकलयन्पाणौमृत्योरपिभयावहम्
आगत्यदानवोरौद्रः प्रलयाम्बुदनिःस्वनः । विद्याधरींजगादेति मदाघूर्णितलोचनः
गृहाणेमानि रत्नानि दिव्यानिवरवर्णिनि !। कन्यात्वंचपरश्वस्तेपाणिग्राहादपैष्यति
दासीनामयुतं प्रातर्दास्यामितव सुन्दरि !। आसुरींणासुरीणांचदानवीनांमनोहरम्
गन्धर्वीणां नरीणां च किन्नरीणां शतं शतम् ।
विद्याधरीणां नागीनां यक्षिणीनां शतानि षट् ॥ ८६ ॥
राक्षसीनां शतान्यष्टौ शतमप्सरसां वरम् ।
एतास्ते परिचारिण्यो भविष्यन्त्यमलाशये ॥ ८७ ॥
यावत्सम्पत्तिसम्भारो दिक्पालानां गृहेषु वै ।
मत्परिग्रहतां प्राप्य तावतस्त्वमिहेश्वरी ॥ ८८ ॥
दिव्यान्भोगान्मया सार्धं भोक्ष्यसे मत्परिग्रहात् ।
कदा परश्वो भविता यस्मिन्वैवाहिको विधिः ॥ ८९ ॥

त्वदङ्गसङ्गसंस्पर्शसुखसन्दोहमेदुरः । परां निर्वृतिमाप्स्यामि परश्वो निकटं यदि
मनोरथाश्चिरंयावद्येमे हृदिसमेधिताः । तान्कृतार्थी करिष्यामिपरश्वस्तवसङ्गमात्
जित्वा देवान् रणे सर्वानिन्द्रादीन्मृगलोचने !।
त्रैलोक्यैश्वर्यसम्पत्तेस्त्वां करिष्यामि चेश्वरीम् ॥ ९२ ॥
आधायाऽङ्के त्रिशूलं स्वे सुष्वापेति प्रलप्य सः ।
नरमांसवसास्वादप्रमत्तो वीतसाध्वसः ॥ ९३ ॥
वरं स्मरन्ती सा गौर्या विद्याधरकुमारिका । विज्ञायतंप्रमत्तं चसुसुप्तंचातिनिर्भयम्
आहूय तं नरवरं वरंसर्वाङ्गसुन्दरम् । विष्णुभक्तिकृतत्राणं प्राणनाथेतिजल्प्य च ॥
शूलं तदङ्कादादाय गृहाणेमंजहिद्रुतम् । इति त्रिशूलं बालातो बालार्कसदृशद्युतिः ॥
समादाय महाबाहुः सतदामित्रजिन्नृपः । जहर्ष च जगादोच्चैर्बालायाश्चाभयंदिशन्
वामपादप्रहारेण तमाताड्यसनिर्भयः । संस्मरंश्चक्रिणं चित्ते जगद्रक्षामणिंहरिम् ॥
जगादोत्तिष्ठरे दुष्ट! कन्याधर्षणलालस !। युध्यस्वाऽत्रमया सार्धं नसुप्तंहन्म्यहंरिपुम्
इति संश्रुत्यसम्भ्रान्त उत्थायसदनोः सुतः । त्रिशूलंदेहिमेकान्ते प्रोवाचेतिमुहुर्मुहुः
कोऽयं मृत्युगृहं प्राप्तः कस्य रुष्टोऽद्य चाऽन्तकः ।
क आयुषाऽद्य सन्त्यक्तोऽयः प्राप्तो मम गोचरम् ॥ १०१ ॥
मम प्रचण्डदोर्द्दण्डकण्डूकण्डूयनक्षमः । नाल्पो नरोऽयंभविताकिंत्रिशूलेनसुन्दरि
माभैर्मे कौतुकम्पश्य रक्ष्योऽयं मम साम्प्रतम् ।
कालेन मत्तो भीतेन स्वयमेवोपढौकितः ॥ १०३ ॥
इत्युक्त्वा मुष्टिघातेन तेनोच्चैर्दनुसूनुना । हृदये निहतो राजा शिलातिकठिनेद्रुतम्
सचक्रिणा कृतत्राणः पीडामल्पीयसीमपि । नोवेदकठिनोरस्कस्तत्करंप्रत्युतानुदत्
अथ कोपवता राज्ञा हतो वक्त्रेचपेटया । आघूर्णितशिरा भूमौपतित्वापुनरुत्थितः
उवाच च वचोधैर्यमवष्टभ्य महाबली ।

दानव उवाच

ज्ञातं न त्वं मनुष्योऽसि नृरूपेण चतुर्भुजः ॥ १०७ ॥

आयातश्छिद्रमासाद्य हन्तुं मां दानवान्तकः ॥ १०८ ॥
कंविधेहिमधुभिद्यदित्वंबलवानसि । विहायैतन्महच्छूलं युध्यस्व स्वायुधैर्मया
त्वया कपटरूपेण बलिनः कैटभादयः । नबलेनहताःसंख्ये हताएवच्छलेनहि ॥ ११०
बलिं पातालमनयस्त्वं नृवामनतां दधत् ।
नृमृगत्वेन भवता हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १११ ॥
त्वया जटिलरूपेण लङ्केशो विनिपातितः ।
गोपालवेषमासाद्य कंसाद्या घातितास्त्वया ॥ ११२ ॥
स्त्रीरूपेणाहरस्त्वन्तु विप्रलाप्याऽसुरान्सुधाम् । यादोरूपेणभवताशङ्खाद्यानिहताबहु
मायावीनामग्रगण्यसर्वमर्मज्ञसाधक !। न त्वत्तोऽहंबिभेम्यद्य यदिशूलंविहास्यसि ॥
अथवा दैन्यवचनैः किमेभिः कातरोचितैः ।
न त्यक्ष्यसि त्रिशूलं त्वं नत्वां जेष्याम्यहं रणे ॥ ११५ ॥
अवश्यमेव मर्तव्यमद्य प्रातः शरीरिणा । त्वत्करेण वरं मृत्युर्बलेनाऽपि च्छलेनवा
इयं विद्याधरी कन्या न मया दूषिता सती ।
साक्षाच्छ्रीरेव मन्तव्या तवाऽर्थं रक्षिता मया ॥ ११७ ॥
इत्युक्त्वा वामदोर्दण्डप्रहारेणातिनिष्ठुरम् । निजघानदनोःसूनुस्तंशिलोच्चयकम्पिना
नृपोवक्षःप्रहारं तं विषह्य रणमूर्द्धनि । लक्षीचकार तद्वक्षस्त्रिशूलं तोलयन्करे ॥११६
निजघान महाबाहुः स च प्राणाञ्जहौ क्षणात् । इत्थंकङ्कालकेतुं सनिहत्यसुरकम्पनम्
विद्याधरीं प्रपश्यन्तींप्राहहृष्टतनूरुहाम् । नारदस्यमुनेर्वाक्यात्ततसुश्रोणिवाञ्छितम्
कृतं मया कृतज्ञे किं करवाण्यधुना वद । श्रुत्वेति तस्यसावाक्यं प्राहगम्भीरचेतसः

मलयगन्धिन्युवाच

अथोदारमते! वीर! निजप्राणैः पणीकृतान् ।
किं माम्पृच्छसि जीवातो ! कुलकन्यामदूषिताम् ॥ १२३ ॥
ति ब्रुवत्यां कन्यायांपुनःस्वैरचरो मुनिः । अतर्कितागमःप्राप्तो नारदो देवलोकतः
तस्तुतुषतुस्तौतु दृष्ट्वातम्मुनिसत्तमम् । कृतप्रणामौमुनिनापरिविश्राणिताशिषौ

पाणिग्रहेणविधिनाभिषिक्तौ नारदेन तु । जग्मतुर्नारदादिष्टवर्त्मनाकृतमङ्गलौ ॥१२६
तयामलयगन्धिन्यायुतःसोऽमित्रजिन्नृपः । पुरींवाराणसींप्राप्यपौरैर्विहितमङ्गलाम्
यद्वीक्षणादपि नरो नारकींनैव जातुचित् । गतिमाप्नोतिमेधावीताम्पुरीमविशन्नृपः
यस्यां पुर्यां प्रवेशं न लभन्तेवासवादयः । कैवल्यजनयित्र्यां हि तांपुरीमविशन्नृपः

अपि स्मृत्वा पुरीं यां वै काशीं त्रैलोक्यकाङ्क्षिताम् ।
न नरो लिप्यते पापैस्तां विवेश स भूपतिः ॥ १३० ॥

यस्यांपुर्यांप्रविष्टोना महद्भिरपिपातकैः । नाभिभूयेत तांकाशींप्राविशत्सविशांपतिः
सापि विद्याधरीकाशीसमृद्धिंवीक्ष्यदूरतः । निनिन्दस्वर्गलोकञ्चपातालनगरीमपि
प्राप्याऽमित्रजितं कान्तंतथाहृष्टा न सावधूः । यथादृष्ट्वाप्यहोकाशींपरमानन्दकेतनम्
साकृतार्थमिवात्मानं मन्यमानामनस्विनी । तेनपत्याचकाश्याचपरांनिर्वृतिमाययौ
सोऽप्यमित्रजिदासाद्य पत्नींमलयगन्धिनीम् । धर्मप्रधानंसंसेव्यकामंप्रापोत्तमंसुखम्
सैकदा तं पतिं राज्ञीविष्णुभक्तिपरायणम् । रहोविज्ञापयाञ्चक्रेपतिभक्तासुतार्थिनी

राज्ञ्युवाच

भूपाभीष्टतृतीयायाश्चरिष्यामि महाव्रतम् । यद्यनुज्ञा भवेद्भर्तुः पुत्रकामार्थितप्रदम्

राजोवाच

देव्यभीष्टतृतीयायां व्रतं कीदृग्भवेद्वद । कादेवता तत्र पूज्याविधानञ्चापिकिंफलम्
नारीपत्यननुज्ञातायाव्रतादिसमाचरेत् ।जीवन्तीदुःखिनीसास्यान्मृतानिरयमृच्छति
इति राज्ञोदिता राज्ञी प्रवक्तुमुपचक्रमे । इतिकर्तव्यतांतस्य व्रतस्य सरहस्यकाम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे वीरेश्वराविर्भावेऽमित्रजित्पराक्रमोनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

अभीष्टतृतीयायाव्रतविधानपुरःसरंवीरेश्वराविर्भाववर्णनम्

राज्युवाच

अवधेहिधरानाथ! कथयामि यथातथम् । व्रतस्यास्यविधानञ्च फलञ्चाभीष्टदेवताम्
पुरा पुरः श्रीदपत्न्याः श्रीमुख्या ब्रह्मसूनुना ।
नारदेन सुतार्थिन्या व्रतमेतदुदीरितम् ॥ २ ॥
चीर्णञ्चाऽथतया देव्यापुत्रोऽभून्नलकूबरः । अन्याभिरपिवह्वीभिःपुत्राःप्राप्ताव्रतादितः
विधिनाऽप्यत्र सम्पूज्या गौरी सर्वविधानवित् ।
स्तनन्धयेन सहिता धयता स्तनमुन्मुखम् ॥ ४ ॥
मार्गशीर्षतृतीयायां शुक्लायांकलशोपरि । ताम्रपात्रंनिधायैकं तण्डुलैःपरिपूरितम्
अविच्छिन्नं नवीनञ्चरजनीरागरञ्जितम् । वासःपात्रोपरिन्यस्यसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंपरम्
तस्योपरि शुभं पद्मं रविरश्मिविकासितम् ।
तत्कर्णिकाया उपरि चतुःस्वर्णविनिर्मितम् ॥ ७॥
विधिसम्पूजयेद्भक्त्या रत्नपट्टाम्बरादिभिः । पुष्पैर्नानाविधै रम्यैः फलैर्नारङ्गमुख्यकैः
सुगन्धैश्चन्दनाद्यैश्चकर्पूरमृगनाभिभिः । परमान्नादिनैवेद्यैःपक्वान्नैर्बहुभङ्गिभिः ॥ ९ ॥
धूपैरगुरुमुख्यैश्च रम्ये कुसुममण्डपे । रात्रौ जागरणं कार्यं विनिद्रैःपरमोत्सवैः ॥
हस्तमात्रमिते कुण्डे जातवेदस इत्यृचा ।
घृतेन मधुनाऽऽप्लुत्य जुहुयान्मन्त्रविद्द्विजः ॥ ११ ॥
सहस्रं कमलानाञ्च स्मेराणां स्वयमेवहि । नवप्रसूतांकपिलांसुशीलाञ्चपयस्विनीम्
दद्यादाचार्यवर्यायसालङ्कारांसलक्षणाम् । उपोष्यदम्पतीभक्त्यानवाम्बरविभूषितौ
प्रातः स्नात्वा चतुर्थ्याञ्च सम्पूज्याऽऽचार्यमादृतः ।
वस्त्रैराभरणैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितौ ॥ १४ ॥

सोपस्कराञ्च ताम्मूर्तिमाचार्यायनिवेदयेत् । समुच्चरन्निमं मन्त्रं व्रतकृन्निथुनं मुदा
नमो विश्वविधानज्ञेविधेविविधकारिणि !। सुतंवंशकरंदेहितुष्टामुष्माद्व्रताच्छुभात्
सहस्रं भोजयित्वाथद्विजानां भक्तिपूर्वकम् । भुक्तशेषेणचान्नेन कुर्याद्वै पारणं ततः
इत्थमेतद्व्रतं राजंश्चिकीर्षामि त्वयासह । कुरुष्वैतत्प्रियंमह्यमभीष्टफललब्धये ॥
इति भूपालवर्येण श्रुत्वा संहृष्टचेतसा । मुने व्रतं समाचीर्णं सान्तर्वत्नी वभूव ह ॥

तयाऽथ प्रार्थिता गौरी गर्भिण्या भक्तितोषिता ।
पुत्रं देहि महामाये! साक्षाद्विष्ण्वंशसम्भवम् ॥ २० ॥

जातमात्रो व्रजेत्स्वर्गं पुनरायाति चात्रवै । भक्तः सदाशिवेऽत्यर्थंप्रसिद्धःसर्वभूतले
विनैव स्तन्यपानेनषोडशाब्दाकृतिःक्षणात् । एवंभूतःसुतोगौरियथामेस्यात्तथाकुरु

मृडान्याऽपि तथेत्युक्ता राज्ञीभक्त्याऽतितुष्टया ।
अथ कालेन तनयं मूलर्क्षे साप्यजीजनत् ॥ २३ ॥

हितैरमात्यैरथ साविज्ञतारिष्टसंस्थिता । देवि राजार्थिनीचेदेवंत्यजदुष्टर्क्षजंसुतम् ॥
सामन्त्रिवाक्यमाकर्ण्य केवलं पतिदेवता । अत्याक्षीत्तं तथा प्राप्तंतनयंनयकोविदा
धात्रेयिकां समाकार्य प्राहेदं सानृपाङ्गना । पञ्चमुद्रे महापीठे विकटानाममातृका
तदग्रे स्थापयित्वाऽमुम्बालंधात्रेयिकेव्रज । गौर्यादत्तःशिशुरसौतवाग्रे विनिवेदितः

राज्ञ्या पत्युः प्रियैषिण्या मन्त्रिविज्ञप्तिनुन्नया ।
साऽपिराज्ञ्युदितं श्रुत्वा शिशुं लास्यशशिप्रभम् ॥ २८ ॥
विकटायाः पुरः स्थाप्य गृहं धात्रेयिका गता ।
अथसाविकटा देवी समाहूय च योगिनीः ॥ २९ ॥

उवाच नयत क्षिप्रं शिशुं मातृगणाग्रतः । तासामाज्ञां च कुरुत रक्षताऽमुं प्रयत्नतः

योगिन्यो विकटावाक्यात्खेचर्यस्ताः क्षणेन तम् ।
निन्युर्गगनमार्गेण ब्राह्म्याद्या यत्र मातरः ॥ ३१ ॥

प्रणम्य योगिनीवृन्दं तंशिशुंसूर्यवर्चसम् । पुरोनिधायमातृणांप्रोवाचविकटोदितम्

ब्रह्माणी वैष्णवी रौद्री वाराही नारसिंहिका ।

कौमारी चापि माहेन्द्री चामुण्डा चैव चण्डिका ॥ ३३ ॥
दृष्ट्वा तंबालकं रम्यं विकटाप्रेषितं ततः । पप्रच्छुर्युगपड्डिम्भंकस्तेतातः प्रसूश्च का ॥
मातृभिश्चेति पृष्टः स यदाकिञ्चिन्न वक्ति च ।
तदा तद्योगिनीचक्रं प्राह मातृगणस्त्विवति ॥ ३५ ॥
राजयोग्योभवत्येषमहालक्षणलक्षितः । पुनस्तत्रैवनेतव्योयोगिन्यस्त्वविलम्बितम्
पञ्चमुद्रामहादेवी तिष्ठते यत्र काम्यदा । यस्याः संसेवनान्नृणां निर्वाणश्रीरदूरतः
सर्वत्र शुभजन्मिन्यां काश्यां मुक्तिःपदेपदे ।
तथापि सविशेषं हि तत्पीठं सर्वसिद्धिकृत् ॥ ३८ ॥
तत्पीठसेवनादस्यषोडशाब्दाकृतेःशिशोः । सिद्धिर्भवित्रीपरमाविश्वेशानुग्रहात्परात्
एवं मातृगणाशीर्भिर्योगिनीभिः क्षणेनहि । प्रापितोमातृवाक्येन पञ्चमुद्राङ्कितंपुनः
सम्प्राप्य तन्महापीठं स्वर्गलोकादिहागतः । आनन्दकानने दिव्यं ततापविपुलं तपः
तपसाऽतीवतीव्रेणनिश्चलेन्द्रियचेतसः । तस्यराजकुमारस्य प्रसन्नोऽभूदुमाधवः ॥
आविर्बभूव पुरतो लिङ्गरूपेण शङ्करः । प्रोवाच च प्रसन्नोऽस्मिवरं ब्रूहि नृपाङ्गज !

स्कन्द उवाच

सर्वज्योतिर्मयं लिङ्गं पुरतो वीक्ष्य वाङ्मयम् ।
सप्तपातालमुद्भिद्य स्थितं वृहदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ परितुष्टाव धूर्जटिम् । सूक्तैर्जन्मान्तराभ्यस्तैः सुहृष्टोरुद्रदैवतैः
ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेवो महेश्वरः । सन्तुष्टस्तपसा तस्य प्रोवाच वृषभध्वजः

देवदेव उवाच

वरं वरय संतप्ततपसाक्लेशितं वपुः । त्वयेदं बालवपुषा वशीकृतं मनो मम ॥ ४७ ॥
शिवोक्तं च समाकर्ण्य वरदानं पुनः पुनः । वरं च प्रार्थयाञ्चक्रे परिहृष्टतनूरुहः ॥४८

कुमार उवाच

देवदेवमहादेव! यदि देयो वरो मम । तदत्र भवता स्थेयं भवतापहृता सदा ॥ ४९॥
अस्मिँल्लिङ्गे स्थितः शम्भो! कुरु भक्तसमीहितम् ।

विना मुद्रादिकरणं मन्त्रेणाऽपि विना विभो !॥ ५० ॥
दिश सिद्धिं परामत्र दर्शनात्स्पर्शनान्नतेः। अस्यलिङ्गस्यये भक्तामनोवाक्कायकर्मभिः
सदैवानुग्रहस्तेषु कर्तव्यो वरएष मे। इति तद्वरमाकर्ण्य लिङ्गरूपोऽवदत्प्रभुः॥ ५२
एवमस्तु यदुक्तं ते वीरवैष्णवसूनुना। जनेतुर्विष्णुभक्ताच्च राज्ञोऽमित्रजितोभवान्
विष्णवंश एवमुत्पन्नो मम भक्तिपराङ्गज !। वीर ! वीरेश्वरंनामलिङ्गमेतत्त्वदाख्यया

काश्यां दास्यत्यभीष्टानि भक्तानां चिन्तितान्यहो।
अस्मिँल्लिङ्गे सदा वीर! स्थास्याम्यद्यदिनावधि॥ ५५ ॥
दास्यामि च परां सिद्धिमाश्रितेभ्यो न संशयः।
परं न महिमानं मे कलौ कश्चिच्च वेत्स्यति॥ ५६ ॥

यस्तु वेत्स्यति भाग्येन सपरां सिद्धिमाप्स्यति। अत्रजप्तंहुतंदत्तंस्तुतमर्चितमेववा
जीर्णोद्धारादिकरणमक्षयफलहेतुकम्। त्वंतुराज्यंपरंप्राप्य सर्वभूपालदुर्लभम्॥

भुक्त्वा भोगांश्च विपुलानन्ते सिद्धिमवाप्स्यसि।
पुरी वाराणसी रम्या सर्वस्मिञ्जगतीतले॥ ५९ ॥

पुण्यस्तत्रापि सम्भेदःसरितोरसिगङ्गयोः। ततोऽपिचहयग्रीवंतीर्थञ्चैवातिपुण्यदम्
यत्र विष्णुर्हयग्रीवो भक्तचिन्तितमर्पयेत्। हयग्रीवाच्चवैतीर्थाद्गजतीर्थंविशिष्यते
यत्र वै स्नानमात्रेण गजदानफलं लभेत्। कोकावराहतीर्थञ्च पुण्यदं गजतीर्थतः
कोकावराहमभ्यर्च्य तत्र नो जन्मभाग्जनः। अपिकोकावराहाच्चदिलीपेश्वरसन्निधौ
दिलीपतीर्थं सुश्रेष्ठं सद्यःपापहरंपरम्। ततः सगरतीर्थञ्च सगरेशसमीपतः॥ ६४
यत्र मज्जन्नरोमज्जेन्नभूयोदुःखसागरे। सप्तसागरतीर्थञ्चशुभंसगरतीर्थतः॥ ६५ ॥

सप्ताब्धिस्नानजं पुण्यं यत्र स्नात्वा नरो लभेत्।
महोदधीतिविख्यातं तीर्थं सप्ताब्धितीर्थता॥ ६६ ॥

सकृद्यत्राऽऽप्लुतो धीमान्दहेदघमहोदधिम्। चौरतीर्थं ततःपुण्यंकपिलेश्वरसन्निधौ

पापं सुवर्णचौर्यादि यत्र स्नात्वाऽक्षयं व्रजेत्।
हंसतीर्थं ततोपीडय्ं केदारेश्वरसन्निधौ॥ ६८ ॥

हंसस्वरूपी यत्राऽहं नयामि ब्रह्मदेहिनः ॥ ६९ ॥
ततस्त्रिभुवनाख्यस्य केशवस्याऽतिपुण्यदम् ।
तीर्थं यत्राऽऽप्लुता मर्त्या मर्त्यलोकं विशन्ति न ॥ ७० ॥
गोव्याघ्रेश्वरतीर्थं चततोऽप्यधिकमेवहि । स्वभाववैरमुत्सृज्ययत्रोभौसिद्धिमापतुः
ततोऽपि हिवरं वीरतीर्थं मान्धातृसञ्ज्ञितम् । चक्रवर्तिपदंयत्र प्राप्तंतेनमहीभुजा ॥
ततोऽपिमुचुकुन्दाख्यंतीर्थंचातीवपुण्यदम् । यत्रस्नातोनरोजातुरिपुभिर्नाऽभिभूयते
पृथुतीर्थं ततोऽप्युच्चैःश्रेयसांसाधनं परम् । पृथ्वीश्वरंयत्रदृष्ट्वानरः पृथ्वीपतिर्भवेत्
ततः परशुरामस्यतीर्थंचातीवसिद्धिदम् । यत्रक्षत्रवधात्पापाज्जामदग्न्योविमुक्तवान्
अद्याऽपि क्षत्रवधजं पापं तत्र प्रणश्यति । एकेन स्नानमात्रेण ज्ञानाज्ञानकृतेन च ॥
ततोऽपि श्रेयसां कर्तृ तीर्थं कृष्णाग्रजस्य हि ।
यत्र सूतवधात्पापाद्बलदेवो विमुक्तवान् ॥ ७७ ॥
दिवोदासस्य वै तीर्थं तत्र राज्ञोऽतिमेधसः ।
तत्र स्नातो नरो जातु न ज्ञानाच्चयवतेऽन्ततः ॥ ७८ ॥
ततोपि हि महातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् । यत्रभागीरथीसाक्षान्मूर्तिरूपेणतिष्ठति ॥
स्नात्वा भागीरथीतीर्थे कृत्वा श्राद्धं विधानवित् ।
दत्त्वा दानं च पात्रेभ्यो न भूयो गर्भभाग्भवेत् ॥ ८० ॥
हरपापं च भोवीर तीर्थंभागीरथीतटे । तत्र स्नात्वाक्षयं यान्ति महापापकुलान्यपि
यो निष्पापेश्वरं लिङ्गं तत्र पश्यति मानवः ।
निष्पापो जायते वीर! स तल्लिङ्गेक्षणात्क्षणात् ॥ ८२ ॥
दशाश्वमेधतीर्थं च ततोऽपि प्रवरं मतम् । दशानामश्वमेधानांयत्रस्नात्वाफलंलभेत्
ततोऽपि शुभदं वीर! बन्दीतीर्थंप्रचक्षते । यत्रस्नातोनरो मुच्येदपि संसारबन्धनात्
हिरण्याक्षेण दैत्येनबहुशोदेवताः पुरा । बन्दीकृतानिगडितास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्
ततो विश्रृङ्खलीभूतैर्वन्दिता यज्जगज्जनिः ।
तदा प्रभृतिबन्दीति गीयतेऽद्यापि मानवैः ॥ ८६ ॥

वन्दीतीर्थंतु तत्रैव महानिगडखण्डनम् । यत्र स्नातो विमुच्येतसर्वस्मात्कर्मपाशतः
बन्दीतीर्थं महाश्रेष्ठं काशिपुर्यां विशाम्पते !।
तत्र स्नातो नरो यायाद्विमुक्तिं देव्यनुग्रहात् ॥ ८८ ॥
ततोऽपि हिश्रेष्ठतरं प्रयागमितिविश्रुतम् । प्रयागमाधवो यत्र सर्वयागफलप्रदः ॥
क्षोणीवराहतीर्थंचततोऽपिशुभदं परम् । तत्र स्नातो नरो जातुतिर्यग्योनिंनगच्छति
ततः कालेश्वरं तीर्थं वीरश्रेष्ठतरं परम् । कलिकालौ नबाधेते यत्र स्नातं नरोत्तमम्
अशोकतीर्थंतत्रैव ततोऽप्यतितरां शुभम् । यत्रस्नातोनरो जातु नापतेच्छोकसागरे
ततोऽतिनिर्मलतरं शुक्रतीर्थं नृपाङ्गज! । शुक्रद्वारा न जायेत यत्रस्नातो नरोत्तमः
ततोपिपुण्यदं राजन्भवानीतीर्थमुत्तमम् । यत्रस्नात्वा भवानीशौ दृष्ट्वानैव पुनर्भवेत्
प्रभासतीर्थं विख्यातंततोऽपिशुभदंनृणाम् । सोमेश्वरस्यपुरतस्तत्रस्नातोनगर्भभाक्
ततोगरुडतीर्थं च संसारविषनाशनम् । गरुडेशं समभ्यर्च्य तत्रस्नात्वा न शोचति
ब्रह्मतीर्थं ततः पुण्यं वीरब्रह्मेश्वरात्पुरः । ब्रह्मविद्यामवाप्नोति तत्र स्नानेन मानवः
ततो वृद्धार्कतीर्थं च विधितीर्थं ततःपरम् । तत्राप्लुतोनरोयातिरविलोकंसुनिर्मलम्
ततोनृसिंहतीर्थं च महाभयनिवारणम् । कालादपि कुतस्तत्र स्नात्वापरिबिभेतिच
ततोऽपि पुण्यदं नृणां तीर्थं चित्ररथेश्वरम् ।
यत्र स्नात्वा च दत्त्वा च चित्रगुप्तं न पश्यति ॥ १०० ॥
धर्मतीर्थं ततः पुण्यं धर्मेशपुरतःस्थितम् । तत्रश्राद्धादिकंकृत्वापितृणामनृणोभवेत्
विशालतीर्थंविमलं विशालफलदं ततः । तत्रस्नात्वाविशालाक्षींदृष्ट्वा गर्भे न जायते
जरासन्धेशतीर्थं च जरासन्धेशसन्निधौ । संसारज्वरपीडाभिस्तत्रस्नातोन मुह्यति
ततोऽपि ललितातीर्थं महासौभाग्यवर्द्धनम् ।
स्नात्वाऽर्चयित्वा ललितां न दरिद्रो न दुःखभाक् ॥ १०४ ॥
ततो गौतमतीर्थं च सर्वपापविशोधनम् ।
स्नात्वा पिण्डान्विनिर्वाप्य यत्र शोचति न क्वचित् ॥ १०५ ॥
गङ्गाकेशवतीर्थं च तीर्थं चाऽगस्त्यसञ्ज्ञकम् ।

ततस्तु योगिनीतीर्थं त्रिसन्ध्याख्यं ततः परम् ॥ १०६ ॥
ततस्तुनार्मदंतीर्थं ततआरुन्धतेयकम् । वासिष्ठं च ततस्तीर्थं मार्कण्डेयमनुत्तमम्
ज्ञेयान्येतानि तीर्थानि पुण्यदान्युत्तरोत्तरम् । खुरकर्तरिसञ्ज्ञश्च ततस्तीर्थमनुत्तमम्
तत्रश्राद्धादिकरणान्नरो मुच्येत किल्विषैः । ततोभगीरथंतीर्थं राजर्षेरतिपुण्यदम्
तत्राऽल्पमपि यच्छेद्यत्कल्पान्तेऽप्यक्षयं हि तत् ।
एतेभ्योपि हि तीर्थेभ्यो लिङ्गकोटित्रयादपि ॥ ११० ॥
वीर! वीरेश्वरं लिङ्गंमहाश्रेष्ठं भविष्यति । वीरतीर्थे नरः स्नात्वावीरेशंपरिपूज्यच
तीर्थेष्वेतेषु सर्वेषु स्नातो भवति नान्यथा । यस्तुवीरेश्वरं लिङ्गंनक्तमभ्यर्चयिष्यति
तेन त्रिकोटिसङ्ख्यानि लिङ्गानीहार्चितानि वै ॥ ११२ ॥
यस्तु कामयते लक्ष्मीं मुक्तिदां भुक्तिदामपि । तेनवीरेश्वरंलिङ्गं संसेव्यमतियत्नतः
विधायैकं जागरणं नरो वीरेशमर्चयन् । भूतायां नैव गृह्णाति शरीरंपाञ्चभौतिकम्
इदं लिङ्गं सदाभ्यर्च्यं सिद्धैः संसिद्धिकामुकैः ।
ऐहिकामुष्मिकान्यस्मात्सर्वान्कामान्समर्थयेत् ॥ ११५ ॥
पञ्चामृतेन स्नपनं यः करिष्यति मानवः । पलेपलेफलंतस्यवीरेशेवटकोटिजम् ॥
यदन्यत्रफलं लिङ्गे कोटिपुष्पप्रदानतः । तदेकेनैव पुष्पेण वीरेशे नाऽत्र संशयः ॥
एकामप्याहुतिंदत्त्वावीरेश्वरसमीपतः । कोटिहोमफलंसम्यङ्नात्र कार्याविचारणा
सिक्थे सिक्थे च नैवेद्ये कोटिसिक्थफलं भवेत् ।
अत्यल्पमपि वीरेशे कृतमक्षयतां व्रजेत् ॥ ११६ ॥
अप्येकं यो महारुद्रं जपेद्वीरेशसन्निधौ । जापयेद्वा भवेत्तस्य कोटिरुद्रफलं ध्रुवम् ॥
व्रतोत्सर्गादिवीरेशे यत्कृतं व्रतिभिर्नृभिः । तत्कोटिगुणसंख्याकं भवत्येवनसंशयः
कृता अष्टौ नमस्कारायेनवीरेश्वराग्रतः । अष्टकोटिनमस्कारफलं तस्य न संशयः ॥
सर्वासां सम्पदां स्थानमिदं लिङ्गंभविष्यति ।
वीरेश्वरं न सन्देहो वीर! मे वरदानतः ॥ १२३ ॥
ज्ञानमुत्पत्स्यते पुंसां तारकाख्यं ममाऽऽज्ञया ।

जीवतामेव तत्सेव्यमेतल्लिङ्गं शुभार्थिभिः ॥ १२४ ॥
एतच्छ्रुत्वा पुनः प्राह वीरो मित्रजितः सुतः। प्रणम्य देवदेवेशंपरिपूर्णमनोरथः
तीर्थान्येतानि देवेश! यान्युक्तानि ममाग्रतः । कृपया पुनरप्येव तदन्यानि वद प्रभो
आदिकेशवमारभ्य तत्तीर्थाच्च भगीरथात्। येषां श्रवणमात्रेण निष्पापो जायते नरः
इति श्रुत्वा महेशानो महीपतनयोदितम् ।
पुनस्तीर्थानि गङ्गायां वक्तुं समुपचक्रमे ॥ १२८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे वीरेश्वराविर्भावो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

वीरेश्वराख्यानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

आकर्णय क्षोणिसुर! यथास्थाणुरचीकरत् ।
गङ्गावरणयोः पुण्यात्सम्भेदात्तीर्थभूमिकाम् ॥ १ ॥
सङ्गमे तत्र निष्णातः सङ्गमेशं समर्च्य च । नरो न जातुजननीगर्भसङ्गमवाप्नुयात्
तत्र पादोदकं तीर्थं यत्र देवेन शार्ङ्गिणा । आदौपादौ क्षालितौतुमन्दराच्चागतेनयत्
विष्णुपादोदके तीर्थे वारिकार्यं करोति यः ।
व्यतीता तेन नियतं भूयः सांसारिकी गतिः ॥ ४ ॥
कृतपादोदकस्नानः कृतकेशवपूजनः । वीतसंसारवसतिः काश्यामासीन्नरोत्तमः
काश्यां सा भूमिरुद्दिष्टा श्वेतद्वीप इति द्विजैः ।
तत्र पुण्यार्जनं कृत्वा श्वेतद्वीपाधिपो भवेत् ॥ ६ ॥
ततः पादोदकात्तीर्थात्तीर्थं क्षीराब्धिसञ्ज्ञकम् ।

तत्रार्जितमहापुण्यो घसेत्क्षीराब्धिरोधसि ॥ ७ ॥
क्षीरोदाद्दक्षिणे भागे तीर्थंशङ्खाख्यमुत्तमम् । तत्रस्नातोभवेन्नूनंनाशङ्खादिनिधेःपतिः
अर्वाक्च शङ्खतीर्थाद्वै चक्रतीर्थमनुत्तमम् । संसारचक्रेन पतेत्तत्तीर्थजलमज्जनात्
गदातीर्थं तदग्रे तु संसारगदनाशनम् । तत्र श्राद्धादिकरणात्पश्येद्देवंगदाधरम्
पद्माकृत्पद्मतीर्थञ्च तदग्रे पितृतृप्तिकृत् । तत्र स्नानादिकरणात्प्राप्नुयादघसंक्षयम्
ततस्तीर्थं महालक्ष्म्या महापुण्यफलप्रदम् ।
तत्राऽभ्यर्च्य महालक्ष्मीं निर्वाणकमलां लभेत् ॥ १२ ॥
ततो गारुत्मतं तीर्थं संसारगरनाशनम् । कृतोदकक्रियस्तत्र वैकुण्ठे वसतिं लभेत्
ततो नारदतीर्थञ्च ब्रह्मविद्यैककारणम् । तत्र स्नानेन मुक्तः स्याद्दृष्ट्वानारदकेशवम्
प्रह्लादतीर्थं तद्याम्ये महाभक्तिफलप्रदम् । तत्रवैस्नानमात्रेण विष्णोः प्रियतरोभवेत्
अम्बरीषं ततस्तीर्थं महापातकनाशनम् । तत्र वै शुभकर्माणो जनानोगर्भभाजनम्
आदित्यकेशवं नाम तदग्रे तीर्थमुत्तमम् । कृताभिषेकस्तत्रापि लभेत्स्वर्गाभिषेचनम्
दत्तात्रेयस्य तत्रास्ति तीर्थं त्रैलोक्यपावनम् ।
योगसिद्धिं लभेत्तत्र स्नानमात्रेण भावतः ॥ १८ ॥
तदग्रे भार्गवं तीर्थं महाज्ञानसमर्पकम् । तत्र स्नानविधानेन भवेद्भार्गवलोकभाक् ॥
ततोवामनतीर्थञ्च विष्णुसान्निध्यहेतुकम् । तत्रश्राद्धविधानेन मुच्यतेपितृजादृणात्
नरनारायणाख्यं हि ततस्तीर्थंशुभप्रदम् । तत्तीर्थमज्जनात्पुंसां गर्भवासः सुदुर्लभः
यज्ञवाराहतीर्थञ्च ततोदक्षिणतः शुभम् । यत्र स्नातस्य वै पुंसां राजसूयफलंध्रुवम्
विदारनारसिंहाख्यं तीर्थं तत्रास्तिपावनम् । यत्रैकस्नानतोनश्येदघंजन्मशतार्जितम्
गोपीगोविन्दतीर्थञ्च ततो वैष्णवलोकदम् ।
यस्मिन्स्नातो नरो विद्वान्न विन्द्याद्गर्भवेदनम् ॥ २४ ॥
लक्ष्मीनृसिंहतीर्थञ्चगोपीगोविन्ददक्षिणे । निर्वाणलक्ष्म्यायत्रत्योव्रियतेतुनरोत्तमः
तद्दक्षिणायां काष्ठायां शेषतीर्थमनुत्तमम् । महापापौघशेषोपिनतिष्ठेद्यन्निमज्जनात्
शङ्खमाधवतीर्थञ्च तद्याम्यांदिशिचोत्तमम् । तत्तीर्थसेवनान्नृणां कुतःपापभयम्महत्

ततोपिपावनतरंतीर्थं तत्क्षणसिद्धिदम् । नीलग्रीवाख्यमतुलंतत्स्नायीसर्वदाशुचिः
तत्रोद्दालकतीर्थश्च सर्वाघौघविनाशनम् । ददाति महतीमृद्धिं स्नानमात्रेणतन्नृणाम्
ततः साङ्ख्याख्यतीर्थश्च साङ्ख्येश्वरसमीपतः ।
तत्तीर्थसेवनात्पुंसां साङ्ख्ययोगः प्रसीदति ॥ ३० ॥
स्वर्लोकाद्यत्र संलीनःस्वयंदेव उमापतिः । अतःस्वर्लीनतीर्थश्चस्वर्लीनेश्वरसन्निधौ
तत्र स्नानेन दानेन श्रद्धया द्विजभोजनैः ।
जपहोमार्चनैः पुंसामक्षयं सर्वमेव हि ॥ ३२ ॥
महिषासुरतीर्थश्चतत्समीपेतिपावनम् । यत्रतप्त्वासदैत्येन्द्रोविजिग्येसकलान्सुरान्
तत्तीर्थसेवकोऽद्यापि नारिभिः परिभूयते । न पातकैर्महद्भिश्च प्रार्थितश्च फलंलभेत्
बाणतीर्थश्च तस्याऽऽरात्तत्सहस्रभुजप्रदम् ।
तत्र स्नातो नरो भक्तिं प्राप्नुयाच्छाम्भवीं स्थिराम् ॥ ३५ ॥
गोप्रतारेश्वरं नाम तदग्रे तीर्थमुत्तमम् । अपुत्रोऽपितरेद्यत्र स्नातोवैतरणीं सुखम्
तीर्थं हिरण्यगर्भाख्यं तद्याम्ये सर्वपापहृत् । तत्र स्नातो हिरण्येन मुच्यतेनकदाचन
ततः प्रणवतीर्थश्च सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । जीवन्मुक्तोभवेत्तत्र स्नानमात्रेण मानवः
ततः पिशङ्गिलातीर्थं दर्शनादपिपापहृत् । मुने! ममाधिष्ठानंवैतदगस्तेऽतिसिद्धिदम्
स्नात्वापिशङ्गिलातीर्थेदत्त्वादानञ्चकिञ्चन ।किंशोचतिकृतात्पापादन्यत्रापिमृतोयदि
योवैपिशङ्गिलातीर्थेस्नात्वामामर्चयिष्यति । भविष्यतिसमेमित्रंमित्रतेजःसमप्रभम्
ततस्त्रैविष्टपी दृष्टिर्निर्मलीकृतपुष्कलम् । तीर्थं पिलिपिलाख्यंवै मनोमलविनाशनम्
तत्रश्राद्धादिकरणाद्दीनानाथप्रतर्पणात् । महतींश्रियमाप्नोतिमानवोतीवनिश्चलाम्
ततो नागेश्वरं तीर्थं महाघपरिशोधनम् । तत्तीर्थमज्जनादेव भवेत्सर्वाघसङ्क्षयः ॥
तद्दक्षिणे महापुण्यं कर्णादित्याख्यमुत्तमम् ।
तीर्थं यत्राप्लुतो मर्त्यो भास्करीं श्रियमावहेत् ॥ ४५ ॥
ततो भैरवतीर्थश्च महाघौघक्षयप्रदम् । चतुरर्थोदयकरंसर्वविघ्ननिवारणम् ॥ ४६ ॥
भौमाष्टम्यान्तत्र नरः स्नात्वा सन्तर्पयेत्पितॄन् ।

दृष्ट्वा च भैरवं कालं कलिं कालञ्च सञ्जयेत् ॥ ४७ ॥
तीर्थं खर्वनृसिंहाख्यं तीर्थाद्वै रवतः पुरः । तत्रस्नातस्यवैपुंसःकुतोघजनितम्भयम्
मृकण्डस्य मुनेस्तीर्थंतद्याम्यामतिनिर्मलम् । तत्रस्नानेनमर्त्यानांनापायमरणंक्वचित्
ततः पञ्चनदाख्यंवै सर्वतीर्थनिषेवितम् । तीर्थंयत्र नरः स्नात्वा नसंसारी पुनर्भवेत्
ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि यानि तीर्थानि सर्वतः । ऊर्जे यत्रसमायान्तिस्वाघौघपरिनुत्तये
सर्वदा यत्र सर्वाणि दशम्यादिदिनत्रयम् । तिष्ठन्तितीर्थवर्याणि निजनैर्मल्यहेतवे
भूरिशःसर्वतीर्थानि मध्ये काशिपदेपदे । परम्पाञ्चनदः कैश्चिन्महिमानापिकुत्रचित्
अप्येकंकार्त्तिकस्याऽहस्तत्रवै सफलीकृतम् । जपहोमार्चनादानैः कृतकृत्यास्तएवहि
सर्वाण्यपि च तीर्थानि युगपत्तुलितान्यपि ।
नाधिजग्मुः पञ्चनद्याः कला याअपि तुल्यताम् ॥ ५५ ॥
स्नात्वा पाञ्चनदेतीर्थे दृष्ट्वा वै बिन्दुमाधवम् । नजातुजायते धीमाञ्जननीजठराजिरे॥
ततो ज्ञानह्रदं तीर्थं जडानामपि जाड्यहृत् ।
तत्र स्नातो नरो जातु ज्ञानभ्रंशं न चाऽऽप्नुयात् ॥ ५७ ॥
तत्र ज्ञानह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा ज्ञानेश्वरं नरः ।
ज्ञानं तदधिगच्छेद्वै येन नो बाध्यते पुनः ॥ ५८ ॥
ततोऽस्ति मङ्गलंतीर्थं सर्वामङ्गलनाशनम् । तत्रावगाहनंकृत्वा भवेन्मङ्गलभाजनम्
अमङ्गलानि नश्येयुर्भवेयुर्मङ्गलानिच । स्नातुर्वैमङ्गलेतीर्थेनमस्कर्तुश्चमङ्गलम् ॥ ६० ॥
मयूखमालिनस्तीर्थं तदग्रे मलनाशनम् । तत्राप्लुतोगभस्तीशंविलोक्यविमलोभवेत्
मखतीर्थन्तु तत्रैव मखेश्वरसमीपतः । मखजम्पुण्यमाप्नोति तत्र स्नातोनरोत्तमः
तत्पार्श्वे बिन्दुतीर्थञ्च परमज्ञानकारणम् । तत्र श्राद्धादिकं कृत्वालभेत्सुकृतमुत्तमम्
पिप्पलादस्य च मुनेस्तीर्थं तद्याम्यदिक्स्थितम् ।
स्नात्वा शनेर्दिने तत्र दृष्ट्वा वै पिप्पलेश्वरम् ॥ ६४ ॥
पिप्पलं तत्र सेवित्वा अश्वत्थ इति मन्त्रतः ।
शनिपीडां न लभते दुःस्वप्नञ्चापि नाशयेत् ॥ ६५ ॥

ततस्ताम्रवराहाख्यं तीर्थञ्चैवातिपावनम् । यत्रस्नानेनदानेन नमज्जेदघसागरे ॥
तदग्रे कालगङ्गा च कलिकल्मषनाशिनी ।
तस्यां स्नात्वा नरो धीमांस्तत्क्षणान्निरघो भवेत् ॥ ६७ ॥
इन्द्रद्युम्नं महातीर्थमिन्द्रद्युम्नेश्वराग्रतः । तोयकृत्यन्तत्र कृत्वा लोकमैन्द्रमवाप्नुयात्
ततस्तु रामतीर्थञ्च वीररामेश्वराग्रतः । तत्तीर्थस्नानमात्रेण वैष्णवं लोकमाप्नुयात्
तत ऐक्ष्वाकवं तीर्थं सर्वाघौघविनाशनम् । तत्रस्नानेन पूतात्मा जायतेमनुजोत्तमः
मरुत्ततीर्थं तत्प्रान्ते मरुत्तेश्वरसन्निधौ । तत्र स्नात्वा तमभ्यर्च्येशं महदैश्वर्यमाप्नुयात्
मैत्रावरुणतीर्थञ्च ततः पातकनाशनम् । तत्र पिण्डप्रदानेन पितृणाम्भवति प्रियः ॥
ततोऽग्नितीर्थं विमलमग्नीशपुरतोमहत् । अग्निलोकमवाप्नोति तत्तीर्थपरिमज्जनात्
अङ्गारतीर्थं तत्रैव अङ्गारेश्वरसन्निधौ । तत्राङ्गारचतुर्थ्यांतुस्नात्वानिष्पापतामियात्
ततोवैकलतीर्थञ्चकलशेश्वरसन्निधौ । स्नात्वातल्लिङ्गमभ्यर्च्यकलिकालान्नबिभ्यति
चन्द्रतीर्थं च तत्रैवचन्द्रेश्वरसमीपतः । तत्र स्नात्वार्च्यचन्द्रेशंचन्द्रलोकमवाप्नुयात्
तदग्रे वीरतीर्थञ्च वीरेश्वरसमीपतः । यदुक्तम्प्राक् तव पुरस्तीर्थानामुत्तमंपरम् ॥
विघ्नेशतीर्थं च ततः सर्वविघ्नविघातकृत् ।
जातुचित्तत्र संस्नातो नविघ्नैरभिभूयते ॥ ७८ ॥
हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेस्ततस्तीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र स्नातो नरो जातु न सत्याच्च्यवते क्वचित् ॥ ७९ ॥
हरिश्चन्द्रस्य तीर्थे तु यच्छ्रेयः समुपार्जितम् ।
तदक्षयफलं वीर! इहलोके परत्र च ॥ ८० ॥
ततः पर्वततीर्थञ्च पर्वतेशसमीपतः । सर्वपर्वफलं तस्य स्नात्वा पर्वण्यपर्वणि ॥
कम्बलाश्वतरं तीर्थं तत्र सर्वविषापहम् । तत्र स्नातोभवेन्मर्त्योगीतविद्याविशारदः
ततः सारस्वतन्तीर्थं सर्वविद्योपपादकम् । तिष्ठेयुः पितरस्तत्र सहदेवर्षिमानवैः ॥
उमातीर्थं तु तत्रैव सर्वशक्तिसमन्वितम् ।
औमेयलोकप्राप्त्यै स्यात्स्नानमात्रेण निश्चितम् ॥ ८४ ॥

ततस्त्रिलोकीविख्यातं त्रिलोक्युद्धरणक्षमम् ।
तीर्थं श्रेष्ठतरं वीर! यदाख्या मणिकर्णिका ॥ ८५ ॥
चक्रपुष्करिणीतीर्थं तदादौ विष्णुनाकृतम् । तदाख्याकर्णनादेवसर्वैःपापैःप्रमुच्यते
स्वर्गौकसस्त्रिसन्ध्यंवैजपन्तिमणिकर्णिकाम् । यन्नामग्रहणम्पुंसांश्रेयसेपरमायहि
यैः श्रुतायैः स्मृतावीर! यैर्दृष्टामणिकर्णिका । तएवकृतिनोलोकेकृतकृत्यास्तएवहि
त्रिलोके ये जपन्तीहमानवामणिकर्णिकाम् । जपामितानंहावीरत्रिकालंपुण्यकर्मणः
इष्टंतेन महायज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः । पञ्चाक्षरीमहाविद्यायेनोक्तामणिकर्णिका ॥
महादानानि दत्तानि तेन वैपुण्यकर्मणा । येनाहमर्चितो वीरसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम्
मणिकर्ण्यम्बुभिर्येन तर्पिताः प्रपितामहाः ।
तेन श्राद्धानि दत्तानि गयायां मधुपायसैः ॥ ६२ ॥
मणिकर्णीजलं येन सम्पीतं शुद्धबुद्धिना । किन्तस्यसोमपानैस्तैःपुनरावृत्तिलक्षणैः
तेस्नाताः सर्वतीर्थेषुमहापर्वसुभूरिशः । तथा च सर्वावभृथैर्यैःस्नातामणिकर्णिका
तैः सुराः पूजिताः सर्वे ब्रह्मविष्णुमुखा मखैः ।
यैः स्वर्णकुसुमै रत्नैरर्चिता मणिकर्णिका ॥ ६५ ॥
अहं ते नो मया सार्द्धं दीक्षां सम्प्राप्य शाम्भवीम् ।
अर्चितः प्रत्यहं येन पूजिता मणिकर्णिका ॥ ६६ ॥
तपांसितेनतप्तानि शीर्णपर्णादिना चिरम् । सेविताश्रद्धयायेनश्रीमतीमणिकर्णिका
दत्त्वादानानिभूरीणिमखानिष्ट्वातुभूरिशः ।चिरन्तप्त्वाप्यरण्येषुस्वर्गैश्वर्यान्महीम्पुनः
विपुलेऽत्र महीपृष्ठेपञ्चक्रोश्यां मनोहरा । संश्रितामणिकर्णीयैस्तेयाताश्चानिवर्तकाः
दानानाञ्च व्रतानाञ्च क्रतूनां तपसामपि । इदमेव फलं मन्ये यदाप्यामणिकर्णिका ॥
मोक्षलक्ष्मीरियं साक्षाच्छ्रीमती मणिकर्णिका ।
प्रायोऽस्या महिमानं वै न वेद्म्यहमपि स्फुटम् ॥ १०१ ॥
अवाच्यां मणिकर्ण्याश्च तीर्थम्पाशुपतम्परम् ।
तीर्थं तु रुद्रवासाख्यं विश्वतीर्थमतः परम् ॥ १०२ ॥

मुक्तितीर्थं ततो रम्यमविमुक्तमथोत्तमम् ।
तीर्थं च तारकं स्कान्दं दुण्ढेस्तीर्थं ततोऽपि च ॥ १०३ ॥

भवानेयमथैशानं ज्ञानतीर्थमथोत्तमम् । नन्दितीर्थं विष्णुतीर्थं तीर्थं पैतामहंततः
नाभितीर्थमिदञ्चैव ब्रह्मनालमतःपरम् । ततोभागीरथन्तीर्थं यत्तवाग्रे पुराऽकथि

तीर्थान्युत्तरवाहिन्यां स्वर्धुन्यां काशिसन्निधौ ।
सन्त्यनेकानि पुण्यानि मयोक्तान्यल्पशः पुनः ॥ १०६ ॥

तत्राऽपिनितरांश्रेष्ठापञ्चतीर्थीनृपाङ्गज !। यस्यांस्नात्वानरोभूयोगर्भवासंनसंस्मरेत
प्रथमञ्चासिसम्भेदं तीर्थानां प्रवरम्परम् । ततोदशाश्वमेधाख्यंसर्वतीर्थनिषेवितम्
ततः पादोदकं तीर्थमादिकेशवसन्निधौ । ततः पञ्चनदम्पुण्यं स्नानमात्रादघौघहृत्
एतेषामपि तीर्थानां चतुर्णामपि सत्तम !। पञ्चमंमणिकर्ण्याख्यंमनोवयवशुद्धिदम्
अहंस्नाम्यत्र सततमुमयासहपर्वसु । ब्रह्मणा विष्णुना सार्द्धं सहेन्द्रादिसुरर्षिभिः ॥
अतएवाऽत्र गीयेतगाथेयंश्रुतिसम्मता । नागलोककृतावासैःस्वर्गौकोभिश्चसन्ततम्
सत्यं सत्यंपुनःसत्यंसत्यपूर्वमिदंवचः । मणिकर्णीसमन्तीर्थं नास्तिब्रह्माण्डगोलके

पञ्चतीर्थ्यां नरः स्नात्वा न देहम्पाञ्चभौतिकम् ।
गृह्णाति जातुचित्काश्यां पञ्चास्यो वाऽथ जायते ॥ ११४ ॥

इति दत्त्वावरान्देवो वीरस्याऽन्तर्दधेहरः । सचवीरोपिवीरेशंप्राचर्यप्राप्तःसमीहितम

स्कन्द उवाच

तीर्थाध्यायमिमं पुण्यमगस्ते! यो निशामयेत् ।
तस्याऽघं सङ्क्षयं यायादपि जन्मशतार्जितम् ॥ ११६ ॥

इति वीरेश्वराख्यानं तीर्थाख्यानप्रसङ्गतः । कथितं तेपुरागस्त्यकामेशंकथयाम्यतः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
उत्तरार्धेवीरेश्वराख्यानं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

कामेशतीर्थवर्णनपुरस्सरंदुर्वाससेवरप्रदानवर्णनम्

स्कन्द उवाच

जगज्जनन्याः पार्वत्याःपुरोऽगस्ते! पुरारिणा।
यथाऽऽख्यायि कथा पुण्या तथा ते कथयाम्यहम् ॥ १ ॥
पुरा महीमिमांसर्वांससमुद्राद्रिकाननाम्। ससरित्कांसार्णवांचसग्रामपुरपत्तनाम्
परिभ्रम्य महातेजा महामर्षोमहातपाः। दुर्वासाः सम्परिप्राप्तः शम्भोरानन्दकाननम्
विलोक्याऽऽक्रीडमखिलं बहुप्रासादमण्डितम्।
बहुकुण्डतडागश्च शम्भोस्तोषमुपागमत् ॥ ४ ॥
पदेपदेमुनीनाञ्चजितकालमहाभियाम्। दृष्ट्वोटजानिरम्याणिदुर्वासाविस्मितोऽभवत्
सर्वर्तुकुसुमान्वृक्षान्सुच्छायस्निग्धपल्लवान्।
सफलान्सुलताश्लिष्टान्दृष्ट्वा प्रीतिमगान्मुनिः ॥ ६ ॥
दुर्वासाश्चातिहृष्टोऽभूद् दृष्ट्वा पाशुपतोत्तमान्।
भूतिभूषितसर्वाङ्गां जटाजटितमौलिकान् ॥ ७ ॥
कौपीनमात्रवसनान्स्मरारिध्यानतत्परान्। कक्षीकृतमहालावून्हुडुत्कारजिताम्बुदान्
करण्डदण्डपानीयपात्रमात्रपरिग्रहान्। क्वचित्त्रिदण्डिनोदृष्ट्वानिःसङ्गान्निष्परिग्रहान्
कालादपि निरातङ्कान्विश्वेशशरणं गतान्। क्वचिद्वेदरहस्यज्ञानाबाल्यब्रह्मचारिणः
नित्यंभागीरथीस्नानपरिपिङ्गलमूर्धजान्।
विलोकय काश्यां दुर्वासा ब्राह्मणान्मुमुदेतराम् ॥ ११ ॥
पशुष्वपि च या तुष्टिर्मृगेष्वपि च या द्युतिः।
तिर्यक्ष्वपि च या हृष्टिः काश्यां नान्यत्र सा स्फुटम् ॥ १२ ॥
इदंसुश्रेयसो व्युष्टिःक्षामरेषु त्रिविष्टपे। यत्र तेष्वपि तिर्यक्षु परमानन्दवर्धिनी ॥

वरमेतेऽपि पशव आनन्दवनचारिणः । सदानन्दाः पुनर्देवा न नन्दनवनाश्रिताः ॥१४॥
वरं काशीपुरीवासीम्लेच्छोऽपि हि शुभायतिः ।
नान्यत्रत्यो दीक्षितोऽपि स हि मुक्तेरभाजनम् ॥ १५ ॥
वैश्वेश्वरी पुरीचैषा यथा मे चित्तहारिणी । सर्वापिनतथाक्षोणीनस्वर्गोनैवनागभूः
स्थैर्यम्बबन्ध न क्वापिभ्रमतो मे मनोगतिः । सर्वस्मिन्नपिभूभागेयथास्थैर्यमगादिह
रम्यापुरी भवेदेषा ब्रह्माण्डादखिलादपि । परिष्टुत्येति दुर्वासाश्चेतोवृत्तिमवापह
तप्यमानोऽपि हि तपः सुचिरं समहातपाः ।
यदा नाऽऽप फलं किञ्चिच्चुकोप च तदा भृशम् ॥ १६ ॥
धिक्चमां तापसं दुष्टं धिक्चमेदुश्चरंतपः । धिक्चक्षेत्रमिदंशम्भोःसर्वेषाञ्चप्रतारकम्
यथा न मुक्तिरत्र स्यात्कस्यापिकरवै तथा । इतिशप्तुंयदोद्युक्तः सञ्जहासतदाशिव
तत्रलिङ्गमभूदेकं ख्यातंप्रहसितेश्वरम् । तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसामानन्दःस्यात्पदे पदे ॥
उवाचविस्मयाविष्टोमनस्येवमहेशिता । ईदृशेभ्यस्तपस्विभ्योनमोस्त्वतिपुनःपुनः
यत्रैव हि तपस्यन्तियत्रैवविहिताश्रमाः । लब्धप्रतिष्ठायत्रैव तत्रैववामर्षिणोद्विजाः
मनाक् चिन्तितमात्रं तु चेल्लभन्ते न तापसाः ।
क्रुधा तदैव जीयन्ते हारिण्या तपसां श्रियः ॥ २५ ॥
तथापितापससामान्याः स्वश्रेयोवृद्धिकाङ्क्षिभिः ।
अक्रोधनाः क्रोधना वा का चिन्ता हि तपस्विनाम् ॥ २६ ॥
इतियावन्महेशानोमनस्येवविचिन्तयेत् । तावत्तत्क्रोधजोवह्निर्व्यानशेव्योममण्डलम्
तत्क्रोधानलधूमौघैर्व्यापितंयन्नभोऽङ्गणम् । तद्दधाति नभोऽद्यापिनीलिमानंमहत्तरम्
ततोगणाः परिक्षुब्धाःप्रलयार्णवनीरवत् । आःकिमेतत्किमेतद्धै भाषमाणाःपरस्परम्
गर्जन्तस्तर्जयन्तश्च प्रोद्यतायुधपाणयः । प्रमथाः परितस्थुस्ते परितोधामशाम्भवम्
को यमः कोऽथवा कालः को मृत्युः कस्तथान्तकः ।
को वा विधाता के लेखाः क्रुद्धेष्वस्मासु कः परः ॥ ३१ ॥
अग्निं पिबामो जलवच्चूर्णीकुर्मोऽखिलान्गिरीन् ।

सप्ताऽपि चार्णवांस्तूर्णं करवाम मरुस्थलीम् ॥ ३२ ॥
ातालञ्चानयामोर्ध्वमधोदध्मोऽथवा दिवम् । एकमेव हि वा ग्रासं गगनं करवामहे
ब्रह्माण्डभाण्डमथवा स्फोटयामः क्षणेन हि ।
आस्फालयामो वाऽन्योन्यं कालं मृत्युञ्च तालवत् ॥ ३४ ॥
ग्रसामो वाऽथभुवनं मुक्त्वावाराणसींपुरीम् । यत्रमुक्ताभवन्त्येवमृतमात्रेणजन्तवः
कुतोऽयम्भ्रूमसम्भारो ज्वालावल्यः कुतस्त्वमूः ।
को वा मृत्युञ्जयं रुद्रं नो विद्यान्मदमोहितः ॥ ३६ ॥
इतिपारिषदाः शम्भोर्महाभयभयप्रदाः । जल्पन्तः कल्पयामासुःप्राकारं गगनस्पृशम्
शकलीकृत्यबहुशः शिलावत्प्रलयानलम् । नन्दी च नन्दिषेणश्च सोमनन्दी महोदरः
महाहनुर्महाग्रीवो महाकालोजितान्तकः । मृत्युप्रकम्पनोभीमोघण्टाकर्णो महाबलः
क्षोभणो द्रावणो जृम्भी पञ्चास्यः पञ्चलोचनः ।
द्विशिरास्त्रिशिराः सोमः पञ्चहस्तो दशाननः ॥ ४० ॥
चण्डो भृङ्गिरिटिस्तण्डी प्रचण्डस्ताण्डवप्रियः ।
पिचिण्डिलः स्थूलशिराः स्थूलकेशो गभस्तिमान् ॥ ४१ ॥
क्षेमकःक्षेमधन्वाचवीरभद्रोरणप्रियः । चण्डपाणिः शूलपाणिः पाशपाणिः कृशोदरः
दीर्घग्रीवोऽथपिङ्गाक्षः पिङ्गलः पिङ्गमूर्धजः । बहुनेत्रोलम्बकर्णः खर्वः पर्वतविग्रहः
गोकर्णोगजकर्णश्च कोकिलाख्यो गजाननः । अहंवैनैगमेयश्चविकटास्योऽट्टहासकः
सीरपाणिः शिवारावो वैणिको वेणुवादनः । दुराधर्षोदुःसहश्च गर्जनोरिपुतर्जनः
इत्यादयो गणेशानाः शतकोटिदुरासदाः ।
काश्यांनिवारयामासुरपि प्राभञ्जनीं गतिम् ॥ ४६ ॥
क्षुब्धेषु तेषुवीरेषु चकम्पेभुवनत्रयम् । दुर्वाससश्चकोपाग्निज्वालाभिर्व्याकुलीकृतम्
तदाविविशतुः काश्यां सूर्याचन्द्रमसावपि । न गणैरकृतानुज्ञौतत्तेजःशमितप्रभौ
निवार्यप्रमथानीकमतिक्षुब्धमुमाधवः । मदंश एव हि मुनिरानसूयेय एष वै ॥ ४६
अथो दुर्वाससो लिङ्गादाविरासीत्कृपानिधिः ।

महातेजोमयः शम्भुर्मुनिशापात्पुरीमवन् ॥ ५० ॥
माभूच्छापोमुनेःकाश्यांनिर्वाणप्रतिबन्धकः । इत्यनुक्रोशतोदेवस्तस्यप्रत्यक्षतांगतः
उवाचच प्रसन्नोऽस्मि महाक्रोधन! तापस! । वरयस्ववरःकस्तेमयादेयोऽविशङ्कितः
ततोविलज्जितोऽगस्त्यशापोद्यतकरोमुनिः । अपराद्धम्बहुमया क्रोधान्धेनेतिदुर्धिया
उवाच चेतिबहुशो धिङ्मांक्रोधवशंगतम् । त्रैलोक्याभयदांकाशींशप्तुमुद्यतचेतसम्
दुःखार्णवनिमग्नानां यातायातेति खेदिनाम् ।
कर्मपाशितकण्ठानां काश्येका मुक्तिसाधनम् ॥ ५५ ॥
सर्वेषां जन्तुजातानां जनन्येकैवकाशिका । महामृतस्तन्यदात्रीनेत्री च परमम्पदम्
जनन्यासहनोकाशी लभेदुपमितिंक्वचित् । धारयेज्जननीगर्भे काशीगर्भाद्विमोचयेत्
एवम्भूतां तु यः काशीमन्योऽपि हि शपिष्यति ।
तस्यैव शापो भविता न तु काश्याः कथञ्चन ॥ ५८ ॥
इतिदुर्वाससोवाक्यंश्रुत्वादेवस्त्रिलोचनः । अतीवतुषितोजातःकाशीस्तवनलब्धमुत्
यः काशीं स्तौति मेधावी यःकाशीं हृदि धारयेत् ।
तेन तप्तं तपस्तीव्रं तेनेष्टं क्रतुकोटिभिः ॥ ६० ॥
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य काशीत्यक्षरयुग्मकम् । न तस्यगर्भवासःस्यात्क्वचिदेवसुमेधसः
योमन्त्रंजपतिप्रातः काशीवर्णद्वयात्मकम् । सतुलोकद्वयंजित्वालोकातीतंव्रजेत्पदम्
आनसूयेयतेज्ञानं काशीस्तवनपुण्यतः । यथेदानीं समुत्पन्नं तथा न तपसः पुरा ॥
मुने!न मे प्रियस्तद्वद्दीक्षितो मम पूजकः । यादृक्प्रियतरःसत्यं काशीस्तवनलालसः
तादृक्तुष्टिर्न मे दानैस्तादृक्तुष्टिर्न मे मखैः ।
न तुष्टिस्तपसा तादृग्यादृशी काशिसंस्तवैः ॥ ६५ ॥
आनन्दकाननं येन स्तुतमेतत्सुचेतसा । तेनाहंसंस्तुतः सम्यक् सर्वैःसूक्तैः श्रुतीरितैः
तवकामाः समृद्धाःस्युरानसूयेय तापस! । ज्ञानन्ते परमं भावि महामोहविनाशनम्
अपरञ्चवरम्ब्रूहि किं दातव्यन्तवाऽनघ । त्वादृशाएव मुनयः श्लाघनीयायतः सताम्
यस्यास्त्येव हि सामर्थ्यं तपसः क्रुद्ध्यतीह सः ।

कुपितोऽप्यसमर्थस्तु किं कर्ता क्षीणवृत्तिवत् ॥ ६९ ॥

इति श्रुत्वापरिष्टुत्य दुर्वासाः कृत्तिवाससम् । वरञ्चप्रार्थयामास परिहृष्टतनूरुहः

दुर्वासा उवाच

देवदेवजगन्नाथ! करुणाकर शङ्कर! । महापराधविध्वंसिन्नन्धकारेस्मरान्तक !
मृत्युञ्जयोग्रभूतेश मृडानीश त्रिलोचन! । यदि प्रसन्नो मे नाथ यदि देयो वरो मम
तदिदं कामदं नाम लिङ्गमस्त्विह धूर्जटे! ।
इदं च पल्वलं मेऽत्र कामकुण्डाख्यमस्तु वै ॥ ७२ ॥

देवदेव उवाच

एवमस्तुमहातेजो मुने परमकोपन! । यत्त्वया स्थापितंलिङ्गं दुर्वासेश्वरसञ्ज्ञितम्
तदेव कामकृन्नृणां कामेश्वरमिहास्त्विति । यः प्रदोषेत्रयोदश्यां शनिवासरसंयुजि
संस्नास्यति नरो·धीमान्कामकुण्डे त्वदास्पदे ।
त्वत्स्थापितञ्च कामेशं लिङ्गं द्रक्ष्यति मानवः ॥ ७६ ॥
स वैकामकृताद्दोषाद्यामीं नाप्स्यति यातनाम् ।
बहवोऽपि हि पाप्मानो बहुभिर्जन्मभिः कृताः ॥ ७७ ॥
कामतीर्थाम्बुसंस्नानाद्यास्यन्ति विलयं क्षणात् ।
कामाः समृद्धिमाप्स्यन्ति कामेश्वरनिषेवणात् ॥ ७८ ॥
इति दत्वा वराञ्छम्भुस्तल्लिङ्गे लयमाययौ ।

स्कन्द उवाच

तल्लिङ्गाराधनात्कामाः प्राप्ता दुर्वाससा भृशम् ॥ ७९ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काश्यां कामेश्वरः सदा । पूजनीयःप्रयत्नेन महाकामाभिलाषुकैः
कामकुण्डकृतस्नानैर्महापातकशान्तये । इदं कामेश्वराख्यानं यःपठिष्यतिपुण्यवान्
यः श्रोष्यति च मेधावी तौ निष्पापौ भविष्यतः ॥ ८१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धेदुर्वाससे वरप्रदानवर्णनंनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

सत्वाष्ट्रोपाख्यानंविश्वकर्मेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम्

पार्वत्युवाच

विश्वकर्मेश्वरंलिङ्गं यत्काश्याम्प्रथितम्परम् । तस्यलिङ्गस्यकथय:देवदेव समुद्भवम्

देवदेव उवाच

शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथाम्पातकनाशिनीम् । विश्वकर्मेशलिङ्गस्यप्रादुर्भावंमनोहरम्
विश्वकर्माभवत्पूर्वं ब्रह्मणस्त्वपरातनुः । त्वष्टुः प्रजापतेः पुत्रो निपुणः सर्वकर्मसु
कृतोपनयनः सोऽथ बालोगुरुकुलेवसन् । चकार गुरुशुश्रूषां भिक्षान्नकृतभोजनः
एकदा तद्गुरुः प्राह प्रावृट्काले समागते । कुरूटजं मदर्थं त्वं यथाप्रावृण्नबाधते
यत्कदाचिन्नभज्येत न पुरातनतांव्रजेत् । गुरुपत्न्यात्वभिहितोरेत्वाष्ट्रकुरुकञ्चुकम्
ममाङ्गयोग्यं नोगाढं न श्लथञ्च प्रयत्नतः । विनैववाससाचारुवाल्कलञ्चसदोज्वलम्
गुरुपुत्रेणचाज्ञप्तो ममार्थम्पादुकेकुरु । यदारूढस्य मे पादौ न पङ्कः संस्पृशेत्कचित्
चर्मादिबन्धनिर्मुक्ते धावतो मे सुखप्रदे । याभ्याञ्चसञ्चरेवारिस्थलभूमाविवद्रुतम्
गुरुकन्याऽपितम्प्राहत्वाष्ट्र! मे श्रवणोचिते । भूषणे स्वेनहस्तेन कुरुकाञ्चननिर्मिते
कुमारीक्रीडनीयानि कौतुकानि च देहि मे । दन्तिदन्तमयान्येस्वहस्तरचितानि च
गृहोपकरणं द्रव्यं मुसलोलूखलादिकम् । तथावटयमेधाविन्यथा त्रुट्यति न कचित्

अक्षालितान्यपि यथा नित्यं पीठानि सत्तम! ।
उज्ज्वलानि भवन्त्येव स्थालिकाश्च तथा कुरु ॥ १३ ॥
सूपकर्मण्यपि च मां प्रशाधि त्वष्टृनन्दन !।
यथाऽङ्गुल्यो न दह्यन्ते पाकःस्याच्च यथा शुभः ॥ १४ ॥

एकस्तम्भमयंगेहमेकदारुविनिर्मितम् । तथा कुरु वरन्त्वाष्ट्र यत्रेच्छा तत्र धारये
येसहाध्यायिनोऽप्यस्यवयोज्येष्ठाश्चतेऽपिहि । सर्वेसर्वं समीहन्तेकर्मतत्कृतमेवहि

तथेतिसप्रतिज्ञाय सर्वेषाम्पुरतोऽद्रिजे !। मध्येवनम्प्राविशच्च महाचिन्ताभयार्दितः
किञ्चित्कर्तुं न जानाति प्रतिज्ञातश्च तेन वै।
सर्वेषाम्पुरतः सर्वं करिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ १८ ॥
किंकरोमि क्व गच्छामि कोमेसाहाय्यमर्पयेत्। बुद्धेरपिवनस्थस्य शरणंकंव्रजामिच
अङ्गीकृत्य गुरोर्वाक्यं गुरुपत्न्या गुरोः शिशोः।
यो न निष्पादयेन्मूढः सभवेन्निरयी नरः ॥ २० ॥
गुरुशुश्रूषणं धर्म एको हिब्रह्मचारिणाम्। अनिष्पाद्यतुतद्वाक्यंकथम्मेनिष्कृतिर्भवेत
गुरूणां वाक्यकरणात्सर्वएवमनोरथाः। सिद्ध्यन्तीतरथा नैवतस्मात्कार्यंहितद्वचः
कथं तद्वचसः सिद्धिं प्राप्स्याम्यत्र वने स्थितः।
कश्च मेऽत्र सहायी स्याद्धिषणा दुर्बलस्य वै ॥ २३ ॥
आस्तां गुरुकथा दूरं योऽन्यस्यापि लघोरपि।
ओमित्युक्त्वा न कुरुते कार्यं सोऽथ व्रजत्यधः ॥ २४ ॥
कथमेतानि कर्माणि करिष्येऽज्ञोऽसहायवान्।
अङ्गीकृतानि तद्भीत्या नमस्ते भवितव्यते !॥ २५ ॥
यावदित्थं चिन्तयति सत्वाश्रोवनमध्यगः। तावत्तदैवसम्प्राप्तस्तेनैकोऽदर्शितापसः
अथनत्वा स तम्प्राहवने दृष्टं तपस्विनम्। कोभवान्मानसं मे योनितरां सुखयत्यहो
त्वद्दर्शनेन मेगात्रं चिन्तासन्तापतापितम्। हिमानीगाहनेनेव शीतलम्भवतिक्षणम्
किंत्वं मेप्राक्तनंकर्म प्राप्तंतापसरूपधृक्। अथवाकरुणावार्धिराविर्भूतःशिवोभवान्
योऽसि सोऽसि नमस्तुभ्यमुपदेशेन युङ्क्ष्व माम्।
गुरूक्तं गुरुपत्न्युक्तं गुर्वपत्योक्तमेव च ॥ ३० ॥
कथंकर्तुमहं शक्तः कर्मतत्रादिशाद्भुतम्। कुरुमेबुद्धिसाचायंनिर्जनेबन्धुतांगतः ॥
इत्युक्तस्तेन सवने तापसो ब्रह्मचारिणा। कारुण्यपूर्णहृदयो यथोक्तमुपदिष्टवान् ॥
यआप्तत्वेनसम्पृष्टो दुर्बुद्धिसम्प्रयच्छति।
सयाति नरकंघोरं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३३ ॥

पूजोपकरणैर्द्रव्यैर्घण्टादर्पणचामरैः । चित्रध्वजपताकाभिर्नृत्यवाद्यसुगायनैः ॥ ५१
जपैः प्रदक्षिणाभिश्च नमस्कारैर्मुदायुतैः । परिचारकसन्तोषैः कृत्वेति परिपूजनम्
ब्राह्मणान्वाचयेत्पश्चान्निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ।
एवं कुर्वन्नरः प्राज्ञो निरेना जायते क्षणात् ॥ ५३ ॥
ततः पञ्चनदेस्नात्वा मणिकर्णीह्रदे ततः । ततो विश्वेशमभ्यर्च्यप्राप्नोतिसुकृतंमहत्
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तंमहापापविशोधनम् । नास्तिकेनप्रवक्तव्यंकाशीमाहात्म्यनिन्दके
ददच्च द्रव्यलोभेन प्रायश्चित्तमिदं शुभम् । दातानरकमाप्नोति सत्यं सत्यं घटोद्भव !
क्षमां प्रदक्षिणीकृत्य यत्फलंसम्यगाप्यते । प्रदोषेतत्फलंकाश्यांसप्तकृत्वस्त्रिलोचने
भुजङ्गमेखलं लिङ्गंकाश्यां दृष्ट्वात्रिविष्टपम् । जन्मान्तरेऽपिमुक्तः स्यादन्यत्रमरणेसति
अन्यत्रसर्वलिङ्गेषुपुण्यकालोविशिष्यते । त्रिविष्टपेपुण्यकालःसदारात्रिन्दिवंनृणाम्
लिङ्गान्योङ्कारमुख्यानि सर्वपापप्रकृन्त्यलम् ।
परं त्रैलोचनी शक्तिः काचिदन्यैव पार्वति !॥ ६० ॥
यतः सर्वेषु लिङ्गेषु लिङ्गमेतदनुत्तमम् । तत्कारणं शृणुपर्णे! कर्णं कुरु वदाम्यहम्
पुरा मेयोगयुक्तस्य लिङ्गमेतद्भुवस्तलात् । उद्भिद्यसप्त पातालं निरगात्पुरतोमहत्
अस्मिँल्लिङ्गे पुरागौरिसुगुप्तं तिष्ठतामया । तुभ्यन्नेत्रत्रयंदत्तं निरैक्षिष्ठास्तथोत्तमम्
तदाप्रभृति देवेशि! लिङ्गमेतत्त्रिलोचनम् । विष्टपत्रितयान्तस्थैर्गीयते ज्ञानदृष्टिदम्
त्रिलोचनस्ययेभक्तास्तेऽपिसर्वेत्रिलोचनाः । ममपारिषदास्तेतुजीवन्मुक्तास्तएवहि
त्रिलोचनस्यलिङ्गस्यमहिमानं न कश्चन । सम्यग्वेत्तिमहेशानि! मयैवपरिगोपितम्
शुक्लराधतृतीयायां स्नात्वापैलिपिले ह्रदे । उपोषणपरा भक्त्यारात्रौजागरणान्विताः
त्रिलोचनं पूजयित्वाप्रातः स्नात्वापितत्रवै । पुनर्लिङ्गं समभ्यर्च्य दत्त्वा धर्मघटानपि
सान्नान्सदक्षिणान्देवि! पितृनुद्दिश्यहर्षिताः । विधायपारणंपश्चाच्छिवभक्तजनैःसह
विसृज्य पार्थिवं देहं तेन पुण्येन नोदिताः । भवन्ति देवि! नियतंगणा ममपुरोगमाः
तावद् भ्रमन्ति संसारे देवा मर्त्या महोरगाः ।
गौरि! यावन्न पश्यन्ति काश्यां लिङ्गं त्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥
सकृत्त्रिविष्टपंदृष्ट्वा स्नात्वा पैलिपिलेह्रदे । न जातुमातुः स्तनपो जायते जन्तुरत्रहि

प्रतिमासं सदाऽष्टम्यां चतुर्दश्यां च भामिनि !।
आयान्ति सर्वतीर्थानि द्रष्टुं देवं त्रिविष्टपम् ॥ ७३ ॥
त्रिविष्टपाद्दक्षिणतः स्नातः पैलिपिलेऽम्भसि ।
तत्र सन्ध्यामुपास्यैकां राजसूयफलं लभेत् ॥ ७४ ॥
पादोदकाख्यस्तत्रैव कूपः पापविनाशकः । प्राप्यतस्योदकं मर्त्योनमर्त्योजायते पुनः
तस्यलिङ्गस्यपार्श्वे तुसन्तिलिङ्गान्यनेकशः । कैवल्यदानितान्यत्रदर्शनात्स्पर्शनादपि
तत्र शान्तनवं लिङ्गं गङ्गातीरे प्रतिष्ठितम् ।
तद् दृष्ट्वा शान्तिमाप्नोति नरः संसारतापितः ॥ ७७ ॥
तद्दक्षिणे महालिङ्गंमुनेभीष्मेशसञ्ज्ञितम् । कलिःकालश्चकामश्चबाधतेनतदीक्षणात्
तत्प्रतीच्याम्महालिङ्गं द्रोणेश इति कीर्तितम् ।
यल्लिङ्गपूजनाद् द्रोणो ज्योतीरूपम्पुनर्दधौ ॥ ७९ ॥
अश्वत्थामेश्वरं लिङ्गंतदग्रेचातिपुण्यदम् । यदर्चनवशाद् द्रौणिर्नबिभेत्यपि कालतः
द्रोणेशाद्वायुदिग्भागे बालखिल्येश्वरम्परम् । तल्लिङ्गंश्रद्धयादृष्ट्वा सर्वक्रतुफलं लभेत्
तद्वामेलिङ्गमालोक्य वाल्मीकेश्वरसञ्ज्ञितम् । तस्यसन्दर्शनादेव विशोकोजायतेनरः
अन्यच्चात्रैव यद्वृत्तंतद्ब्रवीमिघटोद्भव !। त्रिविष्टपस्यमाहात्म्यं देव्यैदेवेनभाषितम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेत्रिलोचनाविर्भावो नामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

तां तु शक्ति समायान्तीं महावेगवतीं रणे ॥ १०६ ॥
निजचापविनिर्मुक्तैर्बाणैश्चूर्णीचकार सा । भग्नांशक्तिंसमालोक्यततो दुर्गोमहासुरः
चक्रंच प्रेषयामास दैत्यचक्रातिहर्षदम् । तच्च देव्या शरशतैरन्तरैवाणुवत्कृतम् ॥
ततःशार्ङ्गं समादाय धनुः शक्रधनुर्यथा । हृदि विव्याध बाणेन तां देवीममरार्दनः
सच बाणस्तया देव्यानिजबाणैर्महाजवैः ।
निवारितोपि वेगेन तां देवीमभ्यगान्मुने ॥ ११० ॥
ततः कोदण्डदण्डेन आशुगेन तमाशुगम् । हत्वा निवारयामास कालदण्डमिवापरम्
तस्मिन् विमुखतांयाते मार्गणेदुर्गमासुरः । क्रुद्धःशूलं समादाय संवर्तानलसुप्रभम् ॥
महावेगेन चिक्षेप तां देवीमभिदैत्यपः । परापतच्चतच्छूलं निजशूलेन चण्डिका ॥
अन्तरैव प्रचिच्छेद सह दैत्यजयाशया । तस्मिन्नपि महाशूलेदेवीशूलावहेलिते ॥
गदामादाय दैत्येन्द्रः सहसाऽभिपपातह । आजघान च तां देवीं भुजमूले महाबलः
सापि देवी भुजं प्राप्यगिरीन्द्रशिखराकृतिः । गदाशुपरिपुस्फोटशतधा च सहस्रधा
तदा देव्या सदैत्येन्द्रो वामपादतलेन हि । आताडितः पपातोर्व्यांहृदिगाढं प्रपीडितः
तत्क्षणादेव दैत्येन्द्रः पतित्वा पुनरुत्थितः । बभूव सहसादृश्योदीपोवातहतो यथा
तावज्जगज्जनन्याताः प्रेरितानिजशक्तयः । विचेरुर्दैत्यसैन्येषु सम्वर्तें मृत्युसैन्यवत् ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेदुर्गपराक्रमो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

दुर्गवधमनुदेवःवज्रपञ्जरस्तुतिवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

पार्वतीहृदयानन्द! स्कन्दसर्वज्ञनन्दन । काःकास्तु शक्तयस्तावै तासां नामानि मे वद

स्कन्द उवाच

तासां परमशक्तीनामुमावयवसम्भुवाम् ।
आख्यास्याख्यां श्रृणु मुने! कुम्भसम्भव! तत्त्वतः ॥ २ ॥

त्रैलोक्यविजयातारा क्षमा त्रैलोक्यसुन्दरी । त्रिपुरा त्रिजगन्माताभीमात्रिपुरभैरवी
कामाख्या कमलाक्षी च धृतिस्त्रिपुरतापनी । जयाजयन्तीविजयाजलेशीचापराजिता
शङ्खिनी गजवक्त्राचमहिषघ्नी रणप्रिया । शुभानन्दाकोटराक्षी विद्युज्जिह्वा शिवारवा
त्रिनेत्रा चत्रिवक्त्राच त्रिपदा सर्वमङ्गला । हुङ्कारहेतिस्तालेशी सर्पास्यासर्वसुन्दरी
सिद्धिर्बुद्धिः स्वधास्वाहा महानिद्राशराशना । पाशपाणिःखरमुखीवज्रताराषडानना
मयूरवदना काकी शुकी भासी गरुत्मती । पद्मावती पद्मकेशी पद्मास्या पद्मवासिनी
अक्षरात्र्यक्षरा तन्तुः प्रणवेशीस्वरात्मिका । त्रिवर्गागर्वरहिता अजपा जपहारिणी

जपसिद्धिस्तपःसिद्धिर्योगसिद्धिः पराऽमृता ।
मैत्रीकृन्मित्रनेत्रा च रक्षोघ्नी दैत्यतापनी ॥ १० ॥

स्तम्भनी मोहनी माया बहुमायाबलोत्कटा । उच्चाटनीमहोल्कास्यामनुजेन्द्रक्षयङ्करी
क्षेमंकरीसिद्धिकरी छिन्नमस्ताशुभानना । शाकम्भरीमोक्षलक्ष्मीस्त्रिवर्गफलदायिनी
वार्तालीजम्भलीक्लिन्नाअश्वारूढा सुरेश्वरी । ज्वालामुखीप्रभृतयोनवकोट्योमहाबला
बलानिबलिनां ताभिर्दानवानां स्वलीलया । संक्षिप्तानिजगन्तीवप्रलयानलहेतिभिः
तावत्स दुर्गो दैत्येन्द्रः पयोदान्तरतो बली । चकार करकावृष्टिं वात्यावेगवतीं बहु
ततोभगवती देवी शोषणास्त्रप्रयोगतः । वृष्टिं निवारयामास वर्षोपलमयीं क्षणात्

योषिन्मनोरथवती षण्ढंप्राप्ययथाऽफला । सादैत्यकरकावृष्टिर्देवीं प्राप्यवृथाभवत्
अथदैतेयराजेन बाहुसङ्कर्षकोपतः । उत्पाट्यशैलशिखरं परिक्षिप्तं नभोङ्गणात् ॥

अद्रेः शृङ्गंसुविस्तीर्ण मापतत्परिवीक्ष्य सा ।
शतकोटिप्रहारेण कोटिशः शकलं व्यधात् ॥ १९ ॥
आन्दोल्य मौलिमसकृत्कुण्डलाभ्यां विराजितम् ।
गजीभूयाशु दुद्राव तां देवीं समरेऽसुरः ॥ २० ॥

शैलाकारं तमायान्तं दृष्ट्वाभगवतीगजम् । बद्ध्वापाशेनजवतः खड्गेन करमच्छिनत्
ततोऽत्यन्तं स चीत्कृत्यदेव्याकृत्तकरःकरी । अकिञ्चित्करतांप्राप्य माहिषंवपुराददे
अचलां सचलां सर्वांसचक्रेखुरघाततः । शिलोच्चयांश्चबहुशःशृङ्गाभ्यांसोपितद्बली
निश्वासवातनिहता पेतुरुर्व्यां महाद्रुमाः । उद्वेलिताः समभवन्सप्तापिजलराशयः
महामहिषरूपेण तेनत्रैलोक्ययमण्डपः । आन्दोलितोतिबलिना युगान्तेवात्ययायथा
ब्रह्माण्डमप्यकाण्डेन तद्भयेनसमाकुलम् । दृष्ट्वा भगवती क्रुद्धा त्रिशूलेन जघान तम्
त्रिशूलघातविभ्रान्तः पतित्वापुनरुत्थितः । तं त्यक्त्वामाहिषंवेषमभूद्बाहुसहस्रभृत्

स दुर्गो नितरां दुर्गो विबभौ समराजिरे ।
आयुधानां सहस्राणि बिभ्रत्कालान्तकोपमः ॥ २८ ॥

अथतूर्णं सदैत्येन्द्रस्तांदेवींरणकोविदाम् । महाबलःप्रगृह्याऽऽशुनीतवान्गगनाङ्गणम्

ततो नभोऽङ्गणाद् दूरात्क्षिप्त्वा स जगदम्बिकाम् ।
क्षणात्कलम्बजालेन च्छादयामास वेगवान् ॥ ३० ॥

अथाऽन्तरिक्षगादेवी तस्यमार्गणमध्यगा । विद्युन्मालेव विबभौ महाभ्रपटलीधृता
तं विधूय शरव्रातं निजेषु निकरैरलम् । महेषुणाथविव्याध सा तं दैत्यजनेश्वरम् ॥
हृदिविद्धस्तयादेव्या स च तेन महेषुणा । व्याघूर्णमाननयनःक्षितिमापातिविह्वलः
महारुधिरधाराभिः स्रवन्तीं च प्रवर्तयन् । तस्मिन्निपतिते दुर्गे महादुर्गपराक्रमे ॥
देवदुन्दुभयो नेदुःप्रहृष्टानि जगन्ति च । सूर्याचन्द्रमसौ साग्नीतेजोनिजमवापतुः
पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वन्तः प्रासादेवा महर्षिभिः । तुष्टुवुश्च महादेवीं महास्तुतिभिरादरात्

देवा ऊचुः

नमोदेवि! जगद्धात्रि ! जगत्त्रयमहारणे ! । महेश्वर महाशक्ते ! दैत्यद्रुमकुठारके ! ॥
त्रैलोक्यव्यापिनि! शिवे! शङ्खचक्रगदाधरि !।
स्वशार्ङ्गव्यग्रहस्ताग्रे! नमो विष्णुस्वरूपिणि !॥ ३८ ॥
हंसयाने! नमस्तुभ्यं सर्वसृष्टिविधायिनि !। प्राचांवाचां जन्मभूमेचतुराननरूपिणि
त्वमैन्द्रीत्वंचकौबेरीवायवीत्वंत्वमम्बुपा । त्वंयामीनैर्ऋतीत्वंचत्वमैशीत्वंचपावकी
शशाङ्ककौमुदी त्वंच सौरी शक्तिस्त्वमेव च । सर्वदेवमयी शक्तिस्त्वमेव परमेश्वरी
त्वं गौरी त्वं च सावित्री त्वं गायत्री सरस्वती ।
प्रकृतिस्त्वं मतिस्त्वं च त्वमहं कृतिरूपिणी ॥ ४२ ॥
चेतःस्वरूपिणीत्वंवैत्वंसर्वेन्द्रियरूपिणी । पञ्चतन्मात्ररूपात्वंमहाभूतात्मिकेऽम्बिके
शब्दादिरूपिणीत्वंवै करणानुग्रहात्वमु । ब्रह्माण्डकर्त्रींत्वंदेवीब्रह्माण्डान्तस्त्वमेवहि
त्वं पराऽसि महादेवि त्वं च देविपरापरा । परापराणां परमा परमात्मस्वरूपिणी
सर्वरूपात्वमीशानि त्वमरूपाऽसि सर्वगे !।
त्वं चिच्छक्तिर्महामाये त्वंस्वाहा त्वं स्वधामृते ॥ ४६ ॥
वषड्वौषट्स्वरूपासित्वमेवप्रणवात्मिका । सर्वमन्त्रमयीत्वंवैब्रह्माद्यास्वत्समुद्भवाः
चतुर्वर्गात्मिका त्वं वै चतुर्वर्गफलोदये । त्वत्तः सर्वमिदंविश्वं त्वयि सर्वं जगन्निधे
यद्दृश्यं यददृश्यं च स्थूलसूक्ष्मस्वरूपतः । तत्रत्वंशक्तिरूपेण किंचिन्नत्वदृतेक्वचित्
मातस्त्वयाद्य विनिहत्य महासुरेन्द्रं दुर्गंनिसर्गविबुधार्पितदैत्यसैन्यम् ।
त्राताःस्म देवि! सततं नमतां शरण्ये त्वत्तोऽपरःकइह यं शरणं व्रजामः ॥ ५०
लोके त एव धनधान्यसमृद्धिभाजस्ते पुत्रपौत्रसुकलत्रसुमित्रवन्तः ।
तेषां यशःप्रसरचन्द्रकरावदातं विश्वं भवेद्भवसि येषु सुदृक्त्वमीशे ॥ ५१ ॥
त्वद्भक्तिचेतसि जनेन विपत्तिलेशः क्लेशः क्वा नु भवतीनतिकृत्सु पुंसु ।
त्वन्नामसंस्मृतिजुषां सकलायुषां क्व भूयः पुनर्जनिरिह त्रिपुरारिपत्नि !॥ ५२ ॥
चित्रं यदत्र समरे स हि दुर्गदैत्यस्त्वद्दृष्टिपातमधिगम्य सुधानिधानम् ।

मृत्योर्वशत्वमगमद्धिदितं भवानि! दुष्टोऽपि ते दृशिगतः कुगतिंनयाति ॥ ५३॥
त्वच्छस्त्रवह्निशलभत्वमिता अपीह दैत्याः पतङ्गरुचिमाप्य दिवं व्रजन्ति ।
सन्तः खलेष्वपि न दुष्टधियो यतः स्युः साधुष्विवप्रणयिनः स्वपथं दिशन्ति
प्राच्यां मृडानि! परिपाहिसदा सदा नतान्नोयाम्यामवप्रतिपदं विपदो भवानि!
प्रत्यग्दिशित्रिपुरतापनपत्नि ! रक्ष त्वं पाह्युदीचि निजभक्तजनान्महेशि !॥ ५५॥
ब्रह्माणि! रक्ष सततं नतमौलिदेशं त्वं वैष्णवि! प्रतिकुलम्परिपालयाऽधः।
रुद्राग्निनैऋतिसदागतिदिक्षुपान्तु मृत्युञ्जयात्रिनयनात्रिपुरात्रिशक्त्यः ॥ ५६ ॥
पातु त्रिशूलममले तव मौलिजान्नो भालस्थलं शशिकलाभृदुमाभ्रुवौ च ।
नेत्रे त्रिलोचनवधूर्गिरिजा च नासामोष्ठं जया च विजया त्वधरप्रदेशम् ॥
श्रोत्रद्वयं श्रुतिरवादशनावलिं श्रीश्चण्डी कपोलयुगलं रसनाञ्च वाणी ।
पायात्सदैव चिबुकं जयमङ्गला नः कात्यायनी वदनमण्डलमेव सर्वम् ॥ ५८ ॥
कण्ठप्रदेशमवतादिह नीलकण्ठी भूदारशक्तिरनिशञ्च कृकाटिकायाम् ।
कौर्म्यं सदेशमनिशं भुजदण्डमैन्द्री पद्मा च पाणिफलकं नतिकारिणां नः ॥५९
हस्ताङ्गुलीः कमलजाविरजा नखांश्च कक्षान्तरन्तरणिमण्डलगा तमोघ्नी ।
वक्षःस्थलं स्थलचरी हृदयन्धरित्री कुक्षिद्वयन्त्ववतु नः क्षणदाचरघ्नी ॥ ६० ॥
अव्यात्सदोदरदरीजगदीश्वरीनो नाभिनभोगतिरजा त्वथ पृष्ठदेशम् ।
पायात्कटिञ्च विकटा परमा स्फिचौ नो गुह्यं गुहारणिरपानमपायहन्त्री ॥
ऊरुद्वयञ्च विपुला ललिता च जानू जङ्घे जवाऽवतुकठोरतराऽत्रगुल्फौ ।
पादौ रसातलचराङ्गुलिदेशमुग्रा चान्द्रीनखान्पदतलं तलवासिनी च ॥ ६२ ॥
गृहंरक्षतु नो लक्ष्मीः क्षेत्रं क्षेमकरी सदा । पातुपुत्रान्प्रियकरी पायादायुः सनातनी
यशःपातु महादेवी धर्मम्पातु धनुर्धरी । कुलदेवी कुलम्पातु सद्गतिं सद्गतिप्रदा ॥
रणे राजकुले द्यूते सङ्ग्रामे शत्रुसङ्कटे । गृहेवने जलादौ च शर्वाणी सर्वतोऽवतु ॥
इति स्तुत्वाजगद्धात्रीम्प्रणेमुश्च पुनः पुनः । सर्वेसवासवा देवाः सर्षिगन्धर्वचारणाः
ततस्तुष्टाजगन्मातातानाहसुरसत्तमान् । स्वाधिकारान्सुराःसर्वेशासन्तुप्राग्यथायथा

तुष्टाऽहमनयास्तुत्यानितरान्तु यथार्थया । वरमन्यम्प्रदास्यामि तच्छृणुध्वंसुरोत्तमाः

दुर्गोवाच

यः स्तोष्यति तु मां भक्त्या नरः स्तुत्याऽनया शुचिः ।
तस्याऽहं नाशयिष्यामि विपदश्च पदे पदे ॥ ५६ ॥

एतत्स्तोत्रस्य कवचंपरिधास्यतियो नरः । तस्य क्वचिद्भयं नास्तिवज्रपञ्जरगस्यहि
अद्यप्रभृतिमे नाम दुर्गेति ख्यातिमेष्यति । दुर्गदैत्यस्य समरे पातनादतिदुर्गमात्
ये मां दुर्गां शरणगानतेषांदुर्गतिःक्वचित् । दुर्गास्तुतिरियंपुण्यावज्रपञ्जरसञ्ज्ञिका
अनयाकवचं कृत्वा मा बिभेतु यमादपि । भूतप्रेतपिशाचाश्च शाकिनीडाकिनीगणाः
झोटिङ्गाराक्षसाः क्रूराविषसर्पाग्निदस्यवः । वेतालाश्चापिकङ्कालग्रहाबालग्रहाअपि
वातपित्तादिजनितास्तथा च विषमज्वराः ।
दूरादेव पलायन्ते श्रुत्वा स्तुतिमिमां शुभाम् ॥ ७५ ॥

वज्रपञ्जरनामैतत्स्तोत्रंदुर्गाप्रशंसनम् । एतत्स्तोत्रकृतत्राणे वज्रादपि भयं नहि ॥
अष्टजप्तेनचानेनयोऽभिमन्त्र्यजलं पिबेत् । तस्योदरगतापीडाक्काऽपिनोसम्भविष्यति
गर्भपीडा तु नो जातु भविष्यत्यभिमन्त्रणात् ।
बालानाम्परमा शान्तिरेतत्स्तोत्राम्बुपानतः ॥ ७८ ॥

यत्रसान्निध्यमेतस्य स्तवस्येह भविष्यति । एतास्तु शक्तयःसर्वाःसर्वत्रसहितामया
रक्षाम्परिकरिष्यन्ति मद्भक्तानांममाज्ञया । इति दत्त्वावरान्देवीदेवेभ्योऽन्तर्हितातदा
तेऽपि स्वर्गौकसः सर्वे स्वं स्वं स्वर्गं ययुर्मुदा ।

स्कन्द उवाच

इत्थंदुर्गाभवन्नामतस्यादेव्या महामुने !। काश्यांसेव्यायथा साचतच्छृणुष्ववदामिते
अष्टम्याञ्चचतुर्दश्याम्भौमवारेविशेषतः । सम्पूज्यासततंकाश्यां दुर्गादुर्गतिनाशिनी
नवरात्रं प्रयत्नेन प्रत्यहं सासमर्चिता । नाशयिष्यति विघ्नौघान्सुमतिञ्च प्रदास्यति
महापूजोपहारैश्च महाबलिनिवेदनैः । दास्यत्यभाष्टदांसिद्धिं दुर्गा काश्यां न संशयः
प्रतिसंवत्सरंतस्याः कार्या यात्रा प्रयत्नतः । शारदं नवरात्रञ्च सकुटुम्बैःशुभार्थिभिः

यो न सांवत्सरीं यात्रां दुर्गायाः कुरुते कुधीः ।
काश्यां विघ्नसहस्राणि तस्य स्युश्च पदे पदे ॥ ८६ ॥
दुर्गाकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वदुर्गार्तिहारिणीम् ।
दुर्गां सम्पूज्य विधिवन्नवजन्माघमुत्सृजेत् ॥ ८७ ॥
सा दुर्गाशक्तिभिः सार्धं काशीं रक्षति सर्वतः ।
ताः प्रयत्नेन सम्पूज्याः कालरात्रिमुखा नरैः ॥ ८८ ॥
रक्षन्ति क्षेत्रमेतद्वै तथान्या नव शक्तयः । उपसर्गसहस्रेभ्यस्ता वै दिग्देवताःक्रमात्
शतनेत्रा सहस्रास्या तथाऽयुतभुजा परा । अश्वारूढागजास्याचत्वरिताशववाहिनी
विश्वा सौभाग्यगौरी च सृष्टाः प्राच्यादिमध्यतः ।
एता यत्नेन सम्पूज्याः क्षेत्ररक्षणदेवताः ॥ ९१ ॥
तथैव भैरवाश्चाऽष्टौ दिक्ष्वष्टासुप्रतिष्ठिताः । रक्षन्तिसततंकाशींनिर्वाणश्रीनिकेतनम्
रुरुश्चण्डोऽसिताङ्गश्च कपाली क्रोधनस्तथा । उन्मत्तभैरवस्तद्वत्क्रमात्संहारभीषणौ
चतुःषष्टिस्तु वेताला महाभीषणमूर्तयः । रुण्डमुण्डस्रजः सर्वे कर्त्रीखर्परपाणयः
श्ववाहनारक्तमुखा महादंष्ट्रा महाभुजाः । नग्ना विमुक्तकेशाश्च प्रमत्ता रुधिरासवैः ॥
नानारूपधराः सर्वे नानाशस्त्रास्त्रपाणयः । तदाकारैश्च तद्भृत्यैःकोटिशःपरिवारिताः
विद्युज्जिह्वोललज्जिह्वः क्रूरास्यः क्रूरलोचनः । उग्रोविकटदंष्ट्रश्च वक्रास्योवक्रनासिकः
जम्भको जृम्भणमुखो ज्वालानेत्रो वृकोदरः ।
गर्तनेत्रो महानेत्रस्तुच्छनेत्रोऽन्त्रमण्डनः ॥ ९७ ॥
ज्वलत्केशः कम्बुशिराः खर्व्वग्रीवो महाहनुः । महानासोलम्बकर्णःकर्णप्रावरणोनसः
इत्यादयो मुने! क्षेत्रं दुर्वृत्तरुधिरप्रियाः । त्रासयन्तो दुराचारान् रक्षन्तिपरितःसदा
त्रैलोक्यविजयाद्याश्च ज्वालामुख्यन्तगाश्च याः ।
शक्तयोऽत्र मयाख्याता मुने! कलशसम्भव !॥ १०१ ॥
ताः काशीं परिरक्षन्ति चतुर्दिक्षूद्यतायुधाः । ताः समर्च्याःप्रयत्नेनमहाविघ्नप्रशान्तये
भैरवा रुरुमुख्याश्च महाभयनिवारकाः । संपूज्याः सर्वदा काश्यां सर्वसम्पत्तिहेतवः

विद्यज्जिह्वप्रभृतयो वेताला उग्ररूपिणः ।
अत्युग्रानपि विघ्नौघान्हरिष्यन्त्यर्चिता इह ॥ १०४ ॥
तथाभूतावलीचात्र नानाभीषणरूपिणी । उदायुधाऽवति पुरीं शतकोटिमिता मुने!
निर्वाणलक्ष्मीक्षेत्रस्य पालयित्री पदे पदे ।
एता वै देवताः पूज्याः काश्यां निर्वाणकाङ्क्षिभिः ॥ १०६ ॥
श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं नरो दुर्गजयाभिधम् ।
नानाशक्तिसमायुक्तं दुर्गमाशु तरिष्यति ॥ ७ ॥
य एते भैरवाः प्रोक्ता ये वेताला उदाहृताः । तेषां नामानिचाकर्ण्यनरो विघ्नैर्नदूयते
अदृष्टा अपि ते भूता एतदाख्यानपाठकम् ।
रक्षिष्यन्ति प्रयत्नेन सह श्रोतृजनेन च ॥ ९ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काशीभक्तिपरैर्नरैः । श्रोतव्यमिदमाख्यानंमहाविघ्ननिवारणम्
गृहेऽपि यस्य लिखितमेतत्स्थास्यति पूजितम् ।
तस्याऽऽपदां सहस्राणि नाशयिष्यन्ति देवताः ॥ ११ ॥
काश्यां यस्याऽस्ति वै प्रेम तेन कृत्वाऽऽदरं गुरुम् ।
श्रोतव्यमिदमाख्यानं वज्रपञ्जरसन्निभम् ॥ ११२ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेवज्रपञ्जराख्यानवर्णनंनाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सक्षेत्रलिङ्गमहिमॐकारमहिमवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

त्रिलोचनं समासाद्य देवदेवः षडानन !। जगदम्बिकया युक्तः किंचकाराऽऽशु तद्वद

स्कन्द उवाच

मुने कलशजाख्यामि यत्पृष्टन्तन्निशामय। विरजःसञ्ज्ञकं पीठंयत्प्रोक्तंसर्वसिद्धिदम्
तत्पीठदर्शनादेव विरजाजायते नरः। यत्रास्ति तन्महालिङ्गंवाराणस्यांत्रिलोचनम्
तीर्थं पिलिपिलाख्यंतद्धुनद्यम्भसि विश्रुतम्।
सर्वतीर्थमयं तीर्थं तत्काश्यां परिगीयते ॥ ४ ॥
विष्टपत्रितयान्तर्यें देवर्षिमनुजोरगाः। ससरित्पर्वतारण्याः सन्ति ते तत्र यन्मुने ॥
तदारभ्य च तत्तीर्थं तच्च लिङ्गं त्रिलोचनम्। त्रिविष्टपमितिख्यातमतोहेतोर्महत्तरम्
त्रिविष्टपस्य लिङ्गस्य महिमोक्तःपिनाकिना। जगज्जनन्याःपुरतोयथावच्मितथामुने

देव्युवाच

देवदेवजगन्नाथ शर्व सर्वद सर्वग !। सर्वदृक् सर्वजनक!किञ्चित्पृच्छामि तद्वद ॥
इदंतवप्रियं क्षेत्रं कर्मबीजमहौषधम्। नैःश्रेयस्याः श्रियोगेहम्ममापिप्रीतिदम्महत्
यत्क्षेत्ररजसोप्यग्रेत्रिलोक्यपितृणायते। तस्याखिलस्यमहिमाविष्वक्केनावगम्यते
यानीह सन्ति लिङ्गानि तानि सर्वाण्यसंशयम्।
निर्वाणकारणान्येव स्वयम्भून्यपि तान्यपि ॥ ११ ॥
यद्यप्येवन्तथापीश विशेषं वक्तुमर्हसि। काश्यामनादिसिद्धानिकानिलिङ्गानिशङ्कर!
यत्र देवः सदातिष्ठेत्सर्वतोऽपि सवल्लभः। यैरियंप्रथितिं प्राप्ताकाशीमुक्तिपुरीतिच
येषांस्मरणतोऽप्यत्रभवेत्पापस्यसंक्षयः। दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्चस्यातांस्वर्गापवर्गकौ
येषां समर्चनादेव मध्ये जन्मसकृद्विभो !।

लिङ्गानि पूजितानि स्युः काश्यां सर्वाणि निश्चितम् ॥ १५ ॥
विधायमय्यनुक्रोशं कारुण्यामृतसागर । एतदाचक्ष्वमेशम्भोपादयोःप्रणताऽस्म्यहम्
इत्याकर्ण्य महेशानस्तस्या देव्याः सुभाषितम् ।
कथयामास विन्ध्यारे महालिङ्गानि सत्तम !॥ १७ ॥
यन्नामाकर्णनादेव क्षीयन्ते पापराशयः । प्राप्यतेपुण्यसम्भारःकाश्यांनिर्वाणकारणम्

देवदेव उवाच

श्रृणु देवि! परं गुह्यं क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिकारणम् । इदंविदन्तिनैवापिब्रह्मनारायणादयः
असङ्ख्यातानि लिङ्गानि पार्वत्यानन्दकानने ।
स्थूलान्यपि च सूक्ष्माणि नानारत्नमयानि च ॥ २० ॥
नानाधातुमयानीशे दार्षदान्यप्यनेकशः । स्वयम्भून्यप्यनेकानिदेवर्षिस्थापितान्यहो
सिद्धचारणगन्धर्वयक्षरक्षोऽर्चितान्यपि । असुरोरगमर्त्यैश्च दानवैरप्सरोगणैः॥
दिग्गजैर्गिरिभिस्तीर्थैर्ऋक्षवानरकिन्नरैः । पतत्रिप्रमुखैर्देवि! स्वस्वनामाङ्कितानिवै
प्रतिष्ठितानि यानीहमुक्तिहेतूनि तान्यपि । अदृश्यान्यपिदृश्यानिदुरवस्थान्यपिप्रिये
भग्नान्यपि च कालेन तानिपूज्यानिसुन्दरि । परार्धशतसंख्यानिगणितान्येकदामया
गङ्गाम्भस्यपि तिष्ठन्ति षष्टिकोटिमितानिहि ।
सिद्धलिङ्गानि तानीशे तिष्येऽदृश्यत्वमाययुः ॥ २६ ॥
गणनादिवसादर्वाङ्मम भक्तजनैः प्रिये । प्रतिष्ठितानि यानीह तेषांसङ्ख्यानविद्यते
त्वया तु यानि पृष्टानियैरिदंक्षेत्रमुत्तमम् । तानिलिङ्गानिवक्ष्यामिमुक्तिहेतूनिसुन्दरि
कलावतीव गोप्यानि भविष्यन्ति गिरीन्द्रजे !।
परं तेषां प्रभावो यः स्वं स्वं स्थानं न हास्यति ॥ २९ ॥
कलिकल्मषपुष्टा ये ये दुष्टा नास्तिकाः शठाः ।
एतेषांसिद्धलिङ्गानां ज्ञास्यन्त्याख्यामपीह न ॥ ३० ॥
नामश्रवणतोऽपीह यल्लिङ्गानां शुभानने । वृजिनानिक्षयंयान्ति वर्धन्ते पुण्यराशयः॥
ॐकारः प्रथमं लिङ्गं द्वितीयञ्च त्रिलोचनम् ।

तृतीयश्च महादेवः कृत्तिवासाश्चतुर्थकम् ॥ ३२ ॥
रत्नेशः पञ्चमं लिङ्गं षष्ठश्चन्द्रेश्वराभिधम् । केदारः सप्तमं लिङ्गं धर्मेशश्चाष्टमं प्रिये!
वीरेश्वराश्च नवमं कामेशं दशमं विदुः । विश्वकर्मेश्वरं लिङ्गं शुभमेकादशम्परम्
द्वादशम्मणिकर्णीशमविमुक्तं त्रयोदशम् । चतुर्दशम्महालिङ्गम्ममविश्वेश्वराभिधम्
प्रिये! चतुर्दशैतानि श्रियोहेतूनि सुन्दरि !। एतेषांसमवायोऽयम्मुक्तिक्षेत्रमिहेरितम्
देवताः समधिष्ठात्र्यः क्षेत्रस्याऽस्य परा इमाः ।
आराधिताः प्रयच्छन्ति नृभ्यो नैःश्रेयसीं श्रियम् ॥ ३७ ॥
आनन्दकानने मुक्त्यैप्रोक्तान्येतानि सुन्दरि । प्रियेचतुर्दशेज्यानिमहालिङ्गानिदेहिनाम्
प्रतिमासं समारभ्यतिथिं प्रतिपदंशुभाम् । एतेषांलिङ्गमुख्यानांकार्यायात्राप्रयत्नतः
अनाराध्य महादेवमेषुलिङ्गेषु कुम्भज !। कःकाश्यांमोक्षमाप्नोतिसत्यंसत्यंपुनःपुनः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाशीफलमभीप्सुभिः । पूज्यान्येतानिलिङ्गानिभक्त्यापरमयामुने

अगस्त्य उवाच

एतान्येव किमन्यानि महालिङ्गानिषण्मुख !। निर्वाणकारणानीह यदिसन्तितदावद

स्कन्द उवाच

अन्यान्यपि च सन्तीह महालिङ्गानि सुव्रत !।
कलिप्रभावाद्गुप्तानि भविष्यन्त्येव तानि वै ॥ ४३ ॥
यस्येश्वरे सदाभक्तिर्यःकाशीतत्त्वविक्तमः । सएवैतानिलिङ्गानिवेत्स्यत्यन्योनकश्चन
येषां नामग्रहेणापि कलिकल्मषसंक्षयः । अमृतेशस्तारकेशो ज्ञानेशः करुणेश्वरः
मोक्षद्वारेश्वरश्चैव स्वर्गद्वारेश्वरस्तथा । ब्रह्मेशो लाङ्गलश्चैव वृद्धकालेश्वरस्तथा
वृषेशश्चैव चण्डीशो नन्दिकेशो महेश्वरः । ज्योतीरूपेश्वरं लिङ्गं ख्यातमत्रचतुर्दशम्
काश्याञ्चतुर्दशैतानि महालिङ्गानि सुन्दरि । इमानि मुक्तिहेतूनिलिङ्गान्यानन्दकानने
कलिकल्मषबुद्धीनांनाख्येयानि कदाचन । एतान्याराधयेद्यस्तु लिङ्गानीहचतुर्दश
न तस्य पुनरावृत्तिः संसाराध्वनि कर्हिचित् ।
काशी कोशोयमतुलो न प्रकाश्यो यतस्ततः ॥ ५० ॥

एतल्लिङ्गाभिधा देवि! महापद्यपि दुःखहृत्। रहस्यं परमश्चैतत्क्षेत्रस्यास्य वरानने
चतुर्दशापि लिङ्गानि मत्सान्निध्यकराणि हि। अविमुक्तस्य हृदयमेतदेव गिरीन्द्रजे
इमानि यानि लिङ्गानि सर्वेषां मुक्तिदानि हि। एकैकभुवनस्येह सारमादायसर्वतः
मयैतानि कृतान्येव महाभक्तिकृपावशात्।
अस्मिन्क्षेत्रे ध्रुवम्मुक्तिरितियाप्रथितिःप्रिये !। कारणंतत्रलिङ्गानि ममैतानि चतुर्दश
त एव व्रतिनः कान्ते! त एवचतपस्विनः। ध्यातान्येतानियैर्भक्तैर्लिङ्गान्यानन्दकानने
त एवाभ्यस्तसद्योगा दत्तदानास्त एव हि।
काश्यामिमानि लिङ्गानि यैर्दृष्टान्यपिदूरतः ॥ ५६ ॥
इष्टापूर्ताश्च ये धर्माः प्रणीता मुनिसत्तमैः। तेसर्वे तेन विहिता यावज्जीवन्निरेनसा
येनाऽविमुक्तमासाद्यमहालिङ्गानि पार्वति !। सकृदभ्यर्चितानीह समुक्तोनाऽत्रसंशयः

स्कन्द उवाच

अन्यान्यपि च विन्ध्यारे! देव्यै प्रोक्तानि शम्भुना।
स्वभक्तानां हितार्थाय तान्यथाऽऽकर्णयाऽग्रज ॥ ५९ ॥
शैलेशः सङ्गमेशश्च स्वर्लीनो मध्यमेश्वरः। हिरण्यगर्भ ईशानो गोप्रेक्षो वृषभध्वजः
उपशान्तशिवो ज्येष्ठो निवासेश्वर एव च। शुक्रेशो व्याघ्रलिङ्गश्चजम्बुकेशश्चतुर्दशम्
मुने! चतुर्दशैतानि महान्त्यायतनानि वै। एतेषामपि सेवातो नरो मोक्षमवाप्नुयात्
चैत्रकृष्णप्रतिपदं समारभ्य प्रयत्नतः। आचतुर्दशि पूज्यानि लिङ्गान्येतानि सत्तमैः
एतेषां वार्षिकी यात्रा सुमहोत्सवपूर्वकम्।
कार्या मुमुक्षुभिः सम्यक् क्षेत्रसंसिद्धिदायिनी ॥ ६४ ॥
मुने चतुर्दशैतानि महालिङ्गानि यत्नतः। दृष्ट्वा न जायते जन्तुः संसारे दुःखसागरे
क्षेत्रस्य परमं तत्त्वमेतदेव प्रिये! ध्रुवम्। संसाररोगग्रस्तानामिदमेव महौषधम्
क्षेत्रस्योपनिषच्चैषा मुक्तिबीजमिदं परम्। कर्मकाननदावाग्निरेषा लिङ्गावलिः प्रिये
एकैकस्याऽस्यलिङ्गस्यमहिमाद्यन्तवर्जितः। मयैवज्ञायतेदेविसम्यङ्नान्येनकेनचित्
इति श्रुत्वा मुने! प्राह देवी हृष्टतनूरुहा। प्रणम्य देवमीशानं सर्वज्ञं सर्वदं शिवम्

देव्युवाच

रहस्यं परमं काश्यां यदेतत्समुदीरितम् । तच्छ्रुत्वोत्सुकतां प्राप्तःमनोमेऽतीववल्लभ
यदुक्तं लिङ्गमेकैकं महासारतरं परम् । काश्यां परमनिर्वाणकारणंकारणेश्वर !॥ ७१॥
प्रत्येकं महिमानं मे ब्रूह्येषां भुवनेश्वर !। चतुर्दशानां लिङ्गानां श्रवणादघहारिणाम्
ॐकारेशस्य लिङ्गस्यकथमत्रसमागमः । अतिपुण्यतमात्तस्मात्क्षेत्रादमरकण्टकात्
किमात्मकोऽयमोङ्कारोमहिमास्यचकोहर !। केनाराधि पुराचैषददावाराधितश्चकिम्
मृडानीवाक्सुधामेतां विधाय श्रुतिगोचराम् ।
कथामकथयद्देवॐकारस्य महाद्भुताम् ॥ ७५ ॥

देवदेव उवाच

कथामाकर्णयाऽपर्णे वर्णयामितवाऽग्रतः । यथोङ्कारस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावइहाऽभवत्
पुराऽऽनन्दवने चात्र ब्रह्मणा विश्वयोनिना । तपस्तप्तं महादेवि समाधिंदधतापरम्
पूर्णे युगसहस्रेऽथभित्त्वापातालसप्तकम् ।उदतिष्ठत्पुरोज्योतिर्विद्योतितहरिन्मुखम्
यदन्तराविरभवन्निर्व्याजेन समाधिना । तदेव परमंधामबहिराविरभूद्विधेः ॥ ७६ ॥
योभूच्चटचटाशब्दःस्फुटतोभूमिभागतः । तच्छब्दाद्व्यसृजद्वेधाःसमाधिक्रमतोवशी
स्रष्टा विसृष्टतद्ध्यानो यावदुन्मील्य लोचने । पुरःपश्येद्ददर्शाऽग्रे तावदक्षरमादिमम्
अकारं सत्त्वसम्पन्नमृक्क्षेत्रं सृष्टिपालकम् ।
नारायणात्मकं साक्षात्तमःपारे प्रतिष्ठितम् ॥ ८२ ॥
उकारमथ तस्याऽग्रे रजोरूपं यजुर्जनिम् ।
विधातारं समस्तस्य स्वाकारमिव बिम्बितम् ॥ ८३ ॥
नीरवध्वान्तसङ्केतसदनाभं तदग्रतः । मकारंस ददर्शाथ तमोरूपंविशेषतः ॥ ८४ ॥
साम्नोयोनिं लये हेतुं साक्षाद्रुद्रस्वरूपिणम् ।
अथ तत्पुरतो ध्याता व्यधात्स्वनयनातिथिम् ॥ ८५ ॥
विश्वरूपमयाकारं सगुणंवापिनिर्गुणम् । अनाख्यनादसदनम्परमानन्दविग्रहम् ॥
शब्दब्रह्मेतियत्ख्यातंसर्ववाङ्मयकारणम् ।अथोपरिष्टान्नादस्यबिन्दुरूपपरम्परात्परम्

कारणंकारणानाञ्च जगद्योनिचतम्परम् । विधिर्विलोकयाञ्चक्रेतपसागोचरीकृतम्
अवनादोमिति ख्यातं सर्वस्याऽस्य प्रभावतः ।
भक्तमुन्नयते यस्मात्तदोमिति यईरितः ॥ ८६ ॥
अरूपोऽपि सरूपाढ्यःसधात्रा नेत्रगीकृतः । तारयेद्यद्भवाम्भोधेःस्वजपासक्तमानसम्
ततस्तार इतिख्यातो यस्तं ब्रह्मा व्यलोकयत् ॥ ६० ॥
प्रणूयतेयतःसर्वैःपरनिर्वाणकामुकैः । सर्वेभ्योऽभ्यधिकस्तस्मात्प्रणवोयःप्रकीर्तितः
स्वसेवितारम्पुरुषं प्रणयेद्यः परम्पदम् । अतस्तम्प्रणवं शान्तं प्रत्यक्षीकृतवान्विधिः
त्रयीमयस्तुरीयो यस्तुर्यातीतोऽखिलात्मकः ।
नादविन्दुस्वरूपो यः स प्रैक्षि द्विजगामिना ॥ ६३ ॥
प्रावर्तन्त यतोवेदाः साङ्गाः सर्वस्ययोनयः । सवेदादिः पद्मभुवा पुरस्तादवलोकितः
वृषभो यस्त्रिधाबद्धो रोरवीति महोमयः । स नेत्रविषयीचक्रे परमः परमेष्ठिना ॥
शृङ्गाश्चत्वारियस्याऽऽसन्हस्तासःसप्तएवच । द्वेशीर्षेचत्रयःपादा सदेवोविधिनैक्षत
यदन्तर्लीनमखिलं भूतम्भाविभवत्पुनः । तद्वीजम्बीजरहितं द्रुहिणेन विलोकितम्
लीनं मृग्येत यत्रैतदाब्रह्मस्तम्बभाजनम् । अतःसभाज्यतेसद्भिर्यल्लिङ्गंतद्विलोकितम्
पञ्चार्था यत्रभासन्ते पञ्चब्रह्ममयं हियत् । आदिपञ्चस्वरूपंयन्निरैक्षि ब्रह्मणा हि तत्
तमालोक्य ततो वेधालिङ्गरूपिणमीश्वरम् । पञ्चाक्षरम्प्रपञ्चाच्च भिन्नं तुष्टाव शङ्करम्

ब्रह्मोवाच

नम ॐकाररूपाय नमोऽक्षरवपुर्धृते । नमोऽकारादिवर्णानांप्रभवाय सदाशिव !॥
अकारस्त्वमुकारस्त्वं मकारस्त्वमनाकृते । ऋग्यजुः सामरूपाय रूपातीताय ते नमः
नमो नादात्मने तुभ्यं नमोविन्दुकलात्मने । अलिङ्गलिङ्गरूपाय सर्वरूपस्वरूपिणे
नमस्ते धामनिधये निधनादिविवर्जित! । नमो भवाय रुद्राय शर्वाय च नमोऽस्तुते
नम उग्राय भीमाय पशूनाम्पतये नमः । नमस्तारस्वरूपाय सम्भवाय नमोऽस्तुते
अमायाय नमस्तुभ्यं नमः शिवतराय ते । कपर्दिनेनमस्तुभ्यं शितिकण्ठनमोऽस्तुते
मीढुष्टमाय गिरिश! शिपिविष्टाय तेनमः । नमोऽह्रस्वाय खर्वायवृद्धते वृद्धरूपिणे॥

कुमारगुरवे तुभ्यं कुमारवपुषे नमः । नमः श्वेताय कृष्णाय पीतायारुणमूर्तये ॥
धूम्रवर्णाय पिङ्गाय नमः किर्मीरवर्चसे । नमः पाटलवर्णाय नमो हरिततेजसे ॥
नानावर्णस्वरूपाय वर्णानाम्पतये नमः । नमस्ते स्वररूपाय नमोव्यञ्जनरूपिणे ॥
उदात्तायानुदात्ताय स्वरिताय नमो नमः । ह्रस्वदीर्घप्लुतेशाय सविसर्गाय ते नमः ॥
अनुस्वारस्वरूपाय नमस्ते सानुनासिक !। नमो निरनुनासाय दन्त्यतालव्यरूपिणे
ओष्ठ्योरस्यस्वरूपायनमऊष्मस्वरूपिणे । अन्तस्थाय नमस्तुभ्यंपञ्चमायपिनाकिने
निषादाय नमस्तुभ्यं निषादपतये नमः । वीणावेणुमृदङ्गादिवाद्यरूपाय ते नमः ॥
नमस्ताराय मन्द्राय घोरायाघोरमूर्तये । नमस्तानस्वरूपाय मूर्च्छनापतये नमः ॥
स्थायिसंचारिभेदेन नमोभावस्वरूपिणे । तालप्रियाय तालायलास्यताण्डवजन्मने
तौर्यत्रिकस्वरूपाय तौर्यत्रिकमहाप्रिय !। तौर्यत्रिककृताम्भक्त्यानिर्वाणश्रीप्रदायक
स्थूलसूक्ष्मस्वरूपाय दृश्यादृश्यस्वरूपिणे । अर्वाचीनाय चनमः पराचीनाय ते नमः
वाक्प्रपञ्चस्वरूपाय वाक्प्रपञ्चपराय च । एकायानेकभेदाय सदसत्पतयेनमः॥ ११९
शब्दब्रह्म!नमस्तुभ्यं परब्रह्म! नमोऽस्तुते । नमो वेदान्तवेद्याय वेदानाम्पतये नमः ॥
नमोवेदस्वरूपाय वेदगोचरमूर्तये । पार्वतीश! नमस्तुभ्यं जगदीश! नमोऽस्तुते
नमस्ते देवदेवेश! देवदिव्यपदप्रद । शङ्कराय नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महेश्वर !॥ १२२
नमस्ते जगदानन्द नमस्ते शशिशेखर । मृत्युञ्जय नमस्तुभ्यं नमस्ते त्र्यम्बकायच
नमः पिनाकहस्ताय त्रिशूलायुधधारिणे । नमस्त्रिपुरहन्त्रे च नमोऽन्धकनिषूदन ॥
कन्दर्पदर्पदलन नमोजालन्धरारये । कालाय कालकालाय कालकूटविषादिने ॥ १२५
विषादहन्त्रे भक्तानामभक्तैकविषादद !। ज्ञानायज्ञानरूपाय सर्वज्ञाय नमोऽस्तुते ॥

योगसिद्धिप्रदोऽसि त्वं योगिनां योगसत्तम !।
तपसां फलदोऽसि त्वं तपस्विभ्यस्तपोधन !॥ १२७ ॥

त्वमेवमन्त्ररूपोऽसिमन्त्राणांफलदोभवान् । महादानफलं त्वं वै महादानप्रदोभवान्
महायज्ञस्त्वमेवेश महायज्ञफलप्रद !। त्वं सर्वः सर्वगस्त्वं वै सर्वदः सर्वदृग्भवान् ॥
सर्वभुक्सर्वकर्ता त्वं सर्वसंहारकारक !। योगिनां हृदयाकाशकृतालय! नमोऽस्तुते

३४

त्वमेव विष्णुरूपेण शङ्खचक्रगदाधर!। त्रिलोकींत्रायसे त्रातःसत्त्वमूर्ते!नमोऽस्तु ते
त्वमेव विदधास्येतद्विधिर्भूत्वाविधानवित्। रजोरूं समालम्ब्य नीरजस्कपदप्रद
त्वमेव हि महारुद्रस्त्वम्महोग्रोभुजङ्गभृत्। त्वमेव हि महाभीमो महापितृवनेचर
तामसीं तनुमाश्रित्य त्वं कृतान्तकृतान्तकः। कालाग्निरुद्रोभूत्वान्तेत्वंसंवर्तप्रवर्तकः
त्वं पुम्प्रकृतिरूपाभ्यां महदाद्यखिलञ्जगत्। अक्षिपक्ष्मसमुत्क्षेपात्पुनराविःकरोष्यज
उन्मेषविनिमेषौ ते सर्गासर्गैककारणम्। कपालमालाखेलोयं भवतः स्वैरचारिणः
त्वत्कण्ठे नृकरोटीयं धूर्जटे!याविभासते। सर्वेषामन्तदग्धानांसास्फुटंबीजमालिका

त्वत्तः सर्वमिदं शम्भो त्वयि सर्वं चराचरम्।
कस्त्वां स्तोतुं विजानाति पुरा वाचामगोचरम्॥ १३८॥
स्तोता त्वं हि स्तुतिस्त्वं हि नित्यं स्तुत्यस्त्वमेव च।
वेद्मयों नमः शिवायेति नान्यद्वेद्म्ये व किञ्चन॥ १३९॥

त्वमेवहि शरण्यंमे त्वमेवहि गतिः परा। त्वामेव प्रणमामीश नमस्तुभ्यं नमो नमः
इत्युदीर्यासकृद्वेधाः प्रणनाम महेश्वरम्। प्रणवाख्यं महालिङ्गरूपिणं दण्डवत्क्षितौ

ईश्वर उवाच

ततो गिरीन्द्रतनये! श्रुत्वा ब्रह्मस्तुतिम्पराम्। परमैश्वर्यसम्पत्तिहेतुंतुष्टोऽहमद्भुताम्

अमूर्तोऽहं ततो लिङ्गान्मूर्तिमास्थाय शाङ्करीम्।
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहीत्युवाच चतुराननम्॥ १४३॥

चतुर्वक्त्रः समुत्थाय प्रत्यक्षंवीक्ष्यमामथ। पुनर्जयजयेत्युक्त्वा प्रणनामकृताञ्जलिः
आनन्दबाष्पसलिलनेत्रोहृष्टतनूरुहः। गद्गदेन स्वरेणाथप्रोवाच जलजासनः॥ १४

ब्रह्मोवाच

यदिप्रसन्नो देवेश यदिदेयो वरो मम। तदेतस्मिन्महालिङ्गेसान्निध्यं तेऽस्तु शङ्कर!
अयमेव वरो देयो नान्यं वरमहं वृणे। ओंकारेश्वरनामैतदस्तु भक्तैकमुक्तिदम्॥

स्कन्द उवाच

विध्युक्तमिति विप्रर्षे!समाकर्ण्य तदेशिता। उवाच वचनं चैतत्तथास्तु चतुराननम्

वरानन्यानपि विभुःप्रसन्नस्तत्क्षणाद्ददौ । विधये दीर्घतपसे तयास्तुत्यातितोषितः

ईश्वर उवाच

सुरश्रेष्ठ तपःश्रेष्ठ! सर्वाम्नायनिधिर्भव । सृष्टेःकरणसामर्थ्यं तवास्तु मदनुग्रहात् ॥
पितामहस्त्वं सर्वेषां सर्वेषांमान्यभूर्भवान् । त्वत्तपःफलदानार्थंयदेतल्लिङ्गमुत्थितम्
परमोङ्काररूपं च शब्दब्रह्ममयं विधे !। अस्याराधनतः पुंसां न दूरं ब्रह्मणः पदम् ॥
अकाराख्यमिदंलिङ्गमुकाराख्यमिदंपरम् । मकाराह्वयमेतच्च नादाख्यं बिन्दुसञ्ज्ञकम्
पञ्चायतनमीशानमित्थमेतदुदीरितम् । मोक्षाय सर्वजन्तूनामस्मिन्नानन्दकानने ॥

स्नात्वा मत्स्योदरीतीर्थे विलोक्योङ्कारमीश्वरम् ।
न जातु जायते जन्तुर्जननीजठरे क्वचित् ॥ १५५ ॥

एतन्नादेश्वरंलिङ्गमेतल्लिङ्गं सुदुर्लभम् । रम्येमत्स्योदरीतीरे दृष्टं स्पृष्टं विमुक्तिदम्
यदेतत्कापिलं ज्योतिरेतल्लिङ्गेविलोक्यते । अतस्तु कपिलेशाख्यमेतल्लिङ्गं सुदुर्लभम्
मत्स्योदरी यदागङ्गाकपिलेश्वरसन्निधौ । तदा तत्र नरःस्नात्वाब्रह्महत्यांव्यपोहति
वरणोत्सिक्तपानीये द्युनदीतोयमिश्रिते । स्नात्वानादेश्वरं दृष्ट्वा नरः किमनुशोचति

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तीर्थानि सह सागरैः ।
षष्टिकोटिसहस्राणि मत्स्योदर्यां विशन्ति हि ॥ १६० ॥

प्रणवेशसमीपेतु यदा गङ्गासमेष्यति । तदा पुण्यतमः कालो देवर्षिपितृवल्लभः
तत्रस्नानं जपोदानं हवनं देवतार्चनम् । मत्स्योदर्यामक्षयं स्यादोङ्कारेश्वरसन्निधौ
ओङ्कारदर्शनादेव वाजिमेधफलंलभेत् । तस्मात्काश्यां प्रयत्नेन दृश्यओङ्कार ईश्वरः
दुर्लभं मानवं जन्म चतुर्वर्गैकसाधनम् । जलबुद्बुदवत्तत्स्यान्नादेशो येन नेक्षितः

निरीक्ष्य कपिलेशानं स्नात्वा मत्स्योदरीजले ।
कृत्वा पिण्डप्रदानानि पितॄणामनृणो भवेत् ॥ १६५ ॥
कृत्वाऽपि मोहात्पापानि भूरीण्येव महान्त्यपि ।
काश्यामोङ्कारमालोक्य कुतस्त्रस्यति वै यमात् ॥ १६६ ॥

ओङ्कारयात्राभिमुखंनरंवीक्ष्य पितामहाः । परिनृत्यन्तिमुदिताःस्वसन्तानसमुद्भवम्

यस्य यस्य च वै नाम स्मृत्वा स्मृत्वा नमस्यति ।
तन्तमुन्नयते प्राज्ञः पितरं ब्रह्मणः पदम् ॥ १६८ ॥
रुद्राणां नियुतं जप्त्वा यत्फलं सम्यगाप्यते ।
तत्फलं लभते नूनं भक्त्योङ्कारविलोकनात् ॥ १६९ ॥
केवलं भूमिभाराय जन्मिनो जन्मतस्य वै । येनाऽऽनन्दवनेदृष्टोनोङ्कारः सर्वकामदः
एकमोङ्कारमालोक्यसमस्तेक्षोणिमण्डले । लिङ्गजातानिसर्वाणिदृष्टानिस्युर्नसंशयः
प्रणवेशं प्रणम्याथ यद्यन्यत्र विपद्यते । स्वर्गलोकमवाप्याथकाश्यांमुक्तिमवाप्नुयात्
अस्मिँल्लिङ्गे सदा ब्रह्मन्स्थास्यामीति विनिश्चितम् ।
दास्यामि च सदा मोक्षमेतल्लिङ्गार्चकाय वै ॥ १७३ ॥
ओङ्कारंसकृदप्यत्र नरो नत्वाप्रयत्नतः । कृतकृत्यो भवेन्नूनं परमान्मदनुग्रहात् ॥
ओङ्कारपश्चिमे भागे तारतीर्थमनुत्तमम् । कृतोदकक्रियस्तत्र नरस्तरति दुर्गतिम्
ओङ्कारेशस्य ये भक्ता ज्ञेयास्ते नैवमानवाः । मनुष्यचर्मणानद्धास्तेरुद्रामोक्षगामिनः
अस्यलिङ्गस्यमहिमानान्यैरत्रावगम्यते । त्वत्पुण्योदयतोयस्माद्विधेत्राविरभूदिदम्
एतल्लिङ्गप्रभावाच्च सर्वंज्ञास्यसि तत्त्वतः । विधेविधेहि तस्मात्त्वं सर्वमेतच्चराचरम्
इति दत्त्वा वरं तस्मै ब्रह्मणे पद्मसम्भवे । तस्मिन्नेवमहालिङ्गे शम्भुर्लीनो बभूव ह

स्कन्द उवाच

ब्रह्मापिभजतेद्यापि तल्लिङ्गं कलशोद्भव !। स्तुवन्ब्रह्मस्तवेनैव स्वात्मनाविहितेन हि
ब्रह्मस्तवं जपन्मर्त्यः सर्वैपापैः प्रमुच्यते । पूर्यते च महापुण्यैर्ज्ञानं प्राप्नोतिसत्तमम्
ब्रह्मस्तवमिमं जप्त्वा त्रिकालं परिवत्सरम् । अन्तकालेभवेज्ज्ञानंयेनबन्धात्प्रमुच्यते

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धेओङ्कारमहिमवर्णनंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

* * *

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

ओँकारमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

श्रृणुवातापिसंहर्तः! काश्यांपातकतङ्गिनी । पञ्चकल्पेतु या वृत्ता दमनस्य द्विजन्मनः
भारद्वाजस्य तनयो दमनोनाम नामतः । कृतमौञ्जीविधिःसोथ विद्याजातं प्रगृह्य च
संसारं दुःखबहुलं जीवितं चापिचञ्चलम् । विज्ञायदमनोविद्वान्निर्जगामगृहान्निजात्
कांचिद्दिशं समालम्ब्य निर्वेदं परमंगतः । प्रत्याश्रमं प्रतिनगंप्रत्यब्धि प्रतिकाननम्
प्रतितीर्थं प्रतिनदि स बभ्राम तपोयुतः । यावन्त्यायतनानीह तिष्ठन्तिपरितोभुवम्
अध्युवास स तावन्ति संयतेन्द्रियमानसः ।
परं न मनसःस्थैर्यं क्वापि प्रापि च तेन वै ॥ ६ ॥
मनोरथोपदेष्टा च कुत्रचित्कापिनेक्षितः । कदाचिद्दैवयोगात्स दमनोनाम तापसः
रेवातटेनिरैक्षिष्ट तीर्थंचामरकण्टकम् । महदायतनं पुण्यमोङ्कारस्यापि तत्र वै ॥
दृष्ट्वा हृष्टमना आसीच्चेतः स्थैर्यमवापह । अथपाशुपतांस्तत्र स निरीक्ष्यतपोधनान्
विभूतिभूषिततनून्कृतलिङ्गसमर्चनान् । विहितप्राणयात्रांश्च कृतागमविचारणान्
स्वस्थोपविष्टान्स्वगुरोरग्रतोऽचलमानसान् ।
प्रणम्योपाविशत्तत्र तदाचार्यस्य सन्निधौ ॥ ११ ॥
प्रबद्धहस्तयुगलः प्रणमत्तरकन्धरः । अथपाशुपताचार्या गर्गो नाम महामुनिः ॥
चार्धकेन समाक्रान्तस्तपसा कृशविग्रहः । शम्भोराराधने निष्ठः श्रेष्ठः सर्वतपस्विषु
पप्रच्छ दमनं चेतिकस्त्वंकस्मादिहागतः । तरुणोऽपिविरक्तोऽसिकुतस्तद्वद सत्तम
इतिप्रणयपूर्वं स निशम्य दमनोऽब्रवीत् । भगोः पाशुपताचार्य!सर्वज्ञाराधनप्रिय
कथयामि यथार्थं ते निजचेतोविचेष्टितम् । अहं ब्राह्मणदायादो ;वेदशास्त्रकृतश्रमः
संसारासारतां ज्ञात्वा वानप्रस्थमशिश्रियम् । अनेनैवशरीरेणमहासिद्धिमभीप्सता

स्नातं बहुषु तीर्थेषु मन्त्राजप्तास्तु कोटिशः । देवताः सेविताबह्व्योहवनंचकृतं बहु
शुश्रूषिताश्च गुरवो बहवो बह्वनेहसम् । महाश्मशानेषु निशाभूयस्योऽप्यतिवाहिताः
शिखराणि गिरीन्द्राणां मया चाध्युषितान्यहो ।
दिव्यौषधिसहस्राणि मया संसाधितान्यपि ॥ २० ॥
रसायनानि बहुशः सेवितानि मया पुनः । महासाहसमालम्ब्यसिद्धाध्युषितकन्दराः
मया प्रविष्टा बहुशः कृतान्तवदनोपमाः । तपश्चापि महत्तप्तं बहुभिर्नियमैर्यमैः ॥
परं किञ्चित्कचिन्नैक्षि सिद्ध्यङ्कुरमपिप्रभो । इदानीं त्वामनुप्राप्यमहींपर्यटता मया
मनसः स्थैर्यमापन्नमिव सम्प्राप्तसिद्धिना ।
अवश्यं त्वन्मुखाम्भोजाद्यद्वचो निःसरिष्यति ॥ २४ ॥
तेनैव महती सिद्धिर्भवित्रीममनान्यथा । तद्ब्रूहि सूपदेशं च कथं सिद्धिर्भवेन्मम
अनेनैव शरीरेण पार्थिवेन प्रथीयसी । दमनस्य निशम्येति गर्गाचार्यो वचस्तदा
प्रत्यक्षदृष्टं प्रोवाचमहदाश्चर्यमुत्तमम् । सर्वेषांशृण्वतांतत्र शिष्याणांस्थिरचेतसाम्
मुमुक्षूणां धृतवतां महापाशुपतं व्रतम् ॥ २७ ॥

गर्ग उवाच

अनेनैवेह देहेन यदि त्वं सिद्धिकामुकः । शृणुष्वावहितो भूत्वातदाते कथयाम्यहम्
अविमुक्ते महाक्षेत्रे सर्वसिद्धिप्रदे सताम् । धर्मार्थकाममोक्षाख्यरत्नानां परमाकरे
समाश्रितानां जन्तूनांसर्वेषां सर्वकर्मणाम् । शलभानांप्रदीपा ये तमस्तोममहाद्विषि
कर्मभूरुहदावाग्नौ संसाराब्ध्यौर्वशोचिषि ।
निर्वाणलक्ष्मी क्षीराब्धौ सुखसङ्केतसद्मनि ॥ ३१ ॥
दीर्घनिद्राप्रसुप्तानां परमोद्बोधदायिनि । यातायातश्रमापन्नप्राणिमार्गमहीरुहि ॥
अनेकजन्मजनितमहापापाद्रिवज्रिणि । नामोच्चारकृतां पुंसां महाश्रेयोविधायिनि
विश्वेशितुः परे धाम्नि सीम्नि स्वर्गापवर्गयोः ।
स्वर्धुनीलोलकल्लोलनित्यक्षालितभूतले ॥ ३४ ॥
एवं विधे महाक्षेत्रे सर्वदुःखौघहारिणि । प्रत्यक्षं मम यद् वृत्तं तद् ब्रवीमि महामते

यत्र कालभयं नास्तियत्र नास्त्येनसोभयम् । तत्क्षेत्रमहिमानंकः सम्यग्वर्णयितुंक्षमः
तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिञ्जन्तूनामघहान्यहो ।
तानि सर्वाणि शुद्ध्यर्थं काशीमायान्ति नित्यशः ॥ ३७ ॥
अपिकाश्यांवसेद्यस्तु सर्वाशीसर्वविक्रयी । सयांगतिलभेन्मर्त्योयज्ञैर्दानैर्नसाऽन्यतः
रागबीजसमुद्भूतः संसारविटपोमहान् । दीर्घस्वापकुठारेण च्छिन्नःकाश्यांनवर्धते
सर्वेषामूषराणां तु काशी परमऊषरः । वप्तुर्बीजमिदं तस्मिन्नुप्तं नैव प्ररोहति ॥
स्मरिष्यन्तीह ये काशीमवश्यं तेऽपि साधवः ।
तेऽप्यघौघविनिर्मुक्ता यास्यन्ति गतिमुत्तमाम ॥ ४१ ॥
विभूतिःसर्वलोकानांसत्यादीनांसुभंगुरा । अभंगुराविमुक्तस्य सातुलभ्याशिवाज्ञया
कृमिकीटपतङ्गानामविमुक्तेतनुत्यजाम् । विभूतिर्दृश्यतेयासाक्वास्तिब्रह्माण्डमण्डले
वाराणसी यदा प्राप्ता कदाचित्कालपर्ययात् ।
स उपायो विधातव्यो येन नो निष्क्रमो बहिः ॥ ४४ ॥
पूर्वतो मणिकर्णीशो ब्रह्मेशो दक्षिणेस्थितः । पश्चिमेचैव गोकर्णोभारभूतस्तथोत्तरे
इत्येतदुत्तमं क्षेत्रमविमुक्ते महाफलम् । मणिकर्णीह्रदे स्नात्वादृष्ट्वाविश्वेश्वरंविभुम्
क्षेत्रं प्रदक्षिणीकृत्य राजसूयफलंलभेत् । तत्र श्राद्धप्रदातुश्च मुच्यन्तेप्रपितामहाः ॥
अविमुक्तसमं क्षेत्रमपि ब्रह्माण्डगोलके । नविद्यते क्वचित्सत्यंसत्यंसाधकसिद्धिदम्
रक्षन्ति सततंक्षेत्रं यत्रपाशासिपाणयः । महापारिषदाउग्राः क्रूरेभ्योऽक्रूरबुद्धयः ॥
प्राग्द्वारमट्टहासश्च गणकोटिपरीवृतः । रक्षेदहर्निशं क्षेत्रं दुर्वृत्तेभ्यो विभीषणः ॥
तथैव भूतधात्रीशः क्षेत्रदक्षिणरक्षकः । गोकर्णः पश्चिमद्वारं पाति कोटिगणावृतः
उदग्द्वारंतथारक्षेद्घण्टाकर्णोमहागणः । ऐशं कोणं छागवक्त्रोभीषणोवह्निदिग्दलम्
रक्षः काष्ठां शङ्कुकर्णो द्रुमिचण्डो मरुद्दिशम् ।
इत्थं क्षेत्रं सदा पान्ति गणा एतेऽतिभास्वराः ॥ ५३ ॥
कालाक्षो रणभद्रस्तु कौलेयःकालकम्पनः । एतेपूर्वेणरक्षन्ति गङ्गापारेस्थितागणाः
वीरभद्रो नभश्चैव कर्दमालिप्तविग्रहः । स्थूलकर्णामहाबाहुरसिपारे व्यवस्थिताः

विशालाक्षो महाभीमः कुण्डोदरमहोदरौ । रक्षन्तिपश्चिमद्वारं देहलीदेशसंस्थिताः
नन्दिसेनश्च पञ्चालः खरपादः करण्टकः । आनन्दो गोपको बभ्रूरक्षन्ति वरणातटे ॥
तस्मिनक्षेत्रे महापुण्ये लिङ्गमोङ्कारसञ्ज्ञकम् । तत्रसिद्धिंपरांप्राप्तादेहेनानेनसाधकाः
कपिलश्चैवसावर्णिःश्रीकण्ठःपिङ्गलोंशुमान् । एतेपाशुपताःसिद्धास्तल्लिङ्गाराधनेनहि
एकदातस्यलिङ्गस्यकृत्वापञ्चापिपूजनम् । नृत्यन्तःसहुडुत्कारं तस्मिँल्लिङ्गेलयंययुः
अन्यच्च तेप्रवक्ष्यामि तत्र यद्वृत्तमद्भुतम् । निशामय महाबुद्धे! दमनद्विजसत्तम !॥
एकाभेकी मुनेतत्रचरन्ती लिङ्गसन्निधौ । प्रदक्षिणं सदा कुर्यान्निर्माल्याक्षतभक्षिणी
सा तत्र मृत्युं न प्रापशिवनिर्माल्यभक्षणात् । क्षेत्रादन्यत्र मरणं जातंतस्यास्तदेनसः
वरंविषमपि प्राश्यं शिवस्वन्नैवभक्षयेत् । विषमेकाकिनं हन्तिशिवस्वं पुत्रपौत्रकम्
शिवस्वपरिपुष्टाङ्गाः स्पर्शनीया नसाधुभिः । तेन कर्मविपाकेन ततस्ते रौरवौकसः

कश्चित्काकः समालोक्य मण्डूकीं तामितस्ततः ।
पोप्लूयमानामादाय चञ्च्वा क्षेत्राद्बहिर्गतः ॥ ६६ ॥

वर्षाश्चीतेन साक्षिप्ता काकेनक्षेत्रबाह्यतः । अथ सा कालतो भेकी तत्रैव क्षेत्रसत्तमे
प्रदक्षिणीकरणतो लिङ्गस्य स्पर्शनादपि । पुण्यापुण्यवती जाताकन्यापुष्पवटोर्गृहे
शुभावयवसंस्थाना शुभलक्षणलक्षिता । परंगृध्रमुखी जाता निर्माल्याक्षतभक्षणात्
सम्यग्गीतरहस्यज्ञा नितरांमधुरस्वरा । सप्तस्वरास्त्रयोग्रामामूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः
ताना एकोनपञ्चाशत्ताला एकोत्तरं शतम् । रागाः षडेव तेषां तु पञ्चपञ्चापिचाङ्गनाः
षट्त्रिंशद्रागरागिण्य इति रागिमुदावहाः । देशकालविभेदेन पञ्चषष्टिस्तथापराः
यावन्त एव तालाः स्यूरागास्तावन्तएवहि । इतिगीतोपनिषदा प्रत्यहं साशुभव्रता
माधवी मधुरालापासदोङ्कारंसमर्चयेत् । प्राप्याप्यनर्घ्यतारुण्यंसातु पुष्पवटोःसुता
प्राग्जन्मवासनायोगादोङ्कारंबहुमंस्तवै । स्वभावचञ्चलंचेतस्तस्यास्तल्लिङ्गसेवनात्
दमनस्थैर्यमगमद्योगेनेव महात्मनः । नदिवा बाधयाञ्चक्रे क्षुत्तृण्निद्राक्षपासु ताम्

अतन्द्रितमना आसीत्सा तल्लिङ्गनिरीक्षणे ।
अक्ष्णोर्निमेषा यावन्तस्तस्या आसन् दिवानिशम् ॥ ७७ ॥

तावत्कालस्तया साध्व्या महान् विघ्नोऽनुमीयते ।
निमेषान्तरितः कालो यो यो व्यर्थो गतो मम ।
लिङ्गानवेक्षणात्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ७८ ॥
इति सञ्चिन्तयन्त्येवसेवांतत्याजनोङ्कृतेः ।
जलाभिलाषिणी सा तु लिङ्गनामामृतंपिबेत् ॥ ७९ ॥
नान्यद्दिदृक्षिणी तस्या अक्षिणी श्रुतिगे अपि ।
विहाय लिङ्गमोङ्कारं हृद्विहायःस्थितं सताम् ॥ ८० ॥
तस्याः शब्दग्रहौ नान्यशब्दग्रहणतत्परौ । अतीवनिपुणौजातौतत्सन्माल्यकरौकरौ
नान्यत्र चरणौ तस्याश्चरतः सुखवाञ्छया ।
त्यक्त्वोङ्काराजिरक्षोणीं क्षुण्णां निर्वाणपद्यया ॥ ८२ ॥
ओङ्कारं प्रणवंसारं परं ब्रह्मप्रकाशकम् । शब्दब्रह्मत्रयीरूपं नादबिन्दुकलालयम् ॥
सदक्षरं चादिरूपं विश्वरूपं परावरम् । वरं वरेण्यं वरदं शाश्वतं शान्तमीश्वरम्
सर्वलोकैकजनकं सर्वलोकैकरक्षकम् । सर्वलोकैकसंहर्तृ सर्वलोकैकवन्दितम् ॥
आद्यन्तरहितं नित्यं शिवं शङ्करमव्ययम् । एकंगुणत्रयातीतं भक्तस्वान्तकृतास्पदम्
निरुपाधिनिराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् । निर्मलं निरहङ्कारं निष्प्रञ्चं निजोदयम्
स्वात्मारामममनन्तं च सर्वगं सर्वदर्शिनम् । सर्वदं सर्वभोक्तारं सर्वं सर्वसुखास्पदम्
वागिन्द्रियं तदीयं च प्रोच्चरत्तदहर्निशम् ।
नामान्तरं न गृह्णाति क्वचिदन्यस्य कस्यचित् ॥ ८९ ॥
एतन्नामाक्षररसं रसयन्ती दिवानिशम् । रसना नैव जानाति तस्याअन्यद्रसान्तरम्
सम्मार्जनं रङ्गमालाः प्रासादं परितःसदा । विदध्यान्माधवीतत्रतथार्चापात्रशोधनम्
तत्र पाशुपता येवै प्रणवेशार्चने रताः । तांश्च शुश्रूषयेन्नित्यं पितृबुद्ध्यातिभक्तितः
वैशाखस्य चतुर्दश्यामेकदा सातु माधवी । रात्रौजागरणंकृत्वादिवोपवसनान्विता
यात्रामिलितभक्तेषु प्रातर्यातेषु सर्वतः । सम्मार्जनादिकं कृत्वा लिङ्गमभ्यर्च्यहर्षतः
गायन्ती मधुरं गीतं नृत्यन्तीनिजलीलया । ध्यायन्तीलिङ्गमोङ्कारंतत्रलिङ्गेलयंययौ

नेनैव शरीरेण पार्थिवेन महामतिः । अस्मदाचार्यमुख्यानां पश्यतांचतपस्विनाम्
प्रादुर्बभूव यल्लिङ्गाज्ज्योतिर्जटिलिताम्बरम् ।
तत्र ज्योतिषि सा बाला ज्योतिर्मय्यपि साऽप्यभूत् ॥ ९७ ॥
ाघशुक्लचतुर्दश्यामद्यापि क्षेत्रवासिनः । तत्र यात्रां प्रकुर्वन्ति महोत्सवपुरःसराः
तत्र जागरणं कृत्वा चतुर्दश्यामुपोषिताः ।
प्राप्नुवन्ति परं ज्ञानं यत्र कुत्रापि वै मृताः ॥ ९९ ॥
ब्रह्माण्डोदरमध्ये तुयानितीर्थानिसर्वतः । तानिवैशाखभूतायामायान्त्योङ्कृतिदर्शने
लिङ्गाग्रे श्रीमुखी नाम्नी गुहाऽस्ति परमोत्तमा ।
पातालस्य च तद् द्वारं तत्र सिद्धा वसन्ति हि ॥ १०१ ॥
तिष्ठेयुः पञ्चरात्रंये गुहायां तत्रसुव्रताः । तेनागकन्याःपश्यन्तिब्रूयुस्ताश्च शुभाशुभम्
कन्दरोत्तरदिग्भागे तत्र कूपोरसोदकः ।
आषण्मासं च तत्पीत्वा पिबेद् ब्रह्मरसायनम् ॥ १०३ ॥
तत्र नादेश्वरं लिङ्गं दृष्ट्वा नादनिदानभूः । सर्वनादात्मकं विश्वं तच्छ्रवोगोचरीभवेत्
तत्र मत्स्योदरीं स्नात्वा स्वर्धुनीं वरुणाप्लुताम् ।
कृतकृत्यो भवेज्जन्तुर्नैव शोचति कुत्रचित् ॥ १०५ ॥
असङ्ख्याता गताः सिद्धिमोङ्कारेश्वरसेवकाः । पार्थिवेनैवदेहेनदिव्यभूतेनतत्क्षणात्
अविमुक्तं परं क्षेत्रं ब्रह्माण्डादपि सर्वतः ।
ततोऽपि पर ओङ्कार उक्तो मत्स्योदरीतटे ॥ १०७ ॥
प्रणवेशोऽङ्ग! यैःकाश्यांननतोनापिचार्चितः । किमर्थंतेसमुत्पन्नामातृतारुण्यहारिणः
यदा प्रभृति विश्वेशो मन्दरादागतोऽभवत् । तस्मिन्नानन्दगहनेतदाप्रभृति सत्तम!
सर्वाण्यायतनान्याशु साब्धीनि सगिरीण्यपि ।
सनदीनि सतीर्थानि सद्वीपानि ययुस्ततः ॥ ११० ॥
इदानीं ममभाग्येन स्मारितोऽहंत्वयामुने । अहमप्यागमिष्यामियामःकाशींशनैःशनैः
एतेऽपि ममशिष्या ये महापाशुपतव्रताः । काशीं यियासवस्तेपि यतःसर्वेमुमुक्षवः

अपि वार्धकमासाद्य यैः काशी नैव शीलिता ।
मानुषे दुर्लभे नष्टे कुतस्तेषां महासुखम् ॥ ११३ ॥
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं यावन्नैवायुषः क्षयः । तावत्सेव्यं प्रयत्नेन शम्भोरानन्दकाननम्
य आनन्दवनं शम्भोः शिश्रियुः श्रीनिकेतनम् ।
अचला श्रीर्नमुञ्चेत्तान्महासौख्यैकशेवधीन् ॥ ११५ ॥
इत्याख्याय कथांरम्यां गर्गः पाशुपतोत्तमः । भारद्वाजेनसहितःप्रापवाराणासींपुरीम्
दमनोऽपि हि धर्मात्मा गर्गाचार्येण संयुतः ।
आराध्य श्रीमदोङ्कारं तस्मिँल्लिङ्गे लयं गतः ॥ ११७ ॥

स्कन्द उवाच

इल्वलारे परं स्थानमोङ्कारमविमुक्तके । तत्र सिद्धिं परांजग्मुः साधका बहुशो मुने
कलौ कलुषचित्तानांपुरोनाऽऽख्येयमेवहि । प्रणवेश्वरमाहात्म्यंनास्तिकानांविशेषतः
ये निन्दन्ति महादेवं क्षेत्रं निन्दन्ति येऽधियः ।
पुराणं ये च निन्दन्ति ते सम्भाष्या न कुत्रचित् ॥ १२० ॥
ॐङ्कारसदृशं लिङ्गं न क्वचिज्जगतीतले । इतिगौर्यैसमाख्यातं देवदेवेन निश्चितम्
इममध्यायमाकर्ण्य नरस्तद्गतमानसः । विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शिवलोकमवाप्नुयात्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
उत्तरार्धेॐङ्कारमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

त्रिलोचनाविर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

श्रुत्वोङ्कारकथामेतांमहापातकनाशिनीम् ।नतृप्तोस्तिविशाखाथब्रूहित्रैविष्टपींकथाम्
कथं च कथिता देव्यै देवदेवेन षण्मुख !। आविर्भूतिर्महाबुद्धे! पुण्यात्रैलोचनीपरा

स्कन्द उवाच

आकर्णय मुने! वच्मि कथां श्रमनिवारिणीम् ।
यथा देवेन कथितां त्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥ ३ ॥
विरजाख्यं हि तत्पीठं तत्र लिङ्गं त्रिविष्टपम् ।
तत्पीठदर्शनादेव विरजा जायते नरः ॥ ४ ॥
तिस्रस्तु सङ्गतास्तत्र स्रोतस्विन्यो घटोद्भव !।
तिस्रः कल्मषहारिण्यो दक्षिणे हि त्रिलोचनात् ॥ ५ ॥
स्रोतोमूर्तिधराः साक्षाल्लिङ्गस्नपनहेतवे । सरस्वत्यथ कालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा
तिस्रोपि हि त्रिसन्ध्यन्ताः सरितः कुम्भपाणयः।
स्नपयन्ति महाधाम लिङ्गं त्रैविष्टपम्महत् ॥ ७ ॥
लिङ्गानि परितस्ताभिः स्वनाम्ना स्थापितान्यपि ।
तेषां सन्दर्शनात्पुंसां तासां स्नानफलं भवेत् ॥ ८ ॥
सरस्वतीश्वरं लिङ्गं दक्षिणेनत्रिविष्टपात् । सारस्वतंपदंदद्याद्दृष्टंस्पृष्टञ्च जाड्यहृत्
यमुनेशम्प्रतीच्याञ्च नरैर्भक्त्यासमर्चितम् । अपिकिल्बिषवद्भिश्चयमलोकनिवारणम्
दृष्टंत्रिलोचनात्प्राच्यां नर्मदेशं सुशर्मदम् । तल्लिङ्गार्चनतो नृणांगर्भवासोनिषिध्यते
स्नात्वा पिलिपिलातीर्थे त्रिविष्टपसमापतः ।
दृष्ट्वा त्रिलोचनं लिङ्गं किं भूयः परिशोचति ॥ १२ ॥

त्रिविष्टपस्य लिङ्गस्य स्मरणादपिमानवः । त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रकार्याविचारणा
त्रिविष्टपस्य द्रष्टारः स्रष्टारः स्युर्नसंशयः । कृतकृत्याएत एवात्र त एवात्रमहाधियः
आनन्दकानने लिङ्गं प्रणतंयैस्त्रिविष्टपम् । त्रिलोचनस्य नामापियैः श्रुतंशुद्धबुद्धिभिः
सप्तजन्मार्जितात्पापात्ते पूता नात्र संशयः । पृथिव्यांयानिलिङ्गानितेषुदृष्टेषुयत्फलम्
तत्स्यात्त्रिविष्टपेदृष्टेकाश्यांमन्येततोधिकम्। काश्यांत्रिविष्टपेदृष्टेदृष्टंसर्वंत्रिविष्टपम्
क्षणान्निर्धूतपापोसौ नपुनर्गर्भभाग्भवेत् । सस्नातः सर्वतीर्थेषुसर्वावभृथवान्सच
योवैपिलिपिलातीर्थे स्नात्वोत्तरवहाम्भसि । सरित्त्रयंमहापुण्यंयत्रसाक्षाद्वसेत्सदा
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा गयायां किं करिष्यति ।
स्नात्वा पिलिपिलातीर्थे कृत्वा वै पिण्डपातनम् ॥ २० ॥
दृष्ट्वात्रिविष्टपं लिङ्गं कोटितीर्थफलं लभेत् । यदन्यत्रार्जितंपापंतत्काशीदर्शनाद्व्रजेत्
काश्यां तु यत्कृतं पापं तत्पैशाचपदप्रदम् । प्रमादात्पातकं कृत्वाशम्भोरानन्दकानने
दृष्ट्वात्रिविष्टपं लिङ्गं तत्पापमपि हास्यति । सर्वस्मिन्नपि भूपृष्ठेश्रेष्ठमानन्दकाननम्
तत्राऽपि सर्वतीर्थानि ततोऽप्योङ्कारभूमिका ।
ॐकारादपि सल्लिङ्गान्मोक्षवर्त्मप्रकाशकात् ॥ २४ ॥
अतिश्रेष्ठतरंलिङ्गं श्रेयोरूपंत्रिलोचनम् । तेजस्विषुयथा भानुर्दृश्येषु च यथा शशी
तथा लिङ्गेषु सर्वेषु परं लिङ्गं त्रिलोचनम् । २६ ॥
त्रिलोचनार्चकानां सापदवी न दवीयसी । परं निर्वाणपद्माया महासौख्यैकशेवधेः
सकृत्त्रिलोचनार्चातो यच्छ्रेयः समुपार्ज्यते ।
न तदाजन्म सम्पूज्य लिङ्गान्यन्यानि लभ्यते ॥ २८ ॥
काश्यां त्रिलोचनं लिङ्गं येऽर्चयन्ति महाधियः ।
तेऽर्च्यास्त्रिभुवनोकोभिर्ममप्रीतिमभीप्सुभिः ॥ २९ ॥
कृत्वाऽपि सर्वसंन्यासं कृत्वा पाशुपतव्रतम् ।
नियमेभ्यः स्खलित्वाऽपि कुतो बिभ्यति मानवाः ॥ ३० ॥
विद्यमाने महालिङ्गे महापापौघहारिणि । त्रिविष्टपे पुण्यराशौ मोक्षनिक्षेपसद्मनि

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

त्रिलोचनाविर्भावविवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

श्रुत्वोङ्कारकथामेतांमहापातकनाशिनीम् ।नतृप्तोस्तिविशाखाथब्रूहित्रैविष्टपींकथाम्
कथं च कथिता देव्यै देवदेवेन षण्मुख !। आविर्भूतिर्महाबुद्धे! पुण्यात्रैलोचनीपरा

स्कन्द उवाच

आकर्णय मुने! वच्मि कथां श्रमनिवारिणीम् ।
यथा देवेन कथितां त्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥ ३ ॥
विरजाख्यं हि तत्पीठं तत्र लिङ्गं त्रिविष्टपम् ।
तत्पीठदर्शनादेव विरजा जायते नरः ॥ ४ ॥
तिस्रस्तु सङ्गतास्तत्र स्रोतस्विन्यो घटोद्भव !।
तिस्रः कल्मषहारिण्यो दक्षिणे हि त्रिलोचनात् ॥ ५ ॥
स्रोतोमूर्तिधराः साक्षाल्लिङ्गस्नपनहेतवे । सरस्वत्यथ कालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा
तिस्रोपि हि त्रिसन्ध्यन्ताः सरितः कुम्भपाणयः।
स्नपयन्ति महाधाम लिङ्गं त्रैविष्टपम्महत् ॥ ७ ॥
लिङ्गानि परितस्ताभिः स्वनाम्ना स्थापितान्यपि ।
तेषां सन्दर्शनात्पुंसां तासां स्नानफलं भवेत् ॥ ८ ॥
सरस्वतीश्वरं लिङ्गं दक्षिणेनत्रिविष्टपात् । सारस्वतंपदंदद्याद्दृष्टंस्पृष्टञ्च जाड्यहृत्
यमुनेशम्प्रतीच्याञ्च नरैर्भक्त्यासमर्चितम् । अपिकिल्विषवह्निश्चयमलोकनिवारणम्
दृष्टंत्रिलोचनात्प्राच्यां नर्मदेशं सुशर्मदम् । तल्लिङ्गार्चनतो नृणांगर्भवासोनिषिध्यते
स्नात्वा पिलिपिलातीर्थे त्रिविष्टपसमापतः ।
दृष्ट्वा त्रिलोचनं लिङ्गं किं भूयः परिशोचति ॥ १२ ॥

त्रिविष्टपस्य लिङ्गस्य स्मरणादपिमानवः । त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रकार्याविचारणा
त्रिविष्टपस्य द्रष्टारः स्रष्टारः स्युर्नसंशयः । कृतकृत्याएत एवात्र त एवात्रमहाधियः
आनन्दकानने लिङ्गं प्रणतंयैस्त्रिविष्टपम् । त्रिलोचनस्य नामापियैः श्रुतंशुद्धबुद्धिभिः
सप्तजन्मार्जितात्पापात्ते पूता नात्र संशयः । पृथिव्यांयानिलिङ्गानितेषुदृष्टेषुयत्फलम्
तत्स्यात्त्रिविष्टपेदृष्टेकाश्यांमन्येततोधिकम्। काश्यांत्रिविष्टपेदृष्टेदृष्टंसर्वंत्रिविष्टपम्
क्षणान्निर्धूतपापोसौ नपुनर्गर्भभाग्भवेत् । सस्नातः सर्वतीर्थेषुसर्वावभृथवान्सच
योवैपिलिपिलातीर्थे स्नात्वोत्तरवहाम्भसि । सरित्त्रयंमहापुण्यंयत्रसाक्षाद्वसेत्सदा
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा गयायां किं करिष्यति ।
स्नात्वा पिलिपिलातीर्थे कृत्वा वै पिण्डपातनम् ॥ २० ॥
दृष्ट्वात्रिविष्टपं लिङ्गं कोटितीर्थफलं लभेत् । यदन्यत्रार्जितंपापंतत्काशीदर्शनाद्व्रजेत्
काश्यां तु यत्कृतं पापं तत्पैशाचपदप्रदम् । प्रमादात्पातकं कृत्वाशम्भोरानन्दकानने
दृष्ट्वात्रिविष्टपं लिङ्गं तत्पापमपि हास्यति । सर्वस्मिन्नपि भूपृष्ठेश्रेष्ठमानन्दकाननम्
तत्राऽपि सर्वतीर्थानि ततोऽप्योङ्कारभूमिका ।
ॐकारादपि सल्लिङ्गान्मोक्षवर्त्मप्रकाशकात् ॥ २४ ॥
अतिश्रेष्ठतरंलिङ्गं श्रेयोरूपंत्रिलोचनम् । तेजस्विषुयथा भानुर्दृश्येषु च यथा शशी
तथा लिङ्गेषु सर्वेषु परं लिङ्गं त्रिलोचनम् । २६ ॥
त्रिलोचनार्चकानां सापदवी न दवीयसी । परं निर्वाणपद्माया महासौख्यैकशेवधेः
सकृत्त्रिलोचनार्चातो यच्छ्रेयः समुपार्ज्यते ।
न तदाजन्म सम्पूज्य लिङ्गान्यन्यानि लभ्यते ॥ २८ ॥
काश्यां त्रिलोचनं लिङ्गं येऽर्चयन्ति महाधियः ।
तेऽर्च्यास्त्रिभुवनौकोभिर्ममप्रीतिमभीप्सुभिः ॥ २९ ॥
कृत्वाऽपि सर्वसंन्यासं कृत्वा पाशुपतव्रतम् ।
नियमेभ्यः स्खलित्वाऽपि कुतो बिभ्यति मानवाः ॥ ३० ॥
विद्यमाने महालिङ्गे महापापौघहारिणि । त्रिविष्टपे पुण्यराशौ मोक्षनिक्षेपसद्मनि

समभ्यर्च्य महालिङ्गं सकृदेवत्रिलोचनम् । मुच्यते कलुषैः सर्वैरपि जन्मशतार्जितैः
ब्रह्महापिसुरापोवास्तेयी वागुरुतल्पगः । तत्संयोग्यपि वावर्षं महापापीप्रकीर्तितः
परदाररतश्चापि परहिंसारतोपि वा । परापवादशीलोपि तथा विस्रम्भघातकः ॥
कृतघ्नोऽपि भ्रणहाऽपि वृषलीपतिरेव वा । मातापितृगुरुत्यागी वह्निदोगरदोऽपिवा
गोघ्नः स्त्रीघ्नोऽपिशूद्रघ्नःकन्यादूषयितापि च । क्रूरोवापिशुनोवापिनिजधर्मपराङ्मुखः

निन्दको नास्तिको वाऽपि कूटसाक्ष्यप्रवादकः ।
अभक्ष्यभक्षको वाऽपि यथाऽविक्रेयविक्रयी ॥ ३७ ॥
इत्यादिपापशीलोऽपि मुक्त्वैकं शिवनिन्दकम् ।
पापान्निष्कृतिमाप्नोति नत्वा लिङ्गं त्रिलोचनम् ॥ ३८ ॥
शिवनिन्दारतो मूढः शिवशास्त्रविनिन्दकः ।
तस्य नो निष्कृतिर्दृष्टा क्वापि शास्त्रेऽपि केनचित् ॥ ३९ ॥
आत्मघाती स विज्ञेयः सदा त्रैलोक्यघातकः ।
शिवनिन्दां विधत्ते यः सोऽनाभाष्योऽधमाधमः ॥ ४० ॥

शिवनिन्दारता ये च शिवभक्तजनेष्वपि । ते यान्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ

शैवाः पूज्याः प्रयत्नेन काश्यां मोक्षमभीप्सुभिः ।
तेष्वर्चितेऽष्वपि शिवः प्रीतो भवत्यसंशयः ॥ ४२ ॥

सर्वेषामिह पापानां प्रायश्चित्तचिकीर्षया । निःशङ्कैरेव वक्तव्यं प्रमाणज्ञैरिदं वचः
पुरश्चरणकामश्चेद्भीतोऽसि यदि पापतः । मन्यसे यदिनःसत्यंवाक्यं शास्त्रप्रमाणतः
ततःसर्वंपरित्यज्यकृत्वामनसिनिश्चयम् । आनन्दकाननंयाहियत्र विश्वेश्वरःस्वयम्
यत्र क्षेत्रप्रविष्टानां नराणांनिश्चितात्मनाम् । नवाध्यतेऽघनिचयः प्राप्यतेच परो वृषः
तत्राद्यापिमहातीर्थेत्रिस्रोतस्यतिनिर्मले । पुण्येपिलिपिलानाम्नित्रिसरित्परिसेविते
त्रिलोचनाक्षिविक्षेपपरिक्षिप्तमहैनसि । स्नात्वागृह्योक्तविधिना तर्पणीयान्प्रतर्प्य च
दत्त्वादेयंयथाशक्तिवित्तशाठ्यविवर्जितः । दृष्ट्वा त्रिविष्टपंलिङ्गंसमभ्यर्च्यातिभक्तितः
गन्धाद्यैर्विविधैर्माल्यैः पञ्चामृतपुरःसरैः । धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैर्वासोभिर्बहुभूषणैः ॥

यतः क्रतुभुजो देवाःक्रतवो वेदसम्भवाः । तेवेदाब्राह्मणाधीनास्ततो देवबलं द्विजाः
निश्चितं ब्राह्मणाधाराःसर्ववेदाःसवासवाः । गीर्वाणाब्राह्मणबलानात्रकार्याविचारणा
ब्राह्मणा यदिनष्टाःस्युर्वेदानष्टास्ततः स्वयम् । आम्नायेषु प्रणष्टेषु विनष्टाःशततन्तवः
यज्ञेषु नाशंगच्छत्सुहृताहारास्ततः सुराः । निर्बलाःसुखजेयाःस्युर्जितेषु त्रिदशेष्वथ
अहमेव भविष्यामि मान्यस्त्रिजगतीपतिः । आहरिष्यामिदेवानामक्षयाःसर्वसम्पदः
निर्वेक्ष्यामिसुखान्येवराज्येनिहतकण्टके । इतिनिश्चित्यदुर्बुद्धिःपुनश्चिन्तितवान्मुने

द्विजाः क्व सन्ति भूयांसो ब्रह्मतेजोऽतिबृंहिताः ।
श्रुत्यध्ययनसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ ५५ ॥

भूयसांब्राह्मणानां तुस्थानंवाराणसीभवेत् । तानादावुपसंहृत्ययामितीर्थान्तरन्ततः
यत्र यत्र हि तीर्थेषु यत्र यत्राश्रमेषु च । सन्ति सर्वेऽग्रजन्मानस्तेमयाद्याःसमन्ततः

इति दुन्दुभिनिर्ह्रादो मतिं कृत्वा कुलोचिताम् ।
प्राप्याऽपि काशीं दुर्वृत्तो मायावी न्यवधीद् द्विजान् ॥ ५८ ॥
समित्कुशान्समादातुं यत्र यान्ति द्विजोत्तमाः ।
अरण्ये तत्र तान्सर्वान्स भक्षयति दुर्मतिः ॥ ५६ ॥

यथा कोऽपिनवेत्त्येव तथाच्छन्नोऽभवत्पुनः । वनेवनेचरो भूत्वा यादोरूपी जलाशये
अदृश्यरूपी मायावी देवानामप्यगोचरः । दिवाध्यानपरस्तिष्ठेन्मुनिवन्मुनिमध्यगः
प्रवेशमुटजानाञ्च निर्गमञ्च विलोकयन् । यामिन्यांव्याघ्ररूपेण ब्राह्मणान्भक्षयेद्बहून्
निःशब्दमेव नयति नत्यजेदपि कीकसम् । इत्थंनिपातिताविप्रास्तेन दुष्टेन भूरिशः
एकदाशिवरात्रौतुभक्तस्त्वेकोनिजोटजे । सपर्यांदेवदेवस्यकृत्वाध्यानस्थितोऽभवत्
सच दुन्दुभिनिर्ह्रादो दैत्येन्द्रो बलदर्पितः । व्याघ्ररूपंसमास्थाय तमादातुं मतिं दधे
तम्भक्तं ध्यानमापन्नंदृढचित्तंशिवेक्षणे । कृतास्त्रमन्त्रविन्यासं सङ्क्रान्तुमशकन्न सः
अथसर्वगतःशम्भुर्ज्ञात्वा तस्याशयं हरः । दैत्यस्यदुष्टरूपस्य वधायविदधे धियम्
यावदादित्सतिव्याघ्रस्तावदाविरभूद्धरः । जगद्रक्षामणिस्त्र्यक्षो भक्तरक्षणदक्षधीः
रुद्रमायान्तमालोक्य तद्भक्तार्चितलिङ्गतः । दैत्यस्तेनैव रूपेण ववृधे भूधरोपमः ॥

सावज्ञमथ सर्वज्ञं यावत्पश्यति दानवः । तावदायान्तमादाय कक्षायन्त्रेन्यपीडयत्
पञ्चास्यस्त्वथ पञ्चास्यम्मुष्ट्यामूर्धन्यताडयत् । सचतेनैवरूपेणकक्षानिष्पेषणेन च
अत्यार्तमरटद्व्याघ्रो रोदसी परिपूरयन् । तेन नादेन सहसा सम्प्रवेपितमानसाः ॥
तपोधनाः समाजग्मुर्निशिशब्दानुसारतः । तत्रेश्वरं समालोक्य कक्षीकृतमृगेश्वरम्
तुष्टुवुः प्रणताः सर्वे शर्वंजयजयाक्षरैः । परित्राता जगत्त्रातः प्रत्यूहाद्दारुणादितः
अनुग्रहं कुरुष्वेश तिष्ठात्रैव जगद्गुरो! । अनेनैवहि रूपेण व्याघ्रेश इति नामतः ॥
कुरुरक्षां महादेव!ज्येष्ठस्थानस्यसर्वदा । अन्येभ्योऽप्युपसर्गेभ्योरक्ष नस्तीर्थवासिनः
इतिश्रुत्वावचस्तेषां देवश्चन्द्रविभूषणः । तथेत्युक्त्वापुनःप्राहशृणुध्वं द्विजपुङ्गवाः
योमामनेन रूपेणद्रक्ष्यति श्रद्धयाऽत्रवै । तस्योपसर्गसङ्घातंघातयिष्याम्यसंशयम्
एतल्लिङ्गंसमभ्यर्च्ययोयातिपथिमानवः । चौरव्याघ्रादिसम्भूतम्भयं तस्यकुतोभवेत्
मच्चरित्रमिदंश्रुत्वास्मृत्वालिङ्गमिदंहृदि । संग्रामेप्रविशन्मर्त्यो जयमाप्नोतिनान्यथा

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गे लयं ययौ ।
सविस्मयास्ततो विप्राः प्रातर्याता यथागतम् ॥ ८१ ॥

स्कन्द उवाच

तदाप्रभृति कुम्भोत्थलिङ्गंव्याघ्रेश्वराभिधम् । ज्येष्ठेशादुत्तरेभागेदृष्टंस्पृष्टंभयापहम्

व्याघ्रेश्वरस्य ये भक्तास्तेभ्यो बिभ्यति किङ्कराः ।
यामा अपि महाक्रूरा जयजीवेति वादिनः ॥ ८३ ॥

पराशरेश्वरादीनां लिङ्गानामिह सम्भवम् । श्रुत्वा नरो न लिप्येत महापातककर्दमैः
कन्दुकेशसमुत्पत्तिं व्याघ्रेशाविर्भवं तथा । समाकर्ण्य नरो जातु नोपसर्गः प्रदूयते ॥
उटजेश्वरलिङ्गन्तुव्याघ्रेशात्पश्चिमेस्थितम् ।भक्तरक्षार्थमुद्भूतंस्यात्समभ्यर्च्यनिर्भयः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पराशरेश्वरादिकन्दुकेशव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसम्भवोनाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥

——:*:——

षट्षष्टितमोऽध्यायः

शैलेशादिलिङ्गनिर्णयवर्णनम्

स्कन्द उवाच

ज्येष्ठेश्वरस्य परितो लिङ्गान्यन्यानि यानि तु ।
तानि ते कथयिष्यामि शृणु वा तापितापन !॥ १ ॥

ज्येष्ठेशाद्दक्षिणे भागे लिङ्गमप्सरसांशुभम् । तत्रैवाप्सरसः कूपःसौभाग्योदकसंज्ञकः
तत्कूपजलसुस्नातोविलोक्याप्सरसेश्वरम् । नदौर्भाग्यमवाप्नोतिनारीवापुरुषोथवा
तत्रैव कुक्कुटेशाख्यं लिङ्गं वापीसमीपगम् । तस्य पूजनतःपुंसांकुटुम्बं परिवर्धते
पितामहेश्वरं लिङ्गं ज्येष्ठवापीतटे शुभम् । तत्र श्राद्धं नरः कृत्वा पितृणां मुदमर्पयेत्
पितामहेशान्नैर्ऋत्यां पूजनीयस्प्रयत्नतः । गदाधरेश्वरं लिङ्गं पितृणां परितृप्तिदम्
दिशिपुण्यजनाख्यायांलिङ्गाज्ज्येष्ठेश्वरान्मुने । वासुकीश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गमर्च्यंसमन्ततः

तत्र वासुकिकुण्डे च स्नानदानादिकाः क्रियाः ।
सर्पभीतिहराः पुंसां वासुकीशप्रभावतः ॥ ८ ॥

यः स्नातो नागपञ्चम्यां कुण्डेवासुकिसञ्ज्ञिते । नतस्यविषसंसर्गोभवेत्सर्पसमुद्भवः
कर्तव्या नागपञ्चम्यां यात्रावर्षासु तत्र वै । नागाःप्रसन्नाजायन्तेकुलेतस्यापिसर्वदा

तत्कुण्डात्पश्चिमे भागे लिङ्गं वै तक्षकेश्वरम् ।
पूजनीयं प्रयत्नेन भक्तानां सर्वसिद्धिदम् ॥ ११ ॥

मुने तस्योत्तरे भागे कुण्डं तक्षकसञ्ज्ञितम् । कृतोदकक्रियस्तत्र न सर्पैरभिभूयते
तत्कुण्डादुत्तरे भागे क्षेत्रक्षेमकरः सदा । भक्तानां साध्वसध्वंसीकपालीनामभैरवः

भैरवस्य महाक्षेत्रं तद्धै साधकसिद्धिदम् ।
तत्र संसाधिताःविद्या षण्मासात्सिद्धिमाप्नुयुः ॥ १४ ॥

तत्रचण्डीमहामुण्डाभक्तविघ्नोपशान्तिदा । बलिपूजोपहाराद्यैःपूज्यास्वाभीष्टसिद्धये

तस्या यात्रां तु यः कुर्यान्महाष्टम्यां नरोत्तमः ।
यशस्वी पुत्रपौत्राढ्यो लक्ष्मीवांश्चापि जायते ॥ १६ ॥
महामुण्डा प्रतीच्यां तु चतुःसागरवापिका ।
तस्यां स्नातो भवेत्स्नातःसागरेषु चतुर्ष्वपि ॥ १७ ॥
महाप्रसिद्धं तत्स्थानं चतुःसागरसञ्ज्ञितम् ।
चत्वारि तत्र लिङ्गानि सागरैः स्थापितानि च ॥ १८ ॥
तस्या वाप्याश्चतुर्दिक्षु पूजितानि दहन्त्यघम् । तदुत्तरेमहालिङ्गंवृषभेश्वरसञ्ज्ञितम्
हरस्य वृषभेणैव स्थापितं तत्स्वभक्तितः ।
तस्य दर्शनतः पुंसां षण्मासान्मुक्तिरुद्भवेत् ॥ २० ॥
वृषेश्वरादुदीच्यां तुगन्धर्वेश्वरसंज्ञितम् । गन्धर्वकुण्डंतत्प्राच्यांतत्रस्नात्वानरोत्तमः
गन्धर्वेश्वरमभ्यर्च्य दत्त्वा दानानिशक्तितः । सन्तर्प्यपितृदेवांश्च गन्धर्वैः सह मोदते
कर्कोटनामा नागोऽस्ति गन्धर्वेश्वरपूर्वतः । तत्र कर्कोटवापीच लिङ्गं कर्कोटकेश्वरम्
तस्यां वाप्यां नरः स्नात्वा कर्कोटेशं समर्च्यच ।
कर्कोटनागमाराध्य नागलोके महीयते ॥ २४ ॥
कर्कोटनागो यैर्दृष्टस्तद्वाप्यां विहितोदकैः । क्रमते नविषं तेषां देहे स्थावरजङ्गमम्
कर्कोटेशात्प्रतीच्यान्तु धुन्धुमारीश्वराभिधम् ।
तल्लिङ्गाभ्यर्चनात्पुंसां न भवेद्वैरिजम्भयम् ॥ २६ ॥
पुरूरवेश्वरं लिङ्गं तदुदीच्यां व्यवस्थितम् । द्रष्टव्यन्ततप्रयत्नेन चतुर्वर्गफलप्रदम्
दिग्गजेनार्चितं लिङ्गं सुप्रतीकेन तत्पुरः । सुप्रतीकेश्वरं नाम्ना यशोबलविवर्धनम्
सरश्च सुप्रतीकाख्यं तत्पुरो भासते महत् ।
तत्र स्नात्वा च तल्लिङ्गं दृष्ट्वा दिक्पतितां लभेत् ॥ २९ ॥
तत्रास्त्येका महागौरी नाम्ना विजयभैरवी । रक्षार्थमुत्तरद्वारिस्थितापूज्येष्टसिद्धये
वरणायास्तटे रम्येगणौ हुण्डनमुण्डनौ । क्षेत्ररक्षांविधत्तस्तौविघ्नस्तम्भनकारकौ
तौ द्रष्टव्यौ प्रयत्नेन क्षेत्रनिर्विघ्नहेतवे । हुण्डनेशम्मुण्डनेशं तत्र दृष्ट्वा सुखीभवेत्

स्कन्द उवाच

इल्वलारे कथामेकां श‍ृणुष्वावहितोभव । वरणायास्तटे रम्ये यद्वृत्तं पूर्वमुत्तमम्
एकदाद्रीन्द्रमालोक्यमेनासंहृष्टमानसम् । उमांसंस्मृत्यनिःश्वस्यप्रोवाचेतिपतिव्रता

मेनोवाच

आर्यपुत्र! न जानामि प्रवृत्तिमपि कांचन । विवाहसमयादूर्ध्वं तस्यागौर्यागिरीश्वर
सवृषेन्द्रगतिर्देवो भस्मोरगविभूषणः । महापितृवनावासो दिग्वासाःक्वास्तिसम्प्रति
अष्टौ यामातरो दृष्टाब्राह्मीप्रभृतयःप्रिय !। स्वस्वरूपास्तामन्येऽहंबालिकाःकष्टहेतवः
तस्यैकस्य न कोऽप्यन्योऽस्त्यद्वितीयस्य शूलिनः ।
तदुदन्तप्रवृत्त्यै च क्रियतामुद्यमो विभो !॥ ३८॥
तस्याःप्रियायावाक्येनतदपत्यप्रियोगिरिः । उवाचवचनंसास्रमुमावात्सल्यसन्नगीः

गिरिराज उवाच

अहमेवगमिष्यामि तस्या मेने! गवेषणे । नितरांबाधतेप्रेम तदद्दृष्ट्यग्निदूषितम्
यदाप्रभृति सा गौरी निर्गता मम सद्मतः । मन्ये मेनेतदारभ्यपद्मसद्माविनिर्ययौ
तदालापामृतधयौ नमे शब्दग्रहौप्रिये । प्राणेश्वरि! तदारभ्यस्यातां शब्दान्तरग्रहौ
जैवातृकी यतोऽह्नः स्याद् दूरीभूताद्दृशोर्मम ।
अहो जैवातृकीज्योत्स्ना ततोऽह्नोऽतिदुनोति माम् ॥ ४३ ॥
इत्युक्त्वाऽऽदायरत्नानिवासांसिविविधानिच । धराधरेन्द्रोनिर्यातः शुभलग्नबलोदये

अगस्त्य उवाच

कानिकानिचरत्नानिकियन्त्यपिच षण्मुख !। यान्यादायप्रतस्थेसतानिमेब्रूहिपृच्छतः

स्कन्द उवाच

तुलामुक्ताफलानां तु कोटिद्वयपरीमिताः । तथावारितराणांचहीरकाणान्तुलाशतम्
नवलक्षाधिकंविप्रषडस्राणांसुतेजसाम् । लक्षद्वयं विदूराणान्तुला विमलवर्चसाम्
कोटयः पद्मरागाणांपञ्चा वै हि तुलामुने । पुष्परागतुला लक्षं गुणितंनवसङ्ख्यया
तथागोमेदरत्नानां तुलालक्षमिता मुने !। इन्द्रनीलमणीनांचतुलाःकोट्यर्धसम्मिताः

गरुडोद्गाररत्नानां तुलाः प्रयुतसम्मिताः । शुद्धविद्रुमरत्नानां तुलाश्च नवकोटयः

अष्टाङ्गाभरणानां च सङ्ख्या कर्तुं न शक्यते ।
वाससां च विचित्राणां कोमलानां तथा मुने ! ॥ ५१ ॥
चामराणि च भूयांसि द्रव्याण्यामोदवन्ति च ।
सुवर्णदासदास्यादीन्यसंख्यातानि वै मुने !॥ ५२ ॥

सर्वाण्यपि समादाय प्रतस्थे भूधरेश्वरः । आगत्य वरणातीरं दूरात्काशीमलोकयत्

अनेकरत्ननिचयैः खचिताऽखिलभूमिकाम् ।
नानाप्रासादमाणिक्यज्योतिस्तततताम्बराम् ॥ ५४ ॥
सौधाग्रविविधस्वर्णकलशोज्ज्वलदिङ्मुखाम् ।
जयन्ती वैजयन्तीनां निकरैस्त्रिदिवस्थलीम् ॥ ५५ ॥

महासिद्ध्यष्टकस्यापि क्रीडाभवनमद्भुतम् । जितकल्पद्रुमवनां वनैः सर्वफलावनैः

इतिकाशीसमृद्धिंसविलोक्याभूद्विलज्जितः । उवाचचमनस्येव भूधरेन्द्र इदं वचः ॥

प्रासादेषु प्रतोलीषु प्राकारेषु गृहेषु च । गोपुरेषु विचित्रेषु कपाटेषु तटेष्वपि ॥

मणिमाणिक्यरत्नानामुच्छलच्चारुरोचिषाम् ।
ज्योतिर्जालैर्जटिलितं यथेदमवलोक्यते ॥ ५६ ॥

द्यावाभूम्योरन्तरालन्तथेतिसमवैम्यहम् । ईदृक्सम्पत्तिसम्भारःकुबेरस्यापि नो गृहे

अपिवैकुण्ठभुवने नेतरस्येह का कथा । इति यावद्गिरीन्द्रोऽसौ संभावयति चेतसि

तावत्कार्पटिकः कश्चित्तल्लोचनपथंगतः । आहूय बहुमानंतमपृच्छच्चाचलेश्वरः ॥

हिमवानुवाच

हंहो कार्पटिकश्रेष्ठ! अध्यास्स्वैतदिहासनम् ।
स्वपुरोदन्तमाख्याहि किमपूर्वमिहाऽध्वग !॥ ६३ ॥
कोऽत्र सम्प्रत्यधिष्ठाता किमधिष्ठातृचेष्टितम् ।
यदि जानासि तत्तत्सर्वमिहाचक्ष्व ममाग्रतः ॥ ६४ ॥

सोपिकार्पटिकस्तस्यगिरिराजस्यभाषितम् । समाकर्ण्य समाचष्टुं मुनेसमुपचक्रमे

कार्पटिक उवाच

आचक्षे शृणुराजेन्द्र यत्पृष्टोऽस्मि त्वयाऽखिलम् ।
अहानि पञ्चषाण्येव व्यतिक्रान्तानि मानद !॥ ६६ ॥

समायाते जगन्नाथे पर्वतेन्द्रसुतापतौ । सुन्दरान्मन्दरादद्रेर्दिवोदासे गते दिवि ॥
योवैजगदधिष्ठातासोऽधिष्ठाताऽत्रसर्वगः । सर्वदृक्सर्वदःशर्वःकथं नज्ञायते विभो

मन्ये दृषत्स्वरूपोऽसि दृषदोऽपि कठोरधीः ।
यतो विश्वेश्वरं काश्यां न वेत्सि गिरिजापतिम् ॥ ६९ ॥
स्वभावकठिनात्माऽपि स वरं हिमवान् गिरिः ।
प्राणाधिकसुतादानाद्योऽधिनोद्विश्वनायकम् ॥ ७० ॥

बिभ्रत्सहजकाठिन्यंजातो गौरीगुरुर्गुरुः । शम्भुं प्रपूज्य सुतया स्रजाविश्वगुरोरपि
चेष्टितन्तस्य कोवेदवेदवेद्यस्य चेशितुः । मनागितिच जानेहं तच्चेष्टितमिदं जगत्
अधिष्ठातामयाख्यातस्तथाधिष्ठातृचेष्टितम् । अपूर्वंयस्त्वयापृष्टं तदाख्यामिचतच्छृणु
शुभेज्येष्ठेश्वरस्थानेसाम्प्रतं सउमापतिः । काशीं प्राप्यमुदातिष्ठेद्गिरिराजाङ्गजासखः

स्कन्द उवाच

यदायदासगिरिजा मृदुनामाक्षरामृतम् । आविष्करोतिपथिकोऽद्रीन्द्रोहृष्येत्तदातदा
उमा नामामृतम्पीतं येनेह जगतीतले । न जातु जननीस्तन्यं स पिबेत्कुम्भसम्भव
उमेति द्व्यक्षरंमन्त्रं योऽहर्निशमनुस्मरेत् । न स्मरेच्चित्रगुप्तस्तं कृतपापमपि द्विज !

पुनः शुश्राव हिमवान् हृष्टः कार्पटिकोदितम् ।

कार्पटिक उवाच

राजन्विश्वेश्वरार्थे यः प्रासादो विश्वकर्मणा ॥ ७८ ॥

निर्मीयतेसुनिर्माणो जन्मिनिर्वाणदायिनः । तदपूर्वंनकर्णाभ्यामप्याकर्णितवानहम्

यत्रातिमित्रतेजोभिः शलाकाभिः समन्ततः ।
मणिमाणिक्यरत्नानां प्रासादे भित्तयः कृताः ॥ ८० ॥
यत्र सन्ति शतं स्तम्भा भास्वन्तो द्वादशोत्तराः ।

एकैकम्भुवनं धर्तुमष्टाष्टाविति कल्पिताः ॥ ८१ ॥
चतुर्दशसु याशोभाविष्टपेषु समन्ततः । तस्मिन्विमाने सास्तीहशतकोटिगुणोत्तरा
चन्द्रकान्तमणीनाञ्च स्तम्भाधारशिलाश्च याः ।
चित्ररत्नमयैः स्तम्भैः स्तम्भितास्तत्प्रभाभराः ॥ ८३ ॥
पद्मरागेन्द्रनीलानां शालीनाः शालभञ्जिकाः । नीराजयन्त्यहोरात्रं यत्ररत्नप्रदीपकैः
स्फुरत्स्फटिकनिर्माणश्लक्ष्णपद्मशिलातले । अनेकरत्नरूपाणिविचित्राणिसमन्ततः
आरक्तपीतमञ्जिष्ठनीलकिर्मीरवर्णकैः । विन्यस्तानीव भासन्ते चित्रे चित्रकृता यतः
दृक् पिच्छिला विलोक्यन्ते माणिक्यस्तम्भराजयः ।
यतोऽविमुक्ते स्वक्षेत्रे मोक्षलक्ष्म्यङ्कुरा इव ॥ ८७ ॥
रत्नाकरेभ्यःसर्वेभ्योगणारत्नोच्चयान्वहून् । राशींश्चक्रुःसमानीययत्राद्रिशिखरोपमान्
यत्रपातालतलतो नागानां कोशवेश्मतः । गणैर्मणिगणाः सर्वे समाहृत्यगिरीकृताः
शिवभक्तःस्वयंयत्र पौलस्त्यःस्वद्रिकूटतः । कोटिहाटककूटानिआनयामासराक्षसैः
प्रासादनिर्मितिं श्रुत्वा भक्ता द्वीपान्तरस्थिताः ।
माणिक्यानि समाजह्रुर्यथासंख्यान्यहो नृप !॥ ९१ ॥
चिन्तामणिः स्वयं यत्र कर्मणे विश्वकर्मणे ।
विश्राणयेदहोरात्रं विचित्रांश्चिन्तितान्मणीन् ॥ ९२ ॥
नानावर्णपताकाश्च यत्रकल्पमहीरुहः । अनल्पाः कल्पयन्त्येवनित्यम्भक्तिसमन्विताः
अब्धयो यत्रसततंदधि क्षीरेक्षुसर्पिषाम् । पञ्चामृतानांकलशैः स्नपयन्ति दिने दिने
यत्र कामदुघा नित्यं स्नपयेन्मधुधारया ।
स्वदुग्धया स्वयम्भक्त्या विश्वेशं लिङ्गरूपिणम् ॥ ९५ ॥
गन्धसाररसैर्यश्च सेवते मलयाचलः । कर्पूररम्भाकर्पूरपूरैर्भक्त्या निषेवते ॥ ९६ ॥
इत्याद्यपूर्वंयत्रास्ति प्रत्यहं शङ्करालये । कथं तं त्वमुमाकान्तं न वेत्सि कठिनाशयः
इतितस्य समृद्धिं तां दृष्ट्वा जामातुरद्रिराट् । त्रपया परिभूतोऽभून्नितरांकुम्भसम्भव
तस्मै कार्पटिकायाथ स दत्त्वा पारितोषिकम् ।

पुनश्चिन्तापरो जातोऽद्रिराट् कार्पटिके गते ॥ ९९ ॥
उवाचेतिमनस्येवविस्मयोत्फुल्ललोचनः । अहोभद्रमिदंजातं यत्त्वयाऽश्रावि शर्मभाक्
यावत्सम्पत्तिसंभारः श्रूयते दृश्यतेऽत्रवै । जामातुरत्र सदने लीला त्रिजगतीपतेः ॥
ततःप्राभृतकस्तुच्छो नितरांप्रतिभातिमे । कन्यार्थंयोमयानीतोजामातुःपरितोषकृत्
अहंमन्येतथैवाऽसौयथादर्शि मया पुरा । वृद्धोक्षमात्र सम्पत्तिः सर्वकर्मपराङ्मुखः
नैनंकोपिविजानीयान्नान्वयोऽस्य कदाचन । नामापियस्य नैकंच किंदेशीयश्चनोह्यते
किंवृत्तश्चकिमाचारोनाममात्रेण चेश्वरः । ऐश्वर्यसूचकं वस्तुयस्य किञ्चिन्न लक्ष्यते
सोऽसौनिर्वाणसम्पत्तिरङ्कायापिददात्यहो । सुमुखःसर्वकर्माणिफलवन्तिकरोतिसः
वेदवेद्योहिसर्वज्ञो यत्सन्तानोऽखिलं जगत् । यंनकोपिहिवेदादौ वेदवेद्यः सएष वै
योऽनभिज्ञः सदाज्ञातः स सर्वज्ञोऽयमेव हि । यस्यैकमपिनोनामपुंसाज्ञेयंनकेनचित्
सर्वेषां सर्वनामानि यस्य नामानि निश्चितम् ।
सोऽसौ हि सर्वदेशीयः सर्वेस्यः सर्वसिद्धिदः ॥ १०९ ॥
यस्यदेशोनविदितो यस्तुवृत्तिपराङ्मुखः । आचारहीनमिव यं पुराऽपश्यंकठोरधीः
श्रुतिस्मृतीयतः सर्वमाचारं वित्तएवहि । नाममात्रेण नियतं यमज्ञासिषमीश्वरम् ॥
साक्षादीश्वरएवैष सोऽन्येष्वैश्वर्यसूचकः । अपिसर्वगुणाधारो गुणातीतः परापरः ॥
अर्वाचीनइहाप्येष पराचीनः परात्परः । भूधराणामहं नाथो विश्वनाथ उमापतिः ॥
अहं प्रमितसम्पत्तिरप्रमेयधनो ह्यसौ । तुच्छप्राभृतकस्तस्मान्नेदानीमस्य दर्शनम्
करिष्येऽथ करिष्यामि व्यावृत्त्यागत्य कर्हिचित् ।
संप्रधार्येति मनसि सायं स च गिरीश्वरः ॥ ११५ ॥
आहूयसर्वाननुगान्पार्वतीयान्महाबलान् । आदिष्टवानिदंवाक्यं सर्वे यूयं बलाधिकाः
कुर्वन्त्वेकंममादेशं यावन्नोद्यति भानुमान् । तावच्छिवालयंचैकं विदधत्वत्र सत्वरम्
यस्मिन्कृतेकृतार्थःस्यामिहलोके परत्रच । समागत्येहकाश्यांयःकुर्यादेकंशिवालयम्
तेनत्रैलोक्यमखिलंसालयं कृतमेवहि । तेनदत्तानि दानानि महान्ति विधिपूर्वकम् ॥
सुपर्वणिसुपात्राय सुतीर्थेश्रद्धयाधिकम् । येन स्ववित्तमानेन धर्मोपार्जितवित्ततः ॥

कृतंशम्भोर्महासद्म नतंपश्चात्यजेत्कचित् । तपांसितेनतप्तानि शीर्णपर्णाशनान्यपि
वाराणसींसमासाद्ययेनाऽकारिशिवालयः । अशेषाःसुविशेषाढ्याइष्टास्तेनमहामखाः
आनन्दकानने येन देवदेवालयः कृतः । इति तस्य समादेशं समाकर्ण्यानुगास्ततः
चक्रुर्देवालयंश्रेष्ठंयावद्व्युष्टा न यामिनी । तावच्छैलेश्वरं लिङ्गं शैलेशेन प्रतिष्ठितम्
चन्द्रकान्तमणेश्चञ्चत्कान्तिश्वेतितमण्डपम् । ॥ १२४ ॥
अलेखयत्प्रशस्तिञ्च प्रशस्ताक्षरमालिनीम् ।
व्याचक्षाणां निजां सर्वगोत्रेभ्योऽप्यधिकोन्नतिम् । १२५ ।
ततोऽरुणोदये जातेस्नात्वापञ्चनदे ह्रदे । शैलराजः कालराजं नमस्कृत्य समर्च्य च
तत्रराशिंसमुत्सृज्य परितस्त्वरितो ययौ । पार्वतीयैरनुगतः सर्वैरपि निजालयम्
ततःप्रातः समालोक्य गणौढुण्डनमुण्डनौ । हृष्टौ देवालयंरम्यं वरणायास्तटे शुभे
अदृष्टपूर्वं देवाय निवेदयितुमागतौ । तौ तु दृष्ट्वामहादेवमुमादर्शितदर्पणम् ॥ १२६ ॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कृताञ्जलिपुटौ गणौ । कृताभ्यनुज्ञौ भ्रूक्षेपाद्विज्ञप्तिमथ चक्रतुः
देवदेव न जानीवः केनचिद्दृढभक्तिना । अतीवरम्यःप्रासादो निर्मितो वरणातटे
आसायं नैक्षि चावाभ्यां दृष्टोऽद्यैव प्रगे विभो !।
गणोदितमितीशानो निशम्याऽऽह गिरीन्द्रजाम् ॥ १३२ ॥
विज्ञातसर्ववृत्तान्तः सर्वज्ञोऽप्यनभिज्ञवत् । अचलेन्द्राङ्गजेयावस्तत्प्रासादविलोकने ॥
इत्युक्त्वेशः सगिरिजोनिरगात्सगणो मुने । महास्यन्दनमारुह्यप्रासादंद्रष्टुमुत्सुकः
अथाऽऽलुलोके गिरिशः प्रासादं वरणातटे । अतीवचरम्यरचनंयामिनीमात्रनिर्मितम्
स्यन्दनादवरुह्याथ गर्भागारमवीविशत् । ददर्शचमहालिङ्गं चन्द्रकान्तशिलामयम्
देदीप्यमानं महसा मोक्षलक्ष्म्यङ्कुराकृति । दृष्टिप्रसादजननं पुनर्जननशातनम् ॥
केनेदंस्थापितं लिङ्गं यावज्जिज्ञासतीश्वरः । तावद्ददर्शपुरतःप्रशस्ति कर्तृ सूचिकाम्
वाचयित्वेव च मनाङ्मनस्येव मनोजहृत् ।
उवाच देवीं दिष्ट्येति प्रेक्षस्वात्मपितुः कृतिम् ॥ १३६ ॥
माश्रुत्वेतिसंहृष्टा कदम्बकुसुमश्रियम् । आनन्दाङ्कुरलक्ष्मीवदङ्गेषु परिबिभ्रती ॥

ततोव्यजिज्ञपद्देवं देवीपादौ प्रणम्य च । अस्मिँल्लिङ्गवरेनाथत्वया स्थेयमहर्निशम्
अस्यलिङ्गस्ययेभक्ताः शैलेशस्यमहेशितुः । तेभ्यस्त्वं महतीमृद्धिंदास्यसीहपरत्रच
तथेतिदेवउक्त्वातांपार्वतीं पुनरब्रवीत् । वरणायां कृतस्नानैः शैलेशो यैः समर्चितः
पितृन्सन्तर्प्य च मुदादत्त्वादानानि शक्तितः । न तेषां पुनरावृत्तिरत्रसंसारवर्त्मनि
शैलेश्वरेमहालिङ्गे नित्यंस्थास्यास्यहं शुभे !। प्रदास्यामिपरांमुक्तिमेतल्लिङ्गार्चकेजने

शैलेश्वरं ये द्रक्ष्यन्ति वरणायाः सुरोधसि ।
तेषां काश्यां निवसतां दुःखं नाभिभविष्यति ॥ १४६ ॥

उमयाऽपि वरो दत्तस्तत्रलिङ्गे वटोद्भव !। शैलेश्वरस्य ये भक्तास्तेमे पुत्रा न संशयः

स्कन्द उवाच

इतिशैलेश्वरं लिङ्गं कथितं ते महामुने !। इदानीं कथयिष्यामि रत्नेश्वरसमुद्भवम्
श्रुत्वाशैलेशमाहात्म्यं श्रद्धयापरयानरः । पापकञ्चुकमुत्सृज्य शिवलोकमवाप्नुयात्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
शैलेशादिलिङ्गनिर्णयो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

——:*:——

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

रत्नेश्वरप्रशंसनवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

रत्नेश्वरसमुत्पत्तिं कथयस्व षडानन !। रत्नभूत महालिङ्गं यत्काश्यांपरिवर्ण्यते ॥
कोस्य लिङ्गस्य महिमा केनैतच्च प्रतिष्ठितम् । एवंविस्तरतो ब्रूहिगौरीहृदयनन्दन!

स्कन्द उवाच

रत्नेश्वरस्यमाहात्म्यंकथयिष्यामितेमुने !। यथाचतस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावोऽभवद्भुवि
श्रुतंनामापिलिङ्गस्य यस्य जन्मत्रयार्जितम् । वृजिनंनाशयेत्तस्य प्रादुर्भावंब्रुवेमुने

शैलराजेन रत्नानि यानि पुञ्जीकृतान्यहो। उत्तरे कालराजस्य तानितस्यगिरेर्वृषात्
सर्वरत्नमयं लिङ्गं जातं तत्सुकृतात्मनः। शक्रचापसमच्छायं सर्वरत्नद्युतिप्रभम्
तल्लिङ्गदर्शनादेव ज्ञानरत्नमवाप्यते। शैलेश्वरं समालोक्य शिवौ तत्र समागतौ॥
यत्र रत्नमयं लिङ्गमाविर्भूतं स्वयं मुने!। तस्य स्फुरत्प्रभाजालैस्ततमम्बरमण्डलम्
तत्र दृष्ट्वा शुभंलिङ्गं सर्वरत्नसमुद्भवम्। भवान्यदृष्टपूर्वा हि परिपप्रच्छ शङ्करम्॥
देवदेव! जगन्नाथ! सर्वभक्ताभयप्रद!। कुतस्त्यमेतल्लिङ्गं हि सप्तपातालमूलवत्॥
ज्वालाजटिलिताकाशं प्रभ.भासितदिङ्मुखम्।
किमाख्यां किंस्वरूपञ्च किं प्रभावम्भवान्तक!॥ ११॥
यस्य सम्वीक्षणादेव मनो मेऽतीवहृष्टवत्। इहैव रमते नाथ कथयैतत्प्रसादतः॥

देवदेव उवाच

शृणवपर्णे समाख्यामियत्त्वयापृच्छिपार्वति!। स्वरूपमेतल्लिङ्गस्यसर्वतेजोनिधेःपरम्
तव पित्रा हिमवतागिरिराजेनभामिनि। त्वामुद्दिश्य महारत्नसंभारोऽत्राप्यनायिहि
अत्र तानि च रत्नानिराशीकृत्यहिमाद्रिणा। सुकृतोपार्जितान्येवययौस्वसदनंपुनः
तवार्थंत्राममार्थं वा श्रद्धयायत्समर्प्यते। काश्यां तस्यपरीपाकोभवेदीदृग्विधोऽनघे
लिङ्गं रत्नेश्वराख्यं वै मत्स्वरूपं हि केवलम्।
अस्य प्रभावो हि महान्वाराणस्यामुमे! ध्रुवम्॥ १७॥
सर्वेषामिहलिङ्गानां रत्नभूतमिदं परम्। अतोरत्नेश्वरं नामपरं निर्वाणरत्नदम्॥
अनेनैव सुवर्णेन पित्राराशीकृतेन च। प्रासादमस्यलिङ्गस्य विधापय महेश्वरि!
लिङ्गप्रासादकरणात् खण्डस्फुटितसंस्कृतेः।
लिङ्गस्थापनजं पुण्यं हेलयैवेह लभ्यते॥ २०॥
तथेतिभगवत्योक्तवागणाःप्रासादनिर्मितौ। सोमनन्दिप्रभृतयोऽसंख्याव्यापारितामुने
गणैश्च काञ्चनमयो नानाकौतुकचित्रितः। निर्ममे याममात्रेण प्रासादोमेरुशृङ्गवत्
देवीप्रहृष्टवदना दृष्ट्वा प्रासादनिर्मितिम्। गणेभ्योव्यतरद्भूरिसम्मानंपारितोषिकम्
पुनश्चदेवी पप्रच्छ प्रणिपातपुरःसरम्। महिमानं महादेवं लिङ्गस्यास्य महामुने

देवदेव उवाच

लिङ्गं त्वनादिसंसिद्धमेतद्देवि शुभप्रदम् । आविर्भूतमिदानीञ्च त्वत्पितुःपुण्यगौरवात्
गुह्यानां परमं गुह्यं क्षेत्रेऽस्मिंश्चिन्तितप्रदम् । कलौकलुषबुद्धीनांगोपनीयं प्रयत्नतः
यथारत्नं गृहे गुप्तं न कैश्चिज्ज्ञायते परैः । अविमुक्ते तथा लिङ्गं रत्नभूतं गृहे मम ॥

यानि ब्रह्माण्डमध्येऽत्र सन्ति लिङ्गानि पार्वति !।
तैरर्चितानि सर्वाणि रत्नेशो यैः समर्चितः ॥ २८ ॥

प्रमादेनाऽपि यैर्गौरि! लिङ्गं रत्नेशमर्चितम् । ते भवन्त्येव नियतं सप्तद्वीपेश्वरान्नृपाः

त्रैलोक्ये यानि वस्तूनि रत्नभूतानि तानि तु ।
रत्नेश्वरं समभ्यर्च्य सकृत्प्राप्नोति मानवः ॥ ३० ॥
पूजयिष्यन्ति ये लिङ्गं रत्नेशं कामवर्जिताः ।
ते सर्वे मद्गणा भूत्वा प्रान्ते द्रक्ष्यन्ति मामिह ॥ ३१ ॥

रुद्राणांकोटिजप्येन यत्फलं परिकीर्तितम् । तत्फलंलभ्यते देवि रत्नेशस्यसमर्चनात्
लिङ्गे चानादिसंसिद्धे यद्वृत्तं तद्ब्रवीमि ते । इतिहासं महाश्चर्यं सर्वपापनिकृन्तनम्

पुरेह नर्तकी काचिदासीन्नाट्यार्थकोविदा ।
सैकदा फाल्गुने मासि शिवरात्र्यां कलावती ॥ ३४ ॥

ननर्त जागरं प्राप्य जगौ गीतं च पेशलम् । स्वयंचवादयामासनानावाद्यानिवाद्यवित्
तेन तौर्यत्रिकेणापि प्रीणयित्वाऽथ सा नटी । रत्नेश्वरंमहालिङ्गं देशमिष्टंजगामह
कालधर्मवशं याता तत्रसावरनर्तकी । सुता गन्धर्वराजस्य वसुभूतेर्बभूवह ॥३७॥

सङ्गीतस्य सवाद्यस्य तस्य लास्यस्य पुण्यतः ।
तत्रेशाग्रे कृतस्येह जागरे शिवरात्रिजे ॥ ३८ ॥

रम्या रत्नावली नामरूपलावण्यशालिनी । कलाकलापकुशला मधुरालापवादिनी
पितुरानन्दकृन्नित्यं वसुभूतेर्घटोद्भव !। सर्वगान्धर्वकुशला गुणरत्नमहाखनिः ॥
मुने! सखीत्रयं तस्याश्चारुचातुर्यभाजनम् । शशिलेखानङ्गलेखाचित्रलेखेति नामतः

तिसृभिस्ताभिरेकत्र वाग्देवी परिशीलिता ।

ताभ्यःसर्वाः कलाःप्रादात्परिप्रीता सरस्वती ॥ ४२ ॥
प्राप्यरत्नावलीगौरिसाजन्मान्तरवासनाम् । रत्नेश्वरस्यलिङ्गस्यजग्राहनियमंशुभम्
रत्नभूतस्य लिङ्गस्य काश्यांरत्नेश्वरस्यवै । नित्यं संदर्शनंप्राप्यवक्ष्याम्यपिवचोमुखे
इत्थं नियमवत्यासीत्सा गन्धर्वसुतोत्तमा ।
ताभिः सखीभिः सहिता नित्यं लिङ्गं च पश्यति ॥ ४५ ॥
एकदाराध्य रत्नेशंममैतल्लिङ्गमुत्तमम् ! समानर्च च सा बाला रम्यया गीतमालया
सख्यः प्रदक्षिणीकर्तुंलिङ्गं तिस्रोऽप्युमे! गताः ।
तस्या गीतेन तुष्टोऽहं लिङ्गस्थो वरदोऽभवम् ॥ ४७ ॥
यस्त्वया रंस्यते रात्रावद्यगन्धर्वकन्यके । तव नाममसमानाख्यःसतेभर्ताभविष्यति
इति लिङ्गाम्बुधेर्जातामपरिपीयवचः सुधाम् । बभूवानन्दसन्दोहमन्थरातीवह्रीमती
गताथव्योममार्गेणसखीभिःस्वपितुर्गृहम् ।कथयन्तीनिजोदन्तं तमालीनाम्पुरोमुदा
ताभिर्दिष्ट्येति दिष्ट्येति सखीभिः परिनन्दिता ।
अद्य ते वाञ्छितम्भावि रत्नेशस्य समर्चनात् ॥ ५१ ॥
यद्यायाति सते रात्रावद्य कौमारहारकः । चोरोबाहुलतापाशैःपाशितव्योऽतियत्नतः
गोचरीक्रियतेऽस्माभिर्यथास सुकृतैकभूः । प्रातरेव तवप्रेयान् रत्नेशादिष्टइष्टकृत्
यातास्वस्मासुहृद्यासु भवतीपुण्यगौरवात् । अहोरत्नेश्वरंलिङ्गं प्रत्यक्षीकृतवत्यसि
अहोभाग्योदयोनृणामहोपुण्यसमुच्छ्रयः । एकस्यैव भवेत्सिद्धिर्यदेकत्रापितिष्ठताम्
सत्यंवदन्ति नासत्यं दैवप्राधान्यवादिनः । दैवमेव फलेदेकंनोद्यमो नापरम्बलम् ॥
भवत्या अपि चास्माकमेकएव हि चोद्यमः । परंदैवंफलत्येकंयथातव न नः पुरः ॥
लोकानांव्यवहारोऽयमालिप्रोक्तः प्रसङ्गतः। परंमनोरथावाप्तिस्तवयासैव नःस्फुटम्
इति सम्व्याहरन्तीनामनन्तोऽध्वाऽति तुच्छवत् ।
क्षणात्तासां व्यतिक्रान्तः प्राप्ताश्च स्वं स्वमालयम् ॥ ५६ ॥
अथप्रातः समुत्थाय पुनरेकत्र सङ्गताः । साचमौनवतीताभिः परिभुक्तेव लक्षिता
तूष्णीं प्राप्याथ काशीं सा स्नात्वा मन्दाकिनीजले !।

सखीभिः सहिताऽपश्यल्लिङ्गं रत्नेश्वरं मम ॥ ६१ ॥

निर्वर्त्य नियमं साऽथ लज्जामुकुलितेक्षणा । निर्बन्धेन वयस्याभिः परिपृष्टाजगादह

रत्नावल्युवाच

अथरत्नेशयात्रायाः प्रयातासुस्वमन्दिरम् । भवतीषु स्मरन्त्येवतद्रत्नेशवचोऽमृतम्
सविशेषाङ्गसंस्काराऽविशंसंवेशमन्दिरम् । निद्रादरिद्रनयना तद्विलोकनलालसा
चलात्स्वप्नदशांप्राप्ताभाविनोऽर्थस्यगौरवात् । आत्मविस्मरणेहेतूततोमेद्वौबभूवतुः
तन्द्रीतदङ्गसंस्पर्शौममबोधापहारकौ । तन्द्र्या परवशाचाऽऽसं ततस्तत्स्पर्शनेन च
न जाने त्वथकिंवृत्तंकाहं काहं स चाथकः । तन्निर्जिगमिषुंसख्योयावद्धर्तुं प्रसारितः
दोःकङ्कणेन रिपुणा क्वणितन्तावदुत्कटम् । महतासिञ्जितेनाहं तेनाल्पस्परिबोधिता
सुखसन्तानपीयूषह्रदेपरिनिमज्ज्य वै । क्षणेन तद्वियोगाग्निकीलासुपतिताबलात्

किं कुलीयः स नो वेद्मि किंदेशीयः किमाख्यकः ।
दुनोति नितरां सख्यस्तद्विश्लेषानलो महान् ॥ ७० ॥

अनल्पोत्कलितं चेतःपुनस्तत्सङ्गमाशया । प्राणानां मे यियासूनामेकमेव महौषधम्
वयस्यानिशिभुक्तस्य तस्यैव पुनरीक्षणम् । भवतीनामधीनञ्च तत्पुनर्दर्शनं मम ॥

काऽलीकमालयो वक्ति स्निग्धमुग्धे सखीजने ।
तद्दर्शनेन स्थास्यन्ति प्राणा यास्यन्ति चान्यथा ॥ ७३ ॥
दशम्यवस्था सन्नह्येद् बाधितुं माऽधुना भृशम् ।
इति तस्या गिरः श्रुत्वा दूनायानितरां च ताः ॥ ७४ ॥
प्रवेपमानहृदयाः प्रोचुर्वीक्ष्य परस्परम् ॥ ७५ ॥

सख्य ऊचुः

यस्यग्रामो ननो नामनान्वयो नापिवुध्यते । सकथंप्राप्यतेभद्रेकउपायोविधीयताम्
इति रत्नावली श्रुत्वा ससन्देहांचतद्गिरम् । वयस्यास्तदवाप्तौमेयूयं कुण्ठमुमूर्च्छह
इत्यर्धोक्तेनसावालाययंकुण्ठितशक्तयः । यद्वक्तव्यं त्विवतितयायूयंकुण्ठीतिभाषितम्
ततस्तास्त्वरिताः सख्यः परितापोपहारकान् ।

बहुशः शीतलोपायान् व्यधुर्मोहप्रशान्तये ॥ ७६ ॥
व्यपैतिनयदामूर्च्छा तत्तच्छीतोपचारतः । तस्यास्तदैकया नीतंरत्नेशस्नपनोदकम्
तदुक्षणात्क्षणाद्देवतन्मूर्च्छा विरराम ह । सुप्तोत्थितेवसावादीन्मुहुःशिवशिवेतिच

स्कन्द उवाच

श्रद्धावतांस्वभक्तानामुपसर्गे महत्यपि । नोपायान्तरमस्त्येव विनेशचरणोदकम्
येव्याधयोपिदुःसाध्याबहिरन्तःशरीरगाः । श्रद्धयेशोदकस्पर्शात्तेनश्यन्त्येवनान्यथा
सेवितं येन सततम्भगवच्चरणोदकम् । तम्बाह्याभ्यन्तरशुचिं नोपसर्पति दुर्गतिः ॥
आधिभौतिकतापञ्च तापञ्चाप्याधिदैविकम् ।
आध्यात्मिकं तथा तापं हरेच्छ्रीचरणोदकम् ॥ ८५ ॥
व्यपेतसंज्वराचाथ गन्धर्वतनया मुने !। उचितज्ञेतिहोवाचताःसखीःस्निग्धधीरधीः

रत्नावल्युवाच

शशिलेखेऽनङ्गलेखे!चित्रलेखेमदीहिते । यूयंकुण्ठितसामर्थ्याःकुतोवस्ताःकलाःक्वचा
मत्प्रियप्राप्तये सम्यगुपायोऽस्ति मयेक्षितः । रत्नेश्वरानुग्रहतोऽनुतिष्ठतहितं हिताः
शशिलेखेऽभिलषितप्राप्त्यै लेखांस्त्वमालिख ।
सँल्लिखानङ्गलेखे! त्वं यूनः सर्वावनीचरान् ॥ ८६ ॥
चित्रज्ञेचित्रलेखेत्वंपातालतलशायिनः । किञ्चिदाविर्भवच्चारुतारुण्यालङ्कृतीन्लिख
अथाकर्ण्येति ताः संख्यास्तच्चातुर्यं प्रवर्ण्य च ।
लिलिखुः क्रमशः सख्यो यूनो यौवनशेवधीन् ॥ ९१ ॥
निर्यत्कौमारलक्ष्मीकान्पुंवत्त्वश्रीसमावृतान् ।
प्रातः सन्ध्यैव गन्धर्वी नृपाद्यांस्तानवैक्षत ॥ ९२ ॥
सर्वान्सुरनिकायान्सा व्यलोकत शुभेक्षणा
न चाञ्चल्यंजहावक्ष्णोस्तेषु स्वर्लोकवासिषु ॥ ९३ ॥
ततो मध्यमलोकस्थान्मुनिराजकुमारकान् ।
विलोक्याऽपि न सा प्रीति काप्याऽऽप प्रेमनिर्भरा ॥ ९४ ॥

अथरत्नावली बाला कर्णाभ्यर्णविलोचना । दृशौ व्यापारयामासबलिसद्मयुवस्वपि
दितिजान्दनुजान्वीक्ष्य सा गन्धर्वी कुमारकान् ।
रतिम्बबन्ध न क्वापि तापिता मान्मथैः शरैः ॥ ९६ ॥
सुधाकरकरस्पृष्टाप्यतिदूनाङ्गयष्टिका ।
पश्यन्ती नागयूनः सा किञ्चिदुच्छ्वसिताऽभवत् ॥ ९७ ॥
भोगिनस्तान्विलोक्याऽपि चित्रश्चित्रगतानथ ।
मनाक्संभुक्तभोगेव क्षणमासीत्कुमारिका ॥ ९८ ॥
यूनः प्रत्येकमद्राक्षीदशेषाच्छेषवंशजान् । तक्षकान्वयगांस्तद्वदथ वासुकिगोत्रजान्
पुलीकानन्तकर्कोटभद्रसन्तानगानपि । दृष्ट्वा नागकुमारांस्ताञ्छङ्खचूडमथैक्षत ॥
शङ्खचूडेक्षणादेव परांलज्जाम्बभारसा । उद्भिन्नपुलकाप्यासीदङ्गप्रत्यङ्गसन्धिषु ॥
तत्त्रपाभरतोऽज्ञायि तत्कौमारहरो वरः । तया वैदग्ध्यवर्या क्षणतश्चित्रलेखया
अथचित्रपटीं चित्रलेखाचित्रपटाञ्चलम् । परिक्षिप्यावृणोत्तूर्णम्परिहासैकपेशला ॥
रत्नावली चित्रलेखांह्रियामौनावलम्बिनी । दृशाकुटिलयाद्राक्षीत्प्रस्फुरद्दशनाम्बरा
कटाक्षितानङ्गलेखा तयाऽथ शशिलेखया । चित्रलेखा परिक्षिप्तपटाञ्चलमपाकरोत्
वसुभूतिसुतासाथ कन्या रत्नावली शुभा । शङ्खचूडान्ववाये तं रत्नचूडमवैक्षत ॥
तदीक्षणक्षणाद् दृष्टिरानन्दाश्रुभिरावृता । कपोलभित्तिरभवत्स्वेदोदकणिकाञ्चिता
चकम्पेगात्रलतिकाधृतरोमाञ्चकञ्चुका । चित्रन्यस्तेव तस्तम्भ क्षणम्मुकुलितानना
ततः सा चित्रलेखा तामेत्याश्वासयदातुराम् ।
मौत्सुक्यं व्रज गन्धर्वि! सिद्धस्तेऽद्य मनोरथः ॥ १०६ ॥
एतस्याऽवगतं सर्वंदेशनामान्वयादिकम् । मा विषीदालिसुलभस्त्वेष रत्नेश्वरार्पितः
अहो सदृग्वरावाप्त्या रत्नेशेनाऽसितोषिता । उत्तिष्ठयामःसदनंरत्नेशः सर्वदोहितः
अथ दैववशाद्यान्त्यस्ता दृष्टा गगनाध्वगाः । सुबाहुना दानवेनपातालतलवासिना
गृहीत्वा ताश्चतस्रोऽपि निरगाद्दानवोगृहम् । हरिर्विकटदंष्ट्रास्यःप्रान्तरेहरिणीरिव
तास्तं विलोक्य गन्धर्व्यो दंष्ट्राविकटिताननम् । रुधिरारुणनेत्रंचजाता वेपथुभूमयः

हामातर्हापितस्त्राहि हाविधे! मा विधेहि तत् ।
यदेतत्कर्तुमारब्धमनाथास्वतिनिष्ठुरम् ॥ ११५ ॥
हादैव मन्दभाग्याभिः किमस्माभिरनुष्ठितम् ।
सुकृतेतरवार्ताऽपि नो चित्ते व्याहृता क्वचित् ॥ ११६ ॥
शिशुक्रीडनकंहित्वाहित्वारत्नेश्वरार्चनम् । पित्रोःस्वाधीनसच्चेष्टाइष्टंविघ्नोनकिञ्चन
अधोभुवनगादीना हीनानाथेनकोऽत्रनः । त्राति त्राणार्थिनीर्बालाःशम्भोरत्नेशसर्वग
इत्थंगन्धर्वतनया विलपन्तीःकृपातुरम् । शुश्राव नागराजोऽसौ रत्नचडोमहामनाः
कोऽसौ मत्स्वामिनोनामरत्नेशस्यमहेशितुः । लिङ्गराजस्यगृह्णातिकर्मबन्धनभेदिनः
पुनरप्यार्त्तरावं स श्रुत्वाबालामुखेरितम् । रत्नेश! रक्षरक्षेतिगृहीतास्त्रो विनिर्ययौ ॥
तंवसासवपानेन महामांसनिषेवणात् । अत्यन्तोन्मत्तदुश्चेष्टं रत्नचूडो निरैक्षत ॥
अध्याक्षिपच्चरेदुष्टशिष्टकन्यापहारक !। मद्दृष्टिगोचरं यातः क्वयास्यस्यद्यरेऽधम
मम बाणहतप्राणः प्रयाणं कुरु दुर्मते !। आर्तत्राणोद्यतमतेर्वैवस्वतपुरम्प्रति ॥ १२४
रत्नेश्वरस्य यैर्नाम प्रलयापद्यपि स्फुटम् । गृहीतंनभवाद्भ्यस्तेषु भीतिर्भयात्मसु
रत्नेश्वरमहानामकृतत्राणास्तु ये नराः । तेषां जन्मजराव्याधिकलिकालभयं कुतः
इत्युक्त्वा ता भयत्रस्तास्तन्मुखप्रहितेक्षणाः ।
व्याघ्रघ्राता इव मृगीर्माभैषिष्टेत्युवाच सः ॥ १२७ ॥
इत्याश्वास्याथगन्धर्वीःसवैभुजगराजजः ।आकर्णपूर्णमाकृष्यकोदण्डम्प्राहिणोच्छरम्
सोऽपिक्रुद्धोदनुजराट्पदास्पृष्टभुजङ्गवत् । आविद्ध्यकालदण्डाभम्परिघंव्यसृजन्महत्
हृदिरत्नेश्वरंलिङ्गंयस्यसम्यग्विजृम्भते । अलातदण्डवत्तस्मिन्कालदण्डोऽपिजायते
अन्तरेव सचिच्छेद परिघं स्वमहेषुभिः । दुर्वृत्तस्य यथेहायुर्विच्छिद्येतान्तरैर्वहि
ततोऽस्यबाणंचिक्षेप कालानलसमप्रभम् । सबाणस्तस्य हृदयं प्रविश्य प्रगवेष्य च
प्राणानस्य विनिर्यात्य स्वयं तूणमगात्पुनः ।
हृदिस्थं तस्य दौरात्म्यं सर्वं विज्ञाय तत्त्वतः ॥ १३३ ॥
दिगङ्गनापुरः ख्यातुमिव नागाशुगो गतः ॥ १३४ ॥

अन्यायोपार्जितैर्द्रव्यै र्यः सुखम्भोक्तुमिच्छति ।
तानि द्रव्याणि यान्त्येव सप्राणानि कुतः सुखम् ॥ १३५ ॥
इति तं दानवं हत्वा नागराजो महाबली ।
प्रत्युवाचाऽथ ताः कन्याः का यूयं कस्य चात्मजाः ॥ १३६ ॥
दुरात्मना कुतोऽनेन सङ्गतादनुजन्मना । क वा रत्नेश्वरं लिङ्गं भवतीभिर्विलोकितम्
यस्य नामाक्षरोच्चाराद्व्यपेतपरामापदः । यूयमाशु तदाख्यात येन जानामितत्त्वतः
इतिश्रुत्वागिरस्तस्यनितरांप्रेमनिर्भराः । परस्परंमुखंवीक्ष्यकोऽसौस्यादृष्टपूर्ववत्
अकारणसखा कोऽसौ प्रान्तरे समुपस्थितः ।
निजप्राणान्पणीकृत्य येन त्राताः स्म बालिकाः ॥ १४० ॥
अस्य सन्दर्शनादेवस्वभावचपलान्यपि । मन्थराणीन्द्रियाणिस्युःपरिपीयसुधामिव
यातुमन्यत्र नो नेत्रे प्रोत्सहेते यथा तथा । अन्यद्वस्त्वन्तरं प्रेक्ष्य रमणीयतरन्त्वपि
वचः पीयूषमाधुर्यं नितरां प्राप्य नः श्रुती । शब्दान्तरग्रहापेक्षां न कुर्वातेस्वजन्मनः
आप्नुतः पङ्गुतामेतौ पादौ नश्चञ्चलावपि । अमुं युवानमालोक्यचोरं नः सन्मनोमणेः
इति ब्रुवन्त्यस्ता बालाः परस्परमनुल्वणम् ।
दृष्ट्वाऽपि चित्रमध्यस्थं विविदुस्तन्न बालिकाः ॥ १४५ ॥
अतीव भीषणाकारदनुजस्याऽति साध्वसात् ।
अन्धीभूतेक्षणास्तं नाज्ञासिषुर्हरिणीक्षणाः ॥ १४६ ॥
ऊचुश्चतं युवानंतानिजजीवितरक्षिणम् । यदङ्गभवता पृष्टंस्नेहनिर्भरचेतसा ॥
तदाचक्षामहे सर्वमवधेहि क्षणं मनः । इयंगन्धर्वराजस्य वसुभूतेस्तनूद्भवा ॥ १४८॥
कन्यारत्नावलीनामगुणरत्नमहाखनिः । वयं वयस्या एतस्याश्छायेवानुगताःसदा
आरभ्यबाल्यमप्येषालिङ्गं रत्नेश्वराभिधम् ।यातिपित्राप्यनुज्ञाताकाश्यामर्चयितुंसदा
वरोपि दत्तस्तेनास्यै प्रसन्नेनाथशम्भुना । हरिष्यतीति यःस्वप्नेकौमारंतेकुमारिके
तव नामसमानाख्यः स ते भर्ता भविष्यति ।
युवानं स्वप्नभोक्तारं प्राप्याऽप्येषा सुदुःखिता ॥ १५२ ॥

पुनस्तद्विरहोत्थेनवह्निनातीवतापिता। कलाकौशल्यतोऽस्माभिःसोपिचित्रेप्रदर्शितः
यस्य न ग्राम नामापि नान्वयोप्यववुध्यते।तं दृष्ट्वा चित्रलिखितमप्येषाजीवितापुनः
ततो रत्नेश्वरं नत्वा स्वगृहायोत्सुकाऽभवत।
यान्तीस्ततोऽनया सार्धं प्रान्तरे गगनाध्वनि॥ १५५॥
अतर्किंतागमश्चास्मान्धृत्वा पातालमाविशत्। अनन्तरम्भवानेव तं वेत्तिदनुजाधमम्
अङ्ग! इत्येव वृत्तान्तो निजोऽस्माभिरुदीरितः।
प्रसादं कुरु चास्माकं पुरः कोऽसि कृपानिधे!॥ १५७॥
यदाप्रभृति चाऽस्माभिः सद्दृष्टोदुष्टदानवः। तदा प्रभृति नो नेत्रेविद्युते च हतप्रभे
कान्दिशीका भयत्रातर्नविद्मः किञ्चिदेवहि।
क वयं का वयं कस्त्वं कि जातं किं भविष्यति॥ १५६॥
निशम्येति स पुण्यात्मा नागराजकुमारकः।
आश्वास्य ता भयत्रस्ताः प्रोवाचेदञ्च पुण्यधीः॥ १६०॥
मया सहसमायात रत्नेशं दर्शयामिवः। इत्याहूय सतानिन्ये क्रीडावापींसुखोदकाम्
विचित्रमणिसोपानांहंसकोककृतारवाम्।कवीनांवासितव्याजात्स्वागतंकुर्वतीमिव
तत्र तेनाभ्यनुज्ञाताः क्रीडावाप्यां निमज्ज्य ताः।
सचेलपुष्पाभरणाः प्रोन्ममज्जुस्ततः पुनः॥ १६३॥
वहिर्निर्गत्यगन्धर्व्यः पश्यन्त्यःस्थगिताइव। रत्नेशालयमालोक्यकालराजसमीपतः
परस्परंततः प्रोचुर्गन्धर्व्योविस्मिताइव। स्वप्नोयंकिंनुवासत्यंखेलोरत्नेश्वरस्यवा
वयमेवहिवा भ्रान्ता गन्धर्व्यो न वयंकिमु। किमेतन्नैव जानीमऐन्द्रजालिकखेलवत्
एषोत्तरवहा गङ्गा स्फुटमेव भवेदिह। शङ्खचूडस्यवाप्येषाशङ्खचूडालयस्त्वसौ
एतत्पञ्चनदंतीर्थमेषवागीश्वरालयः। यस्य सन्दर्शनादेव वाग्विभूतिर्विजृम्भते
शङ्खचूडेश्वरश्चैव शङ्खचूडप्रतिष्ठितः। यस्य सन्दर्शनात्पुंसां न भयंकालसर्पजम्॥
एषा मन्दाकिनी नाम दीर्घिका पुण्यतोयभूः।
यस्यां कृतोदका मर्त्या मर्त्यलोके विशन्ति न॥ १७०॥

असावाशापुरी देवी यास्तुता त्रिपुरारिणा । त्रिपुरं जेतुकामेनमन्दाकिन्यास्तटेशुभे
याद्यापिपूजिता मर्त्यैराशाम्पूरयतेऽर्थिनाम् ।
मन्दाकिन्याः प्रतीच्यान्तु एष सिद्ध्यष्टकेश्वरः ॥ १७२ ॥
भवेद्यस्य सपर्यातो गृहे सिद्ध्यष्टकं स्फुटम् ।
कुण्डं सिद्ध्यष्टकाख्यं च तत्रैव विरजोदकम् ॥ १७३ ॥
यत्र स्नात्वा कृतश्राद्धो विरजस्को दिवं व्रजेत् ।
मूर्त्यस्ताः सिद्धयश्चाष्टौ याः काश्यां सर्वसिद्धिदाः ॥ १७४ ॥
सर्वसिद्धिप्रदश्चासौमहाराजविनायकः । विनायकाःप्रणश्यन्तियस्मैप्रणमतांनृणाम्
असौ सिद्धेश्वरस्योच्चैः प्रासादः काञ्चनोज्ज्वलः ।
रत्नध्वजपताकाश्च सिद्धिः स्याद्यद्विलोकनात् ॥ १७६ ॥
क्षेत्रस्य मध्यमे भागे मध्यमेश्वरएषवै । मध्याधोलोकयोर्मध्येनवसेद्यस्यवीक्षणात्
मध्यमेशं समभ्यर्च्यनरोमध्यमविष्टपे । आसमुद्रक्षितीन्द्रःस्यात्ततोमोक्षञ्चविन्दति
ऐरावतेश्वरं लिङ्गं तत्प्राच्यामिष्टसिद्धिकृत् ।
दृश्यते यत्पताकायां रम्य ऐरावतो गजः ॥ १७६ ॥
वृद्धकालेश्वरस्यैष प्रासादोरत्ननिर्मितः । प्रतिदर्शं वसेद्यत्र रात्रौ चन्द्रः सतारकः
यस्यसन्दर्शनान्नृणां न कालः प्रभवेद्ध्रुवे । न कलिः प्रभवेत्सत्यं न च कल्मषराशयः
इति यावत्कथाश्चक्रुः सम्भ्रान्ता इव बालिकाः ।
तावद्वसुविभूतिः स गन्धर्वस्त्वरया ययौ ॥ १८२ ॥
नारदाच्छ्रुतवृत्तान्तः सुबाहुदनुजन्मनः । रत्नावलीसुता प्रीता ससखीका यथाहृता
रत्नेश्वरात्समायान्ति शून्ये गगनवर्त्मनि । यथाऽनयच्च पातालं यथायुद्धमभूत्पुनः
यथारत्नेशभक्तेन रत्नचूडेनघातितः । ससुबाहुर्दनुजनुर्महेष्वासेन चेषुणा ॥ १८५ ॥
यथा च पृष्टवृत्तान्तो वापीमार्गेणचानयत् । शङ्खचूडस्यवापीं तां पातालेषुप्रवर्तिनीम्
यथा च प्राप्य निर्याताः काशीं दृष्ट्वाऽपि बालिकाः ।
भृशं सम्भ्रान्तिमापन्नाः पश्यन्त्योऽपि समुत्सुकाः ॥ १८७ ॥

दृष्ट्वागन्धर्वराजस्ताम्पुनर्जातामिवात्मजाम् । सवयस्यामनम्लानमुखपङ्कजसुश्रियम्
परिष्वज्य समाघ्राय ललाटफलकंमुहुः। अङ्कमारोप्य पप्रच्छ सर्वं वृत्तान्तमादरात्
अथसाकथयामास दनुजापहृतेः कथाम्। रत्नेश्वरवरावाप्ति स्वप्नावस्थांविहायच
रत्नावलीमनोवृत्तिविज्ञायाऽथ मुखेङ्गितैः। शशिलेखासमाचष्टस्पष्टवर्णैःसविस्तरम्
तुतोषनितरां सोऽथ गन्धर्वाधिपतिः कृतिः। प्रभावं वर्णयामासमुदारत्नेश्वरस्य च

स्कन्द उवाच

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ! विन्ध्यवृद्धिविवर्द्धन !। प्रत्यहं रत्नचूडोऽपि वापीमार्गेण संयमी
नागलोकात्समागत्य स्नात्वा मन्दाकिनीजले।
रत्नेश्वरं समभ्यर्च्य रत्नाञ्जल्यष्टकेन वै ॥ १६४ ॥
सुवर्णपङ्कजान्यष्टौ समर्पयति हृष्टवत्। एकदा स्वप्नसमये रत्नेशो लिङ्गरूपधृक् ॥
रत्नचूडमुवाचेदं निजभक्तं दृढव्रतम्। दानवेन हृतां कन्यां मोचयिष्यति याम्भवान्
तं दानवं रणेजित्वा सा ते पत्नी भविष्यति।
इति स्मरन्वरं सोऽथ नागराजो महामनाः ॥ १६७ ॥
तां कन्यां दानवंहत्वाविमोच्यनिजवीर्यतः। वापीमार्गेणपातालादानिनायपुनर्महीम्
स्वयं च साधयाञ्चक्रेप्रत्यहंनियमंसुधीः। लिङ्गंसमर्चयित्वाथकृत्वाचापिप्रदक्षिणम्
यावद्बहिःसमागच्छेद्रम्याद्रत्नेशमण्डपात्। तावद्गन्धर्वराजायताभिः सखसुभूतये
सोऽयं सोऽयं युवाधन्यस्तर्जन्यग्रेणदर्शितः। गन्धर्वराजस्तंदृष्ट्वानागराजकुमारकम्
अतीवस्मेरनयनः सम्प्रहृष्टतनूरुहः। मनस्येनञ्च संवर्ण्य तद्रूपं सवयोन्वयम् ॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रत्नेशेन वरार्पणात्।
कन्या धन्यतरा चेयमनुरूपोऽस्ति यत्पतिः ॥ २०३ ॥
सम्प्रधार्येति हृद्येनं समाकार्य च सुन्दरम्। पृष्ट्वातन्नामगोत्रञ्च गणयित्वाबलाबलम्
रत्नेश्वरस्य पुरतस्तस्मै कन्यां ददौ मुदा। नीत्वागन्धर्वलोकञ्चकृतकौतुकमङ्गलम्
मधुपर्केण सम्पूज्य पाणिमग्राहयत्ततः। वैवाहिकेन विधिना ददौ रत्नान्यनेकशः ॥
शशिलेखाऽनङ्गलेखाचित्रलेखादिकुम्भज !। विज्ञाप्य स्वजनेतारंवरयामासतंपतिम्

उपयम्य चतस्रोऽपिसगन्धर्वसुताःशुभाः । रत्नचूडोजगामाथताभिःस्वपितृमन्दिरम्
यथा चतसृभिः सार्धं श्रुतिभिः प्रणवः शिवम् ।
स्वपित्रोश्चरणौ नत्वा नवोढाभिः स नागराट् ॥ २०६ ॥
विनिवेदितवृत्तान्तो रत्नेशानुग्रहस्य च । उवासताभिःससुखं पितृभ्यामभिनन्दितः

ईश्वर उवाच

रत्नेश्वरस्य लिङ्गस्य ममस्थावररूपिणः । सर्वेषांसर्वदस्यास्यप्रभावोगिरिजेऽतुलः
अस्मिँल्लिङ्गे परां सिद्धिं प्राप्ताः सिद्धाः सहस्रशः ।
गुप्तमासीदिदं लिङ्गमद्य यावत्सुमध्यमे ॥ २१२ ॥
तव पित्रा!हिमवता मम भक्तेन सर्वथा । पुण्यार्जितैर्महारत्नैरत्नेशः प्रकटीकृतः ॥
अस्मिँल्लिङ्गे ममप्रीतिर्नितरामद्रिराजजे !। वाराणस्यामिदं लिङ्गं पूजनीयं प्रयत्नतः
नानारत्नानिलभ्यन्ते रत्नेशानुग्रहादुमे !। स्त्रीरत्नपुत्ररत्नादि स्वर्गमोक्षावपि प्रिये
योऽत्र रत्नेश्वरं नत्वा मृतो देशान्तरेष्वपि ।
न स स्वर्गादिहागच्छेत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ २१६ ॥
असितायां चतुर्दश्यामुपोष्य निशि जागरात् ।
रत्नेशसन्निधौ देवि! मम सान्निध्यमाप्नुयात् ॥ २१७ ॥
अस्यलिङ्गस्य पूर्वेणत्वयाजन्मान्तरेप्रिये । दाक्षायणीश्वरंलिङ्गंमद्भक्त्यात्रप्रतिष्ठितम्
तस्य सन्दर्शनादेवननरो यातिदुर्गतिम् । अम्बिकानामगौरीत्वंतत्राहंचाम्बिकेश्वरः
मूर्तःषडाननस्तत्र तवपुत्रः सुमध्यमे !। एतत्त्रयं नरो दृष्ट्वा न गर्भं प्रविशेदुमे ॥ २२०
रत्नेश्वरस्य माहात्म्यं मयातेसमुदीरितम् । गोपनीयंप्रयत्नेनकलिकल्मषचेतसाम्
इदंरत्नेश्वराख्यानं यः पठिष्यति सर्वदा । सपुत्रपौत्रपशुभिर्नवियुज्येत कर्हिचित्
श्रुत्वा रत्नेश्वरोत्पत्तिं सेतिहासां नरोत्तमः ।
अनूढो लभते सत्यं कन्यारत्नं कुलोचितम् ॥ २२३ ॥
कन्यापीमं समाकर्ण्य त्वितिहासं मनोरमम् ।
श्रद्धया सत्पतिं प्राप्य भविष्यति पतिव्रता ॥ २२४ ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वानारी वापुरुषोऽपि वा । न जात्विष्टवियोगाग्नितापेन परितप्यते

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
रत्नेश्वरप्रशंसनंनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

कृत्तिवासःसमुद्भववर्णनम्

स्कन्द उवाच

अन्यच्च शृणु विप्रेन्द्र! वृत्तान्तं तत्र सम्भवम् । महाश्चर्यप्रजननं महापातकहारि च
इत्थं कथां प्रकुर्वाणे रत्नेशस्य महेश्वरे । कोलाहलो महानासीत्त्रातत्रातेति सर्वतः
महिषासुरपुत्रोऽसौ समायाति गजासुरः । प्रमथन्प्रमथान्सर्वान्निजवीर्यमदोद्धतः ॥
यत्र यत्र धरायां स चरणं प्रमिणोति हि । अचलोल्लोलयाश्चक्रे तत्र तत्रास्यभारतः
ऊरुवेगेन तरवः पतन्ति शिखरैः सह । यस्यदोर्दण्डघातेन चूर्णाःस्युश्चशिलोच्चयाः
यस्य मौलिजसङ्घर्षाद्घना व्योम त्यजन्त्यपि ।
नीलिमानं न चाद्यापि जह्यस्तत्केशसङ्गजम् ॥ ६ ॥
यस्य निःश्वाससंभारैरुत्तरङ्गामहाब्धयः । नद्योऽप्यमन्दकल्लोलाभवन्तितिमिभिःसह
योजनानां सहस्राणि न वयस्यसमुच्छ्रयः ।
तावानेव हि विस्तारस्तनोर्मायाविनोस्य हि ॥ ८ ॥
यन्नेत्रयोःपिङ्गलिमातथातरलिमापुनः । विद्युतानोज्झ्यतेऽद्यापिसोयमायातिसत्वरः
यां यां दिशं समभ्येति सोऽयं दुःसहदानवः ।
सा सा समीभवेदस्य साध्वसादिवदिग्भ्रवम् ॥ १० ॥
ब्रह्मलब्धवरश्चायं तृणीकृतजगत्त्रयः । अवध्योऽहं भवामीतिस्त्रीपुंसैः कामनिर्जितैः
ततस्त्रिशूलहेतिस्तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । विज्ञायावध्यमन्येन शूलेनाभिजघान तम्

प्रोतस्तेन त्रिशूलेन सचदैत्यो गजासुरः। छत्रीकृतमिवात्मानं मन्यमानो जगौ हरम्

गजासुर उवाच

त्रिशूलपाणे! देवेश!जाने त्वां स्मरहारिणम्। तव हस्ते ममवधः श्रेयानेवपुरान्तक
किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि अवधेहि ममेरितम्। सत्यं ब्रवीमिनासत्यंमृत्युञ्जयविचारय
त्वमेको जगतां वन्द्यो विश्वस्योपरि संस्थितः।
अहं त्वदुपरिष्टाच्च स्थितोऽस्मीति जितं मया ॥ १९ ॥
धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मित्वत्त्रिशूलाग्रसंस्थितः। कालेनसर्वैर्मर्तव्यंश्रेयसेमृत्युरीदृशः
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवःकृपानिधिः। प्रोवाचप्रहसञ्छम्भुर्घटोद्भव! गजासुरम्

ईश्वर उवाच

गजासुर! प्रसन्नोऽस्मि महापौरुषशेवधे !। स्वानुकूलं वरं ब्रूहि ददामि सुमतेऽसुर
इत्याकर्ण्य स दैत्येन्द्रः प्रत्युवाच महेश्वरम्।

गजासुर उवाच

यदि प्रसन्नो दिग्वासस्तदा नित्यं वसान मे ॥ २० ॥
इमां कृत्तिं विरूपाक्ष! त्वत्त्रिशूलाग्निपाविताम्।
स्वप्रमाणां सुखस्पर्शां रणाङ्गणपणिकृताम् ॥ २१ ॥
इष्टगन्धिः सदैवास्तु सदैवास्त्वतिकोमला।
सदैव निर्मला चास्तु सदैवास्त्वतिमण्डनम् ॥ २२ ॥
महातपोऽनलज्वालाःप्राप्यापिसुचिरंविभो। नदग्धाकृत्तिरेषामेपुण्यगन्धनिधिस्ततः
यदि पुण्यवती नैषाममकृत्तिर्दिगम्बर !। तदा त्वदङ्गसङ्गोऽस्याः कथं जातोरणाङ्गणे
अन्यञ्च मेवरंदेहि यदि तुष्टोऽसिशङ्कर !। नामास्तुकृत्तिवासास्तेप्रारभ्याद्यतनंदिनम्
इति तस्यवचः श्रुत्वातथेत्युक्त्वाचशङ्करः। पुनःप्रोवाचतं दैत्यं भक्तिनिर्मलमानसम्

ईश्वर उवाच

शृणुपुण्यनिधे दैत्य वरमन्यं सुदुर्लभम्। अविमुक्ते महाक्षेत्रे रणत्यक्तकलेवर !॥
इदं पुण्यशरीरं ते क्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिसाधने। ममलिङ्गंभवत्वत्र सर्वेषां मुक्तिदायकम्

कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम् । सर्वेषामेव लिङ्गानां शिरोभूतमिदं वरम् ॥
यावन्तिसन्तिलिङ्गानि वाराणस्यांमहान्त्यपि । उत्तमंतावतामेतदुत्तमाङ्गवदुत्तमम्
मानवानांहितायाऽत्रस्थास्येऽहं सपरिग्रहः । दृष्टेनाने नलिङ्गेन पूजितेन स्तुतेन च

कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यः संसारं न विशेत्पुनः ॥ ३१ ॥
रुद्राः पाशुपताः सिद्धा ऋषयस्तत्त्वचिन्तकाः ।
शान्ता दान्ता जितक्रोधा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ ३२ ॥

अविमुक्तेस्थिता ये तुममभक्तामुमुक्षवः । मानापमानयोस्तुल्याःसमलोष्टाश्मकाञ्चनाः
कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गेस्थास्येऽहं तदनुग्रहे । दशकोटिसहस्राणितीर्थानि प्रतिवासरम्
त्रिकालमागमिष्यन्ति कृत्तिवासेनसंशयः । कलिद्वापरसम्भूता नराः कल्मषबुद्धयः ॥
सदाचारविनिर्मुक्ताःसत्यशौचपराङ्मुखाः ।माययादम्भलोभाभ्यांमोहाहंकृतिसंयुताः
शूद्रान्नसेविनोविप्राजिह्वालाअतिलालसाः । सन्ध्यास्नानजपेज्यासुदूरीकृतमनोधियः
कृत्तिवासेश्वरंप्राप्य सर्वपापविवर्जिताः । सुखेनमोक्षमेष्यन्ति यथा सुकृतिनस्तथा
कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंसेव्यंकाश्यां ततो नरैः । जन्मान्तरसहस्रेषुमोक्षोऽन्यत्रसुदुर्लभः
कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गेलभ्यस्त्वेकेन जन्मना । पूर्वजन्मकृतं पापं तपोदानादिभिः शनैः

नश्येत्सद्यो विनश्येत कृत्तिवासेश्वरेक्षणात् ॥ ४० ॥

कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं येऽर्चयिष्यन्तिमानवाः । प्रविष्टास्तेशरीरेमेतेषां नास्तिपुनर्भवः
अविमुक्तेऽत्र वस्तव्यं जप्तव्यं शतरुद्रियम् । कृत्तिवासेश्वरो देवो द्रष्टव्यश्च पुनःपुनः
सप्तकोटिमहारुद्रैःसुजप्तैर्यत्फलम्भवेत् । तत्फलंलभ्यते काश्यांपूजनात्कृत्तिवाससः

माघकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्य निशि जागृयात् ।
कृत्तिवासेशमभ्यर्च्य यः स यायात्परां गतिम् ॥ ४४ ॥

शुक्लायांपञ्चदश्यां यश्चैत्र्यांकर्तामहोत्सवम् । कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गे न सगर्भंप्रवेक्ष्यते
कथयित्वेतिदेवेशस्तत्कृत्तिम्परिगृह्य च । गजासुरस्य महतींप्रावृणोद्धरिदम्बरः ॥
महामहोत्सवोजातस्तस्मिन्नहनिकुम्भजः । कृत्तिवासत्वमापेदेयस्मिन्देवोदिगम्बरः
यत्रचछत्रीकृतो दैत्यःशूलमारोप्यभूतले । तच्छूलोत्पाटनाज्जातं तत्र कुण्डं महत्तरम्

तस्मिन्कुण्डेनरः स्नात्वाकृत्वाचपितृतर्पणम् । कृत्तिवासेश्वरंदृष्ट्वाकृतकृत्योनरोभवेत

स्कन्द उवाच

तस्मिंस्तीर्थेतुयद्वृत्तांतदगस्तेनिशामय । काकाहंसत्वमापन्नास्तत्तीर्थस्यप्रभावतः
एकदा कृत्तिवासेतुचैत्र्यां यात्राऽभवत्पुरा । अन्नं राशीकृतं तत्र ह्युपहारसमुद्भवम्
बहुदेवलकैर्विप्र! तं दृष्ट्वा पक्षिणोऽमिलन् । परस्परं तदन्नार्थंयुध्यन्तो व्योमवर्त्मनि
वलिपुष्टैरपुष्टाङ्गा रटन्तः करटाः कटु । बलिभिश्चातिपुष्टाङ्गैरबलाश्चञ्चुभिर्हताः ॥
ते हन्यमाना न्यपतंस्तस्मिन्कुण्डे नभोऽङ्गणात् ।
आयुः शेषेण सन्त्राता हंसीभूतास्तु वायसाः ॥ ५४ ॥
आश्चर्यवन्तस्तत्रत्या यात्रायांमिलिताजनाः । ऊचुरङ्गुलिनिर्देशैरहोपश्यतपश्यत
अस्मासु वीक्षमाणेषु काकाः कुण्डेऽत्र येऽपतन् ।
धार्त्तराष्ट्रास्तुते जातास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥ ५६ ॥
हंसतीर्थं तदारभ्य कृत्तिवाससमीपतः । नाम्नाख्यातमभूल्लोके तत्कुण्डं कलशोद्भव
अतीवमलिनात्मानो महामलिनकर्मभिः ! क्षणान्निर्मलतां यान्तिहंसतीर्थकृतोदकाः
काश्यांसदैव वस्तव्यं स्नातव्यं हंसतीर्थके । द्रष्टव्यः कृत्तिवासेशःप्राप्तव्यंपरमंपदम्
काश्यां लिङ्गान्यनेकानि मुनेसन्तिपदेपदे । कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंसर्वलिङ्गशिरःस्मृतम्
कृत्तिवासं समाराध्य भक्तियुक्तेन चेतसा । सर्वलिङ्गाराधनजं फलंकाश्यामवाप्यते
जपोदानं तपोहोमस्तर्पणं देवतार्चनम् । समीपे कृत्तिवासस्य कृतं सर्वमनन्तकम्
तीर्थं त्वनादिसंसिद्धमेतत्कलशसम्भव !। पुनर्देवस्य सान्निध्यादाविरासीन्महेशितुः
एतानि सिद्धलिङ्गानि छन्नानि स्युर्युगे युगे ।
अवाप्य शम्भुसान्निध्यं पुनराविर्भवन्ति हि ॥ ६४ ॥
हंसतीर्थस्य परितो लिङ्गानामयुतं मुने । प्रतिष्ठितं मुनिवरैरत्राऽस्ति द्विशतोत्तरम्
एकैकंसिद्धिदंनृणामविमुक्तनिवासिनाम् । लिङ्गंकात्यायनेशादिच्यवनेशान्तमेवहि
लोमशेशं महालिङ्गं लोमशेन प्रतिष्ठितम् ।
कृत्तिवासः प्रतीच्यांतु तद्दृष्ट्वा काऽन्तकाद्भयम् ॥ ६७ ॥

मालतीशं शुभं लिङ्गं कृत्तिवासोत्तरेमहत् । सपर्ययित्वातल्लिङ्गंराजागजपतिर्भवेत्
अन्तकेश्वरसञ्ज्ञं च लिङ्गं तद्रुद्रदिक्स्थितम् ।
अतिपापोऽपि निष्पापो जायते तद्विलोकनात् ॥ ६६ ॥
जनकेशं महालिङ्गं तत्पार्श्वे ज्ञानदं परम् । तल्लिङ्गवरिवस्यातो ब्रह्मज्ञानमवाप्यते ॥
तदुत्तरे महामूर्त्तिरसिताङ्गोऽस्तिभैरवः । तस्यदर्शनतः पुंसां नभवेद्यमदर्शनम् ॥
शुष्कोदरी च तत्राऽस्ति देवी विकटलोचना ।
कृत्तिवासादुदीच्यान्तु काशी प्रत्यूहभक्षिणी ॥ ७२ ॥
अग्निजिह्वोऽस्ति वेतालस्तस्या देव्यास्तु नैर्ऋते ।
ददाति वाञ्छितां सिद्धिं सोऽर्चितो भौमवासरे ॥ ७३ ॥
वेतालकुण्डं तत्रास्ति सर्वव्याधिविघातकृत् ।
तत्कुण्डोदकसंस्पर्शाद्व्रणविस्फोटरुग्व्रजेत् ॥ ७४ ॥
वेतालकुण्डे सुस्नातावेतालंप्रणिपत्यच । लभेतवाञ्छितांसिद्धिं दुर्लभांसर्वदेहिभिः
गणोऽस्ति तत्रद्विभुजश्चतुष्पात्पञ्चशीर्षकः । तस्यसम्वीक्षणादेवपापंयातिसहस्रधा
तदुत्तरे मुनेरुद्रश्चतुःशृङ्गोऽस्तिभीषणः । त्रिपादस्तुद्विशीर्षाचहस्ताःस्युःसप्तएवहि
रोरूयते वृषाकारस्त्रिधा बद्धः स कुम्भज !। काशीविघ्नकरायेचये काश्याम्पापबुद्धयः
तेषाञ्च संछिदांकर्तुमहं धृतकुठारकः । ये काश्यां विघ्नहर्तारो ये काश्यां धर्मबुद्धयः
सुधाघटकरश्चाहंतद्वंशपरिषेककृत् । तं दृष्ट्वा वृषरुद्रं वै पूजयित्वा तु भक्तितः ॥
महामहोपचारैश्च न विघ्नैरभिभूयते । मणिप्रदीपोनागोऽस्ति तस्माद्रुद्रादुदग्दिशि
मणिकुण्डं तदग्रे तुविषव्याधिहरं परम् । तस्मिन्कुण्डेकृतस्नानस्तंनागंपरिवीक्ष्यच
मणिमाणिक्यसम्पूर्णगजाश्वरथसङ्कुलम् । स्त्रीरत्नपुत्ररत्नैश्च समृद्धं राज्यमाप्नुयात्
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं काश्यां यैर्न विलोकितम् ।
ते मर्त्यलोके भाराय भुवो भूता न संशयः ॥ ८४ ॥

स्कन्द उवाच

कृत्तिवासःसमुत्पत्तिं ये श्रोष्यन्तीह मानवाः ।

तल्लिङ्गदर्शनाच्छ्रेयो लप्स्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे [काशीखण्डे
कृत्तिवासःसमुद्भवो नामाऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

अष्टषष्ट्यायतनसमागमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

श्रृण्वगस्त्य! तपोराशे! काश्यां लिङ्गानि यानि वै ।
सेवितानि नृणां मुक्त्यै भवेयुर्भावितात्मनाम् ॥ १ ॥
कृत्तिप्रावरणं यत्र कृतन्देवेन लीलया । रुद्रावास इति ख्यातंतत्स्थानंसर्वसिद्धिदम्
स्थिते तत्रोमया सार्धं स्वेच्छया कृत्तिवाससि ।
आगत्य नन्दीविज्ञप्तिश्चक्रे प्रणतिपूर्वकम् ॥ ३ ॥
देवदेवेशविश्वेश प्रासादाः सुमनोहराः । सर्वरत्नमया रम्याःसाष्टाषष्टिरभूदिह ॥ ४ ॥
भूर्भुवः स्वस्तलेयानि शुभान्यायतनानिह । मुक्तिदान्यपि तानीहमयानीतानिसर्वतः
यतो यच्च समानीतं यत्र यच्च कृतास्पदम् । कथयिष्याम्यहं नाथक्षणंतदवधार्यताम्
स्थाणुर्नाममहालिङ्गं देवदेवस्यमोक्षदम् । कुरुक्षेत्रादिहोद्भूतंकलाशेषोऽस्तितत्रवै
तदग्रेसन्निहत्याख्या महापुष्करिणीशुभा । लोलार्कपश्चिमे भागे कुरुक्षेत्रस्थलीतुसा
तत्र स्नातं हुतं जप्तंतप्तं दत्तंशुभार्थिभिः । कुरुक्षेत्राद्भवेत्सत्यंकोटिकोटिगुणाधिकम्
नैमिषाद्देवदेवोऽत्र ब्रह्मावर्तेन संयुतः । तत्रांशमात्रं संस्थाप्य काश्यामाविरभूद्विभो!
दुण्ढिराजोत्तरे भागे सिद्धिदं साधकस्य वै ।
लिङ्गं वै देवदेवाख्यं तदग्रे कूपउत्तमः ॥ ११ ॥
ब्रह्मावर्त इति ख्यातः पुनरावृत्तिहन्नृणाम् । तत्कूपाद्भिः कृतस्नानोदेवदेवंसमर्च्यच

तत्पुण्यं नैमिषारण्यात्कोटिकोटिगुणं स्मृतम् ।
गोकर्णायतनादत्र स्वयमाविरभून्महत् ॥ १३ ॥
लिङ्गं महाबलंनामसाम्बादित्यसमीपतः । दर्शनात्स्पर्शानाद्यस्य क्षणादेनोमहाबलम्
वाताहतस्तूलराशिरिव विद्रात्तिदूरतः । कपालमोचनपुरो दृष्ट्वा लिङ्गं महाबलम्
महाबलमवाप्नोति निर्वाणनगरं व्रजेत् ।
ऋणमोचनतः प्राच्यां प्रभासात्क्षेत्रसत्तमात् ॥ १६ ॥
शशिभूषणसञ्ज्ञन्तुलिङ्गमत्र प्रतिष्ठितम् । तल्लिङ्गसेवनान्मर्त्यः शशिभूषणतां व्रजेत्
प्रभासक्षेत्रयात्रायाः पुण्यं प्राप्नोति कोटिकृत् ।
उज्जयिन्या महाकालः स्वयमत्रागतो विभुः ॥ १८ ॥
यन्नामस्मरणादेव न भयं कलिकालतः ।
प्रणवाख्यान्महालिङ्गात्प्राच्यां कल्मषनाशनम् ॥ १९ ॥
महाकालाभिधंलिङ्गंदर्शनान्मोक्षदम्परम् । अयोगन्धेश्वरंलिङ्गंपुष्करात्तीर्थसत्तमात्
आविरासीदिह महत्पुष्करेण सहैव तु । मत्स्योदर्युत्तरे भागेदृष्ट्वाऽयोगन्धमीश्वरम्
स्नात्वा ऽयोगन्धकुण्डे तु भवात्तारयतेपितॄन् ।
महानादेश्वरंलिङ्गमट्टहासादिहागतम् ॥ २२ ॥
त्रिलोचनादुदीच्यान्तु तद्दृष्टंमुक्तयेमतम् । महोत्कटेश्वरंलिङ्गंमरुत्कोटादिहागतम्
कामेश्वरोत्तरे भागे दृष्टं विमलसिद्धिदम् ॥ २३ ॥
विश्वस्थानादिहायातं लिङ्गं वै विमलेश्वरम् ।
स्वर्लीनात्पश्चिमे भागे दृष्टं विमलसिद्धिदम् ॥ २४ ॥
महाव्रतं महालिङ्गं महेन्द्रादिहसंस्थितम् । स्कन्देश्वरसमीपे तु महाव्रतफलप्रदम्
ृन्दारकर्षिवृन्दानां स्तुवतां प्रथमेयुगे । उत्पन्नंयन्महालिङ्गंभूमिंभित्त्वासुदुर्भिदाम्
हादेवेति तैरुक्तं यन्मनोरथपूरणात् । वाराणस्यां महादेवस्तदारभ्याभवच्चयत्
ुक्तिक्षेत्रं कृतं येन महालिङ्गेन काशिका । अविमुक्ते महादेवं यो द्रक्ष्यत्यत्र मानवः
म्भुलोके गमस्तस्य यत्र तत्र मृतस्यहि । अविमुक्ते प्रयत्नेनतत्संसेव्यंमुमुक्षुभिः

कल्पान्तरेऽपि न त्यक्तं कदाप्यानन्दकाननम् । येन लिङ्गस्वरूपेण महादेवेन सर्वथा
तत्प्रासादोऽयमतुलः सर्वरत्नमयः शुभः । हिरण्यगर्भतीर्थाच्च प्रतीच्यांक्षेत्ररक्षकम्
वाराणस्यामधिष्ठात्री देवतासाभिलाषदा । महादेवेतिसञ्ज्ञा वैसर्वलिङ्गस्वरूपिणी
वाराणस्यांमहादेवो दृष्टोयैर्लिङ्गरूपधृक् । तेनत्रैलोक्यलिङ्गानि दृष्टानीह न संशयः
वाराणस्यांमहादेवं समभ्यर्च्य सकृन्नरः । आभूतसम्प्लवंयावच्छिवलोके वसेन्मुदा
पवित्रपर्वणि सदा श्रावणे मासि यत्नतः । लिङ्गे पवित्रमारोप्य महादेवेन गर्भभाक्

पितामहेश्वरं लिङ्गं गयातीर्थादिहागतम् ।
फल्गुप्रभृतिभिस्तीर्थैः सार्धकोट्यष्टसंमितैः ॥ ३६ ॥

धर्मेण यत्र वै तप्तं युगानामयुतं शतम् । साक्षीकृत्य महालिङ्गं श्रीमद्धर्मेश्वराभिधम्
पितामहेश्वरं लिङ्गं तत्राभ्यर्च्य नरो मुदा । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो मुच्यते नात्र संशयः
प्रयागात्तीर्थराजाच्च शूलटङ्को महेश्वरः । तीर्थराजेन सहितःस्थित आगत्यवैस्वयम्

निर्वाणमण्डपाद्रम्यादवाच्यामतिनिर्मलः ।
प्रासादो मेरुणा यस्य स्पर्धते काञ्चनोज्ज्वलः ॥ ४० ॥

देवेनैव वरो दत्तो यत्र पूर्वं युगान्तरे । पूज्यो महेश्वरः काश्यां प्रथमं कलुपापहः
यःप्रयागइहस्नातो नमस्यति महेश्वरम् । समभ्यर्च्य विधानेन महासम्भारविस्तरैः

प्रयागस्नानजातपुण्याच्छूलटङ्कविलोकनात् ।
सप्राप्नुयान्न सन्देहः पुण्यं कोटिगुणोत्तरम् ॥ ४३ ॥

शङ्कुकर्णान्महाक्षेत्रान्महातेज इतीरितम् । लिङ्गमाविरभूदत्र महातेजोविवृद्धिदम्

महातेजोनिधिस्तस्य प्रासादोऽतीवनिर्मलः ।
ज्वालाजटिलिताकाशो माणिक्यैरेव निर्मितः ॥ ४५ ॥

तल्लिङ्गदर्शनात्स्पर्शात्स्तवनाच्च समर्चनात् । प्राप्यते तत्परं धामयत्र गत्वान शोचते
विनायकेश्वरात्पूर्वं महातेजसमर्चनात् । तेजोमयेन यानेन याति माहेश्वरम्पदम् ॥
रुद्रकोटिसमाख्याताच्तीर्थात्परमपावनात् । महायोगीश्वरंलिङ्गमाविश्चक्रेस्वयम्परम्
पार्वतीश्वरलिङ्गस्यसमीपे सर्वसिद्धिकृत् । तल्लिङ्गदर्शनात्पुसां कोटिलिङ्गफलंभवेत्

तत्प्रासादस्य परितो रुद्राणां कोटिसम्मिताः ।
प्रासादा रम्यसंस्थाना निर्मिता रुद्रमूर्तिभिः ॥ ५० ॥
काश्यांरुद्रस्थलीसा तुपठ्यतेवेदवादिभिः । रुद्रस्थल्यांमृतायेवै कृमिकीटपतङ्गकाः
पशुपक्षिमृगा मर्त्याम्लेच्छा वाऽप्यथ दीक्षिताः । तेषान्तुरुद्रीभूतानांपुनरावृत्तिरत्र न
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् । रुद्रस्थलीम्प्रविष्टस्यतत्सर्वंव्रजतिक्षयम्
अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा ।
रुद्रस्थल्यां त्यजन्प्राणान्परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥
स्वयमेकाम्बरात्क्षेत्रात्कृत्तिवासाइहागतः । कृत्तिवाससिलिङ्गेत्रस्वयमेवव्यवस्थितः
अस्मिन्स्थाने स्वभक्तानां साम्बः सर्षिगणो विभुः ।
स्वयं चोपदिशेद्ब्रह्म श्रुतौ श्रुतिभिरीडितम् ॥ ५६ ॥
क्षेत्रेऽत्रसिद्धिदेप्राप्तश्चण्डीशोमरुजाङ्गलात् । प्रचण्डपापसङ्घातंखण्डयेच्छतत्प्रेक्षणात्
पाशपाणिगणाध्यक्षसमीपे यः प्रपश्यति । चण्डीश्वरंमहालिङ्गंसयातिपरमांगतिम्
कालञ्जरान्नीलकण्ठस्तिष्ठेदत्र स्वयं विभुः । गणेशाद्दन्तकूटाख्यात्समीपे भवनाशनः
नीलकण्ठेश्वरं लिङ्गं काश्यां यैः परिपूजितम् ।
नीलकण्ठास्त एव स्युस्तएव शशिभूषणाः ॥ ६० ॥
काश्मीरादिह सम्प्राप्तं लिङ्गं विजयसञ्ज्ञितम् ।
सदा विजयदम्पुसाम्प्राच्यां शालकटङ्कटात् ॥ ६१ ॥
रणे राजकुले द्यूते विवादे सर्वदैव हि । विजयो जायते पुंसां विजयेशसमर्चनात्
ऊर्ध्वरेतास्त्रिदण्डायाः सम्प्राप्तोऽत्र स्वयं विभुः ।
कूश्माण्डकं गणाध्यक्षं पुरस्कृत्य व्यवस्थितः ॥ ६३ ॥
ऊर्ध्वांगतिमवाप्नोति वीक्षणादूर्ध्वरेतसः । ऊर्ध्वरेतसि ये भक्तानहितेषामधोगतिः
मण्डलेश्वरतः क्षेत्राल्लिङ्गं श्रीकण्ठसञ्ज्ञितम् ।
विनायकान्मण्डसञ्ज्ञादुत्तरस्यां व्यवस्थितम् ॥ ६५ ॥
श्रीकण्ठस्य च येभक्ताः श्रीकण्ठाएवतेनराः । नेह श्रियावियुज्यन्ते न परत्र कदाचन

छागलाण्डान्महातीर्थात्कपर्दीश्वरसञ्ज्ञितः । पिशाचमोचनेतीर्थेस्वयमाविरभूद्विभुः
कपर्दीशंसमभ्यर्च्य न नरोनिरयंव्रजेत् । न पिशाचत्वमाप्नोतिकृत्वात्राप्यघमुत्तमम्
आम्रातकेश्वरात्क्षेत्राल्लिङ्गं सूक्ष्मेशसञ्ज्ञितम् । स्वयमभ्यागतश्चात्रक्षेत्रे वैश्रेयसाम्पदे
विकटद्विजसञ्ज्ञस्य गणेशस्यसमीपतः । दृष्ट्वा सूक्ष्मेश्वरंलिङ्गंगतिसूक्ष्मामवाप्नुयात्
सम्प्राप्तमिह देवेशं जयन्तं मधुकेश्वरात् । लम्बोदराद्गणपतेः पुरस्तात्तदवस्थितम्
जयन्तेश्वरमालोक्य स्नात्वा गङ्गाजले शुभे ।
प्राप्नुयाद्वाञ्छितां सिद्धिं सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७२ ॥
प्रादुश्चकार देवेशः श्रीशैलात्त्रिपुरान्तकः । श्रीशैलशिखरंदृष्ट्वा यत्फलं समुदीरितम्
त्रिपुरान्तकमालोक्य तत्फलं हेलयाप्यते । विश्वेशात्पश्चिमेभागेत्रिपुरान्तकमीश्वरम्
सम्पूज्य परया भक्त्या न नरो गर्भमाविशेत् ।
सौम्यस्थानादिहायातो भगवान्कुक्कुटेश्वरः ॥ ७५ ॥
वक्रतुण्डगणाध्यक्षसमीपे सोपतिष्ठते । तद्दर्शनादर्चनाच्चकरस्थाः सर्वसिद्धयः ॥
ज्वालेश्वरात्त्रिशूलीच स्वयमीशः समागतः । कूटदन्ताद्गणपतेःपुरस्तात्सर्वसिद्धिदः
रामेश्वरान्महाक्षेत्राज्जटीदेवः समागतः । एकदन्तोत्तरे भागे सोऽर्चितः सर्वकामदः
त्रिसन्ध्यात्क्षेत्रतो देवस्त्र्यम्बकोऽस्ति समागतः ।
त्रिमुखात्पूर्वदिग्भागे पूजितस्त्र्यम्बकत्वकृत् ॥ ७६ ॥
हरेश्वरो हरिश्चन्द्रात्क्षेत्रादत्र समागतः । हरिश्चन्द्रेश्वरपुरः पूजितो जयदः सदा ॥
इहशर्वःसमायातः स्थानान्मध्यमकेश्वरात् । चतुर्वेदेश्वरंलिङ्गं पुरोधायव्यवस्थितम्
शर्वंलिङ्गंसमभ्यर्च्य काश्यांपरमसिद्धिकृत् । नजातुजन्तुपदवींप्राप्नुयात्कापिमानवः
स्थलेश्वरान्महालिङ्गं प्रादुर्भूतं परं त्विह । यत्रयज्ञेश्वरं लिङ्गं सर्वलिङ्गफलप्रदम्
महालिङ्गंसमभ्यर्च्य महाश्रद्धासमन्वितः । महतींश्रियमाप्नोति लोकेऽत्र च परत्रच
इहलिङ्गंसहस्राक्षं सुवर्णाख्यात्समागतम् । यस्यसंदर्शनात्पुंसांज्ञानचक्षुः प्रजायते
शैलेश्वरादवाच्यांतु सहस्राक्षेश्वरं विभुम् । दृष्ट्वाजन्मसहस्राणांशतानांपातकंत्यजेत्
हर्षिताद्धर्षितं चात्र प्रादुरासीत्तमोहरम् । लिङ्गं हर्षप्रदं पुंसां दर्शनात्स्पर्शनादपि

मन्त्रेश्वरसमीपे तुप्रासादो हर्षितेशितुः। तद्विलोकनतः पुंसां नित्यं हर्षपरम्परा
इहस्वयं समायातो रुद्रो रुद्रमहालयात्। यस्य दर्शनतोयान्तिरुद्रलोकेनराःस्फुटम्
यैस्तु रुद्रेश्वरं लिङ्गंकाश्यामत्र समर्चितम्। तेरुद्ररूपिणोमर्त्याविज्ञेयानात्रसंशयः
त्रिपुरेशसमीपेतु दृष्ट्वा रुद्रेश्वरं विभुम्। रुद्रास्तइवविज्ञेया जीवन्तोऽपि मृता अपि
आगादिह महादेवोवृषेशो वृषभध्वजात्। बाणेश्वरस्य लिङ्गस्य समीपे वृषदःसदा
इहागतन्तु केदारादीशानेश्वरसञ्ज्ञितम्। तद्द्रष्टव्यंप्रतीच्यांञ्च लिङ्गंप्रह्लादकेशवात्
ईशानेशं समभ्यर्च्य स्नात्वोत्तरवहाम्भसि । वसेदीशाननगरे ईशानसदृशप्रभः॥
भैरवाद्भैरवीमूर्तिरत्रायाता मनोहरा । संहारभैरवो नाम द्रष्टव्यः सप्रयत्नतः॥
पूजनात्सर्वसिद्ध्यै सप्राच्यांखर्वविनायकात्। संहारभैरवःकाश्यांसंहरेदघसन्ततिम्
उग्रः कनखलात्तीर्थादाविरासेह सिद्धिदः। तद्विलोकनतो नृणामुग्रं पापं प्रणश्यति
उग्रंलिङ्गं सदासेव्यंप्राच्यामर्कविनायकात्। अत्युग्राअपिनश्येयुरुपसर्गास्तदर्चनात्
वस्त्रापथान्महाक्षेत्राद्भवो नाम स्वयंविभुः। भीमचण्डीसमीपेतुप्रादुरासीदिह प्रभो!
भवेश्वरं समभ्यर्च्य भवेनाविर्भवेन्नरः । प्रभुर्भवति सर्वेषां राज्ञामाज्ञाकृतामिह॥

देवदारुवनाद्दण्डी दण्डयन्पातकावलीः।
वाराणस्यां समागत्य स्थितो लिङ्गाकृतिर्विभुः॥ १०१॥

प्राच्यांदण्डीश्वरः पूज्यःसदेहलिविनायकात्। तस्याऽर्चनेनमर्त्यानांनपुनर्भवईक्ष्यते
भद्रकर्णह्रदादत्र भद्रकर्णह्रदान्वितः। शिवः साक्षादिहायातः सर्वेषां शिवदोऽर्चितः

उद्दण्डाख्याद्गणपतेः प्राच्यां तत्तीर्थमुत्तमम्।
भद्रकर्णह्रदे स्नात्वाऽभ्यर्च्य लिङ्गं शिवाह्वयम्॥ १०४॥

सर्वत्र शिवमाप्नोति भद्रकर्णेशपूजनात् । शृणुयात्सर्वभूतानांभद्रं पश्यतिचाक्षभिः
शङ्करश्चहरिश्चन्द्रास्त्वत्पुरः प्रतिभासते । तत्पूजनाज्जनानां न जननीजठरेजनिः॥

यमलिङ्गान्महातीर्थात्काललिङ्गमिहस्थितम्।
कलशेश इतिख्यातं चन्द्रेशात्पश्चिमेन च॥ १०७॥

यमतीर्थेनरः स्नात्वा मित्रावरुणदक्षिणे। काललिङ्गं समालोक्यकलिकालभयंकुतः

तत्रभौमचतुर्दश्यां यस्तुयात्रां करिष्यति । अपि पातकयुक्तःसयमयात्रांनयास्यति
नैपालाच्च महाक्षेत्रादायात्पशुपतिस्त्विह । यत्र पाशुपतो योग उपदिष्टः पिनाकिना
भवता देवदेवेन ब्रह्मादिभ्यो विमुक्तये । तस्य सन्दर्शनादेव पशुपाशैर्वियुज्यते ॥
करवीरकतीर्थाच्च कपालीश इहागतः । कपालमोचने तीर्थे द्रष्टव्यः सप्रयत्नतः ॥
तद्विलोकनमात्रेण ब्रह्महत्या विलीयते । उमापतिर्देविकाया इहागत्यव्यवस्थितः
दृष्टः पशुपतिः प्राच्यांहरेत्पापंचिरार्जितम् । लिङ्गं महेश्वरक्षेत्रादिहदीप्तेशसञ्ज्ञितम्
उपोमापतितिष्ठेत दीप्त्यै चेहपरत्रच । भुक्तिमुक्तिप्रदंलिङ्गं दीप्तेशं काशिमध्यगम्
कायारोहणतः क्षेत्रादाचार्यो नकुलीश्वरः ।
शिष्यैः परिवृतस्तिष्ठेन्महापाशुपतव्रतैः ॥ ११६ ॥
दक्षिणेहि महादेवाद्दृष्टो ज्ञानं प्रयच्छति । अज्ञानं नाशयेत्क्षिप्रं गर्भसंसृतिहेतुकम् ॥
गङ्गासागरतश्चायादमरेश इतीरितम् । लिङ्गं यद्दर्शनादेव नामरत्वं हि दुर्लभम् ॥
सप्तगोदावरीतीर्थाद्देवो भीमेश्वरः प्रभुः । प्रकाशते लिङ्गरूपीभुक्त्यैमुक्त्यैनृणामिह
नकुलीशात्पुरो भागे दृष्ट्वा भीमेश्वरं प्रभुम् ।
महाभीमानि पापानि प्रणश्यन्ति हि तत्क्षणात् ॥ १२० ॥
भूतेश्वराद्भस्म गात्रं प्रादुरासीदिहस्वयम् । भीमेशाद्दक्षिणे भागेतदभ्यर्च्य प्रयत्नतः
सम्यक्पाशुपताद्योगादभ्यस्ताच्च समाः शतम् ।
यत्प्राप्यते फलं तत्स्याद्भस्मगात्रविलोकनात् ॥ १२२ ॥
नकुलीश्वरतो देवः स्वयम्भूरितिविश्रुतः । आत्मना प्रकटीभूतःकाश्यांलिङ्गाकृतिर्हरः
स्वयम्भुलिङ्गं सम्पूज्य स्नात्वा सिद्धिह्रदे नरः ।
महालक्ष्मीश्वरपुरो न भूयो जन्मभाग्भवेत् ॥ १२४ ॥
प्रयागतीर्थनिकषाप्रासादो विद्रुमप्रभः । वाराहस्य महानेष धरणीनाम्न एव हि ॥
विन्ध्यपर्वततः प्राप्तोदेवं श्रुत्वासमागतम् । सगणं सर्षिदेवं च मन्दराद्रत्नकन्दरात्
काश्यां धरणिवाराहो द्रष्टव्यःसप्रयत्नतः । आपत्समुद्रसंमग्नमुद्धरेच्छरणागतम् ॥
कर्णिकाराद्गणाध्यक्षः कर्णिकारप्रसूनरुक् । समचर्योऽयं गदाहस्त उपसर्गसहस्रहृत्

तस्माद्धरणिवाराहात्प्रतीच्यां दिशि संस्थितम् ।
पूजयित्वा गणाध्यक्षं गाणपत्यपदं लभेत् ॥ १२६ ॥
हेमकूटाद्विरूपाक्षं लिङ्गमत्राविरासह । महेश्वरादवाच्यां च दृष्टं संसारतारकम् ॥
गङ्गाद्वाराद्धिमस्थेशं लिङ्गं हिमसमप्रभम् ।
ब्रह्मनालात्प्रतीच्यां च द्रष्टव्यमिह सिद्धिदम् ॥ १३१ ॥
गणाधिपश्च कैलासाद्गणा अन्ये महाबलाः ।
कैलासाद्रेः समायाताः सप्तकोटिमिताः प्रभो !॥ १३२ ॥
दुर्गाणितैः कृतानीह सप्तस्वर्गसमानि च । सद्वाराणि सयन्त्राणिकपाटविकटानिच
कोटिकोटिभटाढ्यानि सर्वर्द्धिसहितान्यपि ।
सुवर्णरूप्यताम्रैश्च कांस्यरीतिकसीसकैः ॥ १३४ ॥
अयस्कान्तेनकान्तानिदृढान्यभ्रंलिहान्यपि । ततःशैलं महादुर्गंतैःकाशीपरितःकृतम्
परिखाऽपि कृता निम्ना मत्स्योदर्या जलाविला ।
मत्स्योदरी द्विधा जाता बहिरन्तश्चरा पुनः ॥ १३६ ॥
तच्च तीर्थं महत्ख्यातं मिलितं गाङ्गवारिभिः । यदासंहारमार्गेण गङ्गाम्भः प्रसरेदिह
तदा मत्स्योदरी तीर्थंलभ्यतेपुण्यगौरवात् । सूर्याचन्द्रमसोःपर्वतदाकोटिगुणंशतम्
सर्वपर्वाणि तत्रैवसर्वतीर्थानि तत्र वै । तत्रैवसर्वलिङ्गानिगङ्गामतत्स्योदरीयतः ॥
मत्स्योदर्यांहि येस्नाता यत्रकुत्रापिमानवाः । कृतपिण्डप्रदानास्ते न मातुरुदरेशयाः
अविमुक्तमिदंक्षेत्रंमत्स्याकारत्वमाप्नुयात् । परितःस्वधुनीवारिसंसारिपरिवीक्ष्यते
मत्स्योदर्यांकृतस्नानायेनरास्तेनरोत्तमाः। कृत्वापिबहुपापानिनेक्षन्तेभास्करेःपुरीम्
किंस्नात्वाबहुतीर्थेषुकिंतप्त्वादुष्करंतपः । यदिमत्स्योदरीस्नाताकुतोगर्भभयंततः
यत्रयत्रहिलिङ्गानि नृदेवर्षिकृतान्यपि । तत्रमत्स्योदरीं प्राप्य सुस्नातोमोक्षभाजनम्
सन्ति तीर्थान्यनेकानि भूर्भुवः स्वर्गतान्यपि ।
न समानि परं तानि कोट्यंशेनापि निश्चितम् ॥ १४५ ॥
इत्थंतीर्थंकृतं तेनविभो कैलासवासिना । गणाधिपेन सुमहत्सुमहोदारकर्मणा ॥

भूर्भुवः सञ्ज्ञकं लिङ्गं पर्वताद्गन्धमादनात् ।
स्वयमाविरभूदत्र तस्मात्प्राच्यां गणाधिपात् ॥ १४७ ॥
विलोक्य भूर्भुवं लिङ्गं भूर्भुवः स्वर्महः परे ।
निवसन्ति जनाः पुण्याः सुचिरं दिव्यभोगिनः ॥ १४८ ॥
हाटकेशं महालिङ्गं भोगवत्या समायुतम् । सप्तपातालतलत इहायातं स्वयं विभो !
शेषवासुकिमुख्यैश्च तत्प्रासादो महानिह । मणिमाणिक्यरत्नौघैर्निरमायि प्रयत्नतः
तल्लिङ्गं हाटकमयं रत्नमालाभिरर्चितम् । ईशानेश्वरतः प्राच्यां पूजनीयं प्रयत्नतः ॥
भक्तितोऽऽभ्यर्च्य तल्लिङ्गं नरः सर्वसमृद्धिमान् ।
भुक्त्वा भोगानसङ्ख्यातानन्ते निर्वाणमृच्छति ॥ १५२ ॥
आकाशात्तारकाल्लिङ्गं ज्योतीरूपमिहागतम् । ज्ञानवाप्याः पुरोभागे तल्लिङ्गं तारकेश्वरम्
तारकं ज्ञानमाप्येत तल्लिङ्गस्य समर्चनात् । ज्ञानवाप्यां नरः स्नात्वा तारकेशं विलोक्य च
कृतसन्ध्यादिनियमः परितर्प्य पितामहान् । धृतमौनव्रतो धीमान्यावल्लिङ्गविलोकनम्
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति शाश्वतम् ।
प्रान्ते च तारकं ज्ञानं यस्माज्ज्ञानाद्विमुच्यते ॥ १५६ ॥
किराताच्च किरातेश इह चाविर्बभूव ह । किरातरूपो भगवान्यत्र देवोऽभवत्पुरा ॥
तत्किरातेश्वरं लिङ्गं भारभूतेश्वरादनु । नमस्कृत्य नरो जातु न मातुरुदरेशयः ॥
लङ्कापुर्याः समागच्छन्मरुकेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
लिङ्गं यदर्चनात्पुंसां न भयं रक्षसाम्भवेत् ॥ १५९ ॥
नैर्ऋत्यां दिशि तल्लिङ्गं नैर्ऋतेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
पौलस्त्यरावणात्पश्चात्पूजितं सर्वदुष्टहृत् ॥ १६० ॥
पुण्यं जलप्रियं लिङ्गं जललिङ्गं स्थलादपि ।
आयातं तच्च गङ्गाया जलमध्ये व्यवस्थितम् ॥ १६१ ॥
तत्प्रासादोऽद्भुततरो मध्येगङ्गं निरीक्ष्यते । सर्वधातुमयः श्रेष्ठः सर्वरत्नमयः शुभः
अद्यापि दृश्यते कैश्चित्पुण्यसम्भारगौरवात् ।

श्रेष्ठं लिङ्गमिहायातं तीर्थात्कोटीश्वरादपि ॥ १६३ ॥
कोटिलिङ्गेक्षणे पुण्यं तल्लिङ्गस्य निरीक्षणात् ।
श्रेष्ठं ज्येष्ठेश्वरात्पश्चाच्छ्रेष्ठसिद्धिप्रदायकम् ॥ १६४ ॥
षडवास्यात्समुद्भूतं लिङ्गमत्रानलेश्वरम् । नलेश्वरपुरो भागे पूजितंसर्वसिद्धिदम्
आगत्य विरजस्तीर्थाद्देवदेवस्त्रिलोचनः । लिङ्गे त्वनादिसंसिद्धे ह्यवतस्थेत्रिविष्टपे
पुण्ये पिलिपिलातीर्थे सर्वेषांतारकप्रदे । आविश्चक्रेस्वयन्देवॐकारोऽमरकण्टकात्
तदाद्यन्तारकक्षेत्रं यदागङ्गा न चागता । यदैवाविरभूत्काशी त्रैलोक्योद्धरणाय वै
तदाकृतिमहल्लिङ्गं स्वयमाविरभूत्ततः । महिमानं न तस्यान्यः परिवेत्तिविभोर्ऋ ते
एतान्यायतनानीश आनिनाय महान्ति च । शेषयित्वांशमात्रञ्चतस्मिन्क्षेत्रेनिजेनिजे
इहायातानि पुण्यानिसर्वभावेननान्यथा । प्रासादाः सर्वतश्चैषां रम्याअभ्रंलिहाविभो
बहुधातुमयाश्चित्राः सर्वरत्नसमुज्ज्वलाः । येषां कलशमात्रस्यदर्शनान्मुक्तिराप्यते
श्रुत्वापिनामचैतेषां लिङ्गानां सुरसत्तम !। अपि जन्मसहस्रोत्थाःक्षीयन्तेपापराशयः
इदानीं कोनिदेशोऽत्र मयानुष्ठेयईशितः । प्रसादीक्रियतांसोऽपिसिद्धोमन्तव्यएवहि

स्कन्द उवाच

श्रुत्वेति नन्दिनो वाक्यं देवदेवेश्वरोहरः । श्रद्धाप्रसाद्यशैलादिमिदम्प्रोवाच कुम्भज!

श्रीदेवदेव उवाच

साधूक्तं त्वया नन्दिन्सदानन्दविधायक !। विधेहि मेनिदेशञ्चचण्डीर्व्यापारयाधुना
नवकोट्यस्तु चामुण्डा या यत्रनिवसन्तिहि । स्वदेवताभिःसहिताभूतवेतालभैरवैः
ताः पुरीरक्षणार्थाय सवाहनबलायुधाः । प्रतिदुर्गं दुर्गरूपाः परितः परिवासय ॥

स्कन्द उवाच

नन्दिनं संनिदेश्येति मृडान्या सहितो मृडः । ययौत्रैविष्टपंक्षेत्रंमुक्तिबीजप्ररोहणाम्
शिलादतनयोऽप्यैशींमूर्द्धन्याज्ञां विधायच । आहूय सर्वतो दुर्गाःप्रतिदुर्गंन्यवेशयत्
निशम्याऽध्यायमेतञ्च पुण्यायतनगर्भिणम् ।
नरः स्वर्गापवर्गौ च प्राप्नुयाच्छ्रद्धया क्रमात् ॥ १८२ ॥

श्रुत्वाष्टषष्टिमेतां वै महायतनसंश्रयाम् । न जातुप्रविशेन्मर्त्यो जनन्याजाठरीं दरीम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
उत्तरार्धे अष्टषष्ट्यायतनसमागमो नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

देवताधिष्ठानवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

कात्यायनेय! कथय नन्दिना विश्वनन्दिना । यथाव्यापारिता देव्यो देवदेवनिदेशतः
अविमुक्तस्य रक्षार्थं यत्र यादेवताः स्थिताः । प्रसादं कुरुमेदेवताःसमाचक्ष्वतत्त्वतः ।
इत्यगस्त्युदितं श्रुत्वा महादेवतनूद्भवः । कथयामास यायत्रस्थिताऽऽनन्दवनेमुदा

स्कन्द उवाच

वाराणस्यां विशालाक्षीक्षेत्रस्य परमेष्टदा ।
विशालतीर्थं गङ्गायां कृत्वा पृष्ठे व्यवस्थिता ॥ ४ ॥
स्नात्वा विशालतीर्थे वै विशालाक्षीम्प्रणम्य च ।
विशालां लभते लक्ष्मीम्परत्रेह च शर्मदाम् ॥ ५ ॥

भाद्रकृष्णतृतीयायामुपोषणपरैर्नृभिः । कृत्वा जागरणं रात्रौ विशालाक्षीसमीपतः ।
प्रातर्भोज्याःप्रयत्नेनचतुर्दशकुमारिकाः । अलङ्कृता यथा शक्त्या स्रगम्बरविभूषणैः
विधाय पारणम्पश्चात्पुत्रभृत्यसमन्वितैः । सम्यग्वाराणसीवासफलंलभ्येत कुम्भज!

तस्यां तिथौ महायात्रा कार्या क्षेत्रनिवासिभिः ।
उपसर्गप्रशान्त्यर्थं निर्वाणकमलाप्तये ॥ ६ ॥

वाराणस्यां विशालाक्षी पूजनीया प्रयत्नतः । धूपैर्दीपैः शुभैर्माल्यैरुपहारैर्मनोहरैः
मणिमुक्ताद्यलङ्कारैर्विचित्रोल्लोचचामरैः । शुभैरनुपभुक्तैश्च दुकूलैर्गन्धवासितैः ॥

मोक्षलक्ष्मीसमृद्धयर्थंयत्रकुत्रनिवासिभिः । अप्यल्पमपियद्दत्तंविशालाक्ष्यैनरोत्तमैः
तदानन्त्याय जायेत मुने लोकद्वयेऽपि हि । विशालाक्षीमहापीठे दत्तंजप्तंहुतंस्तुतम्
मोक्षस्तस्य परीपाको नात्र कार्याविचारणा ।
विशालाक्षीसमर्चातो रूपसम्पत्तियुक्पतिः ॥ १४ ॥
प्राप्यतेऽत्रकुमारीभिर्गुणशीलाद्यलंकृतः । गुर्विणीभिःसुतनयोबन्ध्याभिर्गर्भसम्भवः
असौभाग्यवतीभिश्च सौभाग्यं महदाप्यते । विधवाभिर्नवैधव्यंपुनर्जन्मान्तरेक्वचित्
सीमन्तिनीभिः पुम्भिर्वापरंनिर्वाणमिच्छुभिः ।
श्रुताद्दृष्टार्चिता काश्यां विशालाक्ष्यभिलाषदा ॥ १७ ॥
ततोऽन्यल्ललितातीर्थंगङ्गाकेशवसन्निधौ । तत्राऽस्तिललितादेवीक्षेत्ररक्षाकरी परा
सा च पूज्या प्रयत्नेन सर्वसम्पत्समृद्धये । ललितापूजकानाञ्च जातुविघ्नो न जायते
इषे कृष्णद्वितीयायां ललिताम्परिपूज्यवै । नारीवापुरुषोवापिलभतेवाञ्छितम्पदम्
स्नात्वा च ललितातीर्थे ललिताम्प्रणिपत्य वै ।
लभेत्सर्वत्र लालित्यं यद्वा तद्वाऽनुलप्य च ॥ २१ ॥
मुने विश्वभुजा गौरीविशालाक्षीपुरःस्थिता । संहरन्तीमहाविघ्नंक्षेत्रभक्तिजुषांसदा
शारदंनवरात्रञ्च कार्या यात्रा प्रयत्नतः । देव्या विश्वभुजा या वै सर्वकामसमृद्धये
यो न विश्वभुजां देवींवाराणस्यांनमेन्नरः । कुतोमहोपसर्गेभ्यस्तस्यशान्तिर्दुरात्मनः
यैस्तु विश्वभुजा देवी वाराणस्यां स्तुतार्चिता ।
नहि तान्विघ्नसङ्घातो बाधते सुकृतात्मनः ॥ २५ ॥
अन्यास्ति काश्यां वाराही क्रतुवाराहसन्निधौ ।
ताम्प्रणम्य नरो भक्त्या विपदब्धौ न मज्जति ॥ २६ ॥
शिवदूती तु तत्रैव द्रष्टव्याऽऽपद्विनाशिनी । आनन्दवनरक्षार्थमुद्यच्छूलारितर्जनी ॥
वज्रहस्तातथैन्द्रीगजराजरथास्थिता । इन्द्रेशाद्दक्षिणे भागेऽर्चितासम्पत्करीसदा
स्कन्देश्वरसमीपे तु कौमारीबर्हियानगा । प्रेक्षणीया प्रयत्नेन महाफलसमृद्धये ॥
महेश्वराद्दक्षिणतो देवी माहेश्वरीनरैः । वृषयानवती पूज्या महावृषसमृद्धिदा ॥

निर्वाणनरसिंहस्य समीपे मोक्षकाङ्क्षिभिः । नारसिंहीसमर्च्याचसमुद्यच्चक्ररम्यदोः
हंसयानवतीब्राह्मीब्रह्मेशात्पश्चिमेस्थिता । गलत्कमण्डलुजलचुलकाताडिताहिता ॥

ब्रह्मविद्याप्रबोधार्थं काश्याम्पूज्या दिने दिने ।
ब्राह्मणैर्यतिभिर्नित्यं निजतत्त्वावबोधिभिः ॥ ३३ ॥
शार्ङ्गचापविनिर्मुक्तमहेषुभिरितस्ततः ।
उत्सादयन्तीस्प्रत्यूहान्काश्यां नारायणीं श्रयेत् ॥ ३४ ॥
प्रतीच्यांगोपिगोविन्दाद् भ्राम्यच्चक्रोच्चतर्जनीम् ।
नारायणीं यः प्रणमेत्तस्य काश्यां महोदयः ॥ ३५ ॥
ततो गौरीं विरूपाक्षीं देवयान्या उदग्दिशि ।
पूजयित्वा नरो भक्त्या वाञ्छितां लभते श्रियम् ॥ ३६ ॥

शैलेश्वरी समभ्यर्च्या शैलेश्वरसमीपगा । तर्जयन्ती च तर्जन्या संसर्गमुपसर्गजम्
चित्रकूपेनरः स्नात्वाविचित्रफलदेनृणाम् । चित्रगुप्तेश्वरंवीक्ष्यचित्रघण्टाम्प्रपूज्यच
बहुपातकयुक्तोऽपि त्यक्तधर्मपथोऽपिवा । नचित्रगुप्तलेख्यःस्याच्चित्रघण्टार्चकोनरः
योषिद्वा पुरुषो वापि चित्रघण्टांनयोऽर्चयेत् । काश्यांविघ्नसहस्राणितंसेवन्तेपदेपदे
चैत्रशुक्लतृतीयायां कार्यायात्राप्रयत्नतः । महामहोत्सवः कार्यो निशिजागरणं तथा
महापूजोपकरणैश्चित्रघण्टां समर्च्यच । शृणोतिनान्तकस्येह घण्टांमहिषकण्ठगाम्
चित्राङ्गदेश्वरप्राच्यां चित्रग्रीवाम्प्रणम्य च । नजातुजन्तुर्वीक्षेतविचित्रांयमयातनाम्
भद्रकालींनरोदृष्ट्वा नाभद्रम्पश्यति क्वचित् । भद्रनागस्य पुरतोभद्रवाप्यां कृतोदकः ॥

हरसिद्धिं प्रयत्नेन पूजयित्वा नरोत्तमः ।
महासिद्धिमवप्नोति प्राच्यां सिद्धिविनायकात् ॥ ४५ ॥

विधिंसम्पूज्यविधिवद्विविधैरुपहारकैः । विविधांलभतेसिद्धिंविधीश्वरसमीपगाम्
प्रयागतीर्थेसुस्नातोजनो निगडभञ्जनीम् । सभाजयित्वानोजातुनिगडैःपरिबाध्यते
भौमवारे सदापूज्यादेवी निगडभञ्जनी । कृत्वैकभुक्तंभक्त्याऽत्रबन्दीमोक्षणकाम्यया

संसारबन्धविच्छित्तिमपि यच्छति सार्चिता ।

गणना शृङ्खलादीनां का च तस्याः समर्चनात् ॥ ४६ ॥
दूरस्थोऽपिहियोबन्धुःसोऽपिक्षिप्रंसमेष्यति । वन्दीपदजुषांपुंसांश्रद्धयानात्रसंशयः
किञ्चिन्नियममालम्ब्ययदिसापरिषेविता । कामान्पूरयतिक्षिप्रंकाशीसन्देहहारिणी
घनटङ्ककरा देवी भक्तबन्धनभेदिनी । कंकं न पूरयेत्कामं तीर्थराजसमीपगा ॥ ५२॥
देवीपशुपतेः पश्चादमृतेश्वरसन्निधौ । स्नात्वा चैवामृते कूपे नमनीया प्रयत्नतः
पूजयित्वा नरो भक्त्या देवताममृतेश्वरीम् । अमृतत्वंभजेदेव तत्पादाम्बुजसेवनात्
धारयन्तीं महामायाममृतस्य कमण्डलुम् ।
दक्षिणेऽभयदां वामे ध्यात्वा को नाऽमृतत्वभाक् ॥ ५५ ॥
सिद्धलक्ष्मीजगद्धात्रीप्रताच्याममृतेश्वरात् । प्रपितामहलिङ्गस्यपुरतःसिद्धिदार्चिता
प्रासादं सिद्धलक्ष्म्याश्च विलोक्य कमलाकृतिम् ।
लक्ष्मीविलाससञ्ज्ञश्च को न लक्ष्मीं समाप्नुयात् ॥ ५७ ॥
ततः कुब्जा जगन्मातानलकूबरलिङ्गतः । पूजनीया पुरोभागे प्रपितामहपश्चिमे ॥
उपसर्गानशेषांश्च कुब्जा हरति पूजिता ।
तस्मात्कुब्जा प्रयत्नेन पूज्या काश्यां शुभार्थिभिः ॥ ५६ ॥
कुब्जाम्बरेश्वरं लिङ्गं नलकूबरपश्चिमे । त्रिलोकसुन्दरी गौरी तत्राच्याभीष्टदायिनी
त्रिलोकसुन्दरीसिद्धिं दद्यात्त्रैलोक्यसुन्दरीम् ।
वैधव्यं नाऽप्यते काऽपि तस्या देव्याः समर्चनात् ॥ ६१ ॥
दीप्ता नाम महाशक्तिः साम्बादित्यसमीपगा ।
देदीप्यमानलक्ष्मीका जायन्ते तत्समर्चनात् ॥ ६२ ॥
श्रीकण्ठसन्निधौ देवी महालक्ष्मीर्जगज्जनिः ।
स्नात्वा श्रीकुण्डतीर्थे तु समर्च्या जगदम्बिका ॥ ६३ ॥
पितृन्सन्तर्प्य विधिवत्तीर्थे श्रीकुण्डसञ्ज्ञिते ।
दत्त्वा दानानि विधिवन्न लक्ष्म्या परिमुच्यते ॥ ६४ ॥
लक्ष्मीक्षेत्रं महापीठं साधकस्यैव सिद्धिदम् ।

साधकस्तत्र मन्त्रांश्च नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥
सन्ति पीठान्यनेकानि काश्यां सिद्धिकराण्यपि ।
महालक्ष्मीपीठसमं नान्यल्लक्ष्मीकरं परम् ॥ ६६ ॥

महालक्ष्म्यष्टमीं प्राप्य तत्रयात्राकृतांन्नृणाम् । सम्पूजितेहविधिवत्पद्मा सद्मनमुञ्चति
उत्तरेतु महालक्ष्म्याहयकण्ठीकुठारधृक् । काशीविघ्नमहावृक्षांश्छिनत्तिप्रतिवासरम्

कौमींशक्तिर्महालक्ष्मीर्दक्षिणे पाशपाणिका ।
बध्नाति विघ्नसङ्घातं क्षेत्रस्याऽस्य प्रतिक्षणम् ॥ ६९ ॥
सा पूजिता स्तुता मर्त्यैः क्षेत्रसिद्धिं प्रयच्छति ।
वायव्यां च शिखी चण्डी क्षेत्ररक्षाकरी परा ॥ ७० ॥
खादन्ती विघ्नसङ्घातं शिखीशब्दं करोति च ।
तस्याः सन्दर्शनात्पुंसां नश्यन्ति व्याधयोऽखिलाः ॥ ७१ ॥

भीमचण्ड्युत्तरद्वारं सदा रक्षेदतन्द्रिता । भीमेश्वरस्य पुरतः पाशमुद्गरधारिणीम्
भीमचण्डींनरोदृष्ट्वाभीमकुण्डेकृतोदकः । भीमाकृतीन्नवै पश्येद्यास्यान्दूतान्कचित्कृती
छागवक्त्रेश्वरी देवीदक्षिणे वृषभध्वजात् । अहर्निशम्भक्षयति विघ्नौघतरुपल्लवान् ॥
तस्यादेव्याः प्रासादेन काशीवासःप्रलभ्यते । अतश्छागेश्वरींदेवींमहाष्टम्यांप्रपूजयेत्
तालजङ्घेश्वरे देवी तालवृक्षकृतायुधा । उत्सादयति विघ्नौघानानन्दवनमध्यगान्
सङ्गमेश्वरलिङ्गस्य दक्षिणे विकटाननाम् । तालजङ्घेश्वरीं नत्वा न विघ्नैरभिभूयते
उद्दालकेश्वराल्लिङ्गात्तीर्थउद्दालकाभिधे । याम्यां च यमदंष्ट्राख्या चर्वयेद्विघ्नसंहतिम्
प्रणता यमदंष्ट्रा यैस्तीर्थे चोद्दालकाभिधे । कृत्वाऽपि पापसङ्घातंनयमाद्बिभ्यतीहते
दारुकेश्वरतीर्थे तु दारुकेशसमीपतः । पातालतालुवदनामाकाशोष्ठीं धराधराम् ॥

कपालकर्त्रींहस्तां च ब्रह्माण्डकवलप्रियाम् ।
शुष्कोदरीं स्नायुबद्धां चर्ममुण्डेति विश्रुताम् ॥ ८१ ॥

क्षेत्रस्य पूर्वदिग्भागं रक्षन्तीविघ्नसङ्घतः । लसत्सहस्रदोर्दण्डांज्वलत्केकरवीक्षणाम्
पारावारप्रसृमरहस्तन्यस्तारिमोदकाम् । द्वीपिकृत्तिपरीधानां कटुकाट्टाट्टहासिनीम्

मृणालनालवत्तीव्रं चर्वन्तीमस्थिपापिनः । शूलाग्रप्रोतदुर्वृत्तक्षेत्रद्रोहिकलेवराम् ॥

कपालमालाभरणां महाभीषणरूपिणीम् ।
चर्ममुण्डां नरो नत्वा क्षेत्रविघ्नैर्न बाध्यते ॥ ८५ ॥

यथैव चर्ममुण्डैषा महारुण्डाऽपि तादृशी । एतावानेवभेदोस्यारुण्डस्रग्भूषणात्वियम्
क्षेत्ररक्षां प्रकुरुत उभे देव्यौ महाबले । हसन्त्यौ करतालीभिरन्योन्यंदोःप्रसारणात्
हयग्रीवेश्वरे तीर्थे लोलार्कादुत्तरे सदा । महारुण्डा प्रचण्डास्यातिष्ठते भक्तविघ्नहृत्
चर्ममुण्डा महारुण्डा कथितेयेतु देवते । तयोरन्तरतस्तिष्ठेच्चामुण्डामुण्डरूपिणी
एतास्तिस्रः प्रयत्नेनपूज्याःक्षेत्रनिवासिभिः । धनधान्यप्रदाश्चैताःपुत्रपौत्रप्रदा इमाः
उपसर्गान मूर्ध्नन्तिदद्युनैश्श्रेयसीं श्रियम् । स्मृतादृष्टानताःस्पृष्टाःपूजिताःश्रद्धयानरैः

महारुण्डा प्रतीच्यां च देवी स्वप्नेश्वरी शुभा ।
भविष्यं कथयेत्स्वप्ने भक्तस्याऽग्रे शुभाशुभम् ॥ ९२ ॥
तत्र स्वप्नेश्वरं लिङ्गं देवीं स्वप्नेश्वरीं तथा ।
स्नात्वासिसङ्गमेपुण्येयस्मिन्कस्मिंस्तिथावपि ॥ ९३ ॥
उपोषणपरो धीमान्नारी वा पुरुषोऽपि वा ।
सम्पूज्य स्थण्डिलशयः स्वप्ने भावि विलोकयेत् ॥ ९४ ॥

अद्यापि प्रत्ययस्तत्र कार्यएष विजानता । भूतं भावि भवत्सर्वंवदेत्स्वप्नेश्वरीनिशि
अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांनिशिवादिवा । प्रयत्नतःसमर्च्यासाकाश्यांज्ञानार्थिभिर्नरैः

स्वप्नेश्वर्याश्च वारुण्यां दुर्गादेवी व्यवस्थिता ।
क्षेत्रस्य दक्षिणं भागं सा सदैवाऽभिरक्षति ॥ ९७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
उत्तरार्धेदेवताधिष्ठानं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

———:*:———

एकसप्ततितमोऽध्यायः

दुर्गपराक्रमवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

कथं दुर्गेतिवैनामदेव्याजातमुमासुत !। कथंच काश्यांसा सेव्यासमाचक्ष्वेतिमामिह

स्कन्द उवाच

कथयामिमहाबुद्धे यथा कलशसम्भव !। दुर्गानामाऽभवद्देव्या यथासेव्याच साधकैः
दुर्गोनाममहादैत्योरुरुदैत्याङ्गजोऽभवत् । यश्चतप्त्वातपस्तीव्रं पुम्भ्योजेयत्वमाप्तवान्

ततस्तेनाऽखिला लोका भूर्भुवःस्वर्मुखा अपि ।
स्वसात्कृताविनिर्जित्य रणे स्वभुजसारतः ॥ ४ ॥
स्वयमिन्द्रः स्वयं वायुः स्वयं चन्द्रः स्वयं यमः ।
स्वयमग्निः स्वयं पाशी धनदोऽभूत्स्वयं बली ॥ ५ ॥

स्वयमीशानरुद्रार्कवसूनां पदमाददे । तत्साध्वसाद्विमुक्तानि तपांस्यतितपस्विभिः
न वेदाध्ययनं चक्रुर्ब्राह्मणास्तद्भयार्दिताः । यज्ञवाटाविनिर्ध्वस्तास्तद्भटैरतिदुःसहैः
विध्वस्ताबहुशः साध्व्यस्तैरमार्गकृतास्पदैः । प्रसभञ्चपरस्वानि अपहृत्य दुरासदाः
अभोक्षिषुदुराचाराः क्रूरकर्मपरिग्रहाः । नद्यो विमार्गगाआसञ्ज्वलन्तिन तथाऽग्नयः

ज्योतींषि न प्रदीप्यन्ति तद्भयाकुलितान्यहो ।
दिग्वधूवसनान्यासन्विच्छायानि समन्ततः ॥ १० ॥

धर्मक्रियाविलुप्ताश्च प्रवृत्ताः सुकृतेतराः । तएव जलदीभूयववृषुर्निजलीलया ॥ ११ ॥
सस्यानि तद्भयात्सूतेत्वनुप्तापि वसुन्धरा । सदैवफलिनोजातास्तरवोऽप्यवकेशिनः

बन्दीकृताः सुरर्षीणां पत्न्यस्तेनाऽतिदर्पिणा ।
दिवौकसः कृतास्तेन समस्ताः काननौकसः ॥ १३ ॥
मर्त्या अमर्त्यान्स्वगृहं प्राप्तानपि भयार्दिताः ।

अपिसम्भाषमात्रेण नाऽर्च्चयन्ति विपज्जुषः ॥ १४ ॥

स्कन्द उवाच

नकौलीन्यं न सद्वृत्तं महत्त्वाय प्रकल्पते । एकमेवपदं श्रेयः पदभ्रंशो हिलाघवम् ॥
विपद्यपिहिते धन्या नयेदैन्यप्रणोदिताः । धनैर्मलिनचित्तानामालभन्तेऽङ्गणंक्वचित्
पञ्चत्वमेव हि वरं लोके लाघववर्ज्जितम् । नामरत्वमपि श्रेयो लाघवेनसमन्वितम्
तएवलोकेजीवन्तिपुण्यभाजस्त एववै । विपद्यपिनगाम्भीर्यंयच्चेतोऽब्धिःपरित्यजेत्
कदाचित्सम्पदुदयः कदाचिद्विपदुद्गमः । दैवाद्द्वयमपिप्राप्य धीरोधैर्यं न हापयेत्
उदयानुदयौ प्राज्ञैर्द्रष्टव्यौ पुष्पवन्तयोः । सदैकरूपताऽत्याज्या हर्षाहर्षौ ततोऽध्रुवौ
यस्त्वापदं समासाद्यदैन्यग्रस्तोऽविपद्यते । तस्यलोकद्वयंनष्टं तस्माद्दैन्यं विवर्जयेत्
आपाद्यपिहिये धीरा इहलोके परत्र च । नतान्पुनः स्पृशेदापत्तद्धैर्येणावधीरिता ॥
भ्रष्टराज्याश्च विबुधा महेशं शरणं गताः । सर्वज्ञेन ततो देवी प्रेरिताऽसुरमर्दने ॥
माहेश्वरीं समासाद्य भवान्याज्ञां प्रहृष्टवत् । अमर्त्यायाऽभयं दत्त्वा समरायोपचक्रमे॥
कालरात्रीं समाहूय कान्त्यात्रैलोक्यसुन्दरीम् । प्रेषयामास रुद्राणीतमाह्वातुंसुरद्रुहम्
कालरात्री समासाद्य तंदैत्यं दुष्टचेष्टितम् । उवाचदैत्याधिपतेत्यजत्रैलोक्यसम्पदम्

त्रिलोकीं लभतामिन्द्रस्त्वन्तु याहि रसातलम् ।
प्रवर्तन्तां क्रियाः सर्वा वेदोक्ता वेदवादिनाम् ॥ २७ ॥

अथचेद्गर्वलेशोऽस्ति तदा याहिसमाजये । अथवा जिविताकाङ्क्षीतदिन्द्रं शरणं व्रज
इति वक्तुं महादेव्या महामङ्गलरूपया । त्वदन्तिकं प्रेषिताऽहं मृत्युस्ते तदुपेक्षया
अतो यदुचितं कर्तुं तद्विधेहि महासुर !। परंहितं चेच्छृणुयाज्जीवग्राहन्ततो व्रज

इत्याकर्ण्य वचो देव्या महाकाल्याः स दैत्यराट् ।
प्रजज्वाल तदाक्रोधाद् गृह्यतां गृह्यतामियम् ॥ ३१ ॥
त्रैलोक्यमोहिनी ह्येषा प्राप्तामद्भाग्यगौरवैः ।
त्रैलोक्यराज्यसम्पत्तिवल्ल्याःफलमिदं महत् ॥ ३२ ॥

तदर्थं हि देवर्षिनृपा वन्दीकृता मया । अनायासेन मे प्राप्तागृहमेषा शुभोदयात् ॥

अवश्यं यस्य योग्यंयत्तत्तस्येहोपतिष्ठते । अरण्येवागृहेवाऽपियतोभागस्यगौरवात्
अन्तः पुरचराएतां नयन्त्वन्तःपुरं महत् । अनया सदलङ्कृत्याममराष्ट्रमलङ्कृतम् ॥
अहोमहोदयश्चाद्य जातो मम महामतेः । केवलं न ममैकस्य सर्वदैत्यान्वयस्य च
नृत्यन्तु पितरश्चाऽद्य मोदन्तां बान्धवाःसुखम् ।
मृत्युः कालोऽन्तको देवाः प्राप्नुवन्त्वद्य मे भयम् ॥ ३७ ॥
इति यावत्समायातास्तांनेतुंसौविदल्लकाः । तावत्तयाकालरात्र्याप्रत्युक्तोदैत्यपुङ्गवः

कालरात्र्युवाच

दैत्यराज महाप्राज्ञ! नैतद्युक्तं भवादृशाम् । वयं दूत्यः परवशा राजनीतिविदुत्तम !॥
अल्पोऽपिदूतसम्बाधांनविदध्यात्कदाचन । किंपुनर्येभवादृक्षामहान्तोबलिनोऽधिपाः
दूतीषु कोऽनुरागोऽयं महाराजाऽलिपकास्विह ।
अनायासेन च वयमायास्यामस्तदागमात् ॥ ४१ ॥
विजित्यसमरेतां तुस्वामिनींममदैत्यप !। मादृशीनांसहस्राणिपरिभुङ्क्ष्वयथेच्छया
अद्यैव ते महासौख्यं भावि तस्या विलोकनात् ।
बान्धवानां सुखं तेऽद्य भविता सह पूर्वजैः ॥ ४३ ॥
सम्पत्स्यन्तेऽद्यते कामाः सर्वे ये चिरचिन्तिताः ।
अबला सा च मुग्धा च तस्यास्त्राता न कश्चन ॥ ४४ ॥
सर्वरूपमयी चैव तां भवान्द्रष्टुमर्हति । अहंहिदर्शयिष्यामियत्रसाऽस्तिजगत्खनिः
धृतायामपि चैकस्यां कस्ते कामो भविष्यति ।
अहन्ते सन्निधिं नैव त्यक्षाम्यद्य दिनावधि ॥ ४६ ॥
ततो निवारयैतान्मामादित्सून् सौविदल्लकान् ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सकामक्रोधमोहितः ॥ ४७ ॥
तामेवबद्धमँस्तैकांदूतींमृत्योरिवाऽसुरः । शुद्धान्तरक्षिणश्चैतां शुद्धान्तंप्रापयन्त्वरम्
इति तेन समादिष्टाः सर्वेवर्षवरा मुने । तां धर्तुमुद्यमञ्चक्रुर्बलेन बलवत्तराः ॥ ४६ ॥
सा तान् भस्मीचकाराऽऽशु हुङ्कारजनिताग्निना ।

ततो दैत्यपतिः क्रुद्धो दृष्ट्वा तान् भस्मसात्कृतान् ॥ ५० ॥
गेनैव तयादूत्यादैत्यांस्त्रयुतसम्मितान् । दृशा व्यापारयामास दुर्धरंदुर्मुखं खरम्
रपाणिम्पाशपाणिं सुरेन्द्रदमनं हनुम् । यज्ञारिखड्गलोमानमुग्रास्यं देवकम्पनम्
बद्ध्वा पाशैरिमान्दुष्टामानयन्त्वाशु दानवाः ।
विध्वस्तकेशवेशाञ्च विस्रस्ताम्बरभूषणाम् ॥ ५३ ॥
ति दैत्याधिपादेशाद् दुर्धरप्रमुखास्ततः । पाशासिमुद्गरधरास्तामादातुं कृतोद्यमाः
गिरीन्द्रगुरुवर्ष्माणः शस्त्रास्त्रोद्यतपाणयः ।
दिगन्तं ते परिप्राप्तास्तदुच्छ्वासानिलाहताः ॥ ५५ ॥
षूड्डीनेषु दैत्येषुशतकोटिमितेषु च । निर्जगाम ततः सा तु कालरात्रिर्नभोऽध्वगा
तस्तान्तु विनिर्यान्तीमनुजग्मुर्महासुराः । कोटिकोटिसहस्राणिपूरयित्वातुरोदसी
दुर्गो नाम महादैत्यः शतकोटिरथावृतः । गजानामर्बुदशतद्वयेन परिवारितः ॥ ५८॥
कोट्यर्बुदेन सहितो हयानां वातरंहसाम् ।
पदातिभिरसङ्ख्यातैः पच्चूर्णितशिलोच्चयैः ॥ ५६ ॥
उदायुधैर्महाभीमैः कृतत्रिजगतीभयैः । समेतः समहादैत्यो दुर्गः क्रुद्धोविनिर्ययौ ॥
अथ दृष्ट्वा महादेवीं विन्ध्याचलकृतालयाम् ।
आगत्य कालरात्र्या च निवेदिततदागसम् ॥ ६१ ॥
महाभुजसहस्राढ्यां महातेजोभिर्बृंहिताम् । तत्तद्घोरप्रहरणां रणकौतुकसादराम्
प्रोद्यच्चन्द्रसहस्रांशुनिर्मार्जितशुभाननाम् ।
लावण्यवार्धिनिर्गच्छच्चञ्चच्चन्द्रैकचन्द्रिकाम् ॥ ६३ ॥
महामाणिक्यनिचयरोचिःखचितविग्रहाम् । त्रैलोक्यरम्यनगरीसुप्रकाशप्रदीपिकाम्
रनेत्राग्निनिर्दग्धकामजीवातुवीरुधम् । लसत्सौन्दर्यसम्भारजगन्मोहमहौषधिम्
षमेषुशरैर्भिन्नहृदयो दैत्यपुङ्गवः । आदिष्टवान्महासैन्यनायकानुग्रशासनः ॥ ६६ ॥
यि जम्भ महाजम्भ! कुजम्भविकटानन! । लम्बोदर महाकाय महादंष्ट्र! महाहनो !
ङ्गाक्ष! महिषग्रीव महोग्रात्युग्रविग्रह !। क्रूराक्ष! क्रोधनाक्रन्द! संक्रन्दन! महाभय

जितान्तक!महाबाहो!महावक्त्र!महीधर !। दुन्दुभे!दुन्दुभिरव! महादुन्दुभिनासिक!
उग्रास्य! दीर्घदशन! मेघकेशवृकानन ! । सिंहास्य सूकरमुख! शिवारावमहोत्कट !॥
शुकतुण्ड! प्रचण्डास्य भीमाक्ष!क्षुद्रमानस !। उलूकनेत्रकङ्कास्य!काकतुण्डकरालवाक्
दीर्घग्रीव! महाजङ्घ! क्रमेलकशिरोधर !। रक्तबिन्दो! जपानेत्र! विद्युज्जिह्वाग्नितापन !
धूम्राक्ष! धूमनिःश्वास! चण्डचण्डांशुतापन !।
महाभीषणमुख्याश्च शृण्वन्त्वाज्ञां ममाऽऽदरात् ॥ ७३ ॥
भवत्स्वेतेषु चाऽन्येषु एतां विन्ध्य (नि) वासिनीम् ।
धृत्या नेष्यति बुद्ध्या वा बलेनाऽपि छलेन वा ॥ ७४ ॥
तस्याहमिन्द्रपदवीमद्य दास्याम्यसंशयम् । दृष्ट्वैतां सुन्दरीमद्य मनोमेऽव्याकुलम्भवेत्
यान्तु क्षिप्रं न यावन्मे पञ्चेषुशरपीडितम् । मनोविह्वलतां गच्छेदेतत्प्राप्तेरभावतः
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दुर्गस्यदनुजेशितुः । प्रोचुः सर्वे तदा दैत्याःप्रबद्धकरसम्पुटाः
अवधेहि महाराज! किमेतत्कर्म दुष्करम् । अनाथायास्तथैकस्याअबलाया विशेषतः
अस्या आनयने कोऽयं महायत्नविधिः प्रभो !।
कोऽस्मान्प्रलयकालाग्निमहाज्वालावलीसमान् ॥ ७६ ॥
सहेत त्रिषु लोकेषु त्वत्प्रसादात्कृतोद्यमान् । यद्यादेशो भवेदद्यतदेन्द्रं समरुद्गणम्
सान्तःपुरं समानीय क्षिप्नुमस्त्वत्पदाग्रतः ।
भूर्भुवःस्वरिदं सर्वं त्वदाज्ञावशवर्तितम् ॥ ८१ ॥
महर्जनस्तपः सत्यलोकास्त्वदधिकारिणः ।
तत्राप्यसाद्ध्यं नाऽस्माकं त्वन्निदेशान्महासुर ॥ ८२ ॥
वैकुण्ठनायको नित्यंत्वदाज्ञापरिपालकः । यानिरम्याणिरत्नानि तानिसम्प्रेषयन्मुदा
अस्माभिरेव सन्त्यक्तः कैलासाधिपतिः सवै ।
विषाशी चातिनिःस्वत्वाद्भस्मकृत्त्यहिभूषणः ॥ ८४ ॥
अर्धाङ्गे नास्मद्भयतोयोषिदेका निगूहिता । तस्य ग्रामेऽपिसकलेद्वितीयोनचतुष्पदः
एकोजरद्गवःसोऽपिनान्यस्मात्परिजीवति । श्मशानवासिनःसर्वेसर्वेकौपीनवाससः

सर्वे विभूतिधवलाः सर्वेऽप्येककपर्द्दिनः । समस्ते नगरे तस्य वसन्त्येवंविधागणाः
तेषांगणानां किं कुर्मोदरिद्राणां वयंविभो । समुद्रारत्नसम्भारं प्रत्यहम्प्रेषयन्तिच
नागा वराकाश्चाऽस्माकं सायं सायं स्वयम्प्रभो !।
प्रदीपयन्ति सततं फणारत्नप्रदीपकान् ॥ ८६ ॥
कल्पद्रुमः कामगवीचिन्तामणिगणावह्नु । तव प्रसादादस्माकमपि तिष्ठन्तिवेश्मसु
वायुर्व्यजनतां यातस्त्वां सेवेतप्रयत्नतः । स्वच्छान्यम्बूनिवरुणःप्रत्यहम्पूरयत्यहो
वासांसि क्षालयेदग्निश्चन्द्रश्छत्रधरः स्वयम् ।
सूर्यः प्रकाशयेन्नित्यं क्रीडावाप्यम्बुजानि च ॥ ६२ ॥
कस्त्वत्प्रसादं नेक्षेत मर्त्यामर्त्योरगेषुच । सर्वे त्वामुपजीवन्तिसुराऽसुरखगादयः
पश्यनः पौरुषंराजन्नानयामोवलादिमाम् । इत्युक्त्वायुगपत्सर्वेक्षुब्धास्तोयधयोयथा
संवर्तकालमासाद्य प्लावितुञ्जगतीमिमाम् । रणतूर्यनिनादश्च समुत्तस्थौ समन्ततः
रोमाञ्चिता यच्छ्रवणात्कातरा अप्यकातराः । ततोदेवाभयत्रस्ताश्चकम्पेचवसुन्धरा
क्षुब्धा अम्बुधयः सर्वेपेतुर्नक्षत्रमालिकाः । रोदसी मण्डलं व्याप्तं तेन तूर्यरवेणवै
ततो भगवती देवी स्वशरीरसमुद्भवाः । शक्तीरुत्पादयामास शतशोऽथ सहस्रशः
ताभिः शक्तिभिरेतेषां बलिनां दितिजन्मनाम् ।
प्रत्येकम्परितो रुद्धउद्वेलः सैन्यसागरः ॥ ६६ ॥
शस्त्रास्त्राणि महादैत्यैर्यान्युत्सृष्टानि सङ्गरे ।
ताभिः शक्तिभिरुग्राणि तृणीकृत्योज्झितान्यरम् ॥ १०० ॥
ततोऽतिकोपपूर्णास्तेजम्भमुख्याः सुरारयः । असिचक्रभुशुण्डीभिर्गदामुद्गरतोमरैः
भिण्डिपालैश्चपरिघैःकुन्तैःशल्यैश्चशक्तिभिः । अर्धचन्द्रैःक्षुरप्रैश्चनाराचैश्चशिलीमुखैः
महाभल्लैः परशुभिर्भिंदुरैर्मर्मभेदिभिः । वृक्षोपलमहावर्षैर्ववृषुर्जलदा इव ॥ १०३ ॥
अथ साविन्ध्यनिलया महामायामहेश्वरी । आदायोद्दण्डकोदण्डंवायव्यास्त्रेणहेलया
दैत्यास्त्रशस्त्रजालानि परिचिक्षेप दूरतः । ततो महासुरोदुर्गोःवीक्ष्यसैन्यंनिरायुधम्
ज्वलन्तीं शक्तिमादाय तां देवीं प्रति सोऽक्षिपत् ।

कुरुक्षेत्रे नैमिषे च गङ्गासागरसङ्गमे । ग्रहणे श्राद्धतोयत्स्यात्तत्तीर्थे वार्षभध्वजे ॥
अस्य तीर्थस्य नामानि यानि दिव्यपितामहाः ।
तान्यहं कथयिष्यामि भवतां तृप्तिदान्यलम् ॥ ६१ ॥
मधुस्रवेति प्रथममेषा पुष्करिणी स्मृता । कृतकृत्याततो ज्ञेयाततोऽसौक्षीरनीरधिः
वृषभध्वजतीर्थञ्च तीर्थम्पैतामहं ततः । ततो गदाधराख्यञ्च पितृतीर्थं ततः परम्
ततः कापिलधारं वै सुधाखनिरियम्पुनः । ततः शिवगयाख्यञ्चज्ञेयं तीर्थमिदंशुभम्
एतानिदशनामानि तीर्थस्यास्यपितामहाः । भवतां तृप्तिकारीणिविनापिश्राद्धतर्पणैः
सूर्येन्दुसङ्गमेयेत्रपितृणांतृप्तिकामुकाः । ब्राह्मणान्भोजयिष्यन्तितेषांश्राद्धमनन्तकम्
श्राद्धे पितॄणां सन्तृप्त्यै दास्यन्ति कपिलां शुभाम् ।
येऽत्र तेषां पितृगणो वसेत्क्षीरोदरोधसि ॥ ६७ ॥
वृषोत्सर्गःकृतोयैस्तु तीर्थेऽस्मिन्वार्षभध्वजे । अश्वमेधपुरोडाशैः पितरस्तेनतर्पिताः
गयातोऽष्टगुणम्पुण्यमस्मिंस्तीर्थे पितामहाः ।
अमायां सोमयुक्तायां श्राद्धैः कापिलधारिके ॥ ६८ ॥
येषांगर्भेऽभवत्स्रावो येऽदन्तजननामृताः । तेषां तृप्तिर्भवेन्नूनंतीर्थे कापिलधारिके
अदत्तमौञ्जीदाना ये ये चादारपरिग्रहाः । तेभ्यो निर्वापितं पिण्डमिहह्यक्षयतांव्रजेत्
अग्निदाहमृता ये वै नाग्निदाहश्च येषु वै । ते सर्वेतृप्तिमायान्ति तीर्थे कापिलधारिके
और्ध्वदैहिकहीना येषोडशश्राद्धवर्जिताः । ते तृप्तिमधिगच्छन्तिघृतकुल्यांनिवापतः
अपुत्राश्च मृता ये वैयेषां नास्त्युदकप्रदः । तेऽपितृप्तिंपरांयान्ति मधुस्रवसितर्पिताः
अपमृत्युमृता ये वै चोरविद्युज्जलादिभिः । तेषामिह कृतं श्राद्धंजायते सुगतिप्रदम्
आत्मघातेन निधनंयेषामिहविकर्मणाम् । तेऽपितृप्तिंलभन्तेत्रपिण्डैः शिवगयाकृतैः
पितृगोत्रे मृता येवै मातृपक्षेचये मृताः । तेषामत्र कृतः पिण्डो भवेदक्षयतृप्तिदः ॥
पत्नीवर्गेमृतायेवै मित्रवर्गे च ये मृताः । ते सर्वे तृप्तिमायान्तितर्पिता वार्षभध्वजे
ब्रह्मक्षत्रविशांवंशे शूद्रवंशेऽन्त्यजेषुच । येषां नाम गृहीत्वाऽत्रदीयते ते समुद्धृताः
तिर्यग्योनिमृतायेवैयेपिशाचत्वमागताः । तेप्यूर्ध्वगतिमायान्तितृप्ताःकापिलधारिके

ुमानुषलोकेऽस्मिन् पितरोमर्त्ययोनयः। तेदिव्ययोनयःस्युर्वैमधुस्रवसितर्पिताः
दिव्यलोके पितरःपुण्यैर्देवत्वमागताः। ते ब्रह्मलोके गच्छन्तितृप्तास्तीर्थे वृषध्वजे

कृते क्षीरमयं तीर्थं त्रेतायां मधुमत्पुनः।
द्वापरे सर्पिषा पूर्णं कलौ जलमयं भवेत्॥ ८३॥

ीमाबहिर्गतमपि ज्ञेयं तीर्थमिदं शुभम्। मध्येवाराणसिश्रेष्ठंममसान्निध्यतो नरैः
काशीस्थितैर्यतोऽदर्शिध्वजोमेवृषलाञ्छनः। वृषध्वजेननाम्नातःस्थास्यत्रपितामहाः
पितामहेन सहितो गदाधरसमन्वितः । रविणा पार्षदैः सार्धन्तुष्टये वः पितामहः
इति यावद्वरं दत्तेपितृभ्यो वृषभध्वजः। तावन्नन्दी समागत्य प्रणम्येशं व्यजिज्ञपत्

नन्दिकेश्वर उवाच

विहितः स्यन्दनः सज्जस्ततोऽस्तु विजयोदयः।
अष्टौ कण्ठीरवा यत्र यत्रोक्ष्णामष्टकं शुभम्॥ ८८॥

यत्रेभाःपरिभान्त्यष्टौयत्राष्टौजविनोहयाः। मनःसंयमनंयत्रकशापाणिव्यवस्थितम्
गङ्गा यमुनयोरीषे चक्रे पवनदेवता । सायंप्रातर्मये चक्रे छत्रं द्योर्मण्डलं शुचि॥
तारावलीमयाःकीलाआहेया उपनायकाः। श्रुतयो मार्गदर्शिन्यः स्मृतयो रथगुप्तयः
दक्षिणावूर्द्ढा यत्र मखायत्राभिरक्षकाः। आसनं प्रणवो यत्र गायत्रीपादपीठभूः
साङ्गाव्याहृतयो यत्र शुभाः सोपानवीथिकाः। सूर्याचन्द्रमसौयत्र सततंद्वाररक्षकौ
अग्निर्मकरतुण्डश्च रथभूः कौमुदीमयी । ध्वजदण्डो महामेरुः पताकाहस्करप्रभा

स्वयं वाग्देवता यत्र चञ्चच्चामरधारिणी।

स्कन्द उवाच

शैलादिनेति विज्ञप्तो देवदेव उमापतिः॥ ९५ ॥

कृतनीराजनविधिरष्टभिर्देवमातृभिः । पिनाकपाणिस्तस्थौदत्तहस्तोऽथ शार्ङ्गिणा
निनादो दिव्यवाद्यानां रोदसी पर्यपूरयत्। गीतमङ्गलगीर्भिश्च चारणैरनुवर्धितः॥
तेन दिव्यनिनादेन बधिरीकृतदिङ्मुखाः। आहूता इव आजग्मुर्विश्वग्भुवनवासिनः

देवाः कोट्यस्त्रयस्त्रिंशद्गणाः कोट्ययुतद्वयम्।

नवकोट्यस्तु चामुण्डा भैरव्यः कोटिसम्मिताः ॥ ९९ ॥
षडाननाः कुमाराश्च मयूरवरवाहनाः । ममानुगाः समायाताः कोटयोऽष्टौ महाबलाः
आययुःकोटयः सप्तस्फुरत्परशुपाणयः । पिचण्डिलामहावेगा विघ्नविघ्ना गजाननाः
षडशीतिसहस्राणि मुनयोब्रह्मवादिनः । तावन्तोऽपि समाजग्मुस्तत्राऽन्येगृहमेधिनः
नागानांकोटयस्तिस्रः पातालतलवासिनाम् ।
दानवानाञ्च दैत्यानां द्वे द्वे कोटी शिवात्मनाम् ॥ १०३ ॥
गन्धर्वानियुतान्यष्टौ कोट्यर्धं यक्षरक्षसाम् । विद्याधराणामयुतं नियुतद्वयसंयुतम्
तथा षष्टिसहस्राणि दिव्याश्चाप्सरसः शुभाः ।
गोमातरोऽष्टौ लक्षाणि सुपर्णान्ययुतानि षट् ॥ १०५ ॥
सागराः सप्तसम्प्राप्ता नानारत्नोपदप्रदाः । सरिताञ्चसहस्राणित्रीणि पञ्चायुतानि च
गिरयोऽष्टौसहस्राणि वनस्पतिशतत्रयम् ।
आजग्मुर्दिग्गजाअष्टौ यत्र देवः पिनाकधृक् ॥ १०७ ॥
एतैःसमेतः सन्तुष्टः परिष्टुत इतस्ततः । श्रीकण्ठोरथमारुह्यकाशीं प्राविशदुत्तमाम्
स गिरीन्द्रसुतस्त्र्यक्षो मुदां धाममुधाङ्कनिः ।
काशीं प्रैक्षिष्ट संहृष्टस्त्रिविष्टपसमुत्कटाम् ॥ १०९ ॥

स्कन्द उवाच

श्रुत्वाऽऽख्यानमिदम्पुण्यं कोटिजन्माघनाशनम् ।
पठित्वा पाठयित्वा च शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ११० ॥
श्राद्धकाले विशेषेण पठनीयम्प्रयत्नतः । अक्षयन्तद्भवेच्छ्राद्धं पितृतुष्टिकरम्परम् ॥
वृषभध्वजमाहात्म्यं पठित्वाशिवसन्निधौ । प्रत्यहं वर्षमात्रं तु ह्यपुत्रः पुत्रवान्भवेत्
विश्वेशितुः सम्प्रवेशो यः काश्यां समुदाहृतः ।
परमानन्दकन्दस्य बीजमेतत्सुनिश्चितम् ॥ ११३ ॥
पठित्वैतन्मुदाख्यानम्प्रविशेद्यो नवं गृहम् । ससर्वसौख्यनिलयो भवेदेव न संशयः
त्रैलोक्यानन्दजनकमेतदाख्यानमुत्तमम् । अस्य श्रवणमात्रेण विश्वेशःसम्प्रसीदति

अलभ्यलाभोदेवस्यजातोऽत्रहियतःपरः । ततः काशीप्रवेशाख्यंजप्यमाख्यानमुत्तमम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
वृषभध्वजप्रादुर्भावोनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

* * *

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

ज्येष्ठेशाख्यानवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

दृष्ट्वा काशींदृगानन्दां तारकारे पुरारिणा । किमकारि समाचक्ष्व प्राप्ताम्बहुमनोरथैः

स्कन्द उवाच

पतिव्रतापतेऽगस्त्य! श्रृणु वक्ष्याम्यशेषतः ।
मृगाङ्कलक्ष्मणोत्कण्ठं काशीनेत्रातिथीकृता ॥ २ ॥

अथ सर्वज्ञनाथेन भक्तवत्सलचेतसा । जैगीषव्यो मुनिश्रेष्ठोगुहान्तस्थो निरीक्षितः
यमनेहसमारभ्य मन्दराद्रिं विनिर्ययौ । अद्रीन्द्रसुतया सार्धं रुद्रेणोक्षेन्द्रगामिना
तंवासरम्पुरस्कृत्य जग्राहनियमं दृढम् । जैगीषव्यो महामेधाः कुम्भयोने महाकृती
विषमेक्षणपादाब्जं समीक्षिष्येयदा पुनः । तदाम्बुविप्रुषमपि भक्षयिष्यामि चेत्यहो
कुतश्चिद्धारणायोगादथवाशम्भ्वनुग्रहात् । अनश्नन्नपिबन्योगीजैगीषव्यःस्थितोमुने
तंशम्भुरेव जानाति नान्योजानातिकश्चन । अत एव ततः प्राप्तः प्रथमम्प्रमथाधिपः
ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सोमवारानुराधयोः । तत्पर्वणि महायात्रा कर्तव्या तत्र मानवैः

ज्येष्ठस्थानं ततः काश्यां तदाऽभूदपिपुण्यदम् ।
तत्र लिङ्गं समभवत्स्वयं ज्येष्ठेश्वराभिधम् ॥ १० ॥

तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसां पापंजन्मशतार्जितम् । तमोऽर्कोदयमाप्येव तत्क्षणादेव नश्यति

ज्येष्ठवाप्यांनरः स्नात्वा तर्पयित्वा पितामहान् ।
ज्येष्ठेश्वरं समालोक्य न भूयो जायते भुवि ॥ १२ ॥

आविरासीत्स्वयं तत्र ज्येष्ठेश्वरसमीपतः । सर्वसिद्धिप्रदागौरीज्येष्ठाश्रेष्ठासमन्ततः
ज्येष्ठेमासिसिताष्टम्यांतत्र कार्यामहोत्सवः । रात्रौजागरणं कार्यं सर्वसम्पत्समृद्धये

ज्येष्ठां गौरीं नमस्कृत्य ज्येष्ठवापीपरिप्लुता ।
सौभाग्यभाजनम्भूयाद्योषा सौभाग्यभागपि ॥ १५ ॥
निवासं कृतवाञ्छम्भुस्तस्मिन् स्थाने यतः स्वयम् ।
निवासेश इति ख्यातं लिङ्गं तत्र परन्ततः ॥ १६ ॥

निवासेश्वरलिङ्गस्य सेवनात्सर्वसम्पदः । निवसन्ति गृहे नित्यंनित्यं प्रतिपदम्पुनः
कृत्वाश्राद्धं विधानेन ज्यष्ठस्थानेनरोत्तमः । ज्येष्ठांतृप्तिंददात्येव पितृभ्योमधुसर्पिषा

ज्येष्ठतीर्थे नरः काश्यां दत्त्वा दानानि शक्तितः ।
ज्येष्ठान्स्वर्गानवाप्नोति नरो मोक्षञ्च गच्छति ॥ १९ ॥
ज्येष्ठेश्वरोऽर्च्यः प्रथमं काश्यां श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ।
ज्येष्ठा गौरी ततोऽभ्यर्च्या सर्वज्येष्ठमभीप्सुभिः ॥ २० ॥

अथनन्दिनमाहूय धूर्जटिःसकृपानिधिः । शृण्वतांसर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् ॥

ईश्वर उवाच

शैलादेप्रविशाऽऽशुत्वंगुहास्त्यत्र मनोहरा । तदन्तरेऽस्तिमेभक्तोजैगीषव्यस्तपोधनः
महानियमवान्नन्दिस्त्वगस्थिस्नायुशोषितः । तमिहानय मद्भक्तंमद्दर्शनदृढव्रतम् ॥
यदाप्रभृत्यगांकाश्यामन्दरं सर्वसुन्दरम् । महानियमवानेष तदारभ्योज्झिताशनः
गृहाणलीलाकमलमिदम्पीयूषपोषणम् । अनेन तस्य गात्राणि स्पृशसद्यःसुबृंहिणा

ततो नन्दी समादाय तल्लीलाकमलं विभोः ।
प्रणम्य देवदेवेशमाविशद्गह्वरां गुहाम् ॥ २६ ॥

नन्दीदृष्ट्वाऽथ तं तत्र धारणादृढमानसम् । तपोग्निपरिशुष्काङ्गं कमलेन समस्पृशत्
तपान्ते वृष्टिसंयोगाच्छाल्लूर इव कोटरे । उल्ललाससयोगीन्द्रःस्पर्शमात्रात्तदब्जजात्

अथ नन्दीसमादाय सत्वरंमुनिपुङ्गवम् । देवदेवस्य पादाग्रे नमस्कृत्य न्यपातयत्
जैगीषव्योऽथसम्भ्रान्तः पुरतो वीक्ष्यशङ्करम् । वामाङ्गसन्निविष्टाद्रितनयम्प्रणनामह
प्रणम्य दण्डवद्भूमौपरिलुठ्यसमन्ततः । तुष्टाव परया भक्त्या समुनिश्चन्द्रशेखरम्

जैगीषव्य उवाच

नमः शिवाय शान्ताय सर्वज्ञाय शुभात्मने । जगदानन्दकन्दाय परमानन्दहेतवे ॥
अरूपाय सरूपाय नानारूपधरायच । विरूपाक्षाय विधये विधिविष्णुस्तुताय च
स्थावराय नमस्तुभ्यंजङ्गमाय नमोऽस्तुते । सर्वात्मने नमस्तुभ्यन्नमस्तेपरमात्मने
नमस्त्रैलोक्यकाम्याय कामाङ्गदहनाय च । नमोशेषविशेषाय नमः शेषाङ्गदाय ते ॥
श्रीकण्ठाय नमस्तुभ्यं विषकण्ठाय ते नमः ।
वैकुण्ठवन्द्य पादाय नमोऽकुण्ठितशक्तये ॥ ३६ ॥
नमः शक्त्यर्धदेहाय विदेहाय सुदेहिने । सकृत्प्रणाममात्रेण देहिदेहनिवारिणे ॥
कालाय कालकालाय कालकूटविषादिने । व्यालयज्ञोपवीताय व्यालभूषणधारिणे
नमस्ते खण्डपरशो नमः खण्डेन्दुधारिणे । खण्डिताशेषदुःखायखड्गखेटकधारिणे
गीर्वाणगीतनाथाय गङ्गाकल्लोलमालिने । गौरीशाय गिरीशाय गिरिशाय गुहारणे
चन्द्रार्धशुद्धभूषाय चन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे । नमस्ते चर्मवसन ! नमो दिग्वसनाय ते ॥
जगदीशाय जीर्णाय जराजन्महरायते । जीवाय ते; नमस्तुभ्यञ्ञपूकादिहारिणे ॥
नमोडमरुहस्ताय धनुर्हस्ताय ते नमः । त्रिनेत्राय नमस्तुभ्यं जगन्नेत्राय ते नमः
त्रिशूलव्यग्रहस्ताय नमस्त्रिपथगाधर । त्रिविष्टपाधिनाथाय त्रिवेदीपठिताय च ॥
त्रयीमयाय तुष्टाय भक्ततुष्टिप्रदायच । दीक्षिताय नमस्तुभ्यं देवदेवाय ते नमः
दारिताशेषपापाय नमस्ते दीर्घदर्शिने । दूराय दुरवाप्याय दोषनिर्दलनाय च ॥
दोषाकरकलाधार त्यक्तदोषागमायच । नमो धूर्जटये तुभ्यं धत्तूरकुसुमप्रिय !॥
नमो धीराय धर्माय धर्मपालाय ते नमः । नीलग्रीव! नमस्तुभ्यंनमस्ते नीललोहित
नाममात्रस्मृतिकृतान्त्रैलोक्यैश्वर्यपूरक । नमः प्रमथनाथाय पिनाकोद्यतपाणये ॥
पशुपाशविमोक्षाय पशूनाम्पतये नमः । नामोच्चारणमात्रेण महापातकहारिणे ॥

परात्पराय पाराय परापरपराय च । नमोऽपारचरित्राय सुपवित्रकथाय च ॥
वामदेवाय वामार्धधारिणे वृषगामिने । नमो भर्गाय भीमाय नतभीतिहराय च ॥
भवाय भवनाशाय भूतानाम्पतये नमः । महादेव! नमस्तुभ्यम्महेश महसाम्पते ॥
नमो मृडानीपतये नमो मृत्युञ्जयाय ते । यज्ञारये नमस्तुभ्यं यक्षराजप्रियाय च॥
यायजूकाय यज्ञाय यज्ञानाम्फलदायिने । रुद्राय रुद्रपतये कद्रुद्राय रमाय च ॥ ५५॥
शूलिने शाश्वतेशाय श्मशानावनिचारिणे । शिवाप्रियाय सर्वाय सर्वज्ञाय नमोस्तुते
हराय क्षान्तिरूपाय क्षेत्रज्ञाय क्षमाकर !। क्षमाय क्षितिहर्त्रेच क्षीरगौराय ते नमः
अन्धकारे नमस्तुभ्यमाद्यन्तरहिताय च । इडाधाराय ईशाय उपेन्द्रेन्द्रस्तुतायच ॥
उमाकान्ताय उग्राय नमस्ते ऊर्ध्वरेतसे । एकरूपाय चैकाय महदैश्वर्यरूपिणे ॥
अनन्तकारिणे तुभ्यमम्बिकापतयेनमः । त्वमोङ्कारोवषट्कारोभूर्भुवःस्वस्त्वमेवहि

दृश्यादृश्यं यदत्रास्ति तत्सर्वं त्वमुमाधव !।
स्तुतिंकर्तुं न जानामि स्तुतिकर्ता त्वमेव हि ॥ ६१ ॥
वाच्यस्त्वं वाचकस्त्वं हि वाक्च त्वंप्रणतोऽस्मि ते ।
नाऽन्यं वेद्मि महादेव! नान्यं स्तौमि महेश्वर !॥ ६२ ॥

नान्यं नमामिगौरीशनान्याख्यामाददेशिव । मूकोन्यनामग्रहणेबधिरोऽन्यकथाश्रुतौ
पङ्गुरन्याभिगमनेऽस्म्यन्धोऽन्यपरिवीक्षणे । एक एव भवानीश एकः कर्तात्वमेवहि
पाता हर्ता त्वमेवैको नानात्वं मूढकल्पना । अतस्त्वमेव शरणं भूयो भूयः पुनःपुनः
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर महेश्वर !। इति स्तुत्वा महेशानं जैगीषव्यो महामुनिः

वाचंयमोऽभवत्स्थाणोः पुरतः स्थाणुसन्निभः ।
इति स्तुतिं समाकर्ण्य मुनेश्चन्द्रविभूषणः ।
उवाच च प्रसन्नात्मा वरं ब्रूहीति तं मुनिम् ॥ ६७ ॥

जैगीषव्य उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश! ततस्तव पदाम्बुजात् । माभवानि! भवानीश दूरं दूरपदप्रद !॥
अपरश्च वरो नाथ! देयोऽयमविचारतः । यन्मयास्थापितंलिङ्गं तत्रसान्निध्यमस्तुते

ईश्वर उवाच

जैगीषव्यमहाभाग यदुक्तं भवताऽनघ !। तदस्तु सर्वं तेऽभीष्टं वरमन्यं ददामि च ॥

योगशास्त्रं मया दत्तं तव निर्वाणसाधकम् ।
सर्वेषां योगिनां मध्ये योगाचार्योऽस्तु वै भवान्॥ ७१ ॥

रहस्यं योगविद्याया यथावत्त्वंतपोधन । संवेत्स्यसेप्रसादान्मेयेननिर्वाणमाप्स्यसि

यथा नन्दी यथा भृङ्गी सोमनन्दी यथा तथा ।
त्वं भविष्यसि भक्तो मे जरामरणवर्जितः ॥ ७३ ॥

सन्ति व्रतानि भूयांसि नियमाः सन्त्यनेकधा ।
तपांसि नाना सन्त्यत्र सन्ति दानान्यनेकशः ॥ ७४ ॥

श्रेयसां साधनान्यत्र पापघ्नान्यपि सर्वथा। परं हि परमश्चैष नियमो यस्त्वयाकृतः

परोहिनियमश्चैष मां विलोक्य यदश्यते । मामनालोक्य यद्भुक्तं तद्भुक्तं केवलं त्वघम्

असमर्च्य च योभुङ्क्ते पत्रपुष्पफलैरपि । रेतोभक्षीभवेन्मूढःसजन्मान्येकविंशतिम्

महतो नियमस्याऽस्य भवताऽनुष्ठितस्य वै ।
नार्हन्ति षोडशीं मात्रामप्यन्ये नियमायमाः ॥ ७८ ॥

अतो मच्चरणाभ्याशे त्वं निवत्स्यसि सर्वथा ।
अतो नैःश्रेयसीं लक्ष्मीं तत्रैव प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

जैगीषव्येश्वरंनामलिङ्गंकाश्यां सुदुर्लभम् । त्रीणि वर्षाणि संसेव्यलभेद्योगंनसंशयः

जैगीषव्यगुहां प्राप्य योगाभ्यसनतत्परः ।
षण्मासेन लभेत्सिद्धिं वाञ्छितां मदनुग्रहात् ॥ ८१ ॥

तव लिङ्गमिदं भक्तैः पूजनीयंप्रयत्नतः । विलोक्याचगुहारम्यापरांसिद्धिमभाप्सुभिः

अत्र ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रे त्वल्लिङ्गं सर्वसिद्धिदम् ।
नाशयेदघसङ्घानि दृष्टं स्पृष्टं समर्चितम् ॥ ८३॥

अस्मिञ्ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रे सम्भोज्य शिवयोगिनः ।
कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसङ्ख्यया ॥ ८४ ॥

जैगीषव्येश्वरं लिङ्गं गोपनीयं प्रयत्नतः। कलौ कलुषबुद्धीनां पुरतश्च विशेषतः॥
करिष्याम्यत्र सान्निध्यमस्मिल्लिङ्गे तपोधन !।
योगसिद्धिप्रदानाय साधकेभ्यः सदैवहि ॥ ८६ ॥
ददे शृणु महाभाग! जैगीषव्याऽपरं वरम्। त्वयेदं यत्कृतंस्तोत्रंयोगसिद्धिकरंपरम्
महापापौघशमनं महापुण्यप्रवर्धनम् । महाभीतिप्रशमनं महाभक्तिविवर्धनम् ॥
एतत्स्तोत्रजपात्पुंसामसाध्यंनैवकिञ्चन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जपनीयं सुसाधकैः
इति दत्त्वा वरं तस्मैस्मरारिःस्मेरलोचनः । ददर्शब्राह्मणांस्तत्रसमेतान्क्षेत्रवासिनः

स्कन्द उवाच

निशम्याख्यानमतुलमेतत्प्राज्ञः प्रयत्नतः । निष्पापो जायते मर्त्यो नोपसर्गैःप्रबाध्यते

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
ज्येष्ठेशाख्यानं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

क्षेत्ररहस्यकथनम्

अगस्त्य उवाच

दृष्ट्वा भूदेवताः शम्भुःकिमाचक्षेषडानन !। कानिकानिचलिङ्गानि तत्रतान्यपिचक्ष्वमे
ज्येष्ठस्थाने महापुण्ये देवदेवस्य वल्लभे। आश्चर्यं किमभूत्तत्र तदाचक्ष्वषडानन !॥

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्ययथापृच्छिभवतातद्ब्रवीम्यहम्। मन्दराद्रिंयदादेवोगतवान्ब्रह्मगौरवात्
तदा निराश्रया विप्राः क्षेत्रसंन्यासिनोऽनघाः । उपाकृताश्चाविरतंमहाक्षेत्रप्रतिग्रहात्
खातं खातं च दण्डाग्रैर्भूमिं कन्दादिवृत्तयः।

चक्रुः पुष्करिणीं रम्यां दण्डखाताभिधां मुने !॥ ५ ॥
तत्तीर्थपरितः स्थाप्य महालिङ्गान्यनेकशः । महेशाराधनपरास्तपश्चक्रुः प्रयत्नतः
विभूतिधारिणोनित्यं नित्यं रुद्राक्षधारिणः । लिङ्गपूजारतानित्यंशतरुद्रियजापिनः
ते श्रुत्वा देवदेवस्य पुनरागमनं मुने। तपः कृशाअतितरा मासुरानन्दमेदुराः ॥
द्विजाः पञ्चसहस्राणि चरन्तो विपुलंतपः। दण्डखातान्महातीर्थादाजग्मुर्देवदर्शने
तीर्थान्मन्दाकिनीनाम्नो द्विजाः पाशुपतव्रताः ।
शिवैकाराधनपराः समेता अयुतोन्मिताः ॥ १० ॥
हंसतीर्थात्परिप्राप्ता अयुतं त्रिशतोत्तरम् । शतंदुर्वाससस्तीर्थादेकादशशताधिकम्
मत्स्योदर्याः परापेतुः सहस्राणिषडेवहि । कपालमोचनात्सप्तशतान्यभ्यागताद्विजाः
ऋणमोचनतस्तीर्थात्सहस्रं द्विशताधिकम् । वैतरण्याअपिमुनेद्विजानामयुतार्धकम्
ततः पृथूदकात्कुण्डात्पृथुना परिखानितात् । अयासिषुर्द्विजानांचशतान्येव त्रयोदश
तथैवाप्सरसः कुण्डान्मेनकाख्याच्छतद्वयम् ।
उर्वशीकुण्डतः प्राप्तः सहस्रं द्विशताधिकम ॥ १५ ॥
तथैरावतकुण्डाच्च ब्राह्मणास्त्रिशतानि च । गन्धर्वाप्सरसः सप्तशतानिद्विशतानिच
वृषेशतीर्थादाजग्मुर्नवतिः सशतत्रया । यक्षिणीकुण्डतः प्राप्तः सहस्रंत्रिशतोत्तरम्
लक्ष्मीतीर्थात्परंजग्मुःषोडशैवशतानिच । पिशाचमोचनात्सप्तसहस्राणिद्विजोत्तमाः
पितृकुण्डाच्छतंसाग्रंध्रुवतीर्थाच्छतानिषट् । मानसाख्याच्चसरसोद्विशतीसशतत्रया
ब्राह्मणा वासुकिह्रदात्सहस्राणिदशैवतु । तथैवाष्टशतंद्रष्टुं जानकीकुण्डतोद्विजाः
काशीनाथमनुप्राप्तः परमानन्ददायिनम् । तथार्गौतमकुण्डाच्च शतानि न वचागताः
तीर्थाद्दुर्गतिसंहर्तुर्ब्राह्मणाः प्रतिपेदिरे । एकादशशतान्येव द्रष्टुंदेवमुमापतिम् ॥
असीसम्भेदमारभ्यगङ्गातीरस्थिताद्विजाः । आसङ्गमेश्वरात्तत्रपरिप्राप्ताघटोद्भव ॥
अष्टादशसहस्राणि तया पञ्चशतान्यपि । ब्राह्मणाः पञ्चपञ्चाशद्गङ्गातीरात्समागताः
सार्द्रदूर्वाक्षतकरैः सपुष्पफलपाणिभिः । सुगन्धमाल्यहस्तैश्च ब्राह्मणैर्जयवादिभिः
स्तुतोमङ्गलसूक्तैश्च प्रणतश्च पुनः पुनः । तेभ्योदत्ताभयः शम्भुः पप्रच्छकुशलम्मुदा

ततस्ते ब्राह्मणाः प्रोचुः प्रबद्धकरसम्पुटाः । क्षेत्रेनिवसतां नाथ सदा नःकुशलोदयः
विशेषतः कृतोऽस्माभिः साक्षान्नयनगोचरः । त्वंयत्स्वरूपंश्रुतयोन विदुःपरमार्थतः
सदैवाऽकुशलं तेषां ये त्वत्क्षेत्रपराङ्मुखाः ।
चतुर्दशापि वै लोकास्तेषां नित्यम्पराङ्मुखाः ॥ २६ ॥
येषां हृदिसदैवास्ते काशीत्वाशीविषाङ्गद । संसाराशीविषविषंनतेषांप्रभवेत्कचित्
गर्भरक्षामणिर्मन्त्रःकाशीवर्णद्वयात्मकः । यस्यकण्ठे सदातिष्ठेत्तस्याकुशलता कुतः
सुधांपिबतियो नित्यंकाशीवर्णद्वयात्मिकाम् । सनैर्जरींदशांहित्वासुधैवपरिजायते
श्रुतंकर्णामृतं येन काशात्यक्षरयुग्मकम् । न समाकर्णयत्येव स पुनर्गर्भजांकथाम् ॥
काशीरजोऽपियन्मूर्ध्निपतेदप्यनिलाहतम् । चन्द्रशेखरतन्मूर्धा भवेच्चन्द्रकलाङ्कितः
प्रसङ्गतोऽपियन्नेत्रपथमानन्दकाननम् । यातं तेऽत्रनजायन्ते नेक्षेरन् पितृकाननम् ॥
गच्छता तिष्ठतावापि स्वपता जाग्रताथवा । काशीत्येषमहामन्त्रोयेन जप्तःसनिर्भयः
येन वीजाक्षरयुगंकाशीति हृदि धारितम् । अबीजानिभवन्त्येव कर्मबीजानितस्यवै
काशीकाशीतिकाशीति जपतो यस्य संस्थितिः ।
अन्यत्रापि सतस्तस्य पुरो मुक्तिः प्रकाशते ॥ ३८ ॥
क्षेममूर्त्तिरियंकाशी क्षेममूर्त्तिर्भवान्भव । क्षेममूर्त्तिस्त्रिपथगा नान्यत्क्षेमत्रयं क्वचित्
ब्राह्मणानामितिवचःक्षेत्रभक्तिविबृंहितम् । निशम्यगिरिजाकान्तस्तुतोषनितरांहरः
प्रोवाच च प्रसन्नात्माधन्या यूयं द्विजर्षभाः । येषामिहेदृशीभक्तिर्ममक्षेत्रेऽतिपावने ॥
जाने सत्त्वमया जाताः क्षेत्रस्याऽस्य निषेवणात् ।
नीरजस्का वितमसः संसारार्णवपारगाः ॥ ४२ ॥
वाराणस्यास्तु ये भक्तास्ते भक्ता मम निश्चितम् ।
जीवन्मुक्ता हि ते नूनं मोक्षलक्ष्म्या कटाक्षिताः ॥ ४३ ॥
यैश्चकाशीस्थितोजन्तुरल्पकोपिविरोधितः । तैर्वैविश्वम्भरासर्वामयासहविरोधिता
वाराणस्याः स्तुतिमपि यो निशम्याऽनुमोदते ।
अपि ब्रह्माण्डमखिलं ध्रुवं तेनानुमोदितम् ॥ ४५ ॥

नेवसन्तिहियेमर्त्याअस्मिन्नानन्दकानने । ममान्तःकरणे ते वै निवसेयुरकल्मषाः ॥
निवसन्ति ममक्षेत्रे ममभक्तिं प्रकुर्वते । मम लिङ्गधरा ये तु तानेवोपदिशाम्यहम्
निवसन्ति मम क्षेत्रे मम भक्तिं न कुर्वते । मम लिङ्गधरा ये नो नतानुपदिशाम्यहम्
काशीनिर्वाणनगरीयेषां चित्तेप्रकाशते । तेमत्पुरः प्रकाशन्तेनैःश्रेयस्याश्रियावृताः
मोक्षलक्ष्मीरियं काशी नयेभ्यः परिरोचते ।
स्वर्लक्ष्मीं काङ्क्षमाणेभ्यः पतितास्ते न संशयः ॥ ५० ॥
काशीं सङ्काङ्क्षमाणानां पुरुषार्थचतुष्टयम् । पुरः किङ्करवत्तिष्ठेन्ममानुग्रहतोद्विजाः
आनन्दकाननेह्यत्रज्वलद्दावानलोऽस्म्यहम् । कर्मबीजानि जन्तूनां ज्वालयेन प्ररोहये
वस्तव्यं सततंकाश्यांयष्टव्योऽहंप्रयत्नतः । जेतव्यौकलिकालौचरन्तव्यामुक्तिरङ्गना
प्राप्यापिकाशींदुर्बुद्धिर्योनमांपरिसेवते । तस्यहस्तगताप्याशुकैवल्यश्रीःप्रणश्यति
धन्यामद्भक्तिलक्ष्माणोब्राह्मणाःकाशिवासिनः । यूयंयच्चेतसोवृत्तेर्नदूरेऽहंन काशिका
दातव्यो वोवरःकोऽत्रव्रियतां मे यथारुचि । प्रेयांसोमेयतोयूयंक्षेत्रसंन्यासकारिणः
इति पीत्वा महेशानमुखक्षीराब्धिजांसुधाम् । परितृप्ताद्विजाःसर्वे वव्रुर्वरमनुत्तमम्

ब्राह्मणाऊचुः

उमापते! महेशान! सर्वज्ञ! वर एष नः । काशी कदापिनत्याज्या भवता भवतापहृत्
वचनाद्ब्राह्मणानां तु शापो माप्रभवत्विह ।
कदाचिदपि केषाञ्चित्काश्यां मोक्षान्तरायकः ॥ ५६ ॥
तवपादाम्बुजद्वन्द्वेनिर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तुनः । आकलेवरपातश्चकाशीवासोऽस्तुनोनिशम्
किमन्येन वरेणेशदेय एष वरो हि नः । अवधे ह्यन्धकध्वंसिन्वरमन्यं वृणीमहे ॥
तव प्रतिनिधीकृत्याऽस्माभिस्त्वद्भक्तिभावितैः ।
प्रतिष्ठितेषु लिङ्गेषु सान्निध्यं भवतोऽस्त्विह ॥ ६२ ॥
श्रुत्वेति तेषां वाक्यानि तथाऽस्त्विति पिनाकिना ।
प्रोचेऽन्योऽपि वरो दत्तो ज्ञानं वश्च भविष्यति ॥ ६३ ॥
नः प्रोवाच देवेशोनिशामयत भोद्विजाः । हितं वः कथयाम्यत्र तदनुष्ठीयतांध्रुवम्

सेव्योत्तरवहानित्यं लिङ्गमर्च्यं प्रयत्नतः । दमोदानंदयानित्यंकर्तव्यं मुक्तिकाङ्क्षिभिः
इदमेवरहस्यंच कथितं क्षेत्रवासिनाम् । मतिःपरहिता कार्या वाच्यं नोद्वेगकृद्वचः
मनसापि न कर्तव्यमेनोऽत्रविजिगीषुणा । अत्रत्यमक्षयं यस्मात्सुकृतं सुकृतेतरम्
अन्यत्र यत्कृतं पातं तत्काश्यांपरिणश्यति । वाराणस्यांकृतंपापमन्तर्गेहेप्रणश्यति
अन्तर्गेहे कृतं पापं पैशाच्यनरकावहम् । पिशाचनरकप्राप्तिर्गच्छत्यैव बहिर्यदि ॥
न कल्पकोटिभिः’काश्यांकृतंकर्मप्रमृज्यते । किन्तुरुद्रपिशाचत्वंजायतेऽत्रायुतत्रयम्

वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतःसदा ।
योनिं प्राप्यापि पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ ७१ ॥

पुनरत्रैवनिवसञ्ज्ञानं प्राप्स्यत्यनुत्तमम् । तेनज्ञानेन सम्प्रान्तेमोक्षमाप्स्यत्यनुत्तमम्
दुष्कृतानिविधायेह बहिःपञ्चत्वमागताः । तेषांगतिं प्रवक्ष्यामिश्रृणुत द्विजसत्तमाः

यामाख्या मे गणाः सन्ति घोरा विकृतमूर्तयः ।
मूषायान्ते धमन्त्यादौ क्षेत्रदुष्कृतकारिणः ॥ ७४ ॥

नयन्त्यनूपप्रायाञ्चततः प्राचीं दुरासदाम् । वर्षाकालेदुराचारान् पातयन्ति महाजले
जलौकाभिः सपक्षाभिर्दन्दशूकैर्जलोद्भवैः । दुर्निवारैश्च मशकैर्दश्यन्ते ते दिवानिशम्
ततोयामैर्हिमर्तौते नीयन्तेऽद्रौहिमालये । अशनावरणैर्हीनाःक्लेश्यन्तेतेदिवानिशम्
मरुस्थले ततोग्रीष्मेवारिवृक्षविवर्जिते । दिवाकरकरैस्तीव्रैस्ताप्यन्तेतेपिपासिताः

क्लेशितास्ते गणैरुग्रैर्यातनाभिः समन्ततः ।
इत्थंकालमसङ्ख्यातमानीयन्ते ततस्त्विह ॥ ७६ ॥

निवेदयन्तितेयामाःकालराजान्तिकेततः । कालराजोपितान्दृष्ट्वाकर्मसंस्मार्यदुष्कृतम्
विवस्त्रान् क्षुत्तृषार्तांश्च लग्नपृष्ठोदरत्वचः । अन्यैरुद्रपिशाचैश्च सहसंयोजयत्यपि
ततो रुद्रपिशाचास्तेभैरवानुचराः सदा । सहन्ते क्लममत्यर्थंक्षुत्तृष्णोग्रत्वसम्भवम्
आहारंरुधिरोन्मिश्रंते लभन्ते कदाचन । एवंत्र्ययुतसङ्ख्याकंकालंतत्रातिदुःखिताः

श्मशानस्तम्भमभितो नीयन्ते कण्ठपाशिताः ।
पिपासिता अपि न तेऽम्बुस्पर्शमपि चाप्नुयुः ॥ ८४ ॥

अथ संक्षीणपापास्ते कालभैरवदर्शनात् ।
इहैव देहिनो भूत्वा मुच्यन्ते ते ममाऽऽज्ञया ॥ ८५ ॥
तस्मान्नकामयेताऽत्रवाङ्मनःकर्मणाप्यघम् । शुचौपथिसदास्थेयंमहालाभमभीप्सुभिः
नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं यातिकिल्बिषी । ममानुग्रहमासाद्यगच्छत्येवपरांगतिम्
अनाशनं यः कुरुते मद्भक्तइह सुव्रतः । न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वामानुष्यं बहुकिल्बिषम् । अविमुक्तंसदासेव्यंसंसारभयमोचकम्
नाऽन्यत्पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ।
सर्वपापप्रशमनीं प्रायश्चित्तं कलौ युगे ॥ ९० ॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् । अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजतिक्षयम्
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन्योगी यदाप्नुयात् । तदिहैव परो मोक्षो मरणादधिगम्यते
तीर्यग्योनिगताः सत्त्वा ये विमुक्तकृतालयाः ।
कालेन निधनं प्राप्तास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ॥ ९३ ॥
अविमुक्तं न सेवन्ते ये मूढास्तमसावृताः । विण्मूत्ररेतसांमध्ये ते वसन्तिपुनः पुनः
अविमुक्तं समासाद्य यो लिङ्गं स्थापयेत्सुधीः ।
कल्पकोटिशतैर्वाऽपि नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥ ९५ ॥
ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनं ध्रुवम् । अविमुक्ते मृतानां तु पतनं नैव विद्यते ॥
ब्रह्महत्यांनरःकृत्वापश्चात्संयतमानसः । प्राणांस्त्यजतियःकाश्यांसमुक्तोनात्रसंशयः
स्त्रियः पतिव्रता याश्च मम भक्तिसमाहिताः ।
अविमुक्ते मृता विप्रा! यान्ति ताः परमां गतिम् ॥ ९८ ॥
अत्रोत्क्रमणकालेऽहंस्वयमेव द्विजोत्तमाः !। दिशामितारकंब्रह्मदेहीस्याद्येन तन्मयः
मन्मना ममभक्तश्च मयिसर्वार्पितक्रियः । यथामोक्षमिहाप्नोतिन तथान्यत्रकुत्रचित्
मरणंनिश्चितं ज्ञात्वागतिंचासुखरूपिणीम् । चलमागन्तुकंसर्वंततःकाशींसमाश्रयेत्
काशीसमाश्रिता यैस्तु मनोवाक्कायकर्मभिः ।
तानत्र निर्मलधियो निर्वाणश्रीः समाश्रयेत् ॥ १०२ ॥

काशीस्थितैकमपियः प्रीणयेन्न्यायजैर्धनैः। तेन त्रैलोक्यमखिलंप्रीणितंतु मयासह

यः प्रीणयति पुण्यात्मा निर्वाणनगरी नरम्।
पुमर्थैन स्थितेर्नित्यं ब्राह्मणाः प्रीणयामि तम् ॥ १०४ ॥

दिवोदासोऽपि राजर्षिः काशींधर्मेण पालयन्। सदेहोमत्पदंप्राप्तोयतोनपुनरागतिः
अत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेनजन्मना। अतोऽविमुक्तमासाद्यनान्यद्गच्छेत्तपोवनम्
मोक्षं सुदुर्लभं ज्ञात्वा संसारंचातिभीषणम्। अश्मनाचरणौहत्वाकालमत्रप्रतीक्षयेत्

अविमुक्तं परित्यज्य यदा यास्यन्ति दुर्धियः।
हसिष्यन्ति तदा भूतान्यन्योन्यकरताड़नैः ॥ १०८ ॥

प्राप्य वाराणसीं पुण्यां सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम्।
परिनिष्क्रान्तुमन्यत्र कस्य जन्तोर्मतिर्भवेत् ॥ १०६ ॥

महादानेन चान्यत्र यत्फलंलभ्यते नरैः। अविमुक्तेतु काकिण्यां दत्तायां तदवाप्यते
एकंसमर्चयेल्लिङ्गं तपस्तप्येतचापरः। तयोर्मध्येतु स श्रेष्ठो यो लिङ्गं पूजयेदिह ॥

तीर्थान्तरे गवां कोटिं विधिवद्यः प्रयच्छति।
एकाऽहं यो वसेत्काश्यां काशीवासी तयोर्वरः ॥ ११२ ॥

अन्यत्र ब्राह्मणानांतुकोटिंसम्भोज्ययत्फलम्। वाराणस्यांतुचैकेनभोजितेनतदाप्यते
सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे। तुलापुरुषदानेन काशीभिक्षासमाभवेत्
ममेह परमंज्योतिरापातालाद्व्यवस्थितम्। अतीत्यसमलोकादीननन्तंलिङ्गरूपधृक्

पृथिव्यन्तेऽपि ये लिङ्गमविमुक्तं स्मरन्ति मे।
कलुषैस्ते विमुच्यन्ते महद्भिरिति निश्चितम् ॥ ११६ ॥

अस्मिन्क्षेत्रेतु येनाहं दृष्टःस्पृष्टःसमर्चितः। सम्प्राप्यतारकंज्ञानंनसभूयोऽभिजायते

यो मामिह समभ्यर्च्य म्रियतेऽन्यत्र कुत्रचित्।
जन्मान्तरेऽपि माम्प्राप्य स विमुक्तो भविष्यति ॥ ११८ ॥

इत्युक्त्वा क्षेत्रमाहात्म्यं द्विजानामग्रतो हरः। पश्यतामेवतेषांतुतत्रैवान्तर्हितोभवत्
तेऽपिसाक्षाद्विरूपाक्षंप्रत्यक्षीकृत्यवाडवाः। प्रहृष्टमनसोऽत्यन्तंप्रययुःस्वंस्वमाश्रयम्

शम्भोर्वाक्यं विनिश्चित्य सर्वज्ञस्य कृपानिधेः ।
त्यक्त्वा कार्यान्तरं विप्रा लिङ्गान्येव समर्चिषुः ॥ १२१ ॥

स्कन्द उवाच

पठित्वा पाठयित्वा च रहस्याख्यानमुत्तमम् । श्रद्धालुःपातकैर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
क्षेत्ररहस्यकथनंनामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

पराशरेश्वरादिकन्दुकेशव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसम्भववर्णनम्

स्कन्द उवाच

ज्येष्ठेश्वरस्य परितो यानि लिङ्गानि कुम्भज! ।
तानि पञ्चसहस्राणि मुनीनां सिद्धिदान्यलम् ॥ १ ॥
पराशरेश्वरं लिङ्गं ज्येष्ठेशादुत्तरेमहत् । तस्यदर्शनमात्रेण निर्मलं ज्ञानमाप्यते ॥
तत्रैव सिद्धिदंलिङ्गं माण्डव्येश्वरसञ्ज्ञितम् । न तस्यदर्शनाज्जातुदुर्बुद्धिंप्राप्नुयान्नरः
लिंगंचशङ्करेशाख्यं तत्रैव शुभदंसदा । भृगुनारायणस्तत्र भक्तानां सर्वसिद्धिदः ॥
जाबालीश्वरसञ्ज्ञंचलिङ्गंतत्रातिसिद्धिदम् । तस्यसन्दर्शनाज्जातुनजन्तुर्दुर्गतिंव्रजेत्
सुमन्तुमुनिनाश्रेष्ठस्तत्रादित्यःप्रतिष्ठितः । तस्यसंदर्शनादेव कुष्ठव्याधिः प्रशाम्यति
भैरवीभीषणानाम तत्रभीषणरूपिणी । क्षेत्रस्यभीषणं सर्वं नाशयेद्भावतोऽर्चिता ॥
तत्रोपजङ्घनेर्लिङ्गं कर्मबन्धविमोक्षणम् ।
नृभिः संसेवितं भक्त्या षण्मासात्सिद्धिदम्परम् ॥ ८ ॥
भारद्वाजेश्वरं लिङ्गं लिङ्गं माद्रीश्वरं परम् । एकत्र संस्थितेद्वेतुद्रष्टव्येसुकृतात्मना
अरुणिस्थापितंलिङ्गंतत्रैवकलशोद्भव । तस्यलिङ्गस्यसेवातःसर्वामृद्धिमवाप्नुयात्

तापस उवाच

ब्रह्मचारिन्! शृणु ब्रूयां किमद्भुततरं त्विदम्।
विश्वेशानुग्रहाद्द् ब्रह्माऽप्यभवत्सृष्टिकोविदः ॥ ३५ ॥
यदित्वन्त्वाष्ट्रसर्वज्ञंकाश्यामाराधयिष्यसि ।ततस्तेविश्वकर्मेतिनामसत्यम्भविष्यति
विश्वेशानुग्रहात्काश्यामभिलाषा न दुर्लभाः।
सुलभो दुर्लभोऽप्यत्र यत्र मोक्षस्तनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥
सृष्टेःकरणसामर्थ्यंसृष्टिरक्षाप्रवीणता। विधिनाविष्णुनाप्रापिविश्वेशानुग्रहात्परात्
याहि वैश्वेश्वरं सद्म पद्मया समधिष्ठितम्।
निर्वाणसञ्ज्ञया बाल! यदीच्छेः स्वान्मनोरथान् ॥ ३८ ॥
सहिसर्वप्रदः शम्भुर्याचितश्चोपमन्युना। पयोमात्रं ददौतस्मै सर्वं क्षीराब्धिमेव च
आनन्दकानने शम्भोः किंकिकेन न लभ्यते ।यत्रवासकृताम्पुंसां धर्मराशिः पदेपदे
स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेणमहापातकसन्ततिः। यत्रसंक्षयति क्षिप्रं तांकाशींकोनसंश्रयेत्
न तादृग्धर्मसम्भारो लभ्यते क्रतुकोटिभिः ।यादृग्वाराणसीवीथीसञ्चारेण पदेपदे
धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यत्रास्तिमनोरथः। तदावाराणसींयाहियाहित्रैलोक्यपावनीम्
सर्वकामफलप्राप्तिस्तदैवस्याद्ध्रुवंनृणाम् । यदैवसर्वदःसर्वः काश्यांविश्वेश्वरःश्रितः
सतापसोक्तमाकर्ण्य त्वाष्ट्रइत्थं सुहृष्टवान्। काशीसम्प्राप्त्युपायंचतमेव समपृच्छत

त्वाष्ट्र उवाच

तदानन्दवनं शम्भोः क्वास्ति तापससत्तम!।
यत्र नो दुर्लभं किञ्चित्साधकानां त्रयीस्थितम् ॥ ४६ ॥
स्वर्गे वा मर्त्यलोके वा बलिसद्मनि वामुने। क्व तदानन्दगहनं यत्रानन्दपयोब्धिजा
यत्र विश्वेश्वरो देवोविश्वेषांकर्णधारकः। व्याचष्टे तारकं ज्ञानं येन तन्मयतां ययुः
सुलभा यत्र नियतमानन्दवनचारिणः। अपिनैःश्रेयसीलक्ष्मीःकिमन्येऽल्पमनोरथाः
कस्तां मां प्रापयेच्छम्भोः कथं यामि तथा वद।
स तपस्वीति तद्वाक्यमाकर्ण्य श्रद्धयान्वितम् ॥ ५० ॥

प्राहागच्छ नयामित्वांयियासुरहमप्यहो । दुर्लभम्प्राप्यमानुष्यं यदि काशीनसेविता
पुनः क्वनृत्वं श्रेयोभूःक्वकाशीकर्मबन्धहृत् । वृथागतेहिमानुष्येकाशीप्राप्तिविवर्जनात्
आयुष्यञ्चभविष्यञ्च सर्वमेववृथागतम् । अतोऽहं सफलीकर्तुं मानुष्यञ्चातिचञ्चलम्

यास्यामि काशीमायाहि मायां हित्वा त्वमप्यहो ।
इति तेन सह त्वाष्ट्रो मुनिनाऽतिकृपालुना ॥ ५४ ॥
पुरीं वैश्वेश्वरीम्प्राप्तो मनःस्वास्थ्यमवाप च ।
ततः प्रापय्य तांकाशीं तापसः क्वाप्यतर्कितम् ॥ ५५ ॥

जगाम कुम्भसम्भूतसत्वाष्ट्रोऽपीत्यमन्यत । अवश्यंसहिविश्वेशःसर्वेषांचिन्तितप्रदः

सत्पथस्थिरवृत्तीनां दूरस्थोऽपि समीपगः ।
यस्मिन्प्रसन्नदृक् त्र्यक्षस्तं दविष्ठमपि ध्रुवम् ।
सुनेदिष्टं करोत्येव स्वयं वर्त्मोपदेशयन् ॥ ५७ ॥

क्वाहं तत्र वनेबालश्चिन्ताकुलितमानसः । क्व तापसःसयो मां वै सूपदिश्येहचानयत्
खेलोयमस्यत्र्यक्षस्ययस्यभक्तस्यकुत्रचित् । नदुर्लभतरंकिञ्चिदहो क्वाहंक्वकाशिका
नाऽऽराधितो मयाशम्भुःप्राक्तनेजन्मनिक्वचित् । शरीरित्वानुमानेन ज्ञातमेतदसंशयम्
अस्मिञ्जन्मनि बालत्वान्नचैवाराधितः स्फुटम् ।प्रत्यक्षमेवमेवैतत्कुतोऽनुग्रहधीर्मयि
आज्ञातं गुरुभक्तिर्मेहेतुः शम्भुप्रसादने । ययेहाऽनुगृहीतोऽस्मि विश्वेशेन कृपालुना
अथवा कारणापेक्षस्त्र्यक्षस्त्वितरदेववत् । रङ्कमप्यनुगृह्णाति केवलंकारणं कृपा ॥
यदि नो मय्यनुक्रोशः कथं तापससङ्गतिः । तद्रूपेण स्वयं शम्भुरानिनायेहमां ध्रुवम्
नदानानिनवै यज्ञा न तपांसि व्रतानि च । शम्भोः प्रसादहेतूनि कारणं तत्कृपैवहि॥
दयामपितदाकुर्यादसौविश्वेश्वरःपराम् । यदाश्रुत्युक्तमध्वानंसद्भिःक्षुण्णंनसन्त्यजेत्

अनुक्रोशं समर्थ्येति स त्वाष्ट्रः शाम्भवं शुचिः ।
संस्थाप्य लिङ्गमीशस्याराधयत्स्वस्थमानसः ॥ ६७ ॥

आनीय पुष्पसम्भारमार्तवं काननाद्बहु । स्नात्वाभ्यर्चयतीशानंकन्दमूलफलाशनः
इत्थं त्वष्टृतनूजस्य लिङ्गाराधनचेतसः । त्रिहायनात्प्रसन्नोऽभूत्तस्येशःकरुणानिधिः

तस्मादेवहि लिङ्गाच्चप्रादुर्भूय भवोऽब्रवीत् । वरं वरय रेत्वाष्ट्र दृढभक्त्यानया तव
प्रसन्नोऽस्मि भृशम्बालगुर्वर्थकृतचेतसः । गुरुणा गुरुपत्न्या च गुर्वपत्यद्वयेन च ॥
यथार्थितन्तथा कर्तुं ते सामर्थ्यम्भविष्यति ॥ ७२ ॥
अन्यान्वरांश्च ते दद्यां त्वाष्ट्रतुष्टस्त्वदर्चया ।
ताञ्छृणुष्व महाभाग! लिङ्गऽस्यास्याऽद्भुतश्रियः ॥ ७३ ॥
त्वं सुवर्णादिधातूनां दारूणां दृषदामपि ।
मणीनामपि रत्नानां पुष्पाणामपि वाससाम् ॥ ७४ ॥
कर्पूरादिसुगन्धीनांद्रव्याणामप्यपामपि । कन्दमूलफलानाञ्चद्रव्याणामपिचत्वचाम्
सर्वेषां वस्तुजातानां कर्तुं कर्म प्रवेत्स्यसि । यस्ययस्यरुचिर्यत्रसद्मदेवालयादिषु
तस्यतस्येहतुष्ट्यै त्वंतथा कर्तुंप्रवेत्स्यसि । सर्वनेपथ्यरचनाःसर्वाःसूपस्यसंस्कृतीः
सर्वाणि शिल्पिकार्याणितौर्यत्रिकमथापिच । सर्वंज्ञास्यसिकर्तुंत्वंद्वितीयइवपद्मभूः
नानाविधानि यन्त्राणि नानायुधविधानकम् । जलाशयानां रचनाःसुदुर्गरचनास्तथा
तादृक्कर्तुं पुरा वेत्सि यादृङ्नान्योऽधियास्यसि ।
कलाजातं हिसर्वन्त्वमवयास्यसि मे वरात् ॥ ८० ॥
सर्वेन्द्रजालिकी विद्यात्वदधीनाभविष्यति । सर्वकर्मसुकौशल्यंसर्वबुद्धिवरिष्ठताम्
सर्वेषाञ्च मनोवृत्तिंत्वं ज्ञास्यसि वरान्मम । किम्बहूक्तेन यत्स्वर्गे यत्पातालेयदत्रच
अतिलोकोत्तरं कर्म तत्सर्वं वेत्स्यसि स्वयम् ॥ ८३ ॥
विश्वेषां विश्वकर्माणिविश्वेषुभुवनेषु च । यतोज्ञास्यसितन्नामविश्वकर्मेतितेऽनघ
अपरः कोवरोदेयस्तव तम्प्रार्थयाश्वहो । तवाऽदेयंनमोकिञ्चिल्लिङ्गार्चनरतस्यहि
अन्यत्राऽपि हि यो लिङ्गं समर्चयति सन्मतिः ।
तस्यापि वाञ्छितं देयं किम्पुनर्यो विकाशिकम् ॥ ८६ ॥
येन काश्यांसमभ्यर्चियेनकाश्यांप्रतिष्ठितम् । येनकाश्यांस्तुतंलिङ्गंसमेरूपायदर्पणः
तत्त्वंस्वच्छोऽसि मुकुरो ममनेत्रत्रयस्यहि । काश्यांलिङ्गार्चनात्त्वाष्ट्रवरंवरयसुव्रत
काश्यां यो राजधान्यां मे हित्वा मामन्यमर्चयेत् ।

स वराकोऽल्पधीर्मुग्धोऽल्पतुष्टिर्मुक्तिवर्जितः ॥ ८९ ॥
तदानन्दवने ह्यत्रसमर्च्योऽहं मुमुक्षुभिः । द्रुहिणोपेन्द्रचन्द्रेन्द्रैरिहान्योनसमर्च्यते
यथानन्दवनम्प्राप्य त्वं मामर्चितवानसि । तथान्येपुण्यकर्माणोमामभ्यर्च्यैवमामितः
अनुग्राह्योऽसि नितरां ततो वरय दुर्लभम् ।
श्राणितं तदवै हि त्वं वद मा चिरयस्व भो !॥ ९२ ॥

विश्वकर्मोवाच

इदं यत्स्थापितं लिङ्गं मयाऽज्ञेनापि शङ्कर !।
तल्लिङ्गमन्येऽप्याराध्य सन्तु सद्बुद्धिभाजनाः ॥ ९३ ॥
अन्यच्च नाथ! प्रार्थ्योऽसि तच्च विश्राणयिष्यसि ।
भवान्मया विनिर्मापयिता स्वम्प्रासादं कदा भव ॥ ९४ ॥

देवदेव उवाच

एवमस्तुयदुक्तन्तेतवलिङ्गसमर्चकाः । सद्बुद्धिभाजनावैस्युःस्युश्चनिर्वाणदीक्षिताः
यदा चराजाभविताद्दिवोदासोविधेर्वरात् । तदामेवचनात्तातप्रासादम्मेविधास्यति
नवीकृत्य पुनःकाशीनिर्विष्टा तेनभूभुजा । गणेशमायया राज्यात्परिनिर्विण्णचेतसा
विष्णोः सदुपदेशाच्च मामेव शरणं गतः ।
निर्वाणलक्ष्मीः प्राप्तेह हित्वा राज्यश्रियञ्चलाम् ॥ ९८ ॥
विश्वकर्मन्त्रजगुरोः शासनाययतस्त्वच । गुरुभक्तिकृतो यस्मान्मद्भक्ता नात्र संशयः
येगुरुंचावमन्यन्तेतेऽवमान्या मयाप्यहो । तस्माद्गुरूपदिष्टंहिकुरुशिष्यसमीहितम्
तत आगत्य मे पार्श्वं यावन्निर्वाणमेष्यसि ।
तावत्स्थास्यसि शुद्धात्मा देवानां हितमाचरन् ॥ १०१ ॥
तवाऽत्रलिङ्गैः सततंस्थास्याम्यहमभीष्टदः । अस्यलिङ्गस्यभक्तानांनिर्वाणश्रीरदूरतः
अङ्गारेशादुदीच्यां ये त्वल्लिङ्गस्य समर्चकाः । तेषांमनोरथावाप्तिर्भविष्यति पदे पदे
इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्त्वाष्ट्रोपिगुरुमाप्तवान् । गुरोःसमीहितंभूरिविधायसगृहान्ययौ
गृहेऽपिमातापितरौसन्तोष्यनिजकर्मणा । तदुक्ताज्ञां समाधाय पुनःकाशींसमाययौ

स्वलिङ्गाराधनासक्तोनाद्यापि त्वष्टृनन्दनः । काशीं त्यजतिमेधावीसर्वदेवप्रियश्चरन्

ईश्वर उवाच

पृष्टानि यानि लिङ्गानि त्वया देवि! गिरीन्द्रजे !।
काशीमुक्तौ समर्थानि तान्युक्तानि मया तव ॥ १०७ ॥
लिङ्गमोङ्कारसञ्ज्ञञ्च तथादेवं त्रिविष्टपम् । महादेवः कृत्तिवासा रत्नेशश्चन्द्रसञ्ज्ञकः
केदारश्चापि धर्मेशस्तथावीरेश्वराभिधः । कामेशविश्वकर्मेशौ मणिकर्णीश्वरस्तथा
ममार्च्यमविमुक्ताख्यं ततो देवि! ममाख्यकम् ।
विश्वनाथेति विश्वस्मिन्प्रथितं विश्वसौख्यदम् ॥ ११० ॥
अविमुक्तंसमासाद्ययेनविश्वेश्वरोऽर्चितः । नतस्याऽस्तिपुनर्जन्मकल्पकोटिशतेष्वपि
अष्टौ मासान्विहारःस्याद्यतीनांसंयतात्मनाम् । एकत्रचतुरोमासानब्दंनावासइष्यते
अविमुक्तेप्रविष्टानां विहारो नैव युज्यते ।
मोक्षोऽप्यसंशयश्चाऽत्र तस्मात्त्याज्या न काशिका ॥ ११३ ॥
आनन्दकाननं हित्वानान्यद्गच्छेत्तपोवनम् । तपोयोगश्चमोक्षश्चयतोऽत्रैवमदाश्रयात्
कृपया सर्वजन्तूनां क्षेत्रमेतन्मया कृतम् ।
अवश्यमेव सिद्ध्यन्ति क्षेत्रेऽस्मिन्सिद्धिकाङ्क्षिणः ॥ ११५ ॥
अतीतं वर्तमानं च ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम् । यदेनस्तल्लयं यायादानन्दवनवीक्षणात्
अत्युग्रैश्च तपोभिर्यन्महादानैर्महाव्रतैः । नियमैश्च यमैः सम्यक्स्वयोगेन महामखैः
वेदान्तशास्त्राभ्यसनैः सर्वोपनिषदाश्रयात् । एभिर्वैयदवाप्येत तत्काश्यांहेलयाप्यते
कर्मसूत्रेण बद्धावै भ्राम्यन्ते तावदेव हि । यावद्वैश्वेश्वरे धाम्नि मम नैव तनुत्यजः
काश्यां स्वलीलया देवि! तिर्यग्योनिजुषामपि ।
ददामि चान्ते तत्स्थानं यत्र यान्ति न याज्ञिकाः ॥ १२० ॥
भूतग्रामोऽखिलोप्यत्र मुक्तिक्षेत्रेकृतालयः । कालेननिधनं यातोयात्येव परमांगतिम्
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिस्त्वपि ।
कालेनोज्झितदेहोऽत्र न संसारं पुनर्विशेत् ॥ १२२ ॥

प्रयागे यत्फलं देविमाघेचोषसिमज्जनात् । तत्फलं कोटिगुणितंवाराणश्यांक्षणेक्षणे
अस्यक्षेत्रस्यमहिमाकोऽपिवाचामगोचरः । उद्देशमात्रमाख्यायिमयातेप्रीतिकाम्यया
चतुर्दशानां लिङ्गानां श्रुत्वाऽऽख्यानानि सत्तमः ।
चतुर्दशसु लोकेषु पूजाम्प्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ १२५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धे विश्वकर्मेशप्रादुर्भावो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

दक्षयज्ञप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

सर्वज्ञसूनो! षड्वक्त्रसर्वार्थकुशलप्रभो । प्रादुर्भावंनिशम्यैषांलिङ्गानांमुक्तिदायिनाम्
नितराम्परितृप्तोऽस्मि सुधाम्पीत्वेवनिर्जरः । ॐकारप्रमुखैर्लिङ्गैरिदमानन्दकाननम्
आनन्दमेव जनयेदपि पापजुषामिह । परानन्दमहं प्राप्तः श्रुत्वैतल्लिङ्गकीर्तनम् ॥ ३ ॥
जीवन्मुक्त इवाऽऽसं हिक्षेत्रतत्त्वश्रुतेरहम् । स्कन्द! दक्षेश्वरादीनिलिङ्गानीह चतुर्दश
यान्युक्तानि समाचक्ष्व तत्प्रभावमशेषतः ॥ ४ ॥
योदक्षोगर्हयामास मध्येदेवसभंविभुम् । सकथं लिङ्गमीशस्यप्रत्यस्थापयदद्भुतम्
इति श्रुत्वा शिखिरथःकुम्भयोनेरुदीरितम् । सूत! संकथयामास दक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥

स्कन्द उवाच

आकर्णय मुनेवच्मिकथां कल्मषहारिणीम् । पुरश्चरणकामोसौदक्षःकाशींसमाययौ
छागवक्त्रो विरूपास्यो दधीचिपरिश्चिक्कृतः ।
प्रायश्चित्तविधानार्थं सूपदिष्टः स्वयम्भुवा ॥ ८ ॥
एकदादेवदेवस्य सेवार्थं शशिमौलिनः । कैलासमगमद्विष्णुः पद्मयोनिपुरस्कृतः

इन्द्रादयो लोकपाला विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याविद्याधरोरगाः ॥ १० ॥
ऋषयोऽप्सरसो यक्षागन्धर्वाः सिद्धचारणाः । तैर्नतो देवदेवेशः परिहृष्टतनूरुहैः ॥
स्तुतश्च नानास्तुतिभिश्शम्भुनाऽपि कृतादराः ।
विविशुश्चासनश्रेण्यां तन्मुखासक्तदृष्टयः ॥ १२ ॥
अथ तेषूपविष्टेषु शम्भुना विष्टरश्रवाः । कृतहस्तपरिस्पर्शमानः पृष्टो महादरम् ॥
श्रीवत्सलाञ्छन! हरे! दैत्यवंशदवानल !।
कच्चित्पालयितुं शक्तिस्त्रिलोकीमस्त्यकुण्ठिता ॥ १४ ॥
दितिजान्दनुजान्दुष्टान्कच्चिच्छास्सि रणाङ्गणे ।
अपिक्रुद्धान्महीदेवान्मामिव प्रतिमन्यसे ॥ १५ ॥
बाधया रहिता गावः कच्चित्सन्ति महीतले ।
स्त्रियः सन्ति हि सुश्रीकाः पतिव्रतपरायणाः ॥ १६ ॥
विधियज्ञाः प्रवर्तन्ते पृथिव्यां बहुदक्षिणाः ।
निराबाधं तपः कच्चिदस्ति शश्वत्तपस्विनाम् ॥ १७ ॥
निष्प्रत्यूहं पठन्त्येव साङ्गान्वेदान्द्विजोत्तमाः ।
महीपालाः प्रजाः कच्चित्पान्ति त्वमिव केशव ! ॥ १८ ॥
स्वेषुस्वेषुचधर्मेषुकच्चिद्वर्णाश्रमास्तथा । निष्ठावन्तोहितिष्ठन्तिप्रहृष्टेन्द्रियमानसाः
धूर्जटिःपरिपृच्छयेतिहृष्टंवैकुण्ठनायकम् । ब्रह्माणञ्चापिपप्रच्छ ब्राह्मं तेजः समेधते
सत्यमस्खलितं कच्चिदस्ति त्रैलोक्यमण्डपे ।
तीर्थावरोधो न क्वाऽपि केनचित्क्रियते विधे !॥ २१ ॥
इन्द्रादयः सुराः कच्चित्स्वेषु स्वेषु पुरेष्वहो ।
राज्यं प्रशासति स्वस्थाः कृष्णदोर्दण्डपालिताः ॥ २२ ॥
प्रत्येकम्परिपृच्छयेशः सर्वानित्थं कृतादरान् ।
पृष्ट्वा गमनकार्यञ्च तेषां कृत्वा मनोरथान् ॥ २३ ॥

वससर्जाथतान्सर्वान्देवःसौधंसमाविशत्। गतेष्वथचदेवेषुस्वस्वधिष्ण्येषुहृष्टवत्
ध्येमार्गंसचिन्तोऽभूद्दक्षःसत्याःपितातदा। अन्यदेवसमानं समानंप्रापनचाधिकम्
तीवक्षुब्धचित्तोभून्मन्दराघाततोऽब्धिवत्। उवाचचमनस्येतन्महाक्रोधरयान्धदृक

अतीव गर्वितो जातः सतीं मे प्राप्य कन्यकाम्।
कस्यचिन्नाऽप्यसौ प्रायो न कोऽस्यापि क्वचित्पुनः॥ २७॥
किं वंश्यस्त्वेष किंगोत्रः किं देशीयः किमात्मकः।
किंवृत्तिः किंसमाचारो विषादी वृषवाहनः॥ २८॥
न प्रायशस्तपस्व्येष क्व तपः क्वाऽस्त्रधारणम्।
न गृहस्थेषु गण्योऽसौ श्मशाननिलयो यतः॥ २६॥

असौनब्रह्मचारीस्यात्कृतपाणिग्रहस्थितिः। वानप्रस्थ्यंकुतश्चास्मिन्नैश्वर्यमदमोहिते
नब्राह्मणोभवत्येषयतोवेदोनवेत्त्यमुम्। शस्त्रास्त्रधारणात्प्रायःक्षत्त्रियःस्यान्नसोप्ययम्
क्षतात्सन्त्राणनात्क्षत्रन्तत्क्वास्मिन्प्रलयप्रिये। वैश्योपिनभवेदेषसदानिर्धनचेष्टनः॥
शूद्रोऽपि नभवेत्प्रायोनागयज्ञोपवीतवान्। एवंवर्णाश्रमातीतःकोसौसम्यङ्नकीर्त्यते
सर्वः प्रकृत्याज्ञायेत स्थाणुः प्रकृतिवर्जितः। प्रायशःपुरुषोनासावर्धनारीवपुर्यतः॥
योषाऽपि न भवेदेषयतोऽसौश्मश्रुलाननः। नपुंसकोऽपिनभवेल्लिङ्गमस्ययतोऽर्च्यते
बालोऽपि न भवत्येष यतोऽयं बहुवार्षिकः। अनादिवृद्धोलोकेषु गीयतेचोग्रएषयत्
अतोयुवत्वं संभाव्यं नात्र नूनं चिरन्तने। वृद्धोऽपि न भवत्येष जरामरणवर्जितः॥

ब्रह्मादीन्संहरेत्प्रान्ते तथापि च न पातकी।
पुण्यलेशोऽपि नास्त्यस्मिन्ब्रह्ममौलिच्छिदि क्रुधा॥ ३८॥
अस्थिनेपथ्यवति च क्वशुचित्वं विवाससि।
किं बहूक्तेन नोकिञ्चिज्ज्ञायतेऽस्य विचेष्टितम्॥ ३६॥
अहो धाष्ट्र्यं महद्दृष्टं जटिलस्याऽद्य चाऽद्भुतम्।
यदासनान्नोत्थितोऽसौ दृष्ट्वा मां श्वशुरं गुरुम्॥ ४०॥

एवम्भूता भवत्येव मातापितृविवर्जिताः। निर्गुणाअकुलीनाश्चकर्मभ्रष्टानिरङ्कुशाः

स्वच्छन्दचारिणोऽनाथाः सर्वत्र स्वाभिमानिनः ।
अकिञ्चना अपि प्रायस्तथापीश्वरमानिनः ॥ ४२ ॥
जामातॄणां स्वभावोऽयंप्रायशोगर्वभाजनम् । किञ्चिदैश्वर्यमासाद्यभवत्येवनसंशयः
द्विजराजः सगर्विष्ठो रोहिणीप्रेमनिर्भरः । कृत्तिकादिषु चास्नेहीमयाशप्तः क्षयीकृतः
अस्याहंगर्वसर्वस्वंहरिष्याम्येवशूलिनः । यथावमानितश्चाहमनेनास्य गृहं गतः ॥
तथास्याहंकरिष्यामिमानहानिश्च सर्वतः । सम्प्रधार्येति बहुशः सतुदक्षःप्रजापतिः
प्राप्य स्वभवनं देवानाजुहाव सवासवान् । अहं यियक्षुर्यूयं मेयज्ञसाहाय्यकारिणः
भवन्तु यज्ञसम्भारानानयन्तु त्वरान्विताः ।
श्वेतद्वीपमथो गत्वा चक्रे चक्रिणमच्युतम् ॥ ४८ ॥
महाक्रतूपद्रष्टारं यज्ञपूरुषमेव च । तस्यर्त्विजोऽभवन्सर्वे ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ४६
प्रावर्तत ततस्तस्य दक्षस्य च महाध्वरः । दृष्ट्वा देवनिकायांश्च तस्मिन्दक्षमहाध्वरे
अनीश्वरांस्ततो वेधा व्याजं कृत्वा गृहं ययौ ।
दधीचिरथ सम्वीक्ष्य सर्वांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥ ५१ ॥
दक्षयज्ञेसमायातान्सतीश्वरविवर्जितान् । प्राप्तसंमानसम्भारान्वासोलङ्कृतिपूर्वकम्
दक्षस्य हि दशुभोदर्कमिच्छन्प्रोवाच चेति वै ।

दधीचिरुवाच

दक्षप्रजापते! दक्ष! साक्षाद्धातृस्वरूपधृक् ॥ ५३ ॥
न चाऽस्ति तव सामर्थ्यं क्वापि कस्यापि निश्चितम् ।
यादृशः क्रतुसम्भारस्तव चेह समीक्ष्यते ॥ ५४ ॥
न तादृङ्नेदसि प्रायः क्वापिज्ञातोमहामते । क्रतुस्तुनैवकर्तव्योनास्तिक्रतुसमोरिपुः
कर्तव्यश्चेत्तदा कर्यः स्याच्चेत्सम्पत्तिरीदृशी ।
साक्षादग्निः स्वयं कुण्डे साक्षादिन्द्रादिदेवताः ॥ ५६ ॥
साक्षाच्च सर्वे मन्त्रा वै साक्षाद्यज्ञपुमानसौ । आचार्यपदवीमेष देवाचार्यःस्वयञ्चरेत्
साक्षाद् ब्रह्मा स्वयञ्चैष भृगुव कर्मकाण्डवित् ॥ ५७ ॥

यम्पूषा भगस्त्वेष इयंदेवी सरस्वती । एते च सर्वदिक्पालायज्ञरक्षाकृतःस्वयम्
त्वंचदीक्षांशुभाम्प्राप्तोदेव्याचशतरूपया । जामातात्वेषते धर्मः पत्नीभिर्दशभिःसह
स्वयमेव हि कुर्वीतधर्मकार्यम्प्रयत्नतः । ओषधीनामयं नाथस्तवजामातृषूत्तमः ॥
सप्तविंशतिभिःसार्धंपत्नीभिस्तवकार्यकृत् । औषधीःपूरयेत्सर्वाद्विजराजोमहासुधीः
दीक्षितोराजसूयस्य दत्तत्रैलोक्यदक्षिणः । मारीचःकश्यपश्चासौप्रजापतिषुसत्तमः
त्रयोदशमिताभिश्च भार्याभिस्तव कार्यकृत् ॥ ६२ ॥
हविः कामदुघा सूते कल्पवृक्षः समित्कुशान् ।
दारुपात्राणि सर्वाणि शकटं मण्डपादिकम् ॥ ६३ ॥
विश्वकर्माऽप्यलङ्कारान्कुरुतेऽभ्यागतर्त्विजाम् ।
वसूनि चाऽपि वासांसि वसवोऽष्टौ ददत्यपि ॥ ६४ ॥
स्वयं लक्ष्मीरलङ्कुर्याद्या वै चाऽत्र सुवासिनीः ॥ ६५ ॥
सर्वं सुखाय मे दक्ष!वीक्षमाणस्यसर्वतः । एकंदुःखाकरोत्येवयत्त्वंविस्मृतवानसि
जीवहीनो यथा देहो भूषितोऽपिनशोभते । तथेश्वरंविना यज्ञः श्मशानमिवलक्ष्यते
इत्थं दधीचिवचनं श्रुत्वा दक्षः प्रदापतिः । भृशंजज्वालकोपेनहविषाकृष्णवर्त्मवत्
पूर्वं स्तुत्याऽतिसंहृष्टो दृष्टो योऽसौ दधीचिना ।
स एव चापि कोपाग्निमुद्गमन्वीक्षितो मुखात् ॥ ६६ ॥
प्रत्युवाचाथतंविप्रंवेपमानाङ्गयष्टिकः । दक्षः प्रजापती रोषाज्जिघांसुरिवतं द्विजम् ॥

दक्ष उवाच

ब्राह्मणोऽसिदधीचेत्वंकिंकरोमि तवात्रवै । दीक्षामहमहो प्राप्तः कर्तुंनायातिकिञ्चन
भवान्केन समाहूतो यदत्रागान्महाजडः । आगतोऽपि हिकेनत्वंपृष्टइत्थम्ब्रवीषियत्
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यो यत्र श्रीमानयं हरिः । स्वयंवै यज्ञपुरुषः समखः किंश्मशानवत्
यत्रवज्रधरः शक्रः शतयज्ञैकदीक्षितः । त्रयस्त्रिंशतिकोटीनाममराणाम्पतिःस्वयम्
तं त्वञ्चोपमिमीषेमुंश्मशानेनमहामखम् । धर्मराट् चस्वयंयत्र धर्माधर्मैककोविदः
श्रीदोऽस्ति यत्र श्रीदाता साक्षाद्यत्राऽऽशुशुक्षणिः ।

तं यज्ञमुपमासि त्वममङ्गलभुवा तया ॥ ७६ ॥
देवाचार्यः स्वयं यत्र क्रतोराचार्यतां गतः ।
अभिमानवशात्तन्त्वमाख्यासि पितृकाननम् ॥ ७७ ॥
यत्रार्त्विज्यम्भजन्तेऽमीवसिष्ठप्रमुखर्षयः । तमध्वरं तमाचक्षे मङ्गलेतरभूमिवत् ॥
निशम्येति मुनिः प्राह दधीचिर्ज्ञानिनांवरः । सर्वमङ्गलमाङ्गल्यो भवेद्यज्ञपुमान्हरिः
तथाऽपि शाम्भवी शक्तिर्वेदे विष्णुः प्रपठ्यते ।
वामाङ्गं स्रष्टुराद्यस्य हरिस्तदितरद्विधिः ॥ ८० ॥
दीक्षितो योऽश्वमेधानां शतस्य कुलिशायुधः ।
दुर्वाससा क्षणेनाऽपि नीतो निःश्रीकतां हि सः ॥ ८१ ॥
पुनराराध्य भूतेशं प्रापैकाममरावतीम् । यस्त्वया धर्मराजोऽत्रकथितःक्रतुरक्षकः ॥
बलं तस्याऽखिलैर्ज्ञातं श्वेतम्पाशयतः पुरा ।
धनदस्त्र्यम्बकसखस्तच्चक्षुश्चाऽऽशुशुक्षणिः ॥ ८३ ॥
पार्ष्णिग्राह्यभवद्रुद्रो देवाचार्यस्यवैतदा । यदातारामधार्षीत्सद्विजराजोऽतिसुन्दरीम्
तं विदन्ति वसिष्ठाद्यास्तवार्त्विज्यम्भजन्ति ये ।
एको रुद्रो न द्वितीयः सम्विदाना अपीति हि ॥ ८५ ॥
प्रावर्तन्तर्षयोन्येऽपि गौरवात्तवते क्रतौ । यदिमेब्राह्मणस्यैकं श्टणोषि वचनंहितम्
तदा क्रतुफलाधीशं विश्वेशं त्वं समाह्वय । विना तेन क्रतुरसौ कृतोऽप्यकृतएवहि
सति तस्मिन्महादेवे विश्वकर्मैकसाक्षिणि ।
तवापि चैषां सर्वेषां फलिष्यन्ति मनोरथाः ॥ ८८ ॥
यथा जडानिबीजानिनफलन्तिस्वयं तथा । जडानिसर्वकर्माणिनफलन्तीश्वरंविना
अर्थहीना यथा वाणी धर्महीनायथातनुः । पतिहीनायथानारीशिवहीनातथाक्रिया
गङ्गाहीना यथादेशाःपुत्रहीना यथागृहाः । दानहीना यथासम्पच्छिवहीनातथाक्रिया
मन्त्रिहीनं यथा राज्यं श्रुतिहीना यथा द्विजाः ।
योषाहीनं यथा सौख्यं शिवहीना तथाक्रिया ॥ ९२ ॥

र्महीना यथासन्ध्यातिलहीनश्चतर्पणम् । हविर्हीनोयथा होमःशिवहीनातथाक्रिया
इत्थं दधीचिनाऽऽख्यातं जग्राह वचनं न तत् ।
दक्षो दक्षोऽपि तत्रैव शम्भोर्मायाविमोहितः ॥ ९४ ॥
ोवाच चभृशंक्रुद्धःकाचिन्तातवमेक्रतोः । क्रतुमुख्यानिसर्वाणियानिकर्माणिसर्वतः
तानि सिद्ध्यन्ति नियतं यथार्थकरणादिह ।
अयथार्थविधानेनसिद्ध्येत्कर्माऽपि नेशितुः ॥ ९६ ॥
स्वकर्मसिद्धयेचाऽथ सर्व एवहिचेश्वरः । ईश्वरःकर्मणांसाक्षीयत्त्वयापीतिभाषितम्
तत्तथाऽस्तु परं साक्षी नार्थं दद्याच्च कुत्रचित् ॥ ९८ ॥
जडानिसर्वकर्माणि नफलन्तीश्वरंविना । यदुक्तंभवतातत्राऽप्यहोदृष्टान्तयाम्यहम्
जडान्यपि च बीजानि कालं सम्प्राप्य चात्मनः ।
अङ्कूरयन्ति कालाच्च पुष्प्यन्ति च फलन्ति च ॥ १०० ॥
विनापीशं तथाकर्मस्वयंकालात्फलत्यहो । किमीश्वरेणतेनात्रमहामङ्गलमूर्तिना ॥

दधीचिरुवाच

यथार्थकरणात्सिद्धमपि कार्यं कदाचन । ईश्वरप्रातिकूल्याच्चसिद्धमेवाशुनश्यति ॥
ईश्वरेच्छा बलात्कर्म कृतमप्यविधानतः । संसिद्ध्येत्तदधीनाश्चकथंसर्वइहेश्वराः ॥
सामान्यसाक्षिवन्नेशः सर्वेषांसर्वकर्मणाम् । साक्षीभवेदसन्दिग्धःफलस्यप्रतिभूरपि
भूजलादिस्वरूपेण बीजमाविश्यसर्वकृत् । स्वयंकालस्वरूपेणविदध्यादङ्कुरोदयम्
यत्त्वयोक्तं विनापीशंकाले कर्मफलेत्स्वयम् । सएवकालोभगवान्सर्वकर्तामहेशिता
अन्यच्च भवता प्रोक्तं तदेकं तथ्यमेव तत् । किमीश्वरेण तेनाऽत्र महामङ्गलमूर्तिना
ये महान्तो भवन्त्येवये च मङ्गलमूर्तयः । ईश्वराख्याच येष्वस्तिकिन्तैरत्रतवान्तिके
उत्तरादुत्तरञ्चेति प्रत्युत्तरयति द्विजे । दधीचौचुक्रुधेऽत्यन्तन्दक्षोगर्वातिसुश्रिया ॥
आदिदेश समीपस्थानालोक्य परितस्त्विति ।
ब्राह्मणापसदञ्चामुम्परिदूरयताऽऽशु वै ॥ ११० ॥
अमुष्मादध्वरश्रेष्ठादवरिष्ठमनोगतम् । इत्थं दधीचिराकर्ण्य प्रोवाच प्रहसन्निव ॥

किमां दूरयसे मूढ! दूरीभूतो भवानपि । सर्वेभ्योमङ्गलेभ्यश्च सर्वैरेभिः समं ध्रुवम्
अकाण्डे क्रोधजो दण्डस्तव मूर्ध्नि पतिष्यति ।
महेशितुस्त्रिजगतीपरिशास्तुः प्रजापते !॥ ११३ ॥
इत्युक्त्वा निर्जगामाऽऽशु यज्ञवाटात्ततो द्विजः ।
तस्मिन्निर्यातिनिर्यातो दुर्वासाश्च्यवनो भवान् ॥ ११४ ॥
उत्तङ्क उपमन्युश्च ऋचीकोद्दालकावपि । माण्डव्योवामदेवश्चगालवोगर्गगौतमौ ॥
शिवतत्त्वविदोऽन्येऽपि दक्षयज्ञाद्विनिर्ययुः । गतेदधीचौसानन्दं प्रावर्तत महामखः
ये स्थिता ब्राह्मणास्तत्र तेभ्यो द्विगुणदक्षिणाम् ।
प्रादात्प्रजापतिर्दक्षस्त्वन्येभ्योऽप्यधिकं वसु ॥ ११७ ॥
सर्वेजामातरस्तेनतोषिताभूरिशोधनैः । कन्याश्चालङ्कृतास्सर्वामहाविभवविस्तरैः
ऋषिपत्न्योऽपि बहुशो देवपत्न्योऽप्यनेकशः ।
तथा पुराङ्गनाः सर्वास्तेन मानभुवः कृताः ॥ ११६ ॥
ब्रह्मघोषेण तारेण व्योमशब्दगुणं स्फुटम् । कारितं तेनदक्षेणविप्राणांहृष्टचेतसाम्
अग्निर्मन्दाग्निरभवत्तस्मिन् जुह्वति दीक्षिते । हविः परिमलेनैवपरितृप्तादिगङ्गनाः॥
स्वाहाकारैर्वषट्कारैः सुराजातापिचण्डिलाः । रचितागिरयस्तेन सदन्नानाम्पदेपदे
घृतकुल्याः कृतास्तेन मधुकुल्याःसहस्रशः । महासरांसिपयसांद्रप्सस्यापिमहाह्रदाः
राशयश्च दुकूलानां रत्नानां शिखराणि च । यज्ञवाटस्य वसुधास्वर्णरूप्यमयीकृता
न लभ्यन्ते क्रतौ तस्य मार्गिता अपि मार्गणाः ।
हृष्टाः पुष्टाः समभवन्नपि तत्परिचारकाः ॥ १२५ ॥
ध्वनिर्मङ्गलगीतानां व्यानशे गगनाङ्गणम् । जहृषेचाऽप्सरोवृन्दैर्गन्धर्वैर्मुमुदेतराम्
विद्याधरैर्ननन्दे च वसुधा ववृधे भृशम् । महाविभवसम्भारे तस्मिन्दाक्षेमहाक्रतौ
इत्थम्प्रवृत्तेऽथ मुनिः कैलासं नारदो ययौ ।

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धेदक्षयज्ञप्रादुर्भावो नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

दक्षयज्ञे सतीदेहविसर्जनवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

शिवलोकंसमासाद्यमुनिनाब्रह्मसूनुना । किञ्चक्रेब्रूहिषड्वक्त्रकथांकौतुकशालिनीम्

स्कन्द उवाच

शृणु कुम्भज! वक्ष्यामि नारदेनमहात्मना । यत्कृतं तत्र गत्वाशुकैलासंशङ्करालयम्
मुनिर्गगनमार्गेण प्राप्यतद्धामशाम्भवम् । दृष्ट्वा शिवौप्रणम्याथ शिवेनविहितादरः ॥
तदुद्दिष्टासनं भेजेपश्यंस्तत्क्रीडनं परम् । क्रीडन्तौतौतुचाक्षाभ्यांयदानचविरेमतुः
तदौत्सुक्येन स मुनिः प्रेर्यमाण उवाच ह ।

नारद उवाच

देवदेव! तव क्रीडाखिलं ब्रह्माण्डगोलकम् । मासाद्वादशयेनाथतेसारिफलकेगृहाः
कृष्णाः कृष्णेतरा या वै तिथयस्ताश्च सारिकाः ।
द्विपञ्चदशमासेयास्त्वक्षयुग्मन्तथायने ॥ ६ ॥
सृष्टिप्रलयसञ्ज्ञौ द्वौ ग्लहौ जयपराजयौ । देवीजयेभवेत्सृष्टिरसृष्टिर्धूर्जटेर्जये ॥
भवतोः खेलसमयोयः सास्थितिरुदाहृता । इत्थं क्रीडैवसकलमेतद्ब्रह्माण्डमीशयोः
नदेवीजेष्यतिपतिंनेशःशक्तिंविजेष्यति । किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोस्मितन्मातरवधार्यताम्
देवः सर्वज्ञनाथोऽपि न किञ्चिदवबुध्यति ।
मानापमानयोर्यस्मादसौ दूरे व्यवस्थितः ॥ १० ॥
लीलात्मा गुणवानेष विचारादतिनिर्गुणः । कुर्वन्नपिहिकर्माणि बाध्यतेनैवकर्मभिः
मध्यस्थोपिहिसर्वस्य माध्यस्थ्यमवलम्बते । सर्वत्रायंमहेशानोमित्रामित्रसमानदृक्
त्वंशक्तिरस्यदेवस्यसर्वेषांमान्यभूःपरा । दक्षस्यापित्वयामानो दत्तोपत्यनिमित्तकः
परंत्वं सर्वजगतां जनयित्र्येकिका ध्रुवम् । त्वत्त आविर्भवन्त्येव धातृकेशववासवाः

त्वमात्मानंनजानासि त्र्यक्षमायाविमोहिता । अतएवहिमेचित्तं दुनोत्यतितरांसति!

अन्या अपि हि याः सत्यः पातिव्रत्यपरायणाः ।
ता भर्तृचरणौ हित्वा किञ्चिदन्यन्न मन्वते ॥ १६ ॥

अथवाऽस्तामियं वार्ताप्रस्तुतं प्रब्रवोम्यहम् । अद्यनीलगिरेस्तस्माद्धरिद्वारसमीपतः

अपूर्वमिव सम्वीक्ष्य परिप्राप्तस्यवान्तिकम् ।
अत्याश्चर्यविषादाभ्यां किञ्चिद्वक्तुमिहोत्सुकः ॥ १८ ॥

आश्चर्यहेतुरेवायं यत्पुञ्जातं त्रयीतले । तद्दृष्टं सकलत्रञ्च दक्षस्याध्वरमण्डपे ॥
सालङ्कारं समानञ्च सानन्दमुखपङ्कजम् । विस्मृताखिलकार्यञ्च दक्षयज्ञप्रवर्तकम् ॥
विषादे कारणञ्चैतद्यतोजातमिदं जगत् । यस्मिन्प्रवर्तते यत्र लयमेष्यति च ध्रुवम्
तदेव तत्र नोद्दृष्टं भवद्द्वन्द्वम्भवापहम् । प्रायो विषादजनकं भवतोर्यददर्शनम् ॥
तदेव नाभवत्तत्र समभूदन्यदेवहि । तच्च वक्तुं न शक्येत तद्वक्ता दक्ष एव सः ॥
तानि वाक्यानिचाकर्ण्यद्रुहिणेन ययेततः । महर्षिणादधीचेन धिक्कृतोनितरांहिसः
शप्तश्च वीक्षमाणानां देवर्षीणांप्रजापतिः । मयाचकर्णौपिहितौ श्रुत्वातद्गर्हणागिरः

दधीचिना समं केचिद्दुर्वासःप्रमुखा द्विजाः ।
भवनिन्दां समाकर्ण्य कियन्तोऽपि विनिर्ययुः ॥ २६ ॥

प्रावर्तत महायागो हृष्टपुष्टमहाजनः । तथा द्रष्टुं न शक्नोमि तत आगतवानिह ॥
भगिन्योऽपिच यादेवि!तवतत्रसभर्तृकाः । तासांगौरवमालोक्यन किञ्चिद्वक्तुमुत्सहे
इतिदेवीसमाकर्ण्यसतीदक्षकुमारिका । करादक्षौ समुत्सृज्यदध्यौकिञ्चित्क्षणंहृदि
उवाच च भवत्वेवं शरणम्भव एव मे । सम्प्रधार्येति मनसि सतीदाक्षायणी ततः ॥
द्रुतमेव समुत्तस्थौ प्रणनाम च शङ्करम् । मौलावञ्जलिमाधाय देवी देवं व्यजिज्ञपत्

देव्युवाच

विजयस्वाऽन्धकध्वंसिस्त्र्यम्बक! त्रिपुरान्तक !।
चरणौ शरणं ते मे देह्यनुज्ञां सदाशिव !॥ ३२ ॥
मा निषेधीः प्रार्थयामि यास्यामि पितुरन्तिकम् ।

उक्त्वेति मौलिमदधादन्धकारिपदाम्बुजे ॥ ३३ ॥
अथोक्ताशम्भुनादेवीमृडान्युत्तिष्ठभामिनि !। किमपूर्णंतवास्त्यत्रवदसौभाग्यसुन्दरि
लक्ष्म्या अपि च सौभाग्यं ब्रह्माण्यैकान्तिरुत्तमा ।
शच्यै नित्यनवीनत्वं भवत्या दत्तमीश्वरि !॥ ३५ ॥
त्वया च शक्तिमानस्मिन्महदैश्वर्यरक्षणे ।
त्वाञ्च शक्तिं समासाद्य स्वलीलारूपधारिणीम् ॥ ३६ ॥
एतत्सृजामि पाम्यद्मि त्वल्लीलाप्रेरितोऽङ्गने !।
कुतो मां हातुमिच्छेस्त्वं मम वामार्धधारिणि !॥ ३७ ॥
शिवा शिवोदितञ्चेति श्रुत्वाप्याह महेश्वरम् ।
जीवितेश! विहाय त्वां न क्वाऽपि परियाम्यहम् ॥ ३८ ॥
मनोमेचरणद्वन्द्वेतवस्थास्यतिनिश्चलम् । क्रतुं द्रष्टुं पितुर्यामिनैक्षि यज्ञोमयाक्वचित्
शम्भुः कात्यायनीवाक्यमिति श्रुत्वा तदाऽब्रवीत् ।
क्रतुस्त्वया नेक्षितश्चेदाहरामि ततः क्रतुम् ॥ ४० ॥
मच्छक्तिधारिणी त्वं वा सृजैवान्यां क्रतुक्रियाम् ।
अन्यो यज्ञपुमानस्तु सन्त्वन्ये लोकपालकाः ॥ ४१ ॥
अन्यानाशुविधेहित्वमृषीनार्त्विज्यकर्मणि । पुनर्जगाददेवीतिश्रुत्वाशम्भोरुदीरितम्
पितुर्यज्ञोत्सवोनाथद्रष्टव्योऽत्रमयाध्रुवम् । देह्यनुज्ञांगमिष्यामिमामेकार्षीर्वचोऽन्यथा
कः प्रतीपयितुं शक्तश्चेतो वा जलमेव वा । निम्नायाम्युद्यतं नाथ माद्यमाम्प्रतिषेधय
निशम्येति पुनः प्राहसर्वज्ञो भूतनायकः । मायाहिदेविमांहि त्वागताचर्नामिलिष्यसि
अद्य प्राचीं यियासुं त्वा वारयेत्पङ्गुवासरः । नक्षत्रञ्च तथाज्येष्ठातिथिश्चनवमीप्रिये
अद्य सप्तदशोयोगोवियोगोऽद्यतनोऽशुभः । धनिष्ठार्धसमुत्पन्ने! तव ताराऽद्य पञ्चमी
मागादेवि गताऽद्य त्वंनहि द्रक्ष्यसिमांपुनः । पुनर्देवी बभाषे सायदिनाम्नाऽप्यहं सती
तदा तन्वन्तरेणापि करिष्येतव दासताम् । ततोभवः पुनः प्राह कोवा वारयितुंप्रभुः
परिक्षुब्धमनोवृत्तिं स्त्रियं वा पुरुषन्तु वा । पुनर्नदर्शनंदेवि! मया सत्यम्ब्रवीम्यहम्

परंनदेवि! गन्तव्यं महामानधनेच्छुभिः। अनाहूततया कान्ते! मातापितृगृहानपि ॥
यथा सिन्धुगता सिन्धुर्न पुनः परिवर्तते। तथाद्य गन्त्र्या नोजातु तवागमनमिष्यते

देव्युवाच

अवश्यं यद्यहं रक्ता तव पादाम्बुजद्वये । तथा त्वमेव मेनाथो भविष्यसि भवान्तरे
इत्युक्त्वा निर्ययौ देवी कोपान्धीकृतलोचना ।
यियासुभिश्च कार्यार्थं यत्कर्तव्यं न तत्कृतम् ॥ ५४ ॥
न ननाम महादेवं न च चक्रे प्रदक्षिणम्। अत एव हि सादेवी नगता पुनरागता ॥
अप्रणम्य महेशानमकृत्वापि प्रदक्षिणम् ।
अद्यापि ननिवर्तन्ते गताः प्राग्वासरा इव ॥ ५६ ॥
तयाचरणचारिण्या राज्ञ्या त्रिभुवनेशितुः। अपितत्पावनं वर्त्ममेनेऽतिकठिनम्बहु
देवोऽपि तां सतीं यान्तीं दृष्ट्वा चरणचारिणीम् ।
अतीव विव्यथे चित्ते गणांश्चाथ समाह्वयत् ॥ ५८ ॥
गणाविमानं नयत मनःपवनचक्रिणम्। पञ्चास्यायुतसंयुक्तं रत्नसानुध्वजोच्छ्रितम्
महावातपताकञ्च महाबुद्ध्यक्षलक्षितम्। नर्मदाऽलकनन्दा च यत्रेषा दण्डतां गते ॥
छत्रोभूतौच नत्रस्तः सूर्याचन्द्रमसावपि। यस्मिन्मकरतुण्डञ्च वाराही शक्तिरुत्तमा
धूः स्वयञ्चापि गायत्रीरज्जवस्तक्षकादयः। सारथिः प्रणवो यत्रकेङ्कारःप्रणवध्वनिः
अङ्गानि रक्षका यत्र वरूथश्छन्दसांगणः। इत्याज्ञप्ता गणास्तूर्णं रथं निन्युर्हराज्ञया
देव्यासनाथं तं कृत्वा विमानम्पार्षदा दिवि।
अनुजग्मुर्महादेवीं दिव्यां तेजोविजृम्भिणीम् ॥ ६४ ॥
सा क्षणन्त्र्यक्षरमणी वीक्ष्य दक्षसभाङ्गणम् ।
नभोऽङ्गणाद्विमानस्था ततो वेगादवातरत् ॥ ६५ ॥
अविशद्यज्ञवाटञ्च चकितंरक्षिवीक्षिता। कृतमङ्गलनेपथ्यां प्रसूं दृष्ट्वा किरीटिनीम् ॥
सभर्तृकाश्च भगिनीर्न वाऽलङ्कृतिशालिनीः ।
साश्चर्याश्च सगर्वाश्च सानन्दाश्च ससाध्वसाः ॥ ६७ ॥

अचिन्तिता त्वनाहूता विमानाद्धरवल्लभा । कथमेषापरिप्राप्ता क्षणमित्थम्प्रपश्यतीः
असम्भाष्यापि ताः सर्वा गता दक्षान्तिकं सती ।
पित्रा पृष्टा तु मात्रापि भद्रञ्जातन्त्वदागमे ॥ ६६ ॥

सत्युवाच

यदि भद्रंजनेतर्मे समागमनतो भवेत् । कथं नाहं समाहूता यथैता मे सहोदराः ॥

दक्ष उवाच

अयि कन्ये! महाधन्ये! ह्यनन्ये सर्वमङ्गले !। अयं ते नमनाक् दोषो दोषएष ममैवहि
तादृग्विधाय यत्पत्येमयादत्ताज्ञबुद्धिना । यदहं तं समाज्ञास्यमीश्वरोसौनिरीश्वरः
कदा कथमदास्यन्त्वां तस्मै मायास्वरूपिणे ।
अहं शिवाख्यया तुष्टो न जाने शिवरूपिणम् ॥ ७३ ॥
पितामहेन बहुधा वर्णितोऽसौममाग्रतः । शङ्करो यमयं शम्भुरसौ पशुपतिः शिवः
श्रीकण्ठोऽसौ महेशोऽसौ सर्वज्ञोऽसौ वृषध्वजः ।
अस्मै कन्याम्प्रयच्छ त्वं महादेवाय धन्विने ॥ ७५ ॥
वाक्याच्छतधृतेस्तस्मात्तस्मैदत्तामयाऽनघे । नजानेतंविरूपाक्षमुक्षगंविषभक्षणम्
पितृकाननसंवासं शूलिनञ्च कपालिनम् । द्विजिह्वसङ्गसुभगं जलाधारंकपर्दिनम् ॥
कलङ्किकृतमौलिञ्च धूलिधूसरचर्चितम् । क्वचित्कौपीनवसनं नग्नं वातूलवत्क्वचित्
क्वचिच्चचर्मवसनं क्वचिद्भिक्षाटनप्रियम् । विटङ्कभूतानुचरं स्थाणुमुग्रंतमोगुणम् ॥
रुद्रं रौद्रपरीवारं महाकालवपुर्धरम् । नृकरोटीपरिकरं जातिगोत्रविवर्जितम् ॥ ८०
नसम्यग्वेत्तितंकश्चिज्जानानोऽपिप्रतारितः । किम्बहूक्तेन तनये! समस्तनयशालिनि
क पांसुलपटच्छन्नो महाशङ्खविभूषणः । प्रवद्धसर्पकेयूरः प्रलम्बितजटासटः ॥ ८२ ॥
डमड्डुमरुकव्यग्रहस्ताग्रः खण्डचन्द्रभृत् । ताण्डवाडम्बररुचिः सर्वामङ्गलचेष्टितः
मृडानिसहरः क्वाऽयमध्वरो मङ्गलालयः । अत एव समाहूता नेह त्वं सर्वमङ्गले ॥
दुकूलान्यनुकूलानिरत्नालङ्कृतयः शुभाः । प्रागेव धारितास्तेऽत्रपश्यागत्यगृहाण च
इह मङ्गलवेशेषु देवेन्द्रेषु सशूलधृक् । कथमर्हो भवेच्चेतिमङ्गले विषमेक्षणः ॥ ८६ ॥

इत्याकर्ण्य सती साध्वी जनेतुरुदितं तदा । अत्यन्तदूनहृदया वक्तुं समुपचक्रमे ॥

सत्युवाच

नाकर्णितं मया किञ्चित्त्वयिप्रब्रुवति प्रभो !। पदद्वयीं समाकर्ण्य तांचतेकथयाम्यहम्
न सम्यग्वेत्ति तं कश्चिज्जानानोऽपि प्रतारितः ।
एतत्सम्यक् त्वयाऽऽख्यायि कस्तं वेत्ति सदाशिवम् ॥ ८९ ॥
त्वं तु प्रतारितः पूर्वमधुनापिप्रतारितः । कृत्वा तेन च सम्बन्धमसम्बद्धप्रलापभाक
यादृशं वक्षितं शम्भुं तादृशं यद्यमन्यथाः । कुतो मामददास्तस्मै यश्च कश्चन वेदन
अथवातेन सम्बन्धेन हेतुर्भवतो मतिः । तत्र हेतुरभूत्तात मम पुण्यैकगौरवम् ॥ ९२
अथोक्त्वैवं बहुतरंत्वंजनेताऽस्य वर्ष्मणः । श्रुतानेन चदेहेन पत्युः परिविगर्हणा ॥
पुरश्चरणमेवैतद्यदस्यैव विसर्जनम् । सुश्लाघ्यजन्मया तावत्प्राणितव्यं सुयोषिता
यावज्जीवितनाथस्याऽश्रवणीया विगर्हणा ॥ ९४ ॥
इत्युक्त्वा क्रोधदीप्ताग्नौ महादेवस्वरूपिणि । जुहाव देहसमिधम्प्राणरोधविधानतः
ततो विवर्णतां प्राप्ताः सर्वे देवाः सवासवाः ।
नाग्निर्जज्वाल च तथा यथाऽऽज्याहुतिभिः पुरा ॥ ९६ ॥
मन्त्राः कुण्ठितसामर्थ्यास्तत्क्षणादेव चाऽभवन् ।
अहो महानिष्टतरं किमेतत्समुपस्थितम् ॥ ९७ ॥
केचिदूचुर्द्विजवरा मिथः परियियासवः । महाझञ्झानिलः प्राप्तः पर्वतान्दोलनक्षमः
मखमण्डपभूस्तेनक्षणतःस्थपुटीकृता । अकाण्डं तडिदापातोजातोऽभूद् भूप्रकम्पनः
दिवश्चोल्काःप्रपतिताः पिशाचानृत्यमादधुः । आतापिगृध्रैरुपरिगगनेमण्डलायितम्
रवेरधस्तादशिवं शिवास्तत्राप्यरारिषुः । मेधारुधिरविप्रुड्भिस्तत्रवृष्टिंव्यधुः पराम्
निर्घातनिःस्वनो भूमेरुत्थितो हृत्प्रकम्पनः ।
दिव्यायुधानि च मिथोयुध्यन्ति स्मातिभीषणम् ॥ १०२ ॥
हवनीयं महाद्रव्यं दूषितं क्रोष्टुभिः श्वभिः । चकोराः करटास्तत्र विचेरुर्यज्ञमण्डपे
श्मशानवाटवज्जातो यज्ञवाटःसवैक्षणात् । यद्यत्रावस्थितं सर्वं तत्रैव परितिष्ठितम्

श्चित्रन्यस्तमिवासीच्च वस्तुजातमशोभिच । स्थगिता इवसंवृत्तास्तत्रचक्रधरादयः
दक्षोपि वदनम्लानिमवाप्यसपरिच्छदः । पुनर्यथाकथञ्चिच्च यज्ञं प्रावर्तयन्द्विजाः ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धे सतीदेहविसर्जनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोनननवतितमोऽध्यायः

दक्षेश्वरप्रादुर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

पुनः सनारदोऽगस्त्यदेव्याःप्राक्समुपागतः । तद्वृत्तान्तमशेषञ्च हरायावेदितुंययौ
दृष्ट्वा सनारदःशम्भुं नन्दिना सहसङ्कथाम् । काञ्चित्तर्जनिविन्यासपूर्वं कुर्वन्तमानमत्
उपाविशच्च शैलादिविसृष्टासनमुत्तमम् ।
वैलक्ष्यं नाटयन्किञ्चित्क्षणं जोषन्समास्थितः ॥ ३ ॥
आकारेणैव सर्वज्ञस्तद्वृत्तान्तं विवेदह । अवादीच्च मुनिंशम्भुःकुतो मौनावलम्बनम्
शरीरिणां स्थितिरियमुत्पत्तिप्रलयात्मिका ।
दिव्यान्यपि शरीराणि कालाद्यान्त्येवमेव हि ॥ ५ ॥
दृश्यं विनश्वरं सर्वं विशेषाद्यदनीश्वरम् । ततोऽत्र चित्रंकिं ब्रह्मन्कंकालःकालयेन्नवै
अभाविनो हि भावस्य भावः क्वापि न संभवेत् ।
भाविनोपि हि नाभावस्ततो मुह्यन्ति नोबुधाः ॥ ७ ॥
शम्भूदीरितसमाकर्ण्यसइत्थं मुनिपुङ्गवः । प्रोक्तवान्सत्यमेवैतद्यद्देवेन प्रभाषितम्
अवश्यमेव यद्भाव्यं तद्भूतंनात्रसंशयः । परं माम्बाधतेऽत्यन्तश्चिन्तैकाचित्तमाथिनी
नापचीयेततेकिञ्चिन्नोपचीयेततत्त्वतः । अव्ययत्वाच्चपूर्णत्वाद्धानिवृद्धीकुतस्त्वयि
अहोवराकः संसारः क भविष्यत्यनीश्वरः ।

आरभ्याद्य दिनं न त्वामर्चयिष्यन्ति केऽपि यत् ॥ ११ ॥
यतः प्रजापतिर्दक्षो न त्वामाहूतवान् क्रतौ । तेनाद्य रीढितं दृष्ट्वा देवर्षिमनुजा अपि
तवरीढांकरिष्यन्ति किमैश्वर्येण रीढिनाम् । प्राप्तावहेडनालोकेजितकालभयाअपि
अथैश्वर्येण सम्पन्नाः प्रतिष्ठाभाजनं किमु ॥ १३ ॥
महीयसायुषातेषां वसुभिर्भूरिभिश्चकिम् । येऽभिमानधनानेह लब्धरीढाः पदे पदे
अचेतनाश्च सावज्ञा जीवन्तोपिनकीर्तये । अभिमानधनाधन्या वरं योषित्सुसासती
यात्वद्विनिन्दाश्रवणात्तृणीचक्रे स्वजीवितम् ।
इत्याकर्ण्य महाकालः सम्यग्ज्ञात्वा सतीव्ययम् ॥ १६ ॥
सत्यं मुने! सतीदेवी तृणीचक्रे स्वजीवितम् ।
जोषं स्थितेमुनौ तत्र तन्महाकालसाध्वसात् ॥ १७ ॥
रुद्रश्चातीवरुद्रोऽभूद्बहुकोपाग्निदीपितः । ततस्तत्कोपजाद्वह्नेराविरासीन्महाद्युतिः
प्रत्यक्षः प्रतिमाकारःकालमृत्युप्रकम्पनः । उवाच चप्र णम्येशंभुशुण्डीम्महतीं दधत्
आज्ञां देहि पितः !किन्ते करवै दास्यमुत्तमम् ।
ब्रह्माण्डमेककवलं करवाणि त्वदाज्ञया ॥ २० ॥
पिबामि चार्णवान्सप्ताप्येकेन चुलुकेन वै ।
रसातलं वा पातालं पातालं वा रसातलम् ॥ २१ ॥
त्वदाज्ञया नयामीश विनिमय्यस्वहेलया । सलोकपालमिन्द्रं वा धृत्वाकेशैरिहानये
अपिवैकुण्ठनाथश्चेत्तत्साहाय्यंकरिष्यति । तदातंकुण्ठितास्त्रञ्चकरिष्यामित्वदाज्ञया
दनुजा दितिजाः केवैवराकारणदुर्बलाः । तेषुचोत्कटतांकोपिधत्तेतम्प्रणिहन्म्यहम्
कालम्बध्नामि वा सङ्ख्ये मृत्योर्वामृत्युमर्थये ।
स्थावरेषु चरेष्वत्र मयि क्रुद्धे रणाङ्गणे ॥ २५ ॥
त्वद्बलेन महेशान! नकोपि स्थैर्यमेष्यति । ममपादतलाघातादेतद्वै क्षोणिमण्डलम्
कदलीदलवद्घाताद्वेपते सरसातलम् । चूर्णीकरोमिदोर्दण्डघाताच्चैतान्कुलाचलान्
किम्बहूक्तेनदेह्याज्ञांममासाध्यंनकिञ्चन । त्वत्पादबलमासाद्यकृतंविद्ध्याद्यचिन्तितम्

इति प्रतिज्ञां तस्येशः श्रुत्वा कृतममन्यत । कृतकृत्यमिवात्यन्तंतंमुदाप्रत्युवाचच
महावीरोसिरेभद्रममसर्वगणेष्विह । वीरभद्राख्ययात्वं हिप्रथितिस्परमां व्रज ॥
कुरु मे सत्वरंकार्यं दक्षयज्ञं क्षयं नय । ये त्वां तत्रावमन्यन्ते तत्साहाय्यविधायिनः
ते त्वयाप्यवमन्तव्या व्रज पुत्रशुभोदय । इत्याज्ञां मूर्ध्नि चाधायसततःपारमेश्वरीम्
हरम्प्रदक्षिणीकृत्य जग्मिवानतिरंहसा ।
ततस्तदनुगाञ्छम्भुः स्वनिःश्वाससमुद्गतान् ॥ ३३ ॥
शतकोटिमितानुग्रान्गणानन्यानवासृजत् ।
ते गणा वीरभद्रं तं यान्तं केचित्पुरोगताः ॥ ३४ ॥
केचित्तदनुगा जाताः केचित्तत्पार्श्वगा ययुः ।
अम्बरं तैः समाक्रान्तं तेजोविजितभास्करैः ॥ ३५ ॥
शृङ्गाग्राणि गिरीणाञ्च कैश्चिदुत्पाटितानि वै ।
आचूडमूलाः कैश्चिच्च विधूता वै शिलोच्चयाः ॥ ३६ ॥
उत्पाट्य महतो वृक्षान्केचित्प्राप्ता मखाङ्गणम् ।
कैश्चिदुत्पाटिता यूपाः केचित्कुण्डान्यपूपुरन् ॥ ३७ ॥
मण्डपंध्वंसयामासुःकेचित्क्रोधोद्धुरागणाः । अचीखनन्वैवेदीश्चकेचिद्वैशूलपाणयः
अभक्षयन्हवींष्यन्ये पृषदाज्यं पपुः परे ॥ ३८ ॥
दध्वंसुरन्नराशींश्च केचित्पर्वतसन्निभान् । केचिद्वैपायसाहाराः केचिद्वैक्षीरपायिनः
केचित्पक्वान्नपुष्टाङ्गायज्ञपात्राण्यचूर्णयन् ।अमोटयन्स्रुचान्दण्डान्केचिद्दोर्दण्डशालिनः
व्यभञ्जञ्छकटान्केचित्पशून्केचिदजीगिलन् ।
अग्निं निर्वापयामासुः केचिदत्यग्नितेजसः ॥ ४१ ॥
स्वयम्परिदधुश्चान्ये दुकूलानि मुदायुताः । जगृहुःकेचन पुरारत्नानां पर्वतं कृतम् ॥
एकेन च भगोदेवः पश्यंश्चक्रेविलोचनः । पूष्णोदन्तावलीमन्यःपातयामासकोपितः
यज्ञः पलायितो दृष्टः केनचिन्मृगरूपधृक् । शिरोविरहितश्चक्रेतेन चक्रेण दूरतः ॥
एकः सरस्वतीं यान्तीं दृष्ट्वा निर्नासिकां व्यधात् ।

अदिते रोष्ठपुटकौ छिन्नावन्येन कोपिना ॥ ४५ ॥
अर्यम्णो बाहुयुगलं तथोत्पाटितवान्परः । अग्नेरुत्पाटयामासकश्चिज्जिह्वाम्प्रसह्यच
चिच्छेद्वायोर्वृषणम्पार्षदोऽन्यः प्रतापवान् ।
पाशयित्वा यमं कश्चित्को धर्म इति पृष्टवान् ॥ ४७ ॥
यत्र धर्ममहेशोनप्रथमस्परिपूज्यते । नैर्ऋतंसंगृहीत्वान्यः केशेष्वातोलयच्चासकृत् ॥
अनाश्वरंहविर्भुक्तंत्वयेत्याताडयत्पदा । कुबेरमपरो धृत्वा पादयोरधुनोद्बलात् ॥
वामयामास बहुशोभक्षिता ह्यध्वराहुतीः । एकादशाऽपिये रुद्रालोकपालैकपङ्क्तयः
रुद्राख्या धारणवशात्प्रमथैस्तेऽवहेलिताः ।
वरुणोदरमापीड्य प्रमथोन्यो बलेनहि ॥ ५१ ॥
बहिरुद्गिरयामास यद्भुक्तञ्चेशवर्जितम् । मायूरीं तनुमासाद्य सहस्राक्षो महामतिः ॥
उड्डीयगिरिमाश्रित्य छन्नः कौतुकमैक्षत । ब्राह्मणान्प्रमथा नत्वायातयातेतिचाब्रुवन्
प्रमथाः कालयामासुरन्यानपि चयाचकान् । इत्थम्प्रमथिते यागेप्रमथैःप्रथमागतैः ॥
वीरभद्रः स्वतः प्राप्तः प्रमथानीकिनीवृतः ॥ ५४ ॥
यज्ञवाटं श्मशानाभंदृष्ट्वातैः प्रमथैः पुरा । अतिशोच्यां दशांनीतं वीरभद्रस्ततोजगौ
गणाः पश्यत दुर्वृत्तैः प्रारब्धानाञ्च कर्मणाम् ।
अनीश्वरैरवस्थेयं कुतो द्वेषो महेश्वरे ॥ ५६ ॥
ये द्विषन्तिमहादेवं सर्वकर्मैकसाक्षिणम् ।
धर्मकार्ये प्रवृत्तास्तु ते प्राप्स्यन्तीदृशीं दशाम् ॥ ५७ ॥
क्व सदक्षो दुराचारः क्व च यज्ञभुजः सुराः । धृत्वासर्वानानयतयात द्रुततरंगणाः ॥
इत्याज्ञां वीरभद्रस्य प्राप्यते प्रमथाद्द्रुतम् । यावद्यान्त्यग्रतस्तावद्दृष्टःक्रुद्धोगदाधरः
तेनतेप्रमथाः सर्वेमहाबलपराक्रमाः । शुष्कपर्णतृणावस्थां प्रापितावात्ययेवहि ॥
अथनष्टेषु सर्वेषु प्रमथेषुहरेर्भयात् । चुकोप वीरभद्रः स प्रलयानलसन्निभः ॥ ६१ ॥
ददर्श शार्ङ्गिणंचाग्रे स्वगणैश्च परिष्टुतम् । चतुर्भुजैरसङ्ख्यातैर्जितदैत्यमहाबलैः
चक्रिभिर्गदिभिर्जुष्टं खड्गिभिश्चापि शार्ङ्गिभिः ।

वीरभद्रस्ततः प्राह दृष्ट्वा तं दैत्यसूदनम् ॥ ६३ ॥
त्वं तु यज्ञपुमानत्रमहायज्ञप्रवर्तकः । रक्षिता निजवीर्येणदक्षस्यत्र्यक्षवैरिणः ॥ ६४॥
किंवादक्षं समानीयदेहियुध्यस्ववामया । नदास्यसि च चेद्दक्षं ततस्तंरक्षयत्नतः ॥
प्रायशः शम्भुभक्तेषु यतस्त्वम्प्रोच्यसेऽग्रणीः ।
एकोनेऽब्जसहस्रे प्राग्ददौ नेत्राम्बुजम्भवान् ॥ ६६ ॥
तुष्टेनशम्भुनादत्तं तुभ्यंचक्रंसुदर्शनम् । यत्साहाय्यमवाप्याजौत्वंजयेर्दनुजाधिपान् ॥
इत्याकर्ण्यवचस्तस्यवीरभद्रस्यचोर्जितम् । जिज्ञासुस्तद्बलंविष्णुर्वीरभद्रमुवाचह
त्वंशम्भोःसुतदेशीयोगणानाम्प्रवरोऽस्यहो । राजादेशमनुप्राप्यततोप्यतिबलोमहान्
योसिसोस्यहमप्यत्र दक्षरक्षणदक्षधीः । पश्यामितवसामर्थ्यंकथं दक्षंहरिष्यसि
इत्युक्तोवीरभद्रः सतेन वै शार्ङ्गधन्वना । प्रमथान्दृष्टिभङ्ग्यैवप्रेरयामास सङ्गरे ॥
अथतैःप्रमथैर्विष्णोरनुगागदितारणे । आददानास्तृणंवक्त्रेणापिताःपाशवीं दशाम्
ततस्तार्क्ष्यरथः क्रुद्धस्त्वेकैकं रणमूर्धनि । सहस्रेणसहस्रेण बाणानां हृद्यताडयत्
तेभिन्नवक्षसः सर्वेगणारुधिरवर्षिणः । वासन्तींकैंशुकीं शोभांपरिप्रापू रणाजिरे ॥
क्षरन्त इव मातङ्गाः स्रवन्त इव पर्वताः । मदेनधातुरागेण मिश्रैः शुशुभिरे गणाः ॥
ततः प्रहस्यगणपोऽब्रवीद्वैकुण्ठनायकम् । हेशार्ङ्गधन्वञ्जाने त्वां त्वंरणाङ्गणपण्डितः
परंयुध्यसिदैत्येन्द्रैर्दानवेन्द्रैर्नपार्षदैः । इत्युक्त्वा वीरभद्रेण भुशुण्डीकलिताकरे ॥
गदिनाऽथ गदातूर्णं दैत्येन्द्रगिरिरेणुकृत् । ततः प्रहतवान्वीरोभुशुण्ड्यातंगदाधरम्
तदङ्गसङ्गमासाद्य विदद्रेशतधातया । कौमोदकीप्रहारेण वीरभद्रम्प्रतापिनम् ॥
जघान वासुदेवोपि तरसाऽज्ञातवेदनम् । ततः खट्वाङ्गमादाय गदाहस्तं गदाधरम्
आताड्य सव्ययोर्दण्डेगदाम्भूमावपातयत् । कुपितोयंमधुद्वेषी चक्रेणाताडयच्च तम्
स च चक्रं समागच्छद् दृष्ट्वासस्मार शङ्करम् । शङ्करस्मरणाच्चक्रं मनाग्वक्रत्वमाप्यच
कण्ठमासाद्य वीरस्य सम्यग्जातं सुदर्शनम् ॥ ८२ ॥
तेन चक्रेण शुशुभे नितरां स गणेश्वरः । वीरलक्ष्म्यावृत इव समरे विजयस्रजा ॥
ततः सुदर्शनं दृष्ट्वा तत्कण्ठाभरणं हरिः । मनाक्स चकितंस्मित्वाततोजग्राहनन्दकम्

सनन्दकंकरंतस्यप्रोद्यतम्मधुविद्विषः। पश्यतां दिविसिद्धानां स्तम्भयामासहुंकृता
अभ्यधावच्च वेगेन गृहीत्वा शूलमुज्ज्वलम् । यावज्जिघांसतिहरिंतावदाकाशवाचया
वारितो गणराजः समाकार्षीः साहसंत्विति । ततस्तमपहायाशुवीरभद्रो गणोत्तमः

प्राप्य दक्षं विनद्योच्चैर्धिक्त्वामीश्वरनिन्दकम् ।
यस्यैदृगस्ति सम्पत्तिर्यत्र देवाः सहायिनः ।
स कथं सेश्वरं कर्म न कुर्याद्दक्षतां दधत् ॥ ८८ ॥

येनास्येनाऽपवित्रेणभवतानिन्दितःशिवः । चूर्णयामितदास्यन्तेचपेटाभिःसमन्ततः
इत्युक्त्वातस्यदक्षस्य हरपारुष्यभाषिणः । चिच्छेद वदनं वीरश्चपेटशतघातनैः ॥

ततस्त्वदिति मुख्यानां मिलितानां महोत्सवे ।
त्रोटयामासकर्णादीन्यङ्गप्रत्यङ्गकानि च ॥ ९१ ॥
वेणीदण्डाश्च कासाञ्चित्तेन च्छिन्ना महारुषा ।
कासाञ्चिच्च कराश्छिन्नाः कासाञ्चित्कर्तिताः स्तनाः ॥ ९२ ॥
नासापुटांस्तथाऽन्यासां पाटयामास पार्षदः ।
चिच्छेद चाङ्गुलीश्चापि तथाऽन्यासां शिवप्रियः ॥ ९३ ॥

येयेनिनिन्दुर्देवेशंयेयेचशुश्रुवुस्तदा । तेषांजिह्वाः श्रुतीःकोपाद्च्छिनच्चाकरोद्द्विधा
केचिदुल्लम्बितायूपे पाशयित्वा दृढंगले । अधोमुखायैर्देवेशं विहायात्तम्महाहविः
द्विजराजश्च धर्मश्च भृगुमारीचमुख्यकाः । अत्यन्तमपमानस्य भाजनं तेन कारिताः
एतेजामातरस्तस्ययतोदक्षस्यदुर्धियः । हित्वामहेश्वरममून्सोपश्यदधिकाञ्छिवात्

तानि कुण्डानि ते यूपास्ते स्तम्भास्स च मण्डपः ।
ता वेद्यस्तानि पात्राणि तानि हव्यान्यनेकधा ॥ ९८ ॥

ते च वैयज्ञसम्भारास्ते ते यज्ञप्रवर्तकाः । ते रक्षपालास्तेमन्त्राविनेशुर्हेलयाऽखिलाः
स्तोकेनैव हि कालेन यथर्धिः परवञ्चनात् । अर्जितानश्यतिक्षिप्रंदक्षसम्पद्गताऽशिवा
नीतेमहाक्रतौ तेन सगणेनेदृशीं दशाम् । विधिर्विधिविलोपाच्चहरंविज्ञाप्य चानयत्
तत्र यत्र मखः सोऽभूदीदृक्षःशिववर्जितः । आयातेऽथमहादेवेवीरभद्रोऽतिलज्जितः

नत्वा नकिञ्चिदवदद्देवः सर्वमवैत्स्वयम् । प्रसाद्य देवदेवेशं सुरज्येष्ठोऽब्रवीत्पुनः
अपराध्यप्ययं दक्षः सम्प्रसाद्यः कृपानिधे । यथापूर्वं पुनरमून्सर्वान्कारयशङ्कर
यथाविधिः प्रवर्तेत वैदिकः पुनरेवहि ।
तथाऽऽज्ञा दीयतां शम्भो कर्म सिद्धयति सेश्वरम् ॥ १०५ ॥
अनीश्वरासु सर्वासु क्रियासु परमेश्वर । एवमेव भवन्त्येव विघ्नजाताः सहस्रशः ॥
विचारतो वराकोयं दक्षो भक्ततरस्तव । कुर्वन्योऽनीश्वरंकर्म परदृष्टान्ततां गतः
अन्योपि योमहेशानंहित्वाकर्मकरिष्यति । तस्यतत्कर्मसंसिद्धिर्दक्षस्येवभविष्यति
अतो न कश्चित्किञ्चिच्च क्वचित्कर्मविना शिवम् ।
विधास्यति निशम्यास्य दक्षस्येदृक्षचेष्टितम् ॥ १०६ ॥
विधीरितमितिश्रुत्वा स्मित्वादेवो महेश्वरः । वीरमाज्ञापयामास यथापूर्वम्प्रकल्पय
वीरभद्रोपितत्सर्वं सर्वाज्ञां प्रतिपद्य च । विनादक्षस्य वदनं यथा पूर्वमकल्पयत् ॥
ईश्वरं येविनिन्दन्ति ते मूकाः पशवोध्रुवम् । ततोमेषमुखंदक्षं वीरभद्रोगणोव्यधात्
देवोब्रह्माणमापृच्छ्य धर्माद्गार्हस्थ्यतश्च्युतः । सपार्षदो हिमप्रस्थंजगामतपसेततः
अनाश्रमवता पुंसा यतः कालोमनागपि । मुधाकलयितव्योनतस्माच्छ्रेयःसदाश्रमः
अतः स सर्वतपसां फलदाता महेश्वरः । तपश्चचार सगणो ब्रह्मादक्षन्त्वशिक्षयत्
हरनिन्दासमुद्भूतपापपङ्कं सुदुस्त्यजम् । यदिक्षालयितुंकाङ्क्षा तदा वाराणसीं व्रज
प्राप्य वाराणसीं पुण्यां महापापौघहारिणीम् ।
कुरु लिङ्गप्रतिष्ठां त्वं तेन शम्भुः स तुष्यति ॥ ११७ ॥
तुष्टे महेश्वरे तुष्टं जगदेतच्चराचरम् । नान्यत्र पापं तेगन्तृ विना वाराणसीं पुरीम्
ब्रह्महत्यादिपापानाम्प्रायश्चित्तं मनीषिभिः । प्रोक्तंन हरनिन्दायास्तत्रकाश्येवकेवलम्
काश्यां लिङ्गप्रतिष्ठा यैः कृताऽत्र सुकृतात्मभिः ।
सर्वे धर्माः कृतास्तैस्तु तएव पुरुषार्थिनः ॥ १२० ॥
इत्याकर्ण्य विधेर्वाक्यं दक्षः प्राप्याथसत्वरम् । अविमुक्तंमहाक्षेत्रं तताप परमं तपः
संस्थाप्य लिङ्गंविधिवल्लिङ्गाराधनतत्परः । न वेत्तिलिङ्गादपरं स किञ्चिज्जगतीतले

दिवानिशं महेशानम्परिष्टौति समर्चति । नमति ध्यायती क्षेतदक्षो दक्षप्रजापतिः
एकचित्तस्य दक्षस्य ध्यायतोलिङ्गमैश्वरम् । समासहस्रमगमन्मितंद्वादशसङ्ख्यया

मेनां यावत्सतीऽप्राप्य हिमाचलपतिव्रताम् ।
उमारूपाऽतितपसा पतिं प्राप पिनाकिनम् ॥ १२५ ॥
तावत्स दक्षस्तपसि निश्चलो लिङ्गमार्चयत् ।
ततः काशीं समासाद्य सह भर्त्रा गिरीन्द्रजा ॥ १२६ ॥

दृष्ट्वा तं निश्चलहृदं शिवलिङ्गार्चने रतम् । हरंव्यजिज्ञपद्देवी क्षीणोऽयं तपसा विभो
प्रसादय कृपासिन्धो वरेणैनं प्रजापतिम् । इत्युक्तोऽपर्णयाशम्भुःप्राहतंदक्षमीशिता

वरं ब्रूहि महाभाग! दास्यामि मनसेप्सितम् ।
इतीशोदितमाकर्ण्य प्रणम्य बहुशो हरम् ॥ १२९ ॥
स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रसन्नं वीक्ष्य शङ्करम् ।
प्रोवाच देवदेवेशं यदि देयो वरो मम ॥ १३० ॥

तत्त्वदीयपदद्वन्द्वे निर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तु मे । इदं च ते महालिङ्गं यन्मयाऽत्र प्रतिष्ठितम्

अस्मिँल्लिङ्गे त्वया नाथ! स्थातव्यं सर्वदैव हि ॥ १३१ ॥

मयापराद्धंयद्देव तत्क्षन्तव्यंकृपानिधे । एत एववराःसन्तु किमन्यैरुत्तमैर्वरैः ॥ १३२
इति श्रुत्वा महादेवः प्रसन्नोऽतितराम्भवः । प्रोवाचचयदुक्तंतेतत्तथास्तुनचान्यथा
अन्यच्च ते वरं दद्यां तच्छृणुष्व प्रजापते !। यत्त्वयास्थापितंलिङ्गमेतद्दक्षेश्वराभिधम्

अस्य संसेवनात्पुंसामपराधसहस्रकम् ।
क्षमिष्येऽहं न सन्देहस्तस्मात्पूज्यमिदं जनैः ॥ ३५ ॥
त्वन्तु लिङ्गार्चनादस्मात्सर्वमान्यो भविष्यसि ।
परार्धद्वितयप्रान्ते ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ १३६ ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गे लयं ययौ । दक्षोऽपि गतवान्गेहं परिप्राप्त मनोरथः

स्कन्द उवाच

इत्यगस्त्य! समाख्यातो दक्षेश्वरसमुद्भवः । यं श्रुत्वा मुच्यते जन्तुरपराधशतैरपि ॥

ुत्वाऽऽख्यानमिदम्पुण्यं दक्षेश्वरसमुद्भवम् । नरो न लिप्यतेपापैरपराधालयोपिहि
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्ड
दक्षेश्वरप्रादुर्भावो नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

पार्वतीशवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

ार्वतीहृदयानन्द! पार्वतीशसमुद्भवम् । कथयेह यदुद्दिष्टं भवता प्रागघापहम् ॥ १ ॥

स्कन्द उवाच

ृणवगस्ते यदा मेनाहिमाचलपतिव्रता । गिरीन्द्रजां सुतामाहपुत्रितेऽस्यमहेशितुः
किंस्थानंवसतिर्वाकाकोबन्धुर्वेत्सिकिञ्चन। प्रायोगृहंनजामातुरस्यकोपिचकुत्रचित्
निशम्येतिवचोमातुरतिह्रीणागिरीन्द्रजा। आसाद्यावसरंशम्भुं नत्वागौरीव्यजिज्ञपत्
याश्वश्रूगृहं कान्तगम्यमद्यविनिश्चितम् । नाथात्रनैव वस्तव्यं नयमांस्वंनिकेतनम्
गिरीन्द्रजागिरं श्रुत्वा गिरीश इति तत्त्ववित् ।
हित्वा हिमगिरिम्प्राप्तो निजमानन्दकाननम् ॥ ६ ॥
ाप्याऽऽनन्दवनंदेवीपरमानन्दकारणम् । विस्मृत्यपितृसम्वासंजाताचानन्दरूपिणी
थ विज्ञापयाञ्चक्रे गौरी गिरिशमेकदा । अच्छिन्नानन्दसन्दोहः कुतःक्षेत्रेऽत्रतद्वद
तिगौरीरितंश्रुत्वाप्रत्युवाचपिनाकधृक् । पञ्चक्रोशपरीमाणेक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिसद्मनि
तिलान्तरं न देव्यस्ति विना लिङ्गं हि कुत्रचित् ।
एकैकम्परितो लिङ्गं क्रोशं क्रोशञ्च याऽवनिः ॥ १० ॥
यत्रापि हि सादेवि भवेदानन्दकारणम् । अत्रानन्दवने देवि परमानन्दजन्मनि ॥
ानन्दरूपाणि सन्ति लिङ्गान्यनेकशः । चतुर्दशसु लोकेषु कृतिनो येवसन्ति हि

तैःस्वनाम्नेहलिङ्गानिकृत्वाऽपिकृतकृत्यता !। अत्र येनमहादेवि लिङ्गंसंस्थापितम्मम
वेत्ति तच्छ्रेयसः संख्यां शेषोऽपि न विशेषवित् ॥ १४ ॥
परिच्छेदव्यतीतस्यानन्दस्यपरकारणम् । अतस्त्विदम्परं क्षेत्रं लिङ्गैर्भूयोभिरद्रिजे
निशम्येति महादेवि! पुनः पादौ प्रणम्यच । देह्यनुज्ञांमहादेव! लिङ्गसंस्थापनाय मे
पत्युराज्ञां समासाद्ययच्छेच्छ्रेयः पतिव्रता । नतस्याःश्रेयसोहानिःसंवर्तेऽपिकदाचन
इति प्रसाद्य देवेशमाज्ञाम्प्राप्य महेशितुः । लिङ्गं संस्थापितंगौर्या महादेवसमीपतः
तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसां ब्रह्महत्यादिपातकम् । विलीयेत नसन्देहो देहबन्धोपि नो पुनः
तत्र लिङ्गे वरो दत्तो देवदेवेन यः पुनः । निशामयमुने तं तु भक्तानां हितकाम्यया
लिङ्गं यः पार्वतीशाख्यं काश्यां सम्पूजयिष्यति ।
तद्देहावसितिम्प्राप्य काशीलिङ्गं भविष्यति ॥ २१ ॥
काशिलिङ्गत्वमासाद्य मामेवानुप्रवेक्ष्यति । चैत्रशुक्लतृतीयायां पार्वतीशसमर्चनात्
इह सौभाग्यमाप्नोतिपरत्रचशुभांगतिम् । पार्वतीश्वरमाराध्य योषिद्वापुरुषोऽपिवा
न गर्भमाविशेद् भूयो भवेत्सौभाग्यभाजनम् ।
पार्वतीशस्य लिङ्गस्य नामाऽपि परिगृह्णतः ॥ २४ ॥
अपि जन्मसहस्रस्य पापं क्षयति तत्क्षणात् ।
पार्वतीशस्य माहात्म्यं यः श्रोष्यति नरोत्तमः ॥
ऐहिकामुष्मिकान्कामान्सम्प्राप्स्यति महामतिः ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्ड
उत्तरार्धे पार्वतीशवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

गङ्गेश्वरमहिमवर्णनम्

स्कन्द उवाच

चार्वतीशस्य महिमा कथितस्ते मयाऽनघ । मुने निशामयेदानींगङ्गेश्वरसमुद्भवम् ॥
यंश्रुत्वा यत्रकुत्रापि गङ्गास्नानफलंलभेत्। चक्रपुष्करिणीतीर्थंयदागङ्गासमागता
तेनदैलीपिना सार्धमस्मिन्नानन्दकानने । क्षेत्रप्रभावमतुलं ज्ञात्वा शम्भुपरिग्रहात्
स्मृत्वा लिङ्गप्रतिष्ठायाः काश्यां लोकोत्तरं फलम् ।
गङ्गया स्थापितं लिङ्गं विश्वेशात्पूर्वतः शुभम् ॥ ४ ॥
गङ्गेश्वरस्यलिङ्गस्यकाश्यां दृष्टिःसुदुर्लभा । तिथौदशहरायाञ्च योगङ्गेशंसमर्चयेत्
तस्य जन्मसहस्रस्यपापंसंक्षीयते क्षणात् । कलौगङ्गेश्वरंलिङ्गंगुप्तप्रायं भविष्यति
तस्य संदर्शनं पुंसां जायते पुण्यहेतवे । दृष्टं गङ्गेश्वरं लिङ्गंयेन काश्यां सुदुर्लभम्
प्रत्यक्षरूपिणी गङ्गा तेन दृष्टा न संशयः । कलौ सुदुर्लभागङ्गा सर्वकल्मषहारिणी
भविष्यतिन सन्देहो मित्रावरुणनन्दन !। ततोपितिष्ये संप्राप्तेकाश्यत्यन्तंसुदुर्लभा
ततोऽपि दुर्लभंकाश्यांलिङ्गं गङ्गेश्वराभिधम् । यस्यसंदर्शनंपुंसां भवेत्पापक्षयायवै
श्रुत्वा गङ्गेशमाहात्म्यं न नरो निरयी भवेत् ।
लभेच्च पुण्यसंभारं चिन्तितं चाधिगच्छति ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्ड उत्तरार्धे गङ्गेश्वरमहिमाख्यानं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

तव सर्वगसर्वमस्तिहस्तेविलसद्योगवियोग एव कस्ते ।
तव भूतिरहो विभूतिदात्री सकलापत्कलिकाऽपि भूतधात्री ॥ २२ ॥
त्वदनीक्षणतः क्षणाद्विभो! प्रलयं यान्ति जगन्ति शोच्यवत् ।
च्यवते भवतः कृपालवादितरोपीश नयस्त्वयोङ्कृतः ॥ २३ ॥
भवतः परितापहेतवो न भवन्तीन्दुदिवाकराग्नयः ।
नयनानि यतस्त्रिनेत्र तेऽमी प्रणयिन्यस्तिलसज्जला च मौलौ ॥ २४ ॥
भुजगा भुजगाः सदैव तेऽमी न विषं सङ्क्रमते च नीलकण्ठ !।
अहमस्मि च वामदेव वामा तव वामं व पुरत्र चित्तयुक्ता ॥ २५ ॥
इति संस्मृतिसम्बीजजनन्याभिहितेहिते । गिरांनिगुम्फेगिरिशोवक्तुमप्याददे गिरम्

ईश्वर उवाच

अयि काशीत्यष्टमूर्तिर्भवोभावाष्टकोऽभवत् । सत्वरंशिवयाज्ञायिध्रुवंकाश्याहृतोहरः
अथ बालसखीभूततत्तत्काननवीरुधम् ।
शिवा प्रस्तावयाञ्चक्रे विमुक्तां मुक्तिदाम्पुरीम् ॥ २८ ॥

पार्वत्युवाच

गगनतलमिलितसलिले प्रलयेऽपि भवत्त्रिशूलपरिविधृताम् ।
कृतपुण्डरीकशोभां स्मरहरकाशीम्पुरीं यावः ॥ २९ ॥
धराधरेन्द्रस्य धरातिसुन्दरा न मां तथास्यापि धिनोति धूर्जटे !।
धरागतापीह नयाध्रुवन्धरापुरी धुरीणा तव काशिका यथा ॥ ३० ॥
न यत्र काश्यांकलिकालजम्भयं न यत्र काश्यां मरणात्पुनर्भवः ।
न यत्र काश्यांकलुषोद्भवम्भयंकथं विभो! सा नयनातिथिर्भवेत् ॥ ३१ ॥
किमत्र नो सन्ति पुरः सहस्रशः पदेपदे सर्वसमृद्धिभूमयः ।
परं न काशीसदृशीदृशोः पदं क्वचिद्गता मे भवता शपे शिव !॥ ३२ ॥
त्रिविष्टपे सन्ति नकिम्पुरः शतं समस्तकौतूहलजन्मभूमयः ।
तृणीभवन्तीह च ताः पुरः पुरः पदम्पुरारे भवतोभवद्विषः ॥ ३३ ॥

न केवलंकाशिवियोगजो ज्वरः प्रबाधते त्वान्तु तथा यथाऽत्रमाम् ।
उपाय एषोऽत्रनिदाघशान्तये पुरी तु सा वा मम जन्मभूरथ ॥ ३४ ॥
मया न मेने मम जन्मभूमिका वियोगजन्मापरिदाघ ईशितः ।
अवाप्य काशीं परितः प्रशान्तिदां समस्तसन्तापविघातहेतुकाम् ॥
न मोक्षलक्ष्म्योऽत्र समक्षमीक्षितास्तनूभृता केनचिदेव कुत्रचित् ।
अवैम्यहं शर्मद सर्वशर्मदा सरूपिणी मुक्तिरसौ हि काशिका ॥ ३६ ॥
न मुक्तिरस्तीह तथा समाधिना स्थिरेन्द्रियत्वोज्झिततत्समाधिना ।
क्रतुक्रियाभिर्न न वेदविद्यया यथा हि काश्याम्परिहाय विग्रहम् ॥ ३७ ॥
न नाकलोके सुखमस्ति तादृशं कुतस्तु पातालतलेऽतिसुन्दरे ।
वार्ताऽपि मर्त्ये सुखसंश्रया क्व वा काश्यां हि यादृक् तनुमात्रधारिणि ।
क्षेत्रे त्रिशूलिन्भवतोऽविमुक्ते विमुक्तिलक्ष्म्या न कदापि मुक्ते ।
मनोऽपि यः प्राणिवरः प्रयुङ्क्ते षडङ्गयोगं स सदैव युङ्क्ते ॥ ३९ ॥
षडङ्गयोगान्नहि तादृशी नृभिः शरीरसिद्धिः सहसाऽत्र लभ्यते ।
सुखेन काशीं समवाप्य यादृशी दृशौ स्थिरीकृत्य शिव त्वयि क्षणम् ॥ ४० ॥
वरंहि तिर्यक्त्वमबुद्धिवैभवं नमानवत्वम्बहु बुद्धिभाजनम् ।
अकाशिसन्दर्शननिष्फलोदयं समन्ततः पुष्करबुद्बुदोपमम् ॥ ४१ ॥
दृशौ कृतार्थे कृतकाशिदर्शने तनुः कृतार्था शिवकाशिवासिनी ।
मनः कृतार्थं धृतकाशिसंश्रयं मुखं कृतार्थं कृतकाशिसम्मुखम् ॥ ४२ ॥
वरं हि तत्काशिरजोऽतिपावनं रजस्तमोध्वंसि शशिप्रभोज्ज्वलम् ।
कृतप्रणामैर्मणिकर्णिकाभुवे ललाटगं यद्बहुमन्यते सुरैः ॥ ४३ ॥
न देवलोको न च सत्यलोको न नागलोको मणिकर्णिकायाः ।
तुलां व्रजेद्यत्र महाप्रयाणकृच्छ्रुतिर्भवेद् ब्रह्मरसायनास्पदम् ॥ ४४ ॥
महामहोभूर्मणिकर्णिकास्थलीतमस्ततिर्यत्र समेति सङ्क्षयम् ।
घरः शतैर्जन्मभिरेधितापि या दिवाकराग्नीन्दुकरैरनिग्रहा ॥ ४५ ॥

किमु निर्वाणपदस्य भद्रपीठं मृदुलं तल्पमथोनु मोक्षलक्ष्म्याः ।
अथवा मणिकर्णिकास्थली परमानन्दसुकन्दजन्मभूमिः ॥ ४६ ॥
समतीतविमुक्तजन्तुसङ्ख्या क्रियते यत्र जनैः सुखोपविष्टैः ।
विलसद्द्युतिसूक्ष्मशर्कराभिः स्ववपुःपातमहोत्सवाभिलाषैः ॥ ४७ ॥

स्कन्द उवाच

अपर्णापरिवर्ण्येति पुरीं वाराणसीं मुने !। पुनर्विज्ञापयामासकाशीप्राप्त्यै पिनाकिनम्

श्रीपार्वत्युवाच

प्रमथाधिप ! सर्वेश !नित्यस्वाधीनवर्तन । यथानन्दवनं यायां तथा कुरु वरप्रद !
जितपीयूषमाधुर्यां काशीस्तवनसुन्दरीम् ।
अथाकर्ण्याह मुदितो गिरिशो गिरिजां गिरम् ॥ ५० ॥

श्रीदेवदेव उवाच

अयिप्रियतमेगौरि!त्वद्वागमृतसीकरैः । आप्यायितोस्मिनितरांकाशीप्राप्त्यैयतेधुना
त्वं जानासि महादेवि ममयत्तन्महद्व्रतम् । अभुक्तपूर्वमन्येन वस्तूपाश्नामिनेतरत्
पितामहस्य वचनाद्दिवोदासे महीपतौ । धर्मेण शासतिपुरीं क उपायोविधीयताम्
कथं स राजाधर्मिष्ठः प्रजापालनतत्परः । वियोज्यतेपुरःकाश्यादिवोदासोमहीपतिः
अधर्मवर्तिनो यस्माद्विघ्नः स्यान्नेतरस्य तु ।
तस्मात्कं प्रेषयामीशे यस्तं काश्या वियोजयेत् ॥ ५५ ॥
धर्मवर्त्मानुसरतां यो विघ्नंसमुपाचरेत् । तस्यैवजायते विघ्नः प्रत्युत प्रेमवर्धिनि॥
विनाच्छिद्रेण तं भूपं नोत्सादयितुमुत्सहे । मयैव ह्रियतोरक्ष्याः प्रियेधर्मधुरन्धराः
न जरा तमतिक्रामेन्न तंमृत्युर्जिघांसति । व्याधयस्तं न बाधन्ते धर्मवर्त्मभृदत्रयः
इतिसञ्चिन्तयन्देवो योगिनी चक्रमग्रतः । ददर्शातिमहाप्रौढं गाढकार्यस्य साधनम्
अथदेव्या समालोच्य व्योमकेशोमहामुने !। योगिनीवृन्दमाहूयजगौवाक्यमिदं हरः
सत्वरं यात योगिन्यो मम वाराणसीं पुरीम् ।
यत्र राजा दिवोदासो राज्यं धर्मेण शास्त्यलम् ॥ ६१ ॥

स्वधर्मविच्युतः काशीं यथातूर्णंत्यजेन्नृपः । तथोपचरतप्राज्ञायोगमायाबलान्विताः
यथापुनर्नवीकृत्य पुरीं वाराणसीमहम् । इतःप्रयामियोगिन्यस्तथाक्षिप्रंविधीयताम्
इति प्रसादमासाद्य शासनं शिरसावहन् । कृतप्रणामोनिर्यातोयोगिनीनांगणस्ततः
ययुराकाशमाविश्यमनसोप्यतिरंहसा । परस्परंभाषमाणायोगिन्यस्तामुदान्विताः
अद्य धन्यतराः स्मोऽवै देवदेवेन यत्स्वयम् । कृतप्रसादाःप्रहिताःश्रीमदानन्दकाननम्
अद्यसद्यो महालाभावभूतांनोतिदुर्लभौ । त्रिनेत्रराजसम्मानस्तथाकाशीविलोकनम्
इति मुदितमनाः सयोगिनीनां निकुरम्बस्त्वथमन्दराद्रिकुञ्जात् ।
नभसि लघुकृतप्रयाणवेगो नयनातिथ्यमलम्भयत्पुरीं ताम् ॥ ६८ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे काशीवर्णनं नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुःषष्टियोगिन्यागमनवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथ तद्योगिनीवृन्दं दूराद्दृष्टिं प्रसार्य च । स्वनेत्रदैर्घ्यनिर्माणंप्रशशंसफलान्वितम्
दिव्यप्रासादमालानां पताकाश्चलपल्लवाः । सादरं दूरमार्गस्थान्पान्थानाह्वयतीरिव
चञ्चत्प्रासादमाणिक्यैर्विजृम्भितमरीचिभिः ।
सुनीलमपि च व्योम वीक्ष्यमाणं सुनिर्मलम् ॥ ३ ॥
देवत्वं माययाच्छाद्यवेषंकार्पटिकोचितम् । विधायकाशीमविशद्योगिनीचक्रमक्रमम्
काचिच्च योगिनीभूता काचिज्ज्ञाता तपस्विनी ।
काचिद्बभूव सैरन्ध्री काचिन्मासोपवासिनी ॥ ५ ॥
मालाकारवधूःकाचित्काचिन्नापितसुन्दरी । सूतिकर्मविचारज्ञाऽपराभैषज्यकोविदा

वैश्या च काचिदभवत्क्रयविक्रयचञ्चुरा ।
व्यालग्राहिण्यभूत्काचिद्दासी धात्री च काचन ॥ ७ ॥
एका च नृत्यकुशला त्वन्यागानविशारदा । अपरा वेणुवादज्ञा परावीणाधराऽभवत्
मृदङ्गवादनज्ञाऽन्या काचित्तालकलावती ।
काचित्कार्मणतत्त्वज्ञाकाचिन्मौक्तिकगुम्फिका ॥ ६ ॥
गन्धभागविधिज्ञान्याकाचिदक्षकलालया । आलापोल्लासकुशलाकाचिच्चत्वरचारिणी
वंशाधिरोहणेदक्षा रज्जुमार्गेण चेतरा । काचिद्वातुलचेष्टाऽभूत्पथि चीवरवेष्टना ॥
अपत्यदाऽनपत्यानांपरातत्रपुरेऽवसत् । काचित्कराङ्घ्रिरेखाणांलक्षणानिचिकेतिच
चित्रलेखननैपुण्यात्काचिज्जनमनोहरा । वशीकरणमन्त्रज्ञा काचित्तत्र चचार ह ॥
गुटिकासिद्धिदा काचित्काचिदञ्जनसिद्धिदा ।
धातुवादविदग्धाऽन्या पादुका सिद्धिदा परा ॥ १४ ॥
अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं वाक्स्तम्भं चाप्यशिक्षयत् ।
खेचरीत्वं ददौ काचिददृश्यत्वं परा ददौ ॥ १५ ॥
काचिदाकर्षणीं सिद्धिंददावुच्चाटनंपरा । काचिन्निजाङ्गसौन्दर्ययुवचित्तविमोहिनी
चिन्तितार्थ प्रदाकाचित्काचिज्ज्योतिः कलावती ।
इत्यादिवेशषभाषाभिरनुकृत्य समन्ततः ॥ १७ ॥
प्रत्यङ्गणं प्रतिगृहं प्राविशद्योगिनीगणः । इत्थमब्दंचरन्त्यस्तायोगिन्योऽहर्निशंपुरि
न च्छिद्रं लेभिरे काऽपि नृपविघ्नचिकीर्षवः ।
ततः समेत्य ताः सर्वा योगिन्योबन्ध्यवाञ्छिताः ।
तस्थुः सम्मन्त्र्य तत्रैव न गता मन्दरं पुनः ॥ १६ ॥
प्रभुकार्यमनिष्पाद्यसदःसम्भावनैधितः । कःपुरःशक्नुयात्स्थातुंस्वामिनोक्षतविग्रहः
अन्यच्चचिन्तितंताभिर्योगिनीभिरिदंमुने! । प्रभुं विनापिजीवामोनतुकाशींविनापुनः
प्रभू रुष्टोऽपि तद्भृत्ये जीविकामात्रहारकः । काशीहरेत्कराद्भ्रष्टापुरुषार्थचतुष्टयम्
नाद्यापि काशीं सन्त्यज्य तदारभ्य महामुने! ।

योगिन्योऽन्यत्र तिष्ठन्ति चरन्त्योऽपि जगत्त्रयम् ॥ २३ ॥
प्राप्यापिश्रीमतींकाशींयस्तितिक्षतिदुर्मतिः।सएवप्रत्युतत्यक्तोधर्मकामार्थमुक्तिभिः
कःकाशीं प्राप्यदुर्बुद्धिरपरत्रयियासति। मोक्षनिक्षेपकलशीं तुच्छश्रीकृतमानसः
विमुखोपीश्वरोऽस्माकं काशीसेवनपुण्यतः।
सम्मुखो भविता पुण्यं कृतकृत्याःस्म तद्वयम् ॥ २६ ॥
दिनैः कतिपयैरेव सर्वज्ञोऽपि समेष्यति। विनाकाशींन रमते यतोऽन्यत्रत्रिलोचनः
शम्भोःशक्तिरियंकाशीकाचित्सर्वैरगोचरा। शम्भुरेवहिजानीयादेतस्याःपरमंसुखम्
इतिनिश्चित्य मनसि शम्भोरानन्दकानने। अतिष्ठद्योगिनीवृन्दंकयाचिन्माययावृतम्

व्यास उवाच

इत्थंसमाकर्ण्यमुनिः पुनःपप्रच्छषण्मुखम्। कानिकानिचनामानितासां तानिवदेश्वर
भजनाद्योगिनीनां च काश्यां किं जायते फलम्।
कस्मिन्पर्वणि ताः पूज्याः कथं पूज्याश्च तद्वद ॥ ३१ ॥
श्रुत्वेतिप्रश्नमौमेयो योगिनीसंश्रयंततः। प्रत्युवाचमुनेवच्मिश्रृणोत्ववहितोभवान्

स्कन्द उवाच

नामधेयानि वक्ष्यामि योगिनीनां घटोद्भव !।
आकर्ण्य यानि पापानि क्षयन्ति भविनां क्षणात् ॥ ३३ ॥
गजानना सिंहमुखी गृध्रास्याकाकतुण्डिका। उष्ट्रग्रीवा हयग्रीवावाराहीशरभानना
उलूकिका शिवारावामयूरी विकटानना। अष्टवक्त्राकोटराक्षी कुब्जाविकटलोचना
शुष्कोदरी ललज्जिह्वाश्वदंष्ट्रावानरानना। ऋक्षाक्षीकेकराक्षीचबृहत्तुण्डासुराप्रिया
कपालहस्तारक्ताक्षी शुकीश्येनी कपोतिका।
पाशहस्ता दण्डहस्ता प्रचण्डा चण्डविक्रमा ॥ ३७ ॥
शिशुघ्नी पापहन्त्री च कालीरुधिरपायिनी। वसाधयागर्भभक्षाशवहस्तान्त्रमालिनी
स्थूलकेशी बृहत्कुक्षिः सर्पास्या प्रेतवाहना। दन्दशूककराक्रौञ्चीमृगशीर्षावृषानना
व्यात्तास्याधूमनिःश्वासाव्योमैकचरणोर्ध्वदृक्।

तापनी शोषणीदृष्टिः कोटरी स्थूलनासिका ॥ ४० ॥
विद्युत्प्रभा बलाकास्यामार्जारीकटपूतना । अट्टाट्टहासा कामाक्षीमृगाक्षीमृगलोचना
नामानीमानि योमर्त्यश्चतुःषष्टिं दिनेदिने । जपेत्त्रिसन्ध्यं तस्येह दुष्टबाधाप्रशाम्यति
नडाकिन्यो न शाकिन्यो न कूष्माण्डा न राक्षसाः ।
तस्य पीडां प्रकुर्वन्ति नामानीमानि यः पठेत् ॥ ४३ ॥
शिशूनां शान्तिकारीणिगर्भशान्तिकराणिच । रणेराजकुले वापिविवादेजयदान्यपि
लभेदभाप्सितां सिद्धिं योगिनीपीठसेवकः ।
मन्त्रान्तराण्यपि जपंस्तत्पीठे सिद्धिभाग्भवेत् ॥ ४५ ॥
बलिपूजोपहारैश्च धूपदीपसमर्पणैः । क्षिप्रं प्रसन्ना योगिन्यः प्रयच्छेयुर्मनोरथान्
शरत्कलेमह।पूजांतत्र कृत्वाविधानतः । हवींषिहुत्वामन्त्रज्ञो महतींसिद्धिमाप्नुयात्
आरभ्याश्वयुजःशुक्लांतिथिंप्रतिपदं शुभाम् । पूजयेन्नवमीं यावन्नरश्चिन्तितमाप्नुयात्
कृष्णपक्षस्य भूतायामुपवासी नरोत्तमः । तत्रजागरणं कृत्वांमहतींसिद्धिमाप्नुयात्
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नामभिर्भक्तिमान्नरः । प्रत्येकं हवनं कृत्वा शतमष्टोत्तरं निशि
ससर्पिषा गुग्गुलुना लघुकोलिप्रमाणतः ।
यां यां सिद्धिमभीप्सेत तां तां प्राप्नोति मानवः ॥ ५१ ॥
चैत्रकृष्णाप्रतिपदि तत्र यात्रा प्रयत्नतः । क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थं कर्तव्या पुण्यकृज्जनैः
यात्रां च सांवत्सरिकीं यो न कुर्यादवज्ञया ।
तस्य विघ्नं प्रयच्छन्ति योगिन्यः काशिवासिनः ॥ ५३ ॥
अग्रे कृत्वा स्थिताः सर्वास्ताः काश्यां मणिकर्णिकाम् ।
तन्नमस्कारमात्रेण नरोविघ्नैर्न बाध्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
पूर्वार्धे चतुःषष्टियोगिन्यागमनंनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

लोलार्कवर्णनम्

स्कन्द उवाच

गतेऽथ योगिनीवृन्दे देवदेवोवटोद्भव !। काशीप्रवृत्तिं जिज्ञासुः प्राहिणोदंशुमालिनम्

देवदेव उवाच

सप्ताश्वत्वरितोयाहिपुरींवाराणसींशुभाम् । यत्रास्तिसदिवोदासोधर्ममूर्तिर्महीपतिः
तस्यधर्मविरोधेनयथा तत्क्षेत्रमुद्वसेत् । तथा कुरुष्व भोःक्षिप्रं मावमंस्थाश्च तंनृपम्
धर्ममार्गप्रवृत्तस्य क्रियते याऽवमानना । साभवेदात्मनो नूनं महदेनश्च जायते
तव बुद्धिविकासेन च्यवतेचेत्सधर्मतः । तदासानगरी भानोत्वयोद्वास्याऽसहैःकरैः
कामक्रोधौलोभमोहौ मत्सराहङ्कृतीअपि । तेतत्रनभवेतांयत्तत्कालोऽपिनतं जयेत्
यावद्धर्मेस्थिरा बुद्धिर्यावद्धर्मेस्थिरं मनः । तावद्विघ्नोदयः क्वास्ति विपद्यपि रवे नृषु
सर्वेषामिह जन्तूनां त्वं वेत्सि ब्रध्नचेष्टितम् । अत एव जगच्चक्षुर्व्रजत्वंकार्यसिद्धये
रविरादायदेवाज्ञांमूर्तिमन्यांप्रकल्प्य च । नभोध्वगामहोरात्रं काशीमभिमुखोऽभवत्
मनसातीवलोलोऽभूत्काशीदर्शनलालसः । सहस्रचरणोऽप्यैच्छत्तदा खेनैकपादताम्
हंसत्वंतस्यसूर्यस्य तदासफलतामगात् । सदानभोध्वनीनस्यकाशींप्रति यियासतः
अथ काशीं समासाद्य रविरन्तर्बहिश्चरन् । मनागपि न तद्भूपे धर्मध्वस्तिमवैक्षत
विभावसुर्वसन्काश्यां नानारूपेण वत्सरम् । क्वचिन्नावसरं प्राप तत्र राज्ञिसुधर्मिणि
कदाचिदतिथिर्भूतोदुर्लभं प्रार्थयन् रविः । न तस्य राज्ञो विषये दुर्लभं किञ्चिदैक्षत
कदाचिद्याचको जातो बहुदोऽपि कदाऽप्यभूत् ।
कदाचिद्दीनतां प्राप्तः कदाचिद्गणकोऽप्यभूत् ॥ १५ ॥
वेदबाह्यांक्रियाश्चापिकदाचित्प्रत्यपादयत् । कदाचित्स्थापयामासदृष्टप्रत्ययमैहिकम्
कदाचिज्जटिलो जातः कदाचिच्च दिगम्बरः ।

स कदाचिज्जाङ्गुलिको विषविद्याविशारदः ॥ १७ ॥
सर्वपाखण्डधर्मज्ञः कदाचिद्ब्रह्मवाद्यभूत् ।
ऐन्द्रजालिक आसीच्च कदाचिद् भ्रामयञ्जनान् ॥ १८ ॥
नानाव्रतोपदेशैश्च कदाचित्स पतिव्रताः । क्षोभयामास बहुशः स दृष्टान्तकथानकैः
कापालिकव्रतधरः कदाचिच्चाभवद्द्विजः । कदाचिदपि विज्ञानी धातुवादी कदाचन
क्वचिद्विप्रः क्वचिद्राजपुत्रो वैश्योऽन्त्यजः क्वचित् ।
ब्रह्मचारी क्वचिदभूद् गृहीवनचरः क्वचित् ॥ २१ ॥
यतिः कदाचिदितिस रूपैर्भ्रामयञ्जनान् । सर्वविद्यासुकुशलः सर्वज्ञश्चाभवत्क्वचित्
इति नानाविधैरूपैश्चरन्काश्यां ग्रहेश्वरः । न कदापि जने क्वापि च्छिद्रं प्राप कदाचन
ततो निनिन्द चात्मानं चिन्तार्तः कश्यपात्मजः ।
धिक्परप्रेष्यतां यस्यां यशो लभ्येत न क्वचित् ॥ २४ ॥

मार्तण्ड उवाच

मन्दरं यदि याम्यद्य सद्यस्तत्क्रुद्ध्यतीश्वरः ।
अनिष्पादितकार्यार्थे मयि सामान्यभृत्यवत् ॥ २५ ॥
कोपमप्युररीकृत्य यदि यायां कथञ्चन । कथंतिष्ठे पुरस्तस्य तर्हि वै मूढभृत्यवत्
अथोङ्कृत्यावहेलंवायामि चेच्चकथञ्चन । क्रोधान्निरीक्षेत्त्र्यक्षो मांविषंपेयन्तदामया
हरकोपानलेनूनं यदियातःपतङ्गताम् । पितामहोऽपि मांत्रातुंतदा शक्ष्यतिनस्फुटम्
स्थास्याम्यत्रैव तन्नित्यं न त्यक्ष्यामि कदाचन ।
क्षेत्रसंन्यासविधिना वाराणस्यां कृताश्रमः ॥ २६ ॥
पुरः पुरारेः कार्यार्थमनिवेद्येह तिष्ठतः । यत्पापंभाविमेतस्य काशीपापस्य निष्कृतिः
अन्यान्यपि च पापानि महान्त्यल्पानि यानि च ।
क्षयन्ति तानि सर्वाणि काशीं प्रविशतां सताम् ॥ ३१ ॥
बुद्धिपूर्वंमयाचैतन्नपापं समुपार्जितम् । पुरारिणैव हि पुराऽऽशासिधर्मो हिरक्ष्यताम्
धर्मो हि रक्षितोयेन देहे सत्वरगत्वरे । त्रैलोक्यं रक्षितं तेनकिं कामार्थैः सुरक्षितैः

रक्षणीयोयदिभवेत्कामः कामारिणाकथम् । क्षणादनङ्गतांनीतो बहूनां सुखकार्यपि
अर्थश्चेत्सर्वथारक्ष्य इति कैश्चिदुदाहृतम् । तत्कथं न हरिश्चन्द्रोऽरक्षत्कुशिकनन्दने
धर्मस्तु रक्षितः सर्वैरपि देहव्ययेन च । शिबिप्रभृतिभूपालैर्दधीचिप्रमुखैर्द्विजैः
अयमेव हि वै धर्मः काशीसेवनसम्भवः । रुषितादपि रुद्रान्मां रक्षिष्यति न संशयः
अवाप्यकाशींदुष्प्रापांको जहातिसचेतनः । रत्नंकरस्थमुत्सृज्यकः काचंसञ्जिघृक्षति
वाराणसीं समुत्सृज्य यस्त्वन्यत्र यियासति ।
हत्वा निधानं पादेन सोऽर्थमिच्छति भिक्षया ॥ ३९ ॥
पुत्रमित्रकलत्राणिक्षेत्राणिच धनानिच । प्रतिजन्मेह लभ्यन्ते काश्येका नैव लभ्यते
येनलब्धापुरी काशीत्रैलोक्योद्धरणक्षमा । त्रैलोक्यैश्वर्यदुष्प्रापं तेनलब्धं महासुखम्
कुपितोऽपि हि मे रुद्रस्तेजोहानिं विधास्यति ।
काश्यां च लप्स्ये तत्तेजो यद्वै स्वात्मावबोधजम् ॥ ४२ ॥
इतराणीह तेजांसिभासन्ते तावदेवहि । खद्योताभानि यावन्नोजृम्भते काशिजंमहः
इति काशीप्रभावज्ञो जगच्चक्षुस्तमोनुदः ।
कृत्वाद्वादशधात्मानं कशीपुर्यां व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥
लोलार्क उत्तरार्कश्च साम्बादित्यस्तथैवच । चतुर्थोद्रुपदादित्योमयूखादित्यएव च
खखोल्कश्चारुणादित्यो वृद्धकेशवसञ्ज्ञकौ ।
दशमो विमलादित्यो गङ्गादित्यस्तथैव च ॥ ४६ ॥
द्वादशश्चयमादित्यःकाशिपुर्यांघटोद्भव । तमोऽधिकेभ्योदुष्टेभ्यः क्षेत्रंरक्षन्त्यमीसदा
तस्याऽर्कस्य मनो लोलं यदासीत्काशिदर्शने ।
अतो लोलार्क इत्याख्या काश्यां जाता विवस्वतः ॥ ४८ ॥
लोलार्कस्त्वसि सम्भेदे दक्षिणस्यां दिशि स्थितः ।
योगक्षेमं सदा कुर्यात्काशीवासिजनस्य च ॥ ४९ ॥
मार्गशीर्षस्यसप्तम्यांषष्ठ्याम्वा रविवासरे । विधायवार्षिकींयात्रांनरःपापैःप्रमुच्यते
कृतानि यानि पापानि नरैः संवत्सरावधि ।

नश्यन्ति क्षणतस्तानि षष्ठ्यर्के लोलदर्शनात् ॥ ५१ ॥
नरः स्नात्वाऽसिसम्भेदे सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
श्राद्धं विधाय विधिना पित्रानृण्यमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥
लोलार्कसङ्गमे स्नात्वादानंहोमंसुरार्चनम् । यत्किञ्चित्क्रियतेकर्मतदानन्त्यायकल्पते
सूर्योपरागे लोलार्के स्नानदानादिकाःक्रियाः
कुरुक्षेत्राद्दशगुणा भवन्तीह न संशयः ॥ ५४ ॥
लोलार्के रथसप्तम्यांस्नात्वागङ्गासिसङ्गमे । सप्तजन्मकृतैःपापैर्मुक्तोभवतितत्क्षणात्
प्रत्यर्कवारं लोलार्कं यः पश्यति शुचिव्रतः ।
न तस्य दुःखं लोकेऽस्मिन्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ५६ ॥
न तस्य दुःखं नोपामा नदद्रुर्न विचर्चिका । लोलाकमर्के यःपश्येत्तत्पादोदकसेवकः
वाराणस्यामुषित्वाऽपि यो लोलार्कं न सेवते ।
सेवन्ते तं नरं नूनं क्लेशाः क्षुद्व्याधिसम्भवाः ॥ ५८ ॥
सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः ।
ततोऽङ्गान्यन्यतीर्थानि तज्जलप्लावितानि हि ॥ ५९ ॥
तीर्थान्तराणि सर्वाणि भूमीवलयगान्यपि ।
असिसम्भेदतीर्थस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६० ॥
सर्वेषामेव तीर्थानां स्नानाद्यल्लभ्यते फलम् । तत्फलं सम्यगाप्येतनरैर्गङ्गासिसङ्गमे
नार्थवादोऽयमुदितःस्तुतिवादो न वै मुने । सत्यंयथार्थवादोऽयंश्रद्धेयःसद्भिरादरात्
यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्रस्वर्गतरङ्गिणी । मिथ्यातत्रानुमन्यन्तेतार्किकाश्चानुसूयकाः
उदाहरन्ति येमूढाःकुतर्कबलदर्पिताः । काश्यांसर्वेऽर्थवादोऽयन्तेविट्कीटायुगेयुगे
कस्यचित्काशितीर्थस्य महिम्नो महतस्तुलाम्
नाधिरोहेन्मुने! नूनमपि त्रैलोक्यमण्डपः ॥ ६५ ॥
नास्तिका वेदबाह्याश्च शिश्नोदरपरायणाः ।
अन्त्यजाताश्च ये तेषां पुरः काशी न वर्ण्यताम् ॥ ६६ ॥

लोलार्ककरनिष्टप्ताअसिधारविखण्डिताः । काश्यांदक्षिणदिग्भागेनविशेयुर्महामलाः
महिमानमिमं श्रुत्वालोलार्कस्य नरोत्तमः । न दुःखीजायतेक्वापिसंसारेदुःखसागरे

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रयां संहितायां चतुर्थ काशीखण्डे
पूर्वार्धे लोलार्कवर्णनं नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्तरार्कवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथोत्तरस्यामाशायां कुण्डमर्काख्यमुत्तमम् ।
तत्र नाम्नोत्तरार्केण रश्मिमाली व्यवस्थितः ॥ १ ॥

तापयन् दुःखसङ्घातंसाधूनाप्याययन् रविः । उत्तरार्को महातेजाःकाशींरक्षतिसर्वदा
तत्रेतिहासो यो वृत्तस्तं निशामय सुव्रत !। विप्रःप्रियव्रतोनाम कश्चिदात्रेयवंशजः
आसीत्काश्यांशुभाचारःसदातिथिजनप्रियः । भार्याशुभव्रतातस्यबभूवातिमनोहरा
भर्तृशुश्रूषणरता गृहकर्मसुपेशला । तस्यां स जनयामास कन्यामेकां सुलक्षणाम्
मूलर्क्षप्रथमे पादे तथा केन्द्रे बृहस्पतौ । ववृधे सा गृहे पित्रोः शुक्लेपक्षेयथाशशी
सुरूपा विनयाचारा पित्रोश्च प्रियकारिणी । अतीवनिपुणाजातागृहोपस्करमार्जने
यथायथासमैधिष्टसाकन्यापितृमन्दिरे । तथा तथा पितुस्तस्याश्चिन्तासंववृधेतराम्
कस्मैदेया वरा कन्यासुरम्येयंसुलक्षणा । अस्या अनुगुणो लभ्यः क्व मया वरउत्तमः
कुलेन वयसा चापिशीलेनापि श्रुतेन च । रूपेणार्थेन संयुक्तः कस्मै दत्तासुखंलभेत्

इति चिन्तयतस्तस्य ज्वरोऽभूदतिदारुणः ।
यश्चिन्ताख्यो ज्वरः पुंसामौषधैर्नापि शाम्यति ॥ ११ ॥
तन्मूलर्क्षविपाकेन चिन्ताख्येन ज्वरेण च ।

स विप्रः पञ्चतां प्राप्तस्त्यक्त्वा सर्वं गृहादिकम् ॥ १२ ॥
पितर्युपरते तस्याः कन्यायाः सा जनन्यपि ।
शुभव्रता परित्यज्य तां कन्यां पतिमन्वगात् ॥ १३ ॥
धर्मोऽयं सहचारिण्या जीवताजीवतापि वा । पत्यासहैवस्थातव्यंपतिव्रतयुजासदा
नापत्यं पाति नो माता नपितानैवबान्धवाः । पत्युश्चरणशुश्रूषापापायाद्वैकेवलंस्त्रियम्
सुलक्षणापिदुःखार्तापित्रोःपञ्चत्वमाप्तयोः । और्ध्वदैहिकमापाद्यदशाहंविनिवर्त्यच
चिन्तामवापमहतीमनाथा दैन्यमागता । कथमेकाकिनी पित्रामात्राहीनाभवाम्बुधेः
दुस्तरं पारमाप्स्यामि स्त्रीत्वं सर्वाभिभावि यत् ।
न कस्मैचिद्वरायाऽहं पितृभ्यां प्रतिपादिता ॥ १८ ॥
तददत्ता कथं स्वैरमहमन्यं वरंवृणे । वृतोऽपि न कुलीनश्चेद् गुणवान्न च शीलवान्
स्वाधीनोऽपिन तत्तेन वृतेनाऽपि हि किम्भवेत् ।
इति सञ्चिन्तयन्ती सा रूपौदार्यगुणान्विता ॥ २० ॥
युवभिर्वहुभिर्नित्यं प्रार्थिताऽपि मुहुर्मुहुः । नकस्यापि ददौवालाप्रवेशं निजमानसे
पित्रोरुपरतिं दृष्ट्वा वात्सल्यं च तथाविधम् । निनिन्दबहुधात्मानंसंसारंचनिनिन्दह
याभ्यामुत्पादिता चाऽहं याभ्याञ्च परिपालिता ।
पितरौ कुत्र तौ यातौ देहिनो धिगनित्यताम् ॥ २३ ॥
अहोदेहोऽप्यहोङ्गत्वंयथापित्रोःपुरोमम । इतिनिश्चित्यसाबालाविजितेन्द्रियमानसा
ब्रह्मचर्यं दृढं कृत्वा तपउग्रं चचार ह । उत्तरार्कस्य देवस्य समीपे स्थिरमानसा
तस्यां तपस्यमानायामेकाछागीलघीयसी । तत्रप्रत्यहमागत्यतिष्ठेत्तत्पुरतोऽचला
तृणपर्णादिकं किञ्चित्सायमभ्यवहृत्य सा ।
तत्कुण्डपीतपानीया स्वस्वामिसदनंव्रजेत् ॥ २७ ॥
ततइत्थंव्यतीतासुपञ्चषासुसमासुच । लीलयाविचरन्देवस्तत्र देव्यासहागतः
सन्निधावुत्तरार्कस्य तपस्यन्तीं सुलक्षणाम् ।
स्थाणुवन्निश्चलां स्थाणुरद्राक्षीत्तपसा कृशाम् ॥ २९ ॥

ततो गिरिजयाशम्भुर्विज्ञप्तःकरुणात्मना । वरेणानुगृहाणेमांबन्धुहीनां सुमध्यमाम्
शर्वाणीगिरमाकर्ण्यततःशर्वःकृपानिधिः । समाधिमीलिताक्षींतामुवाचवरदोहरः
सुलक्षणे प्रसन्नोऽस्मिवरंवरयसुव्रते । चिरंखिन्नासि तपसा कस्तेऽस्तीह मनोरथः
सापिशम्भोर्गिरंश्रुत्वामुखपीयूषवर्षिणीम् । महासन्तापशमनींलोचनेउदमीलयत्
यक्षं प्रत्यक्षमावीक्ष्य वरदानोन्मुखंपुरः । देवीञ्च वामभागस्थां प्रणनाम कृताञ्जलिः
किं वृणे यावदित्थं सा चिन्तयेच्चारुमध्यमा । तावत्तया निरैक्षिष्टवराकीचर्करी पुरः

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्को न जीवति मानवः ।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥ ३६ ॥

अनया मत्तपोवृत्तिसाक्षिण्या बहुनेहसम् । असेव्यहन्तदेतस्यै वरयामि जगत्पतिम्
परामृश्यमनस्येतत्प्राह त्र्यक्षं सुलक्षणा । कृपानिधे महादेव! यदि देयो वरो मम
अजशावीवराक्येषातर्हिप्रागनुगृह्यताम् । वक्तुं पशुत्वान्नोवेत्तिकिञ्चिन्मद्भक्तिपेशला
इतिवाचं निशम्येशः परोपकृतिशालिनीम् । सुलक्षणाया नितरां तुतोष प्रणतार्तिहा
देवदेवस्ततः प्राह देवि! पश्य गिरीन्द्रजे !। साधूनामीदृशी बुद्धिः परोपकरणोर्जिता
तेधन्याः सर्वलोकेषु सर्वधर्माश्रयाश्च ते । यतन्ते सर्वभावेन परोपकरणाय ये
संचयाः सर्ववस्तूनां चिरंतिष्ठन्ति नोकचित् । सुचिरं तिष्ठते चैकं परोपकरणंप्रिये
धन्यासुलक्षणा चेयायोग्याऽनुग्रहकर्मणि । ब्रूहिदेविवरो देयःकोऽस्यैछाग्यैचकःप्रिये

श्रीदेव्युवाच

सर्वसृष्टिकृतांकर्तः सर्वज्ञप्रणतार्तिहन् । सुलक्षणाशुभाचारा सखी मेऽस्तु शुभोद्यमा
यथा जयाचविजयायथा चैवजयन्तिका । शुभानन्दा सुनन्दाच कौमुदीच यथोर्मिला
यथा चम्पकमाला च यथा मलयवासिनी । कर्पूरलतिका यद्वद्गन्धधारा यथा शुभा
शोकाच विशोका च यथामलयगन्धिनी । यथाचन्दननिःश्वासायथा मृगमदोत्तमा
था च कोकिलालापायथा मधुरभाषिणी । गद्यपद्यनिधिर्यद्वदनुक्तज्ञा यथा च सा
गश्चलेङ्गितज्ञा च यथा कृतमनोरथा । गानचित्तहरा यद्वत्तथास्त्वेषा सुलक्षणा
तिप्रिया भवित्री मे यद्वबालब्रह्मचारिणी । अनेनैव शरीरेण दिव्यावयवभूषणा

दिव्याम्बरा दिव्यगन्धा दिव्यज्ञानसमन्विता ।
स मया मां सदैवास्तां चञ्चच्चामरधारिणी ॥ ५२ ॥
एषाऽपि काशिराजस्य कुमार्यस्त्विह वर्करी ।
अत्रैव भोगान्सम्प्राप्य मुक्तिं प्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ ५३ ॥
अनयात्वर्ककुण्डेऽस्मिन्पुष्ये मासि रवेर्दिने । स्नातंत्वनुदितेसूर्येशीतादक्षुब्धचित्तया
राजपुत्री ततः पुण्यादस्त्वेषा शुभलोचना । वरदानप्रभावेण तव विश्वेश्वर प्रभो!
वर्करीकुण्डमित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम् ।
एतस्याः प्रतिमा पूज्या भविष्यत्यत्र मानवैः ॥ ५६ ॥
उत्तरार्कस्य देवस्यपुष्ये मासि रवेर्दिने । कार्यासांवत्सरीयात्रानतैःकाशीफलेप्सुभिः
मृडान्याभिहितं सर्वं कृत्वैतद्विश्वगो विभुः ।
विश्वनाथो विवेशाऽथ प्रासादं स्वमतर्कितः ॥ ५८ ॥

स्कन्द उवाच

लोलार्कस्यचमाहात्म्यमुत्तरार्कस्यचद्विज !। कथितंतेमहाभागसाम्बादित्यंनिशामय
श्रुत्वैतत्पुण्यमाख्यानं शुभं लोलोत्तरार्कयोः ।
व्याधिभिर्नाभिभूयेत न दारिद्र्येण बाध्यते ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे उत्तरार्कवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

साम्बादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

शृणुष्व मैत्रावरुणे! द्वारवत्यां यदूद्वहः । दानवानां वधार्थाय भुवो भारापनुत्तये
आविरासीत्स्वयंकृष्णः कृष्णवर्त्मप्रतापवान्। वासुदेवो जगद्धामदेवक्यांवसुदेवतः
साशीतिलक्षंतस्यासन्कुमाराअर्कवर्चसः। स्वर्गेऽपितादृशाबालाःसुशीलानहिकुम्भज
अतीव रूपसम्पन्ना अतीव सुमहाबलाः । अतीव शस्त्रशास्त्रज्ञा अतीव शुभलक्षणाः
तां द्रष्टुम्मानसः पुत्रो ब्रह्मणस्तपसां निधिः।
कृतवल्कलकौपीनो धृतकृष्णाजिनाम्बरः॥ ५॥
गृहीतब्रह्मदण्डश्च त्रिवृन्मौञ्जी सुमेखलः । उरस्थलस्थतुलसीमालयासमलङ्कृतः
गोपीचन्दननिर्यासलसदङ्गविलेपनः । तपसा कृशसर्वाङ्गो मूर्ता ज्वलनवज्ज्वलन्
आजगामाम्बरचरो नारदोद्वारकां पुरीम्। विश्वकर्मविनिर्माणांजितस्वर्गपुरीश्रियम्
तं दृष्ट्वा नारदं सर्वे विनम्रतरकन्धराः । प्रवद्धमूर्धाञ्जलयःप्रणेमुर्वृष्णिनन्दनाः
साम्बः स्वरूपसौन्दर्यगर्वसर्वस्वमोहितः। न ननाम मुनिं तत्र हसंस्तद्रूपसम्पदम्
साम्बस्यतमभिप्रायं विज्ञायसमहामुनिः। विवेश सुमहारम्यं नारदः कृष्णमन्दिरम्
कृष्णोऽथ दृष्ट्वाऽऽगच्छन्तम्प्रत्युद्गम्य च नारदम्।
मधुपर्केण सम्पूज्य स्वासने चोपवेशयत्॥ १२॥
कृत्वा कथा विचित्रार्थास्तत एकान्तवर्तिनः।
कृष्णस्य कर्णेऽकथयन्नारदः साम्बचेष्टितम्॥ १३॥
अवश्यं किञ्चिदत्राऽस्ति यशोदानन्दवर्द्धन!।
प्रायशस्तत्र घटतेऽसम्भाव्यन्नाथवा स्त्रियाम्॥ १४॥
यूनां त्रिभुवनस्थानां साम्बोऽतीव सुरूपवान्।

स्वभावचञ्चलाक्षीणां चेतोवृत्तिः सुचञ्चला ॥ १५ ॥
अपेक्षन्ते न मुग्धाक्ष्यः कुलंशीलं श्रुतं धनम् । रूपमेव समीक्षन्तेविषमेषु विमोहिताः
अथवा विदितन्नो ते बल्लवीनां विचेष्टितम् ।
विनाऽष्टौ नायिकाः कृष्ण कामयन्तेऽबला ह्यमुम् ॥ १७ ॥
वामभ्रुवां स्वभावाच्च नारदस्य च वाक्यतः ।
विज्ञाताऽखिलवृत्तान्तस्तथ्यं कृष्णोऽप्यमन्यत ॥ १८ ॥
तावद्धैर्यं चलाक्षीणां तावच्चेतोविवेकिता ।
यावन्नार्थी विविक्तस्थो विविक्तेऽर्थिनि नाऽन्यथा ॥
इत्थं विवेचयंश्चित्ते कृष्णः क्रोधनदीरयम् ।
विवेकसेतुनाऽऽरुतस्य नारदं प्राहिणोत्सुधीः ॥ २० ॥
साम्बस्य वैकृतं किञ्चित्क्वचित्कृष्णो न वैक्षत ।
गते देव मुनौ तस्मिन्वीक्षमाणोऽप्यहर्निशम् ॥ २१ ॥
कियत्यपिगतेकालेपुनरप्याययौमुनिः । मध्येलीलावतीनाञ्च ज्ञात्वाकृष्णमवस्थितम्
बहिः क्रीडन्तमाहूय साम्बमित्याहनारदः । याहिकृष्णान्तिकं तूर्णं कथयागमनं मम
साम्बोपियामिनोयामिक्षणमित्थमचिन्तयत् । कथंरहःस्थंपितरंयामिस्त्रैणसखंप्रति
नयामिच कथंवाक्यादस्याहं ब्रह्मचारिणः । ज्वलदङ्गारसङ्काशस्फुरत्सर्वाङ्गतेजसः
प्रणमत्सु कुमारेषु व्रीडितोयस्मयैकदा । इदानीमपि नोयायामस्य वाक्यान्महामुने
अत्याहितं तदस्तीह तदा गोद्व्यदर्शनात् ।
पितुः कोपोऽपि सुश्लाघ्यो मयि नो ब्राह्मणस्य तु ॥ २७ ॥
ब्रह्मकोपाग्निनिर्दग्धाःप्ररोहन्तिनजातुचित् । अपराग्निविनिर्दग्धारोहन्तेदावदग्धवत्
इति ध्यात्वा क्षणं साम्बोऽविशदन्तःपुरम्पितुः ।
मध्ये स्त्रैणसभं कृष्णं यावज्जाम्बवतीसुतः ॥ २६ ॥
दूरात्प्रणम्यविज्ञप्तिं स चकार सशङ्कितः । तावत्तमन्वगच्छच्च नारदः कार्यसिद्धये
ससम्भ्रमोथकृष्णोऽपिदृष्ट्वासाम्बञ्च नारदम् । समुत्तस्थौपरिदधत्पीतकौशेयमम्बरम्

उत्थिते देवकीसूनौ ताः सर्वा अपि गोपिकाः ।
विलज्जिताः समुत्तस्थुर्गृह्णन्त्यः स्वं स्वमम्बरम् ॥ ३२ ॥
महार्हशयनीये तं हस्ते धृत्वा महामुनिम् । समुपावेशयत्कृष्णःसाम्बश्चक्रीडितुंययौ
तासां स्खलितमालोक्य तिष्ठन्तीनाम्पुरोमुनिः ।
कृष्णलीलाद्रवीभूतवराङ्गानां जगौ हरिम् ॥ ३४ ॥
पश्य पश्यमहाबुद्धे! दृष्ट्वा जाम्बवतीसुतम् । इमाः स्खलितमापन्नास्तद्रूपक्षुब्धचेतसः
कृष्णोपिसाम्बमाहूयसहसैवाशपत्सुतम् । सर्वाजाम्ववतीतुल्याःपश्यन्तमपिदुर्विधेः
यस्मात्त्वद्रूपमालोक्य गोपाल्यः स्खलिता इमाः ।
तस्मात्कुष्ठी भव क्षिप्रमवाण्डागमनेन च ॥ ३७ ॥
वेपमानो महाव्याधिभयात्साम्बोऽपि दारुणात् ।
कृष्णं प्रसादयामास बहुशः पापशान्तये ॥ ३८ ॥
कृष्णोऽप्यनेनसंजानन्साम्बं स्वसुतमौरसम् ।
अब्रवीत्कुष्ठमोक्षाय व्रज वैश्वेश्वरीम्पुरीम् ॥ ३९ ॥
तत्र ब्रध्नं समाराध्य प्रकृतिं स्वामवाप्स्यसि ।
महैनसांक्षयोऽन्यत्र नास्ति वाराणसीं विना ॥ ४० ॥
यत्र विश्वेश्वरः साक्षाद्यत्रस्वर्गापगाचसा । येषां महैन सांदृष्टामुनिभिर्नैवनिष्कृतिः
तेषां विशुद्धिरस्त्येव प्राप्य वाराणसीम्पुरीम् ॥ ४१ ॥
न केवलंहिपापेभ्योवाराणस्यांविमुच्यते । प्राकृतेभ्योपिपापेभ्योमुच्यतेशङ्कराज्ञया
पुरा पुरारिणासृष्टमविमुक्तं विमुक्तये । सर्वेषामेव जन्तूनां कृपयाऽन्ते तनुत्यजाम्
तत्रानन्दवनेशम्भोस्तवशापनिराकृतिः । साम्वतत्त्वेरितंयाहि नान्यथाशापनिर्वृतिः
ततः कृष्णं समापृच्छ्य कर्मनिर्मुक्तचेष्टितः ।
नारदः कृतकृत्यः सन् ययावाकाशवर्त्मना ॥ ४५ ॥
साम्बोवाराणसीम्प्राप्य समाराध्यांशुमालिनम् ।
कुण्डन्तत्पृष्ठतः कृत्वा निजाम्प्रकृतिमाप्तवान् ॥ ४६ ॥

साम्बादित्यस्तदारभ्यसर्वव्याधिहरोरविः । ददातिसर्वभक्तेभ्योऽनामयाःसर्वसम्पदः

साम्बकुण्डे नरः स्नात्वा रविवारेऽरुणोदये ।
साम्बादित्यञ्च सम्पूज्य व्याधिभिर्नाभिभूयते ॥ ४८ ॥
न स्त्री वैधव्यमाप्नोति साम्बादित्यस्य सेवनात् ।
वन्ध्या पुत्रम्प्रसूयेत शुद्धरूपसमन्वितम् ॥ ४९ ॥

शुक्लायां द्विजसप्तम्यां माघेमासिरवेर्दिने । महापर्वसमाख्यातं रविपर्वसमं शुभम्

महारोगात्प्रमुच्येत तत्र स्नात्वाऽरुणोदये ।
साम्बादित्यम्प्रपूज्याऽपि धर्ममक्षयमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥

सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे यत्पुण्यं राहुदर्शने । तत्पुण्यं रविसप्तम्यां माघेकाश्यांनसंशयः

मधौ मासि रवेर्वारे यात्रा साम्वत्सरी भवेत् ।
अशोकैस्तत्र सम्पूज्य कुण्डे स्नात्वा विधानतः ॥ ५३ ॥

साम्बादित्यंनरोजातु नशोकैरभिभूयते । संवत्सरकृतात्पापाद्बहिर्भवतितत्क्षणात्

विश्वेशात्पश्चिमाशायां साम्बेनाऽत्र महात्मना ।
सम्यगाराधितामूर्त्तिरादित्यस्य शुभप्रदा ॥ ५५ ॥
इयम्भविष्या तन्मूर्तिरगस्ते! त्वत्पुरोऽकथि ।
तामभ्यर्च्य नमस्कृत्य कृत्वाष्टौ च प्रदक्षिणाः ।
नरो भवति निष्पापः काशीवासफलं लभेत् ॥ ५६ ॥

साम्बादित्यस्य माहात्म्यंकथितंतेमहामते !। यच्छ्रुत्वापिनरोजातयमलोकंनपश्यति
इदानींद्रौपदादित्यंकथयिष्यामितेऽनघ । तथाद्रौपदआदित्यःसंसेव्योभक्तसिद्धिदः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
पूर्वार्धे साम्बादित्यमाहात्म्यकथनंनामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

द्रौपदादित्यमयूखादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

पाराशर्य!मुने! व्यास! कुमारः कुम्भजन्मने । यदावदत्कथामेतां तदाकद्रुपदात्मजा ॥

व्यास उवाच

पुराणसंहितासूतब्रूतेत्रैकालिकींकथाम् । सन्देहोनात्रकर्तव्योयतस्तद्गोचरोऽखिलम्

स्कन्द उवाच

आकर्णयमुने पूर्वं पञ्चवक्त्रोहरःस्वयम् । पृथिव्यांपञ्चधाभूत्वाप्रादुरासीज्जगद्धितः
उमापि च जगद्धात्री द्रुपदस्य महीभुजः । यजतोवह्निकुण्डाच्च प्रादुश्चक्रेतिसुन्दरी
पञ्चापि पाण्डुतनयाः साक्षाद्रुद्रवपुर्धराः । अवतेरुरिहस्वर्गाद्द दुष्टसंहारकारकाः
नारायणोपिकृष्णत्वंप्राप्यतत्साहचर्यकृत । उद्वृत्तवृत्तशमनः सद्वृत्तस्थितिकारकः
प्रतपन्तः पृथिव्यां ते पार्थाश्चेरुः पृथक् पृथक् ।
उदयानुदयौ तस्मिन्सम्पदां विपदामपि ॥ ७ ॥
कदाचित्ते महावीरा भ्रातृव्यप्रतिपादिताम् । विपत्तिमाप्यमहतींबभूवुःकाननौकसः
पाञ्चाल्यपिच तत्पत्नीपतिव्यसनतापिता । धर्मज्ञाप्राप्यतन्वङ्गीब्रध्नमाराधयद्भृशम्
आराधितोऽथसवितातयाद्रुपदकन्यया । सदर्वीं सपिधानाञ्चस्थालिकामक्षयांददौ
उवाच च प्रसन्नात्मा भास्करो द्रुपदात्मजाम् ।
आराधयन्तीम्भावेन सर्वत्र शुचिमानसाम् ॥ ११ ॥
स्थाल्यैतयामहाभागे! यावन्तोऽन्नार्थिनोजनाः ।
तावन्तस्तृप्तिमाप्स्यन्ति यावच्च त्वं न भोक्ष्यसे ॥ १२ ॥
भुक्तायां त्वयि रिक्तैषा पूर्णभक्ता भविष्यति ।
रसवद्व्यञ्जननिधिरिच्छाभक्ष्यप्रदायिनी ॥ १३ ॥

इत्थं वरस्तयालब्धः काश्यामादित्यतो मुने !। अपरश्चवरोदत्तस्तस्यैदेवेनभास्वता

रविरुवाच

विश्वेशाद्दक्षिणे भागे यो मां त्वत्पुरतः स्थितम् ।
आराधयिष्यति नरः क्षुद्बाधा तस्य नश्यति ॥ १५ ॥

अन्यश्च मे वरोदत्तो विश्वेशेन पतिव्रते !। तपसापरितुष्टेन तं निशामय वच्मि ते ॥ प्रागग्रवेत्वां समाराध्य योमांद्रक्ष्यतिमानवः । तस्यत्वंदुःखतिमिरमपानुदनिजैःकरैः

अतो धर्मप्रिये नित्यं प्राप्य विश्वेश्वराद्वरम् ।
काशीस्थितानां जन्तूनां नाशयाम्यघसञ्चयम् ॥ १८ ॥
ये मामत्र भजिष्यन्ति मानवाः श्रद्धयान्विताः ।
त्वद्वरोद्यतपाणिश्च तेषां दास्यामि चिन्तितम् ॥ १६ ॥

भवतींमत्समीपस्थांयुधिष्ठिरपतिव्रताम् । विश्वेशाद्दक्षिणेभागेदण्डपाणेःसमीपतः येऽर्चयिष्यन्तिभावेनपुरुषावास्त्रियोपिवा । तेषांकदाचिन्नोभाविभयंप्रियवियोगजम् नव्याधिजम्भयंकापिनक्षुत्तृड्दोषसम्भवम् । द्रौपदीक्षणतःकाश्यांतवधर्मप्रियेऽनघे ; इति दत्त्वा वरान्देव आदित्यः सर्वदःसताम् । शम्भुमाराधयामासधर्मंद्रौपद्युपाययौ

आदित्यस्य कथामेतां द्रौपद्याराधितस्य वै ।
यः श्रोष्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति ॥ २४ ॥

स्कन्द उवाच

द्रौपदादित्यमाहात्म्यंसंक्षेपात्कथितंमया । मयूखादित्यमाहात्म्यंशृणुविदानींघटोद्भव! पुरापञ्चनदे तीर्थे त्रिषुलोकेषुविश्रुते । सहस्ररश्मिर्भगवां स्तपस्तेपे सुदारुणम् प्रतिष्ठाप्य महालिङ्गं गभस्तीश्वरसञ्ज्ञितम् । गौरीञ्चमङ्गलानाम्नींभक्तमङ्गलदांसदा दिव्यंवर्षसहस्रन्तुशतेन गुणितम्मुने । आराधयञ्छिवंसोमं सोमार्धकृतशेखरम् स्वरूपतस्तुतपनस्त्रिलोकीतापनक्षमः । ततोऽतितीव्रतपसा जज्वाल नितरां मुने! मयूखैस्तत्रसवितुस्त्रैलोक्यदहनक्षमैः ।। ततंसमस्तन्तत्कालेद्यावाभूम्योर्यदन्तरम् वैमानिकैर्विष्णुपदे तत्यजे च गतागतम् । तीव्रे पतङ्गमहसि पतङ्गत्वभयादिव

मयूखा एव दृश्यन्ते तिर्यगूर्ध्वमधोऽपि च ।
आदित्यस्य न चादित्यो नीपपुष्पस्थितेरिव ॥ ३२ ॥
तस्य वै महसां राशेस्तपोराशेस्तपोर्विषाम् ।
चकम्पे साध्वसात्तीव्रात्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३३ ॥
सूर्यआत्माऽस्य जगतोवेदेषु परिपठ्यते । स एव चेज्ज्वालयिता कोनस्त्राताभवेदिह
जगच्चक्षुरसौसूर्यो जगदात्मैष भास्करः । जगद्योयन्सुतप्रायं प्रातः प्रातः प्रबोधयेत्
तमोन्धकूपपतितमुद्यन्नेष दिने दिने । प्रसार्य परितः पाणिन्प्राणिजातं समुद्धरेत्
उदितेऽत्रोदिमोनित्यमस्तंयात्यस्तमाप्नुमः । उदयेऽनुदयेतस्मादस्माकंकारणंरविः
इति व्याकुलितं विश्वमपश्यन्विश्वेश्वरः स्वयम् ।
विश्वत्राता वरं दातुं सञ्जग्मे तिग्मरश्मये ॥ ३८ ॥
मयूखमालिनं शम्भुरालोक्यातिसुनिश्चलम् ।
समाधिविस्मृताऽऽत्मानं विसिस्माय तपःप्रति ॥ ३९ ॥
उवाच च प्रसन्नात्मा श्रीकण्ठःप्रणतार्तिहृत् । अलन्तप्त्वावरंब्रूहिद्युमणेमहसां निधे
निरुद्धेन्द्रियवृत्तित्वाद् ब्रध्नो ध्यानसमाधिना ।
न जग्राह वचः शम्भोर्द्विस्त्रिरुक्तोऽप्यकर्णवत् ॥ ४१ ॥
काष्ठीभूतं तु तं ज्ञात्वा शिवःपस्पर्शपाणिना । महातपःसमुद्भूतसन्तापामृतवर्षिणा
ततउन्मीलयाञ्चक्रे लोचने विश्वलोचनः । तस्योदयमिव प्राप्य प्रगे पङ्कजिनीवनी
परिव्यपेतसन्तापस्तपनःस्पर्शनाद्विभोः । अवग्रहितसस्यश्रीरुल्लासयथाम्बुदात्
मित्रो नेत्रातिथीकृत्यत्र्यक्षंप्रत्यक्षमग्रतः । दण्डवत्प्रणनामोच्चैस्तुष्टावचपिनाकिनम्

रविरुवाच

देवदेव! जगतांपते विभो! भर्ग! भीम! भव! चन्द्रभूषण !।
भूतनाथ! भवभीतिहारक! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ॥ ४६ ॥
चन्द्रचूड! मृड! धूर्जटे! हर! त्र्यक्ष! दक्षशततन्तुशातन !।
शान्तशाश्वतशिवापते! शिव त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद !॥ ४७ ॥

नीललोहित! समीहितार्थदद्व्येकलोचन! विरूपलोचन! ।
व्योमकेश! पशुपाशनाशन! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद ॥ ४८ ॥
वामदेव! शितिकण्ठ!शूलभृच्चन्द्रशेखर! फणीन्द्रभूषण! ।
कामकृत्पशुपते! महेश्वर! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद! ॥ ४९ ॥
त्र्यम्बक! त्रिपुरसूदनेश्वर! त्राणकृत्त्रिनयन त्रयीमय ।
कालकूटदलनान्तकान्तक! त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद !॥ ५० ॥
शर्वरीरहित! शर्व! सर्वग! स्वर्गमार्गसुखदापवर्गद !।
अन्धकासुररिपोकपर्दभृत्त्वां नतोऽस्ति नतवाञ्छितप्रद! ॥ ५१ ॥
शङ्करोग्रगिरिजापते पते! विश्वनाथ! विधिविष्णुसंस्तुत ।
वेदवेद्यविदिताऽखिलेङ्गित त्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद! ॥ ५२ ॥
विश्वरूप! पर! रूपवर्जित! ब्रह्म! जिह्मरहितामृतप्रद! ।
वाङ्मनोविषयदूरदूरगत्वां नतोऽस्मि नतवाञ्छितप्रद! ॥ ५३ ॥
इत्थंपरीत्यमार्तण्डोमृडन्देवंमृडानिकाम् । अथतुष्टावप्रीतात्माशिववामार्धहारिणीम्

रविरुवाच

देवि! त्वदीयचरणाम्बुजरेणुगौरीं भालस्थलीं वहति यः प्रणतिप्रवीणः ।
जन्मान्तरेऽपि रजनीकरचारुलेखा तां गौरयत्यतितरांकिलतस्य पुंसः ॥ ५५
श्रीमङ्गले! स कलमङ्गलजन्मभूमे! श्रीमङ्गले! स कलकलमषतूलवह्ने !।
श्रीमङ्गले सकलदानवदर्पहन्त्रि! श्रीमङ्गलेऽखिलमिदं परिपाहि विश्वम् ॥ ५६ ॥
विश्वेश्वरि! त्वमसि विश्वजनस्य कर्त्री त्वंपालयित्र्यसि तथाप्रलयेऽपि हन्त्री
त्वन्नामकीर्तनसमुल्लसदच्छपुण्या स्रोतस्विनीहरतिपातककूलवृक्षान् ॥ ५७ ॥
मातर्भवानि! भवती भवतीव्रदुःखसम्भारहारिणिशरण्यमिहास्तिनान्या ।
धन्यास्त एव भुवनेषु त एवमान्या येषु स्फुरेत्तव शुभः करुणाकटाक्षः ॥ ५८॥
ये त्वां स्मरन्ति सततं सहजप्रकाशां काशीपुरीस्थितिमतीं नतमोक्षलक्ष्मीम्
तां संस्मरेत्स्मरहरो धृतशुद्धबुद्धीन्निर्वाणरक्षणविचक्षणपात्रभूतान् ॥ ५९ ॥

मातस्तवाङ्घ्रियुगलं विमलं हृदिस्थं यस्यास्ति तस्य भुवनं सकलं करस्थम् ।
यो नाम ते जपति मङ्गलगौरि! नित्यं सिद्ध्यष्टकं न परिमुञ्चति तस्य गेहम् ॥
त्वं देवि! वेदजननी प्रणवस्वरूपा गायत्र्यसित्वमसि वै द्विजकामधेनुः ।
त्वं व्याहृतित्रयमिहाखिलकर्मसिद्ध्यै स्वाहा स्वधाऽसिसुमनः पितृतृप्तिहेतुः
गौरीत्वमेव शशिमौलिनिवेधसित्वं सावित्र्यसित्वमसिचक्रिणि चारुलक्ष्मीः
काश्यां त्वमस्यमलरूपिणि! मोक्षलक्ष्मीस्त्वं मे शरण्यमिह मङ्गलगौरि मातः
स्तुत्वेति तां स्मरहरार्धशरीरशोभां श्रीमङ्गलाष्टकमहास्तवनेन भानुः ।
देवीं च देवमसकृत्परितः प्रणम्य तूष्णीं बभूव सविताशिवयोःपुरस्तात् ॥

देवदेव उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्ते प्रसन्नोऽस्मि महामते । मित्रमन्नेत्रगोनित्यं प्रपश्येतच्चराचरम्
ममसूर्तिर्भवान्सूर्य सर्वज्ञो भवसर्वगः । सर्वेषां महसां राशिः सर्वेषां सर्वकर्मवित्
सर्वेषां सर्वदुःखानि भक्तानां त्वं निराकुरु ।
त्वया नाम्नां चतुः षष्ट्या यदष्टकमुदीरितम् ॥ ६६ ॥
अनेन माम्परिष्टुत्य नरो मद्भक्तिमाप्स्यति । अष्टकंमङ्गलागौर्यामङ्गलाष्टकसञ्ज्ञकम्
अनेन मङ्गलागौरीं स्तुत्वामङ्गलमाप्स्यति । चतुःषष्ट्यष्टकं स्तोत्रंमङ्गलाष्टकमेवच
एतत्स्तोत्रवरंपुण्यं सर्वपातकनाशनम् । दूरदेशान्तरस्थोऽपि जपन्नित्यं नरोत्तमः
त्रिसन्ध्यम्परिशुद्धात्मा काशीं प्राप्स्यति दुर्लभाम् ।
अनेन स्तोत्रयुग्मेन जप्तेन प्रत्यहं नृभिः ॥ ७० ॥
ध्रुवं दैनन्दिनंपापक्षालितंनात्रसंशयः । न;तस्यदेहिनोदेहेजातुचित्किल्बिषस्थितिः
त्रिकालं यो जपेन्नित्यमेतत्स्तोत्रद्वयंशुभम् ।
किं जप्तैर्बहुभिःस्तोत्रैश्चञ्चलश्रीप्रदैर्नृणाम् ॥ ७२ ॥
एतत्स्तोत्रद्वयं दद्यात्काश्यान्नैःश्रेयसीं श्रियम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मानवैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ७३ ॥
एतत्स्तोत्रद्वयंजप्यं त्यक्त्वा स्तोत्राण्यनेकशः । प्रपञ्चआवयोरेव सर्वएव चराचरः

तदावयोःस्तवादस्मान्निष्प्रपञ्चोजनोभवेत् । समृद्धिमाप्यमहतीं पुत्रपौत्रवतीमिह
अन्तेनिर्वाणमाप्नोति जपन् स्तोत्रमिदंनरः । अन्यच्च शृणुसप्ताश्वग्रहराजदिवाकर!
त्वयाप्रतिष्ठितंलिङ्गं गभस्तीश्वरसञ्ज्ञितम् । सेवितंभक्तिभावेन सर्वसिद्धिसमर्पकम्
त्वया गभस्तिमालाभिश्चाम्पेयाम्बुजकान्तिभिः ।
यदर्चितवैश्वरंलिङ्गं सर्वभावेन भास्कर !॥ ७८ ॥
गभस्तीश्वर इत्याख्यां ततोलिङ्गमवाप्स्यति ।
अर्चयित्वा गभस्तीशं स्नात्वा पञ्चनदे नरः ॥ ७९ ॥
नजातुजायतेमातुर्जठरेधूतकल्मषः । इमाञ्च मङ्गलागौरी नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥८०
चैत्रशुक्लतृतीयायामुपोषणपरायणः । महोपचारैः संपूज्य दुकूलाभरणादिभिः
रात्रौजागरणंकृत्वागीतनृत्यकथादिभिः । प्रातःकुमारीःसंपूज्यद्वादशाच्छादनादिभिः
सम्भोज्य परमान्नाद्यैर्दत्त्वाऽन्येभ्योपि दक्षिणाम् ।
होमं कृत्वा विधानेन जातवेदस इत्यृचा ॥ ८३ ॥
अष्टोत्तरशताभिश्च तिलाज्याहुतिभिःप्रगे । एकंगोमिथुनंदत्त्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने
श्रद्धया समलङ्कृत्य भूषणैर्द्विजदम्पती । भोजयित्वा महार्हान्नैः प्रीयेतां मङ्गलेश्वरौ
इति मन्त्रं समुच्चार्य प्रातःकृत्वाऽथपारणम् । नदुर्भगत्वमाप्नोतिनदारिद्र्यं कदाचन
न वै सन्तानविच्छित्तिं भोगोच्छित्तिं न जातुचित् ।
स्त्रीवैधव्यं न चाप्नोति न ना योषिद्वियोगभाक्॥ ८७ ॥
पापानि विलयं यान्तिपुण्यराशिश्चलभ्यते । अपिवन्ध्याप्रसूयेत कृत्वैतन्मङ्गलाव्रतम्
एतद्व्रतस्यकरणात्कुरूपत्वंनजातुचित् । कुमारीविन्दतेऽत्यन्तं गुणरूपयुतम्पतिम्
कुमारोऽपि व्रतंकृत्वाविन्दतिस्त्रियमुत्तमाम् । सन्तिव्रतानिबहुशोधनकामप्रदानि च
नाप्नुयुर्जातुचित्तानि मङ्गलाव्रततुल्यताम् ।
कर्तव्या चादिकी यात्रा मधौ तस्यां तिथौ नरैः ॥ ९१ ॥
सर्वविघ्नप्रशान्त्यर्थं सदा काशीनिवासिभिः । अपरं द्युमणेवच्मितव चात्र तपस्यतः
मयूखाएवखेदृष्टा न च दृष्टं कलेवरम् । मयूखादित्य इत्याख्या ततस्तेदितिनन्दन

त्वदर्घनान्नृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभविष्यति।
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारे त्वदीक्षणात ॥ ६४ ॥
इत्थंमयूखादित्यस्यशिवोदत्त्वाबहून्वरान्। तत्रैवान्तर्हितोभूतोरविस्तत्रैवतस्थिवान्
श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यम्मयूखादित्यसंश्रयम्। द्रौपदादित्यसहितं नरो ननिरयंव्रजेत्

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे द्रौपदादित्यमयूखादित्ययोर्वर्णनंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

खखोल्कादित्यगरुडेशयोर्वर्णनम्

स्कन्द उवाच

वाराणस्यां तथादित्याये चान्येतान्वदान्यतः। कलशोद्भव!तेप्रीत्यासर्वेसर्वाघनाशनाः
खखोलकोनामभगवानादित्यः परिकीर्त्तितः। त्रिविष्टपोत्तरेभागेसर्वव्याधिविघातकृत्
यथाखखोलक इत्याख्यातस्यादित्यस्यतच्छृणु। पुराकद्रूश्चविनता दक्षस्य तनये शुभे
कश्यपस्य च ते पत्न्यौ मारीचेः प्राक्प्रजापतेः।
क्रीडन्त्यावेकदाऽन्योऽन्यं मुने! ते ऊचतुस्त्विति ॥ ४ ॥

कद्रूरुवाच

विनते!त्वंविजानासियदितद्ब्रूहिमेग्रतः। अखण्डितागतिस्तेऽस्तियतोगगनमण्डले
योसावुच्चैःश्रवावाजीश्रूयतेसवितूरथे। किंरूपःसोऽस्तिशबलोधवलोवावदाऽऽशुमे
णञ्चकुरुकल्याणि! तुभ्यं यो रोचतेऽनघे!। एवमेवनयात्येष कालः क्रीडनकंविना

विनतोवाच

कं पणेनभगिन्यत्र कथयाम्येवमेव हि। त्वज्जयेका च मेप्रीतिर्मज्जयेकिं नु ते सुखम्
त्वापणोनकर्तव्योमिथः स्नेहमभीप्सता। ध्रुवमेकस्यविजये क्रोधोन्यस्येहजायते

कद्रूरुवाच

क्रीडेयंनात्र भगिनिकारणंकिमपिक्रुधः । खेलस्य व्यवहारोऽयं पणेयत्किञ्चिदुच्यते

विनतोवाच

तथाकुरुयथा प्रीतिस्तवास्ति पवनाशिनि !। अथतांविनतामाहकद्रूः कुटिलमानसा
तस्यास्तुसाभवेद्दासीपराजीयेतयायया । अस्मिन्पणेइमाःसर्वाःसख्यसाक्षिण्यएवनौ
इत्यन्योन्यम्पणीकृत्यसर्पिण्यपिपतत्त्रिणी । उवाचकर्बुरं कद्रूरश्वं श्वेतं गरुत्मती
कदागन्तव्यमितिचचक्रातेतेगमावधिम् । जग्मतुश्चविरम्याथक्रीडनात्स्वस्वमालयम्
विनतायांगतायां तु कद्रूराहूयचाङ्गजान् । उवाच यात वै पुत्राद्रुतं वचनतो मम
तुरङ्गमुच्चैःश्रवसं प्रोद्भूतं क्षीरनीरधेः । सुरासुरैर्मथ्यमानान्मन्दराघातसाध्वसात्
कार्यं कारणरूपस्य सादृश्यमधिगच्छति । अतस्तं क्षीरवर्णाभंकल्मषायतपुत्रकाः
तस्यवालधिमध्यास्यकृष्णकुन्तलतांगताः । तथातदङ्गलोमानि विधत्तविषसीत्कृतैः
इतिश्रुत्वावचोमातुः काद्रवेयाः परस्परम् । सम्मन्त्र्यमातरम्प्रोचुःकद्रूं कद्रूपमागताः

नागा ऊचुः

मातर्वयं त्वदाह्वानाद्विहायक्रीडनं बलात् । प्राप्ताः प्रहृष्टा मृष्टान्नं दास्यत्यद्यप्रसूरिति
मृष्टन्तिष्ठतु तद्दूरं विषादप्यधिकं कटु । तत्त्वयावादियन्मन्त्रैरौषधैर्नोपशाम्यति
वयंनयामोयद्वाच्यंतदस्माकं भवत्विह । इतिप्रोक्तंविषास्यैस्तैस्तदाकुटिलगामिभिः

स्कन्द उवाच

अन्येऽपि ये कुटिलगाः पररन्ध्रनिषेविणः । अकर्णाः क्रूरहृदयाःपितरौव्रीडयन्ति ते
पित्रोर्गिरंनिराकृत्ययेतिष्ठेयुःसुदुर्मदाः । अत्याहितमिहप्राप्यगच्छेयुस्तेऽचिरालयम्
तेषांवचनमाकर्ण्य न यामइतिसोरगी । शशापतान् क्रुधाविष्टानागांश्चागःसमागतान्

ताक्ष्र्यस्य भक्ष्या भवत यूयं मद्वाक्यलङ्घनात् ।
जातमात्रांश्च सर्पिण्यो भक्षयन्तु स्वबालकान् ॥ २६ ॥

इतिशापानलाद्भीतैः कैश्चित्पातालमाश्रितम् । जिजीविषुभिरन्यैश्चद्वित्रैश्चक्रे प्रसूवचः
तेपुच्छमौच्चैःश्रवसमधिगम्य महाधियः । सुनीलचिकुराभासं चक्रुरङ्गञ्चकर्बुरम्

तत्क्ष्वेडानलधूमौघैः फूत्कारभरनिःसृतैः । मातृवाक्कृतिजाद्धर्मान्नदग्धाभानुभानुभिः
विनतापृष्ठमारुह्य कद्रूः स्नेहवशात्ततः । वियन्मार्गमलङ्कृत्य ददर्शोष्णांशुमण्डलम्
तिग्मरश्मिप्रभावेण व्याकुलीभूतमानसा । कद्रूस्ततः खगीं प्राह विस्रब्धं विनते व्रज
उष्णगोरुष्णगोभिर्मेताप्यते नितरांतनुः । विस्रब्धाहं स्वभावेनत्वंसापेक्षाहि सर्वतः
स्वरूपेणपतङ्गीत्वम्पतङ्गोऽसौ सहस्रगुः । अतएव न ते बाधागगने तापसम्भवा
वियत्सरसिहंसोयम्भवती हंसगामिनी । चण्डरश्मिप्रतापाग्नि स्त्वामतोनेहबाधते
खगीमुड्डीयमानां खेपुनरूचेबिलेशया । त्राहि त्राहिभगिन्यत्र यावोन्यत्रवियत्पथः

विनते ! विनतास्मांत्वं किन्नावसि पतत्त्रिणी ।
तव दासी भविष्यामि त्वदुच्छिष्टनिषेविणी ॥ ३६ ॥

यावज्जीवमहंभूयांत्वत्पादोदकपायिनी । खखोल्कानिपतेदेषा भृशं गद्गदभाषिणी
मूर्च्छाङ्गतवतीपक्षपुटौधृत्वाबिडोरगी । सख्युल्कानिपतेदेषावक्तव्येत्वितिसम्भ्रमात्

खखोल्केतियदुक्ता गीः कद्र्वा सम्भ्रान्तचेतसा ।
तदा खखोल्कनामार्कः स्तुतो विनतया बहु ॥ ३८ ॥

मनागतिग्मताम्प्राप्तेखेप्रयातिविवस्वति । ताम्यान्तुरङ्गमोदर्शिकिञ्चित्किर्मारवान्रथे
उक्ताविनतयैवैषा तापोपहतलोचना । क्रूरा सरीसृपीसत्यवादिन्याविश्वमान्यया
कद्रु ! त्वयाजितम्भद्रे!यतउच्चैःश्रवाहयः । चन्द्ररश्मिप्रभोऽप्येषकल्माषइवभासते ॥
विधिर्बलीयान्भुजगि!चित्रञ्जयपराजये । क्रूरोऽपिविजयी क्वापित्वक्रूरोऽपिपराजयी
विनता विनताधारा वदन्तीतियथागतम् । कद्रूनिवेशनम्प्राप्ता तस्यादास्यमचीकरत्
कदाचिद्विनतादर्शिसुपर्णेनाश्रुलोचना । विच्छायामलिनादीनादीर्घनिःश्वासवत्यपि

सुपर्ण उवाच

प्रातःप्रातरहोमातः क्व यासित्वं दिनेदिने । सायमायासिचकुतोविच्छायादीनमानसा
कुतोनिःश्वसिसिप्रोच्चैरश्रुपूर्णविलोचना । यथाक्लीबसुतायोषिद्यथापतितिरस्कृता
ब्रूहिमातर्झटित्यद्यकुतोदूनासिपक्षिणि । मयिजीवतितेबालेकालेऽपि कृतसाध्वसे
अश्रुनिर्माणकरणे कारणं किंतपस्विनि । सुचरित्रासु नारीषु नामङ्गलमिहेष्यते

धिक् तांश्चपुत्रान्यन्माता तेषु जीवत्सु दुःखभाक् ।
वरं बन्ध्यैव सा यस्याः सुता बन्ध्यमनोरथाः ॥ ५० ॥
इत्यूर्जस्वलमाकर्ण्यवचः सूनोर्गरुत्मतः । विनताप्राहतम्पुत्रम्मातृभक्तिसमन्वितम्
अहं दास्यस्मिरेबाल!कद्र्वाश्चक्रूरचेतसः । पृष्ठे वहामि तांनित्यं तत्पुत्रानपि पुत्रक
कदाच्रिन्मन्दरं यामिकदाचिन्मलयाचलम् । कदाचिदन्तरीपेषु चरेयं तदुदन्वताम्
यत्रयत्रनयेयुस्तेकाद्रवेयाः सुदुर्मदाः । व्रजेयंतत्रतत्राऽहं तदधीना यतः सुत!॥ ५४

गरुड उवाच

दासीत्वकारणम्मातः किंते जातं सुलक्षणे !। दक्षप्रजापतेः पुत्रि!कश्यपस्यप्रियेऽनघे
विनतोवाच गरुडम्पुरावृत्तमशेषतः । दासीत्वकारणं यद्वदादित्याश्वविलोकनम्
श्रुत्वेतिगरुडः प्राहमातरं सत्वरं व्रज । पृच्छाद्यमातस्तान्दुष्टान् काद्रवेयानिदं वचः
यद्दुर्लभं हिभवतां यत्रात्यन्तरुचिश्चवः । मद्दासीत्वविमोक्षायतद्याचध्वं ददाम्यहम्
तथाकरोच्चविनतातेपिश्रुत्वा तदीरितम् । सर्पाःसम्मन्त्र्यतां प्रोचुर्विनतांहृष्टमानसाः
मातृशापविमोक्षाय यदि दास्यति नः सुधाम् ।
तदा समीहितं तेऽस्तु न दास्यत्यथ दास्यसि ॥ ६० ॥
इत्योङ्कृत्य समापृच्छ्यकद्रूंद्रुतगतिःखगी । गरुत्मन्तं समाचष्ट दृष्ट्वा संहृष्टमानसम्
नागान्तकस्ततः प्राह मातरश्चिन्तयातुराम् । आनीतंविद्धिपीयूषंमातर्मेदेहि भोजनम्
विनताप्राहतम्पुत्रं सम्प्रहृष्टतनूरुहा । भोस्सुपर्णार्णवं तूर्णं याहि मङ्गलमस्तु ते
सन्ति तत्रापिबहुशोनिषादामत्स्यघातिनः । वेलातटनिवासाश्चताम्भक्षयदुरात्मनः
परप्राणैर्निजप्राणान्ये पुष्णन्तीहदुर्धियः । शासनीयाः प्रयत्नेन श्रेयस्तच्छासनम्परम्
बहुहिंसाकृतांहिंसाभवेत्स्वर्गस्य साधनम् । विहिंसितेषुदुष्टेषुरक्ष्यन्ते भूरिशो यतः
निषादेष्वपिचेद्विप्रः कश्चिद्भवति पुत्रक! । सरक्षणीयोयत्नेन भक्षणीयोनकर्हिचित्

गरुड उवाच

मत्स्यादीनां वसन्मध्ये कथं ज्ञेयो द्विजो मया ।
अभक्ष्यो यस्त्वया प्रोक्तस्तच्चिह्नं किञ्चनाऽऽत्थ मे ॥ ६८ ॥

विनतोवाच

यज्ञसूत्रं गले यस्य सोत्तरीयं सुनिर्मलम् ।
नित्यधौतानि वासांसि भालं तिलकलाञ्छितम् ॥ ६९ ॥
सपवित्रौ करौ यस्य यन्नीवी कुशगर्भिणी ।
यन्मौलिः सशिखाग्रन्थिः स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया ॥ ७० ॥
उच्चरेदृग्यजुःसाम्नामृचमेकामपीह यः । गायत्रीमात्रमन्त्रोऽपिस विज्ञेयो द्विजस्त्वया

गरुड उवाच

मध्ये सदा निषादानांयोवसेज्जननि!द्विजः । तस्यैतेष्वेकमप्येवन मन्येलक्ष्मबोधकम्
लक्ष्मान्तरं समाचक्ष्वद्विजबोधकरम्प्रसूः । येनविज्ञाय तं विप्रंत्यजेयमपि कण्ठगम्
तच्छ्रुत्वा विनता प्राहयस्तेकण्ठगतोऽङ्गज !। खदिराङ्गारवद्दह्यात्तमपाकुरुदूरतः
द्विजमात्रेऽपिया हिंसासाहिंसा कुशलाय न !। देशंवंशंश्रियंस्वञ्चनिर्मूलयतिकालतः
निशम्यकाश्यपिरितिप्रसूपादौ प्रणम्य च । गृहीताशीर्ययौ शीघ्रं खमार्गेण खगेश्वरः
दूरादालोकयाञ्चक्रे निषादान्मत्स्यजीविनः । पक्षौविधूयपक्षीन्द्रोरजसापूर्य रोदसी
अन्धीकृत्य दिशोभागानब्धिरोधस्युपाविशत् ।
व्यादाय वदनं घोरम्महाकन्दरसन्निभम् ॥ ७८ ॥
कान्दिशीका निषादास्तु विविशुस्तत्र च स्वयम् ।
मन्वानेष्वथ पन्थानं तेषु कण्ठं विशत्स्वपि ॥ ७९ ॥
जज्वालेङ्गलसंस्पर्शो द्विजस्तत्कण्ठकन्दलीम् ।
प्राक् प्रविष्टानथो तार्क्ष्यो निषादानौदर्यदरीम् ॥ ८० ॥
पवेश्यकण्ठतालुस्थन्तंविज्ञायद्विजंस्फुटम् । भयादुदगिरत्तूर्णम्मातृवाक्यनियन्त्रितः
मुद्गीर्णंनरं दृष्ट्वा पक्षिराट् समभाषत । कस्त्वञ्जात्यासिनिगदममकण्ठविदाहकृत्
तदाऽऽहेतिविप्रोऽहम्पृष्टःसन् गरुडाग्रतः । वसाम्येषुनिषादेषुजातिमात्रोपजीवकः
म्प्रेष्यगरुडोदूरम्भक्षयित्वाऽथभूरिशः । नभो विक्षोभयाञ्चक्रे प्रलयानिलसन्निभः
दृष्ट्वा तिग्मतेजस्कं ज्वालाततदिगन्तरम् । ज्वलद्दावानलंशैलमिवबिभ्युर्दिवौकसः

ते सन्नह्यन्तयुद्धायसज्जीकृतबलायुधाः । अध्यास्यवाहनान्याशु सर्वे वर्मभृतः सुराः
तिर्यग्गतीरविर्नायंनायमग्निः सधूमवान् । क्षणप्रभाप्यसौनैवकोनः सम्मुखएत्यसौ
न दैत्येषुप्रभेद्दृक्स्यान्नाकृतिर्दानवेष्वियम् । महासाध्वसदःकोयमस्माकंहृत्प्रकम्पनः
यावत्सम्भावयन्तीति नीतिज्ञा अपि निर्जराः ।
तावद् दुधाव स्वौ पक्षौ पक्षिराजो महाबलः ॥ ८९ ॥
निपेतुः पक्षवातेन सायुधाश्च सवाहनाः । नज्ञायन्ते क्वसम्प्राप्ता वात्ययापार्णतार्णवत्
अथ तेषु प्रणष्टेषु बुद्ध्या विज्ञाय पक्षिराट् ।
कोशागारं सुधायाः स तत्राऽपश्यच्च रक्षिणः ॥ ९१ ॥
शस्त्रास्त्रोद्यतपाणींस्तान्सुरानाधूयसर्वशः । ददर्शकर्तरीयन्त्रममृतोपरिसंस्थितम्
मनः पवनवेगेन भ्रममाणम्महारयम् । अपिस्पृशन्तम्मशकंयत्खण्डयति कोटिशः
उपोपविश्यपक्षीन्द्रस्तस्ययन्त्रस्यनिर्भयः । क्षणंविचारयामास किमत्र करवाण्यहो
स्प्रष्टुन्नलभ्यतेचैतद्वात्या न प्रभवेदिह । कउपायोऽत्रकर्तव्यो वृथाजातो ममोद्यमः
नबलम्प्रभवेदत्र न किञ्चिदपिपौरुषम् । अहोप्रयत्नो देवानामेतत्पीयूषरक्षणे ॥
यदि मे शङ्करेभक्तिर्निर्द्वन्द्वातीवनिश्चला । तदासदेवदेवोमांवियुनक्तुमहाधिया ॥
यद्यहम्मातृभक्तोऽस्मि स्वामिनः शङ्करादपि । तदा मे बुद्धिरत्रास्तुपीयूषहरणक्षमा
आत्मार्थंनोद्यमश्चाऽयं हृत्स्थो वेत्तीति विश्वगः ।
मातुर्दास्यविमोक्षाय यतेऽहममृतम्प्रति ॥ ९९
जरितौ पितरौ यस्य बालापत्यश्च यः पुमान् ।
साध्वीभार्या च तत्पुष्ट्यै दोषोऽकृत्येऽपि तस्य न ॥ १०० ॥
इति चिन्तयतस्तस्य बुद्धिरासीन्महात्मनः ॥ १०१ ॥
देहञ्चकारसोऽत्यन्तमणीयांसमणोरपि । परमाणुसहस्रांशं कृत्वारूपम्महाद्भुतम्
प्रविश्यकर्तरीयन्त्रमधोदेहस्यलाघवात् । बिभ्यत् तद्यन्त्रतोदेहंवञ्चयन्वायुखण्डनात्
मूलमुत्पाट्यतरसागृहीत्वाऽमृतभाजनम् । निर्ययौपावनेमार्गैक्रोशत्सुस्वर्गसद्मसु
तथा वैकुण्ठनाथं ते गत्वा प्रोचुः सुधाभुजः।

निर्जित्य नीयते चक्रिन्सुधा नो जीवितम्परम् ॥ १०५ ॥
इत्याकर्ण्यहरिस्तेभ्योऽभयं दत्त्वा त्वरायुतः । कृत्वायुद्धञ्चसुमहद्विशार्कघटिकाद्वयम्
शुम्भदेव्योर्यथासूतगरुडस्तत्रचाधिकः । तदाप्रसन्नोभगवान्महायुद्धेन सर्वदः
गत्वा गरुडमाहेदम्प्रसन्नोऽस्मि खगेश्वर !। वरं वृणीहिभद्रं ते जितवृन्दारवृन्दक!
हसित्वागरुडः प्राहविश्वरूपञ्जनार्दनम् । अहमेव प्रसन्नोऽस्मि त्वं प्रार्थयवरद्वयम्
ततः कैटभजित्प्राह वैनतेयम्मुदान्वितः । वृतं वृतम्महोदार देहि देहि वरद्वयम्
इति विष्णूदितं श्रुत्वा प्रहसन्नाहपक्षिराट् । किं विलम्बेन तद्ब्रूहि दत्तंदत्तंवरद्वयम्
अलब्धलाभेसञ्जाते द्यूतादिविजयोदये । दातव्यंसुधियापात्रे सदा लाभजयौ क्वचा

श्रीविष्णुरुवाच

बलवानसिपक्षीन्द्र! तन्मेवाहनतां व्रज । एकोवरोऽयं वरद! द्वितीयं शृणुकाश्यप!
दर्शयित्वाऽमृतम्प्राज्ञ! मातृदास्यविमोक्षकम् ।
द्विजिह्वेभ्यः कुरु तथा द्रागश्नन्ति न ते यथा ॥ ११४ ॥
देया सुधा सुधाभुग्भ्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम ।
तथेति स प्रतिज्ञाय निर्ययौ पक्षिराड्दिवः ॥ ११५ ॥
स मातरं विनिर्मोच्य दास्यात्काश्यपनन्दनः ।
नागानां पुरतो धृत्वा महामृतकमण्डलुम् ॥ ११६ ॥
अमृतम्पातुकामांस्तानित्याचष्ट महामतिः ।
नागाः शुचित्वमासाद्य भोक्तव्यैषा सुधा शुभा ॥ ११७ ॥
नोचेदशुचिभिः स्पृष्टा स्नानादिपरिवर्जितैः ।
यास्यत्यदृश्यतामेषा सुधाऽनिमिषरक्षिता ॥ ११८ ॥
सामान्यमपि यद्भक्ष्यं स्पृश्यतेऽशुचिभिः क्वचित् ।
हरन्ति तद्रसं देवास्तच्च तिष्ठति नीरसम् ॥ ११९ ॥
त्युक्त्वा सहितोमात्रा वैनतेयोविनिर्ययौ । कुशासनेचतैस्त्क्तोधृत्वापीयूषभाजनम्
यावत्स्नातुं गताः सर्पास्तावत्पीयूषभाजनम् ।
आदाय विष्णुना दत्तं देवेभ्य इव जीवितम् ॥ १२१ ॥

आगत्यभुजगाः स्नात्वा न दृष्ट्वा मृतमाजनम् । अहोप्रतारितानीतममृतञ्चेतिचुक्रुशुः
ततः पर्यलिहन् दर्भान् पीयूषस्पर्शकाङ्क्षिणः ।
आस्तान्तावत्सुधादूरंजिह्वास्तेषां द्विधाभवन् ॥ १२३ ॥
अन्येऽप्यन्यायलब्धार्थं ये बुभुक्षन्तिकेवलम् । तन्नोपरिणतिंगच्छेद्भोक्तुंवातैर्नलभ्यते
न्यायाध्वस्थेन तार्क्ष्येण सुधाप्राप्ताऽतिदुर्लभा ।
लब्धाऽप्यन्यायतो नागैर्दृष्टमात्रा क्षणाद्धृता ॥ १२५ ॥
अथ दास्याद्विनिर्मुक्ताविनतोवाचखेचरम् । पुत्रकाशींप्रयास्यामि दास्यपापापनुत्तये
तावत्पापानिजृम्भन्तेनानाजन्मार्जितान्यपि ।यावत्काशीनहृत्संस्थापुनर्भवविघातिनी
काशीस्मरणमात्रेणकिञ्चित्रंयदघं व्रजेत् । गर्भवासोपिनश्येतविश्वेशानुग्रहात्परात्
यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्तारापतिविभूषणः । तारयेत्तारकद्रोण्यादुस्तराद्भवसागरात्
विश्वेशानुगृहीतानांविच्छिन्नाखिलकर्मणाम् । भवेत्काशींप्रतिमतिर्नेतरेषांकदाचन
काशींप्रतिमनोयेषांनिःशेषक्षालितैनसाम् । तएव मानवालोके सत्यं नृपशवोपरे ॥
तैरेवकालोविजितस्त एव हि गतैनसः । अपुनर्गर्भवासास्ते प्राप्तावाराणसीहयैः ॥
श्रेयसाम्भाजनञ्चैतन्नृजन्म न मुधा नयेत् । देवानामपि दुष्प्राप्यं काशीसन्दर्शनादृते
कः कलिः कोऽथवा कालः किंवा कर्माण्यनेकधा ।
परानन्दप्रदं क्षेत्रमविमुक्तं यदीक्षितम् ॥ १३४ ॥
ते गर्भवासे तिष्ठन्ति पुनस्तेगर्भवासिनः । येन गर्भवनच्छेत्रीं सेवन्तेवरणामसिम्
निशम्येति वचः प्राह तार्क्ष्यो नत्वाऽथ मातरम् ।
अहमप्यागमिष्यामि काशीं द्रष्टुंशिवार्चिताम् ॥ १३६ ॥
मातुराज्ञामथप्राप्य जनन्यासहपक्षिराट् । क्षणाद्वाराणसीं प्रापमोक्षनिक्षेपभूमिकाम्
उभावपिचतेपातेतपउग्रम्महामती । संस्थाप्यशाम्भवंलिङ्गम्पतत्त्रीन्द्रोऽचलेन्द्रियः
नाम्ना खखोल्कमादित्यं संस्थाप्य विनता शुभम् ।
अचिरेणैवकालेन महतस्तपसस्तयोः ॥ १३९ ॥
काश्यां प्रसन्नौ सञ्जातौ देवौ शङ्करभास्करौ ।

गरुडस्थापिताल्लिङ्गादाविरसीदुमापतिः ॥ १४० ॥
गरुडायवरान् प्रादात्सुबहूनतिदुर्लभान् । खगेन्द्र मम भक्तोऽसि तवज्ञानम्भविष्यति
वेत्स्यसित्वंरहस्यम्मेयन्नज्ञातंसुरैरपि । त्वयैतत्स्थापितंलिङ्गं गरुडेश्वरसञ्ज्ञितम्
परमज्ञानदम्पुंसां दृष्टंस्पृष्टंसमर्चितम् । अन्यच्चश्रृणुपक्षीन्द्र हितन्तेवच्मिसाम्प्रतम्
असावहंसवैविष्णुर्मास्तु ते भेददृक् च नौ । एवं तस्यैवपक्षीन्द्रदैत्येन्द्रबलहारिणः
प्राप्य सत्पत्रतां पत्रिस्त्वमप्यर्च्यो भविष्यसि ।
इति दत्त्वा वरंशम्भुः स्वभक्ताय गरुत्मते !॥ १४५ ॥
तत्रैवाऽन्तर्हितोजातोगरुडोपिहरिंययौ । हरेरथत्वंसम्प्राप्यसोपिपूज्योऽभवद्भुवि
तपस्यन्तीमथालोक्य कदाचिद्विनतां प्रभुः ।
शिवस्यैव परामूर्तिः खखोल्कोनाम भास्करः ॥ १४७ ॥
दत्त्वा वरं च पापघ्नं शिवज्ञानसमन्वितम् । काशीवासिजनानेकभवपापक्षयङ्करः
विनतादित्य इत्याख्यः खखोल्कस्तत्र संस्थितः ।
इत्थं खखोल्कआदित्यः काशीविघ्नतमोहरः ॥ १४६ ॥
तस्यदर्शनमात्रेणसर्वपापैःप्रमुच्यते । काश्यांपैशङ्गिलेतीर्थे खखोल्कस्यविलोकनात्
नरश्चिन्तितमाप्नोति नीरोगो जायते क्षणात् ॥ १५० ॥
नरः श्रुत्वैतदाख्यानं खखोल्कादित्यसम्भवम् । गरुडेशेनसहितं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे खखोल्कादित्यगरुडेशयोर्वर्णनंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इतिकाशीखण्डपूर्वार्द्धंसमाप्तम्

शम्भूयात्

—:*:—

* श्रीगणेशायनमः *

स्कन्दपुराणस्थकाशीखण्डम्

—:०:—

उत्तरार्द्धम्

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अरुणवृद्धकेशवविमलगङ्गादित्यानाम्वर्णनम्

अगस्तिरुवाच

पार्वतीहृदयानन्द सर्वज्ञाङ्गभवप्रभो !। किञ्चित्प्रष्टुमनाःस्वामिंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति
दक्षप्रजापतेः पुत्री कश्यपस्य परिग्रहः। गरुत्मतः प्रसूः साध्वीकुतोदास्यमवापसा

स्कन्द उवाच

हञ्जिका त्वं यथाप्राप्ताविनता सा तपस्विनी। तदप्यहंसमाख्यामिनिशामयमहामते
कद्रूरजीजनत्पुत्राञ्छतं कश्यपतः पुरा । उलूकमरुणन्तार्क्ष्यमसूत विनता त्रयम् ॥
कौशिको राज्यमाप्याऽपि श्रेष्ठत्वात्पक्षिणाम्मुने !।
निर्गुणत्वाच्च तैः सर्वैः स राज्यादवरोपितः ॥ ५ ॥
क्रूराक्षोऽयंदिवान्धोऽयंसदावक्रनखस्त्वसौ। अतीवोद्वेगजनकंसर्वेषामस्यभाषणम्
इत्थं तस्यगुणग्रामान्विकथ्यबहुशःखगाः। नाद्यापिवृण्वतेराज्येकमपिस्वैरचारिणः
कौशिकेऽथ तथा वृत्तेपुत्त्रवीक्षणलालसा। अण्डम्प्रस्फोटयामासमध्यमंविनतातदा

पूर्णेवर्षसहस्रे तु प्रस्फोटंय घटसम्भव । तदभेदितयोत्सुक्यादण्डमष्टमके शते
तावत्सर्वाणि गात्राणि तस्याऽतिमहसःशिशोः ।
ऊर्वोरुपरिसिद्धानि तदण्डान्तर्निवासिनः ॥ १० ॥
अण्डान्निर्गतमात्रेण क्रोधारुणमुखश्रिया । अर्धनिष्पन्नदेहेन शिशुनाशा पिताप्रसूः
जनयित्रि! त्वया दृष्ट्वा काद्रवेयान् स्वलीलया ।
खेलतो मातुरुत्सङ्गे यदण्डं व्याधि तद् द्विधा ॥ १२ ॥
तदनिष्पन्नसर्वाङ्गः शपामि त्वां विहङ्गमे । तेषामेवैधिदासीत्वं सपत्न्यङ्गभुवामिह
वेपमानाऽथ तच्छापादिदम्प्रोवाचपक्षिणी । अनूरो! ब्रूहि मे शापावसानम्मातुरङ्गज

अनूरुरुवाच

अण्डन्तृतीयं मा भिन्धि ह्यनिष्पन्नम्ममैव हि ।
अस्मिन्नण्डेभविष्यो यः स ते दास्यं हरिष्यति ॥ १५ ॥
इत्युक्त्वा सोऽरुणोऽगच्छदुड्डीयाऽऽनन्दकाननम् ।
यत्र विश्वेश्वरो दद्यादपि पङ्गोः शुभां गतिम् ॥ १६ ॥
एतत्तेपृच्छतः ख्यातंविनतादास्यकारणम । मुने!प्रसङ्गतोवच्मिअरुणादित्यसम्भवम्
अनूरुत्वादनूरुर्योऽरुणःक्रोधारुणोयतः । वाराणस्यान्तपस्तप्त्वातेनाराधिदिवाकरः
सोऽपिप्रसन्नोदत्त्वाथवरांस्तस्माअनूरवे । आदित्यस्तस्यनाम्नाभूदरुणादित्यइत्यपि

अर्क उवाच

तिष्ठानूरो!ममरथे सदैव विनतात्मज !। जगताञ्चहितार्थाय ध्वान्तं विध्वंसयन्पुरः
अत्र त्वत्स्थापिताम्मूर्तिं ये भजिष्यन्ति मानवाः ।
वाराणस्याम्महादेवोत्तरे तेषां कुतो भयम् ॥ २१ ॥
येऽर्चयिष्यन्ति सततमरुणादित्यसञ्ज्ञकम् । मामत्रतेषां नोदुखंनदारिद्र्यंनपातकम्
व्याधिभिर्नाभिभूयन्तेनोपसर्गैश्च कैश्चन । शोकाग्निनानदह्यन्तेह्यरुणादित्यसेवनात्
अथस्यन्दनमारोप्य नीतवानरुणं रविः । अद्याऽपि स रथे सौरे प्रातरेव समुद्यति
यः कुर्यात्प्रातरुत्थाय नमस्कारं दिने दिने । अरुणायससूर्यायतस्य दुःखभयं कुतः

अरुणादित्यमाहात्म्यं यःश्रोष्यतिनरोत्तमः । नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्भविष्यति कदाचन

स्कन्द उवाच

वृद्धादित्यस्यमाहात्म्यंश्रृणुतेकथयाम्यहम् । यस्यश्रवणमात्रेणनरोनोदुष्कृतम्भजेत्
पुरात्रवृद्धहारीतो वाराणस्याम्महातपाः । महातपःसमृद्ध्यर्थंसमाराधितवान्रविम्

मूर्त्तिं संस्थाप्य शुभदां भास्वतः शुभलक्षणाम् ।
दक्षिणेन विशालाक्ष्या दृढभक्तिसमन्वितः ॥ २६ ॥

तुष्टस्तस्मैवरम्प्रादाद्ब्रध्नोवृद्धतपस्विने । अलं विलम्ब्ययाचस्वकस्तेदेयो वरो मया
सोऽथप्रसन्नाद् द्युमणेरवृणीतवरम्मुनिः । यदिप्रसन्नोभगवान् युवत्वन्देहि मे पुनः
तपःकरणसामर्थ्यंस्थविरस्यन मे यतः । पुनस्तारुण्यमाप्तोऽहं चरिष्याम्युत्तमन्तपः
तपएवपरो धर्मस्तपएवपरं वसु । तपएवपरः कामो निर्वाणं तप एवहि
ऋतेन तपसः काऽपिलभ्याऐश्वर्यसम्पदः । पदं ध्रुवादिभिः प्रापिकेवलं तपसोबलात्
ततस्तपश्चरिष्यामि लोकद्वयमहत्त्वदम् । प्राप्यत्वद्वरदानेन यौवनं सर्वसम्मतम्
धिग्जरां प्राणिनामत्रययासर्वोविरज्यति । जरातुरेन्द्रियग्रामेस्त्रियोपिनयतःस्ववसात्
वरंमरणमेवास्तु माजरास्त्वतिशोच्यकृत् । क्षणंदुःखञ्च मरणञ्जरादुखं क्षणेक्षणे
काङ्क्षन्तिदीर्घतपसे चिरमायुर्जितेन्द्रिया। धनंदानाय पुत्त्राय कलत्रम्मुक्तये धियम्
वृद्धस्यवार्धकम्ब्रध्नस्तत्क्षणादपहृत्य वै । ददौ च चारुताहेतुन्तारुण्यम्पुण्यसाधनम्
एवंसवृद्धहारीतो वाराणस्यां महामुनिः । सम्प्राप्य यौवनम्ब्रध्नात्तपउग्रंचचारह
वृद्धेनाराधितोयस्माद्धारीतेनतपस्विना । आदित्योवार्धकहरो वृद्धादित्यस्ततःस्मृतः
वृद्धादित्यं समाराध्य वाराणस्यांघटोद्भव !। जरादुर्गतिरोगघ्नम्बहवः सिद्धिमागताः

वृद्धादित्यं नमस्कृत्य वाराणस्यां रवौ नरः ।
लभेदभीप्सितांसिद्धिं न क्वचिद्दुर्गतिंलभेत् ॥ ४३ ॥

स्कन्द उवाच

अतःपरं श्रृणुमुने!केशवादित्यमुत्तमम् । यथा तु केशवम्प्राप्य सविता ज्ञानमाप्तवान्
व्योम्निसञ्चरमाणेन सप्ताश्वेनादिकेशवः । एकदाऽदर्शि भावेन पूजयँल्लिङ्गमैश्वरम्

कौतुकादिवउत्तीर्यहरेरविरुपाविशत् । निःशब्दोनिश्चलःस्वस्थोमहाश्चर्यसमन्वितः
प्रतीक्षमाणोऽवसरंकिञ्चित्प्रष्टुमनाहरिम् । हरिं विसर्जितार्घश्च प्रणनामकृताञ्जलिः
स्वागतन्तेहरिःप्राहबहुमानपुरःसरम् । स्वाम्याशआसयामास भास्वन्तंनतकन्धरम्
अथावसरमालोक्य लोकचक्षुरधोक्षजम् । नत्वा विज्ञापयामास कृतानुज्ञोऽसुरारिणा

रविरुवाच

अन्तरात्मासिजगतांविश्वम्भरजगत्पते! ।तवापिपूज्यःकोप्यस्तिजगत्पूज्यात्रमाधव
त्वत्तश्चाविर्भवेदेतत्त्वयिसर्वम्प्रलीयते । त्वमेव पाता सर्वस्य जगतोजगतांनिधे
इत्याश्चर्यंसमालोक्यप्राप्तोस्म्यत्रतवान्तिकम् । किमिदम्पूज्यतेनाथभवताभवतापहृत्
इतिश्रुत्वा हृषीकेशःसहस्रांशोरुदीरितम् । उच्चैर्मा शंसञ्सप्ताश्वं वारयन्करसञ्ज्ञया

श्रीविष्णुरुवाच

देवदेवो महादेवो नीलकण्ठ उमापतिः । एकएवहि पूज्योऽत्र सर्वकारणकारणम्
अत्र त्रिलोचनादन्यं समर्चयति योऽल्पधीः ।
सलोचनोऽपि विज्ञेयो लोचनाभ्यां विवर्जितः ॥ ५५ ॥
एको मृत्युञ्जयः पूज्यो जन्ममृत्युजराहरः ।
मृत्युञ्जयं किलाभ्यर्च्य श्वेतो मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥ ५६ ॥
कालकालंसमाराध्यभृङ्गीकालंजिगायवै । शैलादिमपितत्याजमृत्युर्मृत्युञ्जयार्चकम्
विजिग्येत्रिपुरंयस्तु हेल्यैकेषुमोक्षणात् । तंसमभ्यर्च्यभूतेशंकोनपूज्यतमोभवेत्
त्रिजगज्जयिनोहेतोस्त्र्यक्षस्याराधनम्परम् । कोनाराधयतिब्रध्नसारस्यस्मरविद्विषः
यस्याक्षिपक्ष्मसङ्कोचाज्जगत्सङ्कोचमेत्यदः ।विकस्वरंविकासाच्चकस्यपूज्यतमोनसः
शम्भोर्लिङ्गंसमभ्यर्च्यपुरुषार्थचतुष्टयम् । प्राप्नोत्यत्रपुमान्सद्योनात्रकार्याविचारणा
समर्च्यशाम्भवंलिङ्गमपिजन्मशतार्जितम् । पापपुञ्जंजहात्येव पुमानत्रक्षणाद्ध्रुवम्
किंकिंनसम्भवेदत्रशिवलिङ्गसमर्चनात् । पुत्राःकलत्रक्षेत्राणिस्वर्गोमोक्षोप्यसंशयम्
ैलोक्यैश्वर्यसम्पत्तिर्मयाप्राप्तासहस्रशो !। शिवलिङ्गार्चनादेकात्सत्यंसत्यंपुनः पुनः
यमेवपरोयोगस्त्विदमेव परन्तपः । इदमेव परंज्ञानंस्थाणुलिङ्गंयदर्च्यते ॥ ६५ ॥

यैर्लिङ्गंसकृदप्यत्र पूजितम्पार्वतीपतेः । कुतोदुःखभयन्तेषां संसारे दुःखभाजने
सर्वम्परित्यज्यरवे यो लिङ्गंशरणंगतः । न तम्पापानिबाधन्ते महान्त्यपि दिवाकर
लिङ्गार्चनेभवेद् बुद्धिस्तेषामेवाऽत्रभास्कर । येषाम्पुनर्भवच्छेदश्चिकीर्षति महेश्वरः
न लिङ्गाराधनात्पुण्यंत्रिषुलोकेषु चाऽपरम् ।
सर्वतीर्थाभिषेकः स्याल्लिङ्गस्नानाम्बुसेवनात् ॥ ६९ ॥
तस्माल्लिङ्गन्त्वमप्यर्क! समर्चय महेशितुः ।
सम्प्राप्तंपरमांलक्ष्मीम्महातेजोभिजृम्भणीम् ॥ ७० ॥
इति श्रुत्वाहरेर्वाक्यन्तदारभ्यसहस्रगुः । विधायस्फाटिकंलिङ्गंमुनेद्याऽपिसमर्चयेत्
गुरुत्वेनतदाकल्प्य विवस्वानादिकेशवम् । तत्रोपतिष्ठतेद्याऽपिउत्तरेणादिकेशवात्
अतः सकेशवादित्यः काश्याम्भक्तमोनुदः ।
समर्चितः सदादेयान्मनसोवाञ्छितम्फलम् ॥ ७२ ॥
केशवादित्यमाराध्य वाराणस्यां नरोत्तमः ।
परमं ज्ञानमाप्नोति येन निर्वाणभाग्भवेत् ॥ ७४ ॥
तत्रपादोदकेतीर्थे कृतसर्वोदकक्रियः । विलोक्यकेशवादित्यं मुच्यते जन्मपातकः
अगस्ते! रथसप्तम्यां रविवारोयदाप्यते । तदापादोदकेतीर्थे आदिकेशवसन्निधौ
स्नात्वोषसि नरो मौनी केशवादित्यपूजनात् ।
सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ७७ ॥
यद्यज्जन्मकृतम्पापंमयासप्तसुजन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च ।माकरी हन्तु सप्तमी
एतज्जन्मकृतं पापं यच्चजन्मान्तरार्जितम् । मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः
इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके । सप्तव्याधिसमायुक्तं हरमाकरिसप्तमि!
एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः ।
केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषो भवेत् ॥ ८१ ॥
केशवादित्यमाहात्म्यं शृण्वञ्छ्रद्धासमन्वितः ।
नरो न लिप्यते पापैः शिवभक्तिं च विन्दति ॥ ८२ ॥

स्कन्द उवाच

अतः परंश्रृणुमुने विमलादित्यमुत्तमम् । हरिकेशवनेरम्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम्
उच्चदेशेऽभवत्पूर्वं विमलोनामबाहुजः । सप्राक्तनात्कर्मयोगाद्विमलेपथ्यपि स्थितः
कुष्ठरोगमवाप्योच्चैस्त्यक्त्वादारान्गृहंवसु ।वाराणसींसमासाद्यब्रध्नमाराधयत्सुधीः
करवीरैर्जपाभिश्च गन्धकैः किंशुकैः शुभैः । रक्तोत्पलैरशोकैश्च ससमानर्चभास्करम्
विचित्ररचनैर्माल्यैः पाटलाचम्पकोद्भवैः । कुङ्कुमागुरुकर्पूरमिश्रितैः शोणचन्दनैः
देवमोहनधूपैश्च बह्वामोदततास्वरैः । कर्पूरवर्तिदीपैश्च नैवेद्यैर्घृतपायसैः ॥ ८८ ॥
अर्घदानैश्च विधिवत्सौरैः स्तोत्रजपैरपि । एवंसमाराधयतस्तस्यार्कोवरदोऽभवत्
उवाच च वरंब्रूहि विमलामलचेष्टित !। कुष्ठश्च ते प्रयात्वेष प्रार्थयाऽन्यंवरं पुनः
आकर्ण्यविमलश्चेत्थमालापं रश्मिमालिनः । प्रणतोदण्डवद् भूमौ संप्रहृष्टतनूरुहः॥
शनैर्विज्ञापयाञ्चक्रे एकचक्ररथंरविम् । जगच्चक्षुरमेयात्मन्महाध्वान्तविधूनन

यदि प्रसन्नो भगवन् ! यदि देयो वरो मम ।
तदात्वद्भक्तिनिष्ठा ये कुष्ठं मास्तु तदन्वये ॥ ९३ ॥

अन्येपिरोगामासन्तुमास्तुतेषां दरिद्रता । मास्तुकश्चनसन्तापस्त्वद्भक्तानांसहस्रगो

श्रीसूर्य्य उवाच

तथास्त्वितिमहाप्राज्ञ श्रृण्वन् यंवरमुत्तमम् । त्वयेयं पूजितामूर्तिरेवंकाश्यांमहामते

अस्याः सान्निध्यमत्राऽहं न त्यक्ष्यामि कदाचन ।
प्रथिता तव नाम्ना च प्रतिमैषा भविष्यति ॥ ९६ ॥
विमलादित्यइत्याख्या भक्तानां वरदा सदा ।
सर्वव्याधिनिहन्त्री च सर्वपापक्षयङ्करी ॥ ९७ ॥

इति दत्त्वा वरान्सूर्यस्तत्रैवाऽन्तरधीयत । विमलोनिर्मलतनुःसोऽपिस्वभवनं ययौ
इत्थं सविमलादित्यो वाराणस्यां शुभप्रदः । तस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठरोगःप्रणश्यति

यश्चैतां विमलादित्यकथां वै श्रृणुयान्नरः ।
प्राप्नोति निर्मलां शुद्धिं त्यज्यते च मनोमलैः ॥ १०० ॥

स्कन्द उवाच

गङ्गादित्योऽस्ति तत्राऽन्यो विश्वेशाद्दक्षिणेन वै ।
तस्य दर्शनमात्रेण नरः शुद्धिमियादिह ॥ १०१ ॥
यदा गङ्गासमायाता भगीरथपुरस्कृता । तदागङ्गांपरिष्टोतुं रविस्तत्रैवसंस्थितः ॥
अद्याप्यहर्निशंगङ्गां सम्मुखीकृत्य भास्करः । परिष्टौतिप्रसन्नात्मा गङ्गाभक्तवरप्रदः
गङ्गादित्यंसमाराध्य वाराणस्यांनरोत्तमः । नजातुदुर्गतिं क्वापि लभतेनच रोगभाक्

स्कन्द उवाच

अन्यच्छृणुमहाभाग यमादित्यस्यसम्भवम् । यच्छ्रुत्वापिनरोजातुयमलोकंनपश्यति
यमेशात्पश्चिमेभागे वीरेशात्पूर्वतो मुने !। यमादित्यं नरोदृष्ट्वा यमलोकं न पश्यति ॥
यमतीर्थे नरः स्नात्वा भूतायाम्भौमवासरे । यमेश्वरंविलोक्याशु सर्वैः पापैःप्रमुच्यते
यमतीर्थे यमः पूर्वं तप्त्वा सुविमलन्तपः । यमेशञ्चयमादित्यं प्रत्यष्ठाद्भक्तसिद्धिदम्
यमेन स्थापितो यस्मादादित्यस्तत्र कुम्भज !।
अतः स हि यमादित्यो यामीं हरति यातनाम् ॥ ६ ॥
यमेशञ्चयमादित्यं यमेन स्थापितं नमन् । यमतीर्थे कृतस्नानो यमलोकं न पश्यति
यमतीर्थे चतुर्दश्यां भरण्याम्भौमवासरे ।' तर्पणं पिण्डदानञ्च कृत्वापित्रनृणीभवेत्
अभिलष्यन्तिसततं पितरोनरकौकसः । भौमेभरण्याम्भूतायांयदि योगोऽयमुत्तमः
काश्यां कश्चिद्यमे तीर्थे कृत्वा स्नानं महामतिः ।
अपि यस्तर्पणं कुर्यात्सतिलं नो विमुक्तये ॥ १३ ॥
किं गयागमनैः पुंसां किं श्राद्धैर्भूरिदक्षिणैः ।
यदि काश्यां यमे तीर्थे योगेऽस्मिञ्छ्राद्धमाप्यते ॥ १४ ॥
श्राद्धंकृत्वा यमेतीर्थे पूजयित्वायमेश्वरम् । यमादित्यंनमस्कृत्य पितृणामनृणोभवेत्

स्कन्द उवाच

इतितेद्वादशादित्याः कथिताःपापनाशनाः । यत्सम्भवंसमाकर्ण्य नरो न निरयीभवेत्
अन्येऽपिसन्तिवटजरचिभक्तैरनेकशः । काश्यां संस्थापिताःसूर्यागुह्यकार्कादयःकिल

श्रुत्वाध्यायानिमान्पुण्यान् द्वादशादित्यसूचकान् ।
श्रावयित्वाऽपि नो मर्त्यो दुर्गतिं याति कुत्रचित् ॥ ११८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे ऽरुणवृद्धकेशवविमलगङ्गायमादित्यवर्णनं
नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

—:*:—

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

गभस्तिमालिनि गते काशीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ।
पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्थोमुनेहरः ॥ १ ॥
नाद्याप्यायान्ति योगिन्यो नाद्याप्यायाति तिग्मगुः ।
प्रवृत्तिरपि मे काश्याश्चित्रमप्यन्तदुर्लभा ॥ २ ॥

किमत्रचित्रं यत्काशी मदीयमपि मानसम् । निश्चलं चञ्चलयति गणना केतरेसुरे
अधाक्षिपमहंकाम त्रिजगज्जित्त्वरं दृशा । अहो काश्यभिलाषोऽत्रमामेवदुनुयात्तराम्
काशीप्रवृत्तिमन्वेष्टुं कम्वा प्रहिणुयामितः । ज्ञातुंकएवनिपुणो यतः स चतुराननः
इत्याहूय विधातारं बहुमानपुरःसरम् । तत्रोपवेश्य श्रीकण्ठः प्रोवाच चतुराननम्
योगिन्यः प्रेषिताःपूर्वंप्रेषितोऽथसहस्रगुः । नाद्यापितेनिवर्तन्तेकाश्याः कमलसम्भव
सासमुत्सुकयेत्काशी लोकेश मममानसम् । प्राकृतस्यजनस्येव चञ्चलाक्षीवकाचन
मन्दरेऽत्र रतिर्मे न भृशं सुन्दरकन्दरे । अनच्छतुच्छपानीये नक्रस्येवाल्पपल्वले
ावाधिष्ठतथामां स नापोहालाहलोद्भवः । काशीविरहजन्माऽत्र यथामामतिबाधते
ीतरश्मिः शिरस्थोऽपिवर्षन्पीयूषसीकरैः । काशीविश्लेषजंतापंनाहोगमयितुंप्रभुः

विधेविधेहि मे कार्य मार्यधुर्य महामते! । याहिकाशीमितस्तूर्णं यतस्व च ममेहि ते
ब्रह्मंस्त्वमेवतवेत्सिकाशीत्यजनकारणम् । मन्दोपिनत्यजेत्काशींकिमुयोवेत्तिकिञ्चन
अद्यैवकिंनगच्छेयं काशींब्रह्मन्स्वमायया । दिवोदासं स्वधर्मस्थं नतूल्लंघितुमुत्सहे
विधेसर्वविधेयानित्वमेवविदधासियत् । इतिचेतिचवक्तव्यं त्वय्यपार्थमतोऽखिलम्

अरिष्टं गच्छपन्थास्ते शुभोदर्को भवत्वलम् ।
आदायाऽऽज्ञां विधिर्मूर्ध्नि ययौ वाराणसीं मुदा ॥ १६ ॥

सितहंसरथस्तूर्णं प्राप्यवाराणसीं पुरीम् । कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत तदात्मभूः
हंसयानफलं मेऽद्यजातं काशीसमागमे । काशीप्राप्तौयतः प्रोक्ता अन्तरायाः पदे पदे
दृशिधातुरभूदद्यमद्दृशौप्राप्यसान्वयः । स्पष्टं दृष्टिपथं प्राप्ता यदेषाऽऽऽनन्दवाटिका
स्वयंसिञ्चतियामद्भिःस्वाभिःस्वर्गतरङ्गिणी । यत्रानन्दमयावृक्षायत्रानन्दमयाजनाः

निर्विशन्ति सदा काश्यां फलान्यानन्दवन्त्यपि ।
सदैवानन्दभूः काशी सदैवानन्ददःशिवः ॥ २१ ॥

आनन्दरूपाजायन्ते तेनकाश्यांहिजन्तवः । चरणौ चरितुं वित्तस्तावेव कृतिनामिह
चरणौविचरेतांयौ विश्वभर्तृपुरीभुवि । तावेव श्रवणौ श्रोतुं सम्विदाते बहुश्रुतौ
इहश्रुतिमतां पुंसांयाभ्यां काशीश्रुतासकृत् । तदेवमनुतेसर्वंमनस्त्विहमनस्विनाम्
येनानुमन्यतेचैषा काशीसर्वप्रमाणभूः । बुद्धिर्बुध्यति सा सर्वमिहबुद्धिमतां सताम्

ययैतद्धूर्जटेर्धाम ध्रुवं स्वविषयीकृतम् ॥ २५ ॥
वरंतृणानि धान्यानि तानि वात्याहतान्यपि ।
काश्यां यान्यापतन्तीह न जनाः काश्यदर्शनाः ॥ २६

अद्यमेसफलश्चायुः परार्धद्वयसम्मितम् । यस्मिन्सतिमयाप्रापिदुष्प्रापाकाशिकापुरी
अहोमेधर्मसम्पत्तिरहोमेभाग्यगौरवम् । यदद्राक्षिषमद्याहं काशीं सुचिरचिन्तिताम्
अद्यमेस्वतपोवृक्षो मनोरथफलैरलम् । शिवभक्त्यम्बुनासिक्तः फलितोऽतिबृहत्तरैः
मयाव्यधायिबहुधा सृष्टिःसृष्टिंवितन्वता । परमन्यादृशीकाशीस्वयंविश्वेशनिर्मितिः
इति हृष्टमनावेधा दृष्ट्वा वाराणसीं पुरीम् । वृद्धब्राह्मणरूपेण राजानञ्चददर्शह

जलार्द्राक्षतपाणिश्चस्वस्त्युक्त्वापृथिवीभुजे। कृतप्रणामोराज्ञाथ भेजेतद्दत्तमासनम्
कृतमानोनृपतिना सोभ्युत्थानासनादिभिः। विप्रोव्यजिज्ञपद्भूपं पृष्टागमनकारणम्

ब्राह्मण उवाच

भूपालबहुकालीनोऽस्म्यहमत्रचिरन्तनः। त्वन्तुमांनैवजानासिजानेत्वांहिरिपुञ्जतम्
परःशतामयादृष्टाराजानोभूरिदक्षिणाः। विजितानेकसङ्ग्रामा यायजूकाजितेन्द्रियाः
विनिष्कृतारिषड्वर्गाः सुशीलाः सत्त्वशालिनः।
श्रुतस्य पारदृश्वानो राजनीतिविचक्षणाः॥ ३६॥
दयादाक्षिण्यनिपुणाः सत्यव्रतपरायणाः। क्षमयाक्षमयातुल्यागाम्भीर्यजितसागराः
जितरोषरयाःशूराः सौम्यसौन्दर्यभूमयः। इत्यादिगुणसम्पन्नाः सुसञ्चितयशोधनाः
परंद्वित्राःपवित्रायेराजर्षे तव सद्गुणाः। तेष्वेषु राजसु मम प्रायशो न दृशंगताः
प्रजानिजकुटुम्बस्त्वं त्वन्तु भूदेवदैवतः। महातपःसहायस्त्वं यथानान्ये तथानृपाः
धन्योमान्योऽसि च सतां पूजनीयोऽसि सद्गुणैः।
देवाअपिदिवोदास! त्वत्त्रासान्न विमार्गगाः॥ ४१॥
किं नः स्तुत्या तव नृप! द्विजा नामस्पृहावताम्।
किं कुर्मस्त्वद्गुणग्रामाः स्तावकान्नः प्रकुर्वते॥ ४२॥
गोष्ठीतिष्ठत्वियं तावत्प्रस्तुतं स्तौमि साम्प्रतम्।
यष्टुकामोऽस्म्यहं राजंस्त्वां सहायमतो वृणे॥ ४३॥
त्वया राजन्वती चैषाऽवनिः सर्वर्द्धिभाजनम्।
अहं चास्तिधनो राजन्! न्यायोपात्तमहाधनः॥ ४४॥
इयञ्चराजधानी ते कर्मभूमावनुत्तमा। यस्यां कृतानांकार्याणां सम्वर्तेऽपि न संक्षयः
सञ्चितं यद्धनं पुम्भिर्नयसन्मार्गगामिभिः।
तत्काश्यां विनियुज्येत क्लेशायेतरथा भवेत्॥ ४६॥
महिमानं परं काश्याः कोऽपिवेद न भूपते!। ऋतेत्रिनयनाच्छम्भोः सर्वज्ञानप्रदायिनः
मन्ये धन्यतरोऽसि त्वं बहुजन्मशतार्जितैः।

सुकृतैः पासि यत्काशीं विश्वभर्तुः परां तनुम् ॥ ४८ ॥

काशीत्रिजगतीसारस्त्रिवेदीसार एव वै । त्रिवर्गोत्तरसारश्च निर्णीतेति महर्षिभिः
विश्वेशानुग्रहेणैव त्वयैषापाल्यतेपुरी । एकस्याप्यवनात्काश्यांत्रैलोक्यमचितम्भवेत्

अन्यच्च ते हितं वच्मि यदि ते रोचतेऽनघ !।
प्रीणनीयः सदैवैको विश्वेशः सर्वकर्मभिः ॥ ५१ ॥
अन्यदेव धिया-राजन् विश्वेशं पश्य माक्वचित् ।
ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्रार्काः क्रीडेयन्तस्य धूर्जटेः ॥ ५२ ॥
विप्रैरुदर्कमिच्छद्भिः शिक्षणीया यतो नृपाः ।
अतस्तव हितं ख्यातं किम्वा मे चिन्तयाऽनया ॥ ५३ ॥

इति जोषं स्थितंविप्रं प्रत्युवाचनृपोत्तमः । सर्वं मयाहृदिधृतंयत्त्वयोक्तंद्विजोत्तम!

राजोवाच

अहं यियक्षमाणस्य तव साहाय्यकर्मणि ।
सोऽस्मि यज्ञसम्भारान्नय मे कोशतोऽखिलान् ॥ ५५ ॥
यदस्ति मेऽखिलन्तत्र सप्ताङ्गेऽपि भवान्प्रभुः ।
यजस्वैकमनाब्रह्मन् !सिद्धं मन्यस्व वाञ्छितम् ॥ ५६ ॥

राज्यंकरोमि यद्ब्रह्मन् !स्वार्थं तन्नमनागपि । पुत्रैः कलत्रैर्देहेन परोपकृतये यते ॥
राज्ञांक्रतुक्रियाभ्योपितीर्थेभ्योपिसमन्ततः । प्रजापालनमेवैकोधर्मःप्रोक्तोमनीषिभिः
प्रजासन्तापजोवह्निर्वज्राग्नेरपिदारुणः । द्वित्रान्दहतिवज्राग्निः पूर्वो राज्यं कुलंतनुम्
यदाऽवभृथसिस्नासुर्भवेयंद्विजसत्तम !। तदा विप्रपदाम्भोभिरभिषेकंकरोम्यहम्
हवनं ब्राह्मणमुखे यत् करोमि द्विजोत्तम !। मन्येक्रतुक्रियाभ्योऽपितद्विशिष्टंमहामते
अभिलाषेषु सर्वेषु जागर्त्यैकोहृदीह मे । अद्यापिमार्गणःकोऽपि द्रष्टव्यःस्वतनोरपि
अहो अहोभिर्बहुभिः फलितो मे मनोरथः । यत्त्वंमेऽद्यगृहेप्राप्तःकिञ्चित्प्रार्थयितुंद्विज

एकाग्रमानसोविप्र! यज्ञान्विपुलदक्षिणान् ।
बह्वन्यज कृतं विद्धि साहाय्यं सर्ववस्तुषु ॥ ६४ ॥

इति राज्ञो मह बुद्धेर्धर्मशीलस्य भाषितम् । श्रुत्वा तुष्टमनाःस्रष्टाक्रतुसम्भारमाहरत्
साहाय्यंप्राप्य राजर्षेर्दिवोदासस्यपद्मभूः । इयाजदशभिः काश्यामश्वमेधैर्महामखैः
अद्यापि होमधूमौघैर्यद्व्याप्तंगगनान्तरम् । तदाप्रभृति न व्योमनीलिमानंजहात्यदः
तीर्थं दशाश्वमेधाख्यं प्रथितंजगतीतले । तदाप्रभृति तत्रासीद्वाराणस्यां शुभप्रदम्
पुरारुद्रसरोनाम तत्तीर्थं कलशोद्भव !। दशाश्वमेधिकं पश्चाज्जातं विधिपरिग्रहात्
स्वर्धुन्यथ ततः प्राप्ताभगीरथसमागमात् । अतीवपुण्यवज्जातमतस्तत्तीर्थमुत्तमम्

विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गं संस्थाप्य तत्र वै ।
स्थितवान्नगतोऽद्यापि क्वाऽपि काशीं विहाय तु ॥ ७१ ॥

राज्ञो धर्मरतेस्तस्यच्छिद्रंनावापकिञ्चन । अतःपुरारेः पुरतो व्रजित्वा किं वदेद्विधिः

क्षेत्रप्रभावं विज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वरं शिवम् ।
ब्रह्मेश्वरं च संस्थाप्य विधिस्तत्रैव संस्थितः ॥ ७३ ॥
परा तनुरियं काशी विश्वेशस्येति निश्चितम् ।
अस्याः संसेवनाच्छम्भुर्न कुप्यति पुरो मयि ॥ ७४ ॥

कः प्राप्य काशीं दुर्मेधाः पुनस्त्यक्तुमिहेहते । अनेकजन्मजनितकर्मनिर्मूलनक्षमाम्

विश्वसन्तापसंहर्तुः स्थाने विश्वपतेस्तनुः ।
सन्ताप्यतेतरां काश्या विश्लेषजमहाग्निना ॥ ७६ ॥
प्राप्य काशीं त्यजेद्यस्तु समस्ताघौघनाशिनीम् ।
नृपशुः स परिज्ञेयो महासौख्यपराङ्मुखः ॥ ७७ ॥
निर्वाणलक्ष्मीं यः काङ्क्षेत्त्यक्त्वा संसारदुर्गतिम् ।
तेन काशी न सन्त्याज्या यद्यातैशादनुग्रहात् ॥ ७८ ॥

यः काशीं सम्परित्यज्य गच्छेदन्यत्रदुर्मतिः । तस्यहस्ततलाद्गच्छेच्चतुर्वर्गफलोदयः

निबर्हणीमघौघस्य सुपुण्यपरिबृंहिणीम् ।
कःप्राप्य काशीं दुर्मेधास्त्यजेन्मोक्षसुखप्रदाम् ॥ ८० ॥
सत्यलोके क्व तत्सौख्यं क्व सौख्यं वैष्णवे पदे ।

यत्सौख्यं लभ्यते काश्यां निमेषार्धनिषेवणात् ॥ ८१ ॥
वाराणसीगुणगणान्निर्णीयद्रुहिणस्त्विवति । व्यावृत्यमन्दरगिरिंनपुनःप्रत्यगान्मुने

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणयोः पुत्र!महिमानं ब्रवीमिते । काश्यां दशाश्वमेधस्य सर्वतीर्थशिरोमणेः
दशाश्वमेधिकं प्राप्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तदक्षयमिहेरितम्
स्नानं दानं जपोहोमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
सन्ध्योपास्तिस्तर्पणं च श्राद्धं पितृसमर्चनम् ॥ ८५ ॥
दशाश्वमेधिके तीर्थे सकृत्स्नात्वा नरोत्तमः । दृष्ट्वा दशाश्वमेधेशं सर्वपापैः प्रमुच्यते
ज्येष्ठेमासिसितेपक्षेप्राप्यप्रतिपदंतिथिम् । दशाश्वमेधिकेस्नात्वामुच्यतेजन्मपातकैः
ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां स्नात्वारुद्रसरोवरे । जन्मद्वयकृतंपापंतत्क्षणादेव नश्यति
एवं सर्वासुतिथिषु क्रमस्नायीनरोत्तमः । आशुक्लपक्षदशमि प्रतिजन्माघमुत्सृजेत्
तिथिंदशहरांप्राप्यदशजन्माघहारिणीम् । दशाश्वमेधिकेस्नातोयामींपश्येन्नयातनाम्
लिङ्गं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथौ ।
दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नाऽत्र संशयः ॥ ९१ ॥
स्नातोदशहरायां यः पूजयेल्लिङ्गमुत्तमम् । भक्त्यादशाश्वमेधेशं न तं गर्भदशास्पृशेत्
ज्येष्ठेमासि सितेपक्षे पक्षं रुद्रसरे नरः । कुर्वन्वैवार्षिकीं यात्रां न विघ्नैरभिभूयते
दशाश्वमेधावभृथैर्यत्फलंसम्यगाप्यते । दशाश्वमेधे तन्नूनं स्नात्वा दशहरातिथौ ॥
स्वर्धुन्याः पश्चिमेतीरेनत्वादशहरेश्वरम् । नदुर्दशामवाप्नोतिपुमान्पुण्यतमःक्वचित्
यत्काश्यां दक्षिणद्वारमन्तर्गेहस्यकीर्त्यते । तत्र ब्रह्मेश्वरंदृष्ट्वा ब्रह्मलोके महीयते
इति ब्राह्मणवेषेणवाराणस्यां महाधिया । द्रुहिणेन स्थितंतावद्यावद्विश्वेश्वरागमः
दिवोदासोऽपि राजेन्द्रो वृद्धब्राह्मणरूपिणे । ब्रह्मणेकृतयज्ञाय ब्रह्मशालामकल्पयत्
ब्रह्मेश्वरसमीपेतु ब्रह्मशाला मनोहरा । ब्रह्मा तत्रावसद्व्योम ब्रह्मघोषैर्निनादयन् ॥
इति ते कथितोब्रह्मन्महिमातिमहत्तरः । दशाश्वमेधतीर्थस्य सर्वाघौघविनाशनः ॥
श्रुत्वाऽध्यायमिमं पुण्यं श्रावयित्वा तथैव च ।

ब्रह्मलोकमवाप्नोति श्रद्धया मानवोत्तमः ॥ १०१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
उत्तरार्धे दशाश्वमेधवर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२.॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सवाराणसीवर्णनं गणप्रेषणकथनम्

अगस्तिरुवाच

अपूर्वेयं कथाख्याताब्रह्मणो ब्रह्मवित्तम !। किंचकारपुनः शम्भुस्तत्र ब्रह्मण्यपिस्थिते

स्कन्द उवाच

शृणवगस्त्य महाभाग! काश्यां ब्रह्मण्यपि स्थिते ।
गिरिशश्चिन्तयामास भृशमुद्विग्नमानसः ॥ २ ॥

पुरीसायादृशीकाशी वशीकरणभूमिका । नतादृशीदृशांहासीत्कचिन्मेप्रायशो ध्रुवम्
योयोयातिपुरींतान्तुससतत्रैवतिष्ठति । अभूवन्ननुयोगिन्योऽयोगिन्यःकाशीसङ्गताः
अकिञ्चित्करतांप्राप्तःससहस्रकरोऽप्ययम् । विधिर्विधानदक्षोपिनमेससविधोऽभवत्
चिन्तयन्नितिदेवेशो गणानाहूय भूरिशः । प्रेषयामास भोयात क्षिप्रंवाराणसीं पुरीम्

किं कुर्वन्ति तु योगिन्यः किंकरोति स भानुमान् ।
गत्वा वित्तत्वरायुक्ता विधिश्च विदधाति किम् ॥ ७ ॥

नामग्राहन्ततोऽप्रैषीद्वहुमानपुरः सरम् । शङ्कुकर्णमहाकाल घण्टाकर्णमहोदर
सोमनन्दिन्नन्दिषेण कालपिङ्गलकुक्कुट !। कुण्डोदर मयूराक्ष! बाणगोकर्णतारक
तिलपर्णस्थूलकर्ण द्रुमिचण्डप्रभामय !। सुकेश! विन्दते छाग कपर्दिन् पिङ्गलाक्षक!
वीरभद्रकिराताख्य चतुर्मुख! निकुम्भक! । पञ्चाक्षभारभूताख्य त्र्यक्षक्षेमकलाङ्गलिन्
विराधसुमुखाषाढे भवन्तो मम सूनवः । यथेमौ स्कन्दहेरम्बौ नैगमेयोयथात्वयम्
यथाशाखविशाखौ च यथेमौनन्दिभृङ्गिणौ । भवत्सुविद्यमानेषु महाविक्रमशालिषु

काशीप्रवृतिंनोजाने दिवोदासनृपस्यच । योगिन्यर्कविधीनांचतद्वद्द्वौयातंभवत्स्वम्
शङ्कुकर्णमहाकालौ कालस्यापिप्रकम्पनौ । ज्ञातुंवाराणसीवार्तामायातंचत्वरान्वितौ
कृतप्रतिज्ञौतौतूर्णंप्राप्यवाराणसींपुरीम् । शङ्कुकर्णमहाकालौ विस्मृत्यशाम्भवींगिरम्
यथेन्द्रजालिकीं दृष्ट्वा मायामिहविचक्षणः । क्षणेनमोहमायातिकाशीम्वीक्ष्यतथैवतौ

अहो मोहस्य माहात्म्यमहोभाग्यविपर्ययः ।
निर्वाणराशिं यत्काशीं प्राप्य यान्त्यन्यतोऽबुधाः ॥ १८ ॥

तत्यजेयैरियं काशीमहाशीर्वादभूमिका । तेषाकरतलान्मुक्तिः प्राप्ताऽपि परितोगता
यत्रसर्वावभृथतःस्नानमात्रंविशिष्यते । अप्यूषणीकृतपानीयैस्तांकाशींकःपरित्यजेत्
यत्रैकपुष्पदानेन शिवलिङ्गस्यमूर्धनि । दशसौवर्णिकंपुण्यं कस्तां काशींपरित्यजेत्
यत्रदण्डप्रणामेन अप्येकेनशिवाग्रतः । तुच्छमैन्द्रपदं प्राहुस्तां काशीं कोविमुञ्चति
यत्रैकद्विजमात्रन्तुभोजयित्वायथेच्छया । वाजपेयाधिकंपुण्यंतांकाशीं को विमुञ्चति
एकांगांयत्रदत्त्वावैविधिवद्ब्राह्मणायवै । लभेदयुतगोपुण्यंकस्तांकाशीं त्यजेत्सुधीः

एकं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य यत्र संस्थापितम्भवेत् ।
अपि त्रैलोक्यमखिलं तां काशीं कः समुज्झति ॥ २५ ॥
परिनिश्चित्यतावित्थं लिङ्गे संस्थाप्य पुण्यदे ।
तत्रैव संस्थितिं प्राप्तौ काशीं नाऽद्यापि मुञ्चतः ॥ २६ ॥

शङ्कुकर्णेश्वरं लिङ्गं शङ्कुकर्णगणार्चितम् । दृष्ट्वा न जायते जन्तुर्जातुमातुर्महोदरे
विश्वेशाद्वायुदिग्भागे शङ्कुकर्णेश्वरं नरः । सम्पूज्य न विशेदत्र घोरे संसारसागरे
महाकालेश्वरं लिङ्गम्महाकालगणार्चितम् । अर्चयित्वाचनत्वाचस्तुत्वाकालभयंकुतः

स्कन्द उवाच

शङ्कुकर्णे महाकाले चिरन्तनविलम्बिते । ज्ञात्वा सर्वज्ञनाथोऽथ प्राहैषीदपरौगणौ
घण्टाकर्ण!त्वमागच्छ महोदरमहामते । काशीं यातं युवां तूर्णं ज्ञातुं तत्रत्यचेष्टितम्

इत्यगस्तेगणौ तौ तु गत्वा काशीं महापुरीम् ।
व्यावृत्याद्यापि नो यातौ क्वापि तत्रैव संस्थितौ ॥ ३२ ॥

घण्टाकर्णेश्वरं लिङ्गं घण्टाकर्णगणोत्तमः ।
काश्यां संस्थाप्य विधिवत्स्वयं तत्रैव निर्वृतः ॥ ३३ ॥
कुण्डंतत्रैवसंस्थाप्यलिङ्गस्नपनकर्मणे । नाद्यापिसन्त्यजेत्काशीं ध्यायँल्लिङ्गन्तथैवहि
महोदरोपितत्प्राच्यांशिवध्यानपरायणः । महोदरेश्वरं लिङ्गं ध्यायेदद्यापि कुम्भज!
महोदरेश्वरंदृष्ट्वावाराणस्यांद्विजोत्तम । कदाचिदपिवै मातुः प्रविशेन्नौदरीं दरीम्
घण्टाकर्णह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाव्यासेश्वरंविभुम् । यत्रकुत्रविपन्नोपिवाराणस्यांमृतोभवेत्
घण्टाकर्णेमहातीर्थे श्राद्धं कृत्वाविधानतः । अपि दुर्गतिमापन्नानुद्धरेत्सप्त पूर्वजान्
निमज्ज्याद्याऽपि तत्कुण्डे क्षणं योऽवहितोभवेत् ।
विश्वेश्वरमहापूजाघण्टारावाञ्छृणोति सः ॥ ३९ ॥
वदन्तिपितरःकाश्यांघण्टाकर्णेऽमलेजले । दातातिलोदकस्यापिवंशेनःकोऽपिजायते
यद्दृश्यामुनयःकाश्यांघण्टाकर्णेमहाह्रदे । कृतोदकक्रियाः प्राप्ताः परां सिद्धिं घटोद्भव!

स्कन्द उवाच

घण्टाकर्णेगणेयाते प्रयाते च महोदरे । विसिस्मायस्मरद्वेष्टामौलिमान्दोलयन्मुहुः
उवाचचमनस्येवहरःस्मित्वापुनः पुनः । महामोहनविद्याऽसि काशित्वाम्पर्यवैम्यहम्
पुराविदः प्रशंसन्ति त्वाम्महामोहहारिणीम् ।
काशीं त्विति न जानन्ति महामोहनभूरियम् ॥ ४४ ॥
प्रेषयिष्याम्यहं सर्वान्भवती मोहयिष्यति ।
इति सम्यग्विजानामि काशित्वाम्मोहनौषधिम् ॥ ४५ ॥
तथापि प्रेषयिष्यामि यावान्मेऽस्ति परिच्छदः ।
नोद्यमाद्विरमन्तीह ज्ञानिनः साध्यकर्मणि ॥ ४६ ॥
नोद्यमाद्विरतिः कार्या क्वापि कार्ये विचक्षणैः ।
प्रतिकूलोऽपि खिद्येत विधिस्तत्सततोद्यमात् ॥ ४७ ॥
शीतोष्णभानूस्वर्भानुग्रस्तावपिनभोङ्गणे । गतिंनत्यजतोऽद्यापिप्रक्रान्तव्यक्तोद्यमौ
एकत्र हन्ति कार्याणि प्रातिकूल्याद्विधिर्मुहुः ।

एकत्रकरणीयानि सेत्स्यन्त्यत्र भृशोद्यमात् ॥ ४६ ॥
दैवं पूर्वकृतं कर्म कथ्यते नेतरत्पुनः । तन्निराकरणे यत्नः स्वयं कार्यो विपश्चिता
भाजनोपस्थितं दैवाद्भोज्यं नास्यं स्वयं विशेत् ।
हस्तवक्त्रो द्यमात्तच्च प्रविशेदौदरीं दरीम् ॥ ५१ ॥
इत्युद्यमंसमर्थ्येशोनिश्चितंदैवजित्वरम् । पुनश्चप्रेषयाञ्चक्रेगणान्पञ्चमहारयान्
सोमनन्दीनन्दिषेणःकालपिङ्गलकुक्कुटाः । तेद्यापिननिवर्तन्तेकाश्यांजीवामृतायथा
तेऽपि स्वनाम्नालिङ्गानि शम्भुसन्तुष्टिकाम्यया ।
प्रतिष्ठाप्य स्थिताः काश्यां विश्वनिर्वाणजन्मनि ॥ ५४ ॥
सोमनन्दीश्वरं दृष्ट्वा लिङ्गं नन्दवनेपरम् । सोमलोके परानन्दं प्राप्नुयाद्भक्तिमान्नरः
तदुत्तरेविलोक्याथ नन्दिषेणेश्वरं नरः । आनन्दसेनांसम्प्राप्यजयेन्मृत्युमपिक्षणात्
कालेश्वरम्महालिङ्गं गङ्गायाः पश्चिमोत्तरे । प्रणम्य कालपाशेन नो बध्येत कदाचन
पिङ्गलेश्वरमभ्यर्च्य कालेशात्किञ्चिदुत्तरे । लभते पिङ्गलज्ञानं येन तन्मयतां व्रजेत्
कुक्कुटेश्वरलिङ्गस्ययेऽत्रभक्तिं वितन्वते । कुक्कुटाण्डाकृतेस्तस्य नतेगर्भमवाप्नुयुः

स्कन्द उवाच

सोमनन्दिप्रभृतिषु मुनेपञ्चगणेष्वपि । आनन्दकाननम्प्राप्य स्थितेषु स्थाणुरब्रवीत्
कार्यमस्माकमेवैतद्यदि सम्यग्विमृश्यते । अनेनोपाधिनाप्येते तत्र तिष्ठन्तुमामकाः
प्रथमेषु प्रविष्टेषु मायावीर्यमहत्स्वपि । अहमेव प्रविष्टोऽस्मिवाराणस्यां न संशयः
क्रमेणप्रेषयिष्यामियोऽस्तिमेस्वपरिच्छदः । तत्रसर्वेषु यातेषु ततोयास्याम्यहम्पुनः
सम्प्रधार्येतिहृदये देवदेवेन शूलिना । प्रैषिष्ट प्रमथानां तु ततो गणचतुष्टयम्
कुण्डोदरोमयूराख्यो बाणोगोकर्णएवच । मायाबलंसमाश्रित्यकाशीम्प्रविविशुर्गणाः
कृत्वोपायशतं तैस्तुदिवोदासस्यसम्भ्रमे । यदैकोपिसमर्थोनतदातत्रैव संस्थितम्
अपराधशतेष्वीशः केन तुष्यतिकर्मणा । सम्प्रधार्येति ते चक्रुर्लिङ्गाराधनमुत्तमम्
एकस्मिञ्छाम्भवे लिङ्गे विधिनाऽत्र समर्चिते ।
क्षमेत् त्र्यक्षोऽपराधानां शतम्मोक्षञ्च यच्छति ॥ ६८ ॥

न तुष्यति तथा शम्भुर्यज्ञदानतपोव्रतैः । यथातुष्येत्सकृल्लिङ्गे विधिनाभ्यर्चिते सति
लिङ्गार्चनविधानज्ञो लिङ्गार्चनरतःसदा । त्र्यक्षएवसविज्ञेयःसाक्षाद्द्व्यक्षोऽपिमानवः
न गोशतप्रदानेन न स्वर्णशतदानतः । तत्फलं लभ्यतेपुम्भिर्यत्सकृल्लिङ्गपूजनात्
अश्वमेधादिभिर्यागैर्नतत्फलमवाप्यते । यत्फलं लभ्यतेमर्त्यैर्नित्यं लिङ्गप्रपूजनात्

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।
त्रिः पिबेत्त्रिविधस्पापं तस्येहाऽऽशु प्रणश्यति ॥ ७३ ॥
लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् ।
गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः ॥ ७४ ॥
लिङ्गं समर्चितं दृष्ट्वा यः कुर्यात्प्रणतिं सकृत् ।
सन्देहो जायते तस्य पुनर्देहनिबन्धने ॥ ७५ ॥
लिङ्गं यः स्थापयेद्भक्त्या सप्तजन्मकृतादघात् ।
मुच्यते नात्र सन्देहो विशुद्धः स्वर्गभाग्भवेत् ॥ ७६ ॥
विचार्येऽतिगणैः काश्यां स्वामिद्रोहोपशान्तये ।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि महापातकभिन्त्यपि ॥ ७७ ॥

कुण्डोदरेश्वरंलिङ्गं दृष्ट्वा लोलार्कसन्निधौ । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते
कुण्डोदरेश्वराल्लिङ्गात्प्रतीच्यामसिरोधसि । मयूरेश्वरमभ्यर्च्य न गर्भम्प्रतिपद्यते
मयूरेशप्रतीच्यांचलिङ्गम्बाणेश्वरम्महत् । तस्य दर्शनमात्रेण सर्वैः पापैः प्रमुच्यते
गोकर्णेशम्महालिङ्गमन्तर्गेहस्यपश्चिमे । द्वारेसमर्च्य वै काश्यां न विघ्नैरभिभूयते
गोकर्णेश्वरभक्तस्य पञ्चत्वसमये सति । ज्ञानभ्रंशो न जायेत कच्चिदप्यन्तमृच्छतः

स्कन्द उवाच

चिरयत्सुगणेष्वेषु चतुर्ष्वपिगणेश्वरः । महिमानम्महत्त्वं तु तत्काश्याः पर्यवर्णयत्

वैष्णव्या मायया विश्वम्भ्राम्येताऽत्र ययाऽखिलम् ।
ध्रुवं मूर्त्तिमती सैषा काशी विश्वैकमोहिनी ॥ ८४ ॥

अपास्य सोदरान्दारान् पुत्रं क्षेत्रं गृहं वसु । अप्यङ्गीकृत्यनिधनं सर्वेकाशीमुपासते

मरणादपिनोकाश्याम्भयंयत्रमनागपि । गणास्तत्रतु तिष्ठन्तःकुतोमत्तोऽपिबिभ्यति
मरणम्मङ्गलं यत्र विभूतिर्यत्रभूषणम् । कौपीनं यत्रकौशेयं काशीकुत्रोपमीयते ॥
निर्वाणरमणीयत्ररङ्कं वाऽरङ्कमेव वा । ब्राह्मणं वा स्वपाकंवा वृणीतेप्रान्त्यभूषणम्
मृतानां यत्रजन्तूनांनिर्वाणपदमृच्छताम् । कोट्यंशेनापिनसमाअपिशक्रादयःसुराः
यत्रकाश्यांमृतोजन्तुर्ब्रह्मनारायणादिभिः । प्रवद्धमूर्धाञ्जलिभिर्नमस्येतातियत्नतः

यत्र काश्यां शवत्वेऽपि जन्तुर्नाऽशुचितां व्रजेत् ।
अतस्तत्कर्णसंस्पर्शंकरोम्यहमपि स्वयम् ॥ ९१ ॥
यस्तु काशीति काशीति द्विस्त्रिर्जपति पुण्यवान् ।
अपि सर्वपवित्रेभ्यः स पवित्रतरो महान् ॥ ९२ ॥

येनकाशीहृदिध्याता येनकाशीहसेविता । तेनाऽहं हृदिसन्ध्यातस्तेनाहंसेवितःसदा
काशीं यः सेवतेजन्तुर्निर्विकल्पेन चेतसा । तमहं हृदये नित्यं धारयामि प्रयत्नतः ॥
स्वयंवस्तुमशक्तोपिवासयेत्तीर्थवासिनाम् । अप्येकमपिमूल्येनसवस्तुःफलभाग्ध्रुवम्

काश्यां वसन्ति ये धीरा आपञ्चत्वविनिश्चयाः ।
जीवन्मुक्तास्तु ते ज्ञेया वन्द्याः पूज्यास्त एव हि ॥ ९६ ॥
इत्थं विमृश्य बहुशः स्थाणुर्वाराणसीगुणान् ।
गणानन्यान्समाहूय प्राहिणोत्प्रीतिपूर्वकम् ॥ ९७ ॥
तारकत्वं समागच्छ गच्छाऽतिस्वच्छमानस !।
दिवोदासो वृषावासो यामधीष्टे वरां पुरीम् ॥ ९८ ॥

तिलपर्ण! स्थूलकर्ण!द्रुमिचण्ड!प्रभामय !। सुकेश!विन्दते!छाग! कपर्दिन्पिङ्गलाक्षक!
वीरभद्र!किराताख्य!चतुर्मुख!निकुम्भक !। पञ्चाक्षभारभूताख्य!त्र्यक्षक्षेमकलाङ्गलिन्
विराधसुमुखाषाढेयान्तुसर्वे पृथक् पृथक् । एतेगणामहाभागाःस्वामिभक्ताःदृढव्रताः

कृत्वा माया बहुविधा बहुरूपा विचक्षणाः ।
अनिमेषेक्षणास्तस्थुः क्षोणीशच्छिद्रकाङ्क्षिणः ॥ १०२ ॥

अपरिज्ञाततच्छिद्राविद्राविर्तयशोधनाः । आःकिमेतदहोजातंनिनिन्दुःस्वमितोहते

गणा ऊचुः

धिगस्मान्स्वामिनानित्यं कृतसम्भावनान्मुहुः । मनुष्यमात्रमप्यत्रयैरेकंनवशीकृतम्
बहुमानेन दानेन सौहार्देन महीयसा । कृतप्रसादांस्त्र्यक्षेणधिङ्नस्तत्कार्यवञ्चकान्
कागतिर्नोभवित्रीहस्वामिकृत्यप्रमादिनाम् । अन्धं तमोमयेलोकेध्रुवंवासोभविष्यति
अकृतस्वामिकार्याणामहोजीवितधारिणाम् । अक्षतेन्द्रियवृत्तीनांदुर्गतिश्च पदे पदे
लब्धसम्भावनानाञ्च न्यक्कृतस्वामिकर्मणाम् ।
भृत्यानाम्भूरिभाजाञ्च भङ्गुराः स्युर्मनोरथाः ॥ १०८ ॥
अनिष्पादितकार्यार्थाये मुखं प्रेक्षयन्त्यहो । अपत्रपाः पुरोभर्तुस्तैर्भू र्भारवतीत्वियम्
नाद्रीणां न समुद्राणां न द्रुमाणां महीयसाम् ।
भूतधात्र्यास्तथाभारो यथा स्वामिद्रुहां महान् ॥ ११० ॥
अहो पौराणिकी गाथा स्मृताऽस्माभिरनिन्दिता ।
तदर्थमवलम्ब्येह स्थास्यामः कृतनिश्चयाः ॥ १११ ॥
अनाकलितपुण्यानां परिक्षीणधनायुषाम् । सर्वोपायविहीनानांगतिर्वाराणसीपुरी
अपुण्यभारखिन्नानां पश्चात्तापमुपेयुषाम् । विश्वगूर्ध्वगतीनाञ्च गतिर्वाराणसीपुरी
स्वामिद्रुहः कृतघ्नाश्च ये चविश्रम्भघातकाः ।
तेषां काऽपि गतिर्नास्ति मुक्त्वा वाराणसींपुरीम् ॥ ११४ ॥
इत्थंनिश्चित्य गाथार्थं प्रमथाअवतस्थिरे । अविज्ञातस्वरूपाश्च दिवोदासेन भूभुजा
न बुबोध सभूपालोनितरांबुद्धिमानपि । विबुधान्विविधाकारैःस्थितानीशप्रभावतः
चित्रं न चित्रगुप्तोऽपि वेत्ति वाराणसीस्थितान् ।
जन्तून्का गणनाऽन्येषां मर्त्यलोकनिवासिनाम् ॥ ११७ ॥
अविच्छिन्नप्रभावाणामपरिच्छिन्नतेजसाम् ।
कृतलिङ्गप्रतिष्ठानां नान्तं प्राप्नोति धर्मराट् ॥ ११८ ॥
इति ते प्रमथाःसर्वे घटोद्भवमहामुने! । कृतलिङ्गार्चनाःकाशींनाद्याऽप्युज्झन्तिशर्मदम्
तारकेशं महालिङ्गं तारकाख्योगणोत्तमः । तारकज्ञानदंपुंसां मुनेऽद्यापि समर्चयेत्

तारकेश्वरलिङ्गस्य कृत्वाभक्तिं सुनिश्चलाम् । सुखेन तारकज्ञानं लभ्यते तैर्नरोत्तमैः
तिलपर्णेश्वरं लिङ्गं तिलपर्णप्रतिष्ठितम् । तिलप्रमाणमप्यत्र दृष्ट्वा पापं न सम्भवेत्
स्थूलकर्णेश्वरं लिङ्गंसम्परिपूज्यनरोत्तमः । नदुर्गतिमवाप्नोतिपुण्यमाप्नोतिचोत्तमम्
द्रुमिचण्डेश्वरं लिङ्गं तथालिङ्गंप्रभामयम् । आराध्यतत्प्रतीच्याञ्चनपापैरभिभूयते ॥
प्रभामयेश्वरं लिङ्गंदृष्ट्वाऽन्यत्रापिसंस्थितः । प्रभामयेनयानेन शिवलोकेव्रजेत्सुधीः
सुकेशेश्वरमभ्यर्च्य हरिकेशवनेनरः । षाट्कौशिकमयंदेहं धारयेन्नपुनः पुनः

विन्दतीशं नरोऽभ्यर्च्यभीमचण्डीसमीपतः ।
त्यक्त्वाप्रचण्डमप्येनोमोक्षं विन्दति शाश्वतम् ॥ १२७ ॥

छागलेशमहालिङ्गंपित्रीश्वरसमीपगम् । विलोक्यपशुवत्कोपिनपापं प्राकृतंस्पृशेत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्रयां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
उत्तरार्धे वाराणसीवर्णनगणप्रेषणंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पिशाचमोचनमहत्त्ववर्णनम्

स्कन्द उवाच

कुम्भसम्भव! वक्ष्यामि शृणोत्ववहितो भवान् ।
कपर्दीशस्य लिङ्गस्य महामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥
कपर्द्दीनाम गणपः शम्भोरत्यन्तवल्लभः ।
पित्रीशादुत्तरे भागे लिङ्गं संस्थाप्य शाम्भवम् ॥ २ ॥

कुण्डंचखानतस्याग्रेविमलोदकसञ्ज्ञकम् । यस्यतोयस्यसंस्पर्शाद्विमलोजायतेनरः
इतिहासं प्रवक्ष्यामि तत्र त्रेतायुगे पुरा । यथावृत्तंकुम्भयोने! श्रवणात्पातकापहम्
एकः पाशुपतश्रेष्ठोवाल्मीकिरिति सञ्ज्ञितः । तपश्चचार स मुनिः कपर्दीशंसमर्चयन

एकदा स हि हेमन्ते मार्गे मासि तपोधनः ।
स्नात्वा तत्र महातीर्थे मध्याह्ने विमलोदके ॥ ६ ॥
चकारभस्मनास्नानमापादतलमस्तकम् । लिङ्गस्यदक्षिणेभागे कृतमाध्याह्निकक्रियः
न्यस्तमस्तकपांसुश्च सन्ध्यामाध्यात्मिकीं स्मरन् ।
जपन्पञ्चाक्षरीं विद्यां ध्यायन्देवं कपर्दिनम् ॥ ८ ॥
कृत्वा संहारमार्गेण सप्रमाणं प्रदक्षिणम् । हुडुंकृत्य हुडुंकृत्यहुडुंकृत्यत्रिरुच्चकैः
प्रणवं पुरतःकृत्वा षड्जादिस्वरभेदतः । गीतंविधायसानन्दं सनृत्यंहस्तकान्वितम्
अङ्गहारैर्मनोहारि चारीमण्डलसंयुतम् । क्षणं तत्र सरस्तीर उपविष्टो महातपाः
अद्राक्षीद्राक्षसंघोरमतीवविकृताकृतिम् । शुष्कशङ्खकपोलास्यंनिमग्नापिङ्गलोचनम्
रूक्षस्फुटितकेशाग्रं महालम्बशिरोधरम् । अतीवचिपिटघ्राणं शुष्कौष्ठमतिदन्तुरम्
महाविशालमौलिञ्च प्रोर्ध्वीभूतशिरोरुहम्
प्रलम्बकर्णपालीकं पिङ्गलश्मश्रुभीषणम् १४ ॥
प्रलम्बितलल्जिह्वमत्युत्कटकृकाटिकम् ।
स्थूलास्थिजत्रुसंस्थानं दीर्घस्कन्धद्वयोत्कटम् ॥ १५ ॥
निमग्नकक्षाकुहरं शुष्कह्रस्वभुजद्वयम् । विरलाङ्गुलिहस्ताग्रं नतपीननखावलिम्
विशुष्कपांसुलोत्क्रोडं पृष्ठलग्नोदरत्वचम् । कटीतटेन विकटं निर्मांसत्रिकबन्धनम्
प्रलम्बस्फिग्युगयुतं शुष्कमुष्कालपमेहनम् ।
दीर्घनिर्मांसलोरूकं स्थूलजान्वस्थिपञ्जरम् ॥ १८ ॥
अस्थिचर्मावशेषं च शिराजालितविग्रहम् ।
शिरालंदीर्घजङ्घं च स्थूलगुल्फास्थिभीषणम् ॥ १६ ॥
अतिविस्तृतपादश्च दीर्घवक्रकृशाङ्गुलिम् । अस्थिचर्मावशेषेण शिराताडितविग्रहम्
विकटं भीषणाकारं क्षुत्क्षाममतिलोमशम् । दावदग्धद्रुमाकारमतिचञ्चललोचनम्
मूर्तं भयानकमिव सर्वप्राणिभयप्रदम् । हृदयाकम्पनं दृष्ट्वा तं प्रेतं वृद्धतापसः ॥
अतिदीनाननं कस्त्वमिति धैर्येण पृष्टवान् ॥ २२ ॥

कुतस्त्वमिह सम्प्राप्तः कस्मात्ते गतिरीदृशी ।
अनुक्रोशधिया रक्षः पृच्छामि वद निर्भयम् ॥ २३ ॥
अस्माकं तापसानां च न भयं त्वद्विधान्मनाक् ।
शिवनामसहस्राणां विभूतिकृतवर्मणाम् ॥ २४ ॥

तापसोदीरितमिति तद्रक्षः प्रीतिपूर्वकम् । निशम्यप्राञ्जलिःप्राहतंकृपालु तपोधनम्

राक्षस उवाच

अनुक्रोशोऽस्ति यदि ते भगवंस्तापसोत्तम !।
स्ववृत्तान्तं तदा वच्मि शृणुष्वावहितः क्षणम् ॥ २६ ॥

प्रतिष्ठानाभिधानोस्तिदेशोगोदावरीतटे । तीर्थप्रतिग्रहरुचिस्तत्रासंब्राह्मणस्त्वहम्
तेन कर्मविपाकेन प्राप्तोऽस्मि गतिमीदृशीम् । मरुस्थलेमहाघोरे तरुतोयविवर्जिते
गतो बहुतरः कालस्तत्रमेवसतो मुने । क्षुधितस्य तृषार्तस्य शीततापसहस्य च

वर्षत्यपि महामेघे धारासारैर्दिवानिशम् ।
प्रावृट्कालेऽनिले वाति किञ्चित् प्रावरणं न मे ॥ ३० ॥

पर्वण्यदत्तदाना ये कृततीर्थप्रतिग्रहाः । त इमां योनिमृच्छन्तिमहादुःखनिबन्धनीम्
गते बहुतिथे काले मरुभूमौ मुने! मया । दृष्टो ब्राह्मणदायाद एकदा कश्चिदागतः

सूर्योदयमनुप्राप्य सन्ध्याविधिविवर्जितः ।
कृत्वा मूत्रपुरीषे तु शौचाचमनवर्जितः ॥ ३३ ॥
मुक्तकच्छमशौचं च सन्ध्याकर्मविवर्जितम् ।
तं दृष्ट्वा तच्छरीरेऽहं संक्रान्तो भोगलिप्सया ॥ ३४ ॥

सद्विजो मन्दभाग्यान्मे केनचिद्वणिजा सह । अर्थलोभेनसम्प्राप्तःपुरींपुण्यामिमांमुने
अन्तःपुरिप्रविष्टोभूत्सद्विजोमुनिसत्तम !। तच्छरीराद्बहिर्भूतस्त्वहंपापैःसमंक्षणात्

प्रवेशो नास्ति चास्माकं प्रेतानां तपसां निधे !।
महताम्पातकानां च वाराणस्यां शिवाज्ञया ॥ ३७ ॥
अद्यापि तानि पापानि तद्बहिर्निर्गमेच्छया ।

बहिरेव हि तिष्ठन्ति सीम्नि प्रमथसाध्वसात् ॥ ३८ ॥
अद्य श्वो वा परश्वो वा स बहिर्निर्गमिष्यति ।
इत्याशया स्थिताः स्मो वै यावदद्य तपोधन !॥ ३६ ॥
नाद्यापि स बहिर्गच्छेन्नाद्याप्याशा प्रयाति नः ।
इत्यास्महे निराधारा आशापाशनियन्त्रिताः ॥ ४० ॥
चित्रमद्यतनं वच्मि तपस्विस्तन्निशामय । अतीवभाविकल्याणमितिमन्येऽधुनैवहि
आप्रयागंप्रतिदिनंप्रयामःक्षुधितावयम् । आहारकाम्ययाक्कापिपरंनोकिञ्चिदाप्नुमः
सन्ति सर्वत्र फलिनः पादपाः प्रतिकाननम् ।
जलाशयाश्च स्वच्छापाः सन्ति भूम्याम्पदे पदे ॥ ४३ ।
अन्यान्यपि च भक्ष्याणि सर्वेषां सुलभान्यहो ।
पानान्यपि विचित्राणि सन्ति भूयांसि सर्वतः ॥ ४४ ॥
परन्नोदृग्गतान्येव दूरे दूरेव्रजन्त्यहो । दैवादद्यैकमायान्तं दृष्ट्वा कार्पटिकम्मुने ॥४५॥
तस्यान्तिकमहं प्राप्तः क्षुधया परिपीडतः । प्रसह्य भक्षयाम्येनमितिमत्वात्वरान्वितः
यावत्तंतुजिघृक्षामितावत्तद्वदनाम्बुजात् । शिवनामपवित्रावाङ्निरगाद्विघ्नहारिणी
शिवनामस्मरणतो मदीयमपि पातकम् । मन्दीभूतं ततस्तेन प्रवेशं लब्धवानहम्
सीमस्थैः प्रमथैर्नाहं सद्यो दृग्गोचरीकृतः । शिवनामश्रुतौयेषांतान्नपश्येद्यमोपियत्
अन्तर्गेहस्य सीमानं प्राप्तस्तेनसहाधुना । सतुकार्पटिकोमध्यंप्रविष्टोऽहमिहस्थितः
आत्मानं बहुमन्येऽहं त्वां विलोक्याधुना मुने !।
मामुद्धर कृपालो! त्वं योनेरस्मात्सुदारुणात् ॥ ५१ ॥
इति प्रेतवचःश्रुत्वासकृपालुस्तपोधनः । मनसाचिन्तयामासधिङ्निजार्थोद्यमान्नरान्
स्वोदरम्भरयः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः । सएव धन्यः संसारे यः परार्थोद्यतः सदा
तपसाऽद्य निजेनाऽहं प्रेतमेतमद्यातुरम् । मामेव शरणं प्राप्तमुद्धरिष्याम्यसंशयम् ॥
विमृश्येति सवं चित्ते पिशाचं प्राह सत्तमः ।
विमलोदे सरस्यस्मिन् स्नाहि रे पापनुत्तये ॥ ५५ ॥
पिशाच! ते पिशाचत्वं तीर्थस्यास्य प्रभावतः ।

कपर्दीशे क्षणादद्य क्षणात्क्षीणं विनङ्क्ष्यति ॥ ५६ ॥
श्रुत्वेति स मुनेर्वाक्यं प्रेतः प्राह प्रणम्यतम् । प्रीतात्मा प्रीतमनसं प्रबद्धकरसम्पुटः
पानीयं पातुमपि नो लभेयं मुनिसत्तम !। स्नानस्य का कथा नाथ रक्षेयुर्जलदेवताः
पानस्याप्यत्रकावार्ताजलस्पर्शोपिदुर्लभः । इतिप्रेतोक्तमाकर्ण्यसभृशम्प्रीतिमानभूत्
उवाच च तपस्वी तं जगदुद्धरणक्षमः । गृहाणेमां विभूतिं त्वं ललाटफलके कुरु
अस्माद्विभूतिमाहात्म्यात्प्रेत! कोऽपि न कुत्रचित् ।
बाधांकरोति कस्यापि महापातकिनोऽप्यहो ॥ ६१ ॥
भालंविभूतिधवलं विलोक्य यमकिङ्कराः । पापिनोऽपिपलायन्तेभीताःपाशुपतास्त्रतः
अस्थिध्वजाङ्कितंदृष्ट्वायथापान्थाजलाशयम् । दूरयन्तितथाभस्मभालाङ्कं यमकिङ्कराः
कृतभूतितनुत्राणं शिवमन्त्रैर्नरोत्तमम् । नोपसर्पन्ति नियतमपि हिंस्राः समन्ततः
भक्त्या विभर्ति यो भस्म शिवमन्त्रपवित्रितम् ।
भाले वक्षसि दोर्मूले न तं हिंसन्ति हिंसकाः ॥ ६५ ॥
सर्वेभ्योदुष्टसत्त्वेभ्यो यतो रक्षेदहर्निशम् । रक्षेत्यैषा ततः प्रोक्ता विभूतिर्भूतिकृद्यतः
भासनाद्भर्त्सनाद्भस्मपांसुः पांसुत्वदायतः । पापानां क्षारणात्क्षारो बुधैरेवंनिरुच्यते
गृहीत्वाधारमध्यात्स भस्मप्रेतकरेऽर्पयत् । सोप्यादरात्समादायभालदेशेन्यवेशयत्
विभूतिधारिणं वीक्ष्यपिशाचं जलदेवताः । जलावगाहनपरं वारयाञ्चक्रिरे न तम्
स्नात्वा पीत्वा स निर्गच्छेद्यावत्तस्माज्जलाशयात् ।
तावत्पैशाच्यमगमद्दिव्यदेहमवाप च ॥ ७० ॥
दिव्यमालाम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः । दिव्ययानं समारुह्यवर्त्म प्राप्तोऽथ पावनम्
गच्छता तेन गगनेसतपस्वीनमस्कृतः । प्रोच्चैःप्रोवाचभगवन्मोचितोऽस्मित्वयानघ
तस्मात्कदर्ययोनित्वादतीव परिनिन्दितात् ।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्दिव्यं देहमवाप्तवान् ॥ ७३ ॥
पिशाचमोचनं तीर्थमद्यारभ्यसमाख्यया । अन्येषामपिपैशाच्यमिदंस्नानाद्धरिष्यति
अस्मिंस्तीर्थे महापुण्ये ये स्नास्यन्तीह मानवाः ।

पिण्डांश्च निर्वपिष्यन्ति सन्ध्यातर्पणपूर्वकम् ॥ ७५ ॥
दैवात्पैशाच्यमापन्नास्तेषां पितृपितामहाः ।
तेऽपि पैशाच्यमुत्सृज्य यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ ७६ ॥
अद्यशुक्लचतुर्दश्यां मार्गे मासितपोनिधे !। अत्रस्नानादिकंकार्यं पैशाच्यपरिमोचनम्
इमां सांवत्सरीं यात्रां ये करिष्यन्ति मानवाः ।
तीर्थप्रतिग्रहात्पापान्निःसरिष्यन्ति ते नराः ॥ ७८ ॥
पिशाचमोचनेस्नात्वा कपर्दीशंसमर्च्य च । कृत्वातत्रान्नदानंच नरोऽन्यत्रापिनिर्भयाः
मार्गशुक्लचतुर्दश्यांकपर्दीश्वरसन्निधौ । स्नात्वाऽन्यत्रापि मरणान्नपैशाच्यमवाप्नुयुः
इत्युक्त्वा दिव्यपुरुषोभूयोभूयोनमस्यतम् । तपोधनंमहाभागोदिव्यांगतिमवाप्तवान्
तपोधनोऽपितद्दृष्ट्वामहाश्चर्यं घटोद्भव !। कपर्दीश्वरमाराध्य कालान्निर्वाणमाप्तवान्
पिशाचमोचनं तीर्थं तदारभ्यमहामुने !। वाराणस्यां परां ख्यातिमगमत्सर्वपापहृत्
पैशाचमोचनेतीर्थेसम्भोज्यशिवयोगिनम् ।कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसङ्ख्यया
श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यं नरोनियतमानसः । भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च कदाचिन्नाभिभूयते
बालग्रहाभिभूतानां बालानांशान्तिकारकम् । पठनीयं प्रयत्नेनमहाख्यानमिदं परम्
इदमाख्यानमाकर्ण्यगच्छन्देशान्तरंनरः । चोरव्याघ्रपिशाचाद्यैर्नाभिभूयेत कुत्रचित्

इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थेकाशीखण्डे
उत्तरार्धे पिशाचमोचनमहिमकथनंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

—:*:—

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

काशीवर्णने गणेशप्रेषणवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अन्येपियेगणास्तत्रकाश्यांलिङ्गानिचक्रिरे। तांश्चतेकथयिष्यामिकुम्भयोनेनिशामय
गणेनपिङ्गलाख्येनपिङ्गलाख्येशसञ्ज्ञितम्। लिङ्गंप्रतिष्ठितंशम्भोःकपर्दीशादुदग्दिशि
तस्य दर्शनमात्रेण पापानां जायते क्षयः । वीरभद्रो महाप्रीतो देवदेवस्य शूलिनः
वीरभद्रेश्वरं लिङ्गंध्यायेदद्यापि निश्चलः । तस्यदर्शनमात्रेण वीरसिद्धिः प्रजायते
अविमुक्तेश्वरात्पश्चाद्वीरभद्रेश्वरं नरः । समर्च्य नरणेभङ्गं कदाचिदपि चाप्नुयात्
वीरभद्रः स्वयं साक्षाद्वीरमूर्तिधरो मुने !। संहरेद्विघ्नसंघातमविमुक्तनिवासिनाम्
भद्रयाभद्रकाल्या चभार्ययाशुभयायुतम्। वीरभद्रं नरोऽभ्यर्च्य काशीवासफलंलभेत्
किरातेनकिरातेशं लिङ्गंकाश्यांप्रतिष्ठितम्। केदाराद्दक्षिणे भागे भक्तानामभयप्रदम्
चतुर्मुखोगणः श्रीमान्वृद्धकालेशसन्निधौ। चतुर्मुखेश्वरं लिङ्गंध्यायेदद्यापिनिश्चलः
भक्ताश्चतुर्मुखेशस्य चतुराननवद्दिवि । पूज्यन्ते सुरसङ्घातैः सर्वभोगसमन्विताः

निकुम्भेश्वरमालोक्य निकुम्भगणपूजितम्।
पूजयित्वा व्रजन् ग्रामं कार्यसिद्धिमवाप्नुयात्।
कुबेरेशसमीपे तु शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥
पञ्चाक्षेशं महालिङ्गं महादेवस्य दक्षिणे।
समभ्यर्च्य नरः काश्यां जातिस्मृतिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

भारभूतेश्वरं लिङ्गं भारभूतगणार्चितम् । अन्तर्गृहोत्तरद्वारिध्यात्वाशिवपुरे वसेत्
भारभूतेश्वरंलिङ्गंयैः काश्यांनविलोकितम्। भारभूताःपृथिव्यास्तेऽवकेशिनइवद्रुमाः
गणेन त्र्यक्षसञ्ज्ञेन लिङ्गं त्र्यक्षेश्वरं परम्। त्रिलोचनपुरोभागेशील्येताद्यापिकुम्भज
तस्य लिङ्गस्ययेभक्तास्तेतुदेहावसानतः। त्र्यक्षा एव प्रजायन्तेनात्र कार्याविचारणा

क्षेमकोनामगणपः काश्यांमूर्त्तिधरःस्वयम् । विश्वेश्वरंसर्वगतं ध्ययेदद्यापि निश्चलः
क्षेमकंपूजयेद्यस्तुवाराणस्यां महागणम् । विघ्नास्तस्य प्रलीयन्ते क्षेमं स्याच्च पदेपदे
देशान्तरंगतोयस्तु तस्यागमनकाम्यया । क्षेमकः पूजनीयोऽत्रक्षेमेणाशु स आव्रजेत्
लाङ्गलीश्वरमालोक्यलिङ्गंलाङ्गलिनार्चितम् । विश्वेशादुत्तरेभागे न नरोरोगभाग्भवेत्
लाङ्गलीशंसकृत्पूज्यपञ्चलाङ्गलदानजम् । फलं प्राप्नोत्यविकलं सर्वसम्पत्करं परम्
विराधेश्वरमाराध्य विराधगणपूजितम् । सर्वापराधयुक्तोऽपि नापराध्यतिकुत्रचित्
दिनेदिनेपराधोयः क्रियतेकाशिवासिभिः । स याति संक्षयं क्षिप्रं विराधेशसमर्चनात्
नैर्ऋते दण्डपाणेस्तु विराधेशं प्रयत्नतः । नत्वा सर्वापराधेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः
सुमुखेशंमहालिङ्गंसुमुखाख्यगणार्जितम् । पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं दृष्ट्वापापैः प्रमुच्यते

स्नात्वा पिलिपिलातीर्थे सुमुखेशं विलोक्य च ।
सदैव सुमुखं पश्येद्धर्मराजं न दुर्मुखम् ॥ २६ ॥
आषाढिनाऽर्चितं लिङ्गमाषाढीश्वरसञ्ज्ञिकम् ।
दृष्ट्वाऽऽषाढ्यां नरो भक्त्या सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

उदीच्यांभारभूतेशादाषाढीशं समर्चयन् । आषाढ्यां पञ्चदश्यांवै न पापैः परितप्यते
शुचिशुक्लचतुर्दश्यां पञ्चदश्यामथापिवा । कृत्वा सांवत्सरीं यात्रामनेना जायतेनरः

स्कन्द उवाच

मुने! गणेषु चैतेषु वाराणस्यां स्थितेष्विति ।
स्वनाम्ना स्थाप्य लिङ्गानि विश्वेशपरितुष्टये ॥ ३० ॥

विश्वेशश्चिन्तयाञ्चक्रे पुनः काशीप्रवृत्तये । कं वाहितं प्रहित्याद्य निर्वृतिं परमाम्भजे

योगिन्यस्तिग्मगुर्वेधाः शङ्कुकर्णमुखा गणाः ।
व्यावृत्य नागताः काश्याः सिन्धुगा इव सिन्धवः ॥ ३२ ॥

ध्रुवंकाश्यांप्रविष्टाये तेप्रविष्टाममोदरे । तेषांविनिर्गमो नास्ति दीप्तेऽग्नौ हविषामिव
येषांहिसंस्थितिःकाश्यां लिङ्गार्चनरतात्मनाम् । तएवममलिङ्गानिजङ्गमानिनसंशयः
स्थावराजङ्गमाःकाश्यामचेतनसचेतनाः । सर्वेममैव लिङ्गानितेभ्यो द्रुह्यन्ति दुर्धियः

वाञ्चिवाराणसीयेषां श्रुतौवैश्वेश्वरीकथा । तएवकाशीलिङ्गानिवराण्यचर्यान्यहंयथा
वाराणसीतिकाशीतिरुद्रावास इतिस्फुटम् । मुखाद्विनिर्गतं येषां तेषां न प्रभवेद्यमः
आनन्दकाननंप्राप्ययेनिरानन्दभूमिकाम् । अन्यांहृदापिवाञ्छन्तिनिरानन्दाःसदात्रते
अद्यैववान्तुमरणंबहुकालान्तरेपिवा । कलिकालभियापुंसांकाशीत्याज्यानकर्हिचित
अवश्यंभाविनोभावाभविष्यन्तिपदेपदे । सलक्ष्मीनिलयांकाशींतेत्यजन्तिकुतोधियः
वरंविघ्नसहस्राणिसोढव्यानिपदेपदे । काश्यांनान्यत्रनिर्विघ्नंवाञ्छेद्राज्यमपिक्वचित्
कियन्निमेरसम्भोग्याःसन्तिलक्ष्म्यःपदेपदे । परंनिरन्तरसुखाऽमुत्राप्यत्रापिकाशिका

विश्वनाथो ह्यहं नाथः काशिकामुक्तिकाशिका ।
सुधातरङ्गा स्वर्गङ्गा त्र्यैषा किन्न यच्छति ॥ ४३ ॥

पञ्चक्रोश्यापरिमिता तनुरेषा पुरी मम । अविच्छिन्नप्रमाणर्धिर्भक्तनिर्वाणकारणम्
संसारभारखिन्नानां यातायातकृतां सदा । एकैव मे पुरी काशी ध्रुवं विश्रामभूमिका
मण्डपःकल्पवल्लीनांमनोरथफलैरलम् । फलितःकाशिकाख्योयं संसाराध्वजुषां सदा
चक्रवर्तेरियं छत्रं विचित्रं सर्वतापहृत् । काशीनिर्वाणराजस्य मम शूलोच्चदण्डवत्

निर्वाणलक्ष्मीं ये पुण्याः परिवाञ्छन्ति लीलया ।
निरन्तरसुखप्राप्त्यै काशी त्याज्या न तैर्नृभिः ॥ ४८ ॥

ममानन्दवने ये वै निरन्तरवनौकसः । मोक्षलक्ष्मीफलान्यत्र सुस्वादूनि लभन्ति ते

निर्ममञ्चापि निर्मोहं या मामपि विमोहयेत् ।
कैर्न संस्मरणीया सा काशी विश्वविमोहिनी ॥ ५० ॥
नामाऽपि मधुरं यस्याः परानन्दप्रकाशकम् ।
काश्याः काशीति काशीति सा कैः पुण्यैर्न जप्यते ॥ ५१ ॥

काशीनामसुधापानं ये कुर्वन्तिनिरन्तरम् । तेषां वर्त्मभवत्येव सुधामवसुधामयम्
ममतारहितस्यापिममसर्वात्मनो ध्रुवम् । तएवमामकालोके ये काशीनामजापकाः
रहस्यमितिविज्ञायवाराणस्या गणेश्वरैः । सब्रह्मयोगिनीब्रध्नैः स्थितंतत्रैव नान्यथा
अन्यथात्वाश्चयोगिन्यःसरविःसपितामहः । तेगणा मां परित्यज्य कथंतिष्ठेयुरन्यतः

अतीवभद्रं सञ्जातं काश्यां तिष्ठत्सुतेषुहि । एकोपिभेदेप्रभवेद्राज्येराज्यान्तरं विना
लब्धप्रवेशास्तावन्तस्ते सर्वे मत्स्वरूपिणः । यतिष्यन्ति यतोऽवश्यंमदागमनहेतवे
अन्यानपिप्रेषयामिमत्पार्श्वपरिवर्तिनः । येतेतत्रस्थिताःश्रेष्ठाअपिगन्ताऽस्म्यहं ततः
विचार्येतिमहादेवःसमाहूयगजाननम् । प्राहिणोत्कथयित्वेति गच्छ काशीमितःसुतः
तत्र स्थितोऽपि संसिद्धयै यतस्व सहितो गणैः ।
निर्विघ्नं कुरु चास्माकं नृपे विघ्नं समाचर ॥ ६० ॥
आघायशाननंमूर्ध्निगणाधीशोथधूर्जटेः । प्रतस्थेत्वरितःकाशींस्थितिज्ञःस्थितिहेतवे

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे-
उत्तरार्धे काशीवर्णनगणेशप्रेषणं नामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

—:*:—

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गणेशमायाप्रपञ्चवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथेशाज्ञां समादाय गजवक्त्रः प्रतस्थिवान् ।
शम्भोः काश्यागमोपायं चिन्तयन्मन्दराद्रितः ॥ १ ॥
प्राप्य वाराणसीं तूर्णमाखुस्यन्दनगो विभुः ।
वाडवीं मूर्तिमालम्ब्य प्राविशच्छकुनैस्तु सः ॥ २ ॥
नक्षत्रपाठकोभूत्वावृद्धः प्रत्यवरोधगः । चचार मध्ये नगरं पौराणां प्रीतिमावहन्
स्वयमेवनिशाभागेस्वप्नंसन्दर्शयन्नृणाम् । प्रातस्तेषांगृहान्गत्वातेषांवक्तिबलाबलम्
भवद्भिरद्यरात्रौयद्दृष्टं स्वप्नविचेष्टितम् । भवत्कौतूहलोत्पत्त्यै तदेव कथयाम्यहम्
स्वपताभवता रात्रौ तुर्ये यामेमहाह्रदः । अदर्शि तत्र च भवान् मज्जन्मज्जंस्तटंगतः
तदम्बुपिच्छिले पङ्के मग्नोन्मग्नोऽसि भूरिशः ।

दुःस्वप्नस्यास्य च महान्विपाकोऽतिभयप्रदः ॥ ७ ॥
काषायवसनो मुण्डः प्रैक्ष्यहोभवतापियः । परितापं महानेष जनयिष्यति दारुणम
रात्रौ सूर्यग्रहो दृष्टो महानिष्टकरो ध्रुवम् । ऐन्द्रं धनुर्द्वयं रात्रौ यदलोकि नतच्छुभम
प्रतीच्यांरविरागत्यप्रोद्यन्तंव्योम्नि शीतगुम् । पातयामास भूपृष्ठे तद्राज्यभयसूचकम
युगपत्केतुयुगलं युध्यमानं परस्परम् । यददर्शि नतद्भद्रं राष्ट्रभङ्गाय केवलम् ॥ ११
विशीर्यत्केशदशनंनीयमानञ्च दक्षिणे । आत्मानंयत्समद्राक्षीःकुटुम्बस्यापिभीषणम
प्रासादध्वजभङ्गोयस्त्वयैक्षतनिशाक्षये । राज्यक्षयकरंविद्धिमहोत्पाताय निश्चितम
नगरीप्लावितास्वप्ने तरङ्गैः क्षीरनीरधेः । पक्षैस्त्रिचतुरैः शङ्के महाशङ्कां पुरौकसाम
स्वप्ने वानरयानेन यत्त्वमूढोऽसि दक्षिणाम् । अतस्तद्भञ्जनोपायःपुरत्यागो महामते
रुदतीयात्वयादृष्टा महिलैका निशात्यये । मुक्तकेशी विवसना सा नारी श्रीरिवोद्गत
देवालयस्यकलशोयत्त्वयावीक्षितः पतन् । दिनैः कतिपयैरेव राज्यभङ्गो भविष्यति
पुरीपरिवृतास्वप्ने मृगयूथैः समन्ततः । रोरूयमाणैरत्यर्थं मासेनैवोद्वसी भवेत

आतायियूकगृध्राद्यैः पुरीमुपरिचारिभिः ।
सूच्यतेत्याहितं किञ्चिद् ध्रुवमत्र निवासिनाम् ॥ १९ ॥
स्वप्नोत्पातानिति बहूञ्छंसञ्छंसन्नितस्ततः ।
बहूनुच्चाटयाञ्चक्रे सविघ्नेशः पुरौकसः ॥ २० ॥

केषांचित्पुरतोवादीद्ग्रहचारंप्रदर्शयन् । एकराशिस्थिताः सौरिसितभौमानशोभना

योऽयं धूमग्रहो व्योम्नि भित्त्वा सप्तर्षिमण्डलम् ।
प्रयातः पश्चिमामाशां स नाशाय विशाम्पतेः ॥ २२ ॥

अतिचारगतो मन्दः पुनर्वक्राध्वसंस्थितः । पापग्रहसमायुक्तो न युक्तो यमिहेष्यते
व्यतीते वासरे योऽयं भूकम्पः समपद्यत । कम्पं जनयतेऽतीव हृदो मेपिपुरौकस

उदीच्यां दक्षिणाशायां ये यमुल्का प्रधाविता ।
विलीना च वियत्येव स निर्घातं न सा शुभा ॥ २५ ॥

उन्मूलितो महामूलो महानिलरयेण यः । चत्वरे चैत्यवृक्षोऽयं महोत्पातं प्रशंसति

ूर्योदयमनुप्राप्य प्राच्यां शुष्कतरूपरि । करटो रारटीत्येष कटूत्कटभयप्रदः
मध्ये विपणि यत्तूर्णं कौचिच्चारण्यचारिणौ ।
मृगौ मृगयतां यातौ पौराणां पुरतोऽहितौ ॥ २८ ॥
रसालशालमुकुलं वीक्ष्यते यच्छरद्यदः । महाकालभयं मन्येऽप्यकालेपि पुरौकसाम्
साध्वसंजनयित्वेति केचिदुच्चाटिताः पुरः । तेन विघ्नकृता पौराःकपटद्विजरूपिणा
अथ मध्येऽवरोधं स प्रविश्य निजमायया । दृष्टार्थमेवकथयंस्त्रीणांविस्रम्भभूरभूत्
तव पुत्रशतं जज्ञे सप्तोनं शुभलक्षणे । तेष्वेकस्तुरगारूढो बाह्याल्यां पतितो मृतः
अन्तर्वत्नीत्वियं कन्यां जनयिष्यति शोभनाम् ।
एषा हि दुर्भगा पूर्वं साम्प्रतं सुभगाऽभवत् ॥ ३३ ॥
असौ हि राज्ञोराज्ञीनामत्यन्तमिहवल्लभा । मुक्तालङ्कृतिरेतस्यैराज्ञादत्तानिजोरसः
पञ्चसप्तदिनान्येव जातानीतीह तर्क्यते । अस्यै राज्ञा प्रसादेन ग्रामौ दातुमुदीरितौ
इतिदृष्टार्थकथनैराज्ञीमान्योऽभवद्द्विजः । वर्णयन्ति चताराज्ञःपरोक्षेऽपिगुणान्बहून्
अहोयादृगसौ विप्रःसर्वत्रातिविचक्षणः । सुशीलश्च सुरूपश्चसत्यवाङ्मितभाषणः
अलोलुप उदारश्च सदाचारो जितेन्द्रियः । अपिस्वल्पेन संतुष्टः प्रतिग्रहपराङ्मुखः
जितक्रोधः प्रसन्नास्यस्त्वनसूयुरवञ्चकः । कृतज्ञः प्रीतिसुमुखः परिवादपराङ्मुखः
पुण्योपदेष्टा पुण्यात्मा सर्वव्रतपरायणः । शुचिः शुचिचरित्रश्चश्रुतिस्मृतिविशारदः
धीरः पुण्येतिहासज्ञः सर्वदृक् सर्वसम्मतः ।
कलाकलापकुशलो ज्योतिःशास्त्रविदुत्तमः ॥ ४१ ॥
क्षमी कुलीनोऽकृपणो भोक्ता निर्मलमानसः ।
इत्यादिगुणसम्पन्नः कोऽपि क्वापि न दृग्गतः ॥ ४२ ॥
इत्थं तास्तद्गुणग्रामंवर्णयन्त्यः पदे पदे । कालंविनोदयन्तिस्मअन्तःपुरचराःस्त्रियः
एकदावसरं प्राप्य दिवोदासस्य भूभुजः । राज्ञी लीलावती नामराज्ञेतंविन्यवेदयत्
राजन् !वृद्धोगुणैर्वृद्धो ब्राह्मणः सुविचक्षणः ।
एकोऽस्ति स तु द्रष्टव्यो मूर्ता ब्रह्मनिधिः परः ॥ ४५ ॥

राज्ञी राज्ञा कृतानुज्ञा सखीं प्रेष्य विचक्षणाम् ।
आनिनाय च तं विप्रं ब्राह्मं तेज इवाङ्गवत् ॥ ४६ ॥
राजापि दूरादायान्तं तं विलोक्य महीसुरम् ।
यत्राकृतिर्गुणास्तत्र जहर्षेति वदन् हृदि ॥ ४७ ॥
पदैर्द्वित्रैर्नृपतिना कृताभ्युत्थानसत्कृतिः । चतुर्निगमजाभिः स तमाशीर्भिरनन्दयत्
कृतप्रणामो राज्ञा ससादरं दत्तमासनम् । भेजेऽथ कुशलं पृष्टः स राज्ञा तेन भूपतिः
परस्परं कुशलिनौ कुशलौ च कथागमे । प्रश्नोत्तराभ्यां संतुष्टौ द्विजवर्यक्षमाभृतौ
कथावसाने राज्ञाथ गेहं विससृजे द्विजः । लब्धमानमहापूजः सस्वमाश्रममाविशत्
गतेऽथस्वाश्रमं विप्रे दिवोदासोनरेश्वरः । लीलावत्याः पुरोविप्रं वर्णयामासभूरिशः
महादेवि!महाप्राज्ञे! लीलावति! गुणप्रिये !। यथाशंसितथाविप्रस्ततोऽपिगुणवत्तरः
अतीतं वेत्ति सकलं वर्त्तमानमवैति च । प्रष्टव्यः प्रातराहूय भविष्यं किञ्चिदेष वै
महाविभवसम्भारैर्महाभोगैरनेकधा । व्युष्टायां सनृपो रात्र्यांप्रातराहूतवान्द्विजम्
सत्कृत्य तं द्विजं भक्त्या दुकूलादिप्रदानतः ।
एकान्ते तं द्विजं राजा पप्रच्छ निजहृत्स्थितम् ॥ ५६ ॥

राजोवाच

द्विजवर्यो भवानेकः प्रतिभातीति निश्चितम् ।
यथा तत्त्ववतीते धीर्नतथा न्यस्य मे मतिः ॥ ५७ ॥
दृष्ट्वा त्वां तु महाप्राज्ञं शान्तं दान्तं तपोनिधिम् ।
किञ्चित्प्रष्टुमना विप्र! तदाख्याहि यथार्थवत् ॥ ५८ ॥
शासितेयं मया पृथ्वी न तथान्यैस्तु पार्थिवैः ।
यावद्भूतिमया भुक्ता दिव्या भोगा अनेकधा ॥ ५९ ॥
निर्जौरसेभ्योप्यधिकंरात्रिंदिवमतन्द्रितम् । विनिर्जित्यहठाद्दुष्टान्प्रजेयंपरिपालिता
द्विजपादार्चनात्किञ्चित्सुकृतं वेद्मि नापरम् । अनेनापरिकथ्येन कथितेनेहकिंमम
निर्विस्ममिव मे चेतःसाम्प्रतंसर्वकर्मसु । विचार्यार्य! शुभोदर्कमतआख्याहिसत्तम!

द्विज उवाच

अपि स्वल्पतरं कृत्यं यद्भवेद्भूभुजामिह । एकान्ते तत्तु पृष्टेन वक्तव्यं सुधियासदा
अमात्येनाप्यपृष्टेन न वक्तव्यं नृपाग्रतः । महापमानभीतेन स्तोकमप्यत्र किञ्चन ॥
पृष्टश्चेत्कथयामीह मा तत्र कुरु संशयम् । तत्कृते तव गन्तावै मनो निर्वेदकारणम्
श्रृणु राजन् ! महाबुद्धे! नायथार्थं ब्रवीम्यहम् ।
विक्रान्तोऽस्यतिशूरोऽसि भाग्यवानसि सर्वदा ॥ ६६ ॥
पुण्येन यशसा बुद्ध्या सम्पन्नोऽस्ति भवान् यथा ।
मन्ये तथामरावत्यां त्रिदशेशोऽपि नैव हि ॥ ६७ ॥
सुधिया त्वां गुरुं मन्ये प्रसादेनसुधाकरम् । तेजसास्तिभवानर्कःप्रतापेनाशुशुक्षणिः
प्रभञ्जनो बलेनासिश्रीदोऽसिश्रासमर्पणैः । शासनेनभवान्रुद्रोनिर्ऋतिस्त्वंरणाङ्गणे
दुष्टपा शयिता पाशी यमो नियमने सताम् ।
इन्दनात्त्वं महेन्द्रोऽसि क्षमया त्वमसि क्षमा ॥ ७० ॥
मर्यादया भवानब्धिर्महत्त्वे हिमवानसि । भार्गवो राजनीत्यासिराज्येनमनुनासमः
सन्तापहर्ताम्बुदवत्पवित्रो गाङ्गनामवत् । सर्वेषामेव जन्तूनां काशीव सुगतिप्रदः
रुद्रः संहाररूपेण पालनेन चतुर्भुजः । विधिवत्त्वं विधातासि भारती ते मुखाम्बुजे
त्वत्पाणिपद्मे कमला त्वत्क्रोधेऽस्ति हलाहलः ।
अमृतं तव वागेव त्वद्भुजावश्विनीसुतौ ॥ ७४ ॥
तत्कियत्त्वयि भूजानौ सर्वदेवमयो ह्यसि ।
तस्मात्तव शुभोदर्को मया ज्ञातोऽस्ति तत्त्वतः ॥ ७५ ॥
आरभ्याद्यदिनाद्भूपब्राह्मणोऽष्टादशेऽहनि। उदीच्यःकश्चिदागत्यध्रुवंत्वामुपदेक्ष्यति
तस्य वाक्यं त्वया राजन्कर्तव्यमविचारितम् ।
ततस्ते हृत्स्थितं सर्वं सेत्स्यत्येव महामते !॥ ७७ ॥
इत्युक्तवा पृच्छय राजानं लब्धानुज्ञो द्विजोत्तमः ।
विवेश स्वाश्रमं तुष्टो नृपोऽप्याश्चर्यवानभूत् ॥ ७८ ॥

इत्थं विघ्नजिता सर्वा पुरी स्वात्मवशीकृता ।
स पौरा सावरोधा च सनृपा निजमायया ॥ ७९ ॥
कृतकृत्यमिवात्मानं ततो मत्वा स विघ्नजित् ।
विधाय बहुधात्मानं काश्यां स्थितिमवाप च ॥ ८० ॥

यदासनदिवोदासः प्रागासीत्कुम्भसम्भव । तदातनंनिजं स्थानमलञ्चक्रे गणाधिपः
दिवोदासे नरपतौ विष्णुनोच्चाटिते सति । पुनर्नवीकृतायाञ्च नगर्यां विश्वकर्मण
स्वयमागत्य देवेन मन्दरात्सुन्दरांपुरीम् । वाराणसीं प्रथमतस्तुष्टुवे गणनायकम

अगस्त्य उवाच

कथंस्तुतोभगवता देवदेवेन विघ्नजित् । कथं च बहुधात्मानं स चकार विनायकः
केनकेनसवैनाम्ना काशिपुर्यां व्यवस्थितः । इति सर्वं समासेन कथयस्व षडानन
इत्युदीरितमाकर्ण्यकुम्भयोनेः षडाननः । यथावत्कथयामास गणराजकथां शुभाम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये काशीखण्डे
उत्तरार्धे गणेशमायाप्रपञ्चोनाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

—:*:—

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ढुण्ढिविनायकप्रादुर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

विश्वेशोविश्वयासार्धंमयाच मुनिसत्तम !। महाशाखविशाखाभ्यांनन्दिभृङ्गिपुरोगमः
नैगमेयेन सहितो रुद्रैः सर्वत्र सम्वृतः । देवर्षिभिः समायुक्तः सनकाद्यैरभिष्टुतः
समस्तायतनाधीशैर्दिक्पालैरभिनन्दितः । तीर्थैर्दर्शिततीर्थश्च गन्धर्वैर्गीतमङ्गलः ॥
कृतपूजोऽप्सरोभिश्च नृत्यहस्तकपल्लवैः । वियत्यनाहतैर्वाद्यैः समन्तादनुमोदितः
ऋषीणां ब्रह्मनिर्घोषैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः । कृतस्तुतिश्चारणौघैर्विमानैरभितो वृतः

त्रिविष्टपवधूमुष्टिभ्रष्टैर्लाजैरितस्ततः । अभिवृष्टो महादेवः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ६ ॥
दत्तमाल्योपहारश्च ।बहुविद्याधरीगणैः । यक्षगुह्यकसिद्धैश्च खेचरैरभिनन्दितः ॥
कृतप्रवेशशकुनो मृगैः शकुनिभिः पुरः । किन्नरीभिः प्रहृष्टास्यैः किन्नरैरुपवर्णितः
विष्णुनाचमहालक्ष्म्याब्रह्मणाविश्वकर्मणा । नन्दिनाऽथगणेशेनआविष्कृतमहोत्सवः
नागाङ्गनाभिः परितः कृतनीराजनाविधिः । प्रविवेशमहादेवःपुरीं वाराणसीं शुभाम्
पश्यतां सर्वदेवानामवरुह्य वृषेन्द्रतः । परिष्वज्य गणाधीशं प्रोवाच वृषभध्वजः
यदहंप्राप्तवानस्मिपुरींवाराणसींशुभाम् । मयाप्यतीवदुष्प्राप्यांसप्रसादोऽस्यवैशिशोः
यद्दुष्प्रसाध्यंहिपितुरपित्रिजगतीतले । तत्सूनुना सुसाध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि
अनेन गजवक्त्रेण स्वबुद्धिविभवैरिह । काशीप्राप्तिर्यथामेस्यात्तथाकिञ्चिदनुष्ठितम्
पुत्रवानहमेवास्मियच्चमे चिरचिन्तितम् । स्वपौरुषेण कृतवानभिलाषं करस्थितम्
इत्युक्त्वात्रिपुरीहर्त्ता पुरुहूतादिभिः स्तुतः । परितुष्टाव संहृष्टः स्पष्टगीर्भिर्गजाननम्

श्रीकण्ठ उवाच

जयविघ्नकृतामाद्य!भक्तनिर्विघ्नकारक !। अविघ्न! विघ्नशमन!महाविघ्नैकविघ्नकृत्
जय सर्वगणाधीश! जय सर्वगणाग्रणीः !। गणप्रणतपादाब्जगणनातीतसद्गुण!
जय सर्वग! सर्वेश सर्वबुद्ध्यैकशेवधे । सर्वमायाप्रपञ्चज्ञ सर्वकर्माग्रपूजित ॥ १६ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्य! जय त्वं सर्वमङ्गल !। अमङ्गलोपशमन ! महामङ्गलहेतुक !॥ २० ॥
जय सृष्टिकृतां वन्द्य!जयस्थितिकृतानत !। जयसंहृतिकृत्स्तुत्य!जयसत्कर्मसिद्धिद!
सिद्धवन्द्यपदाम्भोज! जयसिद्धिविधायक !।
सर्वसिद्ध्यैकनिलयमहासिद्ध्यृद्धिसूचक !॥ २३ ॥
अशेषगुणनिर्माणगुणातीतगुणाग्रणीः !। परिपूर्णचरित्रार्थ ! जय त्वं गुणवर्णित ॥
जय सर्वबलाधीश! बलारातिबलप्रद ! । बलाकोज्ज्वलदन्ताग्रबालाबालपराक्रम !॥
अनन्तमहिमाधार ! धराधरविदारण ! । दन्ताग्रप्रोतदिङ्नाग ! जयनागविभूषण !॥
ये त्वां नमन्ति करुणामयदिव्यमूर्ते! सर्वैनसामपि भुवो भुवि मुक्तिभाजः
तेषां सदैव हरसीह महोपसर्गान्स्वर्गापवर्गमपि संप्रददासि तेभ्यः ॥ २६ ॥

ये विघ्नराज भवता करुणाकटाक्षैः सम्प्रेक्षिताःक्षितितले क्षणमात्रमत्र ।
तेषां क्षयान्त सकलान्यपि किल्बिषाणि लक्ष्मीः कटाक्षयति तान्पुरुषोत्तमान्हि ।
ये त्वां स्तुवन्ति नतविघ्नविघातदक्ष दाक्षायणीहृदयपङ्कजतिग्मरश्मे !।
श्रूयन्त एव त इह प्रथिता न चित्रं चित्रं तदत्र गणपा यदहोत एव ॥ २८॥
येशीलयन्तिसततं भवतोऽङ्घ्रियुग्मं ते पुत्रपौत्रधनधान्यसमृद्धिभाजः ।
संशीलिताङ्घ्रिकमलाबहुभृत्यवर्गैर्भूपालभोग्यकमलां विमलां लभन्ते ॥२९
त्वं कारणं परमकारणकारणानां वेद्योऽसि वेदविदुषां सततं त्वमेकः ।
त्वंमार्गणीयमसिकिञ्चनमूलवाचां वाचामगोचरचराचरदिव्यमूर्ते !॥ ३० ॥
वेदा विदन्ति न यथार्थतया भवन्तं ब्रह्मादयोऽपि न चराचरसूत्रधार !।
त्वं हंसि पासि विदधासि समस्तमेकः कस्तेस्तुतिव्यतिकरोमनसाप्यगम्य!
त्वद्दुष्टदृष्टिविशिखैर्निहतान्निहन्मि दैत्यान्पुरान्धकजलन्धरमुख्यकांश्च ।
कस्यास्ति शक्तिरिहयस्त्वदृतेपितुच्छं वाञ्छेद्विधातुमिह सिद्धिद! कार्यजातम् ।
अन्वेषणे ढुढिरयंप्रथितोऽस्ति धातुःसर्वार्थढुण्ढिततया तव ढुण्ढिनाम ।
काशीप्रवेशमपि कोलभतेऽत्रदेही तोषं विनातव विनायक ढुण्ढिराज !॥ ३३
ढुण्ढे! प्रणम्य पुरतस्तव पादपद्मं यो मां नमस्यति पुमानिह काशिवासी ।
तत्कर्णमूलमधिगम्य पुरा दिशामि तत्किञ्चिदत्र न पुनर्भवताऽस्ति येन ॥ ३४ ॥
स्नात्वा नरःप्रथमतोमणिकर्णिकायामुद्धूलिताङ्घ्रियुगलस्तुसचैलमाशु ।
देवर्षिमानवपितॄनपि तर्पयित्वा ज्ञानोदतीर्थमभिलभ्य भजेत्ततस्त्वाम् ॥३५॥
सामोदमोदकभरैर्वरधूपदीपैर्माल्यैः सुगन्धबहुलैरनुलेपनैश्च ।
सम्प्रीण्य काशिनगरीफलदानदक्षं प्रोक्त्वाऽथमांकइहसिध्यतिनैवढुण्ढे !॥
तीर्थान्तराणि च ततः क्रमवर्जितोऽपिसंसाधयन्निह भवत्करुणाकटाक्षैः ।
दूरीकृतस्वहितघात्युपसर्गवर्गो ढुण्ढे ! लभेदविकलं फलमत्र काश्याम् ॥ ३७
यःप्रत्यहं नमति ढुण्ढविनायकं त्वांकाश्यां प्रगे प्रतिहताखिलविघ्नसङ्घः ।
नो तस्य जातुजगतीतलवर्तिवस्तु दुष्प्रापमत्र च परत्र च किञ्चनापि ॥ ३८

यो नाम ते जपति ढुण्ढिविनायकस्यतं वैजपन्त्यनुदिनं हृदि सिद्धयोऽष्टौ ।
भोगान्विभुज्य विविधान्विबुधोपभोग्यान्निर्वाणया कमलया व्रियते स चान्ते ।
दूरेस्थितोऽप्यहरहस्तव पादपीठं यः संस्मरेत्सकलसिद्धिद! ढुण्ढिराज !।
काशीस्थितेरविकलं सफलं लभेत नैवान्यथा न वितथा मम वाक्कदाचित् ॥ ४० ॥
जानेविघ्नानसंख्यातान्विनिहन्तुमनेकधा । क्षेत्रस्यास्यमहाभागनानारूपैरिहस्थितः
यानियानिचरूपाणि यत्र यत्र च तेऽनघ । तानितत्रप्रवक्ष्यामिश्टृण्वन्त्वेतेदिवोकसः
प्रथमं ढुण्ढिराजोऽसि मम दक्षिणतोमनाक् ।
आढुण्ढ्यसर्वभक्तेभ्यः सर्वार्थान्सम्प्रयच्छसि ॥ ४३ ॥
अङ्गारवासरवतीमिह यैश्चतुर्थीं सम्प्राप्य मोदकभरैःपरिमोदवद्भिः ।
पूजा व्यधायि विविधा तव गन्धमाल्यैस्तानत्रपुत्रविदधामिगणान्गणेश ॥
ये त्वामिह प्रतिचतुर्थिसमर्चयन्ति ढुण्ढे! विगाढमतयःकृतिनस्तएव ।
सर्वापदां शिरसि वामपदं निधाय सम्यग्गजानन! गजाननतां लभन्ते ॥ ४५
माघशुक्लचतुर्थ्यांतुनक्तव्रतपरायणाः । येत्वांढुण्ढेऽर्चयिष्यन्तितेऽर्च्याःस्युरसुरद्रुहाम्
विधाय वार्षिकीं यात्रां चतुर्थीं प्राप्य तापसीम् ।
शुक्लां शुक्लतिलैर्बद्ध्वा प्राश्नीयाल्लड्डुकान्व्रती ॥ ४७ ॥
कार्या यात्रा प्रयत्नेन क्षेत्रसिद्धिमभीप्सुभिः ।
तस्यां चतुर्थ्यां त्वत्प्रीत्यै ढुण्ढे! सर्वोपसर्गहृत् ॥ ४८ ॥
तां यात्रां नात्र यः कुर्यान्नैवेद्यंतिललड्डुकैः । उपसर्गसहस्रैस्तु सहन्तव्योममाज्ञया
होमं तिलाज्यद्रव्येण यः करिष्यति भक्तितः ।
तस्यां चतुर्थ्यां मन्त्रज्ञस्तस्य मन्त्रःप्रसेत्स्यति ॥ ५० ॥
वैदिकोऽवैदिको वापि यो मन्त्रस्ते गजानन !।
जप्तस्त्वत्सन्निधौ ढुण्ढे! सिद्धिं दास्यति वाञ्छिताम् ॥ ५१ ॥

ईश्वर उवाच

इमां स्तुतिं मम कृतिं यः पठिष्यति सन्मतिः

न जातु तं तुविघ्नौघाःपीडयिष्यन्तिनिश्चितम् ॥ ५२ ॥
ढौण्ढीं स्तुतिमिमां पुण्यां यः पठेद्ढुण्ढिसन्निधौ ।
सान्निध्यं तस्य सततं भजेयुः सर्वसिद्धयः ॥ ५३ ॥
इमां स्तुतिंनरो जप्त्वा परंनियतमानसः । मानसैरपि पापैस्तैर्नाभिभूयेत कर्हिचित्
पुत्रान्कलत्रं क्षेत्राणिवराश्वान्वरमन्दिरम् । प्राप्नुयाच्च धनंधान्यंढुण्ढिस्तोत्रंजपन्नरः
सर्वसम्पत्करं नाम स्तोत्रमेतन्मयेरितम् । प्रजप्तव्यं प्रयत्नेन मुक्तिकामेन सर्वदा
जप्त्वा स्तोत्रमिदं पुण्यं क्वापि कार्ये गमिष्यतः ।
पुंसःपुरःसमेष्यन्ति नियतं सर्वसिद्धयः ॥ ५७ ॥
अन्यच्च कथयाम्यत्र शृण्वन्त्वेते दिवौकसः ।
ढुण्ढिना क्षेत्ररक्षार्थं यत्र यत्र स्थितिःकृता ॥ ५८ ॥
काश्यां गङ्गासिसम्भेदेनामतोऽर्कविनायकः । दृष्टोऽर्कवासरेपुम्भिःसर्वतापप्रशान्तये
दुर्गो नाम गणाध्यक्षः सर्वदुर्गतिनाशनः । क्षेत्रस्य दक्षिणे भागे पूजनीयः प्रयत्नतः
भीमचण्डीसमीपे तु भीमचण्डविनायकः । क्षेत्रनैरृर्तदेशस्थो दृष्टोहन्तिमहाभयम्
क्षेत्रस्य पश्चिमे भागे सदेहलिविनायकः । सर्वान्निवारयेद्विघ्नान्भक्तानांनात्रसंशयः
क्षेत्रवायव्यदिग्भागे उद्दण्डाख्यो गजाननः ।
उद्दण्डानपि विघ्नौघान् भक्तानां दण्डयेत्सदा ॥ ६३ ॥
काश्याः सदोत्तराशायां पाशपाणिर्विनायकः ।
विनायकान्पाशयन्ति भक्त्या काशीनिवासिनाम् ॥ ६४ ॥
गङ्गावरणयोः सङ्गेरम्यःखर्वविनायकः । अखर्वानपिविघ्नौघान्भक्तानांखर्वयेत्सताम्
प्राच्यां तु क्षेत्ररक्षार्थं सिद्धः सिद्धिविनायकः ।
पश्चिमे यमतीर्थस्य साधकक्षिप्रसिद्धिदः ॥ ६६ ॥
बाह्यावरणगाश्चैतेकाश्यामष्टौविनायकाः । उच्चाटयन्त्यभक्तांश्चभक्तानांसर्वसिद्धिदाः
द्वितीयावरणे चैव ये रक्षन्ति विनायकाः । अविमुक्तमिदंक्षेत्रं तानहं कथयाम्यतः
स्वधुर्न्याः पश्चिमे कूले उत्तरेऽर्कविनायकात् ।

लम्बोदरो गणाध्यक्षः क्षालयेद्विघ्नकर्दमम् ॥ ६९ ॥
तत्पश्चिमे कूटदन्त उदग्दुर्गविनायकात् । दुर्गोपसर्गसंहर्ता रक्षेत्क्षेत्रमिदं सदा
भीमचण्डगणाध्यक्षात्किञ्चिदीशानदिग्गतः ।
क्षेत्ररक्षोगणाध्यक्षः पूज्यः शालकटङ्कटः ॥ ७१ ॥
प्राच्यां देहलिविघ्नेशात्कूश्माण्डाख्यो विनायकः ।
पूजनीयः सदाभक्तैर्महोत्पातप्रशान्तये ॥ ७२ ॥
उद्दण्डाख्याद्गणपतेराशुशुक्षणिदिक्स्थितः ।
महाप्रसिद्धः सम्पूज्योभक्तैर्मुण्डविनायकः ॥ ७३ ॥
पाताले तस्य देहोऽस्ति मुण्डं काश्यां व्यवस्थितम् ।
अतः सङ्गीयते काश्यां देवा मुण्डविनायकः ॥ ७४ ॥
पाशपाणेर्गणेशानाद्दक्षिणे विकटद्विजम् । पूजयित्वा गणपतिंगाणपत्यपदं लभेत्
खर्वाख्यान्नैरृते भागे राजपुत्रोविनायकः । भ्रष्टराज्यश्च राजानंराजानं कुरुतेऽर्चितः
गङ्गायाः पश्चिमे कूले प्रणवाख्योगणाधिपः । अवाच्यांराजपुत्राच्चप्रणतःप्रणयेद्दिवम्
द्वितीयावरणे काश्यामष्टावेते विनायकाः ।
उत्सादयेयुर्विघ्नौघान्काशीस्थितिनिवासिनाम् ॥ ७८ ॥
क्षेत्रे तृतीयावरणे क्षेत्ररक्षाकृतः सदा । ये विघ्नराजाः सन्तीह ते वक्तव्या मयाधुना
उदग्वहायाः स्वधुन्या रम्ये रोधसि विघ्नराट् ।
लम्बोदरादुदीच्यान्तु वक्रतुण्डोऽघसङ्घहृत् ॥ ८० ॥
कूटदन्ताद्गणपतेरुदीच्यामेकदन्तकः । सदोपसर्गसंसर्गात्पायादानन्दकाननम् ॥
काशीभयहरो नित्यमैश्यांशालकटङ्कटात् । त्रिमुखोनामविघ्नेशःकपिसिंहद्विपाननः
कूश्माण्डात्पूर्वदिग्भागे पञ्चास्यो नाम विघ्नराट् ।
पञ्चास्यस्यन्दनवरः पाति वाराणसीं पुरीम् ॥ ८३ ॥
हेरम्बाख्यः सदाग्नेय्यां पूज्यो मुण्डविनायकात् ।
अम्बावत्पूरयेत्कामान्सर्वेषां काशिवासिनाम् ॥ ८४ ॥

अवाच्यामर्चयेद्धीमान्सिद्ध्यै विकटदन्ततः । विघ्नराजंगणपतिं सर्वविघ्नविनाशनम्
विनायकाद्राजपुत्रात्किञ्चिद्रक्षोदिशिस्थितः ।
वरदाख्यो गणाध्यक्षः पूज्यो भक्तवरप्रदः ॥ ८६ ॥
याम्यां प्रणवविघ्नेशाद्गणेशो मोदकप्रियः । पूज्यः पिशङ्गिलातीर्थे देवनद्यास्तटेशुभे
चतुर्थावरणे काश्यां भक्तविघ्नविनाशकाः । द्रष्टव्या हृष्टचेतोभिःस्पष्टमष्टौविनायकाः
वक्रतुण्डादुदग्दिक्स्थः स्वः सिन्ध्वो रोधसि स्थितः ।
विनायकोऽस्त्यभयदः सर्वेषां भयनाशनः ॥ ८९ ॥
कौबेर्यामेकदशनात्सिहतुण्डोविनायकः । उपसर्गगजान्हन्तिवाराणसिनिवासिनाम्
कूणिताक्षो गणाध्यक्षस्त्रितुण्डादीशदिक्स्थितः ।
महाश्मशानं सततं पायाद्दुष्टकुदृष्टितः ॥ ९१ ॥
प्राच्यां पञ्चास्यतः पायात्पुरीं क्षिप्रप्रसादनः ।
क्षिप्रप्रसादनार्चातः क्षिप्रं सिध्यन्ति सिद्धयः ॥ ९२ ॥
हेरम्बाद्वह्निदिग्भागे चिन्तामणिविनायकः ।
भक्तचिन्तामणिः साक्षाच्चिन्तितार्थसमर्पकः ॥ ९३ ॥
विघ्नराजादवाच्यान्तुदन्तहस्तोगणेश्वरः । लिखेद्विघ्नसहस्राणिनॄणांवाराणसीद्रुहाम्
वरदाद्या तुधान्यां चयातुधानगणावृतः । देवः पिचिण्डिलो नाम पुरींरक्षेदहर्निशम्
दृष्टःपिलिपिलापीर्थेदक्षिणेमोदकप्रियात् । उद्दण्डमुण्डोहेरम्बोभक्तेभ्यःकिंनयच्छति
प्राचारे पञ्चमे काश्यां द्विचतुष्कविनायकाः । कुर्वन्तिरक्षांक्षेत्रस्ययेतानत्रब्रवीम्यहम्
तीरे स्वर्गतरङ्गिण्या उत्तरे चाभयप्रदात् ।
स्थूलदन्तो गणेशानःस्थूलाःसिद्धीर्दिशेत्सताम् ॥ ९८ ॥
सिहतुण्डादुदग्भागेकलिप्रियविनायकः । कलहंकारयेन्नित्यमन्योन्यंतैर्थिकद्रुहाम्
कूणिताक्षात्तथैशान्याञ्चतुर्दन्तोविनायकः । यस्यदर्शनमात्रेणविघ्नसङ्घःक्षयेत्स्वयम्
क्षिप्रप्रसादनादैन्द्र्यां द्वितुण्डोगणनायकः । अग्रतःपृष्ठतश्चापिबिभर्तिसद्दृशींश्रियम्
तस्यसन्दर्शनात्पुंसांभवेच्छ्रीःसर्वतोमुखी । ज्येष्ठोनामगणाध्यक्षोज्येष्ठोमेपुत्रसम्पदि

ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सम्पूज्यो ज्येष्ठताप्तये ।
स्थितो वह्निदिशोभागे चिन्तामणिविनायकात् ॥ १०३ ॥
दन्तहस्ताद्यमाशायांपूज्योगजविनायकः ।तस्यसम्पूजनाद्भक्त्यागजान्ताश्रीरवाप्यते
पिचिण्डिलाद्गणपतेर्याम्यांकालविनायकः । भयंनकालकलितंतस्यसंसेवनान्नृणाम्
उद्दण्डमुण्डाद्गणपात्कीनाशदिशिसंस्थितम् । नागेशंगणपं दृष्ट्वा नागलोके महीयते
अथषष्ठावरणगाः प्रोच्यन्ते विघ्ननायकाः । तेषांनामश्रवादेत्र पुंसां सिद्धिः प्रजायते
मणिकर्णो गणपतिः प्राच्यां विघ्नविघातकृत् ।
आशाविनायको वह्न्यां भक्ताशां पूरयन् स्थितः ॥ १०८ ॥
याम्यां सृष्टिगणेशश्च सृष्टिसंहारसूचकः । नैर्ऋत्यांयक्षविघ्नेशः सर्वविघ्नहरः परः
प्रतीच्यां गजकर्णश्च सर्वेषांक्षेमकारकः । चित्रघण्टो गणपतिर्वायव्यांपालयेत्पुरीम्
स्थूलजङ्घ उदीच्यां च शमयेच्छमिनामघम् ।
ऐश्यामैशीं पुरीं पायात्समङ्गलविनायकः ॥ १११ ॥
यमतीर्थादुदीच्यांच पूज्योमित्रविनायकः । सप्तमावरणे येचतांश्चवक्ष्येविनायकान्
मोदाद्याः पञ्चविघ्नेशाः षष्ठो ज्ञानविनायकः । सप्तमो द्वारविघ्नेशो महाद्वारपुरश्चरः
अष्टमः सर्वकष्टौघानविमुक्तविनायकः । अविमुक्ते मम क्षेत्रे हरेत्प्रणतचेतसाम्
षट्पञ्चाशद्गजमुखानेतान्यःसंस्मरिष्यति । दूरदेशान्तरस्थोऽपिसमृतोज्ञानमाप्नुयात्
ढुण्ढिस्तुति महापुण्यां षट्पञ्चाशद्गजाननाम् ।
यः पठिष्यति पुण्यात्मा तस्य सिद्धिः पदे पदे ॥ ११६ ॥
इमे गणेश्वराः सर्वैस्स्मर्तव्यायत्रकुत्रचित् । महाविपत्समुद्रान्तःपतन्तंपान्तिमानवम्
इति स्तुतिं महापुण्यां श्रुत्वा चैतान्विनायकान् ।
जातु विघ्नैर्नबाध्येत पापेभ्योऽपि प्रहीयते ॥ ११८ ॥
इत्युक्त्वा देवदेवोऽपि महोत्सवितमानसः ।
कृताभिषेको ब्रह्माद्यैस्तेभ्योदत्त्वाऽभिवाञ्छितम् ॥ ११९ ॥
सम्प्रसाद्य यथायोगं सर्वानुचितचञ्चुरः । अविशद्राजसदनं विश्वकर्मविनिर्मितम्

स्कन्द उवाच

एवं स्तुतो भगवतादेवदेवेन विघ्नजित्। इत्थञ्च बहुधात्मानं स चकार विनायकः
एतानि तस्य नामानि दुण्ढिराजस्य कुम्भज !।
जपित्वा यानि मनुजो लप्स्यते निजवाञ्छितम् ॥ १२२ ॥
अन्येऽपिस्तत्रवैभेदातस्यदुण्ढेर्गणेशितुः । भक्तैःसमर्चिताभत्तयाह्यसंख्याताःसहस्रशः
भगीरथगणाध्यक्षो हरिश्चन्द्रविनायकः। कपर्दाख्यो गणपतिस्तथाबिन्दुविनायकः
इत्याद्यास्तत्र विघ्नेशाः प्रतिभक्तप्रतिष्ठिताः।
तेषामप्यर्चनात्पुंसां जायन्ते सर्वसम्पदः ॥ १२५ ॥
श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंनरःश्रद्धासमन्वितः।सर्वविघ्नान्समुत्सृज्यलभतेवाञ्छितम्पदम

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे दुण्ढिविनायकप्रादुर्भावोनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दिवोदासनिर्वाणप्राप्तिवर्णनम्

अगस्त्य उवाच

किं चकार हरःस्कन्द!मन्दराद्रिगतस्तदा। विलम्बमालम्बयति तस्मिन्नपि गजानने

स्कन्द उवाच

शृण्वगस्त्य! कथाम्पुण्यां कथ्यमानां मयाधुना
वाराणस्येकविषयामशेषाघौघनाशिनीम् ॥ २ ॥
करीन्द्रवदने तत्र क्षेत्रवर्येऽविमुक्तके। विलम्बभाजि त्र्यक्षेण प्रौक्षि क्षिप्रमधोक्षजः
प्रोक्तोऽथ बहुशश्चेति बहुमानपुरःसरम्।
तथा त्वमपि माकार्षीर्यथाप्राक्प्रस्थितैः कृतम् ॥ ४ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

द्यमः प्राणिभिःकार्यो यथाबुद्धिबलाबलम् । परंफलन्तिकर्माणित्वदर्धानानिशङ्कर!

अचेतनानि कर्माणि स्वतन्त्राः प्राणिनोऽपि न ।
त्वञ्च तत्कर्मणां साक्षी त्वञ्च प्राणिप्रवर्तकः ॥ ६ ॥

किन्तु त्वत्पादभक्तानां तादृशीजायतेमतिः । ययात्वमेवकथयेःसाध्वनेनत्वनुष्ठितम्

यत्किञ्चिदिह वै कर्म स्तोकस्वास्तोकमेववा ।
तत्सिद्ध्यत्येव गिरिश! त्वत्पादस्मृत्यनुष्ठितम् ॥ ८ ॥
सुसिद्धमपि वै कार्यं सुबुद्ध्याऽपि स्वनुष्ठितम् ।
अत्वत्पदस्मृतिकृतं विनश्यत्येव तत्क्षणात् ॥ ६ ॥
शम्भुना प्रेषितेनाद्य सूद्यमः क्रियते मया ।
त्वद्भक्तिसम्पत्तिमतां सम्पन्नप्राय एव एव नः ॥ १० ॥
अतीव यदसाध्यं स्यात्स्वबुद्धिबलपौरुषैः ।
तत्कार्यं हि सुसिद्धं स्यात्त्वदनुध्यानतः शिव !॥ ११ ॥

यान्तिप्रदक्षिणीकृत्ययेभवन्तंभवंविभो !। भवन्ति तेषांकार्याणिपुरोभूतानितेभयात्
जातंविद्धिमहादेवकार्यमेतत्सुनिश्चितम् । काशीप्रावेशिकश्चिन्त्यःशुभलग्नोदयःपरम्
अथवाकाशिसम्प्राप्तौनचिन्त्यंहिशुभाशुभम् । तदैवहिशुभःकालोयदैवाप्येत काशिका
शम्भुम्प्रदक्षिणीकृत्यप्रणम्य च पुनः पुनः । प्रतस्थेऽथसलक्ष्मीको मन्दराद्गरुडध्वजः

दृशोरतिथितां नीत्वा विष्णुर्वाराणसीं ततः ।
पुण्डरीकाक्ष इत्याख्यां सफलीकृतवान्मुदा ॥ १६ ॥

ङ्गावरणयोर्विष्णुः सम्भेदेस्वच्छमानसः । प्रक्षाल्यपाणिचरणंसचैलः स्नातवानथ
दाप्रभृति तत्तीर्थं पादोदकमितीरितम् । पादौयदादौ शुभदौक्षालितौपीतवाससा
पादोदकेतीर्थे ये स्नास्यन्तीह मानवाः । तेषां विनश्यतिक्षिप्रंपापंसप्तभवार्जितम्
श्राद्धंनरः कृत्वादत्त्वाचैव तिलोदकम् । सप्तसप्ततथा सप्तस्ववंश्यांस्तारयिष्यति
यांयादृशीतृप्तिर्लभ्यते प्रपितामहैः । तीर्थेपादोदके काश्यांतादृशी लभ्यते ध्रुवम्

कृतपादोदकस्नानं पीतपादोदकोदकम् । दत्तपादोदपानीयं नरं न निरयः स्पृशेत्
विष्णुपादोदके तीर्थे प्राश्य पादोदकं सकृत् ।
जातुचिज्जननीस्तन्यं न पिबेदिति निश्चितम् ॥ २३ ॥
सचक्रशालग्रामस्यशङ्खेननस्नापितस्यच । अद्भिःपादोदकस्याम्बुपिबन्नमृततांव्रजेत्
विष्णुपादोदकेतीर्थेविष्णुपादोदकंपिबेत् । यदितत्सुधया किं नुबहुकालीनया तया
काश्याम्पादोदकेतीर्थेयैःकृतानोदकक्रियाः । जन्मैवविफलं तेषांजलबुद्बुदसश्रियाम्
कृतनित्यक्रियो विष्णुः सलक्ष्मीकः सकाश्यपिः ।
उपसंहृत्य ताम्मूर्तिं त्रैलोक्यव्यापिनीं तथा ॥ २७ ॥
विधायदार्षदींमूर्तिं स्वहस्तेनादिकेशवः । स्वयंसम्पूजयामाससर्वसिद्धिसमृद्धिदाम्
आदिकेशवनाम्नींतांश्रीमूर्तिंपारमेश्वरीम् । सम्पूज्यमर्त्योवैकुण्ठंमन्यतेस्वगृहाङ्गणम्
श्वेतद्वीपइतिख्यातंतत्स्थानंकाशिसीमनि । श्वेतद्वीपेवसन्त्येवनरास्तन्मूर्तिसेवकाः
क्षीराब्धिसञ्ज्ञंतत्रान्यत्तीर्थंकेशवतोऽग्रतः । कृतोदकक्रियस्तत्रवसेत्क्षीराब्धिरोधसि
तत्रश्राद्धंनरः कृत्वागांदत्वाचपयस्विनीम् । यथोक्तसर्वाभरणाक्षीरोदेवासयेत्पितृन्
एकोत्तरशतं वंश्यान्नयेत्पायसकर्दमम् । क्षीरोदरोधः पुण्यात्मा भक्त्या तत्रैकधेनुदः
बह्वीश्चनैचिकीर्दत्त्वाश्रद्धयात्र सदक्षिणाः । शय्योत्तरांश्चप्रत्येकंपितृंस्तत्रसुवासयेत्
क्षीरोदाद्दक्षिणे तत्र शङ्खतीर्थमनुत्तमम् । तत्रापिसन्तर्प्यपितृन् विष्णुलोके महीयते
तद्याम्याञ्चक्रतीर्थंचपितृणामपिदुर्लभम् । तत्रापिविहितश्राद्धो मुच्यते पैतृकादृणात्
तत्सन्निधौ गदातीर्थं विष्वगाधिनिबर्हणम् ।
तारणञ्च पितृणां वै कारणं चैनसां क्षये ॥ ३७ ॥
पद्मतीर्थं तदग्रे तुतत्रस्नात्वा नरोत्तमः । पितृन्सन्तर्प्य विधिना पद्मया नैव हीयते
तत्रैव च महालक्ष्म्यास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
स्वयं यत्र महालक्ष्मीः स्नाता त्रैलोक्यहर्षदा ॥ ३९ ॥
तत्रतीर्थं कृतस्नानोदत्त्वारत्नानिकाञ्चनम् । पट्टाम्बराणिविप्रेभ्योनलक्ष्म्यापरिहीयते
यत्रयत्रहिजायेततत्रतत्रसमृद्धिमान् । पितरोपिहिसश्रीकास्तस्यस्युस्तीर्थगौरवात्

तत्रास्ति हि महालक्ष्म्या मूर्तिस्त्रैलोक्यवन्दिता ।
ताम्प्रणम्य नरो भक्त्या न रोगी जायते क्वचित् ॥ ४२ ॥
नभस्यबहुलाष्टम्यांकृत्वाजागरणंनिशि । समर्च्य च महालक्ष्मीं व्रती व्रतफलं लभेत्
ताक्ष्र्यतीर्थं हि तत्रास्ति ताक्ष्र्यकेशवसन्निधौ ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या संसाराहिं न पश्यति ॥ ४४ ॥
तदग्रे नारदं तीर्थं महापातकनाशनम् । ब्रह्मविद्योपदेशञ्च प्राप्तवान्यत्र नारदः ॥ ४५
तत्रस्नातोनरः सम्यग्ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात् । केशवात्तेनतत्रोक्तः काश्यांनारदकेशवः
अर्चयित्वा नरो भक्त्या देवंनारदकेशवम् । जनन्या जठरं पीठमध्यास्ते न कदाचन
प्रह्लादतीर्थं तस्याग्रे यत्र प्रह्लादकेशवः । तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा विष्णुलोके महीयते
आम्बरीषमहातीर्थमघघ्नंतस्य सन्निधौ । तत्रौदकींक्रियां कुर्वन्निष्कालुष्यं लभेन्नरः
आदित्यकेशवः पूज्य आदिकेशवपूर्वतः । तस्य संदर्शनादेव मुच्यते चोच्चपातकैः
दत्तात्रेयेश्वरं तीर्थं तत्रैवादिगदाधरः । पितॄन्सन्तर्प्य तत्रैव ज्ञानयोगमवाप्नुयात्
भृगुकेशवपूर्वेण तीर्थं वै भार्गवं परम् । तत्रस्नातो नरः प्राज्ञो भवेद्भार्गववत्सुधीः
तत्रवामनतीर्थंचप्राच्यां वामनकेशवात् । पूजयित्वा च तं विष्णु वसेद्वामनसन्निधौ
नरनारायणं तीर्थं नरनारायणात्पुरः । तत्र तीर्थे कृतस्नानो नरो नारायणो भवेत्
यज्ञवाराहतीर्थं च तदग्रे पापनाशनम् । प्रतिमज्जनतस्तत्र राजसूयक्रतोः फलम्
विदारनारसिंहाख्यं तत्रतीर्थंसुनिर्मलम् । स्नातो विदारयेत्तत्र पापं जन्मशतार्जितम्
गोपिगोविन्दतीर्थं च गोपिगोविन्दपूर्वतः ।
स्नात्वा तत्र समभ्यर्च्य विष्णुं विष्णुप्रियो भवेत् ॥ ५७ ॥
तीर्थं लक्ष्मीनृसिंहाख्यं गोपिगोविन्ददक्षिणे ।
न लक्ष्म्या त्यज्यते क्वापि तत्तीर्थपरिमज्जनात् ॥ ५८ ॥
तदग्रे शेषतीर्थं च शेषमाधवसन्निधौ । तर्पितानां पितॄणां च यत्र तृप्तिर्नशिष्यते
शङ्खमाधवतीर्थं चतदवाच्यां सुनिर्मलम् । कृतोदकोनरस्तत्र भवेत्पापोऽपि निर्मलः
तदग्रे च हयग्रीवं तीर्थं परमपावनम् । तत्र स्नात्वा हयग्रीवं केशवं परिपूज्य च

पिण्डंच तत्र निर्वाप्य हयग्रीवस्यसन्निधौ । हायग्रीवींश्रियम्प्राप्यसमुच्येत सपूर्वजः

स्कन्द उवाच

प्रसङ्गतोमयैतानितीर्थानि कथितानिते । भूमौ तिलान्तरायां यत्तत्र तीर्थान्यनेकशः
उद्दिष्टानां तु तीर्थानामेतेषां कलशोद्भव !। नाममात्रमपि श्रुत्वा निष्पापोजायते नरः
इदानींप्रस्तुतं विप्रश्टणुवक्ष्यामि तेऽग्रतः । वैकुण्ठनाथो यच्चक्रे शङ्खचक्रगदाधरः
तस्यांमूर्तौसमावेश्यकैशव्यामथ केशवः । शम्भोः कार्यकृतमनाअंशांशांशेन निर्गतः

अगस्त्य उवाच

अंशांशांशेननिश्चक्रे कुतोभो!चक्रपाणिना । क्वनिर्गतं च हरिणाप्राप्यकाशीं षडानन!

स्कन्द उवाच

सामस्त्येन यदर्थं न निर्गतं विष्णुना मुने !। ब्रुवे तत्कारणमितिक्षणमात्रं निशामय
सम्प्राप्य पुण्यसम्भारैः प्राज्ञोवाराणसीं पुरीम् । नत्यजेत्सर्वभावेनमहालाभैरपीरितः

अतः प्रतिकृतिः स्वीया तत्र काश्यां मुरारिणा ।
प्रतितस्थे कलशज! स्तोकांशेन च निर्गतम् ॥ ७० ॥
किञ्चित्काश्या उदीच्याञ्च गत्वा देवेन चक्रिणा ।
स्वस्थित्यै कल्पितं स्थानं धर्मक्षेत्रमितीरितम् ॥ ७१ ॥

ततस्तु सौगतंरूपं शिश्रायश्रीपतिःस्वयम् । अतीवसुन्दरतरं त्रैलोक्यस्यापिमोहनम्

श्रीः परिव्राजिका जाता नितरां सुभगाकृतिः ।
यामालोक्य जगत्सर्वं चित्रन्यस्तमिवास्थितम् ॥ ७३ ॥
विश्वयोनिं जगद्धात्रीं न्यस्तहस्ताग्रपुस्तकाम् ।
गरुत्मानपि तच्छिष्यो जातो लोकोत्तराकृतिः ॥ ७४ ॥

अत्यद्भुतमहाप्राज्ञो निः स्पृहः सर्ववस्तुषु । गुरुशुश्रूषणपरो न्यस्तहस्ताग्रपुस्तकः
अपृच्छत्परमंधर्मं संसारविनिर्मोचकम् । आचार्यवर्यंसौम्यास्यंप्रसन्नात्मानमुत्तमम्
धर्मार्थशास्त्रकुशलं ज्ञानविज्ञानशालिनम् । सुस्वरंसुपदव्यक्तिसुस्निग्धमृदुभाषिणम्

स्तम्भनोच्चाटनाकृष्टिवशीकर्मादिकोविदम् ।

व्याख्यानसमयाकृष्टपक्षिरोमाञ्चकारिणम् ॥ ७८ ॥
पीततद्गीतपीयूषमृगयूगैरुपासितम् । महामोदभराक्रान्तवातचाञ्चल्यहारिणम् ॥
वृक्षैरपि पतत्पुष्पच्छलैःकृतसमर्चनम् । ततः प्रोवाचपुण्यात्मापुण्यकीर्तिःससौगतः
शिष्यं विनयकीर्तिं तं महाविनयभूषणम् ॥ ८१ ॥

पुण्यकीर्तिरुवाच

त्वया विनयकीर्त्तेयो धर्मः कृष्टः सनातनः । वक्ष्याम्यहमशेषेणश्रृणुष्व त्वं महामते!
अनादिसिद्धः संसारः कर्तृकर्मविवर्जितः । स्वयं प्रादुर्भवेदेष स्वयमेव विलीयते
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यावद्देहनिबन्धनम् । आत्मैवैकेश्वरस्तत्र नद्वितीयस्तदीशिता
यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राद्यास्तथाख्या देहिनामिमाः ।
आख्या यथाऽस्मदादीनां पुण्यकीर्त्यादिरुच्यते ॥ ८५ ॥
देहोयथाऽस्मदादीनां स्वकालेन विलीयते ।
ब्रह्मादिमशकान्तानां स्वकालाल्लीयते तथा ॥ ८६ ॥
विचार्यमाणेदेहेऽस्मिन्नकिञ्चिदधिकं क्वचित् । आहारोमैथुनंनिद्राभयंसर्वत्रयत्समम्
निजाहारपरीमाणं प्राप्यसर्वोपि देहभृत् । सदृशीमेव संतृप्तिं प्राप्नुयान्नाधिकेतराम्
यथा वितृषिताः स्याम पीत्वा पेयं मुदावयम् ।
तृषितास्तु तथाऽन्येपि न विशेषोऽल्पकोधिकः ॥ ८९ ॥
सन्तु नार्यः सहस्राणि रूपलावण्यभूमयः । परन्निधुवने कालेह्येकैवेहोपयुज्यते
अश्वाःपरःशताःसन्तुसन्त्वनेकेऽप्यनेकपाः । अधिरोहेतथाप्येकोनद्वितीयस्तथात्मनः
पर्यङ्कशायिनां स्वापे सुखं यदुपपद्यते । तदेव सौख्यंनिद्रायामिह भूशायिनामपि
यथैव मरणाद्भीतिरस्मदादिवपुष्मताम् । ब्रह्मादिकीटकान्तानां तथा मरणतो भयम्
सर्वै तनुभृतस्तुल्या यदि बुद्ध्या विचार्यते ।
इदं निश्चित्य केनाऽपि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित् ॥ ९४ ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्याजीवदयानृभिः
एकस्मिन् रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् ।

घातिते घातितं तद्वत्तस्माद्वृक्षेन्न घातयेत् ॥ ९९ ॥
अहिंसापरमो धर्म इहोक्तः पूर्वसूरिभिः । तस्मान्न हिंसा कर्तव्यानरैर्नरकभीरुभिः
नहिंसासदृशम्पापं त्रैलोक्ये सचराचरे । हिंसको नरकंगच्छेत्स्वर्गंगच्छेदहिंसकः
सन्ति दानान्यनेकानि किं तैस्तुच्छफलप्रदैः । अभीतिदानसदृशं परमेकमपीहन
इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः ! विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्रपरत्रच
भीतेभ्यश्चाभयं देयंव्याधितेभ्यस्तथौषधम् । देयाविद्यार्थिनांविद्यादेयमन्नंक्षुधातुरे
अविचिन्त्यप्रभावं हिमणिमन्त्रौषधीबलम् । तदभ्यस्यम्प्रयत्नेननानार्थोपार्जनायवै
अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै । परितः परिपूज्यानिकिमन्यैरिह पूजितैः

पञ्च कर्मेन्द्रियाण्येव पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि च ।
मनोबुद्धिरिह प्रोक्तं द्वादशायतनं शुभम् ॥ १०४ ॥

इहैव स्वर्गनरकौ प्राणिनांनान्यतः क्वचित् । सुखंस्वर्गः समाख्यातोदुःखंनरकएवहि
सुखेषु भुज्यमानेषुयत्स्याद्देहविसर्जनम् । अयमेवपरोमोक्षो न मोक्षोऽन्यःक्वचित्पुनः
वासनासहितक्लेशसमुच्छेदेसतिध्रुवम् । विज्ञानोपरमोमोक्षोविज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः

प्रामाणिकी श्रुतिरियम्प्रोच्यते वेदवादिभिः ।
न हिंस्यात्सर्वभूतानि नान्या हिंसा प्रवर्तिका ॥ १०८ ॥
अग्नीषोमीयमिति या भ्रामिका साऽसतामिह ।
न सा प्रमाणं ज्ञातॄणाम्पश्वालम्भनकारिका ॥ १०९ ॥
वृक्षांश्छित्त्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
दग्ध्वा वह्नौ तिलाज्यादिचित्रं स्वर्गोऽभिलष्यते ॥ ११० ॥

इत्येवं धर्मजिज्ञासाम्पुण्यकीर्तौ प्रकुर्वति । पारम्पर्येण तच्छ्रुत्वापौरायात्राम्प्रचक्रिरे
परिव्राजिकयाप्येवं समाकृष्टाः पुराङ्गनाः । तयाविज्ञानकौमुद्यासर्वविद्याविदग्धया
ततस्तासाम्पुरस्तात्साबौद्धधर्मानवीवदत् । दृष्टार्थप्रत्ययकरान्देहसौख्यैकसाधनान्

विज्ञानकौमुद्युवाच

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं श्रुत्यैवं यन्निगद्यते । तत्तथैवेह मन्तव्यं मिथ्यानानात्वकल्पना

यावत्स्वस्थमिदं वर्ष्म यावन्नेन्द्रियविक्लवः ।
यावज्जरा च दूरेऽस्ति तावत्सौख्यं प्रसाधयेत् ॥ ११५
अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्येवार्धकेतुकुतःसुखम् ।शरीरमपिदातव्यमर्थिभ्योतःसुखेप्सुभिः
याचमानमनोवृत्तिप्रीणने यस्य नोजनिः । तेन भूर्भारवत्येषा समुद्रागद्रुमैर्नहि
सत्वरो गत्वरो देहः सञ्चयाःसपरिक्षयाः। इति विज्ञायविज्ञातादेहेसौख्यंप्रसाधयेत्
श्ववायसकृमीणांच प्रान्ते भोज्यमिदं वपुः । भस्मान्तंतच्छरीरं च वेदे सत्यंप्रपद्यते
मुधा जातिविकल्पोऽयं लोकेषु परिकल्प्यते ।
मानुष्ये सति सामान्ये कोऽधमः कोऽथ चोत्तमः ॥ १२० ॥
ब्रह्मादिसृष्टिरेषेति प्रोच्यते वृद्धपूरुषैः ।तस्य स्रष्टुः सुतौ दक्षमरीची चेति विश्रुतौ
मारीचिनाकश्यपेनदक्षकन्याः सुलोचनाः । धर्मेण किलमार्गेण परिणीतास्त्रयोदश
अपीदानीन्तनैर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः । अयंगम्यस्त्वगम्योऽयं विचारः क्रियतेमुधा
मुखबाहूरुपज्जातश्चातुर्वर्ण्यमिहोदितम् । कल्पनेयं कृता पूर्वैर्नघटेत विचारतः
एकस्याश्च तनौ जाता एकस्माद्यदि वा क्वचित् ।
चत्वारस्तनयास्तत्किं भिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः ॥ १२५ ॥
वर्णावर्णविवेकोयं तस्मान्नप्रतिभासते । अतोभेदोनमन्तव्योमानुष्ये केनचित्क्वचित्
विज्ञानकौमुदीवाणीमित्याकर्ण्य पुराङ्गनाः । भर्त्तृशुश्रूषणवतीं विजहुर्मतिमुत्तमाम्
अस्यस्याकर्षणीं विद्यां वशीकृतिमतीमपि । पुरुषाःसफलीचक्रुः परदारेषु मोहिताः
अन्तःपुरचरानार्यस्तथाराजकुमारकाः । पौराः ,पुराङ्गनाश्चापिसर्वैताभ्यांविमोहिताः
वन्ध्यानाञ्चापि वन्ध्यात्वं सा परिव्राजिकाऽहरत् ।
तैस्तैश्च कार्मणोपायैरसौभाग्यवतीः स्त्रियः ॥१३०॥
सौभाग्यभाग्यसम्पन्ना व्यधाद्विज्ञानकौमुदी ।
कस्यैचिदञ्जनं दत्तं कस्यैचित्तिलकौषधम् ॥ १३१ ॥
वशीकरणमन्त्रैश्च तथा वह्व्योपदीक्षिताः ।
मन्त्राअपेयुः काश्चिच्च यन्त्राण्यन्यालिखन्ति च ॥ १३२ ॥

काश्चिज्जुह्वतिकुण्डाग्नौनानाद्रव्याणिनिश्चलाः । एवंसर्वेषुपौरेषुनिजधर्मेषुसर्वथा
पराङ्मुखेषु जातेषु प्रोल्ललास वृषेतरः ॥ १३३ ॥
सिद्धयोऽकृष्टपच्याद्या नष्टा पुनःप्रवेशनात् ।
आसीत्कुण्ठितसामर्थ्यो नृपोऽपि स मनाङ्मनाक् ॥ १३४ ॥
दूरस्थितोपिविघ्नेशोनृपंनिर्विण्णमानसम् । चकारराज्यकरणेढुण्ढिराजो रिपुञ्जयम्
अजीगणद्दिवोदासोह्यष्टादशदिनावधिम् । कदागन्तासवैविप्रो योमांसमुपदेक्ष्यति
इत्थमष्टादशे प्राप्ते दिवसे दिवसेश्वरे । प्राप्ते मध्यंनभोभागं द्वारम्प्राप्तो द्विजोत्तमः
सएवपुण्यकीर्त्याख्योधर्मक्षेत्राँदधोक्षजः । द्विजवेषंसमालम्ब्यसमायातोनृपान्तिकम्
द्वित्रैः पवित्रैर्बहुधाजयजीवेतिवादिभिः । समेतः स इतो विप्रो मूर्तिमानिव पावकः
विलोक्य तं समायान्तं दूरादुत्कण्ठितो नृपः । मेने भवेद्गुरुरयं युक्तो मदुपदेशने
अभिगम्य च तंराजाप्रणम्यच पुनः पुनः । गृहीतस्वस्तिवचनोनिनायान्तःपुरंद्विजम्
मधुपर्केणविधिनातंसम्पूज्यजनाधिपः । व्यपेताध्वश्रमं स्वस्थम्प्रोल्लसन्मुखपङ्कजम्
निवेद्यखाद्यवस्तूनिकृतकृत्यक्रियाविधिम् । परितृप्तं सुखासीनं पप्रच्छ ब्राह्मणं नृपः

राजोवाच

खिन्नोऽस्मिविप्रवर्याहंराज्यभारं समुद्वहन् । खेदो नास्त्येवहिपरंवैराग्यमिव जायते
किंकरोमिक्वगच्छामिकथंमेनिर्वृतिर्भवेत् । पक्षद्वयेव यातेति मम चिन्तयतो द्विज!
असीमसुखसन्तानं भुक्तंराज्यं मया द्विज !। परिक्षीणविपक्षंयत्र्यक्षैश्वर्यमिवस्फुटम्
स्वसामर्थ्यादहं जातः पर्जन्याग्न्यनिलात्मकः ।
प्रजाश्च पालिताः सम्यक् पुत्रा इव निजौरसाः ॥ १४७ ॥
तर्पिताश्चापिभूदेवावसुभिश्च दिनेदिने । एकमेवापराद्धं च मया राज्यं प्रशासता
देवास्तृणीकृताः सर्वे स्वतपोबलदर्पतः । तच्च प्रजोपकारार्थं न स्वार्थं भवताशपे
अधुनागुरुरेधि त्वं मम भाग्योदयागतः । राज्यंतुप्रकरोम्येवंन्यक्कृतान्तकसाध्वसम्
अकालकालकलनंमम राज्ये न कुत्रचित् । जराव्याधिदरिद्रेभ्योममराज्येपि नोभयम्
कोऽपि धर्मेतरां वृत्तिनश्रयेन्मयि शासति । धर्मोदयाजनाःसर्वेसर्वेसन्ति सुखोदयाः

सद्विद्याव्यसनाः सर्वे सर्वे सन्मार्गचञ्चुराः ।
अथवा यदि कल्पान्तं तिष्ठेदायुस्ततोऽपि किम् ॥ १५३ ॥
सर्वेभोग्यास्तथाभान्ति यथा चर्वितचर्वणम् । किंपिष्टपेषणेनाऽत्र राज्येन द्विजपुङ्गव!
किमप्युपदिश प्राज्ञ! गर्भवासोपशान्तये । अथवा त्वां प्रपन्नस्य ममकिञ्चिन्तनैरिमैः
यद्देवकथयस्यद्यतत्करिष्याम्यसंशयम् । त्वद्विलोकनमात्रेण सर्व एव मनोरथाः
अन्येषामपि जायन्ते जातप्राया ममैव तु । जाने देवविरोधेन के के न प्रलयंगताः
अवन्तोऽपिप्रजाः स्वीयानिजधर्ममनुव्रताः । पुरा ते त्रिपुराःशूराःशिवभक्तिपराअपि
धरामयं रथं कृत्वा धनुः कृत्वा हिमाचलम् ।
वेदांश्च वाजिनः कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम् ॥ १५६ ॥
विरिञ्चिं सारथिं कृत्वा कृत्वा विष्णुञ्च पत्त्रिणम् ।
रथचक्रे पुष्पवन्तौ प्रतोदं प्रणवात्मकम् ॥ १६० ॥
ताराग्रहमयान्कीलान् वरूथंगगनात्मकम् । ध्वजदण्डंसुमेरुञ्च प्रांशुकल्पतरुंध्वजम्
योक्त्राणि चक्षुःश्रवसश्छन्दांस्यङ्गानि रक्षकान् ।
भल्लं कालाग्निरुद्राख्यं पुङ्खीकृत्य प्रभञ्जनम् ॥ १६२ ॥
हरेणैकेषुपातेन लीलया भस्मसात्कृताः । बलिर्यज्ञकृतांश्रेष्ठः कृत्वा कपटखर्वताम्
पातालंगमितः पूर्वं हरिणाविक्रमैस्त्रिभिः । वृत्तवानपिवै वृत्रः सुत्राम्णाविनिसूदितः
दधीचिरपिविप्रेन्द्रोदेवैरस्थिकृते हतः । पूर्ववैरमनुस्मृत्य जयार्थं युध्यतो हरेः
कुशास्त्रैर्विजितस्याजौ तेनैव च दधीचिना ॥ १६५ ॥
शिवभक्तस्यबाणस्यदोःसहस्रं पुराहरिः । चिच्छेदसंख्ये किन्तेनापराद्धं साधुवर्तिना
तस्माद्विरोधो भद्राय नभवेद्दैवतैः सह । देवेभ्योमद्भयंनास्तिसत्पथीनस्यवै मनाक्
यज्ञैर्देवत्वमापन्ना गीर्वाणा वासवादयः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च तेभ्योऽप्याधिक्यमस्ति मे ॥ १६८ ॥
अस्तुन्यूनत्वमाधिक्यं किमनेनाधुनामम । इन्द्रियोपरमः प्राप्तः सुखदस्तव दर्शनात्
इदानींदिश मे तात कर्मनिर्मूलनक्षमम् । उपायं त्वमुपायज्ञ येननिर्वृतिमाप्नुयाम्

स्कन्द उवाच

गणेशावेशवशतो राज्ञेतियदुदीरितम् । तदाकर्ण्य हृषीकेशः प्राह ब्राह्मणवेषभृत्

श्रीविष्णुरुवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ! नृपचूडामणेऽनत्र !। मया यदुपदेष्टव्यंतत्त्वयैव निरूपितम्
त्वमादावेवनिर्वृत्तःपरस्मेमानदोह्यसि । क्षालितेन्द्रियपङ्कश्चसुतपः स्वच्छवारिभिः
यदुक्तंभवता भूप! तत्सर्वं तथ्यमेव हि । तवशक्तिश्च जानामि विरक्तिं च महामते
नभवत्सदृशोराजा भुविभूतोभविष्यति । राज्यम्भोक्तुंत्वयाज्ञायियुक्तुंयत्तुमुमुक्षसि
विरोधेऽपि हि देवानां त्वया नापकृतं भवेत् ।
धर्मेतरप्रवेशश्च तव राष्ट्रेऽपि नोऽभवत् ॥ १७६ ॥
प्रवर्तिताभिर्भवता प्रजाभिर्यदनुष्ठितम् । धर्मं धर्मं स्वधर्मज्ञ! तेन तृप्तादिवौकसः
एक एव हि ते दोषो हृदि मे प्रतिभासते । काश्याविश्वेश्वरोदूरंयत्कृतोभवताकिल
महान्तमपराधं ते जाने भूजानिसत्तम !। इमं तत्पापशान्त्यै च वच्म्युपायम्महत्तरम्
सङ्ख्यास्तियावतीदेहेदेहिनोरोमसम्भवा । तावन्तोऽप्यपराधावैयान्तिलिङ्गप्रतिष्ठया
एकं प्रतिष्ठितं येन लिङ्गमत्रेशभक्तितः । तेनात्मना समं विश्वं जगदेतत्प्रतिष्ठितम्
रत्नाकरे रत्नसङ्ख्या सङ्ख्याविद्भिरपीष्यते ।
लिङ्गप्रतिष्ठा पुण्यस्य न तु सङ्ख्येति लिख्यते ॥ १८२ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकुरुलिङ्गप्रतिष्ठितिम् । तयालिङ्गप्रतिष्ठित्याकृतकृत्योभविष्यसि
इत्युक्त्वा ब्राह्मणो दध्यौ क्षणं निश्चलमानसः ।
उवाच च प्रहृष्टास्यो राजानं पाणिना स्पृशन् ॥ १८४ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

अन्यच्च किञ्चित्पश्यामिभूपाल! ज्ञानचक्षुषा । शृणुष्वावहितो भूत्वातदपिप्राज्ञसत्तम
धन्योऽसिकृतकृत्योसिमान्योऽसि महतामपि । जप्यञ्चतवनामेहप्रातःशुभफलेप्सुना
दिवोदासत्वदभ्याशादपिधन्यतरावयम् । तेऽपि धन्यतरामर्त्यैयेत्वदाख्याम्प्रचक्षते
स्मायं स्मायञ्जगौ विप्रो मौलिमान्दोलयन्मुहुः । हृष्येवबहुशोहृष्टःसम्प्रहृष्टतनूरुहः

अहोभाग्योदयश्चास्य अहो नैर्मल्यमस्य वै ।
यदेनमनिशं ध्यायेद्भूयो विश्वेश्वोऽखिलैः ॥ १८९ ॥
अहो उदर्क एतस्य न कैश्चित्प्रतिपद्यते । अस्माकमपि यद्दूरमदवीयस्तदस्ययत्
हृद्यालोच्येति विप्रोऽथ वर्णयित्वा क्षितीश्वरम् ।
आविश्चकार तत्सर्वं यत्समाधावलोकयत ॥ १९१ ॥

ब्राह्मण उवाच

राजंस्तवाद्यफलितोमनोरथमहाद्रुमः । अनेननैव शरीरेण त्वंगन्तासि परम्पदम्
यथा विश्वेश्वरो नित्यं त्वामेव हृदि शीलयेत ।
तथाऽस्मदादीनपि न द्विजांस्तत्पादलोचनान् ॥ १९३ ॥
कृतलिङ्गप्रतिष्ठंत्वां सप्तमेह्यद्यवासरात् । दिव्यं विमानमागत्य नेतुमेष्यतिशाम्भवम्
राजंस्त्वं वेत्सि कस्यायंविपाकःसुकृतस्य ते ।
वाराणस्याः पुरः सम्यक् सेवनादित्यवैम्यहम् ॥ १९५ ॥
एकमप्यत्रयःपायाद्वाराणस्यांस्थितञ्जनम् ।तस्याप्येवंविपाकोस्तितदेहान्तेराजसत्तम
इति श्रुत्वा स राजर्षिर्दिवोदासः प्रतापवान् ।
ब्राह्मणाय सशिष्याय प्रादात्प्रीतोऽभिवाञ्छितम् ॥ १९७ ॥
अथ सम्प्रीणितं विप्रंप्रणम्यचमुहुर्मुहुः । प्रोवाचराजासंहृष्टस्तारितोस्मिभवार्णवात्
ब्राह्मणोऽपि प्रहृष्टात्मापरिपूर्णमनोरथः । समापृच्छ्य महीनाथंस्वेष्टंदेशंजगामह
विलोक्यकाशींपरितोमायाद्विजवपुर्हरिः । भूयोभूयोविचार्यापिकिमत्रातीवपावनम्
स्थानं यच्चाहमध्यास्यनिजभक्तानशेषतः । नेष्यामिपरमंधामविश्वेशानुग्रहात्परात्
सम्प्रधार्येतिभगवान् दृष्ट्वापाञ्चनदंहृदम् । तत्रकृत्वाविधिस्नानं ततस्तत्रैवसंस्थितः
प्रतीक्षमाणो लक्ष्मीशो मङ्क्षुत्र्यक्षसमागमम् ।
तार्क्ष्यम्प्रस्थापयाञ्चक्रे राजवृत्तान्तवेदिनम् ॥ २०३ ॥
दिवोदासोऽपि राजेन्द्रो! विप्रेन्द्रं परिवर्णयन् ।
आहूय प्रकृतीः सर्वाः सामात्यान्मण्डलेश्वरान् ॥ २०४ ॥

अध्यक्षानपिसर्वांश्चकोशाश्वेभादिदेशितान् । पुत्रान्पञ्चशतंप्राग्र्यं सुतंचसमरञ्जयम्
पुरोहितं प्रतीहारमृत्विजो गणकान् द्विजान् ।
सामन्तान् राजपुत्रांश्च सूपकारांश्चिकित्सकान् ॥ २०६ ॥
वैदेशिकानपि बहून्नानाकार्यसमागतान् । सान्तःपुराश्च महिषींवृद्धगोपालबालकान्
सर्वान्प्रोवाच हृष्टात्मा प्रबद्धकरसम्पुटः ।
यथा स ब्राह्मणः प्राह दिनसप्तावधिस्थितिम् ॥ २०८ ॥
आश्चर्यं तेषु शृण्वत्सु विषण्णवदनेषुच । स्वयं राजगृहंनीत्वा कुमारं समरञ्जयम्
अभिषिच्य महाबुद्धिःपौराञ्जानपदानपि । प्रसादीकृत्यपुण्यात्मापुनःकाशीमगान्नृपः
आगत्य काशीं मेधावी स भूपालो रिपुञ्जयः ।
प्रासादं कारयामास स्वधुन्याः पश्चिमेतटे ॥ २११ ॥
रिपून्प्रमथ्यसमरेयावतीश्रीरुपार्जिता । तावत्यासहि भूपालःशिवालयमचीक्लृपत्
भूपाललक्ष्मीरखिला यत्तत्र विनियोजिता ।
भूपालश्रीरिति ख्याता ततः सा भूरभूच्छुभा ॥ २१३ ॥
दिवोदासेश्वरं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य रिपुञ्जयः । कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत नरेश्वरः
अथैकस्मिन् दिने राजा तल्लिङ्गं विधिपूर्वकम् ।
समभ्यर्च्य नमस्कृत्य यावत्तुष्टाव तुष्टिदम् ॥ २१५ ॥
तावन्नभोङ्गणादाशु दिव्यं यानमवातरत् । पार्षदैः परितःकीर्णंशूलखट्वाङ्गपाणिभिः
अत्यादित्याग्नितेजोभिर्भालनेत्रैः कपर्दिभिः । शुद्धस्फटिकसङ्काशैरङ्गैर्दीप्तनभोङ्गणैः
विभूषाहिफणारत्नज्योतिःपूजितविग्रहैः । नित्यप्रकाशसन्त्रस्ततमःश्रितशिरोधरैः
चामरव्यग्रहस्ताग्ररुद्रकन्याशतावृतम् । अथ पारिषदैराजा दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥३१६
दिव्यैर्दुकूलनेपथ्यैरलञ्चक्रे मुदान्वितैः । त्रिनेत्रीकृतसद्भालं श्यामीकृतशिरोधरम्
सुगौरीकृतसर्वाङ्गं कपर्दीकृतमौलिजम् । चतुर्भुजीकृततनुं भूषणीकृतपन्नगम्
चन्द्रार्धीकृतमूर्धानं निन्युस्तं पार्षदा दिवम् ॥ २२२ ॥
तदाप्रभृतितत्तीर्थंभूपालश्रीरितिश्रुतम् । तत्र श्राद्धादिकंकृत्वादानं दत्त्वास्वशक्तितः

दिवोदासेश्वरं दृष्ट्वा समभ्यर्च्य च भक्तितः ।
राज्ञश्चाख्यायिकां श्रुत्वा न नरो गर्भमाविशेत् ॥ २२४ ॥
आख्यानमेतन्नृपतेर्दिवोदासस्य पावनम् । पठित्वापाठयित्वापि नरःपापैःप्रमुच्यते
दिवोदासशुभाख्यानं श्रुत्वा यः समरं विशेत् ।
न जातु जायते तस्य भयं वैरिकृतं क्वचित् ॥ २२६ ॥
दिवोदासकथा पुण्या महोत्पातनिकृन्तनी । पठनीयाप्रयत्नेन सर्वविघ्नोपशान्तये
नावृष्टिर्जायते तत्र नाकालमरणाद्भयम् । दैवोदासी कथा यत्र सर्वपातकनाशिनी
अस्याख्यानस्य पठनाद्विष्णोरिव मनोरथाः ।
सम्पूर्णतां गमिष्यन्ति शम्भोश्चिन्तितकारिणः ॥ २२६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
पूर्वार्धे दिवोदासनिर्वाणप्राप्तिर्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चनदाविर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

सर्वज्ञहृदयानन्द! गौरीचुम्बितमूर्धज !। तारकान्तक!षड्वक्त्र तारिणे भद्रकारिणे
सर्वज्ञाननिधे! तुभ्यंनमः सर्वज्ञसूनवे । सर्वथाजितमाराय कुमाराय महात्मने ॥ २ ॥
कामारिमर्धनारीशंवीक्ष्यकामकृतंकिल । योजिगायकुमारोऽपिमारंतस्मैनमोऽस्तुते
यदुक्तं भवता स्कन्दमायाद्द्विजवपुर्हरिः । काश्यां पञ्चनदं तीर्थमध्यासातीवपावनम्
भूर्भुवः स्वः प्रदेशेषु काशीपरमपावनम् । तत्रापि हरिणाऽज्ञायितीर्थंपञ्चनदम्परम्
कुतः पञ्चनदं नामतस्य तीर्थस्यषण्मुख !। कुतश्चसर्वतीर्थेभ्यस्तदासीत्पावनम्परम्
कथञ्च भगवान्विष्णुरन्तरात्माजगत्पतिः सर्वेषाञ्जगताम्पाताकर्ता हर्ता च लीलया

अरूपोरूपमापन्नोह्यव्यक्तोव्यक्ततांगतः । निराकारोपिसाकारोनिष्प्रपञ्चः प्रपञ्चभाक्
अजन्मानेकजन्मा च त्वनामास्फुटनामभृत् ।
निरालम्बोऽखिलालम्बो निर्गुणोऽपि गुणास्पदम् ॥ ६ ॥

अहृषीको हृषीकेशोऽप्यनङ्घ्रिरपिसर्वगः । उपसंहृत्य रूपं स्वंसर्वव्यापी जनार्दनः
स्थितः सर्वात्मभावेन तीर्थे पञ्चनदेपरे ।
एतदाख्याहि षड्वक्त्र! पञ्चवक्त्राद्यथाश्रुतम् ॥ ११ ॥

स्कन्द उवाच

कथयामि कथामेतांनमस्कृत्य महेश्वरम् । सर्वाघौघप्रशमनीं सर्वश्रेयोविधायिनीम्
यथा पञ्चनदं तीर्थं काश्याम्प्रथितिमागतम् । यन्नामग्रहणादेव पापं याति सहस्रधा
प्रयागोऽपि च तीर्थेशो यत्र साक्षात्स्वयं स्थितः ।
पापिनाम्पापसङ्घातं प्रसह्य निजतेजसा ॥ १४ ॥

हरन्ति सर्वतीर्थानि प्रयागस्यबलेनहि । तानि सर्वाणि तीर्थानि माघेमकरगेरवौ
प्रत्यब्दं निर्मलानि स्युस्तीर्थराजसमागमात् ।
प्रयागश्चापि तीर्थेन्द्रः सर्वतीर्थार्पितम्मलम् ॥ १६ ॥

महाघिनां महाघञ्च हरेत्पाञ्चनदाद्बलात् । यं सञ्चयति पापौघमावर्षंतीर्थनायकः
तमेकमज्जनादूर्जे त्यजेत्पञ्चनदे ध्रुवम् ॥ १७ ॥

यथा पञ्चनदोत्पत्तिस्तथा च कथयाम्यहम् । निशामय महाभागमित्रावरुणनन्दन
पुरा वेदशिरा नाम मुनिरासीन्महातपाः । भृगुवंशसमुत्पन्नो मूर्तो वेद इवापरः
तपस्यतस्तस्य मुनेः पुरोदृग्गोचरंगता । शुचिरप्सरसां श्रेष्ठा रूपलावण्यशालिनी
तस्या दर्शनमात्रेण परिक्षुब्धम्मुनेर्मनः । चस्कन्दस मुनिस्तूर्णंसाथ भीतावराप्सरा
दूरादेव नमस्कृत्य तमृषिं साभ्यभाषत । अतीववेपमानाङ्गी शुचिस्तच्छापभीतितः
नापराध्नोम्यहंकिञ्चिन्महोग्रतपसांनिधे !। क्षन्तव्यंमेक्षमाधार क्षमारूपास्तपस्विनः
मुनीनाम्मानसम्प्रायो हृत्पद्मादपि तन्मृदु । स्त्रियः कठोरहृदयाः स्वरूपेणैव सत्तम
इतिश्रुत्वावचस्तस्याःशुचेरप्सरसोमुनिः । विवेकसेतुनाऽस्तम्भीन्महारोषनदीरयम्

उवाचचप्रसन्नात्माशुचेशुचिरसिध्रुवम् । नमेऽल्पोपिहिदोषोत्रनतेदोषोस्तिसुन्दरि!
वह्निस्वरूपाललना नवनीतसमः पुमान् । अनभिज्ञा वदन्तीति विचारान्महदन्तरम्
स्निह्येदुद्धृतसारोऽपि वह्नेः संस्पर्शमाप्य वै ।
चित्रं स्त्र्याख्या समादानात्पुमान् स्निह्यति दूरतः ॥ २८ ॥
अतःशुचे!न भेतव्यं त्वया शुचिमनोगते । अतर्कितोपस्थितयात्वयाचस्खलितम्मया
स्खलनान्न तथाहानिरकामात्तपसोमुनेः । यथा क्षणान्धीकरणाद्धानिः को परयाद्रेः
कोपात्ततः क्षयंयातिसञ्चितंयत्सुकृच्छ्रतः । यथाभ्रपटलम्प्राप्यप्रकाशःपुष्पवन्तयोः
अनर्थकारिणः क्रोधात्कार्थानाम्परिजृम्भणम् ।
क्व वा खलजनोत्सेधात्साधूनाम्परिवर्धनम् ॥ ३२ ॥
अमर्षे कर्षतिमनो मनोभूसम्भवः कुतः । विधुन्तुदेतुदत्युच्चैर्विधुं कुत्रास्तिकौमुदी
ज्वलतो रोषदावाग्नेः क्व वा शान्तितरोः स्थितिः ।
दृष्टा केनापि किं क्वापि सिहात्कलभसुस्थता ॥ ३४ ॥
तस्यात्सर्वप्रयत्नेन प्रदीपः प्रतिघातुकः । चतुर्वर्गस्यदेहस्य परिहेयोविपश्चिता
इदानींश्रृणु कल्याणि! कर्तव्यं यत्त्वया शुचे !। अमोघबीजा हि वयंतद्बीजमुररीकुरु
एतस्मिन् रक्षितेवीर्येपरिस्कन्ने त्वदीक्षणात् । त्वयातवभवित्रेकंकन्यारत्नंमहाशुचि
इत्युक्तातेनमुनिना पुनर्जातेव साप्सरा । महाप्रसाद इत्युक्त्वा मुनेः शुक्रमजीगिलत्
अथकालेनदिव्यश्रीकन्यारत्नमजीजनत् । अतीवनयानानन्दि निधानंरूपसम्पदाम्
तस्यैव वेदशिरसआश्रमेतांनिधाय सा । शुचिरप्सरसांश्रेष्ठा जगाम च यथेप्सितम्
तां च वेदशिराः कन्यां स्नेहेन समवर्धयत् ।
क्षीरेण स्वाश्रमस्थाया हरिण्या हरिणीक्षणाम् ॥ ४१ ॥
मुनिर्नामददौ तस्यै धूतपापेति चार्थवत् । यन्नामोच्चारणेनापि कम्पते पातकावली
सर्वलक्षणशोभाढ्यां सर्वावयवसुन्दरीम् ।
मुनिस्तस्या जनोत्सङ्गात्क्षणमात्रमपि क्वचित ॥ ४३ ॥
दिनेदिनेवर्धमानांताम्पश्यन्मुमुदे भृशम् । क्षीरनीरधिवद्रम्यांनिशिचान्द्रमसींकलाम्

अथाष्टवार्षिकींदृष्ट्वातांकन्यांस मुनीश्वरः । कस्मैदेयेति सञ्चिन्त्य तामेव समपृच्छत

वेदशिरा उवाच

अयिपुत्रि! महाभागे! धूतपापे शुभेक्षणे ! । कस्मैदद्यांवरायत्वान्त्वमेवाख्याहितंवरम्
अतिस्नेहार्द्रचित्तस्य जनेतुश्चेतिभाषितम् । निशम्य धूतपापासा प्रोवाच विनतानना

धूतपापोवाच

जनेतर्यद्यहं देया सुन्दराय वराय ते । तदा तस्मै प्रयच्छ त्वं यमहं कथयामि ते॥४८
तुभ्यञ्चरोचतेतातश्रृणोत्ववहितोभवान् । सर्वेभ्योऽतिपवित्रोयोयः सर्वेषांनमस्कृतः
सर्वेयमभिलष्यन्ति यस्मात्सर्वसुखोदयः । कदाचिद्यो न नश्येत यः सदैवानुवर्तते
इहामुत्रापि यो रक्षेन्महापदुदयाद्ध्रुवम् । सर्वे मनोरथा यस्मात्परिपूर्णा भवन्तिहि
दिनेदिने वसौभाग्यंवर्धते यस्यसन्निधौ । नैरन्तर्येण यत्सेवांकुर्वतोन भयं क्वचित्
यन्नामग्रहणादेव केऽपि बाधां न कुर्वते । यदाधारेण तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ॥
एवमाद्यागुणायस्य वरस्यवरचेष्टितम् । तस्मै प्रयच्छ मां तात मम तेऽपीह शर्मणे
एतच्छ्रुत्वापितातस्या भृशम्मुदमवापह । धन्योऽस्मिधन्यामे पूर्वे येषामेषासुतान्वये
ध्रुवाहिधूतपापाऽसौयस्याईदृग्विधामतिः । ईदृग्विधैर्गुणगणैर्गरिम्णाकोऽत्रवैभवेत्
अथवा स कथं लभ्योविनापुण्यभरोदयम् । इति क्षणं समाधाय मनः समुनिपुङ्गवः
ज्ञानेनतंसमालोच्यवरमीदृग्गुणोदयम् । धन्यांकन्यांबभाषेऽथ श्रृणु वत्सेशुभैषिणि!

पितोवाच

वरस्य ये त्वया प्रोक्ता गुणा एते विचक्षणे ।
एषां गुणानामाधारो वरोऽस्तीति विनिश्चितम् ॥ ५६ ॥

परंससुखलभ्यो ननितरां शुभगाकृतिः । तपः पणेनसक्रय्यः सुतीर्थविपणौ क्वचित्
नार्थभारैः स सुलभो न कौलीन्येन कन्यके । न वेदशास्त्राभ्यसनैर्नचैश्वर्यबलेन वै
न सौन्दर्येण वपुषा न बुद्ध्या न पराक्रमैः । एकयैव मनः शुद्ध्या करणानांजये न च
महातपःसहायेन दमदानदयायुजा । लभ्यते स महाप्राज्ञो नान्यथा सदृशः पतिः
इति श्रुत्वाथ सा कन्यापितरं प्रणिपत्यच । अनुज्ञाम्प्रार्थयामास तपसे कृतनिश्चया

स्कन्द उवाच

कृतानुज्ञा जनैत्रासाक्षेत्रे परमपावने । तपस्ततापपरमं यदसाध्यं तपस्विभिः ॥ ६५॥
कसाबालातिमृद्वङ्गी क च तत्तादृशंतपः । कठोरवर्ष्मसंसाध्यमहो सच्चेतसोधृतिः
धारासारासुवर्षासुमहावातवतीष्वलम् । शिलासुसावकाशासुसा बह्वीरनयन्निशाः
श्रुत्वागर्जरवं घोरं दृष्ट्वाविद्युच्चमत्कृतीः । आसारशीकरैः क्लिन्नानचकम्पेमनाक् च सा
तडित्स्फुरन्ती त्वसकृत्तमिस्रासु तपोवने ।
यातायातं करोतीव द्रष्टुं तत्तपसः स्थितिम् ॥ ६६ ॥
तपतुंरेवसाक्षाच्च कुमारी कैंतवात्किल । पञ्चाग्नीन्परिधायात्र तपस्यतितपोवने
जलाभिलाषिणीबालानमनागपि साऽपिबत् । कुशाग्रतोयपृषतं पञ्चाग्निपरितापिता
रोमाञ्चकञ्चुकवती वेपमानतनुच्छदा । पर्यक्षिपत्क्षपाः क्षामा तपसा हैमनीश्चसा
निशीथिनीषु शिशिरे श्रयन्ती सारसंरसम् । मेनेसासारसैः केयमुद्यताद्येतिपद्मिनी
मनस्विनामपि मनो रागतां सृजते मधौ ।
तदोष्ठपल्लवाद्रागो जह्रे माकन्दपल्लवैः ॥ ७४ ॥
वसन्तेनिवसन्तीसावनेबालाचलंमनः । चक्रेतपस्यपिश्रुत्वा कोकिलाकाकलीरवम्
बन्धुजीवेऽधररुचिं कलहंसे कलागतीः । निक्षेपमिव साक्षिप्त्वाशरद्यासीत्तपोरता
अपास्तभोगसंपर्काभोगिनांवृत्तिमाश्रिता । क्षुदुद्बोधनिरोधाय धूतपापातपस्विनी
शाणेनमणिवल्लीढाकृशाऽप्यायादनर्घताम् । तथापितपसाक्षामादिदीपेतत्तनुस्तराम्
निरीक्ष्य तां तपस्यन्तीं विधिः संशुद्धमानसाम् ।
उपेत्योवाच सुप्रज्ञे! प्रसन्नोऽस्मि वरं वृणु ॥ ७६ ॥
सा चतुर्वक्त्रमालोक्य हंसयानोपरि स्थितम् ।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्रीता प्रोवाचाथ प्रजापतिम् ॥ ८० ॥

धूतपापोवाच

पितामह! वरो मह्यं यदि देयो वरप्रद !। सर्वेभ्यः पावनेभ्योऽपिकुरुमामतिपावनीम्
स्रष्टा तदिष्टमाकर्ण्यनितरांतुष्टमानसः । प्रत्युवाचाथतम्बालांविमलांविमलैषिणीम्

ब्रह्मोवाच

धूतपापे! पवित्राणि यानि सन्त्यत्र सर्वतः । तेभ्यः पवित्रमतुलं त्वमेधि वरतो मम
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च सन्ति तीर्थानि कन्यके !।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पावनान्युत्तरोत्तरम् ॥ ८४ ॥
तानि सर्वाणितीर्थानि त्वत्तनौ प्रतिलोमवै । वसन्तु ममवाक्येनभवसर्वातिपावनी
इत्युक्त्वान्तर्दधे वेधाः सापि निर्धूतकल्मषा । धूतपापोटजंप्राप्ताथोवेदशिरसःपितुः
कदाचित्तां समालोक्य खेलन्ती मुटजाजिरे ।
धर्मस्तत्तपसाकृष्टः प्रार्थयामास कन्यकाम् ॥ ८७ ॥

धर्म उवाच

पृथुश्रोणि विशालाक्षिक्षामोदरि शुभानने । क्रीतःस्वरूपसम्पत्त्यात्वयाऽहंदेहिमेरहः
नितराम्बाधते कामस्त्वत्कृते मां सुलोचने । अज्ञातनाम्नासातेनप्रार्थितेत्यसकृद्ग्रहः
उवाच सा पिता दाता तं प्रार्थय सुदुर्मते !।
पितृप्रदेया यत्कन्या श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ९० ॥
निशम्येति वचो धर्मो भाविनोऽर्थस्य गौरवात् ।
पुनर्निर्बन्धयाञ्चक्रेऽपधृतिधृतिशालिनीम् ॥ ९१ ॥

धर्म उवाच

न प्रार्थयेहं सुभगेपितरं तव सुन्दरि !। गान्धर्वेण विवाहेन कुरु मे त्वंसमीहितम्
इतिनिर्बन्धवद्वाक्यंसानिशम्यकुमारिका । पितुःकन्याफलंदित्सुःपुनराहेतितंद्विजम्
अरे जडमते मात्वं पुनर्ब्रूहीति याह्यतः । इत्युक्तोऽपि कुमार्या स नातिष्ठन्मदनातुरः
ततः शशाप तं बालाप्रबलातपसोबलात् । जडोऽसिनितरांयस्माज्जलाधारोनदोभव
इति शप्तस्तया सोऽथतां शशाप क्रुधान्वितः । कठोरहृदये! त्वं तुशिलाभवसुदुर्मते

स्कन्द उवाच

इत्यन्योन्यस्य शापेन मुने!धर्मो नदोऽभवत् । अविमुक्तेमहाक्षेत्रेख्यातोधर्मनदोमहान्
साप्याह पितरं त्रस्ता स्वशिलात्वस्य कारणम् ।

ध्यानेन धर्मं विज्ञाय मुनिः कन्यामथाब्रवीत् ॥ ९८ ॥
माभैः पुत्र! करिष्यामि तव सर्वं शुभोदयम् । तच्छापो नान्यथा भूयाच्चन्द्रकान्तशिला भव
चन्द्रोदयमनुप्राप्य द्रवीभूततनुस्ततः । धुनी भव सुते! साध्वि! धूतपापेति विश्रुता
स च धर्मनदः कन्ये तव भर्ता सुशोभनः । तैर्गुणैः परिपूर्णाङ्गो ये गुणाः प्रार्थितास्त्वया
अन्यच्च शृणु सद्बुद्धे ममापि तपसो बलात् । द्वैरूप्यं भवतोर्भावि प्राकृतं चद्रवच्चवै
इत्याश्वास्य पिता कन्यां धूतपापां परन्तप !। चन्द्रकान्तशिलाभूतामनुजग्राह बुद्धिमान्
तदारभ्य मुने काश्यां ख्यातो धर्मनदो ह्रदः । धर्मो द्रवस्वरूपेण महापातकनाशनः
धुनी च धूतपापा सा सर्वतीर्थमयी शुभा । हरेन्महाघसंघातान् कूलजानिव पादपान्
तत्र धर्मनदे तीर्थे धूतपापासमन्विते । यदा न स्वर्धुनी तत्र तदाब्रध्नस्तपोऽव्यधात्
गभस्तिमाली भगवान्गभस्तीश्वरसन्निधौ । शीलयन्मङ्गलां गौरीं तप उग्रं चचार ह
नाम्ना मयूखादित्यस्य तीर्थे तत्र तपस्यतः । किरणेभ्यः प्रववृते महास्वेदोऽतिखेदतः
किरणेभ्यः प्रवृत्ताया महास्वेदस्य सन्ततिः । ततः सा किरणा नाम जाता पुण्या तरङ्गिणी
महापापान्धतमसं किरणाख्या तरङ्गिणी । ध्वंसयेत्स्नानमात्रेण मिलिता धूतपापया
आदौ धर्मनदः पुण्यो मिश्रितो धूतपापया । यया धूतानि पापानि सर्वतीर्थीकृतात्मना
ततोऽपिः मिलितागत्य किरणा रविणैधिता । यन्नाम स्मरणादेव महामोहोन्धतां व्रजेत्
किरणाधूतपापे च तस्मिन् धर्मनदे शुभे । स्रवन्त्यौ पापसंहर्त्र्यौ वाराणस्यां शुभद्रवे
ततो भागीरथी प्राप्तातेन दैलीपिना सह । भागीरथी समायाता यमुना च सरस्वती
किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती । गङ्गा च यमुना चैव पञ्चनद्योऽत्र कीर्तिताः
अतः पञ्चनदं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तत्राप्लुतो न गृह्णीयाद्देहं ना पाञ्चभौतिकम् ॥ ११६ ॥
अस्मिन् पञ्चनदीनाञ्च सम्भेदेऽघौघभेदिनि ।
स्नानमात्रात्प्रयात्येव भित्त्वा ब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ ११७ ॥
तीर्थानि सन्ति भूयांसि काश्यामत्र पदे पदे । न पञ्चनदतीर्थस्य कोट्यंशेन समान्यपि
प्रयागे माघमासे तु सम्यक स्नातस्य यत्फलम् ।

तत्फलं स्याद्दिनैकेन काश्यां पञ्चनदे ध्रुवम् ॥ ११९ ॥
स्नात्वा पञ्चनदेतीर्थेकृत्वाचपितृतर्पणम् । बिन्दुमाधवमभ्यर्च्यनभूयोजन्मभाग्भवेत्
यावत्सङ्ख्यास्तिला दत्ताः पितृभ्यो जलतर्पणे ।
पुण्ये पञ्चनदे तीर्थे तृप्तिः स्यात्तावदाब्दिकी ॥ १२१ ॥
श्रद्धया यैः कृतं श्राद्धं तीर्थे पञ्चनदे शुभे । तेषांपितामहामुक्ता नानायोनिगता अपि
यमलोके पितृगणैर्गाथेयं परिगीयते । महिमानं पाञ्चनदं दृष्ट्वा श्राद्धविधानतः
अस्माकमपि वंश्योऽत्र कश्चिच्छ्राद्धं करिष्यति ।
काश्यां पञ्चनदं प्राप्य येन मुच्यामहे वयम् ॥ १२४ ॥
इयं गाथा प्रतिदिनं श्राद्धदेवस्य सन्निधौ । पितृभिः परिगीयेत काश्यांपञ्चनदंप्रति
तत्रपञ्चनदे तीर्थे यत्किञ्चिद्दीयते वसु । कल्पक्षयेऽपि न भवेत्तस्यपुण्यस्य संक्षयः
वन्ध्यापि वर्षपर्यन्तं स्नात्वा पञ्चनदे ह्रदे । समर्च्य मङ्गलां गौरीं पुत्रं जनयतिध्रुवम्
जलैः पाञ्चनदैः पुण्यैर्वाससापरिशोधितैः । महाफलमवाप्नोतिस्नपयित्वेष्टदेवताम्
पञ्चामृतानां कलशैरष्टोत्तरशतोन्मितैः ।
तुलितोऽधिकतां यातो बिन्दुः पाञ्चनदाम्भसः ॥ १२९ ॥
पञ्चकूर्चेनपीतेनयाऽत्र शुद्धिरुदाहृता । साशुद्धिः श्रद्धया प्राश्यबिन्दुं पाञ्चनदाम्भसः
भवेदवभृथस्नानाद्राजसूयाश्वमेधयोः । यत्फलं तच्छतगुणं स्नानात्पाञ्चनदाम्भसा
राजसूयाश्वमेधौ चभवेतांस्वर्गसाधनम् । आब्रह्मघटिकाद्वन्द्वं मुक्त्यै पाञ्चनदाप्लुतिः
स्वर्गराज्याभिषेकोऽपिनतथासम्मतःसताम् । अभिषेकःपाञ्चनदोयथाऽनल्पसुखप्रदः
वरं वाराणसीं प्राप्यभृत्यः पञ्चनदोक्षिणाम् । नान्यत्र सेवकीभूतभूपकोटिर्नरेश्वरः
यैर्नपञ्चनदे स्नातं कार्त्तिके पापहारिणि । तेऽद्यापि गर्भे तिष्ठन्तिपुनस्तेगर्भवासिनः
कृतेधर्मनदंनाम त्रेतायां धूतपापकम् । द्वापरे बिन्दुतीर्थञ्च कलौ पञ्चनदं स्मृतम्
शतंसमास्तपस्तप्त्वा कृतेयत्प्राप्यतेफलम् । तत्कार्त्तिकेपञ्चनदेसकृत्स्नानेनलभ्यते
इष्टापूर्तेषु धर्मेषु यावज्जन्मकृतेषु यत् । अन्यत्र स्यात्फलंतत् स्यादूर्जेधर्मनदाप्लवात्
न धूतपापसदृशं तीर्थं क्वापि महीतले । यदेकस्नानतो नश्येदघं जन्मत्रयार्जितम्

बिन्दुतीर्थेनरोदत्त्वा काञ्चनं कृष्णलोन्मितम् । नदरिद्रोभवेत्क्वापिनस्वर्णेनवियुज्यते
गोभूतिलहिरण्याश्ववासोन्नस्रग्विभूषणम् ।
यत्किञ्चिद्बिन्दुतीर्थेऽत्रदत्त्वाक्षयमवाप्नुयात् ॥ १४१ ॥
एकामप्याहुतिंदत्त्वा समिद्धेऽग्नौ विधानतः । पुण्येधर्मनदेतीर्थेकोटिहोमफलं लभेत्
न पञ्चनदतीर्थस्य महिमानमनन्तकम् । कोऽपिवर्णयितुं शक्तश्चतुर्वर्गशुभौकसः
श्रुत्वाख्यानमिदं पुण्यं श्रावयित्वाऽपि भक्तितः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥ १४४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
उत्तरार्धे पञ्चनदाविर्भावो नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

* * *

षष्टितमोऽध्यायः

बिन्दुमाधवाविर्भाववर्णनम्

स्कन्द उवाच

उक्ता पञ्चनदोत्पत्तिर्मित्रावरुणनन्दन !। इदानीं कथयिष्यामिमाधवाविष्कृतिंपराम्
यांश्रुत्वा श्रद्धयाधीमान्पापेभ्योमुच्यतेक्षणात् । नचश्रियावियुज्येतसंयुज्येतवृषेणच
आगत्यमन्दरादद्रे रुपेन्द्रश्चन्द्रशेखरम् । आपृच्छ्यताक्ष्र्यरथगः क्षणाद्वाराणसींपुरीम्
दिवोदासंमहीपालं समुच्चाट्यस्वमायया । स्थित्वापादोदकेतीर्थेकेशवाख्यस्वरूपतः
महिमानं परं काश्यां विचार्य सुविचार्य च । दृष्ट्वा पञ्चनदं तीर्थं परां मुदमवापह
उवाचच प्रसन्नात्मा पुण्डरीकविलोचनः । अगण्याअपिवैकुण्ठगुणाविगणिता मया
क्षीरनीरधौसन्ति तावन्तो निर्मलागुणाः । यावन्तोविजयन्तेऽत्रकाश्यांपञ्चनदेह्रदे
श्वेतद्वीपेऽपि सामग्रीकगुणानांगरीयसी । ईदृशीयादृशीकाश्यांधूतपापेऽस्तिपावनी
मुदे कौमोदकी स्पर्शस्तथान मम जायते । धूतपापाम्बुसम्पर्को यथाभवति सर्वथा

नक्षीरनीरधिजया सुखंमे श्लिष्टगात्रया । तथा भवेद्यथाऽत्रस्यात्स्पष्टयाधूतपापया
इत्थं पञ्चनदे तीर्थेक्षीरनीरधिजाधवः । संप्रेष्यताक्ष्यं त्र्यक्षाग्रे वृत्तान्तंविनिवेदितुम्
आनन्दकाननभवं दिवोदासक्षमापतेः । सम्वर्णयन्गुणग्रामं पुण्यं पाञ्चनदोद्भवम् १२
सुखोपविष्टः संहृष्टः सुदृष्टिर्विष्टरश्रवाः । दृष्टवांस्तपसाजुष्टमपुष्टाङ्गं तपोधनम् ॥ १३
सऋषिस्तंसमभ्येत्यपुण्डरीकाक्षमच्युतम् । उपोपविष्टकमलं वनमालाविराजितम्
शङ्खपद्मगदाचक्रचञ्चत्करचतुष्टयम् । कौस्तुभोद्भासितोरस्कं पीतकौशेयवाससम्
सुनीलेन्दीवररुचिं सुस्निग्धमधुराकृतिम् । नाभीहृदलसत्पद्मं सुपाटलरदच्छदम्
दाडिमीवीजदशनं किरीटद्योतिताम्बरम् । देवेन्द्रवन्दितपदं सनकादिपरिष्टुतम्
दिव्यर्षिभिर्नारदाद्यैः परिगीतमहोदयम् । प्रह्लादाद्यर्भागवतैः परिनन्दितमानसम्
धृतशार्ङ्गधनुर्दण्डं दण्डिताखिलदानवम् । मधुकैटभहन्तारं कंसविध्वंससूचकम्
कैवल्यं यत्परंब्रह्म निराकारमगोचरम् । तत्पुंमूर्त्या परिणतंभक्तानां भक्तिहेतुतः ॥
वेदा विदुर्यदाकारंनैवोपनिषदोदितम् । ब्रह्माद्या नच गीर्वाणाश्चक्रे नेत्रातिथिंसतम्
प्रणनाम मुदायुक्तःक्षितिविन्यस्तमस्तकः । सऋषिस्तंहृषीकेशमग्निबिन्दुर्महातपाः

तुष्टाव परया भक्तया मौलिबद्धकराञ्जलिः ।
अध्यस्तविस्तीर्णशिलं बलिध्वंसनमच्युतम् ॥ २३ ॥
तत्र पञ्चनदाभ्याशे मार्कण्डेयादिसेविते ।
गोविन्दमग्निबिन्दुः स स्तुतवांस्तुष्टमानसः ॥ २४ ॥

अग्निबिन्दुरुवाच

ॐनमः पुण्डरीकाक्ष बाह्यान[illegible]शौचदायिने । सहस्रशीर्षापुरुषःसहस्राक्षःसहस्रपात्
नमामितेपदद्वन्द्वं सर्वद्वन्द्वनिवारकम् । निर्द्वन्द्वयाधियाविष्णोजिष्ण्वादिसुरवन्दित
यंस्तोतुंनाधिगच्छन्तिवाचो वाचस्पतेरपि । तमीष्टे क इहस्तोतुंभक्तिरत्रबलीयसी
अपियो भगवानीशो मनः प्राचामगोचरः । समादृशैरल्पधीभिःकथंस्तुत्यो वचःपरः
यं वाचोनविशन्तीशं मनतीहमनोनयम् । मनोगिरामतीतं तंकःस्तोतुंशक्तिमान्भवेत्
यस्य निःश्वसितं वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः । तस्य देवस्य महिमामहान् कैरवगम्यते

अतन्द्रितमनोबुद्धीन्द्रियायं सनकादयः। ध्यायन्तोपिहृदाकाशेन विन्दन्तियथार्थतः
नारदाद्यैर्मुनिवरैराबालब्रह्मचारिभिः । गीयमानचरित्रोऽपि न सम्यग्योऽधिगम्यते

तं सूक्ष्मरूपमजमव्ययमेकमाद्यं ब्रह्माद्यगोचरमजेयमनन्तशक्तिम् ।
नित्यंनिराममयममूर्तमचिन्त्यमूर्तिं कस्त्वां चराचर!चराचरभिन्न! वेत्ति ॥ ३३ ॥
एकैकमेव तव नाम हरेर्मुरारे! जन्मार्जिताघमघिनां च महापदाढ्यम् ।
दद्यात्फलं च महितं महतो मखस्य जप्तं मुकुन्दमधुसूदनमाधवेति ॥ ३४ ॥
नारायणेति नरकार्णवतारणेति दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति ।
विश्वम्भरेति विरजेति जनार्दनेति क्वास्तीह जन्मजपतां क्व कृतान्तभीतिः ॥
ये त्वां त्रिविक्रम! सदाहार्दे शीलयन्ति कादम्बिनीरुचिररोचिषमम्बुजाक्षम् ।
सौदामनीविलसितांशुकवीतमूर्ते! तेऽपि स्पृशन्ति तव कान्तिमचिन्त्यरूपाम्
श्रीवत्सलाञ्छन! हरेऽच्युतकैटभारे! गोविन्द! तार्क्ष्यरथ! केशव! चक्रपाणे !।
लक्ष्मीपते! दनुजसूदन! शार्ङ्गपाणे! त्वद्भक्तिभाजि नभयं क्वचिदस्ति पुंसि ॥ ३७ ॥
यैरर्चितोऽसि भगवंस्तुलसीप्रसूनैर्दूरीकृतैणमदसौरभदिव्यगन्धैः ।
तानर्चयन्ति दिवि देवगणाः समस्ता मन्दारदामभिरलं विमलस्वभावान् ॥ ३८ ॥
यद्वाचि नाम तव कामदमब्जनेत्र यच्छ्रोत्रयोस्तवकथा मधुराक्षराणि ।
यच्चित्तभित्तिलिखितं भवतोऽस्ति रूपं नीरूपभूपपदवी नहितैर्दुरापा ॥ ३९ ॥
ये त्वां भजन्ति सततं भुवि शेषशायिंस्ताञ्छ्रीपते पितृपतीन्द्रकुबेरमुख्याः ।
वृन्दारका दिवि सदैव सभाजयन्ति स्वर्गापवर्गसुखसन्ततिदानदक्ष ॥ ४० ॥
ये त्वां स्तुवन्ति सततं दिवि तांस्तुवन्ति सिद्धाप्सरोमरगणालसदब्जपाणे !।
विश्राणयत्यखिलसिद्धिद को विना त्वां निर्वाणचारुकमलां कमलायताक्ष !॥ ४१
त्वं हंसि पासि सृजसि क्षणतः स्वलीला लीलावपुर्धरविरिञ्चिनताङ्घ्रियुग्म !।
विश्वं त्वमेव परविश्वपतिस्त्वमेव विश्वस्यबीजमसितत्प्रणतोऽस्म्यनित्यम् ॥ ४२
स्तोता त्वमेव दनुजेन्द्ररिपोस्तुति स्त्वंस्तुत्यस्त्वमेव सकलं हि भवानिहैकः ।
त्वत्तो न किञ्चिदपि भिन्नमवैमि विष्णो तृष्णां सदा कृणुहि मे भवजाम्भवारे !॥

इति स्तुत्वा हृषीकेशमग्निबिन्दुर्महातपाः ।
तस्थौ तूष्णीं ततो विष्णुरुवाच वरदो मुनिम् ॥ ४४ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

अग्निबिन्दो! महाप्राज्ञ! महतां तपसां निधे !। वरंवरय सुप्रीतस्तवादेयं नकिञ्चन

अग्निबिन्दुरुवाच

यदिप्रीतोऽसि भगवन्वैकुण्ठेश! जगत्पते । कमलाकान्त! तद्देहियदिहप्रार्थयाम्यहम्
कृतानुज्ञोऽथ हरिणा भ्रूभङ्गेन स तापसः । कृतप्रणामो हृष्टात्मा वरयामास केशवम्
भगवन्सर्वगोऽपीह तिष्ठ पञ्चनदे ह्रदे । हिताय सर्वजन्तूनां मुमुक्षूणां विशेषतः
लक्ष्मीशेन वरो मह्यमेष देयोऽविचारतः । नान्यं वरं समीहेऽहं भक्तिश्चत्वत्पदाम्बुजे
इति श्रुत्वावरं तस्याग्निबिन्दोर्म्मधुसूदनः । प्रीतःपरोपकारार्थंतथेत्याहाब्धिजापतिः

श्रीविष्णुरुवाच

अग्निबिन्दो! मुनिश्रेष्ठ! स्थास्याम्यहमिहध्रुवम् ।
काशीभक्तिमताम्पुंसां मुक्तिमार्गं समादिशन् ॥ ५१ ॥

मुने! पुनः प्रसन्नोऽस्मिवरम्ब्रूहिददामिते । अतीवममभक्तोऽस्मिभक्तिस्तेस्तुदृढामयि
आदावेव हि तिष्ठासुरहमत्रतपोनिधे !। ततस्त्वयासमभ्यर्थिस्थास्याम्यत्रसदैवहि

प्राप्य काशीं सुदुर्मेधाः कस्त्यजेज्ज्ञानवान्यदि ।
अनर्घ्यम्प्राप्य माणिक्यं हित्वा काचं क ईहते ॥ ५४ ॥

अल्पीयसा श्रमेणेह वपुषो व्ययमात्रतः । अवश्यंगत्वरस्याशु यथामुक्तिस्तथाक्कहि
विनिमाय जराजीर्णं देहं पार्थिवमत्र वै । प्राज्ञाः किमु न गृह्णीयुरमृतन्नैर्जरं वपुः
न तपोभिर्नवादानैर्नयज्ञैर्बहुदक्षिणैः । अन्यत्रलभ्यतेमोक्षोयथाकाश्यांतनुव्ययात

अपि योगं हि युञ्जाना योगिनो यतमानसाः ।
नैकेन जन्मना मुक्ताः काश्यां मुक्ता वपुर्व्ययात् ॥ ५८ ॥

इदमेव महादानमिदमेव महत्तपः इदमेव व्रतं श्रेष्ठं यत्काश्यां म्रियते तनुः ॥ ५६॥

स एव विद्वाञ्जगति स एव विजितेन्द्रियः

स एव पुण्यवान् धन्यो लब्ध्वा काशीं न यस्त्यजेत् ॥ ६० ॥
तावत्स्थास्याम्यहं चात्र यावत्काशीमुने त्विह ।
प्रलयेऽपि न नाशोऽस्याः शिवशूलाग्रसुस्थितेः ॥ ६१ ॥
इत्याकर्ण्य गिरं विष्णोरग्निबिन्दुर्म्महामुनिः ।
प्रहृष्टरोमा प्रोवाच पुनरन्यं वरं वृणे ॥ ६२ ॥
मापते मम नाम्नात्रतीर्थे पञ्चनदे शुभे । अभक्तेभ्योऽपिभक्तेभ्यःस्थितोमुक्तिसदादिश
येऽत्र पञ्चनदेस्नात्वागत्वादेशान्तरेष्वपि । नराः पञ्चत्वमापन्नामुक्तितेभ्योऽपिवैदिश
ये तु पञ्चनदे स्नात्वा त्वाम्भजिष्यन्ति मानवाः ।
चलाचलापि द्वैरूपामात्याक्षीच्छ्रीश्चतान्नरान् ॥ ६५ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

एवमस्त्वग्निबिन्दोऽत्र भवता यद्वृतम्मुने ।त्वन्नाम्नोऽर्धेनमेनाममयासहभविष्यति
बिन्दुमाधवइत्याख्या मम त्रैलोक्यविश्रुता ।
काश्याम्भविष्यति मुने! महापापौघघातिनी ॥ ६७ ॥
ये मामत्र नराः पुण्याः पुण्ये पञ्चनदे ह्रदे । सदासपर्ययिष्यन्तितेषांसंसारभीःकुतः
वसुस्वरूपिणी लक्ष्मीर्लक्ष्मीर्निर्वाणसञ्ज्ञिका।तत्पार्श्वगासदायेषांहृदिपञ्चनदेह्यहम्
यैर्नपञ्चनदम्प्राप्य वसुभिः प्रीणिताद्विजाः । आशुलभ्यविपत्तीनांतेषांतद्वसुरोदिति
त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतकृत्यास्त एव हि ।
प्राप्य यैर्मम सान्निध्यं वसवो मम सात्कृताः ॥ ७१ ॥
बिन्दुतीर्थमिदं नाम तव नाम्नाभविष्यति । अग्निबिन्दोमुनिश्रेष्ठसर्वपातकनाशनम्
कार्त्तिकेबिन्दुतीर्थेयोब्रह्मचर्यपरायणः । स्नास्यत्यनुदितेभानौभानुजात्तस्यभीःकुतः
अपि पापसहस्राणिकृत्वामोहेनमानवः । ऊर्जे धर्मनदेस्नातोनिष्पापोजायतेक्षणात्
यावत्स्वस्थोऽस्ति देहोऽयं यावन्नेन्द्रियविक्लवः ।
तावद्व्रतानि कुर्वीत यतो देहफलं व्रतम् ॥ ७५ ॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन देहोऽयं संशोध्योऽशुचिभाजनम्

कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि कर्तव्यानि प्रयत्नतः ।
अशुचिः शुचितामेति कायो यद्व्रतधारणात् ॥ ७७ ॥
व्रतैः संशोधिते देहे धर्मोवसतिनिश्चलः । अर्थकामौसनिर्वाणौतत्रयत्रवृषस्थिति
तस्माद्व्रतानि सततंचरितव्यानिमानवैः । धर्मसान्निध्यकर्तृणिचतुर्वर्गफलेप्सुभि
सदा कर्तुं नशक्नोति व्रतानि यदि मानवः । चातुर्मास्यमनुप्राप्य तदा कुर्यात्प्रयत्नत
भूशय्या ब्रह्मचर्यञ्चकिञ्चिद्भक्ष्यनिषेधनम् । एकभक्तादिनियमोनित्यदानं स्वशक्तित
पुराणश्रवणं चैव तदर्थाचरणम्पुनः । अखण्डदीपोद्बोधश्च महापूजेष्टदैवते ॥
प्रभूताङ्कुरबीजाढ्ये देशे चापिगतागतम् । यत्नेनवर्जयेद्धीमान् महाधर्मविवृद्धये ॥
असम्भाष्या न सम्भाष्याश्चातुर्मास्यव्रतस्थितैः ।
मौनञ्चापि सदा कार्यं तथ्यं वक्तव्यमेव वा ॥ ८४ ॥
निष्पावांश्च मसूरांश्च कोद्रवान्वर्जयेद्व्रती ।
सदा शुचिभिरास्थेयं स्प्रष्टव्यो नाव्रतीजनः ॥ ८५ ॥
दन्तकेशाम्बरादीनि नित्यं शोध्यानि यत्नतः ।
अनिष्टचिन्ता नो कार्या व्रतिना ह्यपि कचित् ॥ ८६ ॥
द्वादशस्वपिमासेषुव्रतिनोयत्फलंभवेत् । चातुर्मास्यव्रतभृतांतत्फलंस्यादखण्डितम
चतुर्ष्वपि च मासेषु नसामर्थ्यं व्रतेयदि । तदोर्जे व्रतिनाभाव्यमप्यब्दफलमिच्छत
अव्रतः कार्त्तिकोयेषांगतोमूढधियामिह । तेषाम्पुण्यस्यलेशोपिनभवेत्सूकरात्मनाम्
कृच्छ्रं वाचातिकृच्छ्रं वा प्राजापत्यमथापि वा ।
सम्प्राप्ते कार्त्तिके मासि कुर्याच्छक्त्याऽति पुण्यवान् ॥ ९० ॥
एकान्तरं व्रतं कुर्यात्त्रिरात्रव्रतमेव वा । पञ्चरात्रं सप्तरात्रं सम्प्राप्ते कार्त्तिके व्रती
पक्षव्रतंवाकुर्वीतमासोपोषणमेव वा । नोर्जोवन्ध्योविधातव्योव्रतिनाकेनचित्कचित
शाकाहारं पयोहारं फलाहारमथापिवा । चरेद्यवान्नाहारं वासम्प्राप्ते कार्त्तिके व्रत
नित्यंनैमित्तिकं स्नानं कुर्यादूर्जे व्रती नरः । ब्रह्मचर्यं चरेदूर्जे महाव्रतफलार्थवा
बाहुलं ब्रह्मचर्येण यः क्षिपेच्छुचिमानसः । समस्तं हायनंतेन ब्रह्मचर्यकृतम्भवेत

यस्तु कार्त्तिकिकम्मासमुपवासैःसमापयेत् । अप्यब्दमपि तेनेहभवेत्सम्यगुपोषितम्
शाकाहारपयोहारैरूर्जो यैरतिवाहितः । अखण्डिताशरत्तेन तदाहारेण यापिता ॥
पत्रभोजी भवेदूर्जे कांस्यं त्याज्यं प्रयत्नतः ।
यो व्रती कांस्यभोजी स्यान्न तद्व्रतफलं लभेत् ॥ ९८ ॥
कांस्यस्य नियमे दद्यात्कांस्यंसर्पिःप्रपूरितम् । ऊर्जेनभक्षयेत्क्षौद्रमतिक्षुद्रगतिप्रदम्
मधुत्यागे घृतं दद्यात्पायसञ्च सशर्करम् । अभ्यङ्गेऽभ्यवहारे चतैलमूर्जे विवर्जयेत्
भूयात्स नारकी देही तत्राभ्यङ्गाद्यतोऽनघ !।
तैलत्यागे तिलान्दद्याद्द्रोणमात्रान्सकाञ्चनान् ॥ १०१ ॥
कार्त्तिके मत्स्यभोजी यः स तैर्मीं योनिमृच्छति ।
बाहुले मांसभोजी यः स कृमिः पूयशोणिते ॥ १०२ ॥
मांसाशिनोऽपि ये भूपास्त्यजेयुस्तेऽपि कार्त्तिके ।
मत्स्यमांसानि सन्त्यज्य कार्त्तिके व्रततत्परः ॥ १०३ ॥
मत्स्यमांसादनाद्दोषाद्बहिर्भवति निश्चितम् ।
नियमे मत्स्यमांसानां दद्यात्कार्त्तिकिके व्रती ॥
कूश्माण्डानि समाषाणि दशस्वर्णयुतान्यपि ॥ १०४ ॥
कार्त्तिके मौनभोजी यः सोऽश्नात्यमृतमेव हि ।
सुघण्टां सतिलाम्मौनी सहिरण्याम्प्रदापयेत ॥ १०५ ॥
कार्तिके लवणंत्यक्तं येन व्रतभृता सता । त्यक्ताःसर्वेरसास्तेनतत्त्यागीगाम्प्रदापयेत्
भूशय्यांकार्त्तिके कुर्वन्नभुवं संस्पृशेद्व्रती । पर्यङ्कं भूशयोदद्यात्सतूलं सोपधानकम्
दीपंयः कार्त्तिकेदद्यादखण्डंघृतवर्तिकम् । मोहान्धतमसम्प्राप्यसन गच्छतिदुर्गतिम्
यः कुर्यात्कार्त्तिके मासे रजन्यां दीपकौमुदीम् ।
तामिस्रं चान्धतामिस्रं न स पश्येत्कदाचन ॥ १०६ ॥
पापान्धकारसंक्रुद्धः कार्त्तिके दीपदानतः । क्रोधान्धकारितमुखम्भास्करिंसनवीक्षते
सउद्योतमयम्पश्येत्त्रैलोक्यंसचराचरम् । प्रबोधयेन्ममाग्रे योदीपंसोज्ज्वलवर्तिकम्॥

पञ्चामृतानाङ्कलशैरूर्जेमां स्नापयेन्नरः । क्षीराब्धितटमासाद्य वसेत्कल्पंसपुण्यवान्
प्रतिक्षपं कार्त्तिकिके कुर्वञ्ज्योत्स्नाम्प्रदीपजाम् ।
ममाग्रे भक्तिसंयुक्तो गर्भध्वान्तं न सम्विशेत् ॥ ११३ ॥
आज्यवर्त्तिकमूर्जेयो दीपंमेऽग्रे प्रबोधयेत् । बुद्धिभ्रंशंनचाप्नोतिमहामृत्युभयेसति
कार्त्तिके मासिमेयात्रा यैःकृताभक्तितत्परैः । बिन्दुतीर्थेकृतस्नानैस्तेषांमुक्तिर्नदूरतः
व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम । दामोदरगृहाणार्घ्यं दनुजेन्द्रनिषूदन
स्नानेनैमित्तिके कृष्णकार्त्तिकेपापशोषणे । गृह्णात्वर्घ्यंमयादत्तंराधयासहितोभवान्
इमौमन्त्रौसमुच्चार्ययोऽर्घ्यंमह्यं प्रयच्छति । सुवर्णरत्नपुष्पाम्बुयुजा शङ्खेनपुण्यवान्
सुवर्णपूर्णपृथिवी सङ्कल्पोदकपूर्वकम् । तेन दत्ता भवेत्सम्यक्सुपात्राय सुपर्वणि
एकादशींसमासाद्य प्रबोधकरणीं मम । बिन्दुतीर्थकृतस्नानो रात्रौ जागरणान्वितः
दीपान्प्रबोध्यबहुशोममालङ्कृत्य शक्तितः । तौर्यत्रिकविनोदेनपुराणश्रवणादिभिः
महामहोत्सवं कृत्वायावत्पूर्णातिथिर्भवेत् । तत्रान्नदानं बहुशः कृत्वा मत्प्रीतये नरः
महापातकयुक्तोऽपि न विशेत्प्रमदोदरम् । बिन्दुमाधवनामानं यो मामत्र समर्चयेत्
बिन्दुतीर्थकृतस्नानो निर्वाणंसहिविन्दति । आदिमाधवनामाहं पूज्यः सत्ययुगेमुने
अनन्तमाधवो ज्ञेयस्त्रेतायां सर्वसिद्धिदः । श्रीदमाधवसञ्ज्ञोऽहं द्वापरे परमार्थकृत्
कलौकलिमलध्वंसीज्ञेयोहंबिन्दुमाधवः । कलौकल्मषसम्पन्ना नमांविन्दन्तिमानवाः
ममैव मायया मूढा भेदवादपरायणाः । ममभक्तिं प्रकुर्वाणा ये विश्वेशं द्विषन्ति वै
विद्विषो ममतेज्ञेयाःपिशाचपदगामिनः । पैशाचींयोनिमाप्यापि कालभैरवशासनात्
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि उषित्वा दुःखसागरे । विश्वेशानुग्रहादेव ततो मोक्षमवाप्नुयुः
तस्माद्द्वेषोनकर्तव्योविश्वेशेपरमात्मनि । विश्वेशद्वेषिणांपुंसांप्रायश्चित्तंयतोनहि
मनसाऽपि हि विश्वेशं विद्विषन्तीह येऽधमाः ।
अध्यासतेऽन्धतामिस्रं मृतास्तेऽन्यत्र सन्ततम् ॥ १३१ ॥
शिवनिन्दापराये चयेपाशुपतनिन्दकाः । विद्विषो मम ते ज्ञेयाः पतन्तो नरकेऽशुचौ
अष्टाविंशतिकोटीषु नरकेषु क्रमेण हि । कल्पंकल्पं वसेयुस्ते ये विश्वेश्वरनिन्दकाः

विश्वेशानुग्रहंप्राप्यमुनेऽहमपिमुक्तिदः । मद्भक्तैस्तद्विशेषेणसेव्योविश्वेश्वरोऽनिशम्
इयं वाराणसी ज्ञेया मुने! पाशुपतस्थली ।
तस्मात्पशुपतिः सेव्यः काश्यां निःश्रेयसार्थिभिः ॥ १३५ ॥
त्रपञ्चनदे तीर्थेस्नातिविश्वेश्वरःस्वयम् । ऊर्जे सदैवसगणःसस्कन्दःसपरिच्छदः
ह्मासवेदः समखोब्रह्माण्याद्याश्च मातरः । सप्ताब्धयः ससरितःस्नान्त्यूर्जे धूतपापके
सचेतनाहि यावन्तस्त्रैलोक्ये देहधारिणः । तावन्तःस्नातुमायान्तिकार्त्तिकेधूतपापके
यैर्नपञ्चनदेस्नातं प्राप्यकार्त्तिकिकं शुभम् । जलबुद्बुदवत्तेषां वृथा जन्मशरीरिणाम्
आनन्दकाननं पुण्यं पुण्यं पाञ्चनदं ततः । ततोऽपिममसान्निध्यमग्निविन्दोमहामुने!
अनेनैवानुमानेन विद्धि पञ्चनदस्य वै । महिमानं महाप्राज्ञ! सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्
श्रुत्वाऽपि यं महाप्राज्ञो महापापैः प्रमुच्यते ।
विष्णोर्मुखादिति श्रुत्वा सोऽग्निबिन्दुर्महामुनिः ॥ १४२ ॥
पुनः प्रणम्य पप्रच्छ बिन्दुमाधवमच्युतम् ॥ १४३ ॥

अग्निबिन्दुरुवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिबिन्दुमाधव! तद्वद । कतिधातवरूपाणि काश्यांसन्तिजनार्दन
भविष्याण्यपि कानाह तानि मे कथयाच्युत ।
यानि सम्पूज्य ते भक्ताः प्राप्स्यन्ति कृतकृत्यताम् ॥ १४५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थे काशीखण्डे
बिन्दुमाधवाविर्भाववर्णनंनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

———:०:———

एकषष्टितमोऽध्यायः

बिन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निबिन्दुसम्वादोवैष्णवतीर्थमाहात्म्यवर्णनश्च

अगस्त्य उवाच

षडास्यमाधवाख्यानं श्रुतं मे पापनाशनम् । महिमापिश्रुतःश्रेयान्सम्यक्पञ्चनदस्यवै
यदग्निबिन्दुनाऽऽपृच्छिमाधवोदैत्यसूदनः । तस्योत्तरंसमाख्याहियथाख्यातंमधुद्विषा

स्कन्द उवाच

शृणवगस्त्य महर्षे! त्वं कथ्यमानंमयाऽधुना । माधवेनयथाचक्षिमुनयेचाग्निबिन्दवे

बिन्दुमाधव उवाच

आदौ पादोदके तीर्थे विद्धि मामादिकेशवम् ।
अग्निबिन्दो महाप्राज्ञ! भक्तानां मुक्तिदायकम् ॥ ४ ॥

अविमुक्तेऽमृते क्षेत्रे येऽर्चयन्त्यादिकेशवम् । तेऽमृतत्वंभजन्त्येवसर्वदुःखविवर्जिता
सङ्गमेशं महालिङ्गं प्रतिष्ठाप्यादिकेशवः । दर्शनादघहं नृणां भुक्तिं मुक्तिं दिशेत्सदा
याम्यां पादोदकाच्छ्वेतद्वीपतीर्थंमहत्तरम् । तत्राहंज्ञानदोनृणां ज्ञानकेशवसञ्ज्ञकः
श्वेतद्वीपे नरःस्नात्वा ज्ञानकेशवसन्निधौ । न ज्ञानाद्भ्रश्यते क्वापिज्ञानकेशवपूजनात्
तार्क्ष्यकेशवनामाहं तार्क्ष्यतीर्थेनरोत्तमैः । पूजनीयः सदाभक्त्यातार्क्ष्यवरो प्रिया मम
तत्रैव नारदे तीर्थेऽस्म्यहं नारद केशवः । ब्रह्मविद्योपदेष्टा च तत्तीर्थाप्लुतवर्ष्मणाम्
प्रह्लादतीर्थे तत्रैव नाम्नाप्रह्लादकेशवः । भक्तैः समर्चनीयोऽहं महाभक्तिसमृद्धये ॥
तीर्थेऽम्बरीषे तत्राहं नाम्नैवादित्यकेशवः । पातकध्वान्तनिचयं ध्वंसयामीक्षणादपि
दत्तात्रेयेश्वराद्याम्यामहमादिगदाधरः । हरामि तत्र भक्तानां संसारगदसञ्चयम्
तत्रैवभार्गवे तीर्थे भृगुकेशवनामतः । काशीनिवासिनः पुंसो बिभर्मि च मनोरथैः
वामनाख्ये महातीर्थे मनःप्रार्थितदे शुभे । पूज्योऽहंशुभमिच्छद्भिर्नाम्ना वामनकेशवः
नरनारायणे तीर्थे नरनारायणात्मकम् । भक्ताः समर्च्य मांस्युर्वै नरनारायणात्मकाः

तीर्थेयज्ञवराहाख्ये यज्ञवाराहसञ्ज्ञकः । नरैः समर्चनीयोऽहं सर्वयज्ञफलेप्सुभिः ॥
विदारनरसिंहोहं काशीविघ्नविदारणः । तन्नाम्नितीर्थे संसेव्यस्तीर्थोपद्रवशान्तये
गोपीगोविन्दतीर्थे तु गोपीगोविन्दसञ्ज्ञकम् ।
समर्च्य मां नरो भक्त्या मम मायां न संस्पृशेत् ॥ १९ ॥
मुने! लक्ष्मीनृसिंहोऽस्मि तीर्थे तं नाम्नि पावने ।
दिशामि भक्तियुक्तेभ्यः सदा नैःश्रेयसीं श्रियम् ॥ २० ॥
शेषमाधवनामाहंशेषतीर्थेऽघहारिणि । विश्राणयाम्यशेषांश्चविशेषान्भक्तचिन्तितान्
शङ्खमाधवतीर्थे च स्नात्वामांशङ्खमाधवम् । शङ्खोदकेनसंस्नाप्यभवेच्छङ्खनिधेःपतिः
हयग्रीवे महातीर्थे मां हयग्रीवकेशवम् । प्रणम्यप्राप्नुयान्नूनं तद्विष्णोःपरमम्पदम्
भीष्मकेशवनामाहं वृद्धकालेशपश्चिमे । उपसर्गान्हरेभीष्मान्सेवितोभक्तियुक्तितः
निर्वाणकेशवश्चाहम्भक्तनिर्वाणसूचकः । लोलार्कादुत्तरेभागे लोलत्वं चेतसो हरे
वन्द्यास्त्रिलोकसुन्दर्या याम्यां यो मां समर्चयेत् ।
काश्यां ख्यातं त्रिभुवनकेशवं न स गर्भभाक् ॥ २६ ॥
ज्ञानवाप्याः पुरो भागे विद्धि मां ज्ञानमाधवम् ।
तत्र मां भक्तितोऽभ्यर्च्य ज्ञानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ २७ ॥
श्वेतमाधवसञ्ज्ञोहंविशालाक्ष्याःसमीपतः । श्वेतद्वीपेश्वरंरूपंकुर्याम्भक्त्यासमर्चितः
उदग्दशाश्वमेधान्माम्प्रयागाख्यञ्चमाधवम् । प्रयागतीर्थे सुस्नातोदृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते
प्रयागगमने पुंसां यत्फलं तपसिश्रुतम् । तत्फलंस्याद्दशगुणमत्रस्नात्वाममाऽग्रतः
गङ्गायमुनयोःसङ्गे यत्पुण्यं स्नानकारिणाम् ।
काश्याम्मत्सन्निधावत्र तत्पुण्यं स्याद्दशोत्तरम ॥ ३१ ॥
ानानिराहुग्रस्तेऽर्केंददतांयत्फलम्भवेत् । कुरुक्षेत्रेहितत्काश्यामत्रैवस्याद्दशाधिकम्
ङ्गोत्तरवहा यत्र यमुना पूर्ववाहिनी । तत्सम्भेदं नरःप्राप्यमुच्यते ब्रह्महत्यया ॥
पनं तत्र कर्तव्यं पिण्डदानं च भावतः । देयानि तत्र दानानि महाफलमभीप्सुना
णाः प्रजापतिक्षेत्रेयेसर्वेसमुदीरिताः । अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽसङ्ख्याताश्चभवन्तिहि

प्रयागेशं महालिङ्गं तत्र तिष्ठति कामदम् ।
तत्सान्निध्याच्च तत्तीर्थं कामदम्परिकीर्तितम् ॥ ३६ ॥
काश्यांमाघः प्रयागे यैर्नस्नातो मकरार्कगः । अरुणोदयमासाद्यतेषां निःश्रेयसंकुतः
काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति संयुताः ।
दशाश्वमेधजनितं फलं तेषाम्भवेद् ध्रुवम् ॥ ३८ ॥
प्रयागमाधवम्भक्त्याप्रयागेशञ्च कामदम् । प्रयागे तपसिस्नात्वायेऽर्चयन्त्यन्वहंसदा
धनधान्यसुतर्द्धीस्तेलब्ध्वाभोगान्मनोरमान् । भुक्त्वेहपरमानन्दंपरम्मोक्षमवाप्नुयुः
माघेसर्वाणि तीर्थानि प्रयागमधियान्ति हि ।
प्राच्युदीचीप्रतीचीतोदक्षिणाधस्तथोर्ध्वतः ॥ ४१ ॥
काशीस्थितानि तीर्थानि मुने ! यान्ति न कुत्रचित् ।
यदि यान्ति तदा यान्ति तीर्थत्रयमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥
आयान्त्यूर्जं पञ्चनदं प्रातःप्रातर्ममान्तिकम् । महाघौघप्रशमने महाश्रेयोविधायिनि
प्राप्यमामघारिञ्च प्रयागेशसमीपतः । प्रातः प्रयागे संस्नान्ति सर्वतीर्थानिमामनु
समासाद्य च मध्याह्नमभियान्ति च नित्यशः ।
संस्नातुं सर्वतीर्थानि मुक्तिदां मणिकर्णिकाम् ॥ ४५ ॥
काश्यांरहस्यंपरममेतत्ते कथितम्मुने । यथा तीर्थत्रयीश्रेष्ठा स्वस्वकाले विशेषतः
अन्यद्रहस्यंवक्ष्यामिन वाच्यं यत्र कुत्रचित् । अभक्तेषुसदागोप्यंनगोप्यंभक्तिमज्जने
काश्यां सर्वाणि तीर्थानि एकैकादुत्तरोत्तरम् । महैनांसिप्रहन्त्येवप्रसह्यनिजतेजसा
एतदेवरहस्यं ते वाराणस्या उदीर्यते । उत्क्षिप्यैकाङ्गुलिं तथ्यंश्रेष्ठैकामणिकर्णिका
गर्जन्ति सर्वतीर्थानि स्वस्वधिष्ण्यगतान्यहो ।
केवलम्बलमासाद्य सुमहन्माणिकर्णिकम् ॥ ५० ॥
पापानि पापिनां हत्वा महान्त्यपि बहून्यपि ।
काशीतीर्थानि मध्याह्ने प्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ ५१ ॥
पर्वस्वपर्वस्वपि वा नित्यं नियमवन्त्यहो ।

निर्मलानि भवन्त्येव विगाह्य मणिकर्णिकाम् ॥ ५२ ॥
विश्वेशो विश्वया सार्धं सदोपमणिकर्णिकम् ।
मध्यन्दिनं समासाद्य संस्नाति प्रतिवासरम् ॥ ५३ ॥
वैकुण्ठादप्यहं नित्यं मध्याह्नेमणिकर्णिकाम् । विगाहेपद्मयासार्धं मुदापरमया मुने!
सकृन्ममाख्यां गृणतां निर्हरन्यदघान्यहम् ।
हरिनामसमापन्नस्तद्बलान्माणिकर्णिकात् ॥ ५५ ॥
सत्यलोकात्प्रतिदिनं हंसयानः पितामहः ।
माध्याह्निकविधानाय समायान्मणिकर्णिकाम् ॥ ५६ ॥
इन्द्राद्यालोकपालाश्च मरीचाद्या महर्षयः ।
माध्याह्निकीं क्रियां कर्तुं समीयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ ५७ ॥
शेषवासुकिमुख्याश्च नागा वै नागलोकतः ।
समायान्तीह मध्याह्ने संस्नातुं मणिकर्णिकाम् ॥ ५८ ॥
चराचरेषु सर्वेषु यावन्तश्चसचेतनाः । तावन्तःस्नान्तिमध्याह्ने मणिकर्णिजलेऽमले
के माणिकर्णिकेयानां गुणानां सुगरीयसाम् ।
शक्ता वर्णयितुं विप्रा ऽसङ्ख्ययानां मदादिभिः ॥ ६० ॥
चीर्णान्युग्राण्यरण्येषुतैस्तपांसितपोधनैः । यैरियंहिसमासादिमुक्तिभूर्मणिकर्णिका
विश्राणितमहादानास्त एव नरपुङ्गवाः । चरमे वयसि प्राप्तायैरेषामणिकर्णिका ॥
चीर्णसर्वव्रतास्ते तु यथोक्तविधिना ध्रुवम् ।
यैः स्वतल्पीकृता माणिकर्णिकेयीस्थली मृदुः ॥ ६३ ॥
त एव धन्या मर्त्येऽस्मिन् सर्वक्रतुषु दीक्षिताः ।
त्यक्त्वा पुण्यार्जितां लक्ष्मीमैक्षि यैर्मणिकर्णिका ॥ ६४ ॥
कृतानानाविधाधर्मा इष्टापूर्तास्तु तैर्नृभिः । वार्धकंसमनुप्राप्यप्रापियैर्मणिकर्णिका
त्नानिसद्दुकूलानि काञ्चनं गजवाजिनः । देयाः प्राज्ञेन यत्नेन सदोपमणिकर्णिकम्
ण्येनोपार्जितं द्रव्यमत्यल्पमपियैर्नरैः । दत्तं तदक्षयं नित्यं मुनेऽधिमणिकर्णिकम्

कुर्याद्यथोक्तमप्येकं प्राणायामं नरोत्तमः । यस्तेन विहितो नूनं षडङ्गो योग उत्तमः
जप्त्वैकामपिगायत्रीं संप्राप्यमणिकर्णिकाम् । लभेदयुतगायत्रीजपनस्य फलंस्फुटम्
एकामप्याहुतिं प्राज्ञो दत्त्वोपमणिकर्णिकम् ।
यावज्जीवाग्निहोत्रस्य लभेदविकलं फलम् ॥ ७० ॥
इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यमग्निबिन्दुर्महातपाः । प्रणिपत्य महाभक्त्यापुनःपप्रच्छमाधवम्

अग्निबिन्दुरुवाच

विष्णो!कियत्परीमाणा पुण्यैषा मणिकर्णिका ।
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष!न त्वत्तस्तत्त्ववित्परः ॥ ७२ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

आगङ्गाकेशवादाच हश्चिन्द्रस्यमण्डपात् । आमध्याद्देवसरितःस्वर्द्वारान्मणिकर्णिका
स्थूलमेतत्परीमाणं सूक्ष्मं च प्रवदामिते । हरिश्चन्द्रस्यतीर्थाग्रे हरिश्चन्द्रविनायकः
सीमाविनायकश्चात्रमणिकर्णिह्रदोत्तरे । सीमाविनायकं भक्त्यापूजयित्वानरोत्तमः
मोदकैःसोपचारैश्चप्राप्नुयान्मणिकर्णिकाम । हरिश्चन्द्रेमहातीर्थे तर्पयेयुःपितामहान्
शतंसमाःसुतृप्ताः स्युःप्रयच्छन्ति च वाञ्छितम् ।
हरिश्चन्द्रे महातीर्थे स्नात्वा श्रद्धान्वितो नरः ॥ ७७ ॥
हरिश्चन्द्रेश्वरं नत्वानसत्यात्परिहीयते । ततः पर्वततीर्थञ्च पर्वतेश्वरसन्निधौ ॥
अधिष्ठानं महामेरोर्महापातकनाशनम् । तत्रस्नात्वार्चयित्वेशं किञ्चिद्दत्त्वास्वशक्तितः
अध्यास्यमेरुशिखरं दिव्यान्भोगान्समश्नुते । कम्बलाश्वतरंतीर्थं पर्वतेश्वरदक्षिणे
कम्बलाश्वतरेशं च तत्तीर्थात्पश्चिमे शुभम् ।
तस्मिंस्तीर्थे कृतस्नानस्तल्लिङ्गं यः समर्चयेत् ॥ ८१ ॥
अपि तस्य कुले जाता गीतज्ञाः स्युः श्रियान्विताः ।
चक्रपुष्परिणी तत्र योनिचक्रनिवारिणी ॥ ८२ ॥
संसारचक्रेगहने यत्रस्नातो विशेन्न ना । चक्रपुष्करिणीतीर्थं ममाधिष्ठानमुत्तमम् ॥
समाःपरार्धसङ्ख्यातास्तत्रतप्तं महत्तपः । तत्र प्रत्यक्षतां यातोमम विश्वेश्वरः परः

तत्रलब्धंमयैश्वर्यमविनाशि महत्तरम् । चक्रपुष्करिणी चैव ख्याताऽभून्मणिकर्णिका
द्रवरूपं परित्यज्य ललना रूपधारिणी । प्रत्यक्षरूपिणी तत्र मयैक्षिमणिकर्णिका
तस्या रूपंप्रवक्ष्यामिभक्तानांशुभदं परम् । यद्रूपध्यानतःपुम्भिराषण्मासंत्रिसन्ध्यतः
प्रत्यक्षरूपिणी देवीदृश्यतेमणिकर्णिका । चतुर्भुजाविशालाक्षीस्फुरद्भालविलोचना
पश्चिमाभिमुखी नित्यं प्रबद्धकरसम्पुटा । इन्दीवरवतीं मालां दधती दक्षिणेकरे
वरोद्यतेकरे सव्ये मातुलुङ्गफलं शुभम् । कुमारीरूपिणी नित्यंनित्यंद्वादशवार्षिकी
शुद्धस्फटिककान्तिश्च सुनीलस्निग्धमूर्द्धजा । जितप्रवालमाणिक्यरमणीयरदच्छदा
प्रत्यग्रकेतकीपुष्पलसद्धम्मिल्लमस्तका । सर्वाङ्गमुक्ताभरणा चन्द्रकान्त्यंशुकावृता
पुण्डरीकमयीं मालां सश्रीकांविभ्रतीहृदि । ध्यातव्याऽनेनरूपेण मुमुक्षुभिरहर्निशम्

निर्वाणलक्ष्मीभवनं श्रीमती मणिकर्णिका ।
मन्त्रं तस्याश्च वक्ष्यामि भक्तकल्पद्रुमाभिधम् ॥
यस्यावर्तनतः सिद्ध्येदपि सिद्ध्यष्टकं नृणाम् ॥ ६४ ॥
वाग्भवमायालक्ष्मीमदनप्रणवान्वदेत्पूर्वम् ।
भान्त्यं विन्दूपेतं मणिपदमथकर्णिके सहृत्प्रणवपुटः ॥ ६५ ॥
मन्त्रः सुरद्रुमसमः समस्तसुखसन्ततिप्रदो जप्यः। ।
तिथिभिः परिमितवर्णः परमपदं दिशति निशितधियाम् ॥ ६६ ॥
तारस्तारतृतीयो विन्द्वन्तो मणिपदं ततः कर्णिके ।
प्रणवात्मिपदं केन म इति मनुसङ्ख्यवर्णमनुः ॥ ६७ ॥
अयं मन्त्रोऽनिशं जप्यः पुम्भिर्मुक्तिमभीप्सुभिः ।
होमोदशांशकः कार्यः श्रद्धाबद्धादरैर्नृभिः ॥ ६८ ॥

परिप्लुतैः पुण्डरीकैर्गव्येनहविषा स्फुटैः । सशर्करेणमेधावीसक्षौद्रेणसदा शुचिः
त्रिलक्षमन्त्रजप्येन मृतोदेशान्तरेष्वपि । अवश्यंमुक्तिमाप्नोतिमन्त्रस्यास्यप्रभावतः
सौवर्णीप्रतिमा कार्यानवरत्नसमन्विता । पूर्वोक्तरूपसम्पन्ना सम्पूज्या साप्रयत्नतः
सम्पूज्यावासदागेहे नरैर्मोक्षैककाङ्क्षिभिः । मणिकर्ण्यामथाक्षेप्यासमभ्यर्च्यप्रयत्नतः

संसारभीरुभिःपुम्भिः श्रद्धाबद्धादरैरिह । उपायः समनुष्ठेयो ह्यपिदूरनिवासिभिः ॥
मणिकर्ण्यां कृतस्नानोमणिकर्णीशवीक्षणात् । जननीजठरावासे वसतिं न लभेन्नरः
मणिकर्णीश्वरं लिङ्गं पुरा संस्थापितम्मया ।
प्राग्द्वारेऽन्तर्गृहस्याऽत्र समर्च्यो मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ १०५ ॥
ततःपाशुपतंतीर्थमवाच्यां मणिकर्णितः । कृतोदकक्रियस्तत्र पश्येत्पशुपतीश्वरम्
यत्र पाशुपतो योग उपदिष्टःपिनाकिना । ममापिविधिमुख्यानांसुराणाम्पशुपाशहृत्
अतः पशुपतिर्यत्र लिङ्गरूपधरः स्वयम् । पशुपाशविमोक्षाय नित्यं काश्यां प्रकाशते
तत्र चैत्रचतुर्दश्यां शुक्लायांशुचिमानसैः । कार्यायात्रा प्रयत्नेन रात्रौ जागरणं तथा
पूजयित्वा पशुपतिमुपोषणपरायणाः ।
पशुपाशैर्न बध्यन्ते दर्शे विहितपारणाः ॥ ११० ॥
रुद्रावासस्ततस्तीर्थं तीर्थात्पाशुपतात्पुरः । तत्रस्नात्वा नरैरर्च्योरुद्रावासेश्वरोहरः
मणिकर्णीश्वराद्याम्यां रुद्रावासेश्वरं नरः । समाराध्य वसेल्लोके रुद्रावासे न संशयः
विश्वतीर्थं ततो याम्यां विश्वैस्तीर्थैरधिष्ठितम् ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विश्वनाथं विलोकयेत् ॥ ११३ ॥
विश्वां गौरीञ्च तदनु पूजयित्वाऽतिभक्तितः ।
विश्वस्य पूज्यो भवति ततो विश्वमयोभवेत् ॥ ११४ ॥
मुक्तितीर्थंच तदनुतत्रापि कृतमज्जनः । मोक्षेश्वरंततोऽभ्यर्च्यमोक्षमाप्नोत्यसंशयम्
अविमुक्तेश्वरात्पश्चान्मोक्षेशं वीक्ष्य मानवः । नपुनर्मानवेलोके यातायातङ्करोत्यहो
अविमुक्तेश्वरं तीर्थंमुक्तितीर्थान्मनाक्परे । तत्राप्लुत्याविमुक्तेशमर्चयित्वाविमुच्यते
तत्परे तारकं तीर्थं यत्र विश्वेश्वरः स्वयम् । आचष्टे तारकं ब्रह्मम्रृतकर्णेम्रृतात्मकम्
सुस्नातस्तारके तीर्थे तारकेश्वरदर्शनात् । संसारसागरं तीर्त्वा तारयेत्स्वपितॄनपि
तत्राभ्याशे स्कन्दतीर्थं तत्राप्लुत्य नरोत्तमः ।
दृष्ट्वा षडाननं चैव जह्यात्षाट्कौशिकीं तनुम् ॥ १२० ॥
तारकेश्वरपूर्वेण दृष्ट्वा देवं षडाननम् । वसेत्षडानने लोके कौमारं वपुरुद्वहन् ॥

दुण्ढितीर्थं ततः पुण्यंनरस्तत्र कृतोदकः । दुण्ढिगणपतिस्तुत्वा नविघ्नैरभिभूयते
भवानीतीर्थमतुलंदुण्ढितीर्थस्य दक्षिणे । तत्र स्नात्वाविधानेनभवानीं परिपूज्यच
दुकूलैरत्ननेपथ्यैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः । पुष्पैर्धूपैः प्रदीपैश्च भवानीशौ प्रपूज्यच ॥ १२४
समस्तमर्चितं तेनत्रैलोक्यं सचराचरम् । भवानीशङ्करौ काश्यामर्चितौ श्रद्धयातुयैः

चैत्राष्टम्यां महायात्राम्भवान्याः कारयेत्सुधीः ।
अष्टाधिकाः प्रकर्तव्याः शतकृत्वः प्रदक्षिणाः ॥ १२६ ॥

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपवती मही । सशैला ससमुद्रा च साश्रमा च सकानना
अष्टौ प्रदक्षिणादेयाः प्रत्यहं भक्तितत्परैः । नमनीयौ प्रयत्नेन भवानीशङ्करौ सदा

भक्तानां कामदा नित्यं भवानी वाससाम्प्रदा ।
अतो भवानी सम्पूज्या काश्यां तीर्थनिवासिभिः ॥ १२९ ॥
योगक्षेमं सदा कुर्याद्भवानीकाशिवासिनाम् ।
तस्माद्भवानी संसेव्या सततं काशिवासिभिः ॥ १३० ॥
भिक्षणीया सदा भिक्षा भिक्षुणा मोक्षकाङ्क्षिणा ।
यतो भिक्षाप्रदा काश्यां विश्वेशस्य कुटुम्बिनी ॥ १३१ ॥
गृहमेध्यत्र विश्वेशो भवानी तत्कुटुम्बिनी ।
सर्वेभ्यः काशिसंस्थेभ्यो मोक्षशिक्षां प्रयच्छति ॥ १३२ ॥
दुष्प्रापमपि यत्किञ्चित्काशीक्षेत्रनिवासिनाम् ।
तत्सुप्राप्यं करोत्येव भवानी पूजिता नृभिः ॥ १३३ ॥

कुर्याज्जागरणंरात्रौमहाष्टम्यांव्रतीनरः । प्रातर्भवानीमभ्यर्च्यप्राप्नुयाद्वाञ्छितंफलम्

शुक्रेशात्पश्चिमाशायां भवानीं योऽभिवीक्षते ।
सर्वेमनोरथास्तस्य सिद्ध्यन्तीह न संशयः ॥ १३५ ॥
काश्यां सदैव वस्तव्यं स्नातव्योत्तरवाहिनी ।
भवानीशङ्करौ सेव्यौ प्राप्तव्ये भुक्तिमुक्तिके ॥ १३६ ॥

मातर्भवानि! तव पादरजोभवानि मातर्भवानि! तव दासतरो भवानि ।

मातर्भवानि न भवानि यथा भवेऽस्मिंस्त्वद्भाग्भवान्यनुदिनं न पुनर्भवानि ॥ १३७ ॥
तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रताऽपि वा ।
अयंमन्त्रः सदा जप्यः सुखाप्त्यै काशिवासिना ॥ १३८ ॥
ईशानतीर्थं तत्रैव भवानीतीर्थसन्निधौ । तत्रस्नातो य ईशानमर्चयेन्न सजन्मभाक्
ज्ञानतीर्थञ्च तत्रैव ज्ञानदं सर्वदानृणाम् । कृताभिषेकस्ततीर्थे दृष्ट्वा ज्ञानेश्वरं शिवम्
ज्ञानवापीसमीपस्थो ज्ञानेशो यैः समर्चितः ।
ज्ञानभ्रंशो न तेषां स्यादपि पञ्चत्वमृच्छताम् ॥ १४१ ॥
शैलादितीर्थं तत्रैव परमर्द्धिप्रकाशकम् । तत्र श्राद्धादिकं कृत्वादत्त्वादानंस्वशक्तितः
शैलादीश्वरमालोक्य ज्ञानवाप्याउदग्दिशि । लभेद्गणत्वपदवीं नात्रकार्याविचारणा
नन्दितीर्थादवाच्यां तु विष्णुतीर्थं परं मम ।
तत्र पिण्डान्विनिर्वाप्य पितृणामनृणो भवेत् ॥ १४४ ॥
विष्णुतीर्थे कृतस्नानो यो मां विष्णुं विलोकयेत् ।
विश्वेशाद्दक्षिणे पार्श्वे विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १४५ ॥
यः प्रत्येकादशीम्प्राप्यशयनीम्बोधिनीं तथा । कुर्याज्जागरणं रात्रौ ममर्मूर्तिसमीपतः
प्रातः समर्च्य माम्भक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि ॥
दत्त्वा गाः काञ्चनम्भूमिं न भूयोभूमिभाग्भवेत् ॥ १४७ ॥
कृत्वा तत्र व्रतोत्सर्गं वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
सम्यग्व्रतफलं धीमान् प्राप्नोत्येवममाज्ञया ॥ १४८ ॥
ममतीर्थादवाच्यां तु तीर्थम्पैतामहंशुभम् । तत्र श्राद्धविधानेनतर्पयित्वापितामहान्
पितामहेश्वरंलिङ्गंब्रह्मनालोपरिस्थितम् । पूजयित्वानरोभक्त्याब्रह्मलोकमवाप्नुयात्
ब्रह्मस्रोतःसमीपे तु कृतंकर्मशुभाशुभम् । परामक्षयतामेऽति शुभमेव ततश्चरेत् ॥
अत्यल्पमपियत्कर्म कृतमत्र शुभाशुभम् । प्रलयेऽपि न तस्यास्तिप्रलयो मुनिसत्तम
नाभितीर्थमिदम्प्रोक्तं नाभिभूतंयतःक्षितेः । अपिब्रह्माण्डगोलस्यनाभिरेषाशुभोदया
सामाणिकर्णिकेयीयं नाभिर्गाम्भीर्यभूमिका ।

ब्रह्माण्डगोलकं सर्वं यस्यामेति लयोदयम् ॥ १५४ ॥
ब्रह्मनालम्परंतीर्थं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् । तत्सङ्गमे नरः स्नात्वाकोटिजन्ममलंहरेत्
ब्रह्मनाले पतेद्येषामपि कीकसमात्रकम् । ब्रह्माण्डमण्डपान्तस्ते नविशन्तिकदाचन
ततो भागीरथेस्तीर्थंब्रह्मनालाच्चदक्षिणे । तत्रस्नात्वानरःसम्यङ्मुच्यतेब्रह्महत्यया
भागीरथीश्वरं लिङ्गंस्वर्गद्वारस्य सन्निधौ । दर्शनाद्ब्रह्महत्यायाः पुरश्चरणमुच्यते
अशुभांगतिमापन्ना यस्य पूर्वेपितामहाः । तेनभागीरथीतीर्थे तर्पणीयाः प्रयत्नतः
तत्र भागीरथे तीर्थे श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु ब्रह्मलोके नयेत्पितृन् ॥ १६० ॥
तद्दक्षिणेमहातीर्थं खुरकर्तरिसञ्ज्ञितम् । गोलोकादागताभिश्चगोभिर्यत्खुरकोटिभिः
स्थपुटीकृतभूभागं ततस्तत्खुरकर्तरि । तस्मिंस्तीर्थेकृतस्नानः कृतपिण्डोदकक्रियः
खुरकर्तरीशं लिङ्गं दृष्ट्वा गोलोकमाप्नुयात् । गोधनैर्नविमुच्येततल्लिङ्गस्यसमर्चनात्
दक्षिणे खुरकर्तर्यामार्कण्डंतीर्थमुत्तमम् । कृतश्राद्धविधानश्चतस्मिंस्तीर्थेऽघहारिणि
मार्कण्डेयेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वायुर्दीर्घमाप्नुयात् । ब्रह्मतेजोऽभिवृद्धिश्च कीर्तिश्च परमाम्भुवि
वसिष्ठतीर्थम्परमं महापातकनाशनम् । तर्पयित्वा पितॄंस्तत्रवसिष्ठेशं विलोक्यच
नरो न लिप्यतेपापैर्जन्मत्रयसमर्जितैः । वसिष्ठलोके वसति ब्रह्मतेजःसमन्वितः
तत्रैवारुन्धतीतीर्थं स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम् । पतिव्रताभिस्तत्तीर्थंगाहनीयंविशेषतः
पौंश्चल्यजनितो दोषस्तत्तीर्थपरिमज्जनात् ।
क्षणाद्विनाशमागच्छेदरुन्धत्याः प्रभावतः ॥ १६६ ॥
मार्कण्डेयेश्वरात्प्राच्यां वसिष्ठेश्वरपूजनात् ।
निष्पापो जायते मर्त्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥ १७० ॥
मूर्ती वसिष्ठारुन्धत्योस्तत्र पूज्ये प्रयत्नतः ।
न स्त्रीवैधव्यमाप्नोति न पुमांस्त्रीवियोगिताम् ॥ १७१ ॥
वसिष्ठतीर्थतोयाम्यां नर्मदातीर्थमुत्तमम् । विधायश्राद्धं मेधावीनर्मदेशं विलोक्यच
तत्रदत्त्वा महादानं पाप्मना न विमुच्यते । ततस्त्रिसन्ध्यं वै तीर्थं त्रिसन्ध्येश्वरपूर्वतः

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कृत्वा सन्ध्यां विधानतः ।
सन्ध्याकालविलोपोत्थपातकैर्नाऽभिभूयते ॥ १७४ ॥
त्रिसन्ध्येश्वरमालोक्य कृतसन्ध्यस्त्रिकालतः ।
त्रिवेदावर्तजम्पुण्यं प्राप्नुयाच्छ्रद्धया द्विजः ॥ १७५ ॥
ततोऽनुयोगिनीतीर्थं नरस्तत्रकृताप्लवः । दृष्ट्वातुयोगिनीपीठंयोगसिद्धिमवाप्नुयात्
अगस्तितीर्थंतत्रास्तिमहाघौघविघातकृत् । तत्रस्नात्वाप्रयत्नेनदृष्ट्वागस्तीश्वरंविभुम्
अगस्तिकुण्डे च ततः सन्तर्प्य च पितामहान् ।
अगस्तिना समेताञ्च लोपामुद्रां प्रणम्य च ॥ १७८ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वक्लेशविवर्जितः । गच्छेत्सपूर्वजैः सार्धं शिवलोकं नरोत्तमः
दक्षिणेऽगस्त्यतीर्थाच्च तीर्थमस्त्यतिपावनम् । गङ्गाकेशवसञ्ज्ञञ्चसर्वपातकनाशनम्
तत्र मे शुभदां मूर्तिं मुने! तत्तीर्थसञ्ज्ञिकाम् ।
सम्पूज्य श्रद्धया धीमान् मम लोके महीयते ॥ १८१ ॥
तत्रपिण्डान्विनिर्वाप्यदत्त्वादानंस्वशक्तितः । शतसाम्वत्सरींतृप्तिंपितृणांसमर्पयेत्
मणिकर्णींपरीमाणमेतत्तेकीर्तितंमहत् । सीमाविनायकाद्याम्यांसर्वविघ्नविघातनात्
वैरोचनेश्वरात्प्राच्यामहं वैकुण्ठमाधवः ।
तत्र मां भक्तितोऽभ्यर्च्य वैकुण्ठार्चामवाप्नुयात् ॥ १८४ ॥
वीरमाधवसञ्ज्ञोऽहं वीरेशात्पश्चिमे मुने । तत्र व्रतीसमभ्यर्च्यनयामीं यातनां लभेत्
कालमाधवनामाहं कालभैरवसन्निधौ । कलिःकालो नकलयेन्मद्भक्तमितिनिश्चितम्
मार्गशीर्षस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः । तत्रजागरणंकृत्वा यमं नालोकयेत्क्वचित्
निर्वाणनरसिंहोऽहं पुलस्तीश्वरदक्षिणे । भक्तोनिर्वाणमाप्नोति तन्मूर्तिंनमनादपि
महाबलनृसिंहोऽहमोङ्कारात्पूर्वतोमुने ! । दूतान्महाबलान्याम्यां नपश्येत्तु तदर्चकः
प्रचण्डनरसिंहोऽहं चण्डभैरवपूर्वतः । प्रचण्डमप्यघंकृत्वानिष्पाप्मास्यात्तदर्चनात् ॥
अहंगिरिनृसिंहोस्मितद्देहलिविनायकात् । प्राच्याम्प्रबलपापौघगजनानाम्प्रविदारणः
महाभयहरश्चाहं नरसिंहो महामुने !। पितामहेश्वरात्पश्चाद्भक्तसाध्वससाध्वसः

अत्युग्रनरसिंहोऽहं कलशेश्वरपश्चिमे । अत्युग्रमपिपापौघं हरामि श्रद्धयार्चितः
ज्वालामालीनृसिंहोऽहं ज्वालामुख्याः समीपतः ।
संज्वालयामि पापौघतृणानि परिपूजितः ॥ १९४ ॥
कोलाहलनृसिंहोऽस्मि दैत्यदानवमर्दनः । मम नाम समुच्चारादघकोलाहलोयतः
कङ्कालभैरवो यत्र काशीरक्षणदक्षधीः । तत्रमाम्भक्तितोऽभ्यच्चर्यनोपसर्गैर्निरुध्यते
विटङ्कनरसिंहोऽस्मि नीलकण्ठेश्वरादनु । तत्र मां श्रद्धयापूज्य नरो भवति निर्भयः
अनन्तवामनश्चाहमनन्तेश्वरसन्निधौ । अनन्तान्यपि भक्तस्य कलुषाणि हरेऽर्चितः
दधिवामनसञ्ज्ञोऽहं भक्तानां दधिभक्तिदः । यन्नामस्मरणादेव न दरिद्रो नरोभवेत्
त्रिविक्रमोऽस्म्यहं काश्यामुदीच्यां च त्रिलोचनात् ।
ददामि पूजितो लक्ष्मीं हरामि वृजिनान्यपि ॥ २०० ॥
बलिवामननामाऽहं बलिना परिपूजितः । बलिभद्रेश्वरात्प्राच्याम्भक्तानाम्बलवर्धनः
दक्षिणे भवतीर्थाच्च ताम्रद्वीपादिहागतः ।
नाम्ना ताम्रवराहोऽस्मि भक्तानां चिन्तितार्थदः ॥ २०२ ॥
मुने! धरणिवाराहःप्रयागेश्वरसन्निधौ । स्नात्वावाराहतीर्थेऽत्रदृष्ट्वामांकिटिरूपिणीम्
सम्पूज्य बहुभावेन न विशेद्योनिसङ्कटम् । तत्राल्पमपि दत्त्वाऽन्नंधरादानफलंलभेत्
महाकलुषगम्भीरसागरेनिपतञ्जनः । ममभक्त्युडुपं प्राप्य प्रलयेऽपि न मज्जति ॥
अहंकोकावराहोऽस्मिकिटीश्वरसमीपतः । तत्रमाम्पूजयन्मर्त्यो लभतेचिन्तितंफलम्
नारायणाःशतम्पञ्चशतञ्चजलशायिनः । त्रिशत्कमठरूपाणि मत्स्यरूपाणि विंशतिः
गोपालाश्च शतं सार्धं बुद्धाःसन्ति सहस्रशः । त्रिंशत्परशुरामाश्चरामाएकोत्तरंशतम्
विष्णुरूपोऽस्म्यहं चैको मुक्तिमण्डपमध्यतः ।
मुने! कृतप्रसादेन विश्वेशेन श्रितः स्वयम् ॥ २०९ ॥
नारायणस्वरूपेणगणाश्चक्रगदोद्यताः । कुर्वन्तिरक्षांक्षेत्रस्य परितोनियुतानि षट्
सोऽग्निबिन्दुरितिश्रुत्वा सम्प्रहृष्टतनूरुहः । पुनः पप्रच्छमेधावी मूर्तिभेदान्वद प्रभो
हिताय निजभक्तानां ममसन्देहशान्तये । कति ते मूर्तयोऽनन्त कथंज्ञेयास्तथा वद

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याऽग्निबिन्दोस्तपसां निधेः ।
उवाच भगवान्विष्णुर्मूर्तिभेदाननुक्रमात् ॥ २१३ ॥
याञ्छ्रुत्वाऽपि हि नो मर्त्यो यमगोचरतां व्रजेत् ।
केशवादींश्चतुर्विंशद्भेदानाह प्रजापतिः ॥ २१४ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

अग्निबिन्दो! महाप्राज्ञ! शृणु ते कथयाम्यहम् ।
आद्यदक्षिणहस्ताच्च विद्धि सृष्टिक्रमान्मुने !॥ २१५ ॥
शङ्खचक्रगदापद्मैर्मूर्तिं जानीहिकेशवीम् । पूजितायानृणांकुर्याच्चिन्तितार्थमसंशयम्
मधुहा परिचेतव्यः शङ्खपद्मगदारिभिः । वैरिणोनाशमायान्ति तन्मूर्तिपरिसेवनात्
सङ्कर्षणः समर्च्योऽत्रशङ्खाब्जारिगदायुधः । तन्मूर्तिपूजनाज्जातुजन्तुर्नस्यात्पुनर्भवी
शङ्खकौमोदकीचक्रपद्मैर्दामोदरोर्च्यते । ददाति वित्तम्पुत्रांश्चगोधनंधान्यमेव हि ॥
वामनःशङ्खचक्राब्जगदाभिरुपलक्षितः । लक्ष्मीवन्तं जनं कुर्याद्गृहेऽपि परिधारितः
पाञ्चजन्यं गदां पद्मं चित्रमूर्तिसुदर्शनम् । प्रद्युम्नः पूज्यते मर्त्यैर्बहुद्युम्नम्प्रयच्छति
ऊर्ध्ववामकरात्सृष्ट्या विष्णवाद्यं षट्कमुच्यते ।
यस्य स्मरणमात्रेण विलीयन्तेऽघराशयः ॥ २२२ ॥
शङ्खारिभ्यांगदाब्जाभ्यां पूज्यो विष्णुःश्रियेनरैः । शङ्खपद्मगदाचक्रैर्माधवःपरमर्द्धिदः
ध्येयोऽनिरुद्धःसंसिद्ध्यै शङ्खाब्जारिगदोद्यतः ।
शङ्खेन गदया चक्राम्बुजाभ्याम्पुरुषोत्तमः ॥ २२४ ॥
अधोक्षजोजनिहरः शङ्खार्यब्जगदो मुने !। शङ्खकौमोदकी पद्मचक्रेर्ध्येयोजनार्दनः॥
अधो वामकरात्सृष्ट्या षड्गोविन्दादिमूर्तयः ।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गोविन्दोबिभृयात्सदा ॥ २२६ ॥
शङ्खपद्मगदाचक्रैरर्च्योलक्ष्म्यैत्रिविक्रमः । शङ्खाब्जचक्रंबिभ्राणोगदावाञ्छ्रीधरःश्रिये
हृषीकेशश्च शङ्खेन गदाचक्राम्बुजैर्मतः । नृसिंहः शङ्खचक्राभ्यां पद्मेन गदयोह्यते ॥
अच्युतः शङ्खभृन्नित्यं गदापद्मरथाङ्गवान् । दक्षिणाधः करादूह्यावासुदेवादयश्चषट्

वासुदेवश्च शङ्खारिगदाजलजभृत्सदा । शङ्खाम्बुजगदाचक्रीध्येयो नारायणो नृभिः
शङ्खी पद्मी पद्मनाभोज्ञेयश्चक्रागदी .मुने । उपेन्द्रः शङ्खवान्नित्यं गदारिकमलायुधः
हरिर्हरेदवंशङ्खी चक्री पद्मी गदी नृणाम् । शङ्खेनगदयापद्मचक्राभ्यांकृष्णउच्यते
एते भेदामयाख्याताःस्वमूर्तीनांमहामुने । यान्विज्ञायध्रुवंमर्त्योभुक्तिमुक्तिचविन्दति
एवं वदतिगोविन्देमुनये चाग्निविन्दवे । पक्षीन्द्रः पक्षविक्षिप्तविपक्षोऽक्षिपथंगतः
प्राह च प्रणिपत्याऽऽशुत्र्यक्षस्यागमनम्मुदा । सम्भ्रमेण हृषीकेशः क्वेश इत्यवदत्ततः

गरुड उवाच

प्रत्यक्षः क्रियतामेष महावृषभकेतनः । यस्य ध्वजस्य रत्नार्चिः पूरयेद्रोदसीमिमाम्
लोकलोचननिर्माणसफलीकरणक्षमम् । कोटिमार्तण्डविद्योतप्रद्योतितदिगाननम्
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षस्त्र्यक्षस्य वृषभध्वजम् ।
विमानिनां विमानौघैः परीतगगनाङ्गणम् ॥ २३८ ॥
महावाद्यनिनादौघैःप्रतिस्वानितकन्दरम् ।
विद्याधरीपरिक्षिप्तपुष्पाञ्जलिसुगन्धितम् ॥ २३९ ॥
प्रणम्य दूरादपि च सम्प्रहृष्टतनूरुहः । अभ्युत्थातुं मनश्चक्रेशङ्खचक्रगदाधरः ॥
अग्निविन्दुमथ प्राह मुक्तिदस्तु मुदान्निधिः । इदं सुदर्शनंचक्रं स्पृशासव्येनपाणिना
अग्निविन्दुरिति प्रोक्तः स्पृशेद्यावत्सुदर्शनम् ।
तावत्सुदर्शनो जातः परमानुग्रहाद्धरेः ॥ २४२ ॥

स्कन्द उवाच

ज्योतीरूपोऽथ समुनिः कौस्तुभे ज्योतिषां तनौ ।
एकीभूतः कलशज! विन्दुमाधवसेवनात् ॥ २४३ ॥
विन्दुमाधवपादाब्जभ्रमरीकृतमानसाः । अग्निविन्दूपमांयान्तिकलशोद्भवनिश्चितम्
काश्यां सदैव वस्तव्यं द्रष्टव्यो विन्दुमाधवः ।
श्रोतव्यमिदमाख्यानं जेतव्या जगतां गतिः ॥ २४५ ॥
पुण्या पञ्चनदोत्पत्तिः पुण्यामाधवसङ्कथा ।

पुण्यो वाराणसीवासः सम्भवेत्पुण्यजन्मनाम् ॥ २४६ ॥
अग्निबिन्दोः स्तुतिं योऽत्र माधवाऽग्रे पठिष्यति ।
समृद्धसर्वकामः स मोक्षलक्ष्मीपतिर्भवेत् ॥ २४७ ॥
श्राद्धकाले सदा जप्यमिदमाख्यानमुत्तमम् । द्विजानाम्भुञ्जमानानाम्पुरस्तात्परतृप्तये
जप्तव्यमिदमाख्यानं पर्वकाले विशेषतः । पुण्ये पञ्चनदाभ्याशे पुण्यलक्ष्मीविवृद्धये
पठितव्यः प्रयत्नेन बिन्दुमाधवसम्भवः । श्रोतव्यः परयाभक्त्याभुक्तिमुक्तिसमृद्धये
सम्प्राप्ते वासरे विष्णो रात्रौ जागरणान्वितः
श्रुत्वाऽऽख्यानमिदम्पुण्यं वैकुण्ठे वसतिं लभेत् ॥ २५१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थे [काशीखण्डे
विन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निबिन्दुसम्वादोवैष्णवतीर्थ-
माहात्म्यञ्चनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

वृषभध्वजप्रादुर्भाववर्णनम्

अगस्त्य उवाच

श्रुत्वा स्कन्द! न तृप्तोऽस्मि तव वक्त्रेरितां कथाम् ।
अत्याश्चर्यकरम्प्रोक्तमाख्यानम्बैन्दुमाधवम् ॥ १ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि देवदेवसमागमम् ।
तार्क्ष्यात्त्र्यक्षः समाकर्ण्य दिवोदासस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥
विष्णुमायाप्रपञ्चं च किमाह गरुडध्वजम् । के के चशम्भुनासार्धंसमीयुर्मन्दराद्रिरेः
ब्रह्मणेशः कथं दृष्टस्त्रपाकुलितचक्षुषा । किमाह देवो ब्रह्माणं किमुक्तम्भास्वतापि च
योगिनीभिः किमाख्यायि गणा हीणाः किमब्रुवन् ।

एतदाख्याहि मे स्कन्द! महत्कौतूहलं मयि ॥ ५ ॥
इमं प्रश्नं निशम्यैशिर्मुनेः कलशजन्मनः । प्रत्युवाच नमस्कृत्यशिवौप्रणतसिद्धिदौ

स्कन्द उवाच

मुने शृणु!कथामेतां सर्वपातकनाशिनीम् । अशेषविघ्नशमनीम्महाश्रेयोभिवर्धिनीम्
अथदेवोऽसुररिपुःश्रुत्वा शम्भुसमागमम् । द्विजराजायसमुदासमदात्पारितोषिकम्
आयानं शंसते शम्भोरुपवाराणसिप्रियम् । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वाततश्चाभ्युद्ययौहरिः
विवस्वता समेतश्च तैर्गणैः परितोवृतः । योगिनीभिरनूद्यातो गणेशमुपसंस्थितः
अथनेत्रातिथीकृत्य देवदेवं वृषध्वजम् । मङ्क्षुताक्ष्यादवारुह्य प्रणनाम श्रियः पतिः
पितामहोऽपि स्थविरो भृशं नम्रशिरोधरः । प्रणतेन मृडेनैव प्रणमन्विनिवारितः॥
स्वस्त्यभ्युदितपाणिश्चरुद्रसूक्तैरमन्त्रयत् । अक्षतान्यथसार्द्राणिदर्शयन्सफलान्यजः
मौलिम्पादाब्जयोः कृत्वा गणेशः सत्वरो नतः ।
मूर्ध्न्युपाजिघ्रयाञ्चक्रे हरोहर्षाद्गजाननम् । ॥ १४ ॥
अभ्युपावेशयच्चापि परिष्वज्यनिजासने । सोमनन्दिप्रभृतयः प्रणेमुर्दण्डवद्गणाः
योगिन्योऽपिप्रणम्येशञ्चक्रुर्मङ्गलगायनम् । तरणिः प्रणनामाऽथ प्रमथाधिपतिंहरम्
खण्डेन्दुशेखरश्चाथउपसिंहासनं हरिम् । समुपावेशयद्वामपार्श्वे मानपुरःसरम्
ब्रह्माणं दक्षिणे भागेपरिविश्राणितासनम् । दृष्ट्वा सम्भावितः सर्वेशर्वेणप्रणतागणाः
मौलिचालनमात्रेण योगिन्योऽपि प्रसादिताः ।
सन्तोषितो रविश्चापि विशेति करसञ्ज्ञया ॥ १६ ॥
अथ शम्भुं शतधृतिः प्रबद्धकरसम्पुटः । परिविज्ञापयाञ्चक्रे प्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥

ब्रह्मोवाच

भगवन्देवदेवेश क्षन्तव्यं गिरिजापते !। वाराणसीं समासाद्य यदहंनागतः पुनः ॥
प्रसङ्गतोऽपि कः काशीं प्राप्य चन्द्रविभूषण !।
किञ्चिद्विधातुं शक्तोऽपि त्यज्येत्स्थविरतां दधत् ॥ २२ ॥
स्वरूपतो ब्राह्मणत्वादपाकर्तुन्न शक्यते । अथ शक्तोऽप्यपाकर्तुंकःपुण्येसञ्चिकीर्षति

विभोरपि समाज्ञेयंधर्मवर्त्मानुसारिणि । न किञ्चिदपकर्तव्यंजानताकेनचित्कचित्

कस्तादृशि महीजानौ पुण्यवर्त्मन्यतन्द्रिते ।
काशीपाले दिवोदासे मनागपि विरुद्धधीः ॥ २५ ॥
निशम्येति वचस्तुष्टः श्रीकण्ठोऽतिविशुद्धधीः ।
हसन्प्रोवाच धातारम्ब्रह्मन्सर्वमवैम्यहम् ॥ २६ ॥

देवदेव उवाच

आदौतावददोषं हि ब्रह्मत्वम्ब्राह्मणस्यते । वाजिमेधाध्वराणाञ्च ततोऽपिदशकंकृतम्
ततोऽपिविहितम्ब्रह्मन्भवता परमं हितम् । अपराधसहस्राणियल्लिङ्गं स्थापितम्मम
येनैकमपिमेलिङ्गं स्थापितं यत्रकुत्रचित् । तस्यापराधलेशोपिनास्तिसर्वापराधिनः
अपराधसहस्रेऽपिब्राह्मणंयोऽपराध्नुयात् । दिनैः कतिपयैरेव तस्यैश्वर्यं विनश्यति

इति ब्रुवति देवेशेऽप्यन्तरुच्छ्वसितंगणैः ।
स मातृभिः समन्ताच्च विलोक्यास्यपरस्परम् ॥ ३१ ॥

अर्कोऽप्यवसरं ज्ञात्वानत्वाशम्भुं व्यजिज्ञपत् । प्रसन्नास्यमुमाकान्तं दृष्ट्वादृष्टचराचरः

अर्क उवाच

नाथकाशीमितो गत्वायथाशक्ति कृतोपधिः । अकिञ्चित्करताम्प्राप्तःसहस्रकरवानपि
स्वधर्मपालके तस्मिन्दिवोदासेधरापतौ । निश्चितागमनंज्ञात्वादेवस्याहमिहस्थितः
प्रतीक्षमाणो देवेशत्वदागमनमुत्तमम् । विभज्य बहुधात्मानं त्वदाराधनतत्परः

मनोरथद्रुमश्चाद्य फलितःश्रीमदीक्षणात् ।
किञ्चिद्भक्तिलवाम्भोभिः सिक्तो ध्यानेन पुष्पितः ॥ ३६ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य रवेर्वैरविलोचनः । प्रोवाच देवदेवेशो नापराध्यसि भास्कर !॥
ममैवकार्यंविहितंत्वं यदत्रव्यवस्थितः । यस्यां सुरप्रवेशोनतस्मिन्राजनिशासति
इति सूरं समाश्वास्य देवदेवःकृपानिधिः । गणानाश्वासयामासव्रीडानम्रशिरोधरान्
योगिन्योऽपि सुदृष्ट्वाथशम्भुनासम्प्रसादिताः । त्रपाभरसमाक्रान्तकन्धराइवसङ्गताः
ततो व्यापारयाञ्चक्रे त्र्यक्षो नेत्राणिचक्रिणि । हरिर्नकिञ्चिदप्यूचेसर्वज्ञाग्रे महामनाः